पर्यावरण एवं समाज

डॉ. एस. अखिलेश

भारत सरकार गृह मंत्रालय द्वारा छः बार प्रतिष्ठित
''पं. गोविन्द वल्लभ पन्त एवार्ड'' तथा
'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड' से सम्मानित
समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. संध्या शुक्ला

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा

डॉ. संगीता सिंह

सरदार वल्लभ भाई पटेल संस्थान
रीवा (म.प्र.)

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज
रीवा (म.प्र.)
www.researchjournal.in

ISBN-978-81-87364-74-0

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस
ISSN 0973-3914, UGC Sl.No. 1962, Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112
का वार्षिक विशेषांक

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा

प्रथम संस्करण : 2018
₹ 1000.00

प्रकाशक
गायत्री पब्लिकेशन्स
विन्ध्य विहार कालोनी
लिटिल वैम्बिनोज स्कूल कैम्पस
पड़रा, रीवा (म.प्र.) - 486001
फोन : 7974781746

www.researchjournal.in

लेजर कम्पोजिंग-
अरविन्द कम्प्यूटर्स, रीवा (म0प्र0)

मुद्रक-
एकडमी प्रेस, इलाहाबाद (उ.प्र.)

इस पुस्तक को यथा संभव अद्यतन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। फिर भी यदि इसमें कोई कमी अ
त्रुटि रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा संताप के लिए सम्पादक, लेखक, प्रकाशक एवं मुद्रक का
दायित्व नहीं होगा। विद्वत पाठक गण के सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

अनुक्रमणिका

1.	भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिंतन **डॉ. अखिलेश शुक्ल**	09
2.	पर्यावरण और समाज : एक देशज अनुभव **डॉ. हरिगोविन्द राम त्रिपाठी**	20
3.	पारिस्थितिकी एवं मानव भविष्य **नन्दलाल मिश्रा** **मृत्युंजय मिश्रा**	30
4.	भारतीय संस्कृति में पर्यावरण सचेतनता **डॉं (श्रीमती) काकोली गोराई**	44
5.	उपनिवेशवाद तथा पर्यावरण **डॉ० संतोष कुमार**	53
6.	पर्यावरण की दिशा मे एक पहल **श्रीमती मंजरी अवस्थी**	61
7.	पर्यावरण और पारितंत्र **डॉ. संगीता सिंह**	66
8.	पर्यावरण प्रदूषण– प्रकार, नियंत्रण एवं उपाय **डॉ. रेखा सेन** **डॉ. सन्ध्या शुक्ला**	73
9.	पर्यावरण प्रदूषण: समस्याएँ तथा संरक्षण **डॉ. मनोज कुमार सिन्हा**	81
10.	पर्यावरण प्रदूषण एवं सामाजिक समस्यायें **डॉ. सीमा श्रीवास्तव**	91
11.	पर्यावरण–प्रदूषण की विभीषिका **कोमल पाण्डेय** **डॉ. रानू तिवारी**	99
12.	पर्यावरण–प्रदूषण के कारण एवं निवारण **डॉ. पूजा तिवारी**	104

पर्यावरण-प्रदूषण के कारण एवं निवारण

★ डॉ. पूजा तिवारी

पर्यावरण हमारे चारों ओर का वातावरण है जिसमें मानव तथा अन्य जीवधारी रहते हैं। मनुष्य के उत्तम स्वास्थ्य के लिए वातावरण का शुद्ध एवं साफ होना परम आवश्यक होता है। मनुष्य ने ही प्रकृति का संतुलन को बिगाड़ दिया है, जिससे अस्वस्थ्य कारी परिस्थितियाँ जन्म ले रही है। आज सारा विश्व प्रदूषण से आक्रान्त है, पर्यावरण एवं मानव जीवन का बड़ा ही गहरा संबंध रहा है। वास्तव में दैनिक रहन-सहन एवं श्वास-प्रश्वास की प्रकिया के फलस्वरूप दोनों एक दूसरे से हर पल, हर क्षण जुड़े रहते हैं। मानव आदि काल में प्रकृति के अनुसार जैविक कियाएँ करता रहता था और उसका प्राकृतिक संतुलन बना रहता था किन्तु सभ्यता के विकास ने मानव को बिलासी बना दिया। विकास के नाम पर मानव की दानव प्रकृति ने प्राकृतिक संपदा को रौंद डाला है।

पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या पर दुनिया का ध्यान पहली बार तब केन्द्रित हुआ जब स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम में 5 से 10 जून 1972 को प्रथम संयुक्त राष्ट्र सार्वभौम पर्यावरण सम्मेलन का आयोजन हुआ एवं संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की विधिवत घोषणा हुई तथा 5 जून को प्रतिवर्ष "पर्यावरण दिवस" के रूप में मनाए जाने का निर्णय हुआ।

विश्व का ध्यान अधिक से अधिक ओजोन परत के घटते जाने, तेजाबी वर्षा, जल, वायु, भूमि संबंधी परिवर्तन जैसे विषयों की ओर उत्तरोत्तर केन्द्रित हो रहा है। किसी भी राष्ट्र की संपत्ति वहाँ की भूमि, जल एवं वन पर ही आधारित होती है, इस दृष्टि में हिमालय का विशेष महत्व है, यहाँ के घने जंगलो में अनेक प्रजातियों के जीव जंतु और वनस्पतियाँ

==========

★ विभागाध्यक्ष एवं सह प्राध्यापक समाजशास्त्र, शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

पाई जाती हैं, गंगा यमुना जैसी देश की प्रमुख नदियों का उद्गम एवं जलग्रहण क्षेत्र हिमालय ही है।

प्रो. हरीश चन्द्र व्यास ने कहा कि "हमारे वायुमंडल" में नाइट्रोजन कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड आदि गैस एक निश्चित अनुपात में उपस्थित रहती है यदि इनके अनुपात में संतुलन में परिवर्तन होते हैं तो वायुमंडल अशुद्ध हो जाता है। जनसंख्या वृद्धि के साथ कृषि योग्य भूमि में वृद्धि करना, भवन निर्माण, फर्नीचर, ईधन, पशुपालन, चारा, पुल व नावों के निर्माण के लिए वनों की कटाई का कार्य तीव्र गति से हो रहा है। प्रारंभ में जहां पृथ्वी के 70 प्रतिशत भू-भाग पर वन थे वहीं आज के 16 प्रतिशत भू-भाग में वन रह गए हैं। इसके चलते बाढ़, सूखा, भूस्खलन, भूकंप तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि भी हुई है।

वायुमंडल में पायी जाने वाली गैसें एक निश्चित मात्रा एवं अनुपात में होती है जब वायु के अवयवों में अवांछित तत्व प्रवेश कर जाते हैं तो उसका भौतिक संतुलन बिगड़ जाता है, वायु के इस प्रकार दूषित होने की प्रक्रिया "वायु प्रदूषण" कहलाती है। वायु प्रदूषण से दम घुटना, सिर दर्द, खांसी, निमोनिया, तपेदिक, हृदय रोग, कैंसर आदि रोगों के अलावा आंखो व श्वास नली में भी जलन होती है। तीव्र औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के विकास के फलस्वरूप जल प्रदूषण की समस्या दिन-प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है। क्योंकि औद्योगिक कारखानों में गंदे अवशिष्ट पदार्थों के नदियों में जाने से जल में आक्सीजन की मात्रा घटती है, तथा सल्फेट, नाइट्रेट एवं क्लोराइड आदि की मात्रा बढ़ती है। इससे जलीय जंतुओं एवं वनस्पतियों के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

प्रदूषित वायु, जल एवं भूमि की तरह ध्वनि प्रदूषण भी मानव के लिए हानिकारक होता है। मानव के कानों में ध्वनि को सुगमता पूर्वक ग्रहण करने की एक निश्चित सीमा होती है, हम निर्धारित सीमा से अधिक की ध्वनि सुनने से जब मानव के शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगते हैं, तब उसे ध्वनि प्रदूषण या "शोर" कहा जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 45 डेसीबल तक की ध्वनि को कर्णप्रिय एवं 65 डेसीबल से अधिक की ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण माना जाता है। ध्वनि प्रदूषण से सरदर्द, उच्च रक्तचाप, मतली, कान दर्द, चर्मरोग स्मरण शक्ति का ह्रास आदि कई शारीरिक रोग तथा मानसिक दबाव, निराशा, चिड़चिड़ापन, जी घबराना आदि मानसिक रोग भी उत्पन्न होते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा किए गये परीक्षणों से सिद्ध हो

चुका है, कि 120 डेसीबल से अधिक की ध्वनि गर्भवती महिला, गर्भस्थ शिशु, बीमार व्यक्तियों तथा दस साल से छोटी उम्र के बच्चों के स्वास्थ्य की अपेक्षाकृत अधिक हानि पहुँचती है।

प्रदूषण एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या बन चुका है, प्रदूषण के खतरों से रक्षा कर पाना किसी एक देश के लिए संभव नहीं है। इस कार्य के लिए सभी राष्ट्रों की भागीदारी की आवश्यकता है। राष्ट्र, धर्म, जाति और भाषा के नाम पर प्रदूषण की रोकथाम अलग अलग नहीं की जा सकती है।

प्रदूषण को निम्न उपायों द्वारा काफी सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है।

1. जनसंख्या को प्रदूषण से उत्पन्न खतरों से अवगत कराया जाए ताकि प्रत्येक व्यक्ति
   अपने स्तर पर प्रदूषण कम से कम करने का हर संभव प्रयास ईमानदारी से करे।
2. विस्तृत पैमाने पर वृक्षारोपण किया जाए।
3. जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण किया जाए।
4. किसी भी परियोजना को तैयार करते समय ही पर्यावरण को ध्यान में रखा जाए।
5. कचरे एवं आवांछित पदार्थों तथा अपशिष्ट प्रबंधन नियोजित तरीके से करे।

अंत में कहा जाता है कि प्रगति एवं प्रकृति एक दूसरे के प्रतिद्वंदी न होकर पूरक है, परन्तु प्रगति के नाम पर प्रकृति की अवहेलना नहीं की जा सकती है। अत: दोनों में सामंजस्य आवश्यक है। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण अधिनियमों को जन-जन तक पहुँचाया जाए, पर्यावरण की सुरक्षा के लिए हमें "ग्रो-ग्रीन" "सेव-ग्रीन" अर्थ का नारा साकार करना होगा ताकि हम अपनी पृथ्वी और पर्यावरण तथा मानव अस्तित्व की रक्षा कर सकेंगे।

==========

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. श्रीवास्तव डा. प्रभात कुमार, प्रदूषण के कारण एवं निवारण।
2. गुप्ता डॉ. नीलम पर्यावरण प्रदूषण और पर्यावरण सुरक्षा एवं विश्लेषण ।
3. वर्मा रूपाली पर्यावरण और प्रदूषण।
4. इंटरनेट।
5. ए जर्नल ऑफ एशिया डेमोक्रेसी एण्ड डेव्लपमेंट 2017

महिला सशक्तिकरण के विविध आयाम

डॉ. अखिलेश शुक्ल

भारत सरकार गृह मंत्रालय द्वारा प्रतिष्ठित
''पं. गोविन्द वल्लभ पन्त एवार्ड'' तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा
'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड' से सम्मानित
समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
(उत्कृष्टता केन्द्र) रीवा (म.प्र.)

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज
रीवा (म.प्र.)
www.researchjournal.in

27. महिला सशक्तिकरण एवं ग्रामीण महिलाएँ 175
डॉ. (श्रीमती) पूजा तिवारी

28. महिला लेखन : स्त्री अस्मिता का साहित्य 178
डॉ. अंबा शुक्ला

29. महिला सशक्तिकरण का अर्थ व उद्देश्य 184
डॉ. श्रीमती जे. श्याम

महिला सशक्तिकरण एवं ग्रामीण महिलाएँ

• डॉ. (श्रीमती) पूजा तिवारी

किसी भी समाज की सम्पन्नता का अनुमान इस बात से बेहतर तरीके से लगाया जा सकता है कि उस समाज में नारी की स्थिति कैसी है ,अर्थात जिस समाज में नारी की स्थिति जितनी सुदृढ़ होगी ,वह समाज उतना ही उन्नत होगा।

विश्व की कुल जनसंख्या में आधी जनसंख्या महिलाओं की है वे कार्यकारी घंटों में दो तिहाई का योगदान करती है किन्तु विश्व आय का केवल दसवाँ हिस्सा वे प्राप्त कर पाती है और उन्हें विश्व संपत्ति में सौवें से भी कम हिस्सा प्राप्त होता है। एक अरब से ज्यादा आबादी वाले इस देश में महज 4.7 करोड़ महिलाएं ही कामकाजी हैं। अगर हम इस संख्या को बढ़ा सके और वर्क फोर्स में स्त्री पुरूष के बीच एक संतुलन ला सकें तो देश की अर्थव्यवस्था में 27 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। इस समय देश में लगभग 23.5 करोड़ महिलाएं ऐसी है जो बेहतर शिक्षा और प्रोफेशनल ट्रेनिंग के बावजूद वर्क फोर्स से बाहर है। डेलॉयट की 2018 ग्लोबल इंपैक्ट रिपोर्ट के अनुसार सन् 2005 में भारत के वर्क फोर्स में महिलाओं की भागीदारी 35 प्रतिशत थी जो सन् 2018 में घट कर महज 26 प्रतिशत रह गई है। राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु महिलाओं को वर्क फोर्स का हिस्सा बनाना जरूरी है। यद्यपि रोजगार में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है लेकिन उन्हें कम वेतन मिल रहा है तथा उनके कार्य की परिस्थितियाँ असंतोषजनक है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण के प्रमुख चार आयाम हो सकते है।

1. महिलाएं एवं उनकी कार्य सहभागिता
2. महिलाएं एवं शिक्षा
3. महिलाएं एवं उनका स्वास्थ्य
4. महिलाएं एवं उनकी राजनैतिक सहभागिता

उद्देश्य–

1. ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण की स्थिति की जानकारी।
2. ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थिति की जानकारी।

==========

• सह–प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय महाविद्यालय बिछुआ, जिला छिन्दवाड़ा

सशक्तिकरण का अर्थ पुरूषों की बराबरी करना नहीं है वरन् ग्रामीण महिलाओं को भी जीवन की मुख्य धारा से जोड़ना है।

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण मुख्यत: शिक्षा के प्रति जागरूकता, कार्यकुशलता एवं अधिकारों की जानकारी तथा सामाजिक क्षेत्र में सबलता के आधार पर आंका जा सकता है।

हमारे देश में लगभग 70 प्रतिशत महिलाएं गाँवों में निवास करती है ,उनके कंधों पर गृह कार्य ,कृषि कार्य तथा अन्य सामाजिक कार्यो का सारा भार होता है।

ग्रामीण स्त्रियों की भूमिका बहुआयामी होती है। वे घरेलू कार्य जैसे बर्तन, झाड़ू, पौंछा, साफ-सफाई, खाना बनाना, बच्चों की देख रेख, पशुओं की साफ सफाई आदि निपटा कर खेतों में काम करने जाती है एवं जरूरत पड़ने पर लघु उद्योग करके भी परिवार के लिए अर्थोपार्जन करती है। ग्रामीण महिलाएं लगभग सोलह से अठारह घंटे कार्य करती है।

इस तारतम्य में बिछुआ के ग्राम गोनी एवं ग्राम जाखावाड़ी की ग्रामीण महिलाओं से उनकी दिनचर्या की जानकारी लेने पर ज्ञात हुआ कि वे प्रात: 5 बजे से उठकर घरेलू कार्य, पशुओं की देखरेख, खेती के कार्य पानी भरना, चारा काटना आदि जैसे कार्यो को करते हुए लगभग रात्रि के 11 बजे सोती है।

ग्रामीण महिलाओं के अथक परिश्रम के पश्चात् भी उनका स्थान एवं सम्मान समाज में नगण्य है। इसका प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव है एवं शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी के कारणों में मुख्य रूप से अभिभावकों की समझ में कमी, बेटी की शादी की चिंता जल्दी विवाह, घर के काम, तथा स्त्रियों द्वारा स्वयं की शिक्षा के प्रति अरूचि ही उन्हें शिक्षा से वंचित कर देती है।

हमारा देश गांवों में बसता है और ग्रामीण विकास से ही देश का विकास होगा। सरकार की योजनाओं का परिणाम ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक विकास में दिखाई पड़ने लगा है। ग्रामीण महिलाऐं कृषि के अलावा टोकरी बनाना, दोना पत्तल बनाना, कपड़ों की रंगाई करना, शहद बेचना आदि जैसे लघु कार्य कर रही है। ग्रामीण महिलाएं सब्जी बेचने से लेकर गृह निर्माण, पुल निर्माण में मजदूरी जैसे कार्यो में भी शामिल होती है।

भारत में नारी उत्थान हेतु विविध योजना एवं कानून बने है, परंतु व्यावहारिक रूप में इन कानूनों का पूर्णत: पालन नहीं हो पा रहा है। ग्रामीण महिला सशक्तिकरण हेतु आज आवश्यकता है महिला के परिश्रम के सही मूल्यांकन की।

वर्तमान में ग्रामीण महिलाओं के रहन-सहन विचारों में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं। अब ग्रामीण महिलाएं स्वयं के लघु उद्योग प्रारंभ करने में सक्षम हो रही है। ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी बड़ी, पापड़, अचार तथा मसाले बनाने वाले लद्यु उद्योगों में निरंतर बढ़ रही हैं। ग्रामीण महिलाएं राजनैतिक क्षेत्र में भी सशक्त हो रही है, अनेक स्थानों पर महिलाएं सरपंच,जनपद सदस्य, ग्राम पंचायतों में सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर रही है किंतु शिक्षा के अभाव में वह

अपने पद का समुचित प्रयोग नहीं कर पा रही है।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं के विकास ने गति पकड़ी है परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना शेष है। ग्रामीण क्षेत्रों में चल रही अनेक योजनाओं के बाद भी ग्रामीण विकास में महिलाओं की संख्या काफी न्यून है। अत: ग्रामीण महिला सशक्तिकरण की सफलता हेतू आवश्यक है कि सशक्त कहीं जाने वाली महिलाएं अपने ज्ञान एवं शिक्षा का दीप प्रज्जवलित करें एवं उसके प्रकाश में समस्त ग्रामीण महिलाओं को समाहित कर ले। राष्ट्र के विकास तथा एक सशक्त महिला समाज की स्थापना हेतू आवश्यक है कि ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण हेतू मुख्य रूप से शासकीय योजनाओं का लाभ दिलवाना ,समान वेतन देना,शिक्षा देना तथा स्वयं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना होगा तथा ग्रामीण महिलाओं द्वारा किए गए कार्यो एवं परिश्रम का बेहतर मूल्यांकन करके उन्हें प्रोत्साहित करना ही ग्रामीण महिला सशक्तिकरण की दिशा में सार्थक प्रयास सिद्ध होगा।

==========

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. आहूजा राम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था
2. शर्मा सुभाष, भारतीय महिलाएं दशा एवं दिशा
3. कुमार मनीष, महिला सशक्तिकरण दशा एवं दिशा
4. स्मारिका, नारीत्व एवं नारी सशक्तिकरण
5. दैनिक भास्कर, अभिव्यक्ति अस्तित्व दिनांक 09.04.2019

वर्तमान संदर्भ में भारतीय नारी

डॉ. अखिलेश शुक्ल

भारत सरकार गृह मंत्रालय द्वारा प्रतिष्ठित
''पं. गोविन्द वल्लभ पन्त एवार्ड'' तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा
'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड' से सम्मानित
समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
(उत्कृष्टता केन्द्र) रीवा (म.प्र.)

डॉ. संध्या शुक्ला

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा

डॉ. संगीता सिंह

सरदार वल्लभ भाई पटेल संस्थान
रीवा (म.प्र.)

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज
रीवा (म.प्र.)
www.researchjournal.in

अनुक्रमणिका

1. वर्तमान संदर्भ में भारतीय नारी (मध्यप्रदेश की महिला विकास नीति–2015) — 09
डॉ. अखिलेश शुक्ल

2. वर्तमान संदर्भ में भारतीय महिलायें — 19
डॉ. सीमा श्रीवास्तव

3. समाज में महिलाओं की स्थिति: एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण — 27
डॉ. के.के. शर्मा, निशा सिंह, डॉ. प्रीति शर्मा

4. भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति एवं परिवर्तन — 34
डॉ. मधुलिका श्रीवास्तव

5. स्वातंत्रोत्तर भारत में नारी की स्थिति — 41
डॉ. सरोज बाला श्याग विश्नोई

6. वर्तमान संदर्भ में भारतीय नारी — 47
डॉ. पूजा तिवारी

7. भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति की सामाजिक विवेचना — 50
डॉ. गुंजन सिंह, डॉ. रेखा सेन

8. भारतीय सन्दर्भ में नारी सशक्तीकरण — 54
डॉ. अलका नायक

9. भारत में ग्रामीण महिला सशक्तिकरण — 59
सुरेन्द्र प्रताप सिंह खरे

वर्तमान संदर्भ में भारतीय नारी

• डॉ. पूजा तिवारी

नारी पुरुष की पूरक सत्ता है। वह मनुष्य की सबसे बड़ी ताकत है। उसके बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है। नारी उसे पूर्ण करती है। मनुष्य का जीवन अन्धकारयुक्त होता है तो स्त्री उसमें रोशनी पैदा करती है। पुरुष का जीवन नीरस होता है तो नारी उसे सरस बनाती है। पुरुष के उजड़े हुए उपवन को नारी पल्लवित बनाती है। इसलिए शायद संसार का प्रथम मानव भी जोड़े के रूप में ही धरती पर अवतरित हुआ था। पुरुष और नारी एक ही सत्ता के दो रूप हैं और परस्पर पूरक हैं। फिर भी कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व और त्याग के कारण नारी कहीं महान है पुरुष से। वह जीवन यात्रा में पुरुष के साथ नहीं चलती वरन् उसे समय पड़ने पर शक्ति और प्रेरणा भी देती है। उसकी जीवन यात्रा को सरस, सुखद, स्निग्ध और आनन्दपूर्ण बनाती है नारी, पुरुष की शक्तियों के लिए उर्वरक खाद का काम देती है। महादेवी वर्मा ने नारी की महानता के बारे में लिखा है 'नारी केवल माँस पिण्ड की संज्ञा नहीं है, आदिम काल से आज तक विकास पथ पर पुरुष का साथ देकर उसकी यात्रा को सफल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भर कर मानवी ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है उसी का पर्याय नारी है।' इसमें कोई सन्देह नहीं कि नारी धरा पर स्वर्ग की ज्योति की साकार प्रतिमा है। उसकी वाणी जीवन के लिए अमृत स्रोत है। उसके नेत्रों में करुणा, सरलता और आनन्द के दर्शन होते हैं। उसके हास्य में संसार की समस्त निराशा और कड़ुवाहट मिटाने की अपूर्व क्षमता है। नारी सन्तप्त हृदय के लिए शीतल छाया है। वह स्नेह और सौजन्य की साकार देवी है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के शब्दों में 'नारी पुरुष की शक्ति के लिए जीवन सुधा है। त्याग उसका स्वभाव है, प्रदान उसका धर्म, सहनशीलता उसका व्रत और प्रेम उसका जीवन है।' नारी अपने विभिन्न रूपों में सदैव मानव जाति के लिए त्याग, बलिदान, स्नेह, श्रद्धा, धैर्य, सहिष्णुता का जीवन बिताती है। माता-पिता के लिए आत्मीयता, सेवा की भावना जितनी पुत्री में होती है उतनी पुत्र में नहीं होती। पराये

==========

• विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, एसोसिएट प्रोफेसर, शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

घर जाकर भी पुत्री अपने माँ-बाप से जुदा नहीं हो सकती। उसमें परायापन नहीं आता, उसके हृदय में वही सम्मान, सेवा की भावना भरी रहती है जैसी बचपन में थी। भाई-बहिन का नाता कितना आदर्श, कितना पुण्य-पवित्र है। भाई-भाई परस्पर जुदा हो सकते हैं एक दूसरे का अहित कर सकते हैं किन्तु भाई-बहिन जीवन पर्यन्त कभी विलग नहीं हो सकते। बहन जहाँ भी रहेगी अपने भाई के लिए शुभ कामनायें, उसके भले के लिए प्रयत्न करती रहेगी। माँ तो माँ ही है। पुत्र की हित चिन्ता, उसका भला, लाभ हित सोचने वाली माँ के समान संसार में और कोई नहीं है। संसार के सब लोग मुँह मोड़ लें किन्तु एक माँ ही ऐसी है जो अपने पुत्र के लिए सदा सर्वदा सब कुछ करने के लिए तैयार रहती है।

नारी को मानव जीवन का आधार कहा जा सकता है, क्योंकि हर बड़े से बड़े विद्वान, महापुरूष, वैज्ञानिक, आम आदमी, राष्ट्रपिता, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति सभी की उत्पत्ति अर्थात् जन्म स्त्री के गर्भ से हुई है।

नारी, स्त्री, महिला, औरत, ईश्वर की अमूल्य एवं सर्वश्रेष्ठ संतान है। किन्तु मानव जीवन में नारी की दशा कभी स्थिर नहीं रही है, प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक नारी जीवन में एवं नारियों की स्थिति में कई परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं।

स्त्री समाज का दर्पण होती है, यदि किसी समाज की स्थिति को देखना है तो वहाँ की नारी की दशा को देखना होगा। आज की नारी का सफर चुनौतीपूर्ण जरूर है, पर आज उसमें चुनौतियों से लड़ने का साहस आ गया है। अपने "आत्मविश्वास" के बल पर आज वह दुनियाँ के अपनी एक अलग पहचान बना रही है। आज की नारी आर्थिक एवं मानसिक रूप से आत्मनिर्भर है।

वर्तमान युग में समस्त विश्व में महिला सशक्तीकरण की गूँज सुनाई दे रही है। आज की स्त्री जागरूक है, अपने हक के प्रति, अपने आत्म सम्मान के प्रति जो द्योतक हैं नारी के आत्म विश्वास का, आज की नारी अपनी अस्मिता, अपनी पहचान को कायम रखने में कामयाब है।

गलत के खिलाफ आवाज उठाती है : आज की नारी किसी भी प्रकार के जुल्म को चुपचाप नहीं सहती और न ही दूसरों को सहने देती है। सिंगल मदर्स भी सिर उठाकर रह रही है।

उम्र से परे सोचती है - आज की नारियां समय से पहले स्वयं को बूढ़ा नहीं मानती है तथा खुद को व्यवस्थित रखकर अपनी जरूरतों पर खुले दिल से खर्च भी करती है।

स्वयं के लिए समय निकालती है - आज की महिलाएँ खुद के लिए समय निकालकर अपनी पसंदीदा शौक को पूरा करती हैं।

अपना ख्याल रखने में सक्षम- आधुनिक महिलाएं खुद से प्यार करती हैं खुद का सम्मान करती है।

सजग रहती है- आज की महिलाएं नयी है, नयापन सीखने को उत्सुक रहती है।

अभिव्यक्ति एवं शिष्टता- वर्तमान समय की नारी अपने विचारों को खुल कर दूसरों के सामने रखती है, चुप रहकर सब कुछ सहती नहीं है। आज महिलाएँ शिक्षित हैं, उन्हे कई प्रकार का ज्ञान है। वे आधुनिकता, सभ्यता तथा शिष्टता में सामंजस्य बिठाकर जीवन यापन करती है।

जिम्मेदार- आज की महिलाएं जिम्मेदार है, अपनी क्षमता के अनुसार परिवार, नौकरी, अन्य सामाजिक गतिविधियों को निभाती है।

हम किसी से कम नहीं- परिवार एवं कैरियर दोनों में तालमेल बैठाती नारी का कौशल वाकई काबिले तारीफ है, चुनौतियों का हंस कर सामना करने वाली महिलाएँ आज हर क्षेत्र में अपना लोहा मनवा रही है।

वर्तमान संदर्भ में महिलाओं ने आज अपनी क्षमताओं से समाज में एक अलग पहचान बनाई है।

आज की नारी आधुनिकता से युक्त, सजग, साहस तथा आत्म विश्वास से परिपूर्ण है तथा पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी है।

वर्तमान संदर्भ में नारियों की सामाजिक, आर्थिक प्रस्थिति बेहतर हुई है, जिसका मुख्य कारण शिक्षा, अच्छी सोच एवं सरकार के द्वारा महिला सशक्तीकरण हेतु किए गये प्रयास है, आज नारी अपना वजूद, अपनी अस्मिता, अपनी अलग पहचान बनाने में कामयाब है, जो एक स्वस्थ समाज का परिचायक है।

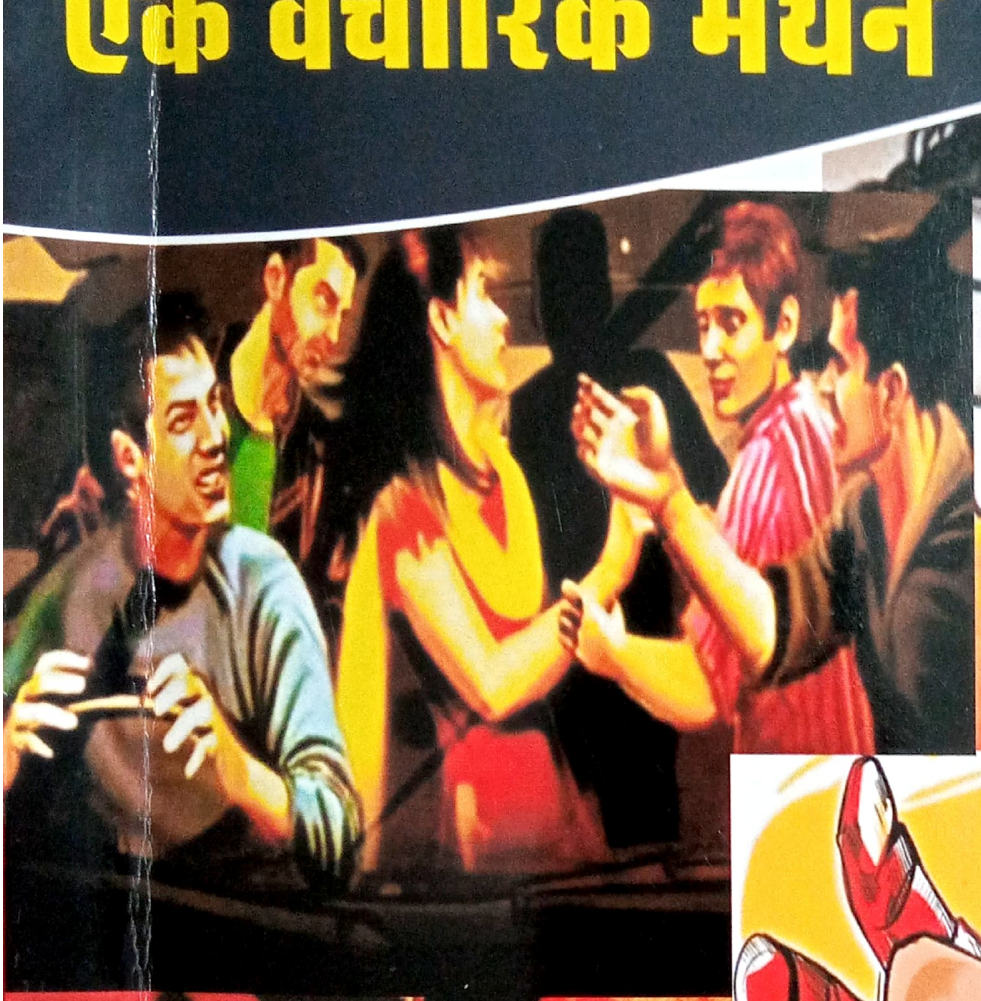
==========

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. कन्या सुरक्षा एक बेहतर राष्ट्र का निर्माता- सुबोध कुमार।
2. बेब दुनिया- मैं हूँ आज की नारी- गायत्री शर्मा।
3. बेब दुनिया- आधुनिक महिलाओं के खास गुण- नम्रता जायस्वाल।
4. बेब दुनिया- वर्तमान युग की नारी- नीलम चौधरी।
5. महिलाओं का समाज शास्त्र- डॉ. लवानियाँ।
6. http://literature.awgp.org/akhandjyoti/1964/June/v2.26

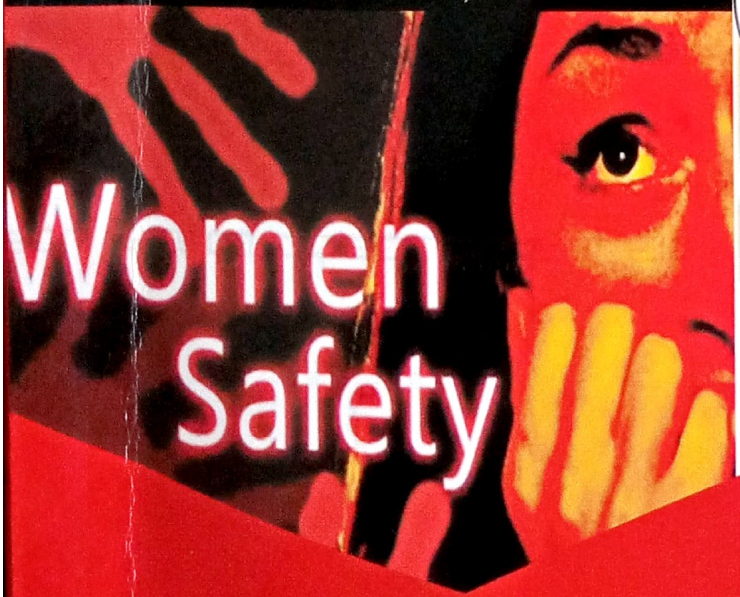
ISBN : 978-81-937867-6-5

महिला सुरक्षा एक वैचारिक मंथन









Women Safety

डॉ. मीना जैन

28	कामकाजी महिलाः सुरक्षा सम्बंधी प्रावधान	श्रीमती नीलम खासकलम	75–80
29	महिला अधिकार संरक्षण संबंधी डॉ. अम्बेडकर के विचार	डॉ. सुनील कुमार श्रीवास्तव कु. शिल्पी शर्मा	81–85
30	नारी दशा एवं राजनीतिक विचार	डॉ. मोनिका ब्रम्हने	86–88
31	महिला सुरक्षा, अभिभावकों की सोच एवं दायित्व	डॉ. श्रीमति मृदुला शर्मा	89–91
32	महिला अधिकार संरक्षण संबंधी डॉ. अम्बेडकर के विचार	टोमेश्वर सिंगारे डॉ. एल. पी. झारिया	92–95
33	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिलाओ की बदलती भूमिका	डॉ. सरिता पाल	96–97
34	महिला सुरक्षा – बेटी बचाओ– बेटी पढ़ाओ योजना	तपन कौशल	98 –99
35	स्त्री अधिकार और आंबेडकर का योगदान	सुदेश कुमार मेहरोलिया	100–102
36	महिला सुरक्षा–संवैधानिक प्रावधान	श्रीमति रानी साहू	103–106
37	कामकाजी महिलाओं के उत्पीड़न के विभिन्न स्वरूप, कारण एवं सुझाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन	श्रीमती कंचन ठाकुर	107–108
38	भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति और डॉ आम्बेडकर	श्रीमती प्रीति वासनिक	109–110
39	महिला सुरक्षा एवं सामाजिक बोध	हरिकिशन कोगे	111–112
40	महिला सुरक्षा एवं युवा दृष्टिकोण	श्री रमेश कुमार कोरडे	113–115
41	नारी उत्थान में प्रशासन की भूमिका	श्रीमति के. हारोडे	116–117
42	कामकाजी महिलाएं और कानूनी सुरक्षा प्रावधान	सत्येन्द्र कुमार शेन्डे विनय कुमार मिश्रा	118–119
43	नारी अस्मिता और विज्ञापन	डॉ सरिता कुशवाहा	120–121
44	पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी	डॉ. कपिल खरे	122–123
45	महिला अधिकार संरक्षण संबंधी डॉ. अम्बेडकर के विचार	दीपक रजने डॉ. वर्षा सागोरकर	124–127
46	कामकाजी महिलायेंः सुरक्षा संबंधी प्रावधान	डॉ. श्रीमती कुन्ती वराठे	128–130
47	नारी उत्थान मे प्रशासन की भूमिका	डॉ. पल्लवी दुबे	131–132
48	महिला सुरक्षा एवं सोशल मीडिया की भूमिका	निधि साजवान	133–134
49	महिला अधिकार संरक्षण संबंधी डॉ. अम्बेडकर के विचार	सुश्री मिनाक्षी सोनकुसरे	135–136
50	महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध एवं कानूनी प्रावधान	लामू काशिया	137–138
51	वर्तमान में महिलाओं की शिक्षा एवं उनके विरूद्ध बढ़ते अपराध और कानूनी प्रावधान	गरीबीन मस्करे शिलावन्ती मस्करे	139–141
52	महिला सुरक्षा : जिम्मेदार कौन	डॉ. अनुभूति सेंडीमन	142–143
53	नारी अस्मिता और विज्ञापन	अरुण कुमार खोवरे	144–145
54	महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध एवं कानूनी प्रावधान पर महाविद्यालयीन छात्राओं का दृष्टिकोण	कु0 फरहत मंसूरी डॉ अर्चना गौर	146–149
55	महिला सुरक्षा– एक वैचारिक मंथन	निखिल माकोड़े श्रीमति कविता माकोड़े	150–151

महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध एवं कानूनी प्रावधान पर महाविद्यालयीन छात्राओं का दृष्टिकोण

कु0 फरहत मंसूरी
(समाजशास्त्र), शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल (म0प्र0)
डॉ अर्चना गौर
सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, शासकीय महाविद्यालय नरेला, भोपाल (म0प्र0)

महिला अपराध न केवल भारतीय समाज बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए एक विकराल समस्या बन गयी है। महिला के विरू
बढ़ते अपराध की यह समस्या पारिवारिक पर्यावरण, दोषपूर्ण मानसिक प्रवृत्ति, सामाजिक संस्कृति के अनुसरण का परिणाम है
वर्तमान समय में भारतीय समाज में दिन– प्रतिदिन महिलाओं से संबंधित अपराधों का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। महिलाओं
विरूद्ध ये अपराध घर की चार दिवारी से ही प्रारंभ हो जाते है, कई बार महिलाओं को अपने घर में ही हिंसा, यौन हिंसा, भेदभा
तनाव जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है यदि महिला कामकाजी है, शिक्षा ग्रहण कर रही है या किन्ही कारणो से घ
के बाहर जाती है, तो कई बार इस तरह की परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है तथा इन अपराधों से बचने के लि
भारतीय समाज में विभिन्न कानूनी प्रावधान किये गये है, परंतु इन कानूनी प्रावधानों को अमलीजामा पहनाना बहुत जरूरी है
सम्बंधित शोध पत्र महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराधों में से केवल बाल विवाह पर केन्द्रीत है :–

उद्देश्य :–

1. बाल विवाह भारतीय समाज को निगलती एक कूप्रथा।
2. बालविवाह की धार्मिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि।
3. भारत में विवाह के समय लड़कियों की आयु एवं हिंसा।
4. सहमति से सम्भोग के लिए महिला की न्यूनतम आयु।
5. बाल विवाह से संबंधित कानून एवं नीतियां।

आज हम महिला सशक्तिकरण के इस दौर में जहां महिलाओं के प्रति इतनी जागरूकता की बात करते है, वहां बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि आज भी भारत के कई इलाको में बाल विवाह जैसी कूप्रथा प्रचलित है। इसीलिए मैने जरूरत समझी, इस समस्या पर अध्ययन करने की इसे एक बार पुनः आप सभी के मस्तिष्क पटल पर लाने की। बाल विवाह भारत में अवैध है, लेकिन इसकी जड़े इतनी गहरी और बालविवाह रोकथाम अधिनियम का लगभग निष्प्रभावी क्रियान्वयन इतना लचर है कि बालविवाह देश के अनेक भागो में विशेष रूप से राजस्थान और गुजरात में प्रचलित है। यहाँ पर मैं आप को कलर्स चैनल पर आने वाले सीरियल बालिका वधु की ओर ध्यान दिलाना चाहूँगी और आप सभी को बताना चाहूँगी की उस धारावाहिक में दो तरह के बालविवाह का चित्रण किया गया था, पहला बचपन में ही शादी हो जाना और बाद में गौना होना या तुरंत ही गौना हो जाना इसमें वर और वधु दोनों बाल ही रहते है, जिस कारण उन कच्ची कलियों का बचपन छिन जाता है। दूसरा बालविवाह वह है, जिसमें छोटी उम्र की लड़की का विवाह बड़ी उम्र के लड़के से कर दिया जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप उस कच्ची कली का बचपन तो छिन जाता ही है साथ ही उस पर इतना बोझ डाल दिया जाता है जितना उसका शरीर बर्दाश्त नहीं कर पाता है।

भारत जनगणना 2011 के ऑकड़े बताते है कि भारत में बालविवाह की घटनाओं में यद्यपि काफी कमी आई है, लेकिन 2011 में 50 लाख से अधिक लड़कियाँ ऐसी थी, जिनका विवाह 18 वर्ष से कम आयु में हुआ, 20 से 24 वर्ष आयु वर्ग की एक चौथाई युवतियों की यह स्वीकारोक्ति है कि उनका विवाह 18 वर्ष से कम आयु में ही हो गया था, जबकि 25 से 29 वर्ष आयु वर्ग के लगभग 20 प्रतिशत पुरूषों ने स्वीकार किया की उनका विवाह 18 वर्ष से कम आयु में हुआ था, राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग एंव **'दी चेरिटी यंग लाईव्स'** की एक संयुक्त रिपोर्ट के अनुसार 2001 के बाद से ग्रामीण क्षेत्रों में अल्प आयु दुल्हनों की संख्या में 0.3 प्रतिशत की कमी आई है, लेकिन शहरी क्षेत्रों में इनमें 0.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जनगणना 2011 के ऑकड़े के विश्लेषण पर आधारित **'ए स्टैटिस्टीकल ऍनालिसिस ऑफ चाइल्ड मैरिज इन इंडिया बेस्ट ऑन सेंसस 2011'** में पाया गया की ग्रामीण क्षेत्रों में 4 में से 1 तथा शहरी क्षेत्रों में 5 में से 1 लड़की का विवाह 18 वर्ष से कम आयु में हुआ, लड़कियों के सशक्तिकरण हेतु किये गये विधिक एंव विकास मूलक प्रयासो एंव बालविवाह के दोषियों को दंडित किये जाने के बावजूद भारत विश्व के उन 10 देशों की सूची में शीर्ष पर है जहाँ बालविवाह की दर सर्वोच्च स्तर पर है, इस सूची में विश्व के

International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 1; January 2019; Page No. 06-07

मादक द्रव्य व्यसन एवं युवा वर्ग

डॉ० पूजा तिवारी
सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, शासकीय महा० बिछुआ, छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
वर्तमान समय में समाज की सर्वाधिक ज्वलंत समस्या के रूप में "युवा वर्ग में ड्रग्स की बढती समस्या" को रखा जाना अतिश्योक्ति नही होगी, क्योंकि सर्वविदित है कि किसी भी समाज की संरचना में "युवा वर्ग" ही वह केन्द्र बिन्दु होता है जिसके आसपास ही समाज की प्रगति एवं विकास का लक्ष्य होता है किन्तु यदि युवा वर्ग ही मादक द्रव्य व्यसन के कुचक्र में फंस जाये तो समाज की स्थिति शोचनीय होगी। युवा वर्ग में मादक द्रव्य का सेवन एक "फैसन" सा बन गया है, परिणाम यह है कि मादक द्रव्य को उत्तेजक अनुभव के लिए प्रयोग करने के बाद शनैः शनैः ये नवयुवक इन नशीली दवाओं के अभ्यस्त हो जाते है और ये लतखोर बन जाते है।

मूल शब्द : युवा वर्ग, मादक पदार्थ, ड्रग्स और क्राइम।

प्रस्तावना : शोध प्रविधि

शोध पत्र विषय "मादक द्रव्य व्यसन एवं युवा वर्ग" नामक शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक शोध सामाग्री के आधार पर शोध पत्र तैयार किया गया है। शोध पत्र के उचित स्थान पर सन्दर्भित करने का भी प्रयास किया गया है। पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से अध्ययन को विशेष महत्व प्रदान किया गया है।

समस्या

संयुक्त राष्ट्र मादक पदार्थ और अपराध कार्यालय एवं सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय की ओर से करवाए गए सर्वे के अनुसार देश के 12 से 18 वर्ष की उम्र लगभग 35 फीसदी बच्चे नशे के शिकार बनते है।
न्युयार्क में किये गये सर्वे के अनुसार "मादक द्रव्यों की बिक्री बढ़ने के साथ–साथ अपराधों की संख्या भी बढ़ती है।" अर्थात् ड्रग्स और क्राइम का संबंध चोली दामन जैसा है।

उद्देश्य

मादक द्रव्य व्यसन एक ऐसी स्थिति को दर्शाता है जिसमें शरीर को कार्य करते रहने हेतु नशीले पदार्थो का सेवन की आवश्यकता पड़ती है जबकि "आदतन" का आशय है कि व्यक्ति मानसिक रूप से ड्रग्स पर निर्भर हो जाता है। व्यसन एवं आदतन में केवल "अनिवार्यता" का अंतर होता है अर्थात् आदतन में व्यसन की तरह अनिवार्यता नही होती है।
यदि हम इतिहास पर नजर डालें तो ज्ञात होता है कि द्वितीय महायुद्ध के बाद पश्चिम देशों में ड्रग्स का विस्तार हुआ। भारत में उस समय केवल अशिक्षित, गरीब लोग अपने गम भुलाने, तनावों को भुलाने हेतु नशा करते थे, किन्तु वर्तमान में लगभग सभी वर्ग अमीर, शहरी, साक्षर सभी युवाओं में यह फैशन बन गया है। मादक द्रव्य व्यसन की कुछ प्रमुख विशेषताएं होती है यथा नशीली दवा में सेवन की तीव्र इच्छा नशे की मात्रा का बढ़ना, नशा मजबूरी बन जाना, एवं व्यक्ति का नशे का गुलाम बन जाना।

समाधान

युवा वर्ग क्यों फंसता है ड्रग्स के कुचक्र में – अक्सर देखा गया है कि युवा वर्ग में ड्रग्स की शुरूआत "सिगरेट" पीने से प्रारंभ होती है, ड्रग्स के कुचक्र में फंसने के कई कारण हो जाते है। यथा, मित्रमंडली, संगत, डिप्रेशन, अज्ञानता, फैशन, विज्ञापन का प्रभाव, प्रेम में असफलता, जिज्ञासा, सर्वाधिक मुख्य कारण "ड्रग्स की उपलब्धता" युवा वर्ग को कही न कही से ड्रग्स प्राप्त हो ही जाते है।
मादक पदार्थ के कई प्रकार है जिनसे कई प्रकार की हानियाँ होती है जैसे कोकीन, हेरोयन, मेरीजुआन, एवस्टेसी, स्पीड अफीम मेडक्स, चरस, गांजा, भांग, मारफीन, हशीश, ब्राउन शुगर आदि। लगभग सभी पदार्थों से शिराओं का अवरोधक होना, उल्टी हृदय रोग आलस्य, श्वसन तंत्र को हानि, एवं मस्तिष्क हेतु खतरनाक होना एवं अन्य दुष्परिणाम ही पाए जाते है।
डॉ0 राम आहुजा के अनुसार लगभग 90 प्रतिशत छात्रों में यह नियमित आदत, 1 प्रतिशत व्यसनी 2 तिहाई मनोरंजन हेतु इसका उपयोग करते है।
टाइम्स आफ इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार :– "लगभग 40 टन हेरोयन साउथ एशिया में पैदा होती है जिसमें लगभग 17 टन भारत में उपयोग किया जाता है। लगभग 1.4 डालर बिलियन का व्यापार होता है। लगभग 51 मिलियन लोग हेरोयन के एडिम्ट है। यूना इटेड नेशन के अनुसार साउथ एशिया में, 'भारत' में हेरोयन के कस्टमर सर्वाधिक है।
नशीली दवाओं के लगभग 70 प्रतिशत स्मगलर्स मात्र 25 से 30 वर्ष के बीच की आयु समूह के होते है। ड्रग्स तस्करी में नाइजीरिया के 70 प्रतिशत, पाकिस्तान के 50 प्रतिशत, तंजानिया एवं भारत तथा अन्य देशों में 5–10 प्रतिशत लोग लिप्त पाये जाते है।
ड्रग्स के पुष्परिणामों हेतु कई अध्ययनकर्ताओं ने अध्ययन किया यथा बनर्जी (कलकत्ता) 1963, दयाल (दिल्ली)1977, चिटनिस (मुम्बई) 1974 एवं डॉ राम आहुजा एवं डॉ0 दुबे गुप्ता यादि।
आज युवा वर्ग दिगभ्रमित है, एक ओर देश की प्रगति दूसरी ओर बढ़ती बेरोजगारी मंहगाई है। दूरसंचार के साधन, आवागमन के पूर्ण विकसित साधन, मोबाइल, कम्प्यूटर, लैपटाप, अतिआधुनिक बाईक, कारें सभी कुछ युवओं के आसपास है, किन्तु आधुनिकता, पश्चिमीकरण, फैशन टूटते परिवार, बढ़ते तलाक समझौता न करने की प्रतृत्ति, झूठी शान, लिव इन रिलेशनशिप, आदि के कारण भारत में यह समस्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है, क्या आम और क्या खास, सभी इसके कुचक्र में फंसते रहे है। फिल्म जगत से सुप्रसिद्ध फिल्म स्टार "संजय दत्त" और "फरदीन खान" जैसी हस्तियाँ ड्रग्स के कुचक्र में फंसकर किसी तरह से उबर पाये है। इस समस्या का प्रभाव गांव नगर, महानगरों के युवाओं पर एक जैसी सोच रखने के कारण समान रूप से पड़ता है, मादक द्रव्य व्यसन के केवल दुष्परिणाम ही सामने आते है। यथा मानसिक रोग, हताशा, शारीरिक दुर्बलता, अपराध की प्रतृत्ति, गरीबी पारिवारिक विघटन, सामुदायिक

एवं विघटन आदि भारत में ड्रग्स सप्लाई का मुख्य केन्द्र राजस्थान है, जहाँ से अन्तर्राष्ट्रीय सीमा लगती है, दिल्ली में "हेरोयन" की सप्लाई श्री गंगा नगर, जयपुर से होते हुए पहुँचती है। पाकिस्तान से ऊँटों पर लागकर ड्रग्स सप्लाई की जाती है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में लगभग 8 लाख लोग हेरोयन का उपभोग करते है एवं प्रतिमाह 90 से 100 करोड के बीच मादक पदार्थो की बिक्री होती है।

वर्तमान समय में युवा वर्ग में युवकों के साथ–साथ युवतियाँ भी बहकते कदमों से लडखडाती, मदहोश जिन्दगी, बेपरवाह एवं संस्कृति से कोसो दूर होती जा रही है, आज युवा वर्ग अपने इस गलत काम को "स्टाइलिश लाइफ" कहने से भी पीछे नही हटता है, होश तब आता है जब चिड़िया खेत चुग लेती है, शरीर साथ नही देता, उपचार की नौबत आ जाती है और व्यक्ति मौत की कगार पर खड़ा हो जाता है। इस बुरी लत से केवल सेवनकर्ता ही हानि नही उठाता बल्कि उससे जुड़े हर शख्त को कष्ट झेलना पड़ता है, युवा के परिवार को समाज में शर्मिदंगी झेलना पडता है, अपने पुत्र या पुत्री को, नशे के चंगुल में फंस कर तिल तिल कर मरते हुए देखना परिवार वालों की मजबूती बन जाती है।

नशे से बचाव

1. **परिवार** :– मॉ–पिता छोटे बच्चों को सुखमय, शांत वातावरण प्रदान करें, बडे लोग स्वयं मद्यपान न करे, आपस में कलह न करें।
2. **शिक्षण संस्था** :– बुद्धिजीवी वर्ग, पुलिस, एन.जी.ओ आदि इस ओर सक्रिय पहल कर सकते है।

सन 1995 से आयोग की नियुक्ति एवं 1936 में केन्द्रीय संगठन की स्थापना, 1959 में "नाटकोटिक्स ड्रग्स एंड साहकोट्राफिक सबस्टेन्सेज एक्ट बनाया गया इसके तहत अवैध व्यापार में पकड़े जाने पर 10 वर्ष की सजा, 01 लाख जुर्माना रखा गया।

इसके अलावा भारत में 26 पुनर्वास केन्द्र 91 परामर्श केन्द्र, 76 संस्थाएं एवं कई एन. जी. ओ आदि कार्यरत है। दिल्ली पुलिस द्वारा नवज्योति, नामक संस्था में अब तक 9000 लोगों को सुधारा गया है प्रथम महिला आईपी एस डॉ. किरण वेदी ने इंडिया विजन फाउंडेशन नामक संस्था की रचना की है जो नशा मुक्ति हेतु अथक प्रयासरत है। इसके अलावा समस्या का उपचार हम जनचेतना, नुक्कड़ नाटक, संगोष्ठी, सभाएं, विज्ञापन आदि से कर सकते है। सबसे आवश्यक उपचार है "युवा वर्ग को समझना", अक्सर देखा गया है कि पुरानी पीढ़ी सार्वजनिक तौर पर नयी पीढ़ी युवा वर्ग की आलोचना करती नजर आती है। कई बार परिवार के मुखिया का कडक व्यवहार भी पुत्र को इस ओर ढकेलता है, हमें समझना होगा कि युवा वर्ग क्या चाहता है, उनसे हम मित्रवता व्यवहार करें, संवाद करें, उनकी बातों को समझे, कहने का तात्पर्य है कि युवा वर्ग के आस पास स्वस्थ समाजिक पर्यावरण रखु, इसके साथ ही युवा वर्ग को चाहिए कि वो एक पल के लिए अपने परिवार, समाज, देश एवं स्वयं अपने विषय में सोचे।

निष्कर्ष

अंत में यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज एवं संस्कृति एवं प्रत्येक धर्म में नशा करने को हराम कहा गया है, यदि युवा वर्ग किसी भी तरह से इस बुरी आदत से बच कर रहे तो वह अपनी ताकत देश की प्रगति एवं विकास की राह पर लगा सकता है क्योंकि युवा वर्ग ही वह वर्ग है जो देश को आगे की ओर ले जा सकता है। सरकार को चाहिए कि वह अधिक राजस्व की कमाई का लोभ त्याग कर नशबंदी हेतु कडे से कडा कानून बनाये। अब समय आ गया है कि हम सब मिलकर युवा वर्ग में मादक द्रव्य व्यसन के बढ़ते चलन को रोके एवं एक स्वस्थ समाज की रचना में अपना अमूल्य योगदान दे।

अंत में समस्त युवा वर्ग के लिए चार पंक्तियों द्वारा संदेश देकर अपने शोध पत्र को पूर्णता प्रदान करना चाहती हूँ।

नशा करना है एक नादानी, खो न देना अमूल्य जवानी
पहचान कर इस अनमोन जीवन को
ड्रग्स के कुचक्र से निकल कर लिखो एक नयी कहानी

संदर्भ ग्रन्थ

1. आधुनिक समाज शास्त्रीय निबंध – एम. एन. सिंह
2. भारतीय समाज – डॉ0 नूर मोहम्मद
3. अपराध शास्त्र – डॉ. एम. एस. चौहान
4. यूनीफाइड समाजशास्त्र – डॉ. गुप्ता / शर्मा
5. हिम्मत है। (किरण बेदी) परमेश डंगवाल
6. अहा! जिन्दगी– दैनिक भास्कर

पर्यावरण संबंधी मुद्दे और सतत् विकास

डॉ. कौशलेन्द्र दीक्षित
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग,
नेशनल पी० जी० कॉलेज
भोगाँव, मैनपुरी, उ०प्र०



स्वराँजलि प्रकाशन
swaranjalipublication@gmail.com,
8700124880, 9810749840
Vasundhara, Ghaziabad, 201012.

पर्यावरण संबंधी मुद्दे और सतत् विकास

सारणी

क्र. सं	अध्याय	लेखक	पृष्ठ सं
1	समावेशी व सतत् विकास का भारतीय परिप्रेक्ष्य	डॉ0 अरविन्द कुमार शुक्ल	01-08
2	पर्यावरण प्रदूषण की समस्या और समाधान	डॉ. मीनाक्षी शर्मा और डॉ. कौशलेन्द्र दीक्षित	09-18
3	औद्योगिक विकास और पर्यावरण – प्रदूशित पर्यावरण का मानव जीवन पर प्रभाव (भारत के संदर्भ में)	डॉ0 अंशु पाण्डेय	19-24
4	पर्यावरण संरक्षण में सूर्य और चन्द्रमा की भूमिका (वैदकीय एवं वर्तमान साहित्य के परिप्रेक्ष्य में)	डॉ. फतेह सिंह	25-31
5	पर्यावरण अवनयन और सुधार के उपाय	रवीन्द्र नाथ सागर	32-38
6	पर्यावरणीय नैतिकता, संरक्षण क्षेत्र और उपाय	औंकार नाथ सागर	39-44
7	प्राचीन साहित्य में पंच तत्व और पर्यावरण संरक्षण	दर्शना कुमारी	45-51
8	ग्लोबल वार्मिंगः पारिस्थितिकीय स्थिति पर प्रभाव	दीपशिखा दुबे	52-60
9	वरुणा की व्यथा	डॉ. अखिलेश्वर कुमार द्विवेदी	61-66
10	सतत् विकास एवम् पर्यावरण संरक्षण	डॉ. मधु गुप्ता	67-69

11	पर्यावरण की राजनीति एवं पर्यावरण का विकास	डॉ. उमेश चन्द्र और डॉ. उमा शंकर	70-75
12	ग्लोबल वार्मिंग के युग में वायुमंडलीय प्रदूषण प्राकृतिक और वैकल्पिक ऊर्जा संसाधन का प्रबंधन	डॉ. सुनीता मिश्रा, डॉ. ममता भारद्वाज	76-87
13	पर्यावरण और सतत् विकास एवं संरक्षण के उपाय	मोहिनी सरन	88-95
14	परिस्थितिकीय अवधारणा और समाज	डॉ. निरुपमा सिंह	96-104
15	बुन्देलखण्ड में पर्यावरण चेतना प्राचीन राजवंशों से वर्तमान तक	डॉ. अभिनन्दन सिंह	105-113
16	उभरती पर्यावरणीय चिंता कि विकास का पैमाना क्या हो?	शिवा वर्मा	114-116
17	पर्यावरण एवं मानवीय स्वास्थ्य	डॉ. शम्स आलम	117-121
18	जल प्रदूषणः कारण एवं नियंत्रण के उपाय	फिरोज आलम	122-125
19	पर्यावरण प्रदूषण एक ज्वलन्त समस्या	डॉ. सरस्वती	126-129
20	भारत में सामाजिक अर्थव्यवस्था का सततीय विकास पर अध्ययन	डॉ. सुनील कुमार पाल	130-134
21	वैश्विक तपन (ग्लोबल वार्मिंग) का निदान केवल वृक्षारोपण	डॉ. विजय भारद्वाज	135-138
22	भारत में पर्यावरण बनाम् विकास द्वन्द्व एवं सतत् विकास	सोनिका नागर	139-142
23	सतत् विकास की अवधारणा और पर्यावरण	डॉ. शिवानी जैन	143-144
24	पर्यावरणीय सतत् विकास में वैश्विक स्तर पर उठाये गये कदम	श्रीमती स्नेहलता	145-150
25	भारत में पर्यावरण की समस्यायें और समाधान	प्रवीण कुमार	151-156
26	पर्यावरण और स्वास्थ्य	प्रवीण कटारे	157-159

27	साहित्यकारों का प्रकृति और पर्यावरण प्रेम	डॉ. शक्ति प्रसाद द्विवेदी	160-162
28	सतत् विकास के राजनीतिक आयाम–वर्तमान परिप्रेक्ष्य में	डॉ. कपिल खरे	163-172
29	भारत को वैश्विक नजरिए से करना होगा पर्यावरण संरक्षण	कु. दिव्यलता शर्मा	173-179
30	पर्यावरण प्रदूषण : संवर्द्धन	शिखा	180-184
31	पर्यावरणीय मुद्दे एवं सतत् विकास	डॉ. रजनी धाकरे	185-189
32	पर्यावरणः संकट और चुनौतियाँ	रेखा	190-196
33	वायु प्रदूषणः कारण एवं निदान	डॉ. मुहम्मद इकबाल सिद्दीकी	197-200
34	स्मार्ट सिटी मिशन और उससे जुड़ी चुनौतियाँ (एक विश्लेषण)	डॉ. पंकज शर्मा	201-205
35	पर्यावरण चुनौतियाँ एवं मानव सुरक्षा	कु. बीना यादव	206-210
36	जलवायु परिवर्तन के प्रति जागरुकता में समाज कार्य का हस्तक्षेप	देवी प्रसाद	211-220
37	जल है तो कल है	मोनी कुमारी	221-225
38	पर्यावरणीय मुद्दे और सतत् विकास	कु. पूनम यादव	226-231
39	वैश्विक–तपनरू एक प्रमुख समस्या	प्रीति सिंह	232-238
40	मानव सुरक्षा एवं पर्यावरणीय चुनौतियाँ	डॉ. प्रविता त्रिपाठी	239-240
41	पर्यावरण संरक्षण की राजनीति का सतत् विकास	डॉ. गंगाधर	241-242
42	समाकलित विकास हेतु पर्यावरण उन्नयन	राजेश कुमार	243-245
43	पर्यावरण की समस्या, संरक्षण एवं जन चेतना	उमेश चन्द्र	246-252

सतत् विकास के राजनीतिक आयाम – वर्तमान परिपेक्ष्य में

डॉ0 कपिल खरे
अतिथि विद्वान, राजनीति विज्ञान, शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ (म0प्र0)

सन्दर्भ

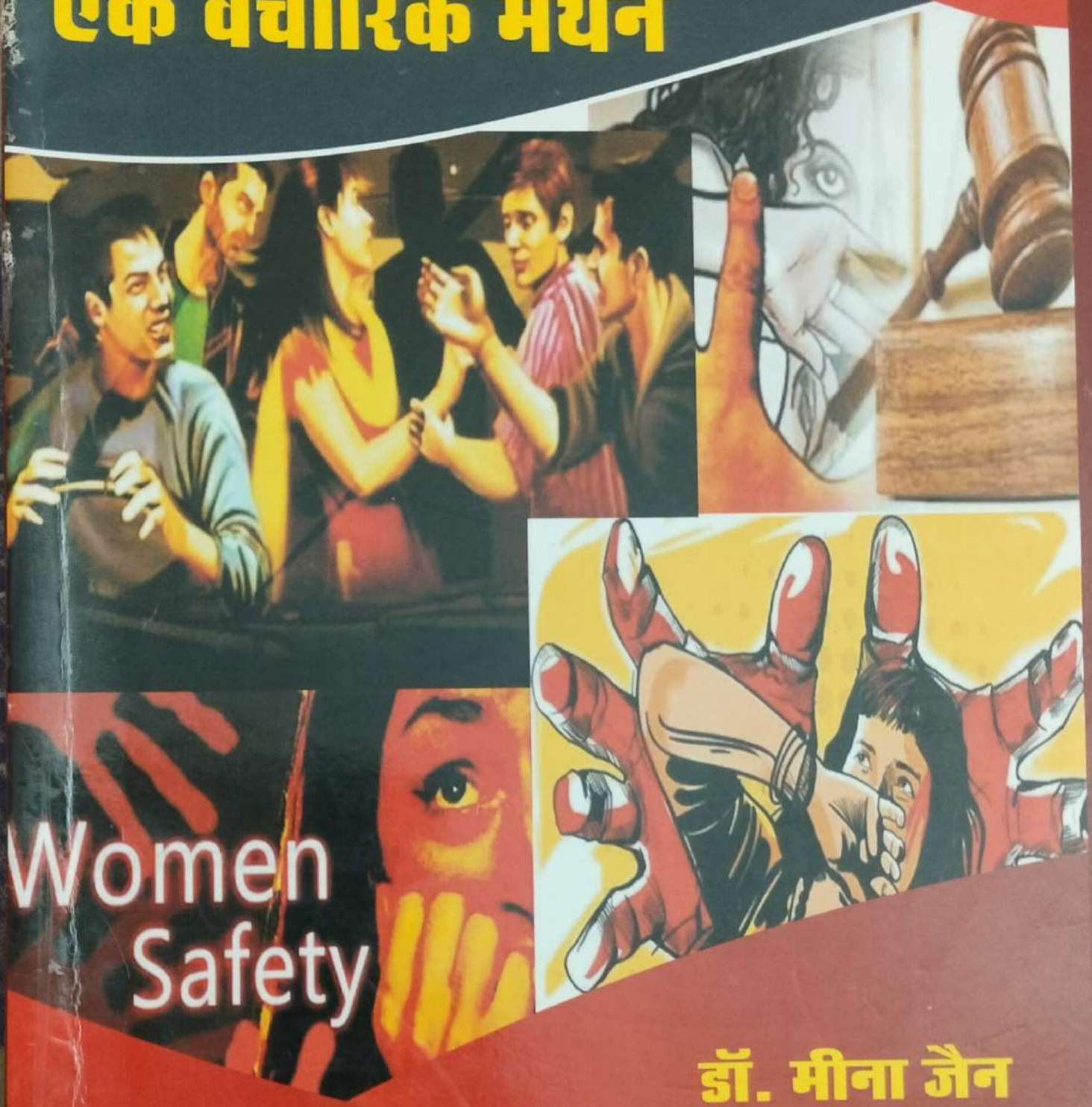
सतत् विकास से हमारा अभिप्राय ऐसे विकास से है, जो हमारी भावी पीढ़ियों की अपनी जरूरतें पूरी करने की योग्यता को प्रभावित किए बिना वर्तमान समय की आवश्यकताएं पूरी करे। भारतीयों के लिए पर्यावरण संरक्षण, जो सतत् विकास का अभिन्न अंग है, कोई नई अवधारणा नहीं है। भारत में प्रकृति और वन्यजीवों का संरक्षण अगाध आस्था की बात है, जो हमारे दैनिक जीवन में प्रतिबिंबित होता है और पौराणिक गाथाओं, लोककथाओं, धर्मों, कलाओं और संस्कृति में वर्णित है। सतत् विकास सामाजिक–आर्थिक विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें पृथ्वी की सहनशक्ति के अनुसार विकास की बात की जाती हैं। यह अवधारणा सन 1960 के दशक में विकसित हुई जब लोग औधौगीकरण के पर्यावरण पर हानिकारक प्रभावों से अवगत हुए। सतत् विकास का उदभव प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति तथा उसके कारण आर्थिक क्रियाओं तथा उत्पादन प्रणालियों के धीमे होने या उनके बंद होने के भय से हुआ।

यह अवधारणा उत्पादन –प्रणालियों पर नियंत्रण करने वाले कुछ लोगों द्वारा प्रकृति के बहुमूल्य तथा सीमित संसाधनों के लालचपूर्ण दुरुपयोग का परिणाम है। सतत विकास कोयला, तेल तथा जल जैसे संसाधनों के दोहन के लिए उत्पादन तकनीकों, औधोगिक प्रक्रियाओं तथा विकास की नीतियों के संबंध में दीर्घकालीन योजना प्रस्तुत करता है।

सतत् विकास की अवधारणा की शुरूआत सन 1962 में हुई जब वैज्ञानिक रॉकल कारसन ने 'दी साइलेंट स्प्रिंग' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने कीटनाशक डी.डी.टी. के प्रयोग से होने वाले नुकसान की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया1। यह पुस्तक पर्यावरण, अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक पक्षों के मध्य परस्पर संबंधों के अध्ययन में मील का पत्थर साबित हुई। सन 1968 में जीव विज्ञान शास्त्री पॉल

ISBN : 978-81-937867-6-5

महिला सुरक्षा एक वैचारिक मंथन



Women Safety

डॉ. मीना जैन

अनुक्रमणिका

सही क्रम	विषय	नाम	पेज नं.
1	महिला सुरक्षा एवं समाज–बोध	डॉ. इला घोष	1–4
2	महिला सुरक्षा पर मनोवैज्ञानिक चिंतन	डॉ0 रेखा बख्शी	5–6
3	महिला सुरक्षा – युवा दृष्टिकोण	डॉ. अर्चना गौर	7–8
4	महिला सुरक्षा और हम सब	डॉ. कामना वर्मा शैलेश बांगड़े	9–10
5	महिला सुरक्षा : दशा और दिशा	डॉ. मीना जैन	11–13
6	नारी संरक्षण – संस्कृति व संस्कार से ही संभव	डॉ. अजरा एजाज	14–15
7	घरेलू काम वाली बाइयाँ : एक अध्ययन	डॉ. सरला वाजपेयी	16–17
8	भारत में महिला अपराध रोकने की हालत सुधरी पर मंजिल अभी दूर	डॉ. अर्चना मैथ्यू	18–19
9	महिला की सुरक्षा एवं बोध	डॉ. मिथलेश अग्निहोत्री	20–22
10	महिला शिक्षा– सुरक्षा का एक कदम	डॉ. श्रीमती अनीता कौशल	23–25
11	महिला अधिकार एवं डॉ. अम्बेडकर के विचार तथा योगदान	डॉ. जे.एल. हनोते	26–28
12	महिला सुरक्षा : किसका दायित्व बदले परिवेश के संदर्भ में	कु. बिन्दिया महोबिया	29–32
13	महिला सुरक्षा और घरेलू हिंसा अधिनियम 2005	डॉ. प्रतिभा श्रीवास्तव	33–35
14	छिन्दवाड़ा जिले की महिला उद्यमी – महिला सुरक्षा का एक कदम	डॉ. मुकेश कौशल	36–37
15	महिला सशक्तिकरण के प्रयास	डॉ. सिंधु लाहोरिया	38–39
16	महिलाओं के विरुद्ध बढ़ते अपराध एवं कानूनी प्रावधान	डॉ. प्रशांत बेलवंशी	40–41
17	महिलाओं की सुरक्षा में सोशल मीडिया की भूमिका	डॉ. विजय कलमधार	42–44
18	भारत में महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध व कानूनी प्रावधान–एक विवेचन	डॉ. (श्रीमती) वसुधा आवले	45–47
19	महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध	डॉ. विनोद माहुरपवार	48–50
20	कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न संबंधी विधियां	डॉ. बालकृष्ण अकोदिया	51–53
21	महिलाएं और सामाजिक बोध	श्रीमती रजनी कवरेती	54–55
22	कामकाजी महिलाएं एवं सुरक्षा संबंधी प्रावधान	प्रो. मालती बनारसे डॉ. एस.पी. बिनाकिया	56–59
23	नारी दशा : ऐतिहासिक परिदृश्य	डॉ. शेखर ब्रम्हने	60–62
24	कामकाजी महिलायें एवं सुरक्षा संबंधी प्रावधान	डॉ. श्रीमती सुनीता कटारिया प्रताप सिंह गोदरे	63–65
25	नारी अस्मिता और विज्ञापन	अरुण कुमार खोबरे	66–67
26	महिला अधिकार संरक्षण सम्बंधी डॉ. अम्बेडकर के विचार	डॉ. आर.के. मिश्र	68–72
27	स्त्री पैदा नहीं होती बना दी जाती है	दिवाकर महोबिया	73–74

28	कामकाजी महिला: सुरक्षा सम्बंधी प्रावधान	श्रीमती नीलम खासकलम	75–80
29	महिला अधिकार संरक्षण संबंधी डॉ. अम्बेडकर के विचार	डॉ. सुनील कुमार श्रीवास्तव कु. शिल्पी शर्मा	81–85
30	नारी दशा एवं राजनीतिक विचार	डॉ. मोनिका ब्रम्हने	86–88
31	महिला सुरक्षा, अभिभावकों की सोच एवं दायित्व	डॉ. श्रीमति मृदुला शर्मा	89–91
32	महिला अधिकार संरक्षण संबंधी डॉ. अम्बेडकर के विचार	टोमेश्वर सिंगारे डॉ. एल. पी. झारिया	92–95
33	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिलाओ की बदलती भूमिका	डॉ. सरिता पाल	96–97
34	महिला सुरक्षा – बेटी बचाओ– बेटी पढ़ाओ योजना	तपन कौशल	98 –99
35	स्त्री अधिकार और आंबेडकर का योगदान	सुदेश कुमार मेहरोलिया	100–102
36	महिला सुरक्षा–संवैधानिक प्रावधान	श्रीमति रानी साहू	103–106
37	कामकाजी महिलाओं के उत्पीड़न के विभिन्न स्वरूप, कारण एवं सुझाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन	श्रीमती कंचन ठाकुर	107–108
38	भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति और डॉ आम्बेडकर	श्रीमती प्रीति वासनिक	109–110
39	महिला सुरक्षा एवं सामाजिक बोध	हरिकिशन कोगे	111–112
40	महिला सुरक्षा एवं युवा दृष्टिकोण	श्री रमेश कुमार कोरडे	113–115
41	नारी उत्थान में प्रशासन की भूमिका	श्रीमति के. हारोडे	116–117
42	कामकाजी महिलाएं और कानूनी सुरक्षा प्रावधान	सत्येन्द्र कुमार शेन्डे विनय कुमार मिश्रा	118–119
43	नारी अस्मिता और विज्ञापन	डॉ सरिता कुशवाहा	120–121
44	पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी	डॉ. कपिल खरे	122–123
45	महिला अधिकार संरक्षण संबंधी डॉ. अम्बेडकर के विचार	दीपक रजने डॉ. वर्षा सागोरकर	124–127
46	कामकाजी महिलायें: सुरक्षा संबंधी प्रावधान	डॉ. श्रीमती कुन्ती वराठे	128–130
47	नारी उत्थान मे प्रशासन की भूमिका	डॉ. पल्लवी दुबे	131–132
48	महिला सुरक्षा एवं सोशल मीडिया की भूमिका	निधि साजवान	133–134
49	महिला अधिकार संरक्षण संबंधी डॉ. अम्बेडकर के विचार	सुश्री मिनाक्षी सोनकुसरे	135–136
50	महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध एवं कानूनी प्रावधान	लामू काशिया	137–138
51	वर्तमान में महिलाओं की शिक्षा एवं उनके विरूद्ध बढ़ते अपराध और कानूनी प्रावधान	गरीबीन मस्करे शिलावन्ती मस्करे	139–141
52	महिला सुरक्षा : जिम्मेदार कौन	डॉ. अनुभूति सेंडीमन	142–143
53	नारी अस्मिता और विज्ञापन	अरुण कुमार खोबरे	144–145
54	महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध एवं कानूनी प्रावधान पर महाविद्यालयीन छात्राओं का दृष्टिकोण	कु0 फरहत मंसूरी डॉ अर्चना गौर	146–149
55	महिला सुरक्षा– एक वैचारिक मंथन	निखिल माकोड़े श्रीमति कविता माकोड़े	150–151

56	भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति और डॉ आम्बेडकर	श्रीमती प्रीति	152–153
57	महिला सशक्तिकरण : कानून, शासकीय नीतियां–उद्देश्य एवं वास्तविकता	डॉ. राम कुमार मिश्रा	154–158
58	महिला सुरक्षा एवं स्वास्थ्य	श्रीमति रत्नेश दुबे डॉ. श्रीमति कामना वर्मा	159–160
59	महिला सशक्तिकरण की अवधारणा एवं संबंधित योजना	रीना मालवीय डॉ. आकाँक्षा चौधरी	161–163
60	महिला सुरक्षा एवं सामाजिक ग्रोथ	डॉ. श्रीमती शाहेदा खान	164–165
61	Violence Against Woman and Solutions with Reparation	Dr. Neelima Bagde	166–169
62	The Champion Feminist in India: Dr. B.R. Ambedkar	Dr. Nilesh Kumar Meshram	170–173
63	Role of Chemistry in Self Defenseand Safety of Women	Kuldeep Malviy	174–176
64	Women Empowerment: A Social Liability in the Writings of Shashi Tharoor	Dr. Priyanka Jharia	177–179
65	भारत में महिला सुरक्षा – एक विचारणीय संदर्भ	डॉ. दिनेश कुमार चौधरी	180–182
66	भारत में महिलाओं की सुरक्षा	डॉ. श्रीपाद आरोणकर	183–183
67	महिला सुरक्षा – एक वैचारिक चिंतन	डॉ. उषा भारती	184–185
68	मध्यप्रदेश : महिला अपराध : एक विश्लेषण	डॉ. अर्चना सुदेश मैथ्यू	186–188
69	महिला सुरक्षा एवं स्वास्थ	डॉ. नीलिमा जैन	189–189
70	महिलाओं के विरूद्ध हिंसा	डॉ. मंजु माहुरपवार	190–195

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी

डॉ. कपिल खरे
अतिथि विद्वान, राजनीति विज्ञान, शास.महा.बिछुआ (म0प्र0)

लोकतांत्रिक व्यवस्था में सभी व्यक्तियों को एक समान अधिकार प्रदान किए गए हैं। महिलाओं को सामाजिक एवं राजनैतिक रूप से मजबूत बनाने मे संवैधानिक प्रावधानों के साथ ही नारी उत्थान से संबंधित समाजवादी, उग्रवादी आंदोलनों तथा नारियों के कल्याण एवं विकास और अधिकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 73 वें संविधान संशोधन में दिए गए एक तिहाई महिला आरक्षण के कारण ही महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ होने का रास्ता साफ हुआ है।

नवीन पंचायती राज व्यवस्था जो की 73 वे संविधान संशोधन के अनुच्छेद 243 का प्रावधान है। इस पंचायती राज व्यवस्था मे पहली बार महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया। 73 वे संविधान की धारा 243 में यह प्रावधान है कि पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से चुने जाने वाले कुछ पदों में से महिलाओं के लिए एक तिहाई पद तो आरक्षित रहेंगे ही साथ ही अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग को दिए जाने वाले आरक्षण में भी महिलाओं के लिए एक तिहाई पद आरक्षित रहेंगे। पंचायतों के अध्यक्ष पद पर महिलाओं का एक तिहाई हिस्सा आरक्षित होगा। धारा 15 के अनुसार महिलाओं के लिए एक तिहाई पद आरक्षित होंगे। एक तिहाई पंच हर पंचायत में, एक तिहाई सरपंच हर पंचायत में, एक तिहाई प्रधान हर जिले में, एक तिहाई प्रमुख पूरे राज्य में महिलाएं होगी महिला वार्ड भी आरक्षित होंगे तथा महिला वार्ड से केवल महिला प्रत्याशी ही चुनाव लड़ सकेगी। धारा 15 के अनुसार ही अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के अनुपात में पंचो, सरपंचो, प्रधानों एवं प्रमुखों के पद भी आरक्षित किये जायेंगे। पिछड़ी जाति हेतु भी निश्चित प्रतिशत पद आरक्षित होंगे। इसी कारणवश धारा 26 में सरपंच हेतु हिंदी पढने व लिखने की योग्यता की अनिवार्यता अब समाप्त कर दी गई है।

महिलाओं की पारिवारिक स्थिति सामान्यतः उनके द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों और उनकी कार्य करने की क्षमता को प्रभावित करती है। जहॉ एकाकी परिवार की महिलाओं को कार्य करने की अधिक स्वतंत्रता होती है अतः इसी कारण पंचायती राज व्यवस्था में भी निर्वाचित महिला प्रतिनिधि एकाकी परिवारों से ज्यादातर संबंधित होती है। वहीं संयुक्त परिवार की महिलाएं उतनी स्वतंत्रता के साथ आगे नहीं आ पाती है, क्योंकि इन पर पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ ही दबाव भी रहता है। अधिकांशतः यह भी देखा जाता है कि पंचायती राज व्यवस्था में निर्वाचित महिलाओं के द्वारा लिए गए निर्णयों में पारिवारिक हस्तक्षेप भी रहता है, इसका प्रमुख कारण यह है कि वर्तमान समय में परिवारों के मुखिया ज्यादातर पुरूष ही है। यह देखा गया है कि मात्र 15 प्रतिशत महिलाएं स्वतंत्रापूर्वक अपने निर्णय दे पाती है।

एक ओर महिलाओं की आर्थिक स्थिति भी उनके निर्वाचन तथा निर्णयों को प्रभावित करती है इसी कारण आर्थिक रूप से सक्षम महिलाएं ही पंचायत चुनाव लड़ पाती है। साथ ही ऐसी महिलाओं के निर्वाचित होने का प्रतिशत भी काफी कम है जिनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि गैर राजनितिक है, अक्सर पंचायती चुनाव में वही महिलाएं निर्वाचित होती रही है जो राजनैतिक पृष्ठभूमि से है।

जो महिलाएं राजनैतिक पृष्ठभूमि से होने के कारण निर्वाचित होकर आती है वह भी स्वतंत्रपूर्वक निर्णय नहीं ले पाती है। पंचायती राज व्यवस्था में आज भी महिला प्रतिनिधियों के द्वारा स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाने के पीछे प्रमुख कारण उनकी अशिक्षा और बाहय समाज की सही जानकारी नहीं होना ही है।

परन्तु फिर भी निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों पर पंचायती राज अधिनियम 1992 का सकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं की राजनैतिक सहभागिता में वृद्वि हुई है तथा राजनैतिक सहभागिता के प्रति जागरूकता भी बढ़ी है। सामाजिक अंतः क्रिया के संबंध में इस अधिनियम के लागू होने के बाद महिलाओं की स्थिती बेहतर है। इस अधिनियम ने महिलाओं को आर्थिक निर्णयों में भी सहभागी बनाया है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि तो हुई है, परन्तु शिक्षित महिलाएं ही अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। अभी भी पुरूषों की तुलना में महिलाओं की संख्या कम है, जो निर्वाचित होकर पंचायती राज व्यवस्था का संचालन करती है। महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई है लेकिन उपयुक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि 73 वे संविधान संशोधन ने महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण प्रदान कर सामाजिक क्रांति का उदय किया है, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए भविष्य में महत्वपूर्ण संशोधन की आवश्यकता होगी।

पर्यावरण संबंधी मुद्दे और सतत् विकास





डॉ० कौशलेन्द्र दीक्षित

Importance of Fairs in Tribal Life
A Case Study of Shankarvan Fair
Bichhua, Chhindwara District

Dr. Rajendra Prasad Yadav
Professor of Geography
Govt. College, Bichhua Chhindwara, M.P.

&

Dr. Gajendra Kumar Namdeo
Guest Lecturer in Geography
Govt. Auto. P.G. College, Chhindwara, M.P.

Abstract

Fairs are a vital part of tribal people. Shankarvan fair is convening in Bichhua block of Chhindwara district. In this paper an attempt has been made to point out the importance of fairs in tribal people. The main focus of study is on socio-economic, cultural, environmental health and sanitation aspects.

Introduction

Fair are the places were tribal people gathered in large number for as a mobile market centres in tribal areas. Fairs centre are infect the meeting place of economic – social and cultural point of view for tribal. They reflect the tangible part of cultural compulsion on the common people of local society.

Many factors are conductive to fairs traditionally hold in reputed places and market villages. Fundamental of all however is that, the location such fairs must be unique and religiously importance with a convincing historical record. All the religious beliefs attached to such places, induces the general mass to visit the fair. Religious belief commonly assigned to annual fairs because it could bind the population in one thread and compile them moral to participate on the annual fairs by attending necessary rituals for all the people, which take place festive occasions of the Maker sankranti, Shivratri, Basant panchmi and Ramnavami festival.

Study Region

Shanarvan is located in Bichhua block of Chhindwara district. It is situated in the way of Bichhua- Khamarpani road and 8 km. away from Bichhua block headquarter. Bichhua is a major tribal Zone of the district. It spread over 543 square kilometre. Total population of

Bichhua is 87,691 person (2011). The tribal population of the block is 48,923 person, which is 55.79 percent of total population. Gond, Pardhan and Mawasi are the major tribes.

Shankarvan is dense mixed forest area and specially known for Teak and Mahua trees. A temple of Lord Shankar is situated in the bank of nallha (Stopdem). Natural view of this place attract to everyone to come. The fair of Shankarvan begins before two days of Makar Shankranti and up to after two days. Tribal and other people of Bichhua and adjoining places of Shankarvan, comes to attend the fair in a large number.

Methodology

The Administrative data is collected from Statistical Hand Book of Chhindwara District, Socio- economic, cultural, health and sanitation study is based on secondary data collected by author himself with the help of pre-prepared questionire–Scheduled, keen observation is also an attempt to help in this study.

Socio-cultural aspect

The fair are vital social contact points for the tribal people. The fair are a part and parcel of tribal people's life. These are a place where youngster meet and choose their life partner. They improve their older relations and find connection for new. Changing of their life style with the connection of modern life effecting their older cultural values. But we can say it is a transitional period for them some where they don't want to left their older values, which are deep rooted with their character i.e. tattoing and wearing traditional ornaments.

Economic aspect

The fairs are a part and parcel of every tribal people life, purchasing goods, entertainment contact with outside world to collect information about others. Fairs are good centre selling their forest products. A part from that the forest markets also contains agricultural products, clothing, ornaments, bangles, cosmetics, pottery goods and implements for fishing nets and many other items of manufactured products of their use. The price difference of various commodities, including the forest products between any two markets is not too much. This indicator is a high rate of flow of information from market to market. The development of means of communication helps the sellers and consumers to visit the fairs from for and flung village and towns.

Streams of the peoples both sellers and buyers are seen making this way towards the village with cart, head, bicycle. motorcycles, matadors and minibuses. There for many blocks to the fair on a small pretext, they assemble at the main street. The resourceful traders erect tent

shop and arranging window display, while the others simply spread out garments are matting on the ground and lays their wares on it.

Recent development also affects the life style of the tribal of the region. Now the women are the buying cosmetics of modern style and garments too while men are electric and electronic goods, mobiles, chasmas, jeans and filmi posters. Other requirements i. e. good grains, tobacco, spices, oil and ornaments. Tribal people growing contact with the outside world has created him a new outlook and new wants. They tries to initiate the civilised often they charmed by the glittering articles of modern taste like glass, bangles, mirrors, combs, mettles utensils, lamp, boxes etc. As a result their buying activities have increased in recent times.

Environment, Health and Sanitation

Fairs are places where diseases available free of cost. Shankarvan fair place is situated in bank of a nallah where water blocked as a stop dam. It is also point out that only a single hand pump is available for drinking water, which is able to serve small group of people. Stop dam water used by large for drinking, bathing and for privy. Shopkeeper takes it for preparing food items and drinking. It is a place where diseases spread easily. Sanitation of the whole place is not so good.

Lower buying capacity of tribal people not allowed buying a quality food. They preferred quantity not quality. Cheaper food not prepared by good quality oil and quality material. Uncovered dusty food stuffs polluted by flees easy source of spreading diseases.

Suggestion

Tribal people have specific problems. Some of them are inbuilt and others are imposed upon them, which works as barrier for their overall development and progress inclusive of their health. Therefore specific community, that is serves to their specific needs and problems by bringing their personal environment. Fairs are better places where they reach in large quantity.

To improve education level, especially women education, scheme should be made.

Mobile health services (government) should be provided in each tribal fair to benefice more tribal people.

- To aware about the diseases i.e. AIDS, Malaria, Tuberculosis, Leprosy, Cancer by bed habit of chewing tobacco and gutkha, audio- visual programme should be displayed.
- To aware about the personal sanitation and hygiene programme on their own language which are effective.

- Drinking water should be facilitating by government water tankers and other available sources. For the proper sanitation temporary toilet should be made by the help of government.

Acknowledgement

Author is thankful to District Statistical Office of Chhindwara District to providing secondary data and other related information. Thanks are also due to kind co-operation during interview to the tribal people. Special thanks to Prof. R.P. Yadav (Dept. of Geography) Govt. College, Bichhua for valuable guidance.

References

Bhargava, A. (2005): "Evaluation, Development and Management of Water Resources in the Betul Chhindwara Plateau, M.P." Unpublished Ph.D. Thesis. Dr. H.S.Gour. Univ. Sagar.

Census of India (2011) Madhya Pradesh, series 24, part XII B. District Census Hand Book Chhindwara.

Choubey, K. (1991): "Life Style and Avenues Among Tribal Population of Bastar," Bulletin of Tribal Research institute, Voll. XXVII, No. 2, Bhopal.

Gour, A.S. (2001): "Indigenous Health Care Delivery Among Tribals of Betul-Chhindwara Plateau." Unpublished Ph.D. Thesis. Dr. H.S.Gour. Univ. Sagar.

Yadav, R.P. (2004): "Spatio-Temporal Study of Agricultural Land use and Nutrition in Chhindwara District M.P. an unpublished Ph.D. thesis, A.P.S. University, Rewa, M.P.

Remote sensing & GIS for Tribal Development

Dr. R P Tiwari
Govt. P.G. College Tikamgarh

Dr. Rajendra Prasad Yadav
Professor of Geography
Govt. College, Bichhua Chhindwara, M.P.

Abstract

This paper starts with a brief historic overview of remote sensing and Remote sensed imagery is integrated within a GIS. Remote sensing is defined as the technique of obtaining information about objects through the analysis of data collected by special instruments that are not in physical contact with the objects of investigation. As such, remote sensing can be regarded as "reconnaissance from a distance," "tele detection," or a form of the common adage "look but don't touch." Remote sensing thus differs from in situ sensing, where the instruments are immersed in, or physically touch, the objects of measurement. A common example of an in situ instrument is the soil thermometer. Geographic information system (GIS) is a computer-based tool for mapping and analyzing feature events on earth. GIS technology integrates common database operations, such as query and statistical analysis, with maps. The tribal communities live in about 15 per cent of the country's area, in varying ecological and geo-climatic conditions, plains, forests, hills and inaccessible areas. Tribal groups are at different stages of social, economic and educational development. A geographic information system (GIS) is a technological tool for comprehending geography and making intelligent decisions. GIS manages location-based information and provides tools for display and analysis of various statisticsfor Tribal Development including population characteristics, economic development opportunities

Introduction

Tribal development aims at maintaining the balance between often conflicting ideals of economic growth and nurturing environmental quality and viability. Remote sensing provides a good data base for generating baseline information on natural resources, a pre-requisite for planning monitoring and Employment, of any developmental programme. "Remote Sensing is defined as the science and technology by which *characteristics* of objects of interest can be identified without direct contact"

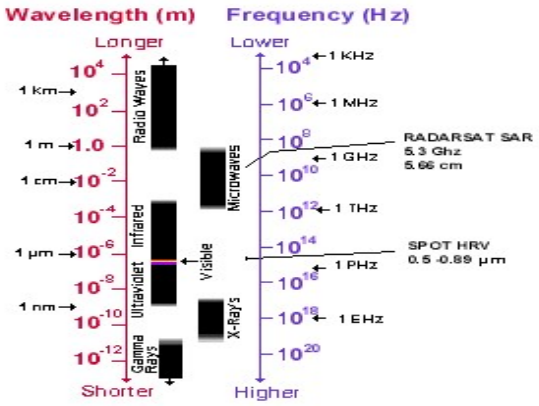
The energy collected and measured in remote sensing has been electromagnetic radiation, including visible light and invisible thermal infrared (heat) energy, which is reflected or emitted in varying degrees by all natural and synthetic objects. The scope of remote sensing has been recently

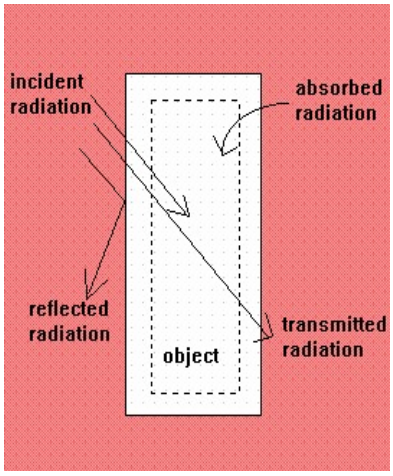
broadened to include acoustical or sound energy, which is propagated under water. With the inclusion of these two different forms of energy, the human eye and ear are examples of remote sensing data collection devices. Remote Sensing is a technology to observe objects' size, shape and character without direct contact with them. The reflected or radiated electromagnetic (EM) waves are received by sensors aboard platform. The characteristics of reflected or radiated EM waves depend on the type or condition of the objects. By understanding characteristics of EM response and comparing observed information, we can know the size, shape and character of the objects.

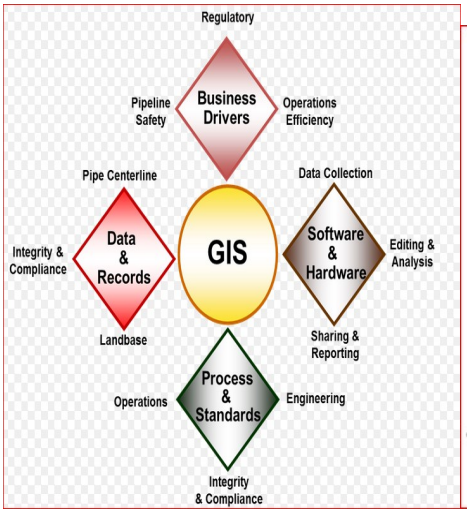
Sensors:

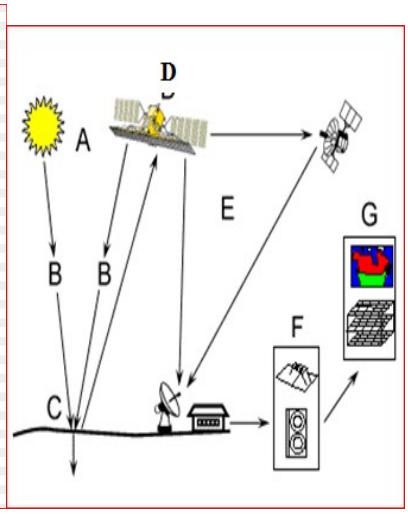
Sensors are Optical, Visible (*Reflectance),* **Near Infrared (***Reflectance),* **Thermal Infrared** *Thermal Radiation* **Microwave, Passive** (Scatterometer) *Microwave Radiation:* **Active** (**SAR**, Altimeter) *Backscatter* **Laser: Active** *Intensity, Time*

Every material on earth shows its own strength of reflection in each wavelength when it is exposed to the EM waves Sensors aboard a platform are capable to acquire the Strength of reflection and radiation in each Wavelength.Strength of reflection and radiation of EM waves from plants, earth and water in each wavelength.









Energy Source (A) - The first requirement for remote sensing is to have an energy source (Sun) which illuminates or provides electromagnetic energy to the target of interest.

Radiation and the Atmosphere (B) - As the energy travels from its source to the target, it will come in contact with and interact with the atmosphere it passes through. This interaction may take place a second time as the energy travels from the target to the sensor.

Interaction with the Target (C) - Once the energy makes its way to the target through the atmosphere, it interacts with the target depending on the properties of both the target and the radiation.

Recording of Energy by the Sensor (D) - after the energy has been scattered by, or emitted from the target, we require a sensor (remote -not in contact with the target) to collect and record the electromagnetic radiation.

Transmission, Reception, and Processing (E) - the energy recorded by the sensor has to be transmitted, often in electronic form, to a receiving and processing station where the data are processed into an image (hardcopy and/or digital).

Interpretation and Analysis (F) - the processed image is interpreted, visually and/or digitally or electronically, to extract information about the target which was illuminated.

Application (G) - the final element of the remote sensing process is achieved when we apply the information that we have been able to extract from the imagery about the target, in order to better understand it, reveal some new information, or assist in solving a particular problem.

Transfer of Electromagnetic Energy by Conduction, Convection& Radiation: Transmission of electromagnetic energy through a medium or vacuum.

Energy Sources are:

• Visible Light is only one form of electromagnetic energy.

• Radio waves, heat, ultra-violet rays and X-rays are other familiar forms.

• All of this energy is inherently similar, and radiates in accordance with basic wave theory.

The light which our eyes - our "remote sensors" – can detect is part of the visible spectrum.

It is important to recognize how small the visible portion is relative to the rest of the spectrum.

There is a lot of radiation around us which is invisible to our eyes, but can be detected by other remote sensing Instruments and used to our advantage.

Advantages of Satellite Observation

• Enables to observe a broad area at a time

• Enables to observe the area for a long period

- Repeat pass observation (Time series data, Change detection)

• Enables to know the condition without visiting the area

• Enables to know invisible information

- Sensors for various electromagnetic spectrum (Infrared, microwave)

Remote Sensing Applications:

Remote sensing imagery has many applications in mapping land-use and cover, agriculture, soils mapping, forestry, city planning, archaeological investigations, military observation, and geomorphologic surveying, land cover changes, deforestation, vegetation dynamics, water quality dynamics, urban growth, etc. Remote sensing is a method to observe the earth surface or the atmosphere from out of space using satellites (space borne) or from the air using aircrafts (airborne). Remote sensing uses a part or several parts of the electromagnetic spectrum. It records the electromagnetic energy reflected or emitted by the earth's surface. The amount of radiation from an object (called radiance) is influenced by both the properties of the object and the radiation hitting the object. The human eyes register the solar light reflected by these objects and our brains interpret the colors, the grey tones and intensity variations. In remote sensing various kinds of tools and devices are used to make electromagnetic radiation outside this range from 425 to 750 nm visible to the human eye, especially the near infrared, middle-infrared, thermal-infrared and microwaves. Likewise other scientific technology, A Geographical Information System (GIS) is a system of hardware, software and procedures to facilitate the management, manipulation, analysis, modeling, representation and display of geo-referenced data to solve complex problems regarding planning and management of Sustainable development, water resources, crops development, and disaster management.Geographic Information System (GIS) offers the capability of integrating suchspatial and attribute data and subsequent generation of developmental plan for Tribal development such as tribal society and culture, ethos, demography, levels of development and contemporary socio-economic issues.GIS organizes geographic data so that a person reading a map can select data necessary for aspecific project or task. A thematic map has a table of contents that allows the reader to add layersof information to a basemap of real-world locations. A good GIS program is able to process geographic data from a variety of sources and integrateit into a map project. Many countries have an abundance of geographic data for analysis, and Government often make GIS datasets publicly available.The data is broughtback to the GIS crew that prepares the maps and reports for management review. The applications of GIS include mapping locations, quantities and densities, finding distances and mapping and monitoring change. Remote sensing is the art and science of making measurements of the earth using sensors on airplanes or

satellites.These sensors collect data in the form of images and provide specialized capabilities for manipulating, analyzing, and visualizing those images.GIS allows you to link databases and maps to create dynamic displays. Additionally, it provides tools to visualize, query, and overlay those databases in ways not possible with traditional spreadsheets. These abilities distinguish GIS from other information systems, and make it valuable to a wide range of public and private enterprises for explaining events, predicting outcomes, and planning strategies. In emerging technology paradigm, "Geographical Information System (GIS)" has emerged as powerful tool which has potential to organize complex spatial environment with tabular relationships. By virtue of providing synoptic view of a fairly large area at a regularinterval, spaceborne multispectral data have been used at operational level forgenerating base line information on mineral resources, soils, ground water andsurface water, land use/land cover, forests, etc. at scales ranging from regional for Tribal Development

There is a major information gap in the mapping of land and tidal boundary, qualitative estimation of suspended sediment concentration, chlorophyll mapping, bathymetry of shallow waters, etc. can be collected and all these data will help in effective ecology management in Tribal Area community.

Conclusion

To complete the remote sensing process, the data captured and recorded by remote sensing systems must be analyzed by interpretive and measurement techniques in order to provide useful information about the subjects of investigation. These techniques are diverse, ranging from traditional methods of visual interpretation to methods using sophisticated computer processing. It cannot be emphasized too strongly that data is not information. Accordingly, the two major components of remote sensing are data capture and data analysis while Functions of GIS include data entry, data display, data management, Information retrieval analysis and broad-scale investigation of Land, water undeveloped areas Based on remote sensing a variety of data pertaining to the like, identification of Forest, Lands, plant community, biomass estimation, water resources Population growth extremely in the field of Geography for Tribal area Development. GIS offersan ideal environment for integration of spatial and attribute data on naturalresourcesand economic needs of the people in tribal areas.

Ethno-Medicinal Practices in Chhindwara District
A Study in Geography of Health Care

Dr. Gajendra Kumar Namdeo
Guest Lecturer in Geography
Govt. Auto. P.G. College, Chhindwara, M.P.
&
Dr. Rajendra Prasad Yadav
Professor of Geography
Govt. College, Bichhua Chhindwara, M..P

Abstract

Health care is one of the major component and basic aspect of human needs. It can be defined as the active process by which an individual achieves physical and mental well being.

Treatment with medicinal plants is an important aspect in India. It is as old as human civilization from the remote past and progressed from generation to generation. Diversity in medicinal plants vary area to area, it also depends on the climatic regions. Chhindwara district is one of the big treasures of medicinal plants. It is a well known part of Satpura range. In present study, an attempt has been made to explore the various aspects of traditional herbal medicine and treatment, to cure the diseases in tribal areas of the Chhinndwara district in Madhya Pradesh

Key words - Traditional Health Care, Medicinal Plants, Diversity.

Introduction

Treatment with medicinal plants is an important aspect in India. It is as old as human civilization from the remote past and progressed from generation to generation. Diversity in medicinal plants vary area to area, it also depends on the climatic regions. Health care is one of the major component and basic aspect of human needs. It can be defined as the active process by which an individual achieves physical and mental well being.

Medicinal system is one of the central aspects of any culture. The field of art and science of medicine is a culture an island of cognition, affect social structure and institutions, confined language; it has boundaries that include members and exclude others. As an information system, the field of medicine is a relatively closed system of knowledge; it has many vested interests in remaining that way. The traditional, indigenous or non-western forms of treatment with medicinal plants are still practiced in many parts of the

world.

According to a WHO definition "Health is a state of complete physical, mental and social well-being, and not merely the absence of disease or infirmity." "Health" in the broad sense is "quality of life" rather than only the absence of disease, it is a universal goal even if cultural variations encrust in the way it is defined and achieved.

The health situation is often reduced the extent of registered disease and available health resource. In the living context, the surrounding systems– the environment and structures and services are important. Under the environment, the following cluster of inter–related concerns have a direct bearing on level of living: physical environment, population, sanitation and shelter and social environment structures.

'Traditional Medicine' or 'Traditional System of Health care', refers to the long standing indigenous system of health care found in developing countries and among indigenous populations. These traditional medical systems view humanity as being intimately linked with the wider dimension of nature. Resource endowment of the 'environment' affects the health status of the community.

Tribal people, who are self reliant and self-sufficient, have over the centuries, developed their own medicine system based on herbs and other items collected from the nature and processed locally. They have also their own system of diagnosis and cure of diseases. They believe in taboos, spiritual powers and faith healing. There are wide variations among tribals in their health status and willingness to access and utilize health services, depending on their culture, level of contact with other cultures and degree of adaptability.

Study Area

Chhindwara district, located on a section of the Satpura Plateau extends between parallels of latitudes 21° 27' 30'' and 22° 47' 45'' North and the meridians 78° 20' 10'' and 79° 24' 34''East. The district occupies 1st rank in the state in terms of area having 1 1,815 square kilometres which is 3.8 percent of the total area of state. The district comprises of 12 tahsils, viz, Tamia, Amarwara, Harrai, Chaurai, Jamai, Parasia, Umr eth, Chhindwara, Mohkhed, Sausar, Bichhua and Pandhurna.

Chhindwara district has 36.82 per cent tribal population to total population of district which is 20,90,922 person (census 2011). Tamia tehsil carried highest per cent of tribal population which is 78.32 followed by Harrai 76.37 and Bichhua 55.79 per cent. Number of females per 1000 male of tribal population is 995 where the district sex ratio is 964. Literacy rate of the study area is 71.16 per cent but the tribals are poor in this

reference in the region which is not more than 56.18 per cent.

Gond, Bharia, Pardhan, Mawasi are the predominant tribes. The forest of Satpura ra nge is well known for its plant biodiversity, specially Tamia, Patalkot, Sillewani valley, Bic hhua block, Parasia block and Harrai block. These tribal communities are inhabitant of dens e undulating forest and dependent on forest for their each and every need of life and health care.

Objectives

The main aim of the present study is to find out the diversity of medicinal plants and various prevalent treatment practices of herbal care for different health disorders.

Methodology

The tribal communities have their own specific traditional system of health care. It is found that traditional health care practitioners hold an important status in all tribal communities. These medicine men are the chief healthcare provider in tribal areas. They often use these medicinal plants for treatment practices

In the present study, participant method of observation, simultaneously group discussion and interview methods have been adopted to collect various informations regarding tribal health, available medicinal plants (jari- booti) and their uses in health care, in tribal communities of the study area.

Traditional Herbal Treatment of Diseases in the Study Area

1. **Local name-** Khareti

   Botanical name- *Sida cordifolia*

   Part used- leaves, roots seeds

   Place of observation- Tamia, Jamai Bichhua and Parasia.

The rejuvenating action of this herb extends to the nervous, circulatory and urinary system. It has a diuretic effect and is useful in urinary problems, including cystis. Being cooling and astringent, it is used in inflammations and bleeding disorders also. It is also used in asthma and liver problems. Due to its ephedrine content, it possesses psycho-stimulant properties affecting the central nervous system.

2. **Local name-** Giloe, Gulbel

   Botanical name- *Tinospora cordifolia*

   Part used- leaves, roots seeds

   Place of observation- Tamia, Patalkot.

The stem of Giloe is one of the constituents of several ayurvedic preparations used in general debility, fever and urinary disease. The stem is bitter, diuretic, burning sensation,

vomiting enriches the blood and cures jaundice.

3. **Local name-** Latjira/ Apamarga

   Botanical name- *Achyranthes aspera*

   Part used- leaves, roots seeds

   Place of observation- As a weed on wasteland.

The juice is applied to relieve toothache. The ash of the burnt plant often mixed with mustard oil and a pinch of salt is used as a tooth powder for cleaning teeth. It is believed to relieve pyorrhea. Roots of the plants used to reduce labor pain during child birth. It is also useful in Stone problem.

4. **Local name-** Kimach, kauch

   Botanical name- *Mucuna prurita*

   Part used- seeds

   Place of observation- Tamia, Jamai Bichhua and Parasia.

It is used in fertility and sexual enhancement. Also used in urinary tract, neurological and menstruation disorders, constipation fevers, tuberculosis, ulcer, Parkinson's disease. It is commonly used in arthritis.

5. **Local name-** Baochi

   Botanical name- *Psoralea croylifolia*

   Part used- Fruit, root.

   Place of observation- As a weed on wasteland.

It is used externally to treat various skin ailments including leprosy, leucoderma and hair loss. The root is used for treating dental caries.

6. **Local name-** Bramhi

   Botanical name- *Centella asiatica*

   Part used- Leaves

   Place of observation-Tamia and Bichhua.

It is used to vitalize the brain and nervous system, increase attention span and concentration and combat aging. A poultice of the leaves is also used to treat open sores.

7. **Local name-** Gurmar

   Botanical name- *Gymnema sylvestre*

   Part used- Leaves, roots.

   Place of observation-Tamia and bichhua.

It is useful in Rheumatism. Leaves are mostly used in Diabetes. Also used in liver problem and dysentery.

8. Local name- Kalmegh

Botanical name- *Andrographis peniculata*

Part used- Stem, leaves

Place of observation- Sillewani valley.

Kadha made by leaves of kalmegh is given to cure chikangunia and malaria. It is also useful in skin disease, anemia and liver disease.

9. Local name- Safed musli

Botanical name- *Chlorophytum borivilianum*

Part used- Stem

Place of observation- Patalkot

The tuberous root is used singly or with combination of other herbs to cure physical weakness.

10. Local name- Tulasi

Botanical name- *Ocimum sanctum*

Part used- leaves, roots, seeds

Place of observation- House garden plant

Aqueous decoctions of Tulasi leaves is given to patients suffering from gastric and hepatic disorders and have been recommended for the treatment of bronchitis, bronchial asthma, malaria, diarrhea, dysentery, skin disease, arthritis, painful asthma and as blood purifier, healing remedies and cosmetics.

11. Local name- Kalihari

Botanical name- *Glorisa superba*

Part used- Roots

Place of observation- Patalkot, Tamia, Harrai, Bichhua

Used in case of uterus problems among women at late ages. It can be also used in worms, leprosy and piles problem.

12. Local name- Satavar

Botanical name- *Asparagus racemosa*

Part used- Roots

Place of observation- Patalkot, Tamia, Harrai, Bichhua

The root is an alternative tonic Anemia and apatite. It is said to be good for mental tension sex tonic and leucorrhoea.

13. Local name- Gwarpatha

Botanical name- *Aloe barbadensis*

Part used-Leaves

Place of observation- House garden plant.

It can be used in cough and cold condition. Internally used as a remedy for piles and constipation. Mostly used for prevent skin disease. The leaves are used for treating dental caries and burning sensation.

14. Local name- Arandi

Botanical name- *Ricinus communis*

Part used- Seeds oil

Place of observation- River margins or cultivated.

Oil of arandi seed is used as a purgative. It is also good for hairs and jaundice.

15. Local name- Marorphali

Botanical name- *Helicteres isora*

Part used- Fruit seed, bark, root

Place of observation- Sillewani, Tamia.

It is mostly useful in dysentery and bronchitis. It is also used in diabetic problem.

Result and Discussion

The general concept about treatment and medicine has been developed with the acceptance of the members of the society. This way, it becomes the local medical system. A great part of the task of traditional medicine is born by cultural practices. Though it is oriented to different social purposes and has important functional implications for health.

In the present paper, various traditional methods of treatment with medicinal plants for different health ailment are discussed. It is found that the use of medicinal plants for health care in the study area is a general practice, which is based on experiences and traditional knowledge of the medicine man or tribal people. People of the study area have fully faith on it. In the light of this fact, it is necessary to have scientific evaluation of effectiveness of these traditional herbal treatments and if found effective then the treatment should be encouraged, this would be helpful to fill the gap of non-availability of government health care facilities in the tribal areas of the study unit.

Acknowledgement

Authors are very much thankful to tribal and local healers of the region for providing valuable informations.

References

Census of India (2011) Madhya Pradesh, series 24, part XII B. District Census Hand Book Chhindwara.

Choubey, K., (2000): "Environmental and Health Status of Primitive Baiga Tribes of Baigachak Area, M.P." Tribal Health Bulletin, Jabalpur, M.P.

Gour, A.S.,(2001): "Indigenous Health Care Delivery Among Tribals of Betul-Chhindwara Plateau, M.P., an unpublished thesis, Dr. H.S.Gour Univ. Sagar, M.P.

Jain, S.K.,(Ed.)(1981): "Glimpses of Indian Ethnobotany," Oxford & IBH Publishing Co. New Delhi.

Namdeo, G.K.,(2003): "Indigenous Health Care Delivery Among Tribals of Upper Narmada Basin, an unpublished Ph.D. thesis, Dr. H.S. Gour univ. Sagar, M.P.

Yadav, R.P.,(2004): "Spatio-Temporal Study of Agricultural Land use and Nutrition in Chhindwara District M.P. an unpublished Ph.D. thesis, A.P.S. University, Rewa, M.P.

"IMPACT OF IRRIGATION ON THE AGRICULTURE IN THE COMMAND AREA OF BOR RESERVORE IN WARDHA DISTRICT"

Dr. R P Tiwari
Govt. P.G. College Tikamgarh

Dr.R.P.Yadav,
Professor of Geography,
Govt .College.Bichhua,
District Chhindawa MP
Nagpur

Dr.Deepti S. Pinjare
Prof. & Head,Depot. Of Geography
Vasantrao Naik Government Institute
of Arts and Social Sciences,

Introduction

It is a common consideration that irrigation from reservoirs or lakes increases the agricultural productivity, but sometimes the outcomes are adverse in comparison of our assumptions. With this view keeping in the mind "Impact of Irrigation of Agriculture in the Command Area of Bor Reservoir in Wardha District" is selected. What is the level of development in agriculture in the command area? Or what are the impacts of irrigation on the crop productivity, cropping pattern in the command area? Such kind of questions is the are matter of interest at the background of designating this title.

Aims and Objectives :-

To study the impact of irrigation on the agriculture of the command area of Bor reservoir is the main objective of the present study. It is an effort to present a micro level analysis of the irrigational facilities and its impact on agriculture developing at the regional and national level in the country. The following aims and objectives are considered as the major aspects to study the *"**Impact of irrigation on the Agriculture in the command Area of Bor reservoir in Wardha District"***

1) To study the impact of irrigation on the agriculture in command area of Bor reservoir.
2) To study the intensity of agriculture in the study area.
3) To study the capability and suitability of land in the study area.
4) To study the productivity of agriculture in the study region.
5) To study the cropping pattern of study region.
6) To study the problems and prospects in agriculture of study region.
7) To assess the development of agriculture in the reservoir' study region and farmer's problems related to irrigation.

Hypothesis:-

"Irrigation facility is an advantage for farmers in the command area of Bor reservoir in respect to increase crop productivity. Moreover, farmers are eager to have cash crop than cereals.

This typotheise has been tested in this study.

Many studies are held in this context in India and other counties. In 1998 Datta and Devi have studied the "Changing patterns of land use in the Bino basin U.P Himalaya". In 1992 sulbha Khanna has tried to suggest that while converting the agriculture form traditional to commercial, agriculturalists should work for sustainable agricultural development. S.K. Sharma and thakur Singh studied the "New Techniques of Measuring the Degree of Commercialization Farming an Example of Madhya Pradesh". This published in the journal of Transaction in 2008.

S.Raju siddi, Shrinnivasulu and River' Kesava have studied the "Climatic Water Balance and Agriculture of Pulang River's Basin. It was published in National Geographer journal in 1994. (S.Raju siddi 1994) Madhurama ch. And M.S Rao have studied the cropping pattern of Nellore district of Andhra Pradesh with the special context of water balance in 1993. (Madhurama 1993) V.P. Sati and M.S.S. Rawat have studied the" Problems of Agricultural Ecology and their Management in the pinder Basin" in 1993 and published in the journal of National Geographer.

In 2004 K.R. Suresh and P.P. Mujumdar studied fuzzy risk approach for performance evaluation of an irrigation reservoir system. In 2006 Mr. Borse R.J. and Patil Y.V. have studied Hydeo-geomorphic features in Jalgaon district. In 2007 Mahdi moraji Jalal and his co-researchers have studied Reservoir operation in assigning optimal multi-crop irrigation areas. In 2008 V.M Choudhary studied assessed the surface and sub-surface waterlogged areas in irrigation command areas of Bihar state.

Again in 2008 A.Gaur, T.W. Biggs,. M.K.Gumma; G. Parthasaradhi; And H. Turral have studied Water Scarcity Effects on Equitable Water Distribution and Land Use in a Major Irrigation Project-Case study in India.

In 2008 Dr.Pradipkumar Singh studied "siltation in loktak lake : A geographic study". In 2009 Aliasghar Montazar H. Riazi & S. M. Behbahani have studied Conjunctive Water use Planning in an Irrigation of Command area. During 2012 Kularatne, Mohattala, Gedrara studied Faxtors Affection Technical Efficiency of Rice Farmers in Village Reservoir Irrigation Systems of Sri.Lanka. in 2014 Charlotte fraiture, Gael N. Danga Kouali, Hilmy sally Priva Kabre Have held a study that is "Pirates on pioneers? In 2015 Ajay Bhave, Neha

Mittal Ashok Mishra and Narendra singh have studied Integrated Assessment of no-Regrct Climate Change Adaptation Options for Reservoir Catchment and command Areas.

The methodology undertaken for the present study consists of the following stapes.

1. **Pre-field Study :-** In the pre-field study includes study of references from the libraries related to the topic of this research. Preparation of base maps from the topographical sheets, satellite data and maps from MRSAC, collection of secondary data formulation of hypothesis for the study and preparation of questionnaire is done during this period.
2. **Field method:-** in this stage the collection of primary data with the help of questionnaire based interviews. Field observation. Testing of hypothesis interviews of the irrigation department's officials.
3. **Post-Field method-** On this **s**tage compilation of the primary and secondary data is done and with help of this data preparation of maps. Graphs and figure are done on the basis of statistical calculation and GIS techniques. Interpretation of each graph figure and map done entire research work is compiled at last.

Geographical Background

The Bor reservoir and its command area lie under the **Seloo and Samudrapur tehsil** of Wardha district. The Wardha district is one of the eastern most district of Maharashtra in India. Wardha district comes under the Nagpur administrative division. The Geographical extension of Seloo tahsil is $20^0$40' 00"N to $21^0$0 '30"N and $78^0$40 '30"E. to $78^0$58'20"E. Total area of Bor reservoir's command area. Is, 32584 hectares (325.84 sq.km) which accounts 3.81% of Wardha districts total area.

Bor reservoir's (Yashwant dam) command area is located in the Wardha district of Maharashtra (eastern Vidarbh) in seloo and samudrapur taluka. Wardha district. Is also called as the Gandhi city because of the existence of 'Punnya Dham sewagram Aashram' established by mahatma Gandhi in 1936A.D. Bor reservoir is situated in the bor wildlife sanctuary which is also declared as the 47^{th} tiger reserve in India by the forest is the tropical deciduous forest that covers the Bor reservoir and its command area from noth and north eastern firections. Geographically the Bor reservoir's command area is located at the southern parts of the Satpura ranges near Bori (kokate) village. The Bor river originates from the height of the 1600 feet from the sea level at "Tanda Labani" place in Nagpur district of Maharashtra state. The command area of Bor reservoir is entirely located in the basin of the Bor River. Bor River is Getting this name from the village located near the basin of the Bor River. Bor River is getting this name from the village located near the dam called 'Bori' the vena River is another river draining the southern tip of the command area. The Vena, The

Dham and Bor these three rivers confluences near the southern tip of command area at 'khuni' village.

According to the 2011 census total population of this command area is more 63000 which is 4.83% of population of Wardha district and 53.97% (1,16727) of Seloo taluka. The population of Wardha district is 13,00,774.

Bor reservoir's command area is divided into seven regions for the better understanding of agricultural regionalization and to study the impact of irrigation on the agricultural of command area. Hence the seven regions were divided on the basis of increasing distance of the canals and command area form the reservoir. The straight distance of command area from the doors of the dam up to the confluence of the dham & the Vena rivers near Khuni village is of 72.5 km. there are 77 villages in the command area of Bor reservoir. thus 5 to 16 villages are groped into 7 region. Each region of the command area is equidistant including 7 km. in each. So the regions are divided as follows and names are given on the basis of canals in each region.

Study of Agricultural Patterns in the Command Area of Bor Reservoir

With the help of maps crop ranking it can be easily observed that the changes are taking place in the location of first to fifth ranking crops during the study period (1999-2018). During the study period it is found that the legumes crops were the domination first ranking crops. In Second raking crops cereal crops are domination in all the regions. In the third ranking crops again the cereal crops are leading followed by fiber crop. Under the forth ranking crops the oilseeds are occupying the positions fifth ranking crops are fruits and vegetable. it is a general observation that all ranking crops are majorly located in the northern central and southern parts of the command area. That means BMC (Bor main canal) NAPI (Nandpur, Ashta and Pipra canal 1), NAP2 (Nandpur, Astha and pipra canal 2) and AST (Ashta Canal) regions of the region.

There is no temporal changes in the concentration of cotton in the command area moreover, during 2018. BMC and NAP2 are the regions of concentration, NAP1, NAP2 and GKP regions are showing concentration of wheat crop. NAP2 region has concentration of tree throughout the years (1999 to2018) NAP1 and GKP (Gaimukh, kezar, pipra canal) are the regions of concentration of gram crop and the temportal change is insignificant in this period. There is tempotal change in the concentration of soybean in the command area but the variation is feeble. Concentration of Jowar is in KC (kinhi & Cotamba chnals) and GKP in last 20 years (199-2018). Masala crops are concentrated in southern part of the command area

AST region (Astha Canal region). There is a shift in the concentration of groundnut in command area. From NAP1 to NAP2, BMC and again NAP1 in 2017-2018 there is no temprotal change in the concentration of fruits and vegetable in last twenty years. GKP and NAP1 are leading producers of fruits and vegetables.

In the study of crop combination it is found during 1990-2000 AST region is having VIII crops combination of crops was II which was located in the GKP region. During 2004-2005 VIII crops combination is shifted to the NAP3 (Nandpur, Ashta and Pipra canl I) region and II crops (Tur, Cotton) combination is also shifted towards the reservoir's direction in the BMC region that means reservoir's closest parts.

In the year 2009-2010 sudden change in the location of II crops combination can be seen that it is shifted towards the south of the command area in the NAP3 region and VIII crops combination is located in NAP2 region. During 2017-2018 VIII crops combination is shifted to the NAP I region and there is an absence of II crops combination and in place of that III crops combination is the lowest combination which is is located BMC region.

In the study of crops are centered around the northern and southern regions of the command area that means in MBC,KC,NAP3 and AST regions and though there are some changes in the regions of high diversification of crops, these changes are insignificant during the entire study period. The low magnitude of crops diversification is located in GKP in 1999-2000 and in 2004-2005 it is shifted to NAP2 and NAP3 regions.

Agricultural Production in Command Area of Bor Reservoir and is Correlation with Irrigation

In the chapter number four of this project the special attention is given to the production and it's correlation with irrigation. Before going to study the correlation, the study of soil is done in the command area. In the study it is found that from clayey to clay loam, silty clay, gravelly clay loam, gravelly sandy loam, and gravelly sandy clay loam these soil types are present in the study region, Out of these soil types, the percentages of clayey soil is highest which occupies around 78 percentages of the command area.

The study of soil capability is done with the help of production level and capability classes are identified on the basis of All India Soil and land use Survey organization (1970) In the command area I,III,IV,VIII these capability classes are found. The BMC,KC, and AST regions are coming under the very good cultivable land class (I) Study of slope analysis suggests that 17 percent of the area is inder the 0-1 percent of the slope category. Around 1.11 percent of the land is under the 15-35 percent of slope category.

In the study of suitability of land it is it is found that high percentages of area is suitable of cotton, tur, soybean and gram. In the study of correlation between Production and irrigation that is done with the help of scatter diagram and Pearson's method of correlation coefficient. The correlation between irrigation and production is positive and Pearson's correlation is r+0.926891. In this study of correlation it can be observed that rise and fall of the production is completely associated with the rise and fall of irrigation.

Impact of Irrigation in the Command Area of Bor Reservoir

In the study of impact of irrigation first of all the study of irrigation facilities are studied, in which it is found around 82% of the farmers in the command area are using canals for irrigation their fields. No. of in the wells in the command area increased after the construction of the dam. Around 109.79 million cubic meter of water is irrigated under the planned water usage. Season wise planed water usage are higt during the Kharif season. Carrying capacity of the various canalis different as per length and size of the canal. Branch canals in the command area have the capacity to irrigate the land.

Problems and Prospects in the Command Area of Bor Reservoir

While studying problems and prospects of the command area per capita income of farmer. Land shedding, timing and duration, flood control, storage facilities, availability of labor, problem of displacement and rehabilitation is studied in details. Numerous prospects and possibilities are there in the can be utilized for agriculture. There are high possibilities of increasing the irrigated area in the command area that can be utilized for agriculture. There are high possibilities of increasing the irrigated area in the command area as many farmers are still do the dry land farming. At last in this chapter special attention is given to the Problems of land less labors in the chaanki village. With the help of case study of land less labors in the command area it is found that the economic as well as the social status of the land-less labors is in average conditions.

In the findings it is found that about 55 percent families of landless labors are under debt conditions. In the Chaanki village about 65 percent families are completely dependent on farm labor work.35 percent families are doing other kind of works.60 percent families are not able save money. 38 landless do not have BPL cards, 30 percent of the landless labors families do not even have ration cards. Landless labors daily expenditures is more than their daily wages. Daily food consumption of land less labors is not up to the level of their daily

calories requirements. 60 percent of the landless labor's families are completely dependent of the public transport (Chapter6).

Conclusions

On the basis of the entire discussion and interpretations following con conclusions are derived. Farmers in the command area prefers cash crops to be grown for more benefits from the market as first ranking crops in the command area are the cash crops like Fiber crops i.e. cotton, legumes crops i.e Tur, and cereal crops i.e. wheat during 1999-2018. Fruits and vegetable crops in the command area are of less importance in the command area as it is found that these crops are ranking fifth position in the entire command area from year 1999 to 2018. Oilseed crops are another fifth ranking crops which occupies two to there regions of the command area during 1999-2018 period. This indicates the inclination towards truck farming. Study region has benefit to two metro cities in vicinity (Nagpur and Wardha). Study of crop concentration reveals that high concentration of most of the crops are found in BMC NAP2 NAP3 and GKP regions of the command area this clearly indicates that the impact of irrigation is high in the northern, central and southern part the command area.

Fruits and vegetable crops concentration is high in the GKP and NAP I region as these regions are of high density of branch canals, these provides amount of irrigation to these regions of Bor reservoir's command area. High combination of crops is located in the last four regions of the command area which is shifting towards the reservoir's direction during study period it was found in the AST region 1999-2000 during 2004-2005 it is shifted towards the NAP3 region. In 2009-2010 it is shifted towards the NAP2 and in 2017-2018 it is found in NAP I region. The magnitude of the crop combination is high toward the south and north directions of the command area and in the central parts of the command area magnitude of crop combination is low.

Entire study region's slope ranges between 1.00 to 35.00 percent and about 65 percent of the land is under the slope category of 1-3 percent which is favorable for canal irrigation. The slope category that ranges between 15-35 percent is the hilly area that is found in a scattered distribution in the command area.

In the study of crop-wise suitability of land of the command area it found that soil types found on this land is highly suitable for cotton, Tur, soybean, gram, sugarcane and wheat crops. But about 90 percent of the land is highly suitable for wheat crop as irrigation,

climatic, conditions, soil type all these factors are highly favorable for it. There is high degree of positive correlation between agricultural production and irrigation.

The correlation between production and irrigation is r=+ 0.92. From the observation of (Figure no.4.13) it is clear that the rise and fall between irrigation and agricultural production is associated with each other. About 82 percent of the farmers are using irrigation provided by the Bor reservoir 23.93 percent of the farmers irrigate their fields through river including irrigation through canals. In the command area almost 9.23 percent of the farmers are cultivation dry lands and they are completely dependent on rainfall for agriculture. This dependency on rainfall is of farmer leads to financial problems.

In the command area about 109.79 million cubic meter of water is irrigated to the fields from the planned water usage of the Bor reservoir. Under there planned usages rabbi and double cropping utilizes 23.30 million cubic meter of water. In the season wise water usage is high during summer season that is 38.65 million cubic meter. In the rabbi season 3.55 million cubic meter water is used through the canal's lift irrigation and in the kharif season 24.14 million cubic meter water is utilized for irrigation. Branch canals are having the highest carrying capacity in the command area as the density of the branch canals distribution is high in the command area. The carrying capacity of branch is 172.34 million cubic meter. Branch canal irrigates around 3813 hectares of reformed irrigated area of the commands area. Total 7025 people in Seloo and 1153 in Samudrapur talukas are benefitted through taluka wise planed irrigated area. Total irrigated area in the seloo taluka 10747 hectares and about 2613 hectares of land from samudrapur taluka is irrigated. In the branch wise planed irrigated area larga number of people are benefitted through Dehegaon Branch in 6885 hectares of land which is highest among all the branch canals. Lowest capacity to irrigate the land is of Bori branch canal which irrigates about 467 hectares of land. Rabbi season is having the highest percentages of surface drained irrigated area in which about 7368 (55.10%) hectares of the land is cultivated for various crops like wheat., gram, vegetables etc. It is even higher than the Kharif season, which accounts about 2834 (21.2%) hectares of cultivated land, BMC, and AST regions are the highly commercialized agricultural regions in the command area. In these regions farmers sell about 78 to 82 percent of the production in the market and GKP and NAP I regions of the command are is low in the degree of commercialization of agriculture because farmers in this regions are consuming more production than selling in the market. NAP2, NAP3 and AST regions are developed in the mechanization of agriculture as use of tractors and tractor operated machineries is high in these region seems to be backward in the mechanization of agriculture. In the NAP3 region

high level of agriculture is found. Around 78 percent area of the commend area is the major source of income in the command area of Bor reservoir. High level of mechanization are found in NAP2 region.

Average per capita income of the command area is Rs.5,04,857 In the spatial distribution of the per capital income in 2018 it can be seen that per capita income of the farmer in the command area is high in NAPI region. During field observation it was found that about 16 percent famers in this region do the agriculture allied businesses in this region. Like poultry farm. Goat etc. Farmers in the command area facing the problem of land shedding. Results from the survey of the command area says that nearly 11.30 hours load shedding was there on the Dailey basis in 2018.

It was decided by the Maharashtra Electrical distribution Cooperation limited that the Agricultural the feeders which faces the distribution collection losses (DCL) greater than 25 percent will face the load shedding for 11.30 hours. Greater part lo the irrigation is scheduled in the Rabbi season followed by the Kharif season whenever there is a break in rainfall (dry spell) for several days. The irrigation in the Rabbi season is provided between the intervals of 15 days especially for wheat crop. On the basis of study of assured storage levels that was done during 1968 from the month of June to October the schedule of water release from the dam is fixed to control the flood in the Bor River that drains through the command area.

Farmers in the command area are using storage facilities like Store rooms, Drums, (trunk), Farm warehouse, Government storage etc. 37.80 percent of the farmers are using Dholis, and 33.46 percent of the famers are using Drums for storing the farm produce. Government storages are not sufficient for storing the farm produce as it is available only a taluka place labors are available in all the agricultural seasons in the command area but their wages keep in changing from Rs.300 to 250 in summer or Zaid season. In Rabbi season it ranges from Rs. 300 to 350 and in Kharif season they demand for Rs.350 to 400.

Eight villages (4 from wardha and 4 from Nagpur) were vacated before construction of the dam and 1522 people were displaced from submergent area of the Bor reservoir. After dislocation the people from this region government has appointed rehabilitation officials and with the help of these officials the rehabilitation of the people was done. In the last 50 years people have settled themselves as per their convenience and government has helped these people in all aspects time. Bor reservoir has the possibility of increasing its irrigated area in command area and very important prospect of the command area is that it is well connected with the market places like Nagpur and Wardha and can look forward for truck faming.

The landless labors of chaanki village remain workless in the summer season and therefore they face crisis of money. Wages are not enough to meet the demand of the labor's families 50 to 60 percent the landless labors are struggling for all king of primary services like BPL cards, Ration cards, Ration cards. The addiction is one of the main causes of poverty of most of landless families in the chaanki village the level of daily expenditure is more than the daily wages. The nutrition level received through food they eat in one enough as in comparison of daily calories requirement.

It can be seen that the presumed Hypothesis is proven through this entire research work as the farmers are using the facility of irrigation provided by the Bor reservoir and the positive impact of irrigation can be seen through the study of correlation that there is a positive correlation (r+ 0.926891) between irrigation and production. So irrigation of Bor reservoir is an advantage for the farmers in the command area. From the study of cropping patterns it can be seen that farmers in the command area are interested to grow the cash crops like cotton, soybean, gram, and sugarcane etc. to earn more money form their farms.

In short we can summaries that in this study that, there is a positive impact of irrigation on the agriculture in the command area of Bor reservoir as it is observed that the agriculture is shifting from more subsistence to more commercial. There is a positive impact on the agricultural production also as there is a close relationship between agriculture production and level of irrigation provided by the Bor reservoir is a great advantage for all the farmers in the command area. Bor reservoir's catchment area can be studied further for the better understanding of life of the people in the Bor reserve forest.

****

"Geographical Study of Industrial Development in Chandrapur District"

Dr.R.P.Yadav
Professor of Geography,
Govt .College.Bichhua,
District Chhindawa MP

Dr.S.D. Thakur
Head Department of Geography
Janta Mahavidyalaya, Chandrapur
District Chandrapur

In the Survey of the industrial geography of the District of Chandrapur it is clearly stated that the industries in the district are mainly concerned with raw material, mainly coal. Various factories in this area have raised the standard of living of the people of the District. From the primary economic activities, people have shifted the second and third economic activated. Since there is the availability of coal, dolomite, limestone and iron in the Chandrapur area, we can not deny the prosperity of industry in this region. As a student of industrial Geography and teacher of geography, it is necessary to look into this matter with a researching attitude. Geographer can solve the cultural, social and industrial issues of the area and the environmental issues through various measures. The industrial geography covers the study of the process of industrializations, its link to the local raw materials. It also considers the factories that could come in the future due to technological change and need, suggesting ideal geographical location for various industrial etc.

Chapter Introductions

While economic development is taking place in the world and country, Chandrapur district is not left behind. Chandrapur district is known as an industrial District in Maharashtra. The District had one of the largest power plants in Asia. About 28% of the total electricity generation in Maharashtra is generated from this city and today Chandrapur District has emerged as the largest electricity producing District in Maharashtra. It is known as the largest coal producing District and the largest cement producing District. Dolomite and limestone mines are abundant in the District along with coal mineral resources. There are a total five cement manufacturing factories in the District. Contribute to the economic development of the District. India's largest paper manufacturing factory, Ballarpur Industries Limited (BILT) is located at Ballarshah, south of Chandrapur city. The largest sponge iron factory in Maharashtra is located at Ghugghus in Chandrapur tahsil. There are several paddy mills in Brahmapuri, Saoli and Sindewahi areas. Therefore, the city of today Chandrapur is known as" **The City of Black Gold" and The City of Electricity."**

Thirty years ago. This District was identified as backward District of Maharashtra, District of tribal, forest and tiger, but in the last ten to fifteen years, the District in now being

identified by industries and mines. While all the above industries are developing In the District, the pollution from these factories is huge. Therefore, today Chandrapur city and locality is unfortunately known as the people of chandrapur region. People involved in farming 35 years age are now gradually turning to secondary economic activity and industry. The proportion of people declining from primary business to the second and third economic activities is increasing.

Importance of area.

District of Chandrapur located on the Deccan Plateau in India, is rich in mineral wealth. Mineral metals found in the District are mainly stockpiles of coal, iron ore and manganese. There are about 750 small industries and 86 large industries on the District. Many industries are attracted to chandrapur District due to the coal mining in the District. The District has mines in Chandrapur, Bhadravati, Worora, Ghugghus, Ballarpur, majri, Sasti, Ratnapur and Lohara. The important reserves of iron ore are in Lohara Asola, Devalgaon, and Pimpalgaon in the District.

Research Objectives:

1. To take historical review of industrial development in the District of Chandrapur.
2. To link the industrial development with its resources in the District of Chandrapur.
3. To find out the sequence in the District of Chandrapur and its development of various periods.
4. To examine the relation between present industrial development and social as well as population

Structure in the District of Chandrapur.

Research Hypothesis:

1. Industries in the District of Chandrapur are established near the sector of raw material. Other small scale industries have also been developed on the basis of major industries.
2. Communications equipment is a major contributor to the development of industries in Chandrapur District. Therefore, the industries in the district have played an important role in the growth and development of rural and urban settlements in the region.
3. In view of the resources available in the Chandrapur district, there is great potential for other industries to develop-

Research Methods & Date Collection:-

The required information and data have collected from Industrial Development Corporation of Maharashtra, District Industries Center, Maharashtra Pollution Control Board, Chandrapur District Gazetteer and Chandrapur District Economic Social Commentary etc.

the source ar well as information on industrial history, is available in the census section, interviews, department books, magazines, government reports, NGO records have taken into consideration.

Statistics of the production of various minerals in Chandrapur district have collected form Bureau of mines, Ministry of Coal and Maharashtra Pollution Control Board, etc. will be collected form the organization. The list of various industries of district of different time period is prepared. Also, the ideal location of an industry based on the available resources in chandrapur district, have studied with the help of Weber's theory.

Geographical Background:-

Chandrapur district is located in the South Eastern part of the state of Maharashtra in Nagpur region. The geographical location of this district is $19^0\ 30^0$ to $20^0\ 45^0$ North Latitude and $78^0\ 46^0$ to $79^0\ 75^0$

East Longitude: The district has total 11,443 sq.km geographical land area which covers 3.72% of the total area of the state the administrative district is divided into 15 tahsils- Chandrapur, Ballarpur,Rajura, Bhadravati, Warora, Chimur, Nagbhid Brahmapuri, Sindewahi, Mul, Saoli, Gondpipari, Korpana, Pombhrna and jivti. Geographical, Chandrapur district is divided into four subdivisions – Wardha Maidan, Central Highland, Wainanga Plain and Southrn Highlands. Most of the area in the district is covered with Deccan rocks, contains minerals such as quartz, ameshist, koolsite, asate and jasper.

Historical Background of Industrialization:-

Industrial development has evolved time with technology. In addition to the scientific advancement of humankind, the industry is also spinning. The industries that were developed in the old days have changed their face with the advancement of technology. The earlier industries in chandrapur district were mainly cottage industries which were run in the house with the help of a family head, a group or an organization. But in the course of time, all these industries have closed down in the last few years. The main reasons for this are likely to be closed down due to the strategic implications of British rule or new industrial policy and comparatively new industries had been grown. The old industry was in harmony with the daily needs of humankind. But now the industry, however, does not meet the needs of the locals. The purpose of this industry, however, is solely to exploit our good nationally and internationally or to increase their export of goods.

Historical Overview of Industries in chandrapur district:-

Before 30 years, Chandrapur district was known as forest district, higher district, Gond district, tribal district, but in the past thirty years, huge factories and raw material based industries have come to his district. Therefore today the district of Chandrapur is recognized

as an industrial district, has found tools and weapons mainly in the ancient times. Caves also appear in some areas, the cave from the 1st to 8th centauries of Buddhist Ears. Cave of the Rashtrakuta period of the 6th century are prominent where in some Buddhist inscriptions of the Wakataka dynasty can be seen. Mainly, all these caves are carved by hand. From this is can be seen that those days. No metal was used as a tool there is also evidence of melting of iron in the district. As well as pottery, oil, mill, basket, making, pottery, leather industry is also very famous during this period. Soap industries in Rajasthan also appeared to some extent here. Along with the tsar silk industry in chanda district, the cotton fabric of chanda, Mary and bramhapuri worked for many years making brass utensils during the next two World Wars, the industry started to gain momentum in the financial sector and mainly during the British period, real industrial development was mainly driven by the development of coal mines.

Why Old-Fashioned Industries Developed in the District of Chandrapur?

The old-fashioned man was in a dilapidated state over the arsenal and tools of the archaeological period in the district. He used to live on the banks of the rivers. All of these men lived in the cave at that time and he had an Assyrian weapon to engulf the cave. The Erie and Wardha Rivers were major and perennial rivers in the district. Sasti finds physical caves in the river Wardha. Therefore, these people have stabilized in this place and hence the first colony has also come into being at this place. In addition, they have also created weapons for hunting. One way they have built stone killer factories in this place. That is to say, a large factory was bullit here. All these things were available in chandrapur district and hence the development if this industry can be seen in chandrapur district.

Geographical Overview of Industrial Development in the district of Chandrapur:-

The industrial sector is prominent in the economy of Maharashtra which is still number one in the country. Chandrapur district in one of the best industrial areas in Nagpur region thought Gujarat, Karnataka and Andhra Pradesh are expected to invest a lot. Due to the available minerals and perennial flowing rivers, many industries have been set up in the city area of chandrapur today. The industrial Development Corporation (MIDC) has been set up in the district to encourage industrial development and attract foreign investment directly in Maharashtra. MIDC has endeavored to boost industrial growth based in natural resource wealth in this area and today many industries are seen to be established in this backward district. Maharashtra Industrial Development Corporation (MIDC) has acquired 214.57 hectares of land in this area and has developed 46 plots at Padoli. Similarly, 154.62 hectares of land has been developed for the villages of korpana, Bhoigaon, Nandgaon, Ekody and Kawathala in the district. Western Coalfield Limited (WCl) operates 26 coal mines in the

district, where the coal is supplied to the Chandrapur Super Thermal Power Station, which is one of the largest power plants in Asia. But Chandrapur district is not known for this sole purpose. Other industries are scattered in various places in the district. Ballarpur industries Limited are located in India's number one paper factory in the district, which in about 20 km form Chandrapur city.

Industrial Settlement in Chandrapur District :-

The state government established the Maharashtra Industrial development Corporation (MIDC) in Chandrapur district at 13 places, with a modification of 3 thousand 263.76 hectares, so that the industry could be encouraged and the industry developed. In these 13 industrial development corporation, 769 plots have been stated and 113 plots of them, 303 seats have been given. Currentlym, most of the industrial activity is concentrated around Chandrapur, Warora and Brahmapuri tehsil. There is no distribution of such industries is small. The data from 2010-2011 to 2015-2016 shows that the area of Maharashtra Industrial Development Corporation in the district is seen in Chandrapur, Warora, Chimur, Nagbhid, Shindewahi, Bhadravati, Mulm Rajura, Gondpipari tahsil. But the number of industries under the Industrial Development Corporation (MIDC) is the highest in the district.

Geographical Location of Industries in the District of Chandrapur :-

According to Lord Beverage, the industrial sector is to provide space for various industries that is, determine the planned location of the industry. In recent years, German economist Alfred Weber has described the phenomenon of minimum transport cost theory given in the book "theory of the Location of Industries" published in 1909, becomes important in this regard. After studying Waver's theory with regard to industry in Chandrapur district, it is observed that large industries like Cement industry, Chandrapur, thermal power Station (CSTPS), Ballarpur Paper Mill (BILT) are concentrated in the raw material location. For cement industry, Limestone mines and coal-fired coal- fired coal mines are located 6 to 8 km in Korpana tahsil in the district. Both of these are impure raw materials and transpiration is the most expensive thing, is seems that there are established raw material based industries.

The Chandrapur Ferro Alloys project appears to have been established in the district based on 'Minimum' transportation Cost, The major raw materials for this industry are iron ore, manganese, coal and limestone which are abundantly available in the district. Therefore, the project has been established which are abundantly available in the district. Therefore, the project has been established at this place near the raw material. Also, the location of the city's thermal power station industry is concentrated on raw material basis. A large number of coal mines for this powar industry are in the district and all the coal mines in Durgapur, Rayatwari, Padmapur, Babupeth, Sasti, Majari, Ghugghus, Ballarpur and bhatadi are within

13 km Chandrapur city and the above coals supplied to this project. Significantly, Chandrapur is a city situated on the banks of two rivers. So in the same area, both the coal and the water are obtained from Chandrapur.

Classification fo Industries in Chandrapur District:-

A) Raw Material Based Industries

1. Agriculture Based Industry
2. Mineral Resource Industry
3. Forest Resource Based Industry

In Chandrapur district, agro-based industries include textile industry, silk industry, oil ghani, bamboo work. Chandrapur is an old cotton weaving industry. Many handicraft based industries are found in this area. The cotton fabrics found in the district are widely known for their excellence and durability. The rice milling industry is prominent in agriculture based industry. About 3.67% of the total employment in the district was in the factory. According to the District Industries Center, the district currently has 184 rice mills. Along with these paddy industries, the location of tasar silk industry in the cottage industry based on the agricultural industry in the district.

Chandrapur district is rich in various valuable mineral resources. Coal, iron and Limestone are important and major minerals in the district. The reserves of limestone in Rajura and Korpana tahsil are 54, 70, 00,000 tones. For this reason, the highest, cement industry in the district is 75% in korpana tahsil. L&T Cement, Manikgarh Cement, Ambuja Cement, Murali Industries and ACC industry have been started here. Coal reserves in Chandrapur tahsil are 1,22,70,00,000 tonnes. Industries like coal mines and power plant have accelerated due to increase in availability of coal in the district. Chandrapur Super Thermal power Station (CSTPS), which is the largest power plant in Asia, was established in the basis of coal. Chandrapur Ferro Alloy Project is the only public sector project in the country that is involved in manganese based production in, mineral based industries, which is abundantly available in the district. Chromium, manganese and silicon are the main Ferro alloys. Due to the government's policy of promoting mineral based industries, the entrepreneurs of the country will get better investment opportunities in Chandrapur district.

B) Classification of Industries Based on size

1. Large Scale Industry
2. Small Scale Industry
3. Cottage and Village Industry

In Chandrapur district there are 32 large industries like Paper Mill, Cement Industry, Ordnance Factory, Maharashtra Electro smelt and about 6000 small and medium sized

industries. But the distribution of this industry is uneven. Chandrapur tahsil has the highest number of industries in the district, which is 50.00% Because of the huge availability of raw materials needed for the big industry here; there is a huge incensement in the industry in large scale. As well as the limestone mines are highest in korpana tahsil of the distinct, it is seen that the large concentration of cement industry is concentrated here. The proportion of the industry here is 12.5% Also the fact that there is a paper mill factory in Ballarpur also shows a huge incensement in the number of industries In Mul, Bramhapuri and Warora tahsil, the proportion of large-scale industries is 3.12% In short, because of the large number of industries and its steady growth, the industrial development is seen in this district.

Bhadravati and Korpana tahsil, the proportion of small industry 1.98% is seen is Rajura tahsil. The root cause of the small scale industry here is the large number of industries in this area. The proportion of the small scale industries is 0.66%, 0.33% 1.32%, 1.32% respectively, in Jivati, Gondpipari, Pombhurna, saoli tahsil.

There is a disparity in the distribution of cottage industry with large and small industries are the district. The highest cottage industry in the district is based on BRICS which is 35.22%, The proportion of the fabric based industry is 32.07% the rice-based and computer-based industries are 8.17% and 3.16% respectively. The cottage industry, based on other industries is 21.38% In short; the cottage industry based on other industries in Chandrapur district is witnessing rapid growth. One of the major reasons for the growth of this industry is that the cottage industry has gained more importance in this district because of the large number of people getting employment form the cottage industry. In the district, the rural industries have a huge boost and the number of textile based village is 4.34% The number of rural industries based on rice mill is 17.30% followed by fabrication based 40% other industries based on rural

Industries 60.88% Overall, there is an incensement in the proportion of village industries in the district, which is reflected in the rapid growth in population.

Overall, the new technology in Chandrapur district has seen an incensement is rural industries and cottage industries mainly in agriculture based industries, textile based industries, polymer and chemical based industries and services industries mineral wealth-based industries, forest-based industries, engineering and energy-based industries have declined. The main reason for this is that people from rural areas are migrating to urban areas in search of jobs. Due to this, there has been a slight decline in industries and cottage industries in the rural areas. Secondly, people in rural areas do not have sufficient capital to set up industries and without knowledge of government schemes, they cannot establish industries.

Major Industries in Chandrapur District

1. Ballarpur Industries Limited (BILT)
2. Chandrapur Super Thermal Power Station (CSTPS)
3. Cement Industry
4. Chandrapur Ferro Alloy Plant
5. Rice Mill

Ballarpur Industries Limited is India's largest paper production and print paper company. Today, the paper mill is seen as the industry that employs most people in Vidarbha. There are currently 4,160 employers in the industry with 1200 regulars, 160 employers and 2800 contractors. The production of this mill is exported to various countries in European Market. More than 53% of the company's wood-free paper is available in the market. Paper production in 1953-54 increased from 5,000 tons to 30 thousand tons in 1964-65, during the year 1957-58 total sales of about 200 lakhs were made in this industry. It made a profit of Rs.60 lakh during 1964-65, the selling price was Rs, 570 lakh and the total profit is around Rs,90 lakh. In the FY 2009, Ballarpur Industries Limited (BILT) generated total revenue of rs. 2899.3 crore.

The highest cement production in Chandrapur district is 75% in Korpana tahsil. Ambuja Cement, Manikgarh Cement, Ultratech Cement and murli cement are the major manufacturers. The main reason for the high cement-based industries in the korpana area is availability of the huge stockpile. The annual cement production capacity of this industry is 3 to 5 metric tons. Musty employs are working in Manikgarh Cement Pvt. Ltd is 28.68% Whereas 25.48% in ACC Cement Pvt. Ltd and 23.53% in Ultratech Pvt. Ltd are the employability in the cement industries. The percentage of total workers based on industry is 12.54% Overall; the dependence on the cement industry in Chandrapur district is huge. The urbanization in Chandrapur district has seen a sharp incensement as the workers here migrate for employment from the rural area.

Coal Mining:-

There 35 coal mines of different capacities in the Chandrapur district. There are 28 coal mines under WCL, of which 11 is underground and 17 are open-cast mines. The total production capacity per month is 182469 metric tons. The Total coal production capacity per day is 1790 tones. But due to the daily coal mining operations, its total capacity is 186886 cubic meters per day. Durgapur, Padmapur and Bhatadi are the major coal mines in the district. The characteristics of the coal reserves here are that major coal mines in the district. The characteristics of the coal reserves here are that 50% of the coal reserves here will be available in thermal power plants, cement industry, paper mills, brick industry, limestone fertilizers and chemical industries.

The coal mines in the district are spread over the agricultural land of the farmers and 81.51% of the total coal mining area is occupied, of which 7.68% area is under forest and 9.34% area is occupied the government. Chandrapur tahsil has the highest number of coal mines tones. Durgapur, padmapur, Bhatadi, Hindustan Lalpeth, Mahakali, Rayatwari, Nandgaon and Mana are the Major Coal mines. The coal Mines cover about 43.39% of the total mining area.

Number of Pollution Categories and Industries in Chandrapur District

Due to the industrialization of Chandrapur district today there is a huge Pollution Due to the increasing category of pollution in the district, the industry is divided according to the area of red, Orange and green category. There is no pollution industry at MIDC Ghugghus and MIDC Tadail. Here the number of industries in the red category is 3 and 5 respectively. Only one industry breaks down into highly polluting category. The number of hightly polluted and hevily polluted industries in Chandrapur and Ballarpur are 2 and respectively. Also the number of industries in the red category and green category are more visible in this area. The study of industrial category in the five years 2010-1, 16 in Chandrapur district showed that our of 788 industries in 2010-11,163 increased to 197 while the number of industries in the Orange and Green category showed a decrease in the in the 2015-16 as compared to the year 2010-11. Due to the overall industrial development of the district, the problem of pollution is widespread today. According to a recent Green Peace India survey, Chandrapur district ranks fourth among the ten polluted cities in the country.

Conclusion, Problems and solutions

Industrial development in Chandrapur district depends on the old cottage industry and the industry born in the pist- independence period. The geographical condition has a big impact on the development of large and medium scale enterprises the correlation of industrial development is baded on the local raw material and many industries depend on coal raw material and forest resources. Due to the increase in availability of coal industries such as coal mines and power plants have accelerated, in the beginning. All these industries were mainly based on agriculture to other large industries like cement industry, thermal power station, Ballrpur paper mill (BILT), Paddy mill have been established in the raw material area and other industries have also been developed along with the development of this large industry.

Only the coal based industry is seen in the district. Agro-based tourism has not developed; therefore, efforts should be made to ensure that the district is fully integrated and balanced. This requires the use of new technology and machinery. It is Important to note that the use of power tools for industrialization will not compromise the balance of the

environment. By using less environmental resources it is also important to pay attention towards imbalance of environment.

Bibliography:-

- Boesch H. (1964), A Geography of world Economy, Van Nostrand Company, New York
- Alexander John W. (1950), Geography of Manufacturing: What is it? Journal of Geography 49.
- Venkaish V. (1987), Impact Development and economic growth: Implication for porvety reduction and income inequality, Industrial development for 21st Century. Pellervo Economic research Institute, Helsinki, Finland.
- Balaji Shammi (2012) women entrepreneurs: a new face of India URIM, Novembar 2012, Volume2, Issue 11,
- Dr. Dudure S.P (2016) A Study of the Absence of Permanent Coal Mine Labors at Chanda Rayatwatri Colliery, Stuated in Western Coal Field Limited Chandrapur, Maharashtra IRACST- International Journal of Commerce, Business and Management (IJCBM),ISSN:2319-2828 Vol. 5, No.3.

"Geographic analysis of the emerging diseases due to illicit underground water in Yavatmal district"

Dr. R. P. Tiwari
Govt. P. G. College Tikamgarh

Dr.R.P.Yadav,
Professor of Geography,
Govt .College.Bichhua,
District Chhindawa MP

Dr.Vinita J. Deshmukh
Regional Geography Department
Pramkhu Dhanvate National college
Nagpur

Introduction

The water here is the nectar of the earth. We can not imagine the existence of living creatures without water, and that is why 71 percent of the water in the world is flooded, and recently we have forgotten the importance of water. Because, you freely use/use the thing which is excessive. The result is visible in front of us today. The downstream rainwater is flooded and we are walking around the parasitic water, but we do not appreciate the water available on the planet.

Water is the basis of human life. Generally, an average of 135 liters of water per day is consumed daily. Use to meet basic needs such as drinking, cleaning the bath, and cleaning, Recently, the water required for irrigation, industry, tourism, building, gardening, transport, equipment etc. is included in the daily requirement.

Ground water is ground water, its appearance is dependent on the amount of water available in those days. It also depends on the type of rock, type, structure, and tide. The ground water level in these areas is high, in which the ground water level is high. Therefore, the growth, of the well, bore is evolved in the contamination. In areas where tap water supple is not available, the use of groundwater for dinking water is available for daily use and for day-to-day use. Apart form that, the number of raths in India is 2 crores 60 lakhs today. Nearly 60 percent of the population is covered by flood water. India uses various means of drinking water. The number of raths in India today is 2 crores 60 lakhs. People use different means for drinking water. 35.5% population and hand pump, 36.7% people use other traditional instruments like tap, lakes, streams, etc.

Water conservation in India

In India, 839 blocks out of 5723 are located in the dark zone. The water is completely drained. The worst is Rajasthan. Due to the low rainfall, the river water flow is reduced by 20 percent. 16% of the world's population is in India and water availability is 4%. 18 percent of the water is used in the rainwater, and the remaining 82 percent of the water gets released through the rivers.

In India, demand for water in various in various areas is increasing due to economic development. Central Ministry of Water Resources: there is a demand for 50 per cent Arab Cubic meter water the Nasur
industry, and this water is being processed through septic water resources. In the last 3 years, the population of India has doubled and 30 per cent of the population lives in the city.

Water usage is increasing in the life of changing life patterns. The status of water resources in India is critical to the dayendavas. Water also needs to be touched in the monsoon. The situation of the population between the population and the availability of the water and the need for water in diffrendra areas is different.

The population of Yavatmal distinct in 1991, population of 2077144 and 2011 is 2772348 with and increase of 695204 people. They are less dependent on water supply. For this the use of ground water schemes and schemes based on it. But this water in not safe to consume the natural water, the harmful elements appear to the patient. Besides man-made causes of groundwater contamination affect it . Different types of minerals are chemicals available in available water sources. Such as arsenic and chemicals are essential for health whereas some are very dangerous.

The majority of the district is filled with Deccan Basalt rocks. Likewise Alaiyavim, Lemeta, Kamathi Sandspen, Barakar Sandstone, Chunkhadk and Granite are found in some parts of this district Bamdeine 1991.

It is seen that the time of transition of sickness is the change in the seasons. According to the seasons, the illness is also very different. Increasing microbial virus, bacteria, the cause the formation of the disease. The effect of human digestibility, premature immersion and various bone diseases, their impact on the teeth, mostly depends on their drinking water. The main source of water in India depends in ground water. Groundwater Chemical factors are dependent on the rainfall, geological rocks and fragments of this system. Global warming and unrealistic use of water are creating drought in these days. As a result, the use of groundwater is increasing. However, this does not happen in the form of the groundwater to be repaired. The amount of water furrow is negligible in the amount of groundwater used. The available ground water is becoming more contaminated Its disadvantage is being done on human consciousness. In today's world the consequences of contaminated water clogging in other countries that are highly populated can be seen.

- Industrialization – Increasing demand of water and increasing industry is crucial to water conservation lack of awareness – water use and wastage, water pollution etc. People are not literate.
- Green Revolution -70% of the water used in irrigation is used for irrigation, and 5% of the water is saved and agricultural crops can be increased.

- Continuous growing population – 2011 population was more than 125 crores.
- Liquid life style –Extra use of water for growing water conservation systems, such as washing machine toilets flush etc. Urbanization-Increasing population in the city will increase the water crisis in the city.

Objectives of study

1. Study the composition of the Yavatmal district and the structure of rocks.
2. To study the types of rocks as well as various minerals and constituents of the rock.
3. To study underground water resources in the district.
4. Prohibit the causes of ground water pollution.
5. To look into the problems of contaminated underground water.
6. Determination of contaminated ground water (lease) in Yavatmal district.
7. Examine the health benefits of various factors of ground water by examining ground water.
8. Understanding geographical factors and human factors affection ground water pollution.
9. Examining the differences between ground and earth monsoon and after the monsoon.
10. Study the Aaragya centers and community planning programs.

The importance of the study topic

Because the Yavatmal district is a part of the Deccan's drive, the basal rock ridge is much higher. Some representations of the granite and good rocks are found. the geological analysis of the underground water and its contamination in Yavatmal district and the disease causing the disease are very much needed.

It in not that the underground water is completely pure. It contains many alkalis, minerals, dissolving. Some of them are essential for alkalis, minerals and various constituents. It they are more than standard, they are harmful to human beings. This topic has been selected for the study of Bhuj related to **Yavatmal district.**

It is necessary to study the schemes which have implemented the rituals to make sure that there has been genuine pubic awareness through the Yavatmal District and the consequences of spreading the disease and its effects and preventive measures. Awareness about the use of ground water, its limited availability, its limited availability should create awareness among the masses. It is because of the that the limited storage capacity will save the growing population.

Geography of the study area

Yavatmal district is located in northern latitude, from 19026 to 20042, and the former reservoir is between 77018 years and 79098 AD.Yavatmal district is full of area and area of Yavatmal district is bigger in all districts of Amarvati division due to the area. Is it Natural boundaries have been achieved in the east and south. Washim and Amarvati are two districts, Parbhims in the west, chandrapur and wardha on the east,

Nanded in the south and Adilabad district of Andhra Pradesh. North Purwala is the natural border of the wardha river and is wardha and Chandrapur district. Nanded after the boundary of Penganga to the south District and Telangana are the northern parts of the state. Akhola and akshola districts are adjacent to the west.

Because of the contamination of contaminated ground water, it has been tested underground and monsoon since the end of the year. Agents will be identified with hazardous substances. For this purpose, the water is inspected by submersion and water testing and water is taken from the underground part of the district. And the refinement was done on the basis of primary and second nature. In addition to the talukaniyahi explanation of the district of Aheyavatal, the area is affected by the effect of contaminated water area of the district has been used. It is better to use tables for schematic method has been adopted and the coordination of the coordination will be done through a simple sample survey. It has also been analyzed and analyzed by the District Statistics Commentary. District Gazetter, Census, District water Supply Department , and taking the secondary figures into the same collection. Conversion, presentation and presentation.

Due to the effects of contaminated underground water the water accumulation and analyzing the diseases that occur, the graphs, diagrams, diagrams and saturation techniques etc. geographic devices have been used.

Many geographical factors are influenced by the human arsenal. The water content of this region has more impact on weather conditions. However, it is necessary to scrutinize the subject's background in order to have more clarity in it. For this, using the help of the Department of Atomic Sciences, the correct conclusions have been drawn from the assumption of hypothesis.

After completing inspection work. After taking personal interviews with the persons residing in the village, inspecting the person in the study area filled the questionnaire. Collected information based on the title. Secondary and secondary level scores from the carious administrative offices received from the study By compiling the alpha and combining the different numbers together, it creates well-arranged tables, figures and shapes.

The main purpose of the research work is to study the maladaptive effects of fluoride and nitrate, and for the effective reasons, as well as the treatment of maladaptation on the rural areas. In this context, the distribution of taluka-wise population for study. Study of density and literacy of rural and rural and urban population by studying fluoride and nitrate, by studying the illness caused by fluid and nitrate such as fluid and nitrate. And the problems arising out and its seriousness and extensive study this is done. To make life more prosperous, humans make the most of the available resources.

Water is not about the existence of human beings but also in its entirety. If the water supply form the rivers is done through rivers, ponds, lakes, then underground water is available

through wells, streams, bore wells. But day-to-day water is being corrupted by this resource. It is also contaminated with groundwater as well as ground water. As a result, different diseases arise due to this. The topic of geological analysis of the diseases of the addicted areas in Yavatmal district has been studied here.

In essence, in the study, a collection of essays on collection, survey, examination, analysis, explanation, reason and conclusions, measures and measures etc. have been presented.

Conclusion

Some findings are explained by the deliberation of "Geographical analysis fo diseases arising from unhygienic water in Yavatmal district".

Yavatmal is a district- wide area and the area of Yavatmal district is large in all district of Amarvati and 6th compared to Maharashtra. Washim and Amravati are two districts, Parbhish in the west, Chandrapur and Wardha on the east and Nanded in the south and Adilabad district of Telangana. District's area is 13584 sq. km According to 2011 census. The population in 27,75,457, which is 2,47 percent of Maharashtra's population. 78.41 percent people live in rural areas and 21.59 percent live in urban areas.

Seeing the natural landscape of the district, the east and south natural borders have been received. Ajitha is the son of Duggar from East Uttar Pradesh. the east of the district is Wardha river and on the south by the penggun river. There are utensils Ghats in the middle section.

Penganga and Wardha are the major rivers in Yavatmal district. Wardha is the only river which divides this district into two parts.

In the present district. In the summer even if there is a rare occurrence of 470 during the summer, the average annual rainfall in the winter range is between 70 to 950 to 1150m. me so much so

The part of this district is basal rock. Brown and vlack soil were developed on this rock. The ability to hold water in this soil is high.

While studying the changes in the population of Yavatmal district, there has been an attempt to study the changes in the rural and urban population from the period 20 years 1991 to 2011. In Yavatmal district, there is more population in Yavatmal taluka.

When studying the water resources in Yavatmal district, study the talukas of the district, irrigation wells, hand pumps, tube plants. Looking at the water resources figures from 1991 to 2011, the total number of irrigation wells in 1991 was 26178, while in 2001 the number increased to 35404 and in 2011 ot was 41470 on 1991, the total number of handpums was 4960 while the number of handpums in 2001 was 5290 and the number of deaths in 2011 was 7084.

On the basis of pipelines, the plan is dependent on wells and handpaums. Has ogt the benefit. In the rural areas, the plumbing velocity is dependent on the water supply. Because of

the financial condition of these schemes, the benefits of these schemes are available only to the affluent and the polulation, so the majority population is deprived of this facility.

Deccan basalt rocks are found in 16 talukas in Yavatmal district, covering 80 to 85 percent of the land area. Availability of ground water depends on the number disturbances. Tornadoes, joints and tissues found in this area. And also ground water level dependency in the proportion of rainfall. The amount of water that can be obtained from the rain also depends on the amount of amount of water that can be uses to freshen up the soil. Thus, the amount of rain fall in the rain water depends on the number of ground water reservoirs.

The total source of water in the district is bore well and the well is water 96.31 percent of the population depends on ground water. When using this ground water, only chlorine or bleaching powder is used for its use. It is not done regularly. No water purification system or modern filter plant us used. Water does not show the accuracy of water on the taste of water.

The quantity of fluoride and nitrate is used by the chemical fertilizers and insecticides to grow in the water. 98.58 percent of the fields use chemical fertilizers and insecticides.

The public awareness about the disease is 94.03 percent. People responded to the spread of diseases related to the disease, but this is done at the normal level, it is much higher than TV ads. Lt also has awareness of waterborne illness. The very awareness is like washing your hands before. eating. There is no awareness or action done by the Gandhia who are concerned about fluoride and nitrate at the level of the administration. The administration is extremely depressed. It is harmful to the life-threatening depression of the procession.

The geographical situation causes illness like fluoride and nitrate at the level of the administration the administration is extremely depressed. It is harmful to the life-threatening depression of the procession.

Due to excessive water consumption, water is contaminated due to water pollution. The use of chemical fertilizers and pesticides in the field, as well as the risk of mixing contaminated water in the reservoir, is found in most of the cities, Factories, Prisons, Land, Mines, Urban, Colonies etc. The polluted water from the underground water is making the plant unusable, without watering the water , it is mixed. The adverse effects of it are on people's health. The measures and the laws should be made strictly for the purpose.

To highlight the importance of discussing the issue of prevention of ground water in villages and to implement villagers for implementation of the problem of misuse, and to take action in the matter of prevention ground water pollution social services organization and to create awareness for villagers at the village level.

******

Bibliography

- Adhikari P.P Chandrashekhar H. and others (2010)" Assessment of Ground water pollution in west Delhi, India using geostatistical approach" Environmental monitoring and Assessment Voll. 167 Issue-1-4.
- Bagavan S.V.B.K and V.Raghu (2005) Utility of check Dams in Dilution of Fluoride Conventration in ground water and the resultant analysis of of blood serum and urine of villagers, Anandpur District, Andhra Pradesh, India Environment Geochemical and health.(p.p97-108)
- Brinda, K: Rajesh, R: Murugan R; Elango, L. (2010) Fluoride Contamination in ground water in parts of Nalgonda. Dist. Andhra Pradesh, India (Research paper)
- Briney Amanda (2010) "medical Geography AHistory and over view of medical geography"

******

प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण का भौगोलिक अध्ययन

बालाघाट जिले के विशेष संदर्भ में

डॉ. आर. पी. यादव,
विभागाध्यक्ष भूगोल
शासकीय महाविद्यालय बिछुआ

मीना ठाकरे, अतिथि विद्वान भूगोल
शासकीय महाकोशल कला एवं वाणिज्य
स्वशासी महाविद्यालय जबलपुर

शोध सारांश :–

भारत के हृदय स्थल के रूप में स्थित मध्यप्रदेश प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता विशेषकर वन एवं वन्यप्राणियों की विविधता के लिए जाना जाता है। वहीं मध्यप्रदेश राज्य का बालाघाट जिला प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण जिला है। इस जिले के 52 भाग में घने वन है, जो कि उष्ण कटिबंधीय अद्ध पर्णपाती वन है। ये वन 100 सेंटीमीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते है। बालाघाट के अलावा सीधी, शहडोल, जिलों में भी इन वनों का विस्तार है। इन वनों में बीना धारा, जामुन, महुआ, सेजा, हर्रा, तिन्सा आदि के अतिरिक्त सागौन, साल, नीम, आदि की भी बहुलता है। राष्ट्रीय वन विभागा ने अनुसरण में जनभागीदारी सुनियिचत करने के लिए वन विभाग ने ''संयुक्त वन प्रबंधन'' वन सुरक्षा समिति, ग्राम वन समिति, इको विकास समिति आदि की अवधारणा को अंगीकार किया है। बालाघाट जिले के सभी विकासखंड म ं पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए आठ साल से रक्षा सूत्र बांधकर पौधा रोपण कार्यक्रम अभियान चलाकर लोगों को इसके प्रति जागरूक किया जा रहा है।

पारिभाषिक शब्दावली –संसाधन, पर्यावरण, उष्ण कटिबंधीय।

प्रस्तावना:–

प्रकृति ने मानव को अनेक संसाधन दिये है। प्रकृति प्रदत्त इन संसाधनों में जैवीय संसाधनों को विशेष महत्व प्राप्त है। मावन जीवन का आस्त्वि जैविय संसाधनों पर आधारित है, क्योंकि मानव समाज अपनी विविध आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए इन्ही जैविय संसाधनों का उपयोग करता है। जैवीय संसाधन थल एवं जल दोनों ही स्त्रोतों से प्राप्त होते है। वहीं प्राकुतिक वनस्पति और जीव जंतुओं को स्थलीय संसाधनों में सम्मिलित किया जाता है। प्राकृतिक वनस्पति का स्थलीय संसाधनों में सर्वाधिक महत्व है। प्राकृतिक वनस्पति एक महत्वपूर्ण संसाधन होने के साथ ही वातावरण की प्रत्यक्ष सूचक होती है। किसी प्राकृतिक वातावरण का उपयोग किस तरह से किया जा सकता है, इसका भी अनुमान प्राकृतिक वनों से लगाया जा सकता है। यह मानव के लिए प्रकृति का अनुपम उपहार है। प्राकृतिक वनस्पति का संसाधन के रूप में प्रयोग आदिकाल में शुरू हो गया था। प्राकृतिक वनस्पति का दूसरा अंग घास, आज के विकसित पशुपालन उघोग का सबसे बडा आधार है। इसी प्रकार किसी भी देश की अर्थव्यवस्था पर वहां की प्राकृतिक वनस्पति का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । बालाघाट जिले में भी

दूसरे जिलों की तुलना में सघन वन क्षेत्र है। यहां 1334 वर्ग किलो मीटर सघन वन क्षेत्र है। मध्यप्रदेश के चार वन मंडल भी बालाघाट जिले में है। बालाघाट जिले की अपार वन संपदा का प्रबंधन व संरक्षण भी सतत् विकास के संकल्प को ध्यान में रख कर किया जा रहा है।





अध्ययन का क्षेत्र :– प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र बालाघाट जिलें में वनों की स्थिति, वन संसाधन, वनों का प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण का भौगोलिक विश्लेषण पर केन्द्रित है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

1.प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य वन संसाधनों का दोहन इस प्रकार करना होगा जो पर्यावरण एवं विकास दोनों के हित में हो।

2.जब पर्यावरण और वन संरक्षित किए जाये तब उसके सुनियोजित उपयोग का लाभ स्थानीय निवासियों

को मिलना चाहिए।

3.ग्रामीण जनता को वन संपदा तथा वनोपज से आर्थिक लाभ पहुचाना।

4.संसाधनों का न्यायोचित उपयोग सुनिश्चित करना ताकि वे वर्तमान के साथ–साथ भावी पीढ़ियो की आवयश्कताओं की भी पूर्ति कर सके।

5.स्थानीय लोगों की जैव विविधता संरक्षण की पंरपरागत विधियों की रक्षा करना।

6.वनों की कटाई जंहा तक संभव हो रोका जाना चाहिए।

7.संकटग्रस्त पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण करना।

आंकड़ो का संकलन :– प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक आंकडों पर आधारित है। पुस्तकालय अध्ययन, इंटरनेट, समाचार पत्र–पत्रिकाओं, भारत सरकार के विभिन्न संस्थानों के प्रकाशन, प्रदेश सरकार के प्रकाशन द्वारा आंकडे प्राप्त कर इस शोध पत्र को तथ्य परख बनाया गया है।

शोध प्रविधि :– शोध पत्र में ग्रंथालय अध्ययन पद्धति का उपयोग किया गया है।

विश्लेषण

वन संसाधन :– प्राकृतिक वनस्पति में वृक्ष, झाडियां और घास के मैदान आते है। यह संसाधन सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि मावन के प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ती और उसके वातावरण की उपयोगिता इसी संसाधन पर निर्भर करती है। वन सम्पदा की दृष्टि से मध्यप्रदेश एक समृद्ध राज्य है, और इसी राज्य के बालाघाट जिले में सर्वाधिक 52 वन पाये जाते है। ये वन भौगोलिक वितरण की दृष्टि से उष्ण कटिबंधीय वन की श्रेणी में आते है। ये वन चौडी पत्ती वाले पतझड़ वन होते है । इन वनों में उष्ण कटिबंधीय आर्द्रवन भी पाये जाते है। चूंकि बालाघाट जिला जलवायु वर्गीकरण की दृष्टि से 200 सेमी से अधिक वर्षा, उच्च तापमान, उच्च आर्द्रता वाले प्रदेश में आता है। इस कारण यहां वृक्ष वर्ष भर हरे– भरे रहतें है। बालाघाट जिले के बैहर और परसवाडा विकासखंड में इन वनों की प्रधानता है। बालाघाट जिले के उष्ण कटिबंधीय मानसूनी जलवायु वाले ऐसे क्षेत्र जहां वार्षिक वर्षा 100 से.मी से 200 से.मी के बीच है वहां चौडी पत्ती वाले साल सागौन, ताड, शीसम, बांस, आम, जामुन, बरगद, तथा नीम मुख्य वृक्ष है। ये वन आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। गौण वनों के अन्तर्गत खैर वृक्ष ,लाख,हर्रा, तेंदूपत्ता ,गोंद, बबूल, धावडा आदि आते है। भोजन, वस्त्र, औधोगिक कच्चा माल, जडी –बूटियां, ईंधन के लिए लकडी, पशुओं के लिए चारा, तथा वनों से असंख्य लोगो को रोजगार व आजीविका प्राप्त होती है। लकडी काटने, लकडी चीरने व वन आधारित उघोगों से लाखों लोगों को रोजगार मिलता है। मृदा अपरदन पर नियंत्रण ,बाढ़ों की रोकथाम, मरूस्थल के प्रसार पर नियंत्रण, मिटटी की उर्वरता को बढ़ाना अप्रत्यक्ष लाभ है। वनों में निवास करने वाली आदिम जातियां भी अपने जीवन निर्वाह के लिए वनों से वस्तुएं एकत्र करती है।

बालाघाट जिले में वन प्रबंधन हेतु कार्य आयोजन की क्षेत्रीय इकाईयां निरंतर काम कर रही है। जिसमें दक्षिण बालाघाट क्षेत्रीय इकाई है। जिसके अन्तर्गत वन सुरक्षा समिति, ग्राम वन समिति, ईको विकास समिति काम करती है। बालाघाट जिले में ग्राम वन समिति द्वारा 08 गांवों के आदिवासियों ने 500 एकड क्षेत्र में जंगल तैयार कर दिया है।

बिगडे वन क्षेत्र में वन खंड सीमा से 05 किलोमीटर दूरी तक आने वाली समितियों को ग्राम वन समिति कहा जाता है और ग्राम वन समिति के सदस्य जिले में जैविक दबाव के कारण विरल वनों को सघन करने का काम करते है। बालाघाट जिले में भी राष्ट्रीय वन नीति के अनुसरण में जनभागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए वन विभाग ने संयुक्त वन प्रबंधन की अवधारणा को स्वीकार किया हैं। जिसके तहत् ग्रामीण आदिवासी जनों द्वारा वनों के प्रबधनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है।

वनों पर बढते जैविक दबाव, बढती जनंसख्या तथा कृषि हेतु जमीन की बढती आवश्यकता के कारण वन क्षेत्रों में अतिक्रमण एक गंभीर समस्या है। वर्तमान में संगठित एवं हिसंक अतिक्रमण के

प्रयास भी हो रहे है। कई अशासकीय संगठनों द्वारा भी वन क्षेत्र में अतिक्रमण को प्रोत्साहित करतें की घटनाए भी प्रकाश में आई है। इन्ही घटनाओं को देखते हुए जनभागीदारी एवं क्षेत्रीय इकाईयों की सक्रियता से वन अपराधों पर नियंत्रण के लगातार प्रयास किए जा रहे है। पिछले कुछ वर्षो से अवैध कटाई के प्रकरण, अवैध चराई के प्रकरण, अवैध परिवहन के प्रकरण, अतिक्रमण, अवैध खनन जैसे अपराध कम हुए है। वन सुरक्षा की सुनवाई हेतु इंटरनेट आधारित वन अपराध प्रबंधन प्रणाली विकसित की गई है। अग्नि दुर्घटनाओं की सामयिक जानकारी प्राप्त करने हेतु फायर अलर्ट मेसेजिंग सिस्टम विकसित की गई है। अतः जिले में वन संसाधनों के प्रबंधन व पर्यावरण संरक्षण की दिशा में निरंतर सफलता पूर्वक प्रयास गतिमान है।

बालाघाट जिला जलवायु वर्गीकरण की दृष्टि से भारत के 0 डिग्री अंक्षाश से 30 डिग्री दक्षिणी अक्षांश के बीच आता है। निश्चित तौर पर यहां पाये जाने वाले वन भी उष्ण कटिबंधीय वन कहलाते है। जिनका प्रबंधन व संरक्षण पर्यावरण सुरक्षा, बढते वैश्विक तापन, बढते ग्लेशियर, बढता समुद्र जल स्तर, बढता भू–स्खलन, भूमि की घटती उर्वरता, बाढ व सूखा जैसी समस्या के निदान हेतु जरूरी है। स्थूल दृष्किोण से पृथ्वी के भौतिक घटको स्थल, जल, वायू, मृदा को पर्यावरण का प्रतिनिधि माना जाता है, क्योकि यह तत्व प्रत्येक स्थान पर मनुष्य को घेरे रहते है। किन्तु इनके अतिरिक्त और भी जैविक तत्व वन, पशु और जीवाणओं का भी मनुष्य पर प्रभाव परिलक्षित होता है। अतः वन संसाधन प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण के एक भौगोलिक अध्ययन में यदि मानव अपने आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में उत्थान और प्रगति करता है, और पर्यावरण के उक्त घटक अपने प्रकृतिक रूप में रहते है। तब उनसे चक्रिय अवस्था में व्यवधान नही आता है, अथवा प्रकृति में संतुलन बना रहता है गुणवत्ता में कोई ह्रास नही होता है। तो कहा जाएगा कि पर्यावरण सुरक्षित करते हुए वहीं के लोग उन्नति कर रहे है। पर्यावरण का संरक्षण मावन, समाज एवं प्रकृति के बीच के संबंधों को अनुकूलतम बनाने के लिए आवश्यक है।

संन्दर्भ सूची :–

1. डॉ नरेन्द्र मोहन अवस्थी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल
2. कुरूक्षेत्र पत्रिका
3. योजना पत्रिका
4. ''मध्यप्रदेश का भूगोल'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल
5 मासिक पत्रिका जनसंपर्क विभाग बालाघाट कार्यालय
6. रिपोर्ट, मध्यप्रदेश वन विभागा
7. मासिक पत्रिका, दक्षिण वन मंडल, बालाघाट

छिन्दवाड़ा जिले की जनसंख्या का अध्ययन : एक भौगोलिक दृष्टिकोण

डॉ0 आर. पी. यादव
प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय बिछुआ
डॉ. शाहिदा बेगम मंसूरी,
भूगोल विभाग, शासकीय महाविद्यालय, शहपुरा, डिण्डौरी

शोध शारांश

जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने वाले अनेक कारक होते हैं। जनसंख्या से किसी भी क्षेत्र की सुविधाओं एवं आर्थिक स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है। अधिक जनसंख्या वहीं निवास करती है जहां उसे हर प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध होती हैं।

मध्यप्रदेश राज्य में भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से प्रथम स्थान है। यह सतपुड़ा पठार के दक्षिण–पश्चिम हिस्से में $21^0$27'30" से $22^0$47'45" उत्तरी अक्षांश और $78^0$20'10" से $79^0$24'30" पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। छिन्दवाड़ा जिले का आकार दक्षिण से उत्तर की ओर लम्बा, समरूपता लिए हुए है।

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तावना

सामान्यतः पर भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक जनसंख्या वितरण को प्रभावित करते है परन्तु इन्हें प्रभावित करने वाले तत्वों का विश्लेशण भौतिक व सांस्कृतिक आपदाओं के बिना अधूरा है। वर्तमान में इन आपदाओं की संख्या बढ़ती जा रही है जो कि जनंसख्या मानचित्र को अस्थायी रूप से प्रभावित करती है।

जनसंख्या वितरण का अर्थ पृथ्वी पर जनसंख्या के विक्षेपण से है। इससे पृथ्वी पर मनुष्य के स्थिति जन्य प्रतिरूप का ज्ञान होता है। जनंसख्या वितरण से किसी भी क्षेत्र की जनांकिकी विशेषताओं को जाना जाता है। तथा मानव के विभिन्न भौतिक एवं आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक अन्तसम्बंधों तथा क्षेत्रीय भिन्नता का अध्ययन किया जाता है। जनसंख्या वितरण एवं जनसंख्या धनत्व दोनों परस्पर संबंधित है। दोनों में यह अंतर है कि जनसंख्या वितरण में अधिक बल स्थितिगत तथा जनंसख्या धनत्व में अनुपातिक संबंध पर दिया जाता है। जनसंख्या धनत्व में अनुपातिक सम्बन्ध पर दिया जाता है। जनंसख्या वितरण क्षेत्रीया प्रारूप से संबंधित है जिसमें जनसंख्या वितरण प्रारूप रेखीय, विकीर्ण केन्द्रक जमघट आदि आते है। जनसंख्या धनत्व का संबंध जनसंख्या आकार एवं क्षेत्रफल से होता है। यह तो सर्वविदित है कि न तो जनंसख्या वितरण और न ही इसका जमाव समस्त संसार में एक जैसा है फलतः धनत्व भी भिन्न भिन्न है।

अध्ययन क्षेत्र छिन्दवाड़ा जिला

मध्यप्रदेश राज्य का छिन्दवाड़ा जिला सतपुड़ा की पर्वतमालाओं पर अपना दामन फैलाये भारत के मध्यस्थल में बसा है। स्वर्णिम पुरातन अतीत प्रचुर खनिज सम्पदा अपने आंचल में संजोए हरी–भरी पर्वतमालाओं के बीच छिन्दवाड़ा जिले का अपना अविस्मरणीय एवं अनोखा इतिहास है। छिन्दवाड़ा जिला मध्यप्रदेश के चुने हुए आदिवासी बाहुल्य जिलों में से एक है। देवगढ़, पातालकोट, तामिया घाटी से लेकर पचमढ़ी तक का क्षेत्र जो कि गोण्डवाना क्षेत्र के नाम से प्रख्यात है, साथ ही अपनी प्राकृतिक अद्वितीय घटा के लिए भी सुविख्यात है, एवं यह वृद्ध आदिवासी संस्कृति को भी अपने में संजोए हुए है।

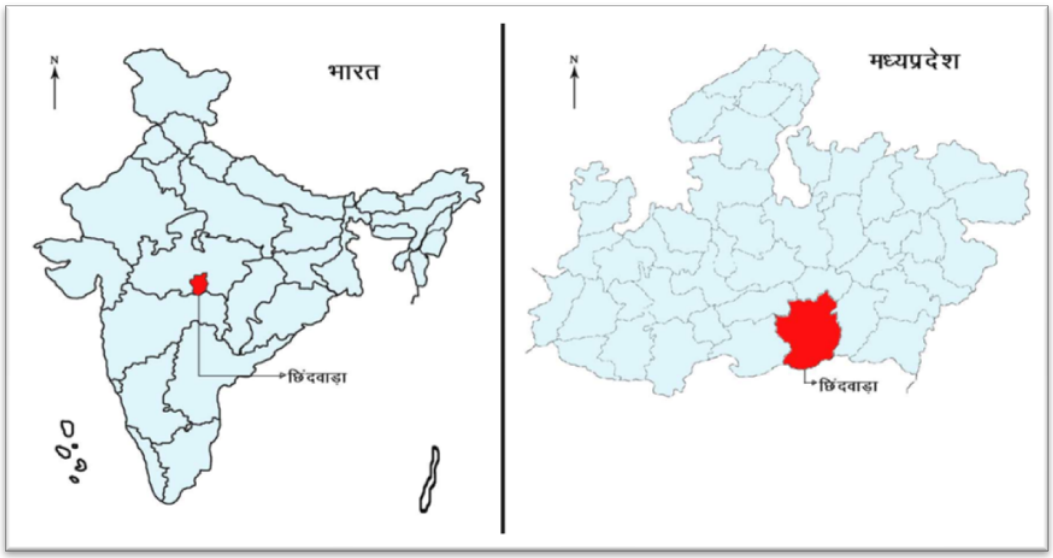
महाभारत काल की उज्जवी स्मृतियों और परम्पराओं से संबंद्ध अपने अंतराल में हरित स्वर्ण के लिए उच्च शिखर के सौंदर्य की ओर मुखर बिन्दु दृष्टिगोचर होते हैं। सतपुड़ा पठार पर्वतमालाओं के इर्द–गिर्द, कलकल करती हुए नदियों का अपना अपूर्व अस्तित्व हैं। इसी सतपुड़ा के प्रायः मध्य भाग में नर्मदा के कछार से लगा हुआ छिन्दवाड़ा जिले का क्षितिज है।

सतपुड़ा पर्वत की सुरम्य घाटियों में स्थित छिन्दवाड़ा जिला मध्यप्रदेश के दक्षिणी जिलों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। छिन्दवाड़ा जिले का भौगोलिक विस्तार सतपुड़ा पठार के दक्षिण पश्चिम हिस्से में $21^0$28′ से $22^0$49 उत्तरी अक्षांश एवं से $78^0$10′ से $79^0$24′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राज्य के कुल क्षेत्रफल का 2.66 प्रतिशत क्षेत्र जिले में आच्छादित होकर नवाँ स्थान लिया है, तथा इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 11,815 वर्ग कि.मी है। जिले की लंबाई उत्तर से दक्षिण 136 कि. मी. तथा पूर्व से पश्चिम की ओर चौड़ाई लगभग 104 कि. मी. है। जिले के अंदर समुद्र तल से विभिन्न स्थानों की ऊँचाई 862 से 1200 मीटर है। दक्षिणी भाग में महाराष्ट्र राज्य के नागपुर एवं अमरावती जिले के मैदानी भाग में जिले की सीमा लगती है। उत्तर में नर्मदा घाटी स्थित जिला होशंगाबाद एवं जिला नरसिंहपुर तथा पश्चिम एवं पूर्व में क्रमशः बैतूल तथा सिवनी जिला स्थित है।

प्राकृतिक रचना की दृष्टि से इस जिले को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम नागपुर जिले का मैदानी भाग का वह क्षेत्र जिसके ऊँचाई के बराबर सौंसर तहसील का मैदानी भाग आता है। दूसरा मध्यक्षेत्र का हिस्सा जिसमें अमरवाड़ा तथा छिन्दवाड़ा तहसील दक्षिण हिस्सा एवं सौंसर तहसील का उत्तरी हिस्सा सम्मिलित है। तीसरा क्षेत्र अधिकांशतः उत्तरी क्षेत्र का है, जिसमें सतपुड़ा का पहाड़ी हिस्सा आता है, जो घाटियों से आच्छादित है।

भौगोलिक दृष्टि से छिन्दवाड़ा प्राकृतिक सुबमा तथा साधनों की सुविधा से भरपूर है। छिन्दवाड़ा गजेटियर 1995 के अनुसार इस जिले के पर्वत तथा पठारी भाग सतपुड़ा की महादेव पर्वत श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। जिले में भू–भाग की सामान्य औसत ऊँचाई लगभग 2150 फीट आंकी गई है। उत्तरी भाग में ऊँची पर्वत श्रेणियों तथा उनके मध्य में स्थित पठार पश्चिम से पूर्व की ओर फले हुए हैं। इस भाग की औसत ऊँचाई लगभग 2500 फुट है। इसके दक्षिण में छोटी घाटी बिखरी हुई श्रंखलाओं से विशाल पठारी भाग हैं। इसकी औसत ऊँचाई 1900 फीट है।

मानचित्र क्रमांक 3.1 भारत एवं मध्यप्रदेश में छिन्दवाड़ा जिले की स्थिति



जिले में 11 हजार 815 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में कुल 1084 ग्राम स्थित हैं। इनमें 81 वीरान हैं। इन ग्रामों में प्रशासन तंत्र अपना प्रशासन 06 राजस्व अनुविभाग से संचालित करता है। जिले के 4217 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र में 49 वन ग्राम भी स्थित हैं। जिला कुल 09 तहसीलें व 19 राजस्व सर्कल तथा 319 पटवारी हल्कों में विभक्त हैं। जिले में 11 विकासखण्ड हैं। विकासखण्डों में से बिछुवा, तामिया, हरई, जुन्नारदेव चार विकासखण्ड आदिवासी वर्ग के और अमरवाड़ा छिन्दबाड़ा, चौरई, मोहखेड़, पांढुर्ना, परासिया सौंसर सात सामुदायिक वर्ग के विकासखण्ड हैं।

जिले में 8 विधानसभा क्षेत्र 4 नगरपालिका, 8 नगर पंचायत, 11 जनपद पंचायत और 804 ग्राम पंचायतें हैं। जिले में 1903 आबाढ़ ग्राम और 1935 राजस्व ग्राम हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

1. छिन्दवाड़ा जिले के भौगोलिक पर्यावरण का अध्ययन करना।
2. छिन्दवाड़ा जिले की जनसंख्या का अध्ययन करना।

सारणी क्र 1 जिला छिन्दवाड़ा : जनसंख्या का वितरण

विकासखण्ड	1991	प्रतिशत	2001	प्रतिशत	2011	प्रतिशत
छिन्दवाड़ा	219631	14	282740	15.28	337059	16.12
मोहखेड़	125552	8	148423	8.02	168299	8.05
तामिया	76632	4.88	89278	4.82	113949	5.45
जुन्नारदेव	196722	12.54	214320	11.58	240651	11.51
परासिया	245955	15.67	272158	14.71	284952	13.63
अमरवाड़ा	119210	7.59	146294	7.91	159164	7.61
हर्रई	82695	5.27	102006	5.51	134893	6.45

चौरई	140873	8.98	169438	9.16	189468	9.06
सौंसर	140591	8.96	169480	9.16	18580	0.88
बिछुआ	64835	4.13	77544	4.19	87679	4.19
पाण्ढुर्ना	156006	9.94	177602	9.6	192612	9.21
कुल	1568702	100	1849283	100	2090306	100

स्त्रोत : पी–एच.डी. शोध प्रबंध

प्रस्तुत सारणी में छिन्दवाड़ा जिले की जनसंख्या के वितरण को प्रदर्शित किया गया है। अध्ययन हेतु जिले के वर्ष 1991 तथा 201 के जनगणना संबंधी आँकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 15,68,702 है। वर्ष 2001 में जनगणना में 2,80,581 की वृद्धि के साथ बढ़कर 18,49,283 हो गई । वर्ष 1991 में जिले के 11 विकासखण्डो में सबसे अधिक जनसंख्या वाला विकासखण्ड परासिया (2,45,955), 15.67 प्रतिशत जनसंख्या है तथा सबसे कम जनसंख्या बिछुआ विकासखण्ड (64,835) 4.13 प्रतिशत जनसंख्या है। वर्ष 2001 में सबसे अधिक जनसंख्या छिन्दवाड़ा में 2,82,740 है जो कूल जनसंख्या का 15.28 प्रतिशत है। सबसे कम जनंसख्या वाला विकासखण्ड बिछुआ (77,544) है कुल जनसंख्या का 4.19 प्रतिशत है। वर्ष 1991 तथा 2001 की जनगणना के अनुसार जिले की सबसे अधिक जनसंख्या वाले विकासखण्ड में परिवर्तन हुआ है। वर्ष 1991 में जनंसख्या की दृष्टि से परासिया विकासखण्ड का प्रथम स्थान 15.67 प्रतिशत है जबकि वर्ष 2001 में इसका दूसरा स्थान 14.71 है अर्थात् वृद्धि दर में कमी आई है। छिन्दवाड़ा विकासखण्ड की जनसंख्या 14 प्रतिशत से बढ़कर 15.28 प्रतिशत हो गई है।

जिला छिन्दवाड़ा : जनसंख्या का लिंग अनुसार वितरण

वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार छिन्दवाड़ा जिले की कुल जनंसख्या 15,68,702 आँकी गई है। जिसमें कुल स्त्री जनसंख्या 7,97,235 तथा कुल पुरूष जनसंख्या 8,36,302 है। जिले मे सबसे अधिक जनसंख्या परासिया विकासखण्उ में 2,45,955 है जिसमें कुल स्त्री जनसंख्या 1,18,572 तथा कुल पुरूष 1,27,383 है। परासिया में स्त्रीयों की तुलना में 8,811 पुरूष अधिक है। इसके विपरीत जिले मे सबसे कम जनंसख्या बिछुआ विकासखण्ड में 64,835 है। जिसमें स्त्रियों की कुल संख्या 31,919 तथा पुरूषों की संख्या 32,916 है। बिछुआ विकासखण्ड में स्त्रियों की संख्या की तुलना में 997 पुरूषों की संख्या अधिक है। छिन्दवाड़ा जिले की कुल स्त्री जनसंख्या तथा कुल पुरूष जनंसख्या के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि हर्रई विकासखण्ड में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या 145 अधिक है। अर्थात् स्त्रियों की सामाजिक स्थिति काफी अच्छी है। इसके अलावा जिले के अन्य विकासखण्डों में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कम है।

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार उपर्युक्त सारणी का निर्माण किया गया है। छिन्दवाड़ा जिले की कुल जनसंख्या 18,49,283 है। जिसमें कुल स्त्री जनसंख्या 9,01,146 तथा कुल पुरूष जनसंख्या

9,47,342 है। जिले में सबसे अधिक जनंसख्या छिन्दवाड़ा विकासखण्ड में 2,82,740 है जिसमें स्त्री जनसंख्या 1,36,887 तथा पुरूष जनसंख्या 146053 है। इसके विपरीत सबसे कम जनसंख्या बिछुआ विकासखण्ड में 77,544 है। जिसमें स्त्री जनसंख्या 38,161 तथा पुरूष जनसंख्या 39,383 है। सबसे अधिक जनसंख्या वाले विकासखण्ड़ में स्त्रियों की तुलना में 9,166 पुरूष अधिक है। बिछुआ विकासखण्ड़ में स्त्रियों की तुलना में 1,222 पुरूष संख्या अधिक है। छिन्दवाड़ा जिले में एकमात्र हर्रई विकासखण्ड़ है जहां पर स्त्रियों की कुल जनसंख्या पुरूषों की कुल जनसंख्या के बराबर 51,003 है। हर्रई विकासखण्ड़ में स्त्रियों को समाज में पुरूषों के समान स्थान प्राप्त है। परन्तु वर्ष 1991 की अपेक्षा स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कमी आई है।। 1991 में जहां इनकी संख्या पुरूषों से अधिक है। वहीं 2001 में पुरूषों के बराबर है।

प्रस्तुत सारणी क्रमांक 5.4 में वर्ष 1991 के आँकड़ों को प्रदर्शित किया गया है। इसमें छिन्दवाड़ा जिले की ग्रामीण, नगरीय जनसंख्या तथा क्षेत्रफल का अध्ययन किया गया है। जनगणना से प्राप्त आँकड़ों की एक आधारभूत विशेषता इसका ग्रामीण तथा नगरीय वितरण है। उपर्युक्त सारणी से ज्ञात होता है कि जिले में सबसे अधिक ग्रामीण जनसंख्या छिन्दवाड़ा विकासखण्ड में 14,5793 है, कुल ग्रामीण जनसंख्या से इसका प्रतिशत 12.71 है। सबसे कम ग्रामीण जनसंख्या बिछुआ विकासखण्ड में है जिसका प्रतिशत 0.42 है। नगरीय क्षेत्र में रहने वाली कुल जनसंख्या का अनुपात नगरीकरण के स्तर को प्रदर्शित करता है। नगरीय जनसंख्या में जैसे–जैसे वृद्धि होती है नगरों की संख्या तथा आकार में वृद्धि होती है। जिले में 8 विकासखण्डो में नगरीकरण का प्रभाव देखा गया है। तामिया, हर्रई, तथा बिछुआ विकासखण्डों को नगरों के अन्तर्गत नहीं रखा गया है। छिन्दवाड़ा विकासखण्ड में सबसे अधिक 20.37 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय है। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 22.01 वर्ग कि.मी. है। सबसे कम नगरीय जनसंख्या चौरई विकासखण्ड़ में है जिसका प्रतिशत 2.54 है।

जिला छिन्दवाड़ा : ग्रामीण, नगरीय जनसंख्या, वर्ष 2001

जनसंख्या धनत्व

जनसंख्या धनत्व सामान्य शब्दों में एक निश्चित भू–भाग के सम्पूर्ण क्षेत्रफल एवं सम्पूर्ण जनसंख्या के अनुपात को कहा जाता है। जनसंख्या के सामान्य वितरण के अपेक्षा जनसंख्या का धनत्व किसी क्षेत्र की जनसंख्या के क्षेत्रीय संबंध की व्याख्या करने में अधिक सक्षम होता है।

यह अनुपात प्रति इकाई क्षेत्र, प्रति वर्ग किलोमीटर, प्रति हेक्टेयर, प्रति वर्ग मील तथा प्रति मील में ज्ञात किया जाता है। अन्य शब्दों में जनसंख्या घनत्व का अभिप्राय प्रति इकाई भू–क्षेत्र पर निवास करने वाली जनसंख्या से है। किसी प्रदेश में जनसंख्या घनत्व आर्थिक विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों के विकास की अवस्था पर निर्भर करता है। किसी क्षेत्र के जनसंख्या का भार, अधिक तथा न्यून जनसंख्या के निर्धारण तथा क्षेत्रीय तुलना हेतु जनसंख्या घनत्व का महत्व है।

छिन्दवाड़ा जिले के ग्रामीण तथा नगरीय घनत्व के जनसंख्या संबंधी आँकड़ो को लिया गया है। तुलनात्मक अध्ययन हेतु वर्ष 1991 तथा वर्ष 2001 के जनसंख्या घनत्व का अध्ययन किया गया है। वर्ष

1991 में जिले में कुल जनसंख्या का औसत घनत्व 133 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है वर्ष 2001 में जिले का औसत घनत्व बढ़कर 157 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया है। क्षेत्रीय स्तर पर इसमें पर्याप्त भिन्नता है। वर्ष 1991 में औसत ग्रामीण घनत्व 103.53 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कि वर्ष 2001 में बढ़कर 120.13 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया अर्थात इस अवधि में औसत 16 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में वृद्धि हुई है। वर्ष 1991 में औसत नगरीय घनत्व 2220.85 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कि वर्ष 2001 में बढ़कर 2430.15 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया। इस अवधि में औसत 209.3 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि ग्रामीण घनत्व की तुलना में अधिक है।

जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या वृद्धि से अभिप्राय किसी क्षेत्र विशेष में एक निश्चित अवधि में निवास करने वाले लोगों की संख्या में परिवर्तन से है। यह परिवर्तन धनात्मक हो अथवा ऋणात्मक उस प्रदेश में उपस्थित वातावरण की संभावनाओं के प्रति मनुष्य की अनुक्रिया को अवश्य ही प्रतिबिम्बित करती है। जनसंख्या वृद्धि उस क्षेत्र के आर्थिक विकास, सामाजिक, जागरूकता, सांस्कृतिक आधार, ऐतिहासिक घटनाओं एवं राजनीतिक विचारधारा की सूचक होती है। जनसंख्या वृद्धि से यह ज्ञात होता है कि व्यक्तियों का रहन सहन आर्थिक संसाधनों की तुलना में जनसंख्या वृद्धि अधिक है तो देश के आर्थिक विकास मे अवरोध उत्पन्न होगें। किसी भी देश की जनसंख्या वहां के निवासियों की जन्म दर, मृत्यु दर तथा प्रवास पर निर्भर करती है। इन कारणों के कारण उसमें वृद्धि अथवा कमी होती है। जनसंख्या पर ही राष्ट्र का आर्थिक स्वरूप निर्भर करता है, उपरोक्त सारणी क्रमांक में भारत, मध्यप्रदेश तथा छिन्दवाड़ा जिले में जनसंख्या वृद्धि का अध्ययन किया गया है।

सारणी क्रमांक 2 भारत, मध्यप्रदेश तथा छिन्दवाड़ा जिले में
जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत में)

क्रं	वर्ष	जनसंख्या वृद्धि प्रतिशत में		
		भारत	मध्यप्रदेश	छिन्दवाड़ा
1	1951	13.13	8.67	5.85
2	1961	21.51	24.27	27.29
3	1971	24.8	28.67	25.95
4	1981	24.74	25.23	24.63
5	1991	23.86	26.84	27.21
6	2001	21.34	24.34	17.88
7	2011	17.64	20.3	13.03

स्त्रोत : जिला सांख्यकीय पुस्तिका 1951–2011

उपरोक्त सारणी को देखने से ज्ञात होता है कि जनसंख्या वृद्धि के अध्ययन हेतु वर्ष 1951 से 2001 के आँकड़ो को प्रतिशत में ज्ञात किया गया है। वर्ष 1951 में भारत, मध्यप्रदेश तथा छिन्दवाड़ा जिले में वृद्धि सबसे कम क्रमशः 13.13, 8.67 तथा 5.85 है वर्ष 1971 में तीनों स्तर पर वृद्धि की प्रवृत्ति देखी गई है यह वृद्धि क्रमशः 24.80, 28.67 तथा 25.95 है इसके पश्चात् के वर्षों में जनसंख्या वृद्धि में निरन्तर कमी दर्ज की गई है। इसका कारण लोगों में जागरूकता, शिक्षा का विस्तार है।

लिंग अनुपात

किसी भी देश के विकास में लिंग अनुपात की महत्वपूर्ण भूमिका के फलस्वरूप जनसंख्या भूगोल में इसका अध्ययन आवश्यक है। लिंग सरंचना का तात्पर्य स्त्रियों और पुरूषें के पारस्परिक अनुपात से है। लिंगानुपात को प्रति 1000 पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या से दर्शाया जाता है। विश्व में कई देशों यूरोप, लेटिन अमेरिका, अफ्रीका आदि अधिकांश देशों में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या अधिक है जबकि एशिया के अधिकांश देशों में स्त्रियों की तुलना में पुरूषों की संख्या अधिक है।

छिन्दवाड़ा जिले के वर्ष 2001 के लिंगानुपात के आँकड़ो के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि जिले में हर्रई विकासखण्ड में लिंगानुपात बराबर है। यहां प्रति 1000 पुरूषों में स्त्रियों की संख्या 1000 है। यह अच्छे संकेत है कि यहां समाज का स्त्रियों के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार है। परन्तु वर्ष 1991 की तुलना में वर्ष 2001 की अवधी में स्त्रियों की संख्या में कमी आई है। इस अवधि में मोहखेड तथा तामिया विकासखण्ड में भी कमी दर्ज की गई है वर्ष 2001 में लिंगानुपात क्रमशः 969.2, 960.5 है। जिले में सबसे कम लिंगानुपात चौरई विकासखण्ड में प्रति 1000 पुरूषों पर 934.7 स्त्रियां है आँकड़ो से यह स्पष्ट होता है कि यहां स्त्री योनी के बच्चों तथा स्त्री बच्चों को किशोरावस्था में पर्याप्त देखभाल एवं सुविधाएं उपलब्ध नहीं है। इसका कारण समाज का पक्षपाती व्यवहार है यहां स्त्री मृत्युदर पुरूष मृत्युदर की अपेक्षा कहीं अधिक है साथ ही आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग में महिलाओं द्वारा कठिन कार्य अथवा जोखिम पूर्ण कार्य करना है। इसके अलावा जलवायु, पोषण, मकान की सुविधा, रोशनदान की व्यवस्था रूढ़ीवादी परम्पराएँ आदि प्रमुख कारक है।

छिन्दवाड़ा जिले में 191–2001 दशक की अवधि के मध्य लिंग अनुपात मे पर्याप्त भिन्नता है। सारणी क्रमांक 5.18 के जनसंख्या संबंधी ऑकड़ो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जिले में कुल स्त्री जनसंख्या की तुलना में कुल पुरूष जनसंख्या अधिक है। वर्ष 1991 में जिले का औसत लिंगानुपात 953 है। जबकि वर्ष 2001 में कमी की प्रवृत्ति है। प्रति 1000 पुरूषों में स्त्रियों के मध्य ग्रामीण लिंग–अनुपात में कमी दर्ज की गई है इस अवधि में ग्रामीण लिंगानुपात 967 से गिरकर 961 हो गया है। लिंग–अनुपात में कमी की यह प्रवृत्ति मुख्यतः अधिक प्रजननता एवं स्त्रियों में अधिक मृत्यु दर का परिणाम है। इसके अलावा लड़को को अधिमान्यता एवं लड़कियों की उपेक्षा, लड़के एवं लड़की के स्वास्थ्य के स्तर में भिन्नता, लिंग सापेक्ष मृत्यु के घटने का सबसे बड़ा कारण लोगों में अशिक्षा है। जिले में नगरीय लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गई है जो कि संतोषजनक है नगरीय परिवेश में रहने वाले

लोगों ने इस अन्तर को आंशिक रूप से कम किया है। वर्ष 1991 में नगरीय लिंगानुपात 906 है जो वर्ष 2001 में बढ़कर 924 हो गया। ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति कुछ हद तक ठीक है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

छिन्दवाड़ा जिला जनसंख्या की दृश्टि से संपन्न जिला है। यहां सभी प्रकार की जनसंख्या हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जनजाती जनसंख्या आदि निवास करते हैं। जिले के विकासखण्डो में सबसे अधिक अनुसूचित जाति जनसंख्या परासिया विकासखण्ड 30,470 है कुल अनुसूचित जाति में इसका प्रति ात 17.59 है। दूसरे स्थान पर जामई विकासखण्ड है यहां अनुसूचित जाति जनसंख्या 28.764 है जिसका प्रतिशत 16.61 है जिले मे सबसे कम अनुसूचित जाति जनसंख्या तामिया विकासखण्ड में 4,896 है जो कुल अनुसूचित जाति का 2.82 प्रतिशत है। छिन्दवाड़ा जिले के ग्रामीण तथा नगरीय घनत्व के जनसंख्या संबंधी आँकड़ो को लिया गया है। तुलनात्मक अध्ययन हेतु वर्ष 1991 तथा वर्ष 2001 के जनसंख्या घनत्व का अध्ययन किया गया है। वर्ष 1991 में जिले में कुल जनसंख्या का औसत घनत्व 133 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है वर्ष 2001 में जिले का औसत घनत्व बढ़कर 157 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया है। क्षेत्रीय स्तर पर इसमें पर्याप्त भिन्नता है। वर्ष 1991 में औसत ग्रामीण घनत्व 103.53 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कि वर्ष 2001 में बढ़कर 120.13 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया अर्थात इस अवधि में औसत 16 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में वृद्धि हुई है। वर्ष 1991 में औसत नगरीय घनत्व 2220.85 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कि वर्ष 2001 में बढ़कर 2430.15 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया। इस अवधि में औसत 209.3 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि ग्रामीण घनत्व की तुलना में अधिक है।

सन्दर्भ ग्रंथ

- चांदना, आर.सी. (1987), "जनसंख्या भूगोल," कल्याणी पब्लिकेशन, लुधियाना
- पण्डा, बी.पी. (1986), "जनसंख्या भूगोल," मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्य अकादमी, भोपाल।
- हीरालाल (1986), "जनसंख्या भूगोल," वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर
- तिवारी, व्ही.के. (1997), "भारत का जनसंख्या भूगोल," भाग – 1 तथा 2, हिमालय, पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई।
- तिवारी, व्ही.के. (1998), "जनसंख्या भूगोल," हिमालय, पब्लिशिंग हाऊस, गिरगाँव, मुम्बई।
- सुन्दरम् के.व्ही. (1985), "जनसंख्या भूगोल," हेरीटेज पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

****

''ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन'' : एक अध्ययन

डॉ. आर. पी. यादव,
विभागाध्यक्ष भूगोल
शासकीय महाविद्यालय बिछुआ
डॉ0 मनीता कौर
अतिथि विद्वान

शोध सारांश :–

ग्लोबल वार्मिंग 21वीं सदी का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है,जो हमारे वैश्विक समाज की संरचना को चुनौति देता है। ग्लोबल वार्मिंग,वातावरण में ग्रीन हाउस गैसो की भारी वृद्धि के कारण होता है। बिजली उत्पादन में जीवाश्म ईंधन का लगातार उपयोग किया जा रहा है। इन ईंधनों के जलने से कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस आक्साइड जैसी गैसे निकलती है जिससे ग्लोबल वार्मिंग का खतरा लगातार पृथ्वी के पर्यावरण को बड़ा नुकसान पहुंचा रहा है। उर्जा के नवीनकरणीय स्त्रोतों को खोजना और उनका उपयोग करना आवश्यक हो गया है। इन्ही समस्याओं के समाधान खोजने का एक छोटा सा प्रयत्न इस शाध पत्र में किया गया, कैसे और क्यों परिवर्तन हो रहे है। जलवायु परिवर्तन के पूर्वानुमानित प्रभाव को देखना, खोज करना, प्रस्तावित समाधानों की व्याख्या करना।

परिभाषिक शब्दावली :– कार्बन डाइऑक्साइड, ग्लोबल वार्मिंग, तापमान, जलवायु परिवर्तन।

प्रस्तावना :– ग्लोबल वार्मिंग या वैश्विक तापमान बढ़ने का मतलब है कि पृथ्वी लगातार गर्म होती जा रही है। वैज्ञानिको का कहना है कि आने वाले दिनों में सूखा की समस्या बढेगी, बाढ़ की घटनायें बढेगी और मौसम का मिजाज पूरी तरह बदला हुआ दिखेगा। ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन औसत वैश्विक तापमान में वृद्धि को संदर्भित करते है। माना जाता है कि प्राकृतिक घटनाओं और मानवीय गतिविधियों को औसत वैश्विक तापमान में इस तरह की वृद्धि का मुख्य कारण माना जाता है। जलवायु परिवर्तन, वाहनों, कारखानों और बिजली स्टेशनों से कार्बन डायआक्॔साइड के बढ़ते उत्सर्जन के कारण, न केवल वायु मंडल और समुद्र को प्रभावित करेगा, बल्कि पृथ्वी के भूविज्ञान को भी बदल देगा। जीवाश्म उर्जा के हमारे उपयोग के कारण कार्बन डायआक्॔साइड के उर्त्सजन से जलवायु बदलाव होगा। आईपीसीसी की भविष्यवाणी के अनुसार हमारे मौजुदा औसत तापमान में 1.7 डिग्री सेल्सियस की जबरदस्त वृद्धि है। इससे हमारी सभ्यता में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के बदलाव हो सकते है, लेकिन वर्तमान में हमारे समाज पर कुल प्रभाव बहुत अनिश्चित है। ग्रीन हाउस गैसों के कारण ''उबलते और मंथन'' प्रभाव के कारण हमारा वातावरण गर्म, अधिक अशांत और अधिक अप्रत्याशित हो रहा है। ग्लोबल वार्मिंग

21 वी सदी का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है, जो हमारे वैश्विक समाज की संरचना को चुनौति देता है। पृथ्वी के तापमान में हो रही वृद्धि (जिसे 100 सालों के औसत तापमान पर 01 डिग्री फारेनहाइट आंका गया है, के परिणाम स्वरूप बारिश के तरिकों में बदलाव, हिमखंडों और ग्लेशियरों के पिघलने, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि और वनस्पति तथा जंतु जगत पर प्रभावों के रूप में सामने आ सकते है।)

अध्ययन क्षेत्र :– प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र ग्लोबल वार्मिंग के प्रभावों पर केंद्रित है।

अध्ययन के उद्देश्य –

- लोगों को जागरूक करना।
- उन माध्यमों का पता लगाना जिससे पृथ्वी को गर्म होने से बचाया जा सके।
- प्रकृति को बचाने के लिए प्रयास करना।
- जलवायु परिवर्तन के कारण स्थानीय पादप और जीव जंतुओं की प्रजातियों को समाप्त होने से रोकना।

आंकड़ो का संकलन – द्वितीयक संमको का संकलन, विषय से संबंधित पूर्व में किए गए प्रकाशित शोध

ग्रंथों, पत्र–पत्रिकाओं तथा इंटरनेट आदि के माध्यमों से तथ्य संकलित किये गये।

प्रविधि – प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रंथालय अध्ययन पद्धति के साथ विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया।

विश्लेषण :– ग्रीन हाउस गैसें वह गैस होती है जो पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश कर यहां का तापमान बढ़ाने में कारण बनती है। वैज्ञानिको के अनुसार इन गैसों का उत्सर्जन यदि इसी प्रकार चलता रहा तो 21 वीं शताब्दी में पृथ्वी का तापमान 3 डिग्री से 8 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है। अगर ऐसा हुआ तो इसके परिणाम घातक होंगे। दुनिया के कई हिस्सों में बिछी बर्फ की चादरें पिघल जाएगी। समुद्र का जल स्तर कई फीट उपर तक बढ़ जाएगा। इससे दुनिया के कई हिस्से जलमग्न हो जाएगें, भारी तबाही होगी। यह तबाही किसी विश्वयुद्ध या किसी 'ऐस्टेराइॅड' के पृथ्वी से टकराने के बाद होने वाली तबाही से भी बढ़कर होगी। हमारे ग्रह पृथ्वी के लिए भी यह स्थिति बहुत हानिकारक होगीं। ग्रीन हाउस गैसो के उत्सर्जन से उष्ण कटिबंधीय रेगिस्तानों में नमी बढ़ेगी। मैदानी इलाकों में भी इतनी गर्मी पड़ेगी जिनती कभी इतिहास में नहीं पडी। इसी वजह से विभिन्न प्रकार की जानलेवा बीमांरियां पैदा होगी। वर्तमान में विश्व ग्लोबल वार्मिंग के बढ़ते सवालों से जूझ रहा है। इस सवाल का जवाब जानने के लिए विश्व के अनेक देशों में वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोग आर खोजें हुई है। उनके अनुसार अगर प्रदूषण फैलने की रफ्तार इसी तरह बढ़ती रही तो अगले दो दशकों में धरती का औसत तापमान 0.3 डिग्री सेल्सियस प्रति दशक के दर से बढेगा, जो चिंताजनक हैं। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों ने 2015 तक नई जलवायु

संधि कराने के लिए पहला कदम उठाया था, और इस बात पर बातचीत शुरू की है कि वे किस तरह इस लक्ष्य को पूरा करेगें। यह संधि विकसित और विकासशील देशों पर लागू होगी। जिसे 2020 तक लागू कर दिया जायेगा।

वैज्ञानिको और पर्यावरणविदों का कहना है कि ग्लोबल वार्मिंग में कमी के लिए मुख्य रूप से सी. एफ.सी गैसों का उत्सर्जन रोकना होगा और इसके लिए फ्रिज, एयर कंडीशनर और दूसरे कूलिंग मशीनों का इस्तेमाल कम करना होगा या ऐसी मशीनों का उपयोग करना होगा जिससे सी.एफ.सी गैसें 3

कम निकलती है। अक्षय उर्जा के उपायों पर ध्यान देना होगा। यानि अगर कोयले से बनने वाली बिजली के बदले पवन उर्जा, सौर उर्जा, और पनबिजली पर ध्यान दिया जाए तो वातावरण को गर्म करने वाली गैसों पर नियंत्रण पाया जा सकता है तथा साथ ही जंगलों में आग लगने पर रोक लगानी होगी। इंटरगवर्नमेंट पैनल ऑन क्लाइमेंट चेंज (IPCC,2007) के अनुसार ''20 वीं सदी के मध्य के बाद से जलवायु प्रणाली के उर्जा संतुलन में परिवर्तन को दर्शाता है, अर्थात् आने वाले सौर विकिरण और पृथ्वी से निवर्तमान अवरक्त विकिरण के बीच सापेक्ष संतुलन में परिवर्तन को दर्शाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार 28 जुलाई 2010 को राष्ट्रीय महासागरीय और वायुमंडलीय प्रशासन (एन.ओ.एए) की बैठक के दौरान सबसे गर्म समय दर्ज किया गया था। 1992 में रिया अर्थ समिट में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेशन के हस्ताक्षर और 2005 में क्योटो प्रोटोकॉल में भी चर्चा की गई। प्राकृतिक वातावरण के साथ–साथ मानव समाजों और हमारी अर्थव्यवस्थाओं पर पडने वाले महत्वपूर्ण और व्यापक प्रभावों को इंगित करता है। ग्लोबल वार्मिंग के परिणामस्वरूप जलवायु घटनाएं–तूफान, बाढ़, सूखा आदि बढ़ेगा। उच्च दर, सुनामी और अन्य प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि के कारण, मरने वालों की संख्या बढ़ जाएगी। वैश्विक बदलाव से कई पौघों और जीव–जनतुओं के आवासों का नुकसान होगा है। इस मामले में जीव–जंनतुओं को अपने प्राकृतिक आवास से पलायन करने की आवश्यकता होती है और उनमें से कई विलुप्त हो जाते है। यह जैव विविधता पर ग्लोबल वार्मिंग का बडा प्रभाव है, जंगल की आग बडी मात्रा में कार्बन युक्त धुएं का उत्सर्जन करती है। इन गैसों को वायुमंडल में छोडा जाता है, और पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप ग्लोबल वार्मिंग बढती जाती है। वाहन जीवाश्म ईंधन जलाते है जा कार्बन डॉइआक्सॅाइड और अन्य विषाक्त पदार्थो की एक बडी मात्रा को वातावरण में उत्सर्जित करते है जिसके परिणामस्वरूप तापमान में वृद्धि होती है। कारखानों से निकलने वाला हानिकारक उत्सर्जन पृथ्वी के बढ़ते तापमान को बढ़ाता है। ज्वालामुखी ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे बडे प्राकृतिक कारक है। ज्वालामुखी विस्फोट के दौरान उत्सर्जित राख और धुंआ वायुमंडल में चला जाता है, और जलवायु को प्रभावित करता है। पिछले 100 वर्षो में औसत वैश्विक तापमान में 0.740 ब की वृद्धि, 40 मिमि से अधिक के समुद्र स्तर में

वृद्धि, मौसम में महत्वपूण बदलाव आर्कटिक समुद्री बर्फ का पीछे हटना और लगभग सभी महाद्वीपीय शामिल है।

निष्कर्ष – ग्लोबल वार्मिंग एक बड़ा खतरा है और इनसे निपटने के लिए उचित उपाय किए जाने चाहिए। यह समस्या केवल मनुष्यों की ही नहीं बल्कि जीव–जन्तुओं के लिए भी है। ध्रुवीय आइस लैंड़ के पिघलने से बाढ़ आ जाएगी तो हर जगह तबाही का कारण बन सकता है। समुद्र का बढता जल स्तर कृषि और मछली पकड़ने की गतिविधियों को नष्ट कर देगा। यह पारिस्थितिक तंत्र को गंभीर रूप से प्रभावित करेगा और पर्यावरण संतुलन को बिगाड देगा। ग्लोबल वार्मिंग से जलवायु परिस्थितियों में बदलाव आया है। कुछ स्थानों पर बाढ़ है तो कुछ स्थानों पर सूखा है। ग्लोबल वार्मिंग से ताप और आर्द्रता के पैटर्न में बदलाव आता है। अतः उपर्युक्त घटनाओं से निपटने के लिए लोागों में जागरूकता एक महत्वपूर्ण 4

कदम साबित हो सकता है। हमें अपनी पृथ्वी को सही मायनों में ''ग्रीन'' बनाना होगा। अपने 'कार्बन फुटप्रिंटस ;प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन को मापने का पैमानाद्ध को कम करना होगा।

सुझाव –

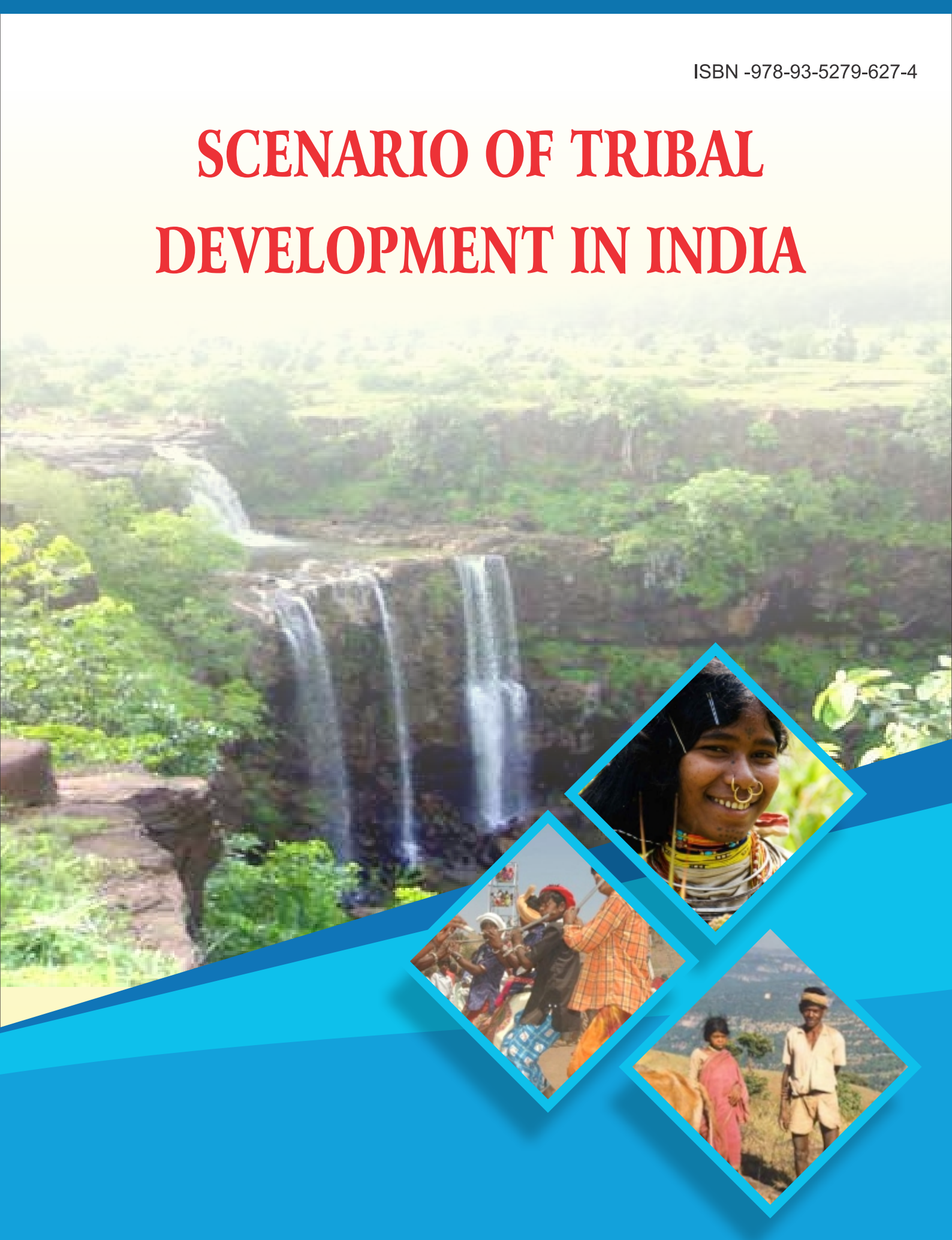
- वन संपदा की अंधाधुध कटाई को रूकवाना होगा,जिससे पर्यावरण संरक्षित रहे।
- ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमो लाना होगा।
- समुद्र के बढ़ते जल स्तर को रोकना।
- अम्लीय वर्षा के बढ़ते प्रभाव को रोकना
- बाढ़ –सूखा जैसी आपदाओं को रोकना।
- जलवायु परिवर्तन से बढ़तें मरूभूमि क्षेत्रों की वृद्धि को निंयत्रित करना।
- आस–पास के वातावरण को प्रदूषण से जितना मुक्त रखेगें, इस पृथ्वी को बचाने में उतनी बड़ी भूमिका निभाएंगें।
- वृहद विकास योजनाओं को शुरू किया जाना चाहिए ताकि बडे पैमाने पर विकास हो सके।

–: संदर्भ :–

- मणि दिनेश ''ग्लोबल वार्मिंग'' सत्साहित्य प्रकाशन, 2015 नई दिल्ली
- शर्मा श्याम सुन्दर '' ग्लोबल वार्मिंग कारण और निराकरण'' पब्लिशर्स शिलालेख 2013
- मेहता डॉ रमा ''जल चेतना'' तकनीकी पत्रिका'' जनवरी 2014
- www.intechopen.com
- www.bigmelt.com
- www.epa.gov

ISBN -978-93-5279-627-4

SCENARIO OF TRIBAL DEVELOPMENT IN INDIA



Dr. Rajendra Prasad Yadav

Proceedings of the National Research Seminar

(27-28 March 2017)

On

SCENARIO OF TRIBAL DEVELOPMENT IN INDIA

Government College Bichhua

Raja Shankar Shah University Chhindwara (M.P.)

© Copyright, Author

All right reserved. No Part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted, in any form by any means, electronic, mechanical, magnetic, optical, chemical, manual, photocopying, recording or otherwise, without the prior written consent of its writer.

Dr. Rajendra Prasad Yadav

Department of Geography

Govt. College Bichhua

District- Chhindwara (M.P.)

ISBN- 978-93-5279-627-4

Month & Year of Publication- December, 2018

Preface

Development is a process of change of social structure with the goal of raising production. This change encompasses both, the increasing use of modern scientific knowledge, technology and inputs as well as orientation of social organization, aims and values for making capable of sustaining sophisticated production technology. It goes without saying that development is not possible without improving agriculture, which on the other hand depends on modern yield-raising technologies. In this context, tribal people are somewhat different from higher communities.

There is a big gap in the understanding of the development process of tribes. The present study focuses to fill this gap by elaborating the social development processes in general and of tribal agricultural development in particular.

Since the beginning of the Planning process, efforts have been made to ensure that the tribal people were included in the growth process. However, the strategy changed with each Five Year Plan as new lessons were learnt from various developmental efforts. The first Five Year Plan emphasized the provision of additional financial resources through a community development approach to address the problems of tribal people rather than evolving a clear cut tribal development strategy.

The strategy of development through Tribal Development Blocks had its limitations as well, as it failed to address the cause of the tribal population of the country living outside the Tribal Development Blocks, which comprised more than 60% of the total tribal population. During the 5th Five Year Plan period, the exercise of identification of tribal majority blocks was undertaken.

The capacity of tribal people to harness the fruits of development and to access various schemes for delivery of public goods and services has remained

limited. The Integrated Tribal Development Agencies were the Institutions assigned with the role to facilitate such access.

Though regular efforts are going on to uplift the life standard of the tribal people; the situation is yet very poor. The researchers have contributed their ideas to uplift the life standard of the tribal population during their presentation. It would be better to provide conducive life environment to tribal people according to their customs and creeds. Modern life concepts should not be thrown on the tribal people. Though, the modern life style is impacting tribal life style gradually. More infrastructure and livelihood facilities should be made available for the betterment of tribal life.

Rajendra Prasad Yadav

SCENARIO OF TRIBAL DEVELOPMENT IN INDIA

Index

Sr. No.	Topic	Name	Page no.
01	विकास के आईने में भारत के जनजातीय समुदाय का प्रतिबिम्ब	प्रोफेसर श्रीकमल शर्मा	01
02	*Social System and Tribal Agricultural Development In Chhindwara District (Madhya Pradesh)*	*DR. D. D. Vishwkarma*	16
03	Importance of Fairs in Tribal Life:Study of Shankarvan Fair Chhindwara District	Dr. Rajendra Prasad Yadav Dr. Gajendra Kumar Namdeo	30
04	Crop Suitability Analysis of Groundnut and Sunflower using Geoinformatics, A Case Study of Jallutu Watershed, Tamil Nadu	R. Jegankumar, K. Balasubramani, P. Masilamani, V. Indra, V. Durga, S. Abdul Rahaman	34
05	Educational Status of Scheduled Caste and Scheduled Tribes in India: Constitutional Provision and Governmental Interventions	Mrs. Sarita Bobade, Dr. Madhulika Varma	46
06	A Study On Effect Of Socio-Economic Attributes (Experience In Potato Cultivation, Family Income And Farm Power) On Adoption Of The Tribal Potato Growers Of Shahdol District (MP)	V.Meshram, N.Chobitkar, V.K.Pyasi, K. K. Singh	58
07	IMPACT OF IRRIGATION ON THE AGRICULTURE IN THE COMMAND AREA OF BOR RESERVORE IN WARDHA DISTRICT	Dr. R P Tiwari, Dr.R.P.Yadav &, Dr.Deepti S. Pinjare	69
08	अनुसूचित जनजाति विकास : शिक्षा योजनाएं एवं विकास	अर्चना व्यास, दीपशिखा व्यास	79
09	आदिवासी क्षेत्र के ग्रामीण अधिवास का प्रारूप एवं जनांकिकीय अध्ययन छिन्दवाड़ा जिले के संदर्भ में	अर्पणा पुणेकर, ममता साहू	88

10	नरसिंहपुर जिले के आदिवासी क्षेत्रों में कृषि व उद्योगों के बीच सहसम्बंध	डॉ. अधिकेश राय	99
11	मध्यप्रदेष में अनुसूचित जनजाति वर्ग के शैक्षणिक विकास हेतु शासकीय योजनाओं का मूल्यांकन	डॉ. अषोक कुमार बारसिया	107
12	संवैधानिक एवं प्रशासनिक व्यवस्थाएँ– आदिवासी विकास के संदर्भ में	डॉ. कपिल खरे	112
13	आदिवासी विकास में संचार साधनों का प्रभाव	डॉ. दिनेष ढाकरिया, प्रो. मालती बनारसे	116
14	जनजाति छात्राओं में षिक्षा एवं कानूनी जागरूकता का एक समाजषास्त्रीय अध्ययन	कु. फरहत मंसूरी डॉ. अर्चना गौर	125
15	प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण का भौगोलिक अध्ययन	डॉ. आर. पी. यादव मीना ठाकरे	131
16	जनजातीय विकास के समक्ष गरीबी की चुनौती	डॉ.आर.एस.त्रिपाठी शैलेन्द्र वर्मा	135
17	आदिवासी विकास और शासन की योजनाएँ (छिन्दवाडा जिले के विषेष संदर्भ में)	डॉ. शारदा प्रसाद विनाकिया	143
18	जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक विकास का भौगोलिक अध्ययन (मध्यप्रदेष के संदर्भ में)	डॉ. शाहिदा बेगम मंसूरी	155
19	छिन्दवाड़ा जिले में साक्षारता का भौगोलिक अध्ययन	रघुवीर उइके	161
20	कृषि पर जनसंख्या वृद्धि एक प्रभावः छिन्दवाड़ा के संदर्भ में	दुजारी बोसम	167

विकास के आईने में भारत के जनजातीय समुदाय का प्रतिबिम्ब

प्रोफेसर श्रीकमल शर्मा
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष भूगोल विभाग,
एवं संचालक जनसंख्या शोध केन्द्र
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (मध्यप्रदेश)

औचित्य

जनजातीय समुदाय समाज का ऐसा वर्ग है जो न केवल आधुनिक विकास की श्रृंखला के आरम्भिक छोर पर है बल्कि विकास की रफ्तार के साथ कदम से कदम मिला कर भी नहीं चल पा रहा है। आदिवासी विकास लम्बे समय से विवाद का विषय रहा है। जहाँ एक वर्ग उनकी संस्कृति को अक्षुण्य रखने के हिमायती रहा है, वहीं दूसरा अपेक्षया प्रवल वर्ग उन्हे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सभी स्तरों पर सहभागी बनाने को ही समीचीन मान रहा है। देश के विकास कार्यक्रमों के छः दशक उपरान्त आदिवासी समुदाय को एकाकी तथा बाह्य जगत से अप्रभावित रखना तो असम्भव सा है। आधुनिक अति व्यापक एवं तीव्र संचार के युग में आदिवासी के जीवन में भी रेडियो, टेलीविजन तथा मोबाइल गहराई से पैठ चुका है। उसके मन में भी आधुनिकता की तीव्र ललक पैदा हो चुकी है। यह अवश्य है कि न केवल पारम्परिक जीवनशैली से आधुनिक शैली में परिवर्तन मंद हो सकती है बल्कि उनकी सनातनी परम्पराओं के प्रतिकूल भी हो सकती है। उनका सरल–सहज पर्यावरण–मैत्रीपूर्ण जीवन आधुनिक विषम, व्यक्तिवादी तथा पर्यावरण विरूपक के स्वरूप में बदलता जा रहा है। अब तक हम विकास की अपनी स्वीकृत सिद्धान्तों में इतना आगे बढ़ गए हैं कि उनको बदलना उचित नहीं होगा। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि विकास का एक ही कार्यक्रम सभी भागों में तथा सभी समाज पर समानरूप से नहीं अध्यारोपित किए जा सकते। उसमें क्षेत्र एवं समाज की परिस्थिति के अनुरूप संशोधन आवश्यक होता है; क्योंकि विकास के पथ पर अग्रसर होना वास्तव में सीखने की प्रक्रिया है। यह सीखना कई बातों पर निर्भर होता है। इनमें नवाचारों संबंधी सूचनाओं के प्रभावी ढंग से प्रसार, नवाचारों के गुण तथा प्रसरण के मार्ग में आने वाली बाधाओं के साथ–साथ अभिग्रहीत के व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आर्थिक गुण मुख्य ह। अस्तु आदिवासी क्षेत्रों में उनकी क्षमता के अनुरूप समायोजित कार्यक्रमों के सफल होने की ही सम्भावना अधिक है।

प्रयत्न

संविधान की रचना के समय यह अनुभव किया गया कि देश में कुछ समुदाय सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक दृष्टि से काफी पिछड़े हैं। अस्तु उनके हितों की रक्षा के लिए विशेष प्रयत्न आवश्यक है। इन समुदायों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में अनुसूचित किया गया। संविधान की धारा 342 के अनुसार जनजातियों की सूची बनी। सन् 1950 तके 14 राज्यों की 212 जनजातियां अनुसूचित हो चुकी थीं। इन सूचियों परिवर्तन किया जा कर सन् 2011 में 705 मुख्य और 195 गौण अनुसूचित की जा चुकी हैं। इन समुदाय के लोगों और उनके क्षेत्रों के विकास के लिए सेड्यूल 5 और 6 के निर्देशानुसार काफी लचीला प्रशासन प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। ट्राइवल एडवाइजरी कौंसिल्स तथा आटोनमस कौंशिल्स स्थापित की गईं। वैधानिक एवं प्रशासनिक प्रक्रियों को परिस्थितियों के अनुरूप संशोधित किया गया। यह तय किया गया कि इन वर्गों के विकास एवं कल्याण कार्यक्रम का क्रियान्वयन समर्पित भावना से किया जाय ताकि ऐसे समाज की स्थापना हो सके **जिसके प्रत्येक नागरिक को अपने पूर्ण सामर्थ्य से अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर मिले।**

जनजातीय मुद्दों के परीक्षण एवं उनके हल के सुझाव के लिए अनेकों कमेटीज तथा कमीशन्स बनाए गए तथा उनकी अनुशंसा के अनुसार प्रशासनिक, अधोसंरचानात्मक तथा वित्तीय सुधार किए जाते रहे हैं। तदनुसार नीतियां, रणनीतियां, योजनाएं तथा कार्यक्रम बनाए जाते रहे। सरकार के अलावा गैर–सरकारी संगठन भी जनजातियों के बहुमुखी उत्थान के लिए सहयोग देती रहीं हैं। अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के विकास के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना काल से ही प्रयत्न किया जा रहा है। देश के बहुमुखी विकास के लिए आरम्भ किए गए बहुआयामी सामुदायिक विकास योजनाओं के साथ जनजातीय क्षेत्रों में विशिष्ट बहु–उद्देश्यीय जनजातीय परियोजनाएं बनाई गईं। इनके अनुभव के आधार पर तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में जनजातीय विकास खंड स्थापित किए गए। पुनः विकास का नई दिशा एवं गति देने के लिए पाँचवी पंचवर्षीय योजना काल **जनजातीय उपयोजना** की एक नई रणनीति तैयार की गई। इस उपयोजना के माध्यम से जनजातियों के शैक्षणिक, आर्थिक तथा स्वास्थ के उन्नयन के लिए कार्यक्रम चलाए गए। इन कार्यक्रमों से जनजातीय क्षेत्रों में विकास के लिए आधारभूत संरचना सृजित की गई तथा विकास की धारा भी प्रस्फुटित हुई। इस धारा के आकार एवं वेग का मूल्यांकन विकास शब्द की अपेक्षाओं के संदर्भ में करना चाहिए।

जनजातीय विकास के मूल्यांकन के संदर्भ

जनजातीय विकास का मूल्यांकन करने के पूर्व विकास शब्द का भाव समझना महत्वपूर्ण है। सन् 1970 के दशक के आरंभ तक विकास की अवधारणा आर्थिक वृद्धि, बेरोजगारी और असमानताओं के घटाने तक सीमित रही। इसके बाद विकास की प्रक्रिया की समग्रता पर जोर दिया जाने लगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के सामाजिक विकास संस्थान ने विकास को सार रूप में कहा है कि **'विकास सामाजिक**

एवं आर्थिक वास्तविकता के गुणात्मक परिवर्तन तथा मात्रात्मक वृद्धि की प्रक्रिया है'। इस वास्तविकता को समाज अथवा अर्थव्यवस्था कहते हैं। वे समाज की अर्न्तनिहित निर्माण की संभावनाओं को विकसित करने को ही विकास मानते हैं। अस्तु वे दशाएं एव परिस्थितियाँ जो जनकल्याण को बढ़ावा देती हैं, उन्हें ही विकास कह सकते हैं। इस प्रकार **'सम्पूर्ण समाज और सामाजिक व्यवस्था का श्रेष्ठतर दशा अथवा अधिक मानवीय दशा की ओर सतत उत्थान करना ही विकास है'।** इन अर्थो में विकास आर्थिक वृद्धि, आधुनिकीकरण आदि अवधारणाओं से नितान्त भिन्न है तथा इसके अर्थ में **विकास के तीन नाभिक मूल्य** : जीवन–निर्वाह, आत्म–सम्मान और दासता से मुक्ति समाहित हैं।

मानव विकास की अवधारणा एवं जनजातीय विकास

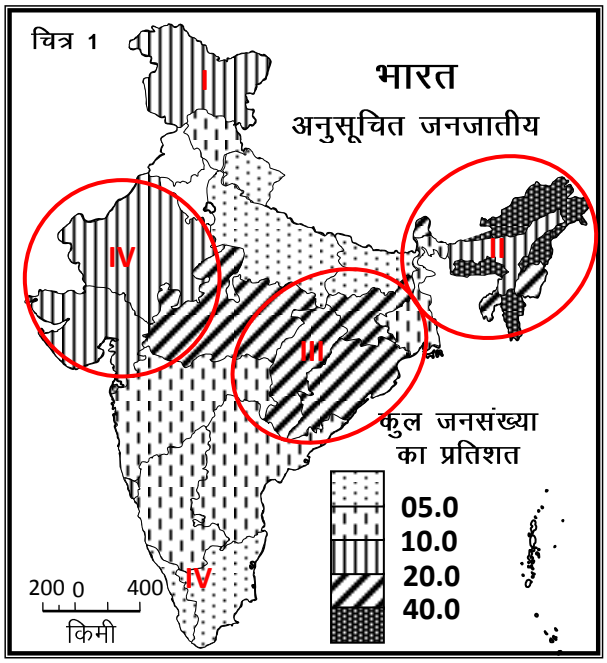
इसी बीच मानव विकास की अवधारणा विकसित की गई जो विकास की नई अवधारणा है जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम ने सन् 1990 में अपने ***डेवलमेण्ट रिपोर्ट*** के माध्यम से प्रस्तुत किया था। इसमें भी विकास आर्थिक वृद्धि तथा आय में बढ़ोत्तरी से बड़ी चीज माना गया है। यह मानव कल्याण के उद्देश्य से की गयी **समाज के पुनर्गठन एवं पुनउंन्मुखीकरण की प्रक्रिया है।** इसकी मान्यता है कि मानव विकास का मौलिक लक्ष्य **मनुष्य द्वारा अवसरों के विकल्पों की सीमा को बढ़ाना है** जिससे विकास अधिक प्रजातांत्रिक तथा सहभागितापूर्ण बन सके। **इन अवसरों में प्रमुख हं**– स्वस्थ दीर्घ जीवन के अवसर, शिक्षित होने के अवसर तथा सम्मानजनक जीवनस्तर के अवसर। इनके अलावा राजनीतिक स्वतंत्रता, मानवाधिकार तथा आत्मसम्मान चयन के अतिरिक्त विषय हैं। संक्षेप में **विकास की प्रक्रिया मानव–केन्द्रित होनी चाहिए**। विकास की प्रक्रिया मानव को केन्द्रबिन्दु मानकर उसके इर्दगिर्द घूमनी चाहिए न कि विकास को केन्द्रबिन्दु मानकर मानव उसके इर्दगिर्द घूमे। इस तरह कुल मिलाकर मानव के गुणवत्ता को बढ़ाना ही इसका उद्देश्य है जिससे वह अपने विकास के सुअवसरों का अधिक से अधिक लाभ ले सके।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मानव–विकास केवल मानव संससाधन का विकास तदनुरूप शिक्षा का विस्तार मात्र नहीं है। यह उससे बड़ी बात है जिसमें मानव–स्वास्थ्य महत्वपूर्ण घटक तो है ही सभी महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय के चयन की स्वतंत्रता भी मानव–विकास का महत्वपूर्ण अवयव है। इसी तरह आर्थिक विकास तथा मानव–विकास की अवधारणाओं में भी मौलिक अन्तर यह है कि आर्थिक विकास केवल एक विकल्प– आय की वृद्धि पर विचार करता है जबकि मानव–विकास सभी प्रकार के विकल्पों–आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक–विस्तार के विकल्पों पर विचार करता है। इसके पीछे मौलिक विचार यह है कि मानव के विकल्पों का विस्तार आय के उपयोग से हो सकता है न कि केवल आय बढ़ाने मात्र से। यहाँ विकास के साधन एवं साध्य में अन्तर पर ध्यान देना चाहिए। **मानव विकास का लक्ष्य विकल्पों का विस्तार है और आय में वृद्धि इस लक्ष्य प्राप्ति का**

आवश्यक साधन है। इस तरह विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया मानव–केन्द्रित हो गई है। नागरिक को अपने पूर्ण सामर्थ्य से अपने व्यक्तित्व का विकास के पूर्ण अवसर मिलें।

विकास की इन नई अवधारणाओं के परिपेक्ष्य में देश की जनजातीय समुदाय के विकास का विहंगम विश्लेषण प्रस्तुत है। विकास के मूल्यांकन के कई दृष्टिकोण हो सकते हैं, जैसे कि इसकी समसामयिक दशा अथवा दिशा का मूल्यांकन, सापेक्ष अथवा निरपेक्ष मूल्यांकन आदि। वर्तमान चर्चा में मुख्यरूप से **विकास की दिशा** पर जोर दिया गया है; क्योंकि **यह सर्वमान्य है कि जनजातीय लोगों के विकास का वर्तमान स्तर सामान्य वर्ग के समुदायों से नीचे है।**

चित्र 1



जनजातीय आवास्य

सन् 2011 में देश में 10.43 करोड़ अनुसूचित जनजाति के लोग हैं। इनका देश की कुल जनसंख्या में हिस्सा 8.6 प्रतिशत है। कुल अनुसूचित जनजातीय लोगों में से 90 प्रतिशत (9.38 करोड़) गांवों में और शेष (1.05 करोड़) नगरों में रहते हैं। इस तरह जनजातीय लोग मुख्यरूप से सुदूर अगम्य ग्रामीण अंचलों में रहते हैं। तथापि इस दशा में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। ये लोग भी नगरों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। वर्ष 1971 में केवल 3.5 प्रतिशत जनजातीय लोग ही नगरों में रहते थे। यह अनुपात बढ़ कर वर्ष 2011 में 10 प्रतिशत हो गया है। अगर **नगरीकरण** को विकास का एक सूचक माना जाय तो ये लोग भी तेजी से विकास की ओर बढ़ रहे हैं।

जनजातीय जनसंख्या की दृष्टि से मध्य प्रदेश सबसे आगे है जहाँ 1.53 करोड़ जनजातीय लोग रहते हैं। महाराष्ट्र में 1.05 करोड़ जनजाति के लोग हैं। इनके साथ ही ओडिशा, राजस्थान, गुजरात, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ और आन्ध्र प्रदेश प्रत्येक राज्य में 50 लाख से एक करोड़ तक जनजातीय लोग हैं। राज्य की कुल जनसंख्या में इनके हिस्से की दृष्टि से उत्तरपूर्वी राज्य सबसे आगे हैं (**चित्र 1**)। सर्वाधिक अनुपात मिजोरम में 94.4 प्रतिशत लोग जनजातीय समुदायों का है। नागालैण्ड के 86.5 प्रतिशत, मेघालय के 86.1 प्रतिशत और अरुणाचल प्रदेश के 68.6 प्रतिशत लोग जनजाति हैं। सर्वाधिक जनजातीय जनसंख्या वाले राज्य मध्य प्रदेश की कुल जनसंख्या में इनका हिस्सा 21.1 प्रतिशत है। देश में पांच जनजातीय पेटिया हैं जिनमें गंगा और कृष्णा नदियों के मध्य स्थित आन्ध्रप्रदेश, ओडिशा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ तथा पूर्वी और मध्यपूर्वी मध्यप्रदेश में फैली **मध्य जनजातीय पेटी** सबसे महत्वपूर्ण है।

ध्यान देने की बात है कि स्वयं जनजातीय समुदाय विभिन्न स्तर के समाजों से मिल कर बना है जिसका उल्लेख वर्ष 1961 में धेवर कमीशन की रिपोर्ट में भी किया गया है। वर्ष 2011 की जनगणना के समय देश में मुख्य अनुसूचित जनजातियों की संख्या 705 थी। इनके अतिरिक्त 194 गौण जनजातियां थीं। परन्तु यहाँ चर्चा जनजातीय समुदाय को एकरूप मान कर किया गया है। दूसरे, जनजातियों के लक्षणों में बहुत अधिक क्षेत्रीय अन्तर है। कुछ जनजातियां काफी विकसित हैं तो कुछ जनजातीय क्षेत्र विकास के पारम्परिक संकेतकों में काफी आगे हैं। वर्तमान चर्चा में विकास के स्थानिक विभिन्नता पर ध्यान नहीं दिया गया है।

वस्तुस्थिति : साक्षरता एवं शिक्षा

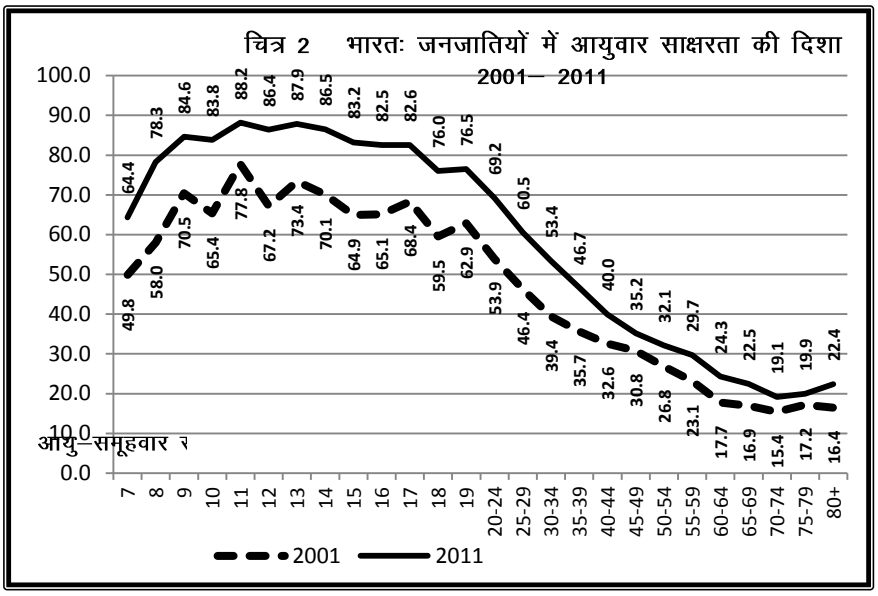
जनजातीय शिक्षा एवं प्रकृति और जीवन–मूल्य इन तीन व्यक्तिगत गुणों को लेकर काफी लिखा गया है। शिक्षा आर्थिक और सामाजिक विकास की आधारशिला है। साक्षरता और शिक्षा तथा नई विधियों एवं तकनीकों के प्रयोग का सीधा और महत्वपूर्ण संबंध है। शिक्षा न केवल इनके संकोच, अन्तर्मुखी स्वभाव, पराएपन का भय आदि बाधाओं पर विजय पाने में सहायक होकर अन्तर–समुदाय सम्पर्क बढ़ाने में मदद करती है, बल्कि व्यक्ति की सजगता, जागरूकता और तर्क–शक्ति को बढ़ा कर उन्हें परिवर्तनोन्मुख, प्रौद्योगिकी की दृष्टि से अग्रगामी, वैज्ञानिक तथा तार्किक बनाती है। शिक्षा उनकी मान्यताएँ एवं प्रवृत्ति उनकी सामुदायिक एवं व्यक्तिगत गतिविधियों को नियंत्रित करती है। अस्तु जनजातियों के सशक्तीकरण का यह प्रभावी उपकरण है। अस्तु जनजातियों की शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने के बहुआयामी प्रयास किए गए हैं।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार जनजातीय जनसंख्या का केवल 59 प्रतिशत ही साक्षर है जबकि अनुसूचित जाति के 66 प्रतिशत तथा कुल जनसंख्या में 73 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं। लेकिन शुभ संकेत है कि **साक्षरता में तेजी से वृद्धि** हो रही है (**तालिका 1**)।

तालिका 1 भारत में जनजातीय साक्षरता में वृद्धि, 1961–2011

वर्ष	कुल	जनजाति
1961	28.3	8.5
1971	34.5	11.3
1981	43.6	16.4
1991	52.2	29.6
2001	65.4	47.1
2011	73.0	59.0

उदाहरण के लिए वर्ष 1961 में देश में केवल 8.5 प्रतिशत जनजातीय लोग साक्षर थे, परन्तु इनका अनुपात बढ कर वर्ष 2011 में 59 प्रतिशत हो गया है। इस तरह जनजातीय साक्षरों में प्रति सौ में 51.5 व्यक्ति जुड़ गए हैं। देश में इसी अवधि में कुल साक्षरों में (73–28.3=44.7) 45 से कम व्यक्ति ही बढ़े। अर्थात् बढ़ने की गति जनजातियों में अधिक तेज है। फलतः कुल और जनजातीय साक्षरों का **अन्तर घट रहा** है। वर्ष 1961 में यह अन्तर (28.3–5.4=) 22.9 से घट कर (73–59=) 14 रह गया है।



शिक्षा के तीव्र विकास का एक उदाहरण कम उम्र आयु वर्ग में अधिक साक्षरता का होना तथा **बढ़ते आयुवर्ग के साथ साक्षरता का घटना** है। यह स्थिति वर्ष 2001 और वर्ष 2011 दोनों जनगणना में पाई जाती है। आरम्भिक आयु वर्गों में दोनों में काफी अन्तर है; जो हाल में साक्षरता बढ़ने का संकेत है। वर्ष 2011 में 8 वर्ष से लेकर 24 वर्ष तक के लोगों में साक्षरों का अनुपात 69 से 88 प्रतिशत तक है (**चित्र 2**)। वर्ष 30 तक आधे से अधिक लोग साक्षर हैं। इसके बाद साक्षरों का हिस्सा घटता जाता है और 80 वर्ष और उससे अधिक आयु वर्ग में यह केवल 22.4 प्रतिशत है। इसका तात्पर्य है कि वर्ष 1980 के दशक और इसके बाद जन्में लोगों में आधे से अधिक साक्षर हैं। अस्तु जनजातियों में साक्षरता वृद्धि एक नवीन घटना है।

विद्यालयों में **सकल नामांकन अनुपात** भी जनजातीय समुदाय में कुल जनसंख्या की तुलना में अधिक रहा है (**तालिका 2**)। सन् 1990–91 में प्राथमिक स्तर तक कुल जनसंख्या में नामांकन 78.6 प्रतिशत था जबकि जनजातीय समुदाय में 80.4 प्रतिशत। सन् 2014–15 में बढ़ कर यह क्रमशः 96.89 तथा 104.03 हो गया है।

इस कारण वर्ष 2014–15 में जनजातीय छात्रों का **कुल छात्रों में हिस्सा** प्राथमिक शाला में 10.83 प्रतिशत तथा अपर प्राइमरी में 9.76 प्रतिशत है जो उनकी कुल जनसंख्या के अनुपात (8.63 प्रतिशत) से अधिक है।

तालिका 2 भारत में कुल एवं जनजातीय जनसंख्या में स्कूल में नामांकन की प्रवृत्ति

वर्ष	जनजातियां			कुल जनसंख्या		
	बालक	बालिका	क्ल	बालक	बालिका	कुल
1990-91	99.6	60.2	80.4	90.3	65.9	78.6
2001-01	102.5	73.5	88.0	90.3	72.4	81.6
2014-15	104.4	103.7	104.0	94.78	99.24	96.9

एक शुभ संकेत **शालात्यागी** (Drop out) **विद्यार्थियों की घटती दर** है। प्राथमिक स्तर पर शालात्यागी छात्रों का अनुपात वर्ष 1990–91 में 62.5 प्रतिशत था जो वर्ष 2013–14 में घट कर आधा 31.3 प्रतिशत हो गया। यह प्रवृत्ति सभी स्तर पर बालक और बालिकाओं दोनों वर्गों में दिखाई देती है (**तालिका 3**)।

तालिका 3 भारत में जनजातियों में शालात्यागी छात्रों की दर की प्रवृत्ति

वर्ष	कक्षा I-V			कक्षा I - VIII			कक्षा I - X		
	बालक	बालिका	कुल	बालक	बालिका	कुल	बालक	बालिका	कुल
1990-91	60.3	66.1	62.5	75.7	82.2	78.6	83.3	87.7	85.0
2010-11	37.2	33.9	35.6	54.7	55.4	55.0	70.6	71.3	70.9
2011-12	36.1	34.4	35.3	57.3	57.1	57.2	64.4	67.6	65.9
2013-14	31.9	30.7	31.3	49.8	46.4	48.2	63.2	61.4	62.4

यह भी महत्वपूर्ण है कि जनजातियों में न केवल साक्षरता बढ़ रही है बल्कि **शिक्षा का स्तर भी ऊपर उठ रहा** है। वर्ष 2001 की जनगणना के समय 36.31 प्रतिशत साक्षर ही किसी न किसी कक्षा तक शिक्षा पाए थे, बाकी केवल साक्षर भर थे। किन्तु वर्ष 2011 की जनगणना के समय 94.21 प्रतिशत साक्षर किसी न किसी कक्षा की परीक्षा पास कर रखा है। इसके साथ ही विभिन्न कक्षा पास साक्षरों के अनुपात में भारी वृद्धि हुई है (**तालिका 4**)। हाई स्कूल और उससे ऊपर स्तर के लोगों का अनुपात वर्ष 2001 में 5.9 प्रतिशत से बढ़ कर वर्ष 2011 में 19.4 प्रतिशत हो गया है। इसमें प्राइमरी से नीचे तक का हिस्सा 14.83 प्रतिशत से 28.99 प्रतिशत, प्राइमरी तक 10.16 प्रतिशत से 28.12 प्रतिशत, माध्यमिक तक 5.41 प्रतिशत से 17.75 प्रतिशत, हाई स्कूल तक 3.43 प्रतिशत से 9.08 प्रतिशत, उच्चतर माध्यमिक तक 1.46 प्रतिशत से 6.30 प्रतिशत और स्नातक और अधिक 0.9 प्रतिशत से 3.41 प्रतिशत हो गया है। यह विकास की बहुत महत्वपूर्ण दिशा है।

तालिका 4 भारत में जनजातीय समुदाय में उठता हुआ शैक्षणिक स्तर

वर्ष	प्राइमरी से नीचे	प्राइमरी तक	माध्यमिक	हाई स्कूल	उच्चतर माध्यमिक	गैर–तकनीकी डिप्लोमा	तकनीकी डिप्लोमा	स्नातक तथा अधिक
2001	14.83	10.16	5.41	3.43	1.46	0.001	0.12	0.9
2011	28.99	28.12	17.75	9.08	6.3	0.04	0.52	3.41

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार 7–13 वर्ष आयु समूह में देश में कुल 179.61 लाख बच्चे (बालिकाएँ तथा बालक) थे जो प्राथमिक विद्यालयीन शिक्षा आयु समूह में आते हैं। भारत सरकार के मानव विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित एजुकेशनल स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लांस हैण्डबुक 2014 के अनुसार वर्ष 2010–11 में इस स्तर तक की सभी कक्षाओं में 201 लाख जनजातीय छात्रो का नामांकन हुआ था। इसका मतलब यह कि इस आयु–समूह के योग्य छात्रों के अलावा इससे बड़ी आयु के छात्र भी दाखिला ले रखे हैं जिससे इनकी संख्या तथा सकल नामांकन दर भी काफी अधिक है।

कम साक्षरता के जो भी कारण हों परन्तु **विद्यालयों की की कमी कारण नहीं** है, भले ही विद्यालय में शिक्षक न हों। उदाहरण के लिए मध्यप्रदेश राज्य में, जहाँ जनजातीय व्यक्तियों में साक्षरता केवल 66 प्रतिशत है, प्रति विद्यालय 113 विद्यार्थी (राज्य का औसत 131) आते हैं। प्रति विद्यालय औसत छात्र–संख्या माध्यमिक विद्यालयों में 95 (राज्य का औसत 105) से लेकर उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 105 (राज्य का औसत 155), प्राथमिक विद्यालयों में 111 (राज्य का औसत 132) तथा हाई स्कूल में 291 (राज्य का औसत 273) है। प्रति विद्यालय विद्यार्थियों का दबाव राज्य में समतुल्य विद्यालयों की तुलना में काफी कम है तथापि शिक्षा एवं साक्षरता में जनजातीय समुदाय बहुत पीछे है।

आदिवासी शिक्षा के प्रसार के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं जिनमें विभिन्न स्तर की छात्रवृत्तियों एवं शिष्यवृत्तियों और आर्थिक अनुदान देने की व्यवस्था सबसे महत्वपूर्ण है। बालिका शिक्षा बढ़ाने के लिए अनेकों तरह के प्रोत्साहन दिए जाते हैं। इनके साथ ही छात्रावास शिष्यवृत्ति तथा आश्रमवृत्ति की व्यवस्था की गई है। पाठ्यपुस्तक, गणवेश तथा मध्याह्न भोजन वितरण का कार्यक्रम तो चलाया ही जा रहा है। व्यावसायिक प्रशिक्षण, प्रशिक्षण–सह–उत्पादन, प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए प्रशिक्षण जैसे शिक्षावर्धक कार्यक्रम संचालित हैं। विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा दी जा रही है। तिसपर यह समुदाय यहाँ तक ही आ पाया है।

स्वस्थ एवं दीर्घ जीनव सम्बन्धी घटक

मानव–कल्याण की प्रथम आवश्यकता स्वस्थ जीवन है। **स्वास्थ्य सम्बन्धी** विकास को देखने के लिए जन्म एवं मृत्यु की आवृत्ति को आधार माना जाता है। भारत सरकार के स्वास्थ्य विभाग द्वारा

समय–समय पर राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण कराया जाता है। इसमें पहिला सर्वेक्षण वर्ष 1992–93 में किया गया था। यद्यपि अन्तिम सर्वेक्षण वर्ष 2014–15 में किया गया है लेकिन रिपोर्ट वर्ष 2005–06 के सर्वेक्षण की उपलब्ध है। सामान्यरूप से बहुमुखी विकास के कारण मर्त्यता और मृत्यु दर पर तो बड़ो सीमा तक नियंत्रण पा लिया गया है। साथ ही प्रजननता और जन्म दर भी काफी नियंत्रित हो गए है, परन्तु सामान्य से ऊचे हैं। फलतः नैसर्गिक वृद्धि दर घटा कर बाल निर्भरता कम की जा सकती है। परन्तु आदिवासी समुदाय इस प्रगति में पीछे है।

जनजातीय प्रजननताः– वर्ष 2005–06 के सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार विवाहित सक्षम जनजातीय 40–49 वर्ष आयु वर्ग की प्रति विवाहित महिला जन्मे बच्चों की संख्या 4.59 है। यह औसत देश की इसी आयु वर्ग की कुल महिलाओं के औसत (4.0) से 0.6 बच्चा से **अधिक** है। इसी वर्ष कुल प्रजननता दर जनजातियों में 3.12 बच्चे तथा सभी समुदायों का औसत 2.68 बच्चे रहा। इस दृष्टि से भी जनजातियाँ कुल जनसंख्या से आगे हैं।

यह बहुत महत्वपूर्ण है कि समय के साथ जनजातीय महिलाओं की **प्रजननता घट रही है।** यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्रथम राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (1992–93) के अनुसार जनजातीय कुल प्रजननता दर 3.55 थी जो घट कर वर्ष 2005–06 में 3.12 हो गई है। जनजातीय 40–49 वर्ष आयु वर्ग की प्रति विवाहित महिला जन्मे बच्चों की संख्या भी वर्ष 1992–93 में 4.81 से थोड़ा घट कर वर्ष 2005–06 में 4.59 हो गयी है। प्रजननता को देखने का एक अन्य तरीका **जन्मे बच्चे का क्रम** है। सन् 1998–99 में तीन और अधिक बच्चों को जन्म देने वाली जनजातीय महिलाओं का हिस्सा 76 प्रतिशत था जो घट कर वर्ष 2005–06 में 73.7 प्रतिशत हो गया है। यह सब पहिले बच्चे के समय महिला की बढ़ती आयु के कारण सम्भव हुआ। वर्ष 1998–99 में पहिले बच्चे के जन्म के समय 20–49 आयु वर्ग में औसत आयु 18.9 वर्ष और 25–49 आयु वर्ग में 18.8 वर्ष थी। यह बढ़ कर वर्ष 2005–06 में क्रमशः 19.3 और 19.1 वर्ष हो गई है। इन समंकों से स्पष्ट है कि जनजातीय महिलाएँ प्रजननता और परिवार के आकार के प्रति जागरूक हो रहीं हैं।

अधिक प्रजननता का मुख्य कारण प्रभावी वैवाहिक आयु का कम होना तथा प्रथम बच्चे का शीघ्र जन्म होना है। नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे–3 (2005–06) के अनुसार जनजातीय महिलाओं की माध्यिका वैवाहिक आयु 20 से 49 वर्ष की विवाहित महिलाओं में **16.5** वष है तथा 25 से 45 वर्ष आयु समूह में **16.3** वर्ष ही है। देश की कुल जनसंख्या में प्रभावी वैवावाहिक आयु का औसत क्रमशः 17.2 वर्ष एवं 16.8 वर्ष है।

अधिक प्रजननता दर के कारण **शैशवावस्था के आयु समूह** में जनसंख्या का अनुपात राज्य की कुल जनसंख्या के अनुपात में काफो अधिक है। उदाहरण के लिए सन् 2001 में 0–9 वर्ष आयु समूह में जनजातीय जनसंख्या की **26.71** प्रतिशत थी जबकि सन् 2011 में **23.24** प्रतिशत है। देश की केवल

19.8 प्रतिशत जनसंख्या ही इस आयु समूह में है। इससे प्रजननता दर घटने का स्पष्ट आभास तो मिलता है, परन्तु यह देश के औसत से अधिक है। इसका तात्पर्य है कि जनजातीय समाज पर बच्चों के लालन–पालन का अपेक्षया अधिक भार है। इसके विपरीत केवल 47.34 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या क्रियाशील आयु समूह (20 से 59 वर्ष तक) में है, जबकि कुल जनसंख्या में 50.34 प्रतिशत जनसंख्या इन समूहों में है।

Table 5 India Comparative Status of Health of Tribes, 2005-06

Health Indicators	ST	ALL
Neonatal Mortality	**39.9**	39
Post-natal mortality	**22.3**	18
Infant Mortality	**62.1**	57
Child mortality	**35.8**	18.4
< 5 Mortality	**95.7**	74.3
Perinatal Mortality	**40.6**	48.5
ANC Checkup	**70.5**	77.1
Intitutional delivery %	**17.7**	38.7
Full immunization	**31.3**	43.5
% Anaemia among women	**68.5**	55.3

शिशु एवं बालक मृत्य दर :– ऊँची प्रजननता के साथ ही मत्यता दर भी ऊँची है। उदाहरण के लिए प्रति हजार जीवित जन्में बच्चों में से 39.9 जन्म के एक माह के भीतर ही काल कवलित हो जाते हैं जबकि कुल जनसंख्या का औसत 39 का ही है (**तालिका 5**)। इस तरह जनजातियों में शिशु मत्यु दर अन्य समुदायों की तुलना में काफी अधिक है। जनजातियों में प्रति हजार जीवित जन्में बच्चों में शिशु मृत्य दर 62.1 है जबकि सभी समुदायों का औसत 57 का ही है। जनजातीय शिशु मृत्यु दर वर्ष 1992–93 में 91 तथा वर्ष 1998–99 में 84 थी। बाल मृत्यु दर भी वष 1992–93 में 135 से घट कर वर्ष 2005–06 36 रह गई है। सामान्य से अधिक मृत्यु दर ऊँची प्रजननता दर का एक महत्वपूर्ण कारण है। अगर दम्पति को यह विश्वास हो जाय कि जन्मा हुआ शिशु जीवित रहेगा तो अधिक सम्भावना है कि दम्पति अगले बच्चे को जन्म देने पर गंभीरता से विचार कर सकते हैं। इसी उद्देश्य से भारत सरकार लम्बे समय से प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम संचालित कर रही है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य अभियान का भी मौलिक उद्देश्य यही है। जनजातीय समुदाय भी इनका लाभ लेने के लिए आगे बढ़ रहे हैं।

लगभग **तीन–चौथाई** (70.5 प्रतिशत) जनजातीय महिलाएं प्रसवपूर्व सुलभ कराई गई स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग करतीं हैं। इसी तरह संस्थागत प्रसव वर्ष 2005–06 में 17.7 प्रतिशत से बढ़ कर वर्ष 2013–14 में 70.1 प्रतिशत हो गया है। इसी अवधि में सुरक्षित प्रसव वाली महिलाओं का प्रतिशत 24.4 से बढ़ कर 72.7 हो गया ह। इनका प्रतिफल शिशु मृत्यु दर तथा मातृ मृत्यु दर का कम होना है।

महिला पोषण की दशाः – वर्ष 2005–06 के राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि दो–तिहाई (68.5 प्रतिशत) जनजातीय महिलाएँ किसी न किसी प्रकार की एनेमिया से ग्रसित हैं। कुल जनसंख्या में ऐसी महिलाओं का अनुपात 55.3 प्रतिशत था। इनमें से आधे से अधिक कुपोषित हैं। इसी वर्ष 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों में से आधों (53.9 प्रतिशत) की वृद्धि पोषण की कमी के कारण रुका था, परन्तु यह अनुपात घट कर वर्ष 2013–14 में 42.3 प्रतिशत हो गया है। पोषण सम्बन्धी इन सभी विचलकों में जनजातीय महिलाएं एवं बच्चे अन्य समुदाय की तुलना में बदतर दशा में हैं।

बच्चों के **टीकाकरण** की ओर भी जनजातियों का रुझान काफी बढ़ा है। उदाहरण के लिए 12 से 23 माह के बच्चों के लिए सम्पूर्ण का लाभ लेने वालों का अनुपात वर्ष 2005–06 में 31.3 प्रतिशत से बढ़ कर वर्ष 2013–14 में 55.7 प्रतिशत हो गया है तथा कोई टीका न पाने वालों का अनुपात 11.5 प्रतिशत से घट कर 7.4 प्रतिशत रह गया है।

आर्थिक उन्नयन एवं आजीविका के साधन

सामाजिक उत्थान के साथ आर्थिक प्रगति भी आदिवासी उपयोजनाओं का मुख्य लक्ष्य रहा है। इन कार्यक्रमों के माध्यम से आदिवासी क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था को आधुनिक एवं लाभकारी बनाने के प्रयास किए जाते रहे हैं। इस हेतु धन, निवेश, प्रशिक्षण, विशेषज्ञों की सुविधा, उपकरण, परिवहन एवं विपणन की सुविधाएं प्रदान की जाती रही हैं। आदिवासियों को रोजगार के नए अवसर उपलब्ध कराने के लिए भी प्रयत्न किए जाते हैं। इस संदर्भ में कुछ तथ्य इस प्रकार हैं।

पारम्परिक रूप से जनजातियां वनोपजों, शिकार, जंगली जानवर पकड़ना और मजदूर के रूप में काम करके जीविका अर्जित करते रहे हैं। स्वतंत्र भारत में विभिन्न प्रयासों के परिणामस्वरूप जनजातीय अर्थव्यवस्था और जीविका के साधनों में तेजी से परिवर्तन आया है। इन परिवर्तनों एवं विविधता का विवरण एन्थ्रोपोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया की 1997 की रिपोर्ट में चर्चित है। इसमें कहा गया है कि शिकार, जानवर एवं पक्षी पकड़ना, पशुचारण, स्थानान्तरी कृषि आदि में काफी कमी आई है। दूसरी ओर बागवानी कृषि, स्थायी खेती, सीढ़ीनुमा खेती, पशु पालन, रेशमपालन, मधुमक्खी पालन आदि में काफी वृद्धि हुई है। पारम्परिक क्राफ्ट लगभग गायब हो गए हैं। दूसरी ओर सरकारी और निजी सेवाओं, उत्खनन, निर्माण कार्य आदि में रोजगार में उल्लेखनीय बढ़ात्तरी हुई है।

आर्थिक विकास के मापन के लिए उपयोग किए जाने वाले पारम्परिक सूचकांकों के आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण कुछ परोक्ष सूचकों का उपयोग किया जा सकता है। जिनमें **गरीबी रेखा** से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों का अनुपात मुख्य है। वर्ष 2011–12 में 45.3 प्रतिशत ग्रामीण तथा 24.1 प्रतिशत नगरीय जनजातीय लाग गरीबी रेखा के नीचे थे। देश की कुल ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या में यह अनुपात क्रमशः 25.7 प्रतिशत तथा 13.7 है। इस तरह गरीबों का अनुपात जनजातियों में काफी अधिक है। परन्तु यह अनुपात तेजी से घट रहा है। जैसे कि योजना आयोग के आंकड़ों के अनुसार गरीबी रखा के नीचे रहने वाले जनजातियों का प्रतिशत वर्ष 1983 में 63.9 था जो घट कर वर्ष 1993–94 में 50.6 और वर्ष 2004–05 में 44.7 और वर्ष 2011–12 लगभग 43 हो गया। अधिक गरीबी होते हुए भी जनजातियों में ऋणग्रस्तता कम है। सन् 2006 में ग्रामीण जनजातियों में प्रति व्यक्ति औसत ऋण रु 3205 थी जबकि कुल जनसंख्या में रु 7539 थी। औसत 17.9 प्रतिशत ग्रामीण जनजातीय ऋणग्रस्त थे जबकि कुल जनसंख्या में एक चौथायी से अधिक (26.5 प्रतिशत) ऋणग्रस्त थे।

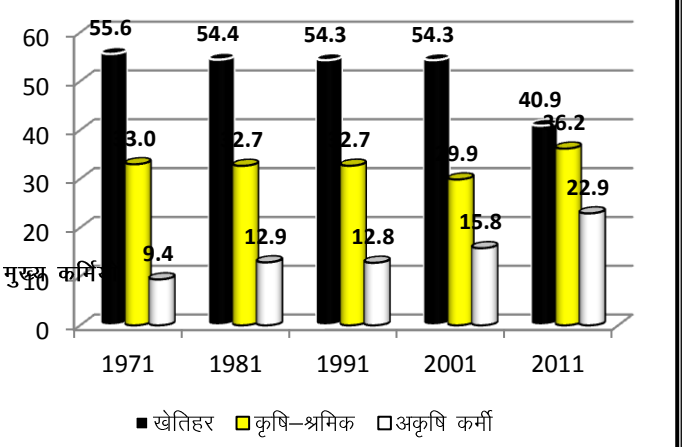
प्रति व्यक्ति व्यय भी आर्थिक दशा का सूचक है। राष्ट्रीय सैम्पुल सर्वे संगठन के वर्ष 1999–00, 2004–05 तथा 2009–10 के सवेक्षणों के आधार पर समुदायवार प्रति व्यक्ति व्यय का अनुमानन किया गया है। इन वर्षों में जनजातियों में प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय क्रमशः रु 417.42, 463. 15 और 966 था। इन्ही वर्षों में सभी व्यक्तियों का मासिक व्यय क्रमशः रु 578.62, 683.75 और 1535 रहा। इस तरह जनजातीय और कुल जनसंख्या के मासिक व्यय में काफी अन्तर है। परन्तु दोनों के बढ़ने की गति लगभग समान है।

आदिवासी समुदाय के आधे (48.7 प्रतिशत) लोगों को **जीविकोपार्जन** के लिए काम करना पड़ता है अर्थात् जीवनयापन के लिए इन्हे अधिक संघर्ष करना पड़ता है। इनकी तुलना में अनुसूचित जाति के 40.9 प्रतिशत तथा कुल जनसंख्या के 39.8 प्रतिशत लोग कर्मियों की श्रेणी में आते हैं। अधिक सहभागिता दर इनकी **कम उत्पादकता का सूचक** है। इन कुल कर्मियों में से 17.1 प्रतिशत **अल्पकालिक कर्मी** हैं जिन्हे साल के आधे से कम अवधि के लिए ही काम मिल पाता है। यह अनुपात भी अन्य समुदायों से काफी अधिक है।

कुल कर्मियों में आधे से थोड़ा कम (40.9 प्रतिशत) कास्तकार की श्रेणी में आते हैं जो खुद के लिए खेती करते हैं (**चित्र 2**)। इनके अनुपात में पिछले चार दशकों में आई कमी आर्थिक विकास का सूचक है। इससे थोड़ा कम प्रतिशत (36.2 प्रतिशत) खेतिहर मजदूरों का है। इनका अनुपात बढ़ना चिन्तनीय है। इस तरह **कृषि कर्मियों का अनुपात** (77.1 प्रतिशत) **कुल जनसंख्या** (58.3 प्रतिशत) **से काफी अधिक है।** तथापि सन् 1971 से अब तक कुल कृषि कर्मियों में 11.5 प्रतिशत बिन्दु की कमी आई है जो कृषि पर निर्भरता घटने का सूचक है। इसके साथ ही पारिवारिक उद्योग तथा अन्य सेवाओं में सलग्न जनजातीय कर्मियों का अनुपात सन् 1971 में 9.4 प्रतिशत से बढ़ कर सन् 2011 में (1.3 +21. 6=) 22.9 प्रतिशत हो गया। यह अनुपात अल्प है। **यह इनके आर्थिक विपन्नता का द्योतक है।**

कृषि को आधुनिक एवं लाभकारी बनाने के प्रयास किए जाते रहे हैं। इस हेतु धन, निवेश, प्रशिक्षण, विशेषज्ञों की सुविधा, उपकरण आदि उपलब्ध कराए जाते हैं। परन्तु आदिवासी अर्न्तमुखी होते हैं। अल्प शिक्षा, न्यून वाह्य सम्पर्क, संकोची स्वभाव, जोखिम से भय, अपरचितों से शंकालु होने के कारण कृषि की नवीन विधियों को स्वीकारने तथा उपयोग करने में पीछे हैं। यह बात छिंदवाड़ा–बैतूल, छत्तीसगढ़ बेसिन तथा टोंस बेसिन के लगभग

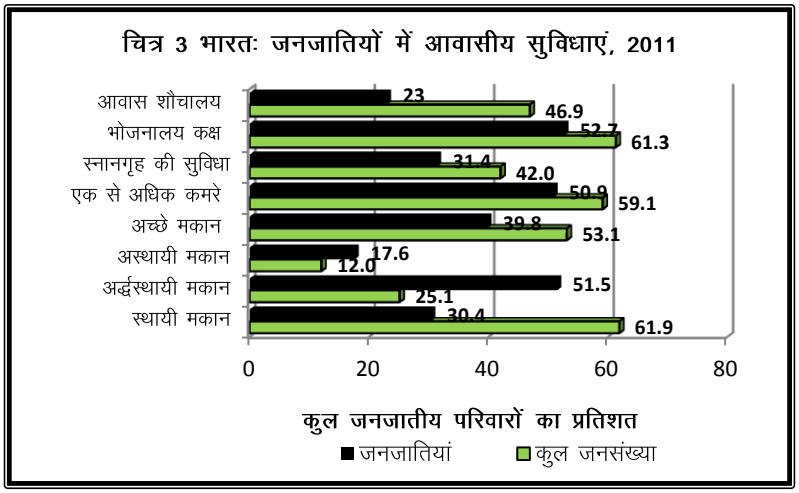
चित्र 2 भारत में जनजातियों की बदलती व्यावसायिक संरचना



1150 कृषकों के सर्वेक्षण से स्पष्ट है। कृषि की नवीन विधाओं में उपयोग में जनजातीय कृषक सामान्यरूप से अन्य समुदाओं से पीछे हैं। उदाहरण के लिए छिंदवाड़ा–बैतूल क्षेत्र में सिंचाई का उपयोग करने वाले जनजातीय कृषक का प्रतिशत (अजजा 49.7 प्रतिशत) सामान्य कृषकों का लगभग आधा (सामान्य 82.9 प्रतिशत) है। इसी तरह उन्नत बीज के उपयोग में दो–तिहाई (अजजा 60.8 सामान्य 100 प्रतिशत) तथा उर्वरक के उपयोग में एक–तिहाई (अजजा 33.4 सामान्य 82.6 प्रतिशत) है। अन्य नवीन विधाओं में भी यही दशा है। ये लोग अब भी इन्हे बाहरी वस्तु मानते हैं तथा स्वीकार करनें में शंकालु रहते हैं। वास्तव में इनकी रणनीति अधिकतम लाभ की न होकर जोखिम से सुरक्षा की होती है। दूसरे, इनकी कृषि–संरचना में जो फसलें मुख्य हैं उनके उन्नत बीज उपलब्ध नही हैं।

आवासीय दशा

विकास का दर्शन आदमी के वस्त्र, आवास और उसमें उपलब्ध सुविधाओं से होता है। इस पर अन्य बातों के साथ आर्थिक स्थिति और जागरूकता का प्रभाव पड़ता है। आवास और सुविधाओं की दृष्टि से जनजातियाँ देश की औसत दशा से काफी पीछे हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार केवल एक–तिहाई लोगों के पास स्थायी और आधे से अधिक के पास अर्द्ध स्थायी मकान हैं। अच्छे मकान भी कम हैं। आधे मकान एक कमरे वाले हैं। शौचालय और स्नानगृह की सुविधाएं सीमित हैं (**चित्र 3**)। कई सुविधाओं में जनजातियों और सामान्य जन में अधिक अन्तर नहीं है। जैसे भोजनालय की सुविधा, कमरों की सुविधा, स्नान गृह की सुविधा आदि। इसी तरह सुरक्षित पेय जल की सुविधा, प्रकाश के लिए बिजली का उपयोग आदि में भी अन्तर अधिक नहीं है।



जनजातियों का आधुनिकीकरण

अन्य समुदायों की भांति जनजातियां भी आधुनिक परिधान, सुख सुविधा के आधुनिक उपकरणों एवं गजटों के उपयोग की ओर आकर्षित हुए हैं। इनमें प्रकाश के लिए बिजली का उपयोग, आवागमन के साइकिल, स्कूटर तथा मोटर साइकिल जैसे साधन, संचार के लिए टेलीफोन तथा मोबाइल एवं

टेलीविजन का उपयोग, कम्प्यूटर एवं लैपटाप का प्रयोग और आधुनिक वित्तीय व्यवस्था बैंकिंग से जुड़ना विकास की दृष्टि से शुभ लक्षण हैं (**तालिका 6**)।

तालिका 6 भारतः जनजातियों में आधुनिक जीवन–शैली का बढ़ता उपयोग, 2011

संकेतक	परिवारा का %	
	कुल	जनजाति
स्वचालित वाहन	25.7	9.6
फोन तथा मोबाइल	63.2	34.8
टेलीविजन	47.2	21.9
कम्प्यूटर तथा लैपटाप	9.5	6.2
बैंकिंग से जुड़े परिवार	58.7	45.0

Source: Census of India 2011, House listing & Housing census.

इन सुविधाओं के उपयोग में पिछले एक दशक में काफी प्रगति हुई है। उदाहरण के लिए वर्ष 2001 की जनगणना के समय 21.8 प्रतिशत जनजातीय परिवारों के पास रेडियो/ट्रान्जेस्टर था। यह प्रतिशत घट कर वर्ष 2011 में 14.0 रह गया। दूसरी ओर इसी अवधि में टीवी वाले परिवारों का प्रतिशत 12.1 से बढ़ कर 21.9 हो गया। यह परिवर्तन बेहतर तकनीक की ओर आकर्षण के कारण हुआ है। इसी तरह इसी अवधि में लैण्डलाइन वाले परिवारों का प्रतिशत 2.5 से 2.0 होगया और माबाइल वाले परिवारों का हिस्सा 30.8 हो गया। यह भी श्रेष्ठतर तकनीक के आकर्षण के कारण हुआ है। दूसरी ओर बिना आधुनिक गजेट वाले परिवारों का हिसा वर्ष 2001 में 54 प्रतिशत से घट कर वर्ष 2011 में 34.5 प्रतिशत रह गई है। यह बढ़ती उपलब्धता का सूचक है।

नगरों में रहने वाले जनजातीय लोगों का स्तर सामान्य से लगभग बराबर है। उदाहरण के लिए नगरों में रहने वाले जनजातियों में 64.2 प्रतिशत के पास टेलीविजन है, जबकि कुल लोगों में केवल 76. 7 प्रतिशत के पास है। स्कूटर और मोटर साइकिलधारी परिवारों का अनुपात क्रमशः 25.4 प्रतिशत और 35.2 प्रतिशत का है। टेलीफोन एवं मोबाइलधारी क्रमशः 71 प्रतिशत और 70.3 प्रतिशत है। कुल 58.8 प्रतिशत नगरीय जनजातीय लोग बैंकिंग सेवा का लाभ लेते हैं, कुल जनसंख्या में ये 67.8 प्रतिशत हैं। इस तरह गतिशील जीवन जीने के लिए जाने वाले जनजातीय प्रयास श्लाघनीय है।

निष्कर्ष :– इस विवेचना से स्पष्ट है कि सतत् प्रयासों के परिणामस्वरूप जनजातीय लोगों में आत्म उन्नयन की भावना उत्पन्न हो चुकी है। तथापि मानव विकास सम्बन्धी दशाओं का स्तर काफी निम्न है। जनजातियों तथा गैरजनजातियों के अन्तर कम होता जा रहा है। तमाम प्रोत्साहनों के होते हुए भी स्वस्थ एवं सुखी जीवन के लिए जीवन उपलब्ध कराई जा रही सुविधाओं के उपयोग में ये लोग

काफी पीछे हैं। इनकी शिक्षा पर विशेष जोर रहा है तथापि बहुसंख्यक अशिक्षितों विशेषकर अशिक्षित महिलाओं होना अब भी चिन्तनीय है। इनकी अर्थव्यवस्था में विविधता नहीं आ पायी। इसकी कृषि का आधुनिकीकरण की प्रक्रिया भी बहुत मंद है। तथापि पिछले दो दशको से ये लोग विकास की धारा की ओर तेजी से बढ़े हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य यहाँ तक कि उनके गरीबी में भी कमी आई है। ये आधुनिकता की ओर तेजी से आकर्षित हो गए हैं। उनकी सोच में परिवर्तन आया है और अपने परिवार के कल्याण के लिए सजग हो रहे हैं। आगे बढ़ने क कदम तेज हैं और भविष्य में तेज विकास की आशा है।

————————

Social System and Tribal Agricultural Development In Chhindwara District (Madhya Pradesh)

Dr. D. D. Vishwkarma

Professor of Geography & Incharge Principal

Govt. College, Harrai (Chhindwara)

Introduction

Development is a process of change of social structure with the goal of raising production. This change encompasses both, the increasing use of modern scientific knowledge, technology and inputs as well as orientation of social organization, aims and values for making capable of sustaining sophisticated production technology (Goodall, 1987, p. 308). It goes without saying that development is not possible without improving agriculture, which on the other hand depends on modern yield-raising technologies. In this context, tribal people are somewhat different from higher communities. Adoption of innovation depends, with other things, on characteristics of adopters. It is therefore urgency to analyze the entire process of diffusion and adoption of agricultural innovation among tribes. B.D. Sharma (1978) serving as government servant in Baster saw process of exploitation of these innocent people and tried to present conceptual framework for their holistic development. Though he minutely observed the level of perception and attitudes of tribes towards new things, he hardly has thrown light on the process of agricultural development. Similarly, Raizada (1984) has summarized the achievement of tribal development programmes in Madhya Pradesh; but he did not pay attention towards the process of adoption of the developmental instruments, i.e. adoption of innovations. Sharma (1989) writes on this problem of adoption of yield-raising technologies in tribal development blocks of the state, but his study was based on secondary data and dealt with the tribal blocks not the tribal farmers. Thus, there is a big gap in the understanding of the development process of tribes. The present study focuses to fill this gap by elaborating the social development processes in general and of tribal agricultural development in particular in a backward tribal district-Chhindwara of the State.

Total population of the district is 1849 thousand in 2001; out of which more than three-fifths (34.7%) is tribal population. Present interview of 229 tribal farmers out of total 447 households of this district reveals that three-fifths (60%) of them use high yielding variety of seeds, more than half (57.2%) of them use some fertilizers;5.7 per cent of tribes use vermin- culture & 70 % own pumping sets; only 9.6 have tractors and only 26.2 % treated seeds before sowing. Cause and process of such a low level of adoption has been examined. The size and ownership of holdings and castes affect the land use pattern. It is concluded in several studies that small and marginal farmers have low cultural and technological levels. Therefore, they present characteristics of subsistence economy. Scheduled tribes and scheduled castes are chief lagging communities. Consequently, their imprints on land use in general and agricultural land use in particular are quiet distinct from another advance communities. The interaction between the ecological factors and economic structure results great diversity in agricultural land use. Such patterns become more complex when we consider the farmer's personal characteristics particularly his knowledge of new development in forming and agriculture as dynamic process (Mohammad, 1978; 20). More importantly, the increasing demand for food and raising the prices and other allied products due to the fast growing population led to over exploitation of our natural resource bases and ultimately degraded and polluted them to an unacceptable level. To overcome these problems, it is essential to have through understanding of the crop production related problems, these socio-economic conditions and level of knowledge is also essential for effective implementation of these experimental findings at farm level. The institutionalization of such participatory mechanisms would be the key to successful priority setting for more effective research (Byerlee, 2000). There is little doubt that efficient use of land depends as much upon the capacity of man to treat the land and manage it, as upon the systems of farming, systems of tenures and unit of enterprise (size of farms) (Singh, 1992; 7). Hence this study provides very useful information to the policy makers for allocation of fund to problem areas and community needs. Keeping these views in mind, present study presents an enquiry for investigation and has made deep discussion in Chhindwara district of Madhya Pradesh.

Study region

For the investigation of above problems, the Chhindwara district has been selected. This district extends from 21^0 26' to 22^0 49' North Latitudes and from 78^0 10' to 78 ^{0}24' East Longitude covering **11849.23 sq km** area of which is **3.8 per** cent of the Madhya Pradesh

state. Physiologically this region is a tableland plateau, which extends upon Pachmarhi hills & Amarwara plateau in the North, Sausar high lands and upper Kanhan valley in the South and Chhindwara plateau in the middle. The climate of the district is characterized by general dryness except during the monsoon season. The district is drained by Pench, Kanhan, Kulbahra, and Wardha River under Godavari drainage system and Tava, Shakkar, and Dudhi under Narmada drainage system. These rivers have eroded the plateau resulting slight erosion(11.1 per cent), moderate erosion(36.0 per cent), severe erosion (37.1 per cent),and very severe erosion (15.7 per cent).The soil groups found in the district are deep 36 per cent, moderately deep (1.2 per cent), slightly deep (8.5percent), shallow (6.3 percent), very shallow and extremely shallow 15.0) & 27.6 per cent, respectively. The region is covered by class II to class VII land capability with slight erosion to very severe erosion limitations.

In 2011, Chhindwara had population of 2,090,922 of which male and female were 1,064,468 (50.9 per cent) and 1,026,454(49.09 per cent) respectively. In 2001 census, Chhindwara had a population of 1,849,283 of which males were 947,337 (51.22per cent) and remaining 901,946 (48.77) were females. Chhindwara District population constituted 2.88 percent of total Madhya Pradesh population. In 2001 census, this figure for Chhindwara District was at 3.06 percent of Madhya Pradesh population.

The initial provisional data released by census India 2011, shows that density of Chhindwara district for 2011 is 177 people per sq. km. Chhindwara district administers 11,815 square kilometers of areas. Total population of the district was 1849283 persons and density 156 persons per sq km in 2001. This density is lower than the state average of 196 people. Pressure of population on net shown area is 381 person/ sq km in the area. Gross irrigated area is 24.34 per cent of gross cropped area & net irrigated area is 26.23 per cent of net cropped area, respectively in 2006-07. Percentage of rural and urban population is 75.55 and 24.45 in 2001 and Chhindwara district is essentially an agricultural region where about three-fourth (**74.43 per cent**) of working population rests upon agriculture for their livelihood 24.03 per cent of working people is engaged for other services followed by 1.53 per cent in household industry in 2002. Naturally the fate of rural population depends on agriculture. Therefore evolution of impact pressure of different communities on land resources is essential prerequisite to agricultural development.

Methodology and Database

This micro analysis of the agriculture land use and communities with various sizes of holdings and their relationship is entirely based on first hand information collected through the interviewing households using printed questionnaire. In all 24 villages out of 2343 villages were selected considering the crop structure of the district and 447 households were interviewed from these villages by stratified random sampling. They constitute about 8.53 per cent of total households (5240) of these villages. First of all, villages have been selected considering the crop structure of the district. At the next stage, operational holdings were selected within the sample villages. At the time of selecting operational holdings, proportion of holdings in different size classes and communities has been kept in mind. So that results could not be biased to any particular class and community. Out of the tribal farmers and non-tribal farmers of these villages about 447 households have been selected and interviewed. The questionnaire contains the personal and family characteristics of the household, size and ownership of holdings, land use and cropping pattern, use of high yielding variety of seeds, sources of information of seeds, irrigation, use of fertilizer, pesticides, improved agricultural implements, frequency of the use of modern agricultural methods and practices and credit facilities. Information and data are generated through compilation and tabulation of the answers of the questions from the corner stone of the analysis. To make discussion convenient, land holdings have been grouped in to five classes: marginal (0.5 to2.49acres), small (2.5 to 4.99 acres), semi- medium (5 to 9.99 acres) medium (10—24.99acres) and large (>25acres) and four formal communities-scheduled castes, scheduled tribes, other backward castes, upper castes. Computer services have been utilized for tabulation.

Discussions and Analysis

Land use

Table1: Agricultural Land Use in Chhindwara District (hectare), 2016-17

Total Area Reported	1184923	100
Forest Land	477290	40.3
Area Not Available for Cultivation	72093	6.0
Permanent Pasture and Grazing Land	53905	4.5
Land under micellaneous Tree Crops	31	0.003
Cultivable Wasteland	29949	2.5
Current Fallow	18497	1.6
Other Fallow	21663	1.8

Net Area Sown	511495	43.2
Total or Gross Cropped Area	720374	60.8
Area Cultivated More Than once	208879	17.6
Cropping Intensity (GCA/NSA)	141	141

Source: 2210163022CHHINDWADA-2016-17.split-and-merged.pdf

Total geographical area of Chhindwara district is 1184923 hectare. District has forest land of 40.3%. The percentage of land put to non agriculture use to the geographical area is 6.0%. There is gradual increase observed in the land put to non agriculture use indicating environmental degradation and change in the land use pattern. Permanent pasture and grazing land have been decreasing continuously and constitutes 4.5% of geographical area. The land under miscellaneous tree crops and grooves is almost static with slight variation. Culturable wasteland constitutes 2.5% of geographical area and its trend line shows a decrease, which indicates the utilisation of such land for agriculture or other productive purpose. The percentage of fallow land is 3.4% of geographical area. The gross cropped area is 60.8 % and net sown area is 43.2 % of the total geographical area. Other discussion can be seen in table.

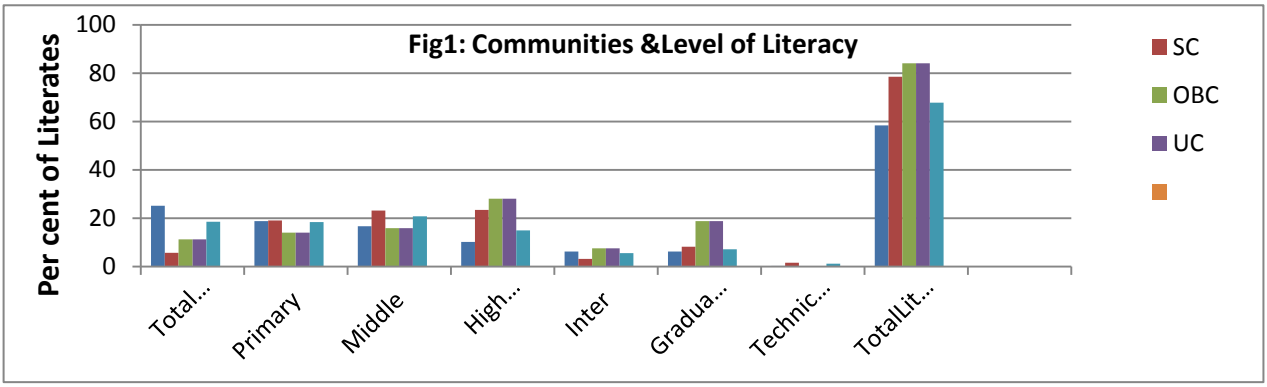
Table2: Chhindwara District: Literacy (Census 2001-2011)

Level of Literacy in the District	Census 2011(Per cent)	Census 2001(per cent)	Increase in Point
Average Literacy	71.16	65.81	5.35
Male Literacy	79.04	76.45	2.59
Female Literacy	63.01	54.63	8.38

Literacy & Social Systems: The level of education in the surveyed population is recorded in Table3 .The table depicts that, on an average, nearly more than two-thirds (67.8 per cent) of the surveyed population is formally literate.

Table 3: Educational Levels among Different Societies of Households

	ST		SC		OBC		UC		All	
Educational Level	**Person**	**Per cent**	**Person**	**Per cent**	**Person**	**Per cent**	**Person**	**Per cent**	**Person**	**Per cent**
Total Illiterate	**301**	**25.1**	**18**	**5.7**	**114**	**14.5**	**12**	**11.2**	**445**	**18.5**
Total Literate(informal)	**200**	**16.7**	**30**	**9.5**	**75**	**9.6**	**5**	**4.7**	**310**	**12.9**
Primary	**225**	**18.7**	**60**	**19**	**142**	**18.1**	**15**	**14**	**442**	**18.4**
Middle	**200**	**16.7**	**73**	**23.1**	**210**	**26.8**	**17**	**15.9**	**500**	**20.8**
High School	**122**	**10.2**	**74**	**23.4**	**132**	**16.8**	**30**	**28**	**358**	**14.9**
Inter	**75**	**6.2**	**10**	**3.2**	**39**	**5**	**8**	**7.5**	**132**	**5.5**
Graduate	**75**	**6.2**	**26**	**8.2**	**50**	**6.4**	**20**	**18.7**	**171**	**7.1**
Technical	**3**	**0.2**	**5**	**1.6**	**22**	**2.8**	**0**	**0**	**30**	**1.2**
Total(Formal Literacy)	**700**	**58.3**	**248**	**78.5**	**595**	**75.9**	**90**	**84.1**	**1633**	**67.8**
Total Person	**1201**	**100**	**316**	**100**	**784**	**100**	**107**	**100**	**2408**	**100**



Less than three-fifths (58.3 percent) of scheduled tribe farmers are just literate. This proportion decreases with the increasing size of holdings. While more than three-fourths (78.5 per cent) among scheduled caste community, nearly three-fourths (75.9 per cent) among other backward caste community and more than fourth-fifths (84.1 per cent) among upper caste community are literate. This analysis clearly indicates that educational status of the scheduled tribe farmers is found to be much lower compared to non-tribal society of farmers as well as regional level average (67.8 per cent). Less than three-fifths (58. 3 percent) of scheduled tribe farmers are just literate. This proportion decreases with the increasing size of holdings. While more than three-fourths (78.5 per cent) among scheduled caste community, nearly three-fourths (75.9 per cent) among other backward caste community and more than fourth-fifths (84.1 per cent) among upper caste community are literate. This analysis clearly indicates that educational status of the scheduled tribe farmers is found to be much lower compared to non-tribal society of farmers as well as regional level average (67.8 per cent).

Housing Conditions & Social Systems

More than three fourths (75.8 per cent) of households have ownership of kutchha houses followed by 12.5 per cent of households' semi- pucca house. Nearly less than one-tenth (9.6 per cent) households has pucca house. It is clear that relatively majority (96.9per cent) of tribal households contains with kutchha houses in the region (Table 4).

Table 4: Housing conditions of the Surveyed Households and Social System

		Condition of Housing (Number & Per cent of Households)							
Community	**Size of Holdings**	**Kutchha**		**Pucca**		**Semi-Pucca**		**Do not have own House**	
		No.	Per cent	No.	Per cent	No.	Per cent	No.	Per cent
ST	Marginal	22	95.6	-	-	1	4.3	-	-
	Small	48	76.2	8	12.7	4	6.3	3	4.8
	Semi-medium	90	92.8			6	6.2	1	1
	Medium	37	84.1	3	6.8	1	2.3	3	6.9
	Large	2	100	-	-	-	-	-	-
	All	199	86.9	11	4.8	12	5.2	7	3.1
SC	Marginal	7	77.8	1	11.1	1	11.1	0	0
	Small	9	69.2	0	0	4	30.8	0	0
	Semi-medium	20	80	1	4.0	4	16	0	0
	Medium	10	76.9	2	15.4	1	7.7	0	0
	Large	-	-	-	-	-	-	-	-
	All	46	76.7	4	6.7	10	16.7	0	0
OBC	Marginal	13		1		2			
	Small	20	74.1	1	3.7	6	22.2	0	0
	Semi-medium	29	54.7	10	18.9	12	22.6	2	3.8
	Medium	20	51.3	13	33.3	6	15.4	0	0
	Large	1	20	2	40	2	40	0	0
	All	84	52.5	27	19.9	27	16.9	2	1.3
UC	Marginal	1	100	0	0	-	0	0	0
	Small	4	100	-	-	-	-	-	-
	Semi-medium	1	50	-	-	1	50	-	-
	Medium	3	30	1	10	6	60	0	0
	Large	1	100						
	All	10	55.6	1	5.6	7	38.9	0	0
Regional	Overall	339	75.8	43	9.6	56	12.5	9	2.0

Occupations & Participation of Tribal Farmers

For nearly all of the households agriculture is the main source of livelihood. Except large holding, the proportion of total earning members working on farms increases with the increasing size of holdings among tribal farmers (Table 2.5). For example, this proportion varies from 17.9 per cent of members of small holding and one- fifths (20.5 per cent) of members of marginal holdings to nearly one-fourths (24.7 per cent) of members of semi-medium holdings to about two- fifths (39.4 per cent) of members of medium holdings.

Table6: Proportion of Earning Tribal Family Members Engaged in Farming and Non -agricultural Occupations

		Earning Members			Members Engaged in					
Size Class	**Total members**	**Male**	**Female**	**Total Members**	**Agricultur**	**% of earning**	**Labour**	**Service**	**Non - Agricultural Occupations**	**% of total earning members**
Marginal	103	28	16	44	9	20.5	11	0	0	0
Small	308	93	58	151	27	17.9	24	6	11	7.3
Semi-medium	533	166	85	251	62	24.7	15	17	12	4.8
Medium	247	66	38	104	41	39.4	12	9	5	4.8
Large	10	3	4	7	0	0	0	1	0	0
All	1201	356	201	557	139	25	62	33	28	5

Opposite to it, proportion of members engaged in non- agricultural occupation decreases with the increasing size of holdings except members of marginal and large land holdings. Nearly one–fourths (25 per cent) of members belonging to marginal holding are engaged as labour work followed by members of small holdings and semi-holdings.

Regime of Land Ownership and Size of Holdings by Community

Land ownership is being defined as the broadest right accepted in the given society for the disposal of land and obtaining profits from it. However, in many traditional societies the term of land ownership does not exist, i.e. nobody can transfer his rights in the land, and thus is not its rightful owner. Size and ownership of operational holdings in agriculture controls the use of inputs and efficiency of farms. Several yield–raising technologies have

been made available but they are not neutral in size and therefore they aren't within reach of every peasant. Being capital intensive the yield raising technologies and inputs depend on different size of holdings. The amount of land one possesses is the symbol of societal status and also such person has the necessary qualification to avail most of the opportunities. The households owning large holdings with good quality can use yield raising inputs and have easy access to modern inputs, financial, political and administrative institutions, and thus possess high bargaining potency and indirect form of power and prestige, credit and social security in rural society. Also, it has been reported by few big land holders of tribal community that they do not have good quality of land therefore they could not have credit in financial institutions. The poor peasants with tiny parcels of relatively poor land are deprived of such qualifications. In the above perspective the district presents a highly skewed picture.

Community and Size of Holdings

On average, 7.2 acres (2.91 hectares) of land is owned by an average farmer in the region. This average varies from 1.2 hectares among scheduled tribe and scheduled caste communities to 1.5 acres per OBC farmer to 2.0 acres per capita among farmers of Upper caste communities. Thus, largest average size goes to upper castes and lowest size is of farmers of scheduled tribe and scheduled castes communities. If we take the percentage of total number and total area than it can be concluded the farmers of upper castes communities have better position among all categories of farmers. Proportion of farmers belonging to marginal and small classes is higher than the average among schedule tribe and scheduled castes farmers. Contrary to it, majority of the farmers belonging to upper castes have lager holdings.

Variation in agricultural development by communities

Inter-Societal Variation in Development

For assessing the variation in the status of modernization of agriculture in general and tribal agriculture in particular 18 variables have been selected. Self Land, Net Sown Area, Area Sown more than once, Intensity of Cropping, Land per Households(acre), Land per member (acre), Gross Irrigated Area as % of GCA, Net Irrigated Area as % of NSA, % of Farmers using Irrigation Facilities, Proportion of farmers Using of HYVs % , Area under HYVs of GCA,% of Farmers Using the Fertilizers along with Irrigation, Area under Fertilizers as % of GCA, Quantity (KG) of fertilizers on per acre of GCA, Percentage of farmers Using of Machineries, Density of Machines on per 100 GCA, Agricultural

Commercialization: a. Proportion of farmers Selling the crops for consumers, b. Views about Getting Maximum Rate from Selling the Crops, c. Marketed surplus value of certain crops on per acre GCA by per household, Average Expenditure on per acre Grossed Cropped by per household, Proportion of farmers adopting Soil Fertility Measures. Actual value of all 447 sample farmers, classified in four communities are averaged and converted in to rate and ratios and weighted by mean of each variable. All 18 weighted variables are summed which give the composite index of modernization of each community. Actual values in form of rates and ratios are presented

Composite index thus arrived varies from 1627.4 for the scheduled tribes to 7180.3 for upper communities, 2869.1 for Scheduled castes and 2730.1for other backward castes communities. Ratios between these ST, SC, and OBC & UC indices are **1:1.76:1.67:4.41** respectively. It means level of development among upper communities is more than 441 per cent higher from that of the scheduled tribes. No doubt, tribes are at bottom as for as the status of agricultural development are concerned. This is the situation despite the fact that there are owners of medium and large holdings. But these land lords could hardly get the use of land properly for raising the output from their farms though they are in upper strata in their community. Even scheduled castes are in much better position than the scheduled tribes. They have comparatively larger average size of holdings. If we relate these scores to the total (formal literacy) of the surveyed households then it has direct relationship viz., tribes has lowest proportion (58.3), SC(78.5),OBC(75.9) UC(84.1) and region (67.8).

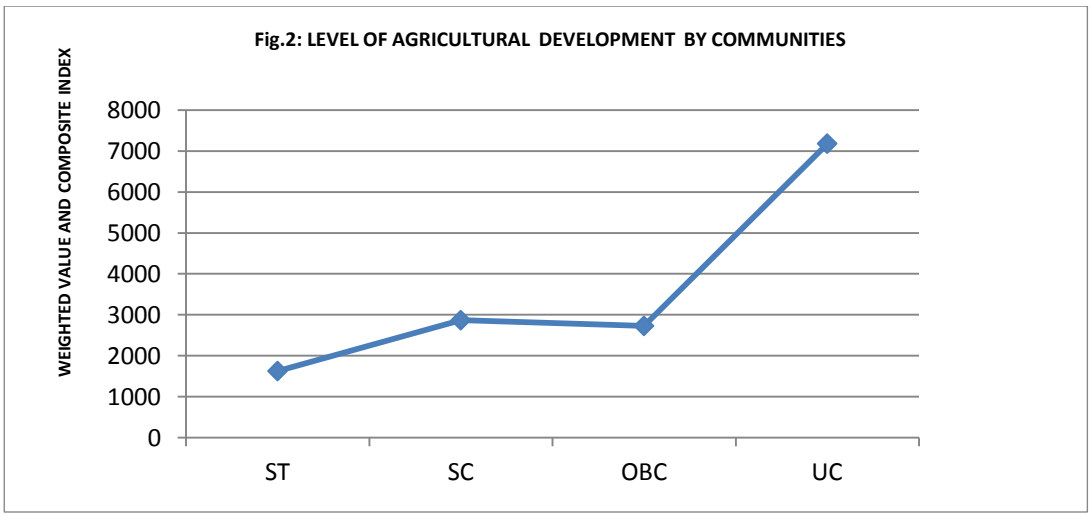


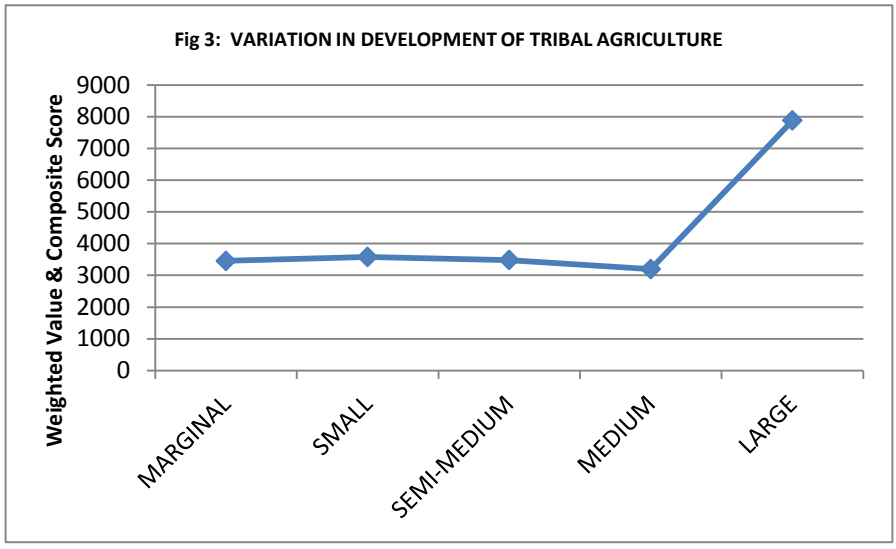
Table 7: Highest Correlation between composite score & Literate households

Community	Composite Score	Per cent of Literate houses	Correlation	Standard Deviation
ST	1627.4	58.3	0.999	14.37
SC	2869.1	78.5		39.61
OBC	2730.1	75.9		16.77
UC	718O.3	84.1		42.51

This table 7 indicates that lowest standard deviation is found among the Scheduled tribe community (14.37) and highest variation among the upper cast community (41.51) among 15 significant variables. It means tribal farmers are, to some extent, beneficiaries by adopting these farm techniques on their farms. But strong coefficient of correlation is originated between the communities and their education. Therefore, education is one the most imperative factors within the social system.

Intra- Tribal Societal Variation in Developmet

Spatial variation is just one direction of the reality. In fact, modernization varies the socio-economic capacity farmers. This capacity depends, with other things,on the size of holdings. Agricultural developmental measures and actual investment is also has direct relationship with the size of holdings. For assessing the variation in the agricultural development by size of holdings 34 variable has been selected. They have already been mentioned in the earlier discussion. Actual value of all 229 tribal sample farmers, classified in to five classes of holdings, are averaged and converted in to rate and ratios and weighted by mean of each variable. All 34 weighted variables are summed which give the composite index of agricultural development of each class.



On the intra-tribal societal variation in the agricultural development by calculating the standard deviation of 34 variables with the help of computer, it is found that medium farmers of tribal community has lowest deviation (56.44) followed by small (76.2), semi-medium (82.43),large farmers(103.84)and marginal farmers (107.49); while all farmers of these communities have this variation only 101,69. This analysis clearly focuses that medium, small and semi medium farmers has lower variation by adopting agricultural development measures on their field than the regional variation, Therefore, they enjoy greater benefit from adopting these innovations than the large and marginal farmers. It is outstanding that these farmers are not taking immense interest in their farming.

Conclusion

It is clear from above discussion that tribal agriculture is backward economy in the region and large and small tribal farmers are greater sufferers. Apart from their hares physical conditions, lower socio-cultural environment, traditional value system, poorer adoption behavior, isolation attitude are some major drawback which retard their agricultural production and productivity which needs to be accelerated. Secondly, highest & strong correlation (0.999868) has been found between composite score & Literate households in this study. Hence, proper attention needs to be given on their education along with other agricultural infrastructural facilities**.**

References

Das Gupta, Satadal (1975) Caste "Dominance and agricultural Development in Village India", **Human Organization**, 34j, 400-3.

Farmer, B.H., (1979 a)"The Green Revolution and Spatial Inequality in South Asia", Paper presented at ***Indo-British Seminar*** held at Madras in Dec., 1979.

Goodall, Brian, (1987) Dictionary of Human Geography. Harmondsworth : Pengin Books Ltd.

Mishra, R.P.,(1968) ***Diffusion of Agricultural Innovations***, Mysore: Instt. Of Development Studies.

Mohammad, N., (1974) "The Diffusion of an Agricultural Innovation in Haryana", ***The Geographer***, No. 1, Vol. XXI, Aligarh.

Raizada, Ajit,(1984) ***Tribal Development in Madhya Pradesh***. New Delhi: Inter India Pub.

Sharma, S.K., (1988) "Adoption of Agricultural Development Measures in Relation to Size and Tenancy of Operational Holdings in Madhya Pradesh", Indian Journal of Regional Science, Vol. XX, No. 2, pp. 27-39.

Sharma, S.K. (1989 a) ***Resource Development in Tribal India***, New Delhi, Northern Book Centre.

Sharma, S.K. (1989 b) Use of Yield-raising Technology in Tribal Blcoks of Madhya Pradesh, pp. 71-89, in P.D. Tiwari and A.N. Sharma, eds, ***Tribal Ecosystem and Malnutrition in India***, New Delhi, Northern Book Centre.

Sharma, S.K., (1992) "Environment and Adoption of High Yielding Variety of Seeds in Madhya Pradesh", PP. 107-119 in Noor Mohammad, ***New Dimension in Agricultural Geography***, Vol. 6, New Delhi, Concept Publishing Co.

Sharma S.K. (1993) Scenario of Development in Tribal Development Blocks of M.P pp. 117 -126in Vijay Phanse, ***Scenario of the Evaluation and Exploitation of Tribal Resources***, Indore Government Arts, and Commerce College.

Sharma S.K. (1995) Tribal Demography of Madhya Pradesh, pp. 51-59 in S.K. Tiwari, ed, ***The Tribal Situation and Development in Central India***, New Delhi: M.D. Publication, Pvt. Ltd.

Sharma S.K. (1998) Reflection of Social Structure on Adoption, pp. 165-177in Y. G. Joshi and D.K. Verma, eds, ***Social Environment for Sustainable Development***, Jaipur : Rawat Publication .

Sharma S.K. (1999) Social Structure and adopionof Agricultural Innovations in Madhya Pradesh, ***Geographical Review of India***, Vol. 61, No. 2, pp. 16-164.

Sharma, S.K. & D.D. Vishwakarma, (2000) "Status of Modernization of Tribal Agriculture in Madhya Pradesh", pp. 133-140, In D.K. Singh, R.S. Dubey, V.K. Shrivastava, eds., ***Geography : Development & Change***, Gorakhpur, Association of Marketing Geographers of India.

Vishwakarma, D.D. ***(2003) Adoption of Agricultural Development measures (A study of Chhindwara-Betual Plateau, M.P.)***, Northern Book Center, New Delhi.

Importance of Fairs in Tribal Life
A Case Study of Shankarvan Fair
Bichhua, Chhindwara District

Dr. Rajendra Prasad Yadav
Professor of Geography
Govt. College, Bichhua Chhindwara, M.P.

&

Dr. Gajendra Kumar Namdeo
Guest Lecturer in Geography
Govt. Auto. P.G. College, Chhindwara, M.P.

Abstract

Fairs are a vital part of tribal people. Shankarvan fair is convening in Bichhua block of Chhindwara district. In this paper an attempt has been made to point out the importance of fairs in tribal people. The main focus of study is on socio-economic, cultural, environmental health and sanitation aspects.

Introduction

Fair are the places were tribal people gathered in large number for as a mobile market centres in tribal areas. Fairs centre are infect the meeting place of economic – social and cultural point of view for tribal. They reflect the tangible part of cultural compulsion on the common people of local society.

Many factors are conductive to fairs traditionally hold in reputed places and market villages. Fundamental of all however is that, the location such fairs must be unique and religiously importance with a convincing historical record. All the religious beliefs attached to such places, induces the general mass to visit the fair. Religious belief commonly assigned to annual fairs because it could bind the population in one thread and compile them moral to participate on the annual fairs by attending necessary rituals for all the people, which take place festive occasions of the Maker sankranti, Shivratri, Basant panchmi and Ramnavami festival.

Study Region

Shanarvan is located in Bichhua block of Chhindwara district. It is situated in the way of Bichhua- Khamarpani road and 8 km. away from Bichhua block headquarter. Bichhua is a major tribal Zone of the district. It spread over 543 square kilometre. Total population of

Bichhua is 87,691 person (2011). The tribal population of the block is 48,923 person, which is 55.79 percent of total population. Gond, Pardhan and Mawasi are the major tribes.

Shankarvan is dense mixed forest area and specially known for Teak and Mahua trees. A temple of Lord Shankar is situated in the bank of nallha (Stopdem). Natural view of this place attract to everyone to come. The fair of Shankarvan begins before two days of Makar Shankranti and up to after two days. Tribal and other people of Bichhua and adjoining places of Shankarvan, comes to attend the fair in a large number.

Methodology

The Administrative data is collected from Statistical Hand Book of Chhindwara District, Socio- economic, cultural, health and sanitation study is based on secondary data collected by author himself with the help of pre-prepared questionire–Scheduled, keen observation is also an attempt to help in this study.

Socio-cultural aspect

The fair are vital social contact points for the tribal people. The fair are a part and parcel of tribal people's life. These are a place where youngster meet and choose their life partner. They improve their older relations and find connection for new. Changing of their life style with the connection of modern life effecting their older cultural values. But we can say it is a transitional period for them some where they don't want to left their older values, which are deep rooted with their character i.e. tattoing and wearing traditional ornaments.

Economic aspect

The fairs are a part and parcel of every tribal people life, purchasing goods, entertainment contact with outside world to collect information about others. Fairs are good centre selling their forest products. A part from that the forest markets also contains agricultural products, clothing, ornaments, bangles, cosmetics, pottery goods and implements for fishing nets and many other items of manufactured products of their use. The price difference of various commodities, including the forest products between any two markets is not too much. This indicator is a high rate of flow of information from market to market. The development of means of communication helps the sellers and consumers to visit the fairs from for and flung village and towns.

Streams of the peoples both sellers and buyers are seen making this way towards the village with cart, head, bicycle. motorcycles, matadors and minibuses. There for many blocks to the fair on a small pretext, they assemble at the main street. The resourceful traders erect tent

shop and arranging window display, while the others simply spread out garments are matting on the ground and lays their wares on it.

Recent development also affects the life style of the tribal of the region. Now the women are the buying cosmetics of modern style and garments too while men are electric and electronic goods, mobiles, chasmas, jeans and filmi posters. Other requirements i. e. good grains, tobacco, spices, oil and ornaments. Tribal people growing contact with the outside world has created him a new outlook and new wants. They tries to initiate the civilised often they charmed by the glittering articles of modern taste like glass, bangles, mirrors, combs, mettles utensils, lamp, boxes etc. As a result their buying activities have increased in recent times.

Environment, Health and Sanitation

Fairs are places where diseases available free of cost. Shankarvan fair place is situated in bank of a nallah where water blocked as a stop dam. It is also point out that only a single hand pump is available for drinking water, which is able to serve small group of people. Stop dam water used by large for drinking, bathing and for privy. Shopkeeper takes it for preparing food items and drinking. It is a place where diseases spread easily. Sanitation of the whole place is not so good.

Lower buying capacity of tribal people not allowed buying a quality food. They preferred quantity not quality. Cheaper food not prepared by good quality oil and quality material. Uncovered dusty food stuffs polluted by flees easy source of spreading diseases.

Suggestion

Tribal people have specific problems. Some of them are inbuilt and others are imposed upon them, which works as barrier for their overall development and progress inclusive of their health. Therefore specific community, that is serves to their specific needs and problems by bringing their personal environment. Fairs are better places where they reach in large quantity.

To improve education level, especially women education, scheme should be made.

Mobile health services (government) should be provided in each tribal fair to benefice more tribal people.

- To aware about the diseases i.e. AIDS, Malaria, Tuberculosis, Leprosy, Cancer by bed habit of chewing tobacco and gutkha, audio- visual programme should be displayed.
- To aware about the personal sanitation and hygiene programme on their own language which are effective.

- Drinking water should be facilitating by government water tankers and other available sources. For the proper sanitation temporary toilet should be made by the help of government.

Acknowledgement

Author is thankful to District Statistical Office of Chhindwara District to providing secondary data and other related information. Thanks are also due to kind co-operation during interview to the tribal people. Special thanks to Prof. R.P. Yadav (Dept. of Geography) Govt. College, Bichhua for valuable guidance.

References

Bhargava, A. (2005): "Evaluation, Development and Management of Water Resources in the Betul Chhindwara Plateau, M.P." Unpublished Ph.D. Thesis. Dr. H.S.Gour. Univ. Sagar.

Census of India (2011) Madhya Pradesh, series 24, part XII B. District Census Hand Book Chhindwara.

Choubey, K. (1991): "Life Style and Avenues Among Tribal Population of Bastar," Bulletin of Tribal Research institute, Voll. XXVII, No. 2, Bhopal.

Gour, A.S. (2001): "Indigenous Health Care Delivery Among Tribals of Betul-Chhindwara Plateau." Unpublished Ph.D. Thesis. Dr. H.S.Gour. Univ. Sagar.

Yadav, R.P. (2004): "Spatio-Temporal Study of Agricultural Land use and Nutrition in Chhindwara District M.P. an unpublished Ph.D. thesis, A.P.S. University, Rewa, M.P.

Crop Suitability Analysis of Groundnut and Sunflower using Geoinformatics, A Case Study of Jallutu Watershed, Tamil Nadu

R. Jegankumar[1], K. Balasubramani[1], P. Masilamani,[1]
Assistant Professor, Department of Geography, \
Bharathidasan University,
Tiruchirappalli
V. Indra[2], V. Durga[2], S. Abdul Rahaman[3]
[2]JRF (UGC-SAP/DRSII), [3]SRF(UGC-BSR)
Department of Geography,
Bharathidasan University,
Tiruchirappalli

Abstract

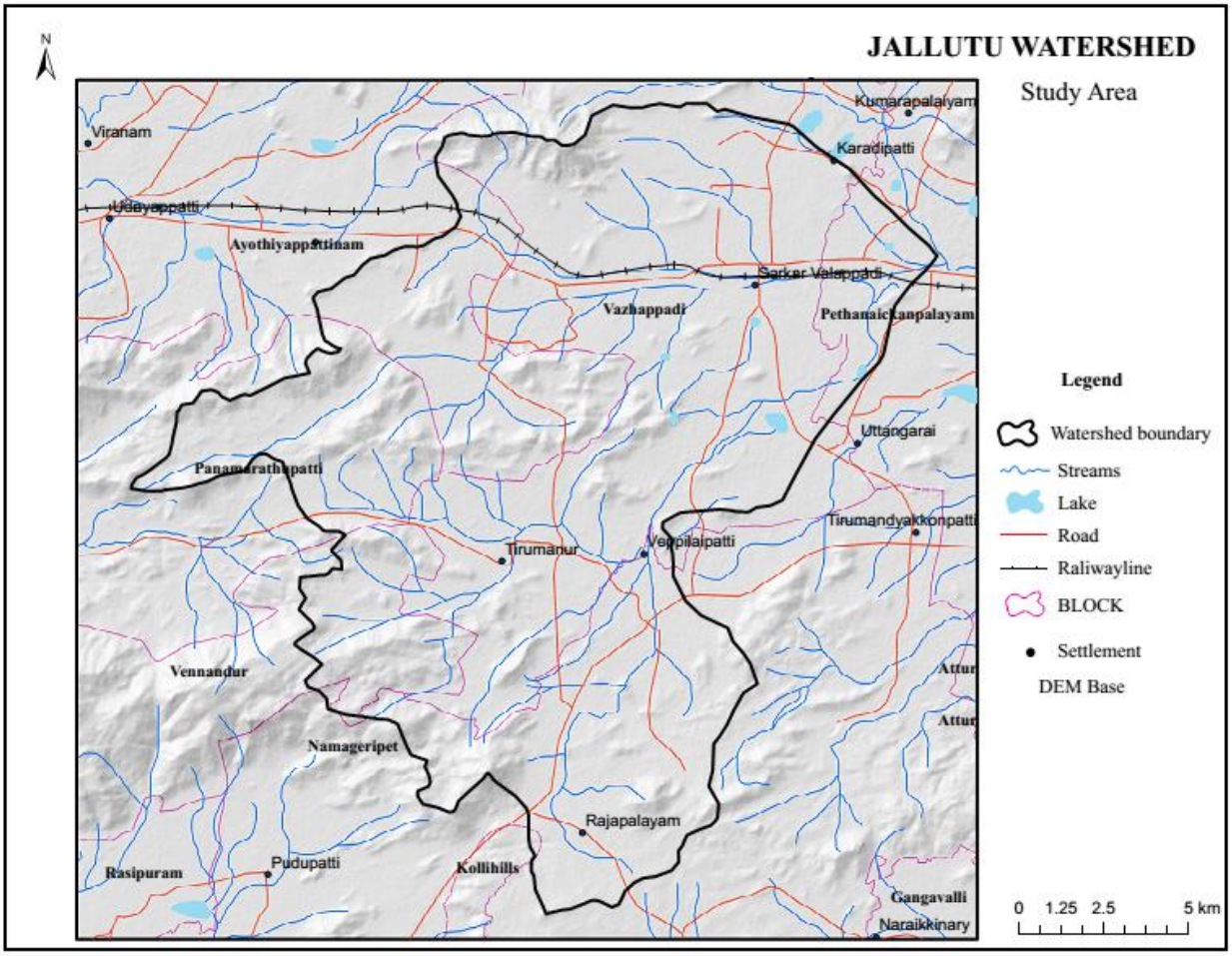
A land evaluation based crop suitability is attempted in Jallutu watershed in eastern part of Tamil Nadu. The watershed is witnessing intense agricultural and industrial activity in recent years. The study area occupies an area of 280 sq. km^2. The Jallutu river originates in the hills located in western direction, the river flow indicate the relief of the watershed. Structural hills and pediments are the dominant geomophological features found here. Land unites were delineated by overlaying geomorphology, soil depth, soil texture, pH, sodicity. ESP, land capability, land irrigability and land use and land cover. The land units are critically compared with crop requirements of groundnut and sunflower. The attributes of land units are weighted as per the nature of suitability towards the selected crops. The index is classified statistically and the final suitability classes are obtained. The high suitability for groundnut is about 21.84 per cent and for sunflower is 14.07 per cent, it is found along the plains and riverine courses. The moderately suitable for groundnut and sunflower are respectively 31.9 per cent and 39.86 per cent.

Key words: Crop suitability, land evaluation, overlay, GIS, land units.

Introduction

Land evaluation is the prerequisite analysis for the crop selection of an area. It is the structured systematic approach. The land evaluation and Geoinformatics provide a sound path to tap the land potential by accounting climate and soil resources. The Geoinformatics is the best technology for handling voluminous spatial and non-spatial data. The modern

agriculture provides best seeds, agro meteorology provides needful information to farmers from laboratory to farms. The increasing population made lot of changes on the available land, which leads the rapid fall of agricultural crop lands. Ample amount of agricultural lands were already converted to human occupation such as industries and settlements. The study area is also an evident for such case. A glance look of satellite image shows industries



and settlements were occupying the watershed. A critical analysis is required to bring more land under agriculture for suitable crops. Oil seed cultivation is quite popular in the study

Fig. 1 Study Area

area; two oil seed crops (Groundnut and Sunflower) are taken. By keeping this in mind an attempt is made to find out the crop suitability in Jallutu watershed using geoinformatics. .

Study Area The Jallutu watershed is located in the eastern part of the Salem and Namakkal Districts of Tamil Nadu. It covers an area of 280sq.km^2.Jallutu watershed spread across Ayothiyapattinam, Pethanaickenpalayam, Panaimarathupatty, Vennandur and Namagiripettai. The Jalluttu river originates from Nainarmalai on the west and flow towards north east and

confluence with Vellar river. The maximum elevation of the watershed is 964 m above ellipsoid (WGS84), minimum is 253 m and an average elevation is 621 m. The average rainfall of the area is about 850 mm annually. The study area receives rainfall in both south west and north east and supported with summer showers. The length of growing period of the area is 90 - 150 days and more than 150 days. The study area falls under semiarid climatic region. From 27^{th} to 52^{th} standard weeks receives more than 7.5 mm of rainfall which are potential growing periods. The annual average temperature of the study area is 27^{o}C. The study area is shown in the figure. 1.

.

Data and Methodology

The drainage network and watershed are delineated from the Survey of India topographical sheets (1: 50000). Land use / Land cover map is prepared from LISS IV data with 5.8m spatial resolution. Digital Elevation Model (DEM) of SRTM from GLOVIS web portal. The soil data is obtained from Tamil Nadu Agricultural University. ARCGIS 10.0 is the software is used for data processing and mapping.

Methodology

The Jallutu watershed and its drainage area mapped from the Survey of India topographical maps. The landuse and land cover map was prepared from LISS IV (5.8m) data by employing visual interpretation techniques. Soil data was collected from Tamil Nadu Agricultural University, Coimbatore. From the block level soil data, by employing standard GIS procedures maps such as soil series, texture, depth, land capability, land Irrigability, pH, exchangeable sodium percentage (ESP) and electric conductivity were prepared. The Slope map was prepared from the 30m SRTM Digital Elevation Model (DEM). The Geomorphology map was prepared from LISS IV (5.8m) and other published maps. As per the prescribed methodology provided by FAO (1996) The land units were generated by super imposing land use / land cover, geomorphology, slope, texture, depth, land capability, land Irrigability, PH, exchangeable sodium percentage (ESP) and electric conductivity the overlay process yield polygons by intersect the layers. There are numerous tiny polygons which have to be eliminated through the elimination process. In this study one hectare was taken as threshold which brought 3,259 polygons. Each individual land units were compared with the crop requirement parameters suggested by NBSS & LUP. The final suitability maps are prepared from the assigning weightages to the individual land units and the sum of weights was classified statistically into suitability class.

Land use / Land cover

The land use land cover map shows a forest was located in the western part of the study area, towards the eastern part agricultural land and settlements were prominent. In this study area Forest covers an area about 100 sq. km2 which shares 35.7 per cent. The agricultural lands occupy 166.32 Sq. km2which are shared by crop lands, fallow lands and plantation lands. the plain area of the watershed shows the intensive agriculture. Few prominent industries and quarries are also identified. Along the hill slopes in the north and the middle land without scrub lands were seen which indicates the thin soil cover and restricted vegetation growth. Settlements cover an area of two per cent of the study area. The land use and land cover map shown in the figure 2 and the table 2 lists the various land use and land cover categories of the study area.

Table: 1. Land use and Land Cover

Land use / land cover	**Area in Sq. km^2**	**Percentage**
Settlements	5.32	2.00
Crop Land	66.38	22.99
Fellow Land	68.64	24.52
Plantation	31.30	11.18
Land with Scrub	6.31	2.25
Land without Scrub	1.17	0.42
Forest	99.97	35.70
Quarry	0.12	0.04
Industry	0.38	0.13
River	0.78	0.28

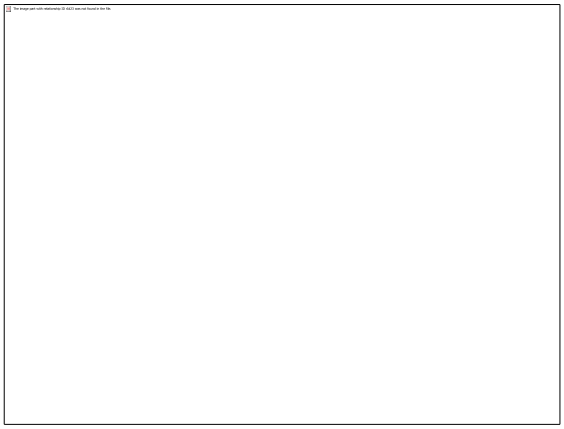


Figure 2 Land use / Land cover

Geomorphology

The study area dominated by pediments and structural hills, the western part of the study area is covered with structural hills. The deep buried pediments are seen along the river courses which were the evident of geomorphic process generally these have deep soil with high fertile in nature. Shallow pediments were seen in the along the foot hills with less agriculture practice. Pediments were seen along the northern and south eastern part of the study area characterised by its scanty

vegetation and rocky exposure. The crop suitability analysis requires geomorphology as base layer. The geomorphology of the study area is shown in figure 3 and table 2

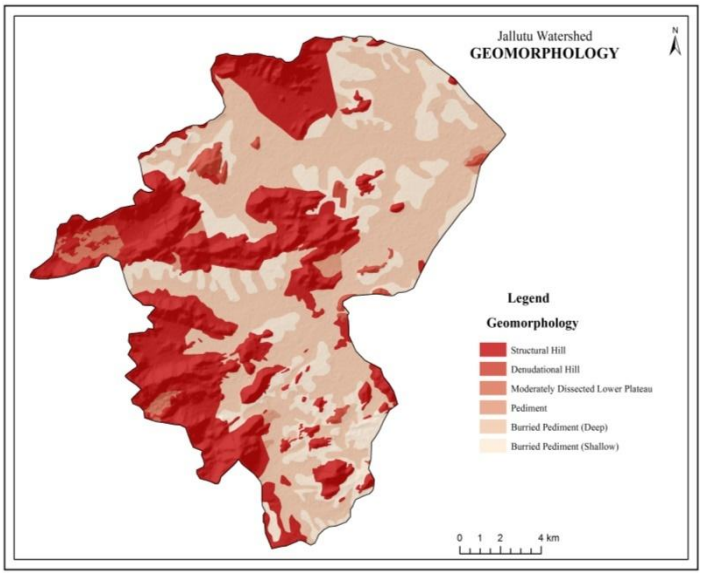


Figure 3 Geomorphology

Table 2 Geomorphology

Slope

Geomorphology	Area Sq. km^2	Percentage
Buried Pediment (Deep)	111.61	40.00
Buried Pediment (Shallow)	53.25	18.77

The slope of the study area is prepared from the 30DEM, the DEM was extracted for the area of interest. The percentage slope of the study area is computed through ARCGIS spatial analyst. Slope categories are classified in to very gentle, gentle, moderate, moderate steep, steep and very steep. The slope of Jallutu watershed is shown in the figure 4 and table 3

Table 3. Slope

Slope in Percentage	Slope	Area Sq. km^2	Percentage
0 to 3	Very Gentle	64.83	23.15
3 to 5	Gentle	83.30	28.90
5 to 10	Moderate	42.91	16.50
10 to 15	Moderate Steep	14.58	5.21

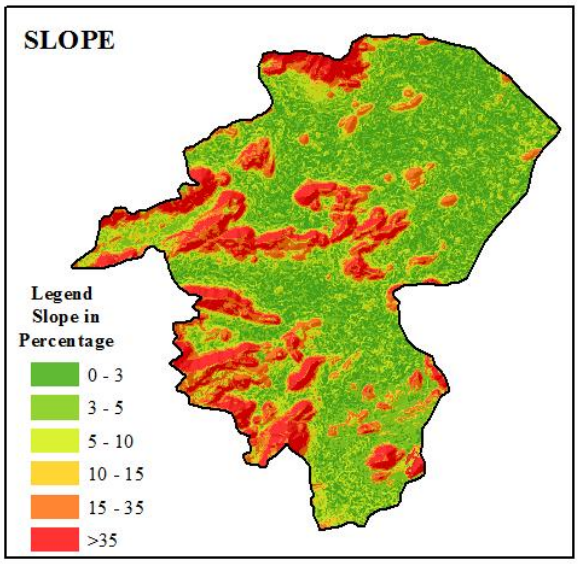


Figure 4 Slope

15 to 35	Steep	38.49	13.75
More than 35	Very Steep	35.90	12.82

The gentle and very gentle slope covers an area about 148.13 sq. km^2 of the study area which are present in the plains of the study area. Nearly 90 sq. km^{2}area was under moderate to very steep slope, which are present along the hills of the study area.

Soil depth

Soil depth is an important parameter for cop suitability analysis. The soil depth provides the effective rooting depth for the plant and depth of soil determines the effective capacity of the soil column to hold water. The study area have soil depth between 14 to 169 cm., the average soil depth of the study area is 15 cm The river courses in the eastern part of the watershed have deep soil. Hills slopes only have shallow deep soil. The landuse also reflects the plantations were concentrated where soil is very deep. The figure 5 shows the soil depth of the study area and table 4 list the soil depth categories of the watershed.

Table 4. Soil Depth

Soil Depth in cm	**Area Sq. km^2**	**Percentage**
Very Shallow	40.26	14.23
Shallow	116.22	41.51
Mod. Shallow	14.96	7.26
Mod. Deep	48.26	16.54
Deep	60.82	20.65

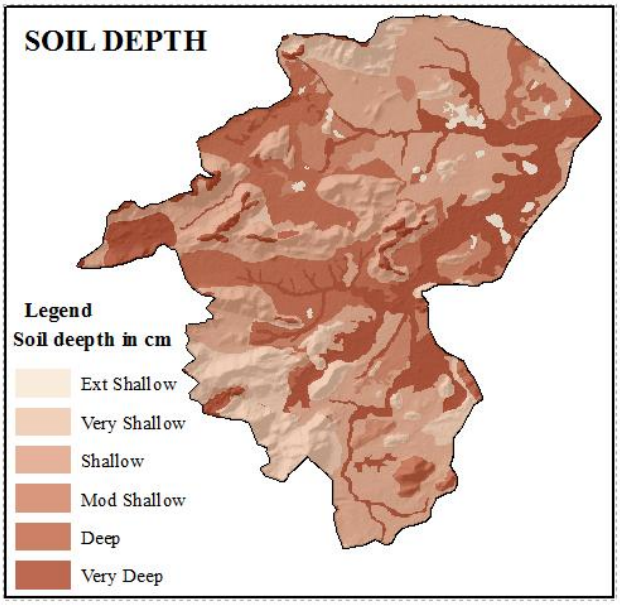


Figure 5 Soil Depth

Soil Texture

Soil texture is an important layer for evaluating the land for crop suitability, which play a significant role in crop selection of an area. In this study area sandy clay loam is spread about 135.68 Sq.km^2 (48 per cent). Sandy clay and sandy loam are occupy an area about 12 and 13 per cent of the study area. Clay and clay loam are found along the river

course and its lateral side. Loamy sand soil is found along the hill slopes on north and north western part of the study area. The following figure 6 and table 5.

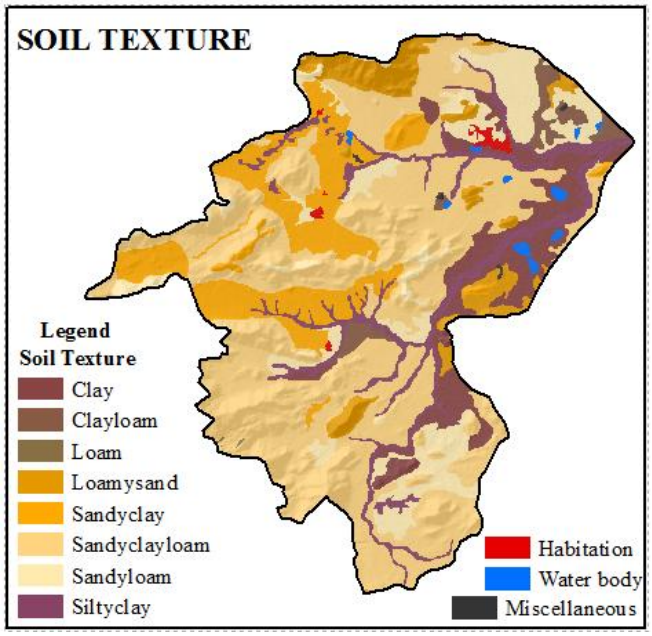


Table 5 Soil Texture

Texture	Area Sq. km^2	Percentage
Clay	*25.66*	*8.27*
Clayloam	*9.00*	*3.10*
Loam	*0.10*	*0.03*
Loamysand	*15.94*	*5.69*
Sandyclay	*38.14*	*13.62*
Sandyclayloam	*135.68*	*48.46*
Sandyloam	*35.27*	*12.33*
Siltyclay	*20.32*	*9.23*

Figure 6 Soil Texture

Salinity

Salinity of the falls of the study area is slight the minimum at 0.1 and maximum at 1.1 (dsm-^{1}). The electric conductivity maps shows the eastern and western part having higher conductivity than the middle part of the study area. The following figure 7 depicts soil salinity.

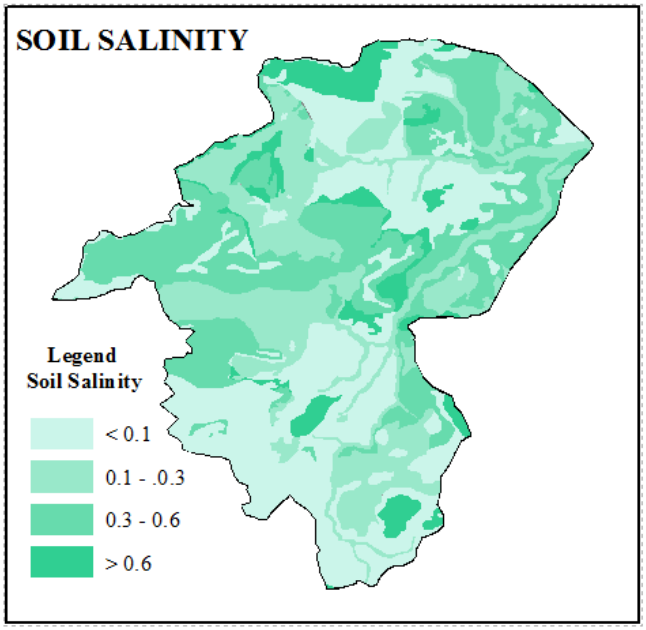


Figure 7 soil salinity.

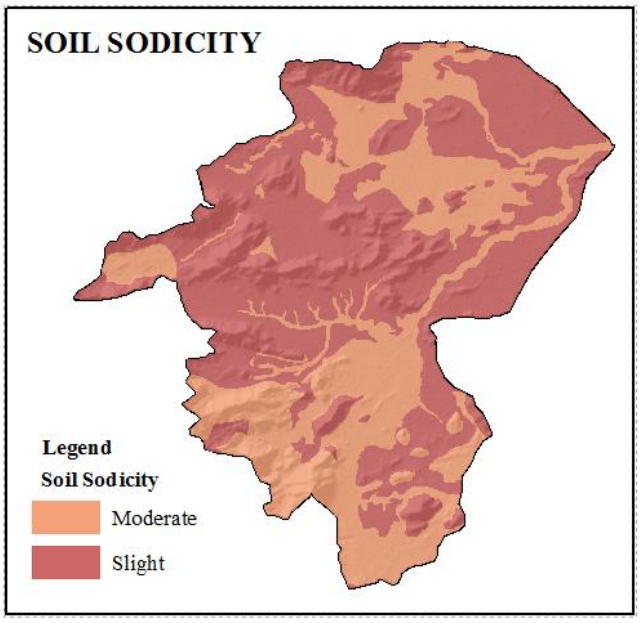


Figure 8 Soil Sodicity

Sodicity

The Sodicity of the study area were slight and moderate, which occupies 170.36 and 110.25 Sq. km^2, The river course in the south, western and north eastern part of study area have moderate Sodicity when compared to other areas. The figure 8 depicts the soil Sodicity of the study area.

Delineation of land units

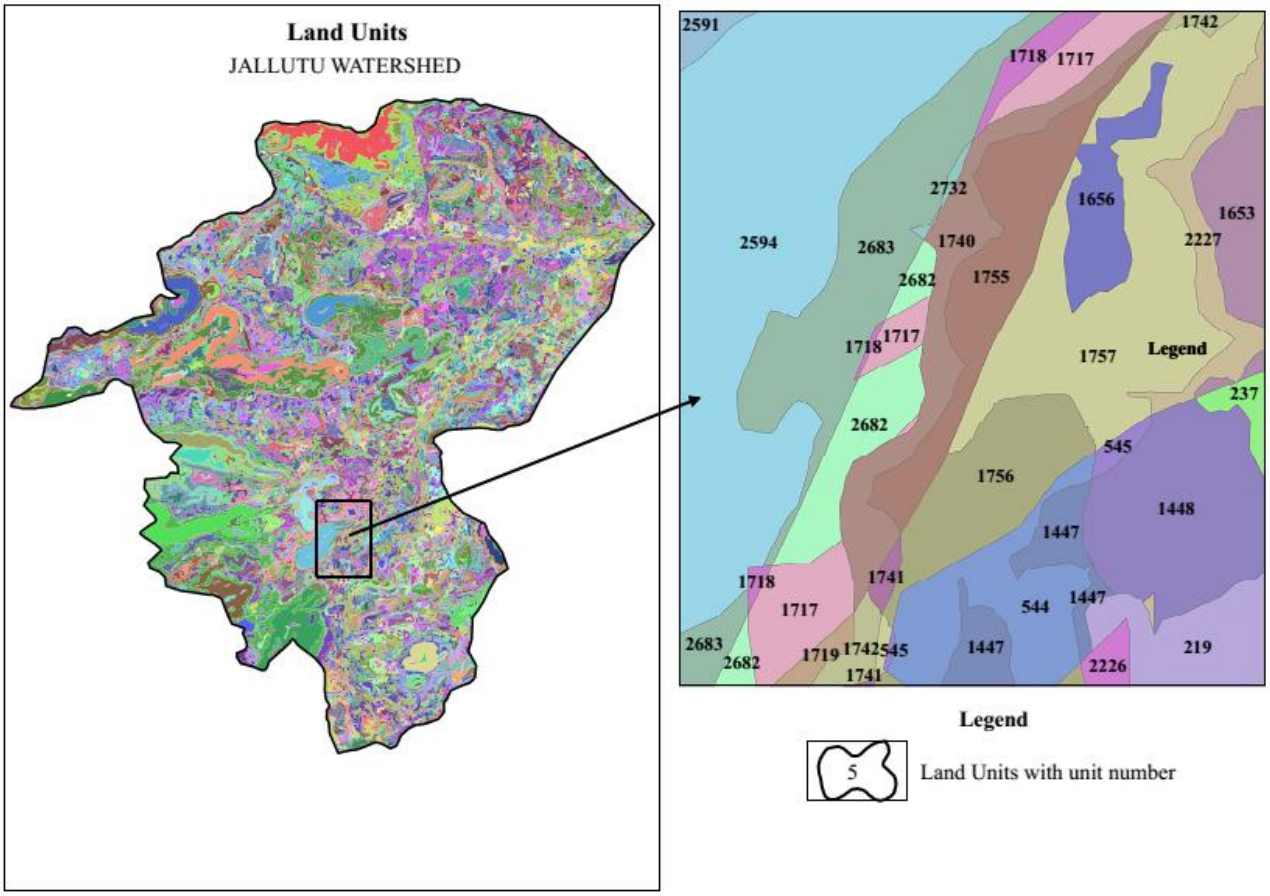


Figure 9 Land Units

Land mapping units are mapped area of land with specified characteristics; land mapping units were defined and mapped by natural resources surveys and from a basis for land evaluation. In this study land units are generated by super imposing land use / land cover, geomorphology, slope, texture, depth, land capability, land Irrigability, PH, exchangeable sodium percentage (ESP) and electric conductivity, the overlay process yield polygons by intersecting the above mentioned layers. There are numerous tiny polygons which have to be eliminated through the elimination process by taking a threshold area. There are 3259 land units were yield, attribute of land information. The table 6 shows the attributes of each land units. The units are numbered as 1….3259. The Figure 9 describes the land units of the study area.

Table 6 Land Units and its attributes

Geomorphology	Slope	Soil depth	Texture	Land capability	Irrigability	Ph	Ec	CEC	Oc_per	Esp	Land Use	Land Unit No.
Buried (Deep)	Pediment	0 - 3	46	Sandy loam	Clay	IV s	2s	8.2	0.1	23.31	0.92	10.64	Crop Land	1
Buried (Deep)	Pediment	05-10	46	Sandy loam	Clay	IV s	2s	8.2	0.1	23.31	0.92	10.64	Crop Land	2
Buried (Deep)	Pediment	0 - 3	46	Sandy loam	Clay	IV s	2s	8.2	0.1	23.31	0.92	10.64	Crop Land	3
Buried (Deep)	Pediment	0 - 3	46	Sandy loam	Clay	IV s	2s	8.2	0.1	23.31	0.92	10.64	Plantation	4
Buried (Deep)	Pediment	0 - 3	46	Sandy loam	Clay	IV s	2s	8.2	0.1	23.31	0.92	10.64	Fellow Land	5
Buried (Deep)	Pediment	0 - 3	46	Sandy loam	Clay	IV s	2s	8.2	0.1	23.31	0.92	10.64	Fellow Land	6
Buried (Deep)	Pediment	05-10	160	Silty clay		III s	2s	8.43	0.16	18.8	0.24	7.05	Plantation	7
Buried (Deep)	Pediment	05-10	46	Sandy loam	Clay	IV s	2s	8.2	0.1	23.31	0.92	10.64	Plantation	8
Buried (Deep)	Pediment	05-10	46	Sandy loam	Clay	IV s	2s	8.2	0.1	23.31	0.92	10.64	Crop Land	9
Buried (Deep)	Pediment	05-10	46	Sandy loam	Clay	IV s	2s	8.2	0.1	23.31	0.92	10.64	Fellow Land	10

Crop suitability of Groundnut and Sunflower

Groundnut

Groundnut/peanut/earthnut is most popular oil seed in across the tropics, are found in Asia, Africa and the Americas. Groundnut requires an amount of 625- 1250 mm of fairly well distributed rainfall. The crop requires intermittent light showers for profuse flowering coupled with bright sunshine for further development of flowers. Thus, alternate spells of dry

and wet weather are ideal for flowering; excessive rains are also not desirable for pod formation. The process of identification of based on the crop requirement (groundnut) proposed by NBSS &lup. Each land unit's attributes were critically analysed with the following table 7 and the figure 10 depicts the groundnut suitability.

The weights were assigned to evolve the groundwater suitability index, The sum of all the weights of the attribute are statistically classified as Highly suitable (S1), Moderately suitable (S2), Marginally Suitable (S3), Not Suitable (N): Currently not suitable (N1) and Permanently not suitable (N2). The result reveals that in the Jallutu watershed have 60.65 Sq. $km^2$is highly suitable (S1) for groundnut, which are present along the eastern and south eastern part of the watershed. Western and central part of the study area is under moderately suitable for groundnut (S2) 89.36 Sq. km^2 (31.95%) is classified Groundnut is marginally suitable (S1) along the foothills along the eastern slopes most of the pediments were under this category. Groundnut is not suitable (N) over hills, settlement and water bodies of the study area 90.36 Sq. km2 31.87(%).

Table 7 Crop suitability of Groundnut and Sunflower

Suitability Class	**Groundnut**	**Sunflower**
S1	60.65 Sq. km2 21.84(%)	40.27 Sq. km2 14.07(%)
S2	89.36 Sq. km2 31.95(%)	112.35 Sq. km2 39.86(%)
S3	40.26 Sq. km2 14.34(%)	39.82 Sq. km2 14.38(%)
N	90.36 Sq. km2 31.87(%)	88.51 Sq. km2 31.95(%)

Sunflower

The sunflower is another popular edible oil crop popular in dry tracts, Sunflower is a short duration, annual, photo-insensitive crop with wide adaptability and droughttolerance crop. It is quite popular in Salem and Namakkal Districts of Tamil Nadu. The three thousand land units were critically compared with the crop requites suggested by NBSS & up Higher the suitability higher weights were assigned, the sum of all weights were statistically

classified based on mean and standard deviation. The results shows sunflower is highly suitable (S1) along the land around foot hills, which spread an area 40.27Sq. km^2 (14.07%).

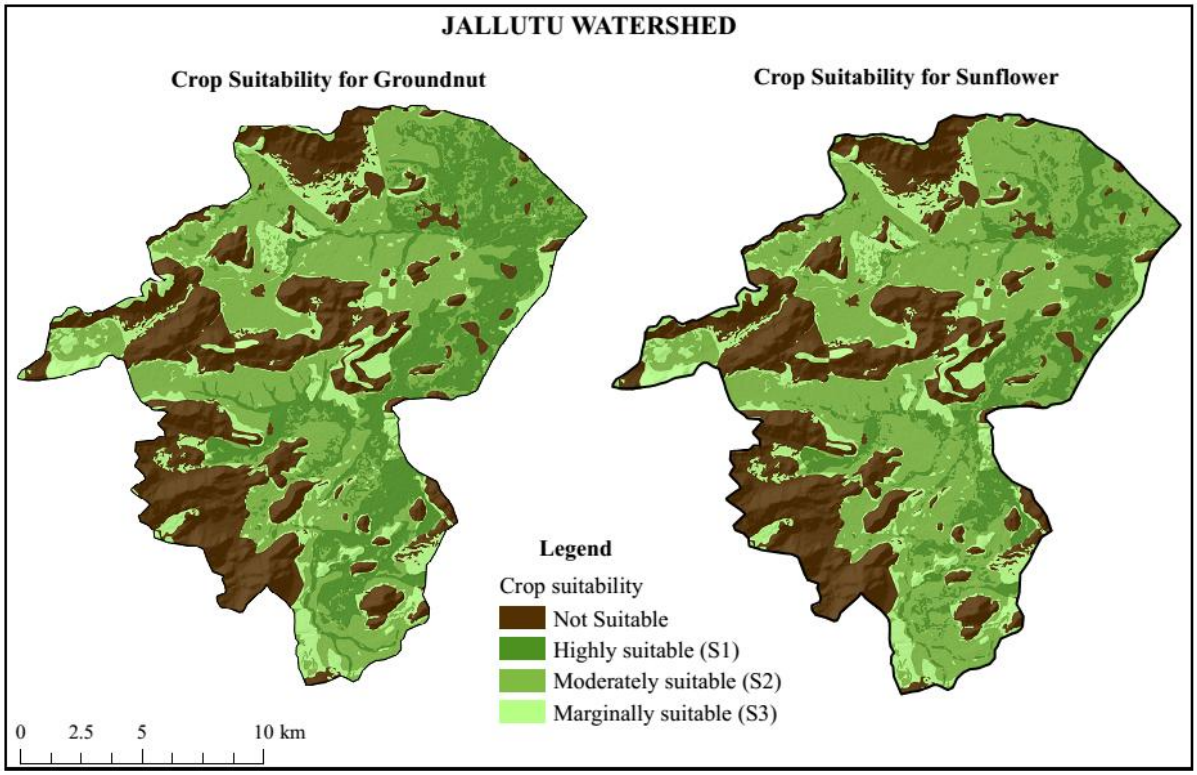


Figure 10 Crop Suitability of Groundnut and Sunflower

In the case of sunflower moderately suitable (S2) is occupying larger area, which is about 112.35 Sq. km2 (39.86%) along the western plains, northern plains of the watershed. The sunflower is marginally suitable (S3) along the eastern side and along the river courses from west to eastern direction, which are spread around 39.82 Sq. km2 (14.38%). The analysis identified an area of 88.51 Sq. km^2 (31.95%) is not suitable (N) for sunflower along the hills and hills slopes, pediments and water bodies which covers an area of 88.51 Sq. km2 (31.95%).

Conclusion

The study was carried out to identify the land suitability for groundnut and sunflower, through land evaluation and Geoinformatics techniques. The study area is about 280 sq. km^2,it is sub watershed of river Vellar. The land units were delineated by overlaying (intersect) land use / land cover, geomorphology, slope, texture, depth, land capability, land Irrigability, pH, exchangeable sodium percentage (ESP) and electric conductivity. To tap the potential land units for groundnut and sunflower, the attributes were assigned weights. Higher

weights were assigned for higher suitability similarly for low potential lower weights were assigned, each land units separately for groundnut and sunflower. The high suitability for groundnut is about 21.84 per cent and for sunflower is 14.07 per cent, it is found along the plains and riverine courses. The moderately suitable for groundnut and sunflower are respectively 31.9 per cent and 39.86 per cent. The land evaluation results are shows 31 per cent of land area in the watershed is not suitable for both the crops. The study area is famous for rainfed agriculture, when the rainfall is decrease from the normal during the mild drought conditions sunflower will be better choice for formers, because sunflower is a short term crop than groundnut. Both the crops are provide high revenue when the lands are identified through land evaluation techniques.

Acknowledgement *Authors sincerely thank UGC SAP/ DRS II for the financial assistance to carry out the research work.*

References

FAO. (1996). Agro Ecological Zonig, Guidelines, Soil Bulletin 73, Rome, p.5- 53.

FAO., (1983). Land Evaluation of Rainfed Agriculture.*Soil Bulletin*, 52, Rome, p. 237.

FAO. (1976). A framework for land evaluation, Soil Bulletin 32, Rome, p.30- 35.

Jadab Chandra Halder., (2013). Land Suitability Assessment for Crop Cultivation by using Remote Sensing and GIS.*Journal of geography and Geology*, 5(3), pp. 65 – 74.

Mustafa, A., Man Singh, Sahoo, R. N., Nayan Ahmed, Manoj Khanna, Sarangi, A., and Mishra, A. K. (2011). Land Suitability Analysis for Different Crops: A Multi Criteria Decision Making Approach using Remote Sensing and GIS. *Researcher*, 3(12), pp. 61-84.

Naidu, L.G.K., V.Ramamurthy, O.Challa, R. Hegde and P. Krishnan (2006) "Manual Soil-Site Suitability Criteria for Major Crops" NBSS Pub!. No. 129, NBSS&LUP, Nagpur, pp. 38 – 42.

Naidu, L.G.K., Ramamurthy. V., Srinivas.S., Natarajan.A., and Thayalan. S. (2013). Delineation of Agro Ecological Zones of Tamil Nadu.*Agropedology*, 23(2), pp. 83-92.

A, Reddy. P. S. A, Velayutham. M, Sehgal. J (1997) Soil Resources of Tamil Nadu for Land Use Planning, NBSS, 46b, National Beurea of Land Use Planning, pp 88.

Educational Status of Scheduled Caste and Scheduled Tribes in India: Constitutional Provision and overnmental Interventions

Mrs. Sarita Bobade

Ph.D. Research Scholar,

School of Education

D.A.V.V., Indore,

saritabobade630@gmail.com

Dr. Madhulika Varma

Senior Lecturer,

School of Education,

D.A.V.V., Indore,

madhulika64@gmail.com

Abstract

The SC and ST communities of India have been deprived, neglected and unimportant from other Indian societies since years. After 69 years of independence of our country, the SC and ST communities are still deprived and marginalized. In independent India, several provisions are made for their social, economical and political development. Constitutional provisions like article 15, 15(4), 16, 16(4), 21A, 46, 243D, 330, 332 and several schemes are functioning for their educational, vocational and social progress. These schemes include scholarship programmes, hostel facility, Kasturba Gandhi girl's school, ashram schools, Adarsha Eklavya residential scheme and in addition to this other governmental and non-governmental organisations are also working for them. Even after doing all these things, no satisfactory results are obtained but some small positive changes are seen in urban areas. The objective of the paper is to analyse the status of education of SCs and STs. The analysis is based on secondary data of Census of India, 2011and AISHE report on higher education of SC and ST people. The percentage of literacy of tribes was only 8.54 per cent in 1961, which has increased to 63.1 per cent in 2011.

Key Words: Education, Enrolment, Literacy, Tribes, Culture, Organisations

Introduction

India is a home to a large variety of indigenous people. The Scheduled Caste and Scheduled Tribe population represents one of the most economically impoverished and marginalized groups in India. With a population of more than 10.2 crores, India has the single largest tribal population in the world. This constitutes 8.6 per cent of the total population of the country (Census of India, 2011) and 16.6 Scheduled caste. Education is one of the primary agents of transformation towards development. Education is in fact, an input not only for economic development of tribes but also for inner strength of the tribal communities, which helps them in meeting the new challenges of life. In India, the tribal communities are deprived, neglected, unimportant, and backward than other communities since years. They belong to the forests and areas far away from other societies. Their cultures have peculiarities and diversity. However, these communities are backward in social, educational, cultural and economical aspect because of their own origin. It is very important to educate them, providing them the equal opportunities, and bring them to mainstream of society. For their social, economical and educational progress, various provisions are made by our constitution.

Constitutional provisions made for Scheduled Caste and Scheduled Tribe

The following are the measures prescribed in the Constitutional provisions for the welfare of the Scheduled Castes and Scheduled Tribes:

1. According to the Article 15, the state should not discriminate against any citizen only on the ground of caste, creed, etc. More positively, Article **15(4)** further states that the state may (in spite of right to equality) make special provisions for the welfare of socially and educationally backward classes. Thus, if the State takes any measures in favour of these castes and communities if would not be challenged on the ground of right to equality.

2. Article 46 of Constitutional provisions directs the State to protect the educational interests of the weaker section of society especially the Scheduled Casts and Scheduled Tribes with special care and to protect them from social injustice and all forms of exploitation.

3. According to the provisions of Article 330, 332 and 334, the seats are reserved in the Parliament and State Legislatures in favour of the Scheduled Casts and Scheduled Tribes in proportion to their number in the population.

4. Article 335 provides that the State shall consider the claim of members of SC/ST for making the reservation in services, keeping in mind the efficiency of the administration.

5. The Article 338 of the constitutional provision (as amended in 1990 by 65th Amendment) provides for the establishment of National Commission for the Scheduled Castes and Scheduled Tribes, which is assigned such duties as to investigate and monitor all matters related to the safeguards provided for the SC/ST in the constitution, to advice on the planning process of the development of SC/ST and to recommend suitable measures for the effective implementation of these safeguards and for the protection , welfare and advancement of the Scheduled Castes and Scheduled Tribes.

6. As per the provisions of Article 339, the President is authorised to appoint a Commission after 10 years of the commencement of the Constitution to report on the administration of Scheduled Area and the welfare of Scheduled Castes. The Government of India is also empowered to issue suitable directions to State for the welfare of Scheduled Area and Scheduled Tribes.

7. The Fifth and the Sixth Schedules of the constitution (with reference to article 244) make special provisions for the administration and welfare of Scheduled Areas and Scheduled Tribes.

8. As per the provision of the Constitution, there shall be a separate Ministry in few states viz. Jharkhand, Chhattisgarh, Orissa etc. that will be charged with the responsibility for the welfare of Scheduled castes in the States.

9. The 85th amendment of the Constitution restores reservation in promotion in government jobs to the member of Scheduled Castes and Scheduled Tribes.

Government Schemes for the Scheduled Castes and Scheduled Tribes

After independence, the Government of India has taken number of steps to strengthen the educational base of the persons belonging to the Scheduled Castes and Scheduled

Tribes. Pursuant to the National Policy on Education-1986 and the Programme of Action (POA)-1992, the following special provisions for SCs and STs have been incorporated in the existing schemes of the Departments of Elementary Education and Literacy and Secondary and Higher Education:

(a) Relaxed norms for opening of primary/middle schools; a primary school within one km walking distance from habitations of population up to 200 instead of habitations of up to 300 population.

(b) Abolition of tuition fee in all States in Government Schools at least up to the upper primary level. In fact, most of the states have abolished tuition fees for SC/ST students up to the senior secondary level.

(c) Incentives like free textbooks, uniforms, stationery, schools bags, etc., for these students.

(d) The Constitutional (86th Amendment) Bill, notified on 13 December 2002, provides for free and compulsory elementary education as a Fundamental Right, for all children in the age group of 6-14 years.

(e) Sarva Shiksha Abhiyan (SSA): SSA is a historic stride towards achieving the long cherished goal of Universalisation of Elementary Education (UEE) through a time bound integrated approach, in partnership with States. SSA, which promises to change the face of elementary education sector of the country, aims to provide useful and quality elementary education to all children in the 6-14 age groups by 2010. The main features of the programme are:

(i) Focus on girls, especially belonging to SC/ST communities and minority groups.

(ii) Bringing girls back to school.

(iii) Free textbooks for girls.

(iv) Special coaching remedial classes for girls and a congenial learning environment.

(v) Teachers' sensitisation programmes to promote equitable learning opportunities.

(vi) Special focus for innovative projects related to girls education.

(vii) Recruitment of 50 per cent female teachers.

District Primary Education Programme (DPEP):

The thrust of the scheme is on disadvantaged groups like girls, SCs/STs, working children, urban deprived children etc. There are specific strategies for girls and SCs/STs; however, physical targets are fixed, in an integrated manner including coverage of these groups as well. According to a study by NIEPA, schools in DPEP districts had more than 60 per cent students belonging to SC/ST communities.

Mahila Samakhya (MS):

MS addresses traditional gender imbalances in educational access and achievement. This involves enabling women (especially from socially and economically disadvantaged and marginalised groups) to address and deal with problems of isolation and lack of self-confidence, oppressive social customs and struggle for survival, all of which inhibit their empowerment.

National Programme for Education of Girls at Elementary Level (NPEGEL):

The NPEGEL under the existing scheme of Sarva Shiksha Abhiyan (SSA) provides additional components for education of girls under privileged/disadvantaged at the elementary level. The Scheme is being implemented in Educationally Backward Blocks (EBBs) where the level of rural female literacy is less than the national average and the gender gap is above the national average, as well as in blocks of districts that have at least 5 per cent SC/ST population and where SC/ST female literacy is below 10 per cent based on 1991.

Shiksha Karmi Project (SKP):

SKP aims at universalisation and qualitative improvement of primary education in remote, arid and socio-economically backward villages in Rajasthan with primary attention to girls. It is noteworthy that in Shiksha Karmi Schools, most of the students are from SCs, STs.

Kasturba Gandhi Balika Vidyalayas:

Under the scheme of Kasturba Gandhi Balika Vidyalaya, 750 residential schools are being set up in difficult areas with boarding facilities at elementary level for girls belonging predominantly to the SC, ST,. The scheme would be applicable only in those identified Educationally Backward Blocks (EBBs) where, as per census data 2001, the rural female literacy is below the national average and gender gap in literacy is more than the national average. Among these blocks, schools may be set up in areas with concentration of tribal population, with low female literacy and/or a large number of girls out of school.

Jan Shikshan Sansthan (JSS):

The Scheme of JSS or Institute of People's Education is a polyvalent or multifaceted adult education programme aimed at improving the vocational skill and quality of life of the beneficiaries. The objective of the scheme is education, vocational and occupational development of the socio-economically backward and educationally disadvantaged groups of urban/rural population particularly neo-literates, semi-illiterates, SCs, STs, women and girls, slum dwellers, migrant workers, etc. Literacy campaigns have had an enormous impact on

other social sectors. The campaigns have served the cause of promoting equity and social justice in society and fostering of a scientific temper and a sense of belonging to India's great composite culture and consciousness of unity in diversity. Mid-Day Meal scheme: The Mid-Day Meal scheme is a successful incentive programme. It covers all students of primary classes in all government, local body and government aided schools in the country with the aim to improve enrolment, attendance and retention while simultaneously impacting on the nutritional status of the children. Central Institute of Indian Languages (CIIL): The Central Institute of Indian Languages, Mysore has a scheme of development of Indian Languages through research, developing manpower and production of materials in modern Indian Languages including tribal languages. The Institute has worked in more than 90 tribal and border languages.

Kendriya Vidyalayas (KVs):

15 per cent and 7.5 per cent seats are reserved for SCs and STs respectively in fresh admissions. No tuition fee is charged from scheduled Caste and Scheduled Tribe students up to class XII.

Navodaya Vidyalayas (NVs):

Reservation of seats in favour of children belonging to SCs and STs is provided in proportion to their population in the concerned district provided that no such reservation will be less than the national average of 22.5 per cent (15 per cent for SCs and 7.50 per cent for STs) and a maximum of 50 per cent for both the categories (SCs & STs) taken together. These reservations are interchangeable and over and above the students selected under open merit.

Scholarship Schemes for Higher Education of SC/ST candidates

Dr Ambedkar National Scholarship Scheme for meritorious students is implemented by Dr Ambedkar Foundation set up under the aegis of the Ministry of Social Justice and Empowerment in 1992 with a view to recognize, promote and assist meritorious students belonging to Scheduled Caste and Scheduled Tribe for enabling them to pursue higher studies. This is one time cash award and will be given to three students scoring highest marks in the regular class X level examination conducted by the Education Board/Council. This will be separate for SC and ST.

In case none of the first three eligible students are girls, the girl students scoring the highest mark will get a special award. As and when asked by the Ministry of Social Welfare and Justice, NIOS is supposed to send the names of eligible candidates for this scheme. Under the Scheme of strengthening of Boarding and Hostel Facilities for Girl Students of

Secondary and Higher Secondary Schools cent percent, financial assistance is given to Voluntary Organisations to improve enrolment of adolescent girls belonging to rural areas and weaker sections.

Preference is given to educationally backward districts particularly those predominately inhabited by SCs/STs and educationally backward minorities. Out of 43,000 scholarships at the secondary stage for talented children from rural areas 13,000 scholarships are awarded to SC/ST students subject to fulfilment of criteria laid down.

Programmes/Schemes exclusively for SCs/STs

(i) Rajiv Gandhi National Fellowships for SC/ST: This Scheme is funded by the Ministry of Social Justice & Empowerment and Ministry of Tribal Affairs and implemented by the UGC. The objective of this scheme is to provide fellowships in the form of financial assistance to unemployed students belonging to SC/ST to pursue higher studies leading to M. Phil and PhD Degrees (full time) in Sciences, Humanities and Social Sciences and Engineering & Technology in Indian Universities/Institutions/Colleges approved under Section 2 (f) and 12 (B) of the UGC Act.

(ii) Post-Graduate Scholarships for Students belonging to SCs/STs: The objective of this scheme is to provide financial assistance to 1000 SC/ST candidates to pursue postgraduate level studies in Professional subjects at recognized Indian Universities/ Institutions/Colleges.

(iii) Post-Doctoral Fellowships for SC/ST: The objective of this Scheme is to provide an opportunity to SC/ST candidates to undertake advanced studies and Post Doctoral research in Science, Engineering & Technology, Humanities and Social Sciences in recognized Indian Universities/ Institutions/Colleges.

(iv) Remedial Coaching for SC/ST / OBC (non-creamy layer) & Minorities : In order to enable students belonging to SC / ST / OBC (non-creamy layer)/Minority communities, who need remedial coaching to come up to the Level necessary for pursuing higher studies efficiently and to reduce their failure and drop-out rate, the UGC provides financial assistance for conducting special classes outside the regular time table.

(v) Coaching for NET/SET for SC/ST/ OBC (non-creamy layer) & Minorities : The main objective of the scheme is to prepare SC /ST candidates and candidates from Minority communities for appearing in NET or SET, so that sufficient numbers of candidates become available for selection of Lecturers in the University system from these groups.

(vi) Establishment of Residential Coaching Academics of SC/ST/Minorities & women: The basic objective of this coaching scheme is to prepare students belonging to SC/ST/OBC (non-creamy layer) and Minority communities to get gainful employment in Group 'A', 'B' or 'C'

Central services, State services or equivalent positions in the private sector. The coaching under the scheme is oriented for particular examinations conducted for selection to services, such as the IAS, State Public Services, Bank recruitment, etc.

(vii) Establishment of Equal Opportunity Cells for SC/ST: To make colleges and universities more responsive to the needs and constraints of the disadvantaged social groups, the UGC establishes the EOC to oversee the effective implementation of policies and programmes of these groups.

(viii) Opening of Centres for Studies in Social Exclusion & Inclusive Policy: The key objectives of opening of these Centres include conceptualizing discrimination, exclusion and inclusion based on caste/ethnicity and religion; developing understanding of the nature and dynamics of discrimination and exclusion; developing an understanding of discrimination at an empirical level; formulating policies for protecting the rights of these groups and eradicating the problem of exclusion and discrimination.

From the above discussion of Constitutional and legal provisions and of some of the plans, programmes and schemes started for the welfare, development and empowerment of Scheduled Castes and Scheduled Tribes, it becomes clear that these people have not only been made equal citizen of India but have also been given special privileges, preferences and concessions to come out of their traditional lower and inhumane position.

At the same time if we look at the overall conditions of the Scheduled Castes and Scheduled Tribes, particularly in rural areas, we find that in spite of constitutional provisions and various plans, the poverty, illiteracy, destitution, oppression and bondage of these sections in large areas remain intact. Untouchability, though banned under the law continues to be widely practiced. India' bonded labourers are almost exclusively drawn from SCs and STs. Only an elite class amongst SCs has benefitted from the government's policies and welfare measures. The reasons for this apathetic status of SCs and STs are many.

In most of the States, education up to higher level has been made free for SCs and STs along with an increase in GER in higher education. The changes has been shown in the following AISHE REPORT 2013-14 and 2014-15

REPORT ON HIGHER EDUCATIONAL STATUS OF SC/ST(2013-14**) :-**

Table: 1

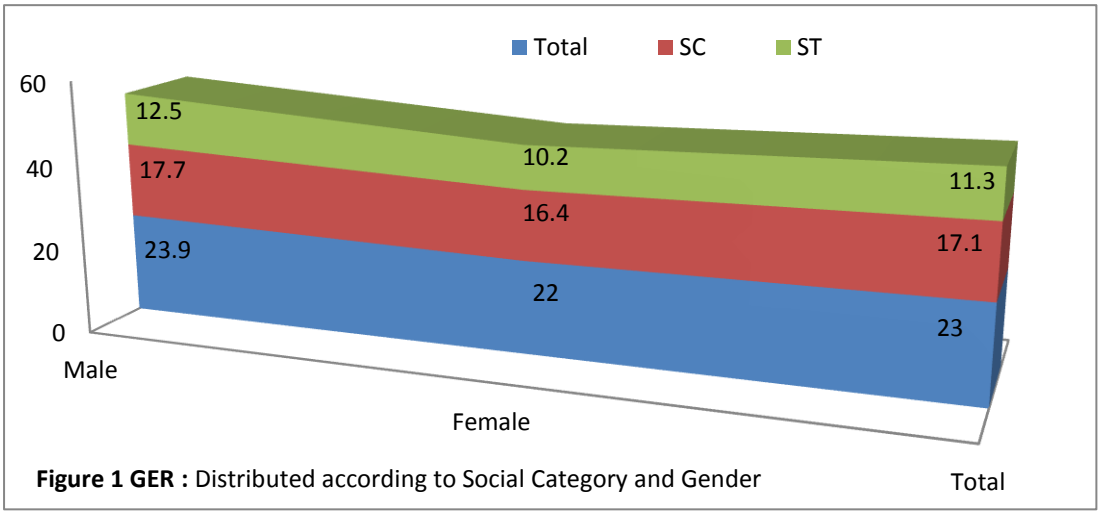


Figure 1 GER : Distributed according to Social Category and Gender

Source: AISHE Report 2013-14

Gross Enrolment Ratio in Higher Education (18-23 Years): - Estimated Gross Enrolment Ratio (GER) in Higher education in India is 23.0%, which is calculated for 18-23 years of age group. For Scheduled Castes, it is 17.1% and for Scheduled Tribes, it is 11.3% State-wise GER are shown in Table 1. GER for male population at all India level is 23.9%whereas for SC Males, it is 17.7% and 12.5% for ST males. Similarly, GER for female population at all India level is 22.0% whereas for SC females is 16.4% and for ST females, it is 10.2%.The GER for females in all categories is highest in Chandigarh with 65.6%. Delhi, Goa, Manipur, Pondicherry, Tamil Nadu, Telangana and Uttrakhand also have GER of more than 30 for their female population. For international comparability, GER has also been calculated taking 18-22 years population at All India Level.

❖**Table:2**

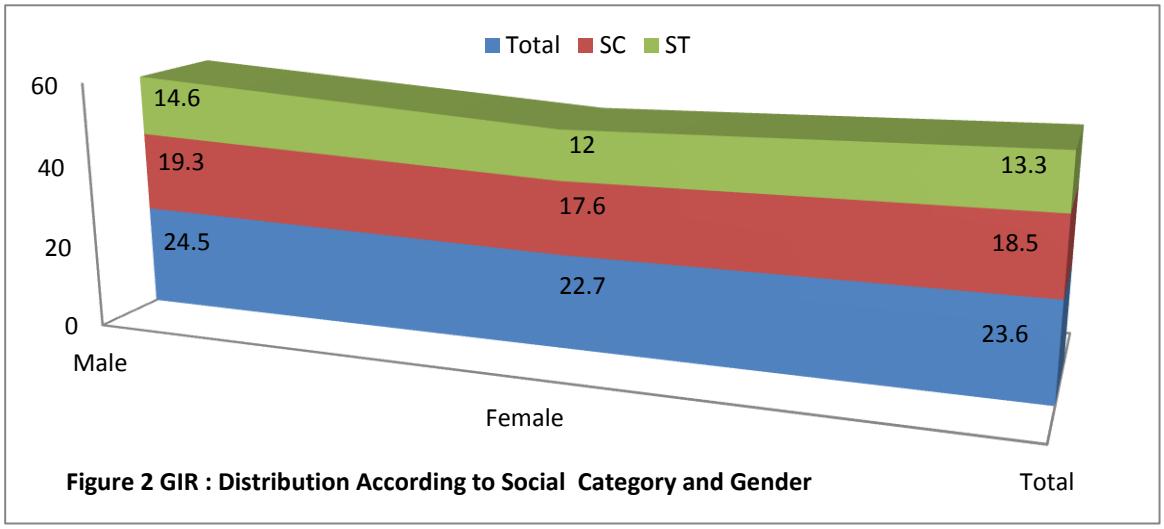


Figure 2 GIR : Distribution According to Social Category and Gender

Aishe Report 2014-15

Gross Enrolment Ratio in Higher Education (18-23 Years) Estimated Gross Enrolment Ratio (GER) in Higher education in India is 23.6%, which is calculated for 18-23 years of age group. For Scheduled Castes, it is 18.5% and for Scheduled Tribes, it is 13.3%. State-wise GER are shown in Table 1. GER for male population at all India level is 24.5% whereas, for SC Males, it is 19.3% and 14.6% for ST males. Similarly, GER for female population at all India level is 22.7% whereas for SC females are 17.6% and for ST females, it is 12.0%. For international comparability, GER has also been calculated taking 18-22 years Population and it comes out to be 27.4 at All India Level. There is gradual increase in Gross Enrolment Ratio (GER) in almost all the States in the country over the year.

Conclusion

Education is the key to development of SCs and STs. The children of these communities have very low levels of participation. However, the development of the SCs and STs is taking place in India, but the pace of development has been rather slow. If government will not take some drastic steps for the development of education in SCs and STs, the status of education among them will be a story of distress and despair. Hence, time has come to think it seriously about education and inclusive growth of these communities. Therefore, there is an urgent need for various government interventions, planners and policy makers to address this problem and allocate more funds in the central and state budgets for education of SCs and STs. Easy access and more opportunities should be provided to the children of SCs and STs in order to bring them to the mainstream of economic development.

In accordance with these Constitutional provisions and directives, the government of India and all States have been formulating and implementing various schemes and programmes for the upliftment of SCs and STs within the process of planning and outside. In most of the States, education up to higher level has been made free for SCs and STs along with an increase in GER in higher education. The changes has been shown in the following AISHE REPORT 2013-14 and 2014-15

Seats have been reserved for them, generally, in accordance with percentage of population, in various educational institutions. A Book Bank scheme has been launched to provide textbooks required for the students pursuing medical and engineering degrees, agricultural, veterinary and polytechnic courses. Various schemes of scholarships have also been started including pre-metric, post-metric, and higher education. In addition to these, there are other schemes also for helping improve educational levels and standards of SCs and STs.

Suggestions

Some suggestions for improvement of schedule caste and schedule tribe education are as follows-

a) **Literacy campaign** - Proper awareness campaign should be organized to create the awareness about the importance of education. Extensive literacy campaign in the tribal dominated districts may be undertaken on a priority basis to literate the tribal.

b) **Attitude of the tribal parents** - The attitude of the tribal parents toward education should be improved through proper counselling and guidance.

c) **Relevant study materials in local languages** - All study materials should be supplied in local languages of tribes.

d) **Appointment of Local teachers and female teachers** - It is suggested to appoint more tribal teachers and female teachers in the tribal areas. The ecological, cultural, psychological characteristics of tribal children should be considered carefully by the teachers in tribal areas.

e) **Stipends and various scholarships** - Since higher education among the tribes is less, special ST scholarships should be provided to the tribal students perusing higher education, particularly in medical, engineering, and other vocational streams.

f) **Residential schools** - More residential schools should be established in each states and districts and extended up to PG level in tribal areas.

g) **Social security-** Social security of students, especially of adolescent girls is of great concern in residential schools. h) Proper Monitoring - Higher level officials should check the functioning of schools frequently relating to the teaching methods, working hours, and attendance registers

References

Sedwal, M. & Sangeeta, K.(2008). *Education and Social Equity with special focus on Scheduled Castes and Scheduled Tribes in Elementary Education,* NUEPA, New Delhi, India.

Jha, J., Jhingran, D.(2002). *Elementary Education for the Poorest and Other Deprived Groups,* Centre for Policy Research. New Delhi, India.

All India Survey On Higher Education. (2014-2015). Retrieved 02 14, 2017, from aishe.nic.in: www.aishe.nic.in

Nuepa. (2007). Retrieved 02 16, 2017, from neupa.org: http:// www.neupa.org/*Selected Educational Statistics: MHRD.*(2007). Retrieved 0215, 2017, from education forallindia.com: www.educationforallindia.com/ses.html

Census of india. (2011). Retrieved 02 12, 2017, from censusindia.gov.in: www.censusindia.gov.inhttp://www.ssa.nic.in

http://timesofindia.indiatimes.com/india/SC/STs-take-rapid-strides-close-literacy-gap/articleshow/25536193.cms

---

A Study On Effect Of Socio-Economic Attributes (Experience In Potato Cultivation, Family Income And Farm Power) On Adoption Of The Tribal Potato Growers Of Shahdol District (MP)

V. Meshram
Scientist, KVK,Mandla

N.Chobitkar
PhD Scholar

V.K.Pyasi
DSW, JNKVV,Jabalpur,

K.K. Singh
Associate Proffesor
MGCGVV, Satna (MP)

Abstract

Potato is most widely grown vegetable crop in the country with a share of 42.3 per cent. The area under potato cultivation is 19,124,181 million ha. in world. The major potato growing countries are China, Russia, Ukrain and India. India is in 3rd position in potato production and in 4th position under area. Potato production has played a vital role in increasing vegetable production of the country. Potato occupied 25.6 per cent share in total vegetable production. The contribution of the country in world potato pool has increased from 6.4 per cent to 7.8 per cent during last decade with processed product commanding a large share of the potato market.

The Shahdol district comprises 5 blocks. The study was confined only in Gohparu and Beohari blocks because of the maximum area under potato crops as compared to other blocks of the district.10 villages were selected randomly on the basis of maximum area under potato crop from Gohparu and Beohari blocks of Shahdol district

A list of farmers of each selected village, who were growing potato crops have been prepared with the help of RAEO's and other official. From each selected village, 20 potato growers were selected by using a proportionate random sampling method. Hence, the total number of selected farmers was 200.

Data were collected through personal interview with the help of pre-tested structural schedule. Total 200 respondents were selected on random basis.

Key words: potato growers**,** respondent**,** percentage, vegetable, group, cultivation

India is an agriculture based country. Hundreds of vegetables types are grown in all the parts of India. India is the second largest producer of vegetables in the world (ranks next to China) and accounts for about 15% of the world's production of vegetables. The current production level is over 71 million MT and the total area under vegetable cultivation is around 6.2 million hectares which is about 3% of the total area under cultivation in the country.

Methodology

The study was conducted in shahdol district of Madhya Pradesh during the year 2009 to 2010. Total 200 respondents were selected on random basis. The data were collected with the help of pre tested interview schedule. The data were analysed through mean, chi-square test. Madhya Pradesh state comprises 50 districts. Shahdol district has been selected because of the less area under potato crop in Shahdol district of M.P. The Shahdol district comprises 5 blocks. The study was confined only in Gohparu and Beohari blocks because of the maximum area under potato crops as compared to other blocks of the district. 10 villages were selected randomly on the basis of maximum area under potato crop from Gohparu and Beohari blocks of Shahdol district. A list of farmers of each selected village, who were growing potato crops have been prepared with the help of RAEO's and other official. From each selected village, 20 potato growers were selected by using a proportionate random sampling method. Hence, the total number of selected farmers was 200.

The name of the selected villages and number of respondents selected from each village are given in table.

Name of selected village and number of respondents (tribal potato growers) of Gohparu and Byohari blocks of district Shahdol

S.No.	Block wise Name of Village	No of respondent (Tribal Potato growers)
	Gohparu block	
1.	bochki	20
2.	Skariya	20
3.	Salebehra	20
4.	Paihlwa	20
5.	Karri	20
	Byohari block	
6.	Budhba	20
7.	Bokra-bokri	20
8.	Alhara	20
9.	Akhetpur	20
10.	Pathar	20
	Total	**200**

Result & Discussion:

1.1 Experience in potato cultivation

Table 1.1 Distribution of tribal potato growers according to Experience in potato cultivation

S. No.	Categories	Tribal Potato growers (N=200)	
		Frequency	Percentage
1.	Low	30	15.00
2.	Medium	42	21.00
3.	High	128	64.00
Total		200	100.00

The data presented in Table 1.1 depicts that of the total tribal potato growers, 64.00 per cent had high experience in potato cultivation, 21.00 per cent medium and only 15.00 per cent had low experience in potato cultivation.

Thus, it can be concluded that (64.00%) of the tribal potato growers were having high level of experience in potato cultivation.

1.2 Family income

Table 1.2 Distribution of the tribal potato growers according to their Family income from all sources

S.No.	Categories	No. of respondents	Percentage
1.	Low income	83	41.50
2.	Medium income	57	28.50
3.	High income	60	30.00
Total		200	100.00

Table 1.2 shows the family income of selected respondents from potato cultivation. Out of which 41.50 per cent were found in low income group, 28.50 per cent were in the category of medium income group and 30.00 per cent were from high income group.

Thus, it is evident from the above Table that the maximum tribal potato growers i,e. 41.50 per cent had low income from potato growing.

1.3 Farm power

Table 1.3 Distribution of tribal potato growers according to farm power

S. No.	Categories	Tribal Potato growers (N=200)	
		Frequency	Percentage
1.	Low (Up to 6 scores)	112	56.00
2.	Medium (7 – 9 scores)	48	24.00
3.	High (Above 9 scores)	40	20.00
Total		200	100.00

The data depicts that of the total beneficiaries, 56.00 per cent had low and 20.00 per cent had high and 24.00 per cent had medium farm power.

Thus, it can be concluded that higher percentage of tribal potato growers were observed in low farm power.

Table 1.4 Association between experience in potato cultivation and adoption of the potato growers

S.No.	Size of land holding	Adoption			Total
		Low	Medium	High	
1	Small	10 (33.33)	08 (26.67)	12 (40.00)	30

2	Medium	15 (35.71)	19 (45.24)	08 (19.05)	42
3	Large	40 (31.25)	26 (20.31)	62 (48.44)	128
Total		65	53	82	200

(Figures in parenthesis are percentage) **17.96**

$\square^2$ = 17.96 significant at 5% level with 4 d.f. Table value is 9.49

The data presented in Table 1.4 reveal that out of 128 tribal potato growers who had high experience in potato cultivation, out of them 48.44 per cent had high, 31.25 per cent had low adoption and remaining 20.31 per cent had medium adoption. Out of 42 tribal potato growers who had medium experience in potato cultivation, 45.24 per cent had medium, 35.71 had low and 19.05 per cent had high adoption. In case of tribal potato growers who (30) had low experience in potato cultivation, 40.00 per cent had high, 33.33 per cent had low and 26.67 per cent had medium adoption.

When the data was tested statistically the calculated value of $\square^2$ was 17.96 at 5% level with 4 d.f. which was more than the Table value of $\square^2$ i.e, 9.49 and is declared significant. Therefore, it can be concluded that experience in potato cultivation was associated with adoption. In other word, experience in potato cultivation had play a role in rate of adoption.

Table 1.5 Association between Family income and adoption of the tribal potato growers

S.No.	Income	Adoption			Total
		Low	Medium	High	
1	Low	24 (28.92)	18 (21.69)	41 (49.40)	83
2	Medium	17 (29.82)	25 (43.86)	15 (26.32)	57

3	High	24 (40.00)	10 (16.67)	26 (43.33)	60
Total		65	53	82	200

(Figures in parenthesis are percentage) **15.564**

$\square^2$ = 15.564 significant at 5% level with 4 d.f.

The data presented in Table 1.5 reveal that out of 83 tribal potato growers who were belonging to low income category 49.40 per cent of them were having high adoption followed by 28.92 per cent low and 21.69 per cent had medium adoption respectively. In case of tribal potato growers having medium income category 43.86 per cent had medium, 29.82 per cent had low and 26.32 per cent had high level of adoption. With regard to high income group category majority (43.33%) of tribal potato growers had high adoption followed by 40.00 per cent had low adoption and only 16.67 per cent had medium.

The value of $\square^2$ computed was 15.564 which was greater than Table value 9.49 at 5% level of probability with 4 d.f. and it is declared significant. Note that it is significant at 1% also, we, therefore the earlier started hypothesis that there is no association between income and adoption of the tribal potato growers is rejected and it can be concluded that there is significant association between income and adoption of the tribal potato growers.

Table 1.6 Association between farm power and adoption of the tribal potato growers

S.No.	farm power	Adoption			Total
		Low	Medium	High	
1	Low	31 (27.68)	31 (27.68)	50 (44.64)	112
2	Medium	19 (39.58)	08 (16.67)	21 (43.75)	48

3	High	15 (37.50)	14 (35.00)	11 (27.50)	40
Total		65	53	82	200

(Figures in parenthesis are percentage) **8.549**

$\square^2$ = 8.549 significant at 5% level with 4 d.f.

Table 1.6 presents the association of farm power with adoption of the potato growers. The data indicate that in case of low farm power category 44.64 per cent potato growers had high adoption followed by 27.68 per cent medium and low level of adoption towards improved package of practices.

With regard to medium farm power category majority (43.75%) of the potato growers were having high adoption. In case of high farm power category 39.58 per cent and 16.67 per cent of the potato growers were having low to medium level of adoption respectively. In case of high farm power category 37.50 per cent had high, 35.00 per cent had medium and 27.50 per cent had low level of adoption.

The value of $\square^2$ computed was 8.55 which was found to be non- significant at 5% level significant for 4 d.f. This leads to the acceptance of null hypothesis. It was therefore concluded that farm power had non- significant effect on rate of adoption towards improved package of practices of potato cultivation.

Conclusions

When the data was tested statistically by applying $\square^2$ test, the calculated value 17.96 was found to be significant at 5% level of significance with 4 d.f. therefore the null hypothesis set for this study that there is no association between experience in potato cultivation and adoption of the potato growers is rejected. Hence, it can be concluded that experience in potato cultivation of the tribal potato growers is associated with adoption.

When the data was tested statistically the calculated value of $\square^2$ was 15.56 at 5% level with 4 d.f. which was more than the Table value of $\square^2$ i.e, 9.49 and is declared strongly significant. Note that it is significant at 1% also. Therefore, it can be concluded that family income of the tribal potato growers was highly associated with adoption.

The value of χ^2 computed was 8.59 which was less than Table value 9.49 at 5% level of probability with 4 d.f. and it is declared non-significant We therefore concluded that the earlier stated hypothesis that there is no association between farm power and adoption is accepted and it can be concluded that there is non-significant association between farm power and adoption of potato growers.

Hence, experience in potato cultivation, family income, farm power play a vital role in increasing rate of adoption of tribal potato growers.

Ways and means for enhancement of the adoption of Potato production technology among the farmers:

In view of the constraints in adoption of Potato production technology, it is necessary to develop an appropriate extension strategy for enhancement of production and productivity in the area.

The development departments should follow the extension teaching methods suitable for Potato production technology intensively and more emphasis should be given on complex technologies which need understanding of basic concept of the subject matter and learning skill before their adoption. The development departments must focus on timely availability of inputs in the area. The training programme on the farmers' field should also be organized in slack time only after assessment of training needs, so that farmers may save much of their valuable time and get least interaction with their day-to-day routine works. Some important ways and means has been discussed under for enhancement of the adoption of potato production technology among the farmers are as follows:

1. Information about the potato production technology should be provided in right time.
2. Publicity of information center should be tone to popularize the information dissemination among the respondents; more and more respondents should be motivated to access such service.
3. Technical and scientific literature should be in local language and optimum quantity.
4. Interaction among the concern agents and respondents without any hesitation.
5. Demonstration of potato production technology should be organized properly.
6. Increasing the co-operation among public and private agencies.
7. Monitoring and evaluation should be regularly.
8. Only trained trainees should impost training.
9. Right of information should be compulsory.
10. Electric supply should be maintained.

11. The knowledge and skill of the respondents should be improved by training.
12. Location specific problem should be prioritized and technological intervention should be formulated to address such problems to make the communication service more effective in solving the problem of a particular areas.

References

Bhople, R.S. and P.S. Sinde (2002). Impact of vegetable cultivated, income organized by kvk on vegetable growers of shabhangi kbonde.*Maha. J. Extn. Edu.*, vol.-XIX, No. 1, p.81.

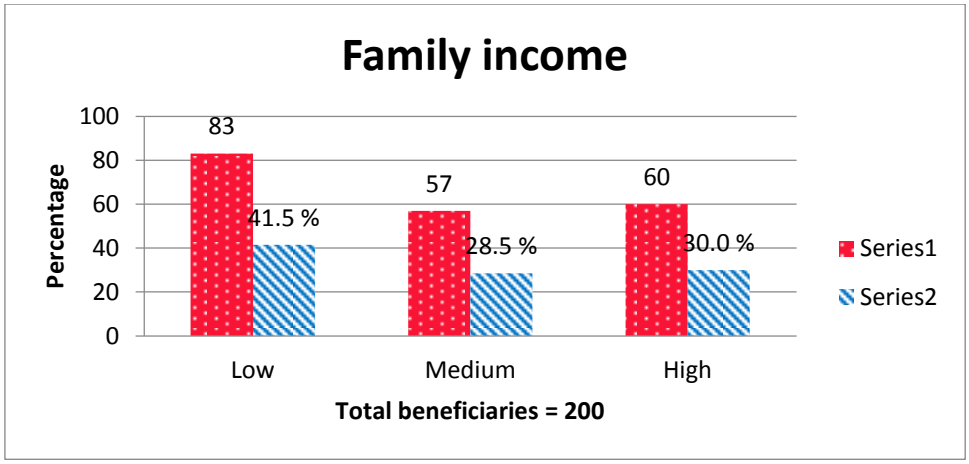
Barodia, A.R. (2005). A study on adoption behaviour of vegetable growers in relation to scientific technology in Phanda block of Bhopal diatrict *M.sc. (Ag.) Thesis* (published), JNKVV, Jabalpur.

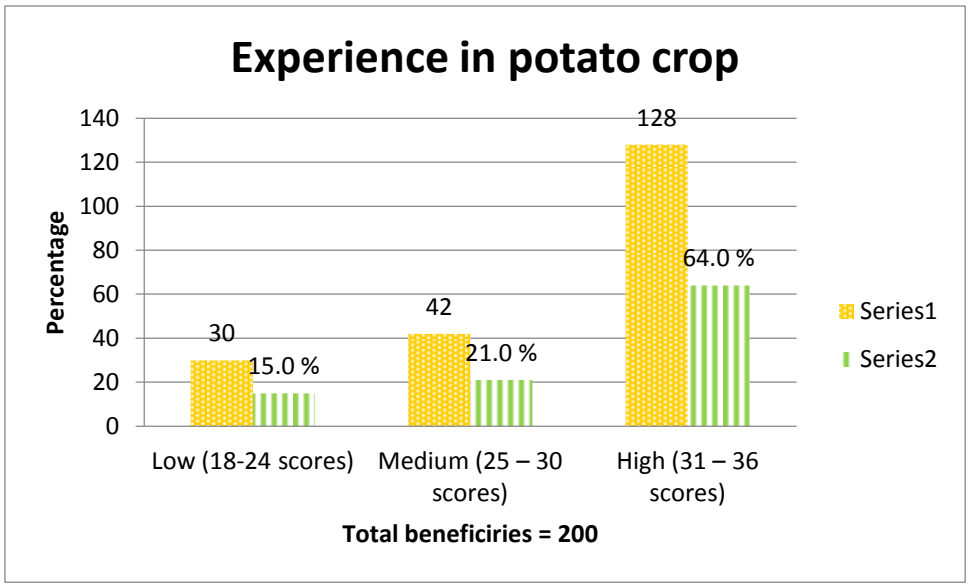
Kubde,V.R., S.K. Bhaple and V.S. Tekale (2000). Knowledge And Adoption Of Cultivation And Storage Practices Of Potato. *Maha. J. Ext. Edu.* vol.-XIX, pp.-293-297.

Horne, P.A., J.A.Rac, A.P. Henderson and R.Spooner Hart (1999) Awareness And Adoption Of IPM By Australian Potato Growers. Plant protect.Qrtrly,14 (4): 139-142.

Meena, K.C., K.S. Babel and H.R. Meena (2005). Adoption Of Scientific Practices Of Cabbage Growing Farmers. *Indian J. Ext. Edu*., vol.-V, No.-1, pp.-31-32.

Sharma, T.N., D.K. Sharma and V.B. Sharma(2000). Adoption Of Potato Technology In Haryana. *Maha. J. Extn. Edu*. vol. 13, p. 45.


Family income
Percentage
100
80
60
40
20
0
83
41.5 %
57
28.5 %
60
30.0 %
Low
Medium
High
Total beneficiaries = 200
Series1
Series2


Experience in potato crop
Percentage
140
120
100
80
60
40
20
0
30
15.0 %
42
21.0 %
128
64.0 %
Low (18-24 scores)
Medium (25 – 30 scores)
High (31 – 36 scores)
Total beneficiries = 200
Series1
Series2

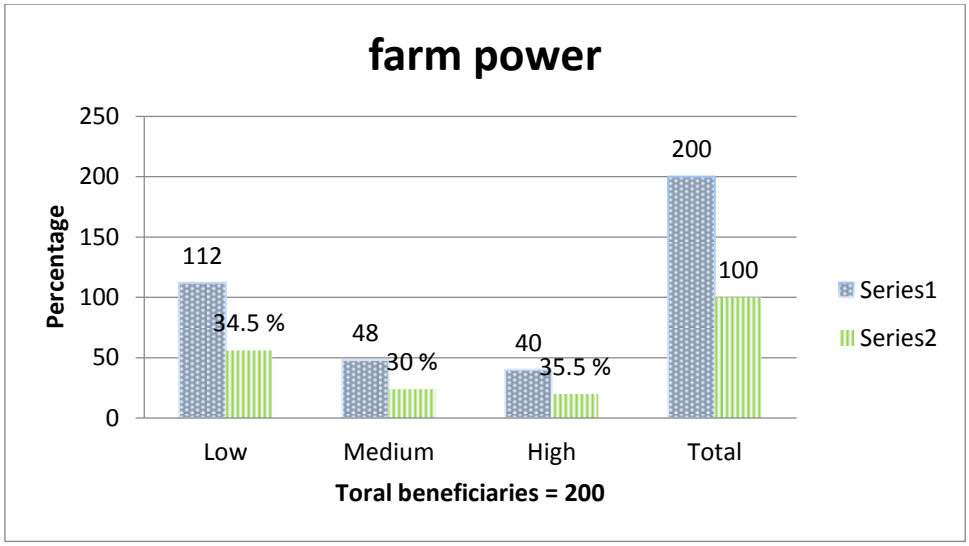


Figure 1: Bar diagram showing the distribution of tribal potato growers according to experience in potato cultivation, Family income and Farm power.

"IMPACT OF IRRIGATION ON THE AGRICULTURE IN THE COMMAND AREA OF BOR RESERVORE IN WARDHA DISTRICT"

Dr. R P Tiwari
Govt. P.G. College Tikamgarh

Dr.R.P.Yadav,
Professor of Geography,
Govt .College.Bichhua,
District Chhindawa MP
Nagpur

Dr.Deepti S. Pinjare
Prof. & Head,Depot. Of Geography
Vasantrao Naik Government Institute
of Arts and Social Sciences,

Introduction

It is a common consideration that irrigation from reservoirs or lakes increases the agricultural productivity, but sometimes the outcomes are adverse in comparison of our assumptions. With this view keeping in the mind "Impact of Irrigation of Agriculture in the Command Area of Bor Reservoir in Wardha District" is selected. What is the level of development in agriculture in the command area? Or what are the impacts of irrigation on the crop productivity, cropping pattern in the command area? Such kind of questions is the are matter of interest at the background of designating this title.

Aims and Objectives :-

To study the impact of irrigation on the agriculture of the command area of Bor reservoir is the main objective of the present study. It is an effort to present a micro level analysis of the irrigational facilities and its impact on agriculture developing at the regional and national level in the country. The following aims and objectives are considered as the major aspects to study the *"**Impact of irrigation on the Agriculture in the command Area of Bor reservoir in Wardha District"***

1) To study the impact of irrigation on the agriculture in command area of Bor reservoir.
2) To study the intensity of agriculture in the study area.
3) To study the capability and suitability of land in the study area.
4) To study the productivity of agriculture in the study region.
5) To study the cropping pattern of study region.
6) To study the problems and prospects in agriculture of study region.
7) To assess the development of agriculture in the reservoir' study region and farmer's problems related to irrigation.

Hypothesis:-

"Irrigation facility is an advantage for farmers in the command area of Bor reservoir in respect to increase crop productivity. Moreover, farmers are eager to have cash crop than cereals.

This typotheise has been tested in this study.

Many studies are held in this context in India and other counties. In 1998 Datta and Devi have studied the "Changing patterns of land use in the Bino basin U.P Himalaya". In 1992 sulbha Khanna has tried to suggest that while converting the agriculture form traditional to commercial, agriculturalists should work for sustainable agricultural development. S.K. Sharma and thakur Singh studied the "New Techniques of Measuring the Degree of Commercialization Farming an Example of Madhya Pradesh". This published in the journal of Transaction in 2008.

S.Raju siddi, Shrinnivasulu and River' Kesava have studied the "Climatic Water Balance and Agriculture of Pulang River's Basin. It was published in National Geographer journal in 1994. (S.Raju siddi 1994) Madhurama ch. And M.S Rao have studied the cropping pattern of Nellore district of Andhra Pradesh with the special context of water balance in 1993. (Madhurama 1993) V.P. Sati and M.S.S. Rawat have studied the" Problems of Agricultural Ecology and their Management in the pinder Basin" in 1993 and published in the journal of National Geographer.

In 2004 K.R. Suresh and P.P. Mujumdar studied fuzzy risk approach for performance evaluation of an irrigation reservoir system. In 2006 Mr. Borse R.J. and Patil Y.V. have studied Hydeo-geomorphic features in Jalgaon district. In 2007 Mahdi moraji Jalal and his co-researchers have studied Reservoir operation in assigning optimal multi-crop irrigation areas. In 2008 V.M Choudhary studied assessed the surface and sub-surface waterlogged areas in irrigation command areas of Bihar state.

Again in 2008 A.Gaur, T.W. Biggs,. M.K.Gumma; G. Parthasaradhi; And H. Turral have studied Water Scarcity Effects on Equitable Water Distribution and Land Use in a Major Irrigation Project-Case study in India.

In 2008 Dr.Pradipkumar Singh studied "siltation in loktak lake : A geographic study". In 2009 Aliasghar Montazar H. Riazi & S. M. Behbahani have studied Conjunctive Water use Planning in an Irrigation of Command area. During 2012 Kularatne, Mohattala, Gedrara studied Faxtors Affection Technical Efficiency of Rice Farmers in Village Reservoir Irrigation Systems of Sri.Lanka. in 2014 Charlotte fraiture, Gael N. Danga Kouali, Hilmy sally Priva Kabre Have held a study that is "Pirates on pioneers? In 2015 Ajay Bhave, Neha

Mittal Ashok Mishra and Narendra singh have studied Integrated Assessment of no-Regrct Climate Change Adaptation Options for Reservoir Catchment and command Areas.

The methodology undertaken for the present study consists of the following stapes.

1. **Pre-field Study :-** In the pre-field study includes study of references from the libraries related to the topic of this research. Preparation of base maps from the topographical sheets, satellite data and maps from MRSAC, collection of secondary data formulation of hypothesis for the study and preparation of questionnaire is done during this period.
2. **Field method:-** in this stage the collection of primary data with the help of questionnaire based interviews. Field observation. Testing of hypothesis interviews of the irrigation department's officials.
3. **Post-Field method-** On this **s**tage compilation of the primary and secondary data is done and with help of this data preparation of maps. Graphs and figure are done on the basis of statistical calculation and GIS techniques. Interpretation of each graph figure and map done entire research work is compiled at last.

Geographical Background

The Bor reservoir and its command area lie under the **Seloo and Samudrapur tehsil** of Wardha district. The Wardha district is one of the eastern most district of Maharashtra in India. Wardha district comes under the Nagpur administrative division. The Geographical extension of Seloo tahsil is $20^0$40' 00"N to $21^0$0 '30"N and $78^0$40 '30"E. to $78^0$58'20"E. Total area of Bor reservoir's command area. Is, 32584 hectares (325.84 sq.km) which accounts 3.81% of Wardha districts total area.

Bor reservoir's (Yashwant dam) command area is located in the Wardha district of Maharashtra (eastern Vidarbh) in seloo and samudrapur taluka. Wardha district. Is also called as the Gandhi city because of the existence of 'Punnya Dham sewagram Aashram' established by mahatma Gandhi in 1936A.D. Bor reservoir is situated in the bor wildlife sanctuary which is also declared as the 47^{th} tiger reserve in India by the forest is the tropical deciduous forest that covers the Bor reservoir and its command area from noth and north eastern firections. Geographically the Bor reservoir's command area is located at the southern parts of the Satpura ranges near Bori (kokate) village. The Bor river originates from the height of the 1600 feet from the sea level at "Tanda Labani" place in Nagpur district of Maharashtra state. The command area of Bor reservoir is entirely located in the basin of the Bor River. Bor River is Getting this name from the village located near the basin of the Bor River. Bor River is getting this name from the village located near the dam called 'Bori' the vena River is another river draining the southern tip of the command area. The Vena, The

Dham and Bor these three rivers confluences near the southern tip of command area at 'khuni' village.

According to the 2011 census total population of this command area is more 63000 which is 4.83% of population of Wardha district and 53.97% (1,16727) of Seloo taluka. The population of Wardha district is 13,00,774.

Bor reservoir's command area is divided into seven regions for the better understanding of agricultural regionalization and to study the impact of irrigation on the agricultural of command area. Hence the seven regions were divided on the basis of increasing distance of the canals and command area form the reservoir. The straight distance of command area from the doors of the dam up to the confluence of the dham & the Vena rivers near Khuni village is of 72.5 km. there are 77 villages in the command area of Bor reservoir. thus 5 to 16 villages are groped into 7 region. Each region of the command area is equidistant including 7 km. in each. So the regions are divided as follows and names are given on the basis of canals in each region.

Study of Agricultural Patterns in the Command Area of Bor Reservoir

With the help of maps crop ranking it can be easily observed that the changes are taking place in the location of first to fifth ranking crops during the study period (1999-2018). During the study period it is found that the legumes crops were the domination first ranking crops. In Second raking crops cereal crops are domination in all the regions. In the third ranking crops again the cereal crops are leading followed by fiber crop. Under the forth ranking crops the oilseeds are occupying the positions fifth ranking crops are fruits and vegetable. it is a general observation that all ranking crops are majorly located in the northern central and southern parts of the command area. That means BMC (Bor main canal) NAPI (Nandpur, Ashta and Pipra canal 1), NAP2 (Nandpur, Astha and pipra canal 2) and AST (Ashta Canal) regions of the region.

There is no temporal changes in the concentration of cotton in the command area moreover, during 2018. BMC and NAP2 are the regions of concentration, NAP1, NAP2 and GKP regions are showing concentration of wheat crop. NAP2 region has concentration of tree throughout the years (1999 to2018) NAP1 and GKP (Gaimukh, kezar, pipra canal) are the regions of concentration of gram crop and the temportal change is insignificant in this period. There is tempotal change in the concentration of soybean in the command area but the variation is feeble. Concentration of Jowar is in KC (kinhi & Cotamba chnals) and GKP in last 20 years (199-2018). Masala crops are concentrated in southern part of the command area

AST region (Astha Canal region). There is a shift in the concentration of groundnut in command area. From NAP1 to NAP2, BMC and again NAP1 in 2017-2018 there is no temprotal change in the concentration of fruits and vegetable in last twenty years. GKP and NAP1 are leading producers of fruits and vegetables.

In the study of crop combination it is found during 1990-2000 AST region is having VIII crops combination of crops was II which was located in the GKP region. During 2004-2005 VIII crops combination is shifted to the NAP3 (Nandpur, Ashta and Pipra canl I) region and II crops (Tur, Cotton) combination is also shifted towards the reservoir's direction in the BMC region that means reservoir's closest parts.

In the year 2009-2010 sudden change in the location of II crops combination can be seen that it is shifted towards the south of the command area in the NAP3 region and VIII crops combination is located in NAP2 region. During 2017-2018 VIII crops combination is shifted to the NAP I region and there is an absence of II crops combination and in place of that III crops combination is the lowest combination which is is located BMC region.

In the study of crops are centered around the northern and southern regions of the command area that means in MBC,KC,NAP3 and AST regions and though there are some changes in the regions of high diversification of crops, these changes are insignificant during the entire study period. The low magnitude of crops diversification is located in GKP in 1999-2000 and in 2004-2005 it is shifted to NAP2 and NAP3 regions.

Agricultural Production in Command Area of Bor Reservoir and is Correlation with Irrigation

In the chapter number four of this project the special attention is given to the production and it's correlation with irrigation. Before going to study the correlation, the study of soil is done in the command area. In the study it is found that from clayey to clay loam, silty clay, gravelly clay loam, gravelly sandy loam, and gravelly sandy clay loam these soil types are present in the study region, Out of these soil types, the percentages of clayey soil is highest which occupies around 78 percentages of the command area.

The study of soil capability is done with the help of production level and capability classes are identified on the basis of All India Soil and land use Survey organization (1970) In the command area I,III,IV,VIII these capability classes are found. The BMC,KC, and AST regions are coming under the very good cultivable land class (I) Study of slope analysis suggests that 17 percent of the area is inder the 0-1 percent of the slope category. Around 1.11 percent of the land is under the 15-35 percent of slope category.

In the study of suitability of land it is it is found that high percentages of area is suitable of cotton, tur, soybean and gram. In the study of correlation between Production and irrigation that is done with the help of scatter diagram and Pearson's method of correlation coefficient. The correlation between irrigation and production is positive and Pearson's correlation is r+0.926891. In this study of correlation it can be observed that rise and fall of the production is completely associated with the rise and fall of irrigation.

Impact of Irrigation in the Command Area of Bor Reservoir

In the study of impact of irrigation first of all the study of irrigation facilities are studied, in which it is found around 82% of the farmers in the command area are using canals for irrigation their fields. No. of in the wells in the command area increased after the construction of the dam. Around 109.79 million cubic meter of water is irrigated under the planned water usage. Season wise planed water usage are higt during the Kharif season. Carrying capacity of the various canalis different as per length and size of the canal. Branch canals in the command area have the capacity to irrigate the land.

Problems and Prospects in the Command Area of Bor Reservoir

While studying problems and prospects of the command area per capita income of farmer. Land shedding, timing and duration, flood control, storage facilities, availability of labor, problem of displacement and rehabilitation is studied in details. Numerous prospects and possibilities are there in the can be utilized for agriculture. There are high possibilities of increasing the irrigated area in the command area that can be utilized for agriculture. There are high possibilities of increasing the irrigated area in the command area as many farmers are still do the dry land farming. At last in this chapter special attention is given to the Problems of land less labors in the chaanki village. With the help of case study of land less labors in the command area it is found that the economic as well as the social status of the land-less labors is in average conditions.

In the findings it is found that about 55 percent families of landless labors are under debt conditions. In the Chaanki village about 65 percent families are completely dependent on farm labor work.35 percent families are doing other kind of works.60 percent families are not able save money. 38 landless do not have BPL cards, 30 percent of the landless labors families do not even have ration cards. Landless labors daily expenditures is more than their daily wages. Daily food consumption of land less labors is not up to the level of their daily

calories requirements. 60 percent of the landless labor's families are completely dependent of the public transport (Chapter6).

Conclusions

On the basis of the entire discussion and interpretations following con conclusions are derived. Farmers in the command area prefers cash crops to be grown for more benefits from the market as first ranking crops in the command area are the cash crops like Fiber crops i.e. cotton, legumes crops i.e Tur, and cereal crops i.e. wheat during 1999-2018. Fruits and vegetable crops in the command area are of less importance in the command area as it is found that these crops are ranking fifth position in the entire command area from year 1999 to 2018. Oilseed crops are another fifth ranking crops which occupies two to there regions of the command area during 1999-2018 period. This indicates the inclination towards truck farming. Study region has benefit to two metro cities in vicinity (Nagpur and Wardha). Study of crop concentration reveals that high concentration of most of the crops are found in BMC NAP2 NAP3 and GKP regions of the command area this clearly indicates that the impact of irrigation is high in the northern, central and southern part the command area.

Fruits and vegetable crops concentration is high in the GKP and NAP I region as these regions are of high density of branch canals, these provides amount of irrigation to these regions of Bor reservoir's command area. High combination of crops is located in the last four regions of the command area which is shifting towards the reservoir's direction during study period it was found in the AST region 1999-2000 during 2004-2005 it is shifted towards the NAP3 region. In 2009-2010 it is shifted towards the NAP2 and in 2017-2018 it is found in NAP I region. The magnitude of the crop combination is high toward the south and north directions of the command area and in the central parts of the command area magnitude of crop combination is low.

Entire study region's slope ranges between 1.00 to 35.00 percent and about 65 percent of the land is under the slope category of 1-3 percent which is favorable for canal irrigation. The slope category that ranges between 15-35 percent is the hilly area that is found in a scattered distribution in the command area.

In the study of crop-wise suitability of land of the command area it found that soil types found on this land is highly suitable for cotton, Tur, soybean, gram, sugarcane and wheat crops. But about 90 percent of the land is highly suitable for wheat crop as irrigation,

climatic, conditions, soil type all these factors are highly favorable for it. There is high degree of positive correlation between agricultural production and irrigation.

The correlation between production and irrigation is r=+ 0.92. From the observation of (Figure no.4.13) it is clear that the rise and fall between irrigation and agricultural production is associated with each other. About 82 percent of the farmers are using irrigation provided by the Bor reservoir 23.93 percent of the farmers irrigate their fields through river including irrigation through canals. In the command area almost 9.23 percent of the farmers are cultivation dry lands and they are completely dependent on rainfall for agriculture. This dependency on rainfall is of farmer leads to financial problems.

In the command area about 109.79 million cubic meter of water is irrigated to the fields from the planned water usage of the Bor reservoir. Under there planned usages rabbi and double cropping utilizes 23.30 million cubic meter of water. In the season wise water usage is high during summer season that is 38.65 million cubic meter. In the rabbi season 3.55 million cubic meter water is used through the canal's lift irrigation and in the kharif season 24.14 million cubic meter water is utilized for irrigation. Branch canals are having the highest carrying capacity in the command area as the density of the branch canals distribution is high in the command area. The carrying capacity of branch is 172.34 million cubic meter. Branch canal irrigates around 3813 hectares of reformed irrigated area of the commands area. Total 7025 people in Seloo and 1153 in Samudrapur talukas are benefitted through taluka wise planed irrigated area. Total irrigated area in the seloo taluka 10747 hectares and about 2613 hectares of land from samudrapur taluka is irrigated. In the branch wise planed irrigated area larga number of people are benefitted through Dehegaon Branch in 6885 hectares of land which is highest among all the branch canals. Lowest capacity to irrigate the land is of Bori branch canal which irrigates about 467 hectares of land. Rabbi season is having the highest percentages of surface drained irrigated area in which about 7368 (55.10%) hectares of the land is cultivated for various crops like wheat., gram, vegetables etc. It is even higher than the Kharif season, which accounts about 2834 (21.2%) hectares of cultivated land, BMC, and AST regions are the highly commercialized agricultural regions in the command area. In these regions farmers sell about 78 to 82 percent of the production in the market and GKP and NAP I regions of the command are is low in the degree of commercialization of agriculture because farmers in this regions are consuming more production than selling in the market. NAP2, NAP3 and AST regions are developed in the mechanization of agriculture as use of tractors and tractor operated machineries is high in these region seems to be backward in the mechanization of agriculture. In the NAP3 region

high level of agriculture is found. Around 78 percent area of the commend area is the major source of income in the command area of Bor reservoir. High level of mechanization are found in NAP2 region.

Average per capita income of the command area is Rs.5,04,857 In the spatial distribution of the per capital income in 2018 it can be seen that per capita income of the farmer in the command area is high in NAPI region. During field observation it was found that about 16 percent famers in this region do the agriculture allied businesses in this region. Like poultry farm. Goat etc. Farmers in the command area facing the problem of land shedding. Results from the survey of the command area says that nearly 11.30 hours load shedding was there on the Dailey basis in 2018.

It was decided by the Maharashtra Electrical distribution Cooperation limited that the Agricultural the feeders which faces the distribution collection losses (DCL) greater than 25 percent will face the load shedding for 11.30 hours. Greater part lo the irrigation is scheduled in the Rabbi season followed by the Kharif season whenever there is a break in rainfall (dry spell) for several days. The irrigation in the Rabbi season is provided between the intervals of 15 days especially for wheat crop. On the basis of study of assured storage levels that was done during 1968 from the month of June to October the schedule of water release from the dam is fixed to control the flood in the Bor River that drains through the command area.

Farmers in the command area are using storage facilities like Store rooms, Drums, (trunk), Farm warehouse, Government storage etc. 37.80 percent of the farmers are using Dholis, and 33.46 percent of the famers are using Drums for storing the farm produce. Government storages are not sufficient for storing the farm produce as it is available only a taluka place labors are available in all the agricultural seasons in the command area but their wages keep in changing from Rs.300 to 250 in summer or Zaid season. In Rabbi season it ranges from Rs. 300 to 350 and in Kharif season they demand for Rs.350 to 400.

Eight villages (4 from wardha and 4 from Nagpur) were vacated before construction of the dam and 1522 people were displaced from submergent area of the Bor reservoir. After dislocation the people from this region government has appointed rehabilitation officials and with the help of these officials the rehabilitation of the people was done. In the last 50 years people have settled themselves as per their convenience and government has helped these people in all aspects time. Bor reservoir has the possibility of increasing its irrigated area in command area and very important prospect of the command area is that it is well connected with the market places like Nagpur and Wardha and can look forward for truck faming.

The landless labors of chaanki village remain workless in the summer season and therefore they face crisis of money. Wages are not enough to meet the demand of the labor's families 50 to 60 percent the landless labors are struggling for all king of primary services like BPL cards, Ration cards, Ration cards. The addiction is one of the main causes of poverty of most of landless families in the chaanki village the level of daily expenditure is more than the daily wages. The nutrition level received through food they eat in one enough as in comparison of daily calories requirement.

It can be seen that the presumed Hypothesis is proven through this entire research work as the farmers are using the facility of irrigation provided by the Bor reservoir and the positive impact of irrigation can be seen through the study of correlation that there is a positive correlation (r+ 0.926891) between irrigation and production. So irrigation of Bor reservoir is an advantage for the farmers in the command area. From the study of cropping patterns it can be seen that farmers in the command area are interested to grow the cash crops like cotton, soybean, gram, and sugarcane etc. to earn more money form their farms.

In short we can summaries that in this study that, there is a positive impact of irrigation on the agriculture in the command area of Bor reservoir as it is observed that the agriculture is shifting from more subsistence to more commercial. There is a positive impact on the agricultural production also as there is a close relationship between agriculture production and level of irrigation provided by the Bor reservoir is a great advantage for all the farmers in the command area. Bor reservoir's catchment area can be studied further for the better understanding of life of the people in the Bor reserve forest.

****

अनुसूचित जनजाति विकास : शिक्षा योजनाएं एवं विकास

अर्चना व्यास
व्याख्याता
मैकेनिकल इंजीनियरिंग
स.व. पॉलीटेक्निक महाविद्यालय, भोपाल

दीपशिखा व्यास
लेब टेक्नीशियन प्राणी विज्ञान
शासकीय स्नातक महाविद्यालय, बिछुआ

मध्यप्रदेश देश का ऐसा राज्य है, जहां हर पांचवा व्यक्ति अनुसूचित जनजाति वर्ग का है। मध्यप्रदेश में देश की सर्वाधिक अनुसूचित जनजातियां रहती हैं। अगर जनजातियों के उपजातियों को मुख्य जाति के साथ रखे तो भी यहाँ कुल 46 जनजातियां पायी जाती है। वर्ष 2011 की जनगणना में राज्य की जनगणना के अनुसार राज्य में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 153.16 लाख है जो राज्य की कुल आबादी की 21.10 प्रतिशत है मध्य प्रदेश के सुदूर अंचलो में बसे जनजाति समाज तक म.प्र. शासन की जन कल्याण कारी योजनाओं को सुगमता से पहुँचाने के लिए म.प्र. शासन, आदि जाति कल्याण विभाग द्वारा प्रदेश के 20 जिलों के 89 अनुसूचित जनजाति विकास खंडों में मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास कार्यक्रम के संचालन एवं क्रियान्वयन का दायित्व म.प्र. जन अभियान परिषद् को सौंपा है। भारत सरकार द्वारा प्रदेश के बैगा, भारिया एवं सहारिया जनजाति को विशेष पिछड़ी जनजाति समूह के रूप में मान्यता दी गई है। तीनों विशेष पिछड़ी जनजाति समूह के विकास हेतु 03 प्राधिकरण तथा 11 अभिकरण कार्यरत है। प्रत्येक विकास खंड स्तर पर शिक्षण हेतु संपर्क कक्षाओं का संचालन उत्कृष्ट विद्यालय में उपलब्ध कक्ष में प्रत्येक रविवार को किया जाता है। इस पाठ्यक्रम हेतु प्रत्येक विकासखंड में जन अभियान परिषद् द्वारा 18 से 45 वर्ष तक के 12वीं पास ऐसे 30 अनुसूचित जनजाति वर्ग के महिलाएं एवं पुरूषों का चयन किया जाता है जो सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय है एवं इस क्षेत्र में केरियर बनाने हेतु उत्सुक हैं। एकीकृत आदिवासी विकास परियोजनाओं के अंतर्गत 26 वृहद परियोजनायें 05 मध्यम परियोजनाएं, 30 माड़ा पॉकेट्स एवं 6 लघु अंचल कार्यरत हैं। अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु आदिवासी विकास विभाग के माध्यम से विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रम संचालित किये जाते हैं। विभागीय कार्यक्रमों में शैक्षणिक योजनाऐं प्रमुख हैं।

आदिवासी विकास विभाग द्वारा आदिवासी उपयोजना क्षेत्र में शालाओं के संचालन के साथ–साथ शैक्षणिक प्रोत्साहन देने वाली अन्य योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है। विभाग द्वारा अनुसूचित जनजाति परिवारों के लिए आर्थिक उत्थान सहायता की कतिपय योजनाएं भी संचालित है। इन वर्गो के उत्थान में स्वैच्छिक संस्थाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से ऐसी अशासकोय

संस्थाओं को विभाग द्वारा अनुदान दिया जाता है।

प्रदेश के आदिवासी विकास खण्डो में विभाग द्वारा प्राथमिक से उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की शालायें संचालित की जा रही है। शिक्षा में सुधार लाने के लिए इन शालाओं के अतिरिक्त विशिष्ट आवासीय शैक्षणिक संस्थाओ का संचालन भी किया जा रहा है। वर्तमान में विभाग द्वारा निम्नानुसार शैक्षणिक संस्थाओं का संचालन किया जा रहा है।

आदिवासी विकास विभाग द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थाएं

क्र.	संस्था का नाम	संख्या
1.	प्राथमिक शालाएं	12643
2.	माध्यमिक शालाएं	4369
3.	हाई स्कूल	799
4.	उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	752
5.	आदर्श उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	08
6.	कन्या शिक्षा परिसर	62
7.	एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय	29
8.	न्यून साक्षरता वाले कन्या शिक्षा परिसर	13
9.	विशेष पिछड़ी जन जाति आवासीय विद्यालय	03
10.	क्रीडा परिसर	23
11.	प्री मेट्रिक छात्रावास	1348
12.	पोस्ट मेट्रिक छात्रावास	130
13.	आश्रम शालाएं	1046
14.	आदिवासी पुनर्ध्ययन केन्द्र	01

आदिवासियों के विकास के लिए संचालित योजनाओं के "शिक्षा" की योजनाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई हैं। शैक्षणिक उत्थान केग लिए विभाग द्वारा आदिवासी उपयोजना क्षेत्र के 89 आदिवासी विकास खंडो में प्राथमिक स्तर से उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की शालाओं का संचालन किया जा रहा है।

वर्ष 2014–15 में 40 हाई स्कूलों का उ.मा.वि. में उन्नयन, 20 अतिरिक्त संकाय तथा 40 कन्या

शिक्षा परिसर स्वीकृत किए गए है। वर्ष 2015–16 में 26 माध्यमिक शालाओं का हाईस्कूल में, 48 हाइस्कूलों का उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में उन्नयन, 21 अतिरिक्त सकाय एवं 20 कन्या शिक्षा परिसर स्वीकृत किये गये है वर्ष 2015–16 में प्राथमिक शालाओं में राशि रूपये 60431.57 लाख प्रावधान के विरूद्ध माह दिसम्बर तक रिशि 27761.56 लाख व्यय किये गये हैं।

प्रदेश के 18 जिलों झाबुआ, बड़वानी, रतलाम, धार, सिवनी, बैतूल, डिण्डौरी, मंडला, अनूपपुर, छिंदवाड़ा, उमरिया, सीधी, अलीराजपुर, खंडवा, बालाघाट, शहडोल, जबलपुर एवं होशंगाबाद में 25 एकलव्य आदर्श आवासी विद्यालय संचालित है। 4 एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय वर्ष 2015–16 में। ये विद्यालय मंडला, चित्रकूट, सतना, खरगौन एवं सिंगरौली मे स्वीकृत किए गए हैं। झाबुआ एवं छिंदवाड़ा अलीराजपुर एवं सतना जिले में दो–दो एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय संचालित हैं इनमें कक्षा 6 से 12वीं तक 7740 विद्यार्थी हैं, जिसमें 3660 बालक एवं 3480 बालिकाएं अध्ययनरत है।

राज्य शासन द्वारा कन्या साक्षरता प्रोत्साहन शिक्षा 6वीं से 9वीं को राज्य छात्रवृत्ति में समाहित कर 6वीं से 8वीं तक 50 रू. मासिक एवं 9वीं से 10वीं तक 130 रू. मासिक छात्रवृत्ति निर्धारित की गई है। कक्षा 11वीं हेतु प्रोत्साहन राशि विभाग के माध्यम से वितरित की जाती है।

वर्ष 2009–10 से वर्ष 2015–16 तक लाभान्वित बालिकाओं का विवरण निम्नानुसार है।

वर्ष	कक्षा 6वीं	कक्षा 9वीं	कक्षा 11वीं
2009–10	122819	37692	14245
2010–11	146372	51280	19888
2011–12	177510	74560	25431
2012–13	182697	92854	28327
2013–14	187064	100665	35619
2014–15	–	–	31567
2015–16	–	–	32165

वर्ष 2016–17 में 35000 कन्याओं को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया है।

शिक्षा विभाग द्वारा कक्षा 9वीं की जिन बालिकाओं को सायकिल प्रदान की गई है उन्हें कक्षा 11वीं में प्रवेश लेने पर सायकिल रखरखाव भत्ता 1000/– रू. प्रति बालिका प्रदान किया जाता है वर्ष 2015–16 में 22000 बालिकाओं के लक्ष्य के विरूद्ध 6306 छात्राओं को लाभान्वित कर 63.06 लाख रूपये व्यय किये गये।

मध्यप्रदेश माध्यमिक शिक्षा मंडल की 10वीं एवं 12वीं बोर्ड परीक्षा में प्रदेश में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले आदिवासी छात्रों को निम्नानुसार राशि पुरस्कृत किया जाता है। कक्षा 10वीं एवं 12वीं में प्राप्त प्रावीण्यता को कक्षा 12वीं में निरंतर रखने के लिए 11000/– प्रोत्साहन राशि का प्रावधान है।वर्ष 2014–15 से निम्न दरें प्रभावशाली है।

कक्षा	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
10वीं	51000	31000	21000
12वीं	51000	31000	21000

मध्यप्रदेश माध्यमिक शिक्षा मंडल की कक्षा 10वीं एवं 12वीं बोर्ड परीक्षा में अपने संवर्ग में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाली प्रतिभावान आदिवासी छात्राओं को निम्नानुसार राशि से पुरस्कृत किया जाता है।

कक्षा	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
10वीं	51000	31000	21000
12वीं	51000	31000	21000

10वीं में प्राप्त प्रावीण्यता को कक्षा 12वीं में निरंतरता रखने वाली विद्यार्थियों को अतिरिक्त प्रोत्साहन राशि 11000/– रू प्रदान की जाती है।

आदिवासी बाहुल्य जिलों में संचालित संस्थाओं में जिले सर्वश्रेष्ठ परीक्षाफल देने वाले तीन हाई स्कूल। तीन हायर सेकेण्डरी एवं सर्वश्रेष्ठ तीन छात्रावास आश्रमों को पुरस्कार के रूप में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार क्रमशः 25000/– रूपये, 15000/– रूपये एवं 1000/– रूपये से सम्मानित किया जाता है। वर्ष 2015–16 में आदिवासी बाहुल्य 20 जिलों में 01 छात्रावास, 1 आश्रम, 01 हाईस्कूल एवं 1 हायर सेकेण्डरी स्कूल को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

मध्यप्रदेश माध्यमिक शिक्षा मण्डल द्वारा आयोजित कक्षा 10वीं एवं 12वीं बोर्ड परीक्षा में अनुसूचित जनजाति के 100–100 छात्र–छात्राएं जिन्होने अपन संवर्ग में सर्वोच्च अंक प्राप्त किए हैं, प्रत्येक को 1000/– रू. की राशि दी जाती हे।

प्रदेश के 15 जिलों में निवासरत विशेष पिछडी जनजाति बैगा, सहारिया एवं भारिया के शैक्षणिक विकास हेतु विशेष प्रोत्साहन में कक्षा 1 से 12वीं तक हर छात्र/छात्रों को प्रति वर्ष, गणवेश, स्वेटर, जूते मौजे, बैग दिये जाने की योजना स्वीकृत है। कक्षा 1 से कक्षा 8 वीं तक गणवेश राज्य शिक्षा केन्द्र द्वारा 600/– प्रति विद्यार्थी बैंक खाते में प्रदाय किए जाते हैं, वर्ष 2009–10 से 2015–16 तक लाभांवित

विद्यार्थियों का विवरण निम्नानुसार है :–

वर्ष	व्यय राशि	लाभांवित पी.टी.जी. विद्यार्थी
2009–10	1063.49	188642
2010–11	1076.01	199752
2011–12	1327.36	232870
2012–13	1410.84	241327
2013–14	1673.32	243000
2014–15	1362.14	245000
2015–16	761.64	200000

आदिवासी विकास विभाग द्वारा संचालित 704 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में गुणवत्ता के लिये पुस्ताकालयों में पर्याप्त पुस्तकों की व्यवस्था तथा जीवित संचालन एवं प्रयोग शालाओं में आवश्यक सामग्री के लिए 425.20 लाख रू उपलब्ध कराया गया है। हर विद्यालय में पुस्तकालय का 2 घंटे विद्यालय समय के बाद तक रखा जाकर अध्ययन की सुविधा एवं पुस्तकालय कार्ड बनवाकर नियमित किताबों का आदान प्रदान जिला स्तर पर मॉनीटरिंग करवाई जा रही है। अनुसूचित जनजाति वर्ग के विद्यार्थियों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं इंजीनियरिंग/मेडिकल में सफलता प्रापत करने के लिए अनुरूप सामग्री की उपलब्धता को सुनिश्चित किया गया है। दूरस्थ अंचलों में आदिवासी विद्यार्थियों को आवासीय सुविधा उपलबध कराने के लिए बालक बालिकाओं के लिए प्री मैट्रिक तथा पोस्ट मैट्रिक छात्रावास एवं आश्रम संचालित किय जा रहे हैं।

वर्ष 2014–15 में 04 बालक एवं 06 कन्या कुल 10 प्री–मैटिक छात्रावास 50 सीटर नवीन खोले गए है। वर्ष 2015–16 में 20 प्री–मैट्रिक छात्रावासी 50 सीटर नवीन खोले गये है। 2015–16 में 130 पोस्ट मैट्रिक छात्रावासों में राशि 2232.46 लाख रूपये प्रावधान से लगभग 7450 विद्यार्थियों को लाभान्वित किया गया वर्ष 2016–17 में 20 प्री–मैट्रिक एवं 20 पास्ट मैट्रिक छात्रावास एवं 10 नवीन आश्रम खोलने का लक्ष्य है।

राज्य छात्रवृत्ति कक्षा 1 से 5वीं तक की समस्त बालिकाओं तथा कक्षा 1 से 5वीं तक के विशेष पिछडी जनजाति के बालकों को एवं कक्षा 6 वीं से 10वी तक के बालक बालिकाओं को दस माह हेतु निम्न देरों पर छात्रवृत्ति पदान की जा रही है :–

कक्षा	बालक (वार्षिक)	बालिका वार्षिक
1 से 5	150/– (केवल विशेष पिछड़ी जनजाति के बालकों के लिए)	150/–
6 से 8	200/–	500/–
9 से 10	600/–	1300/–

वर्ष 2015–16 में प्रावधान राशि 22100.93 लाख शिक्षा विभाग को उपलब्ध कराये गए हैं

पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना के अन्तर्गत 2.50 लाख रूप से 3.00 लाख रूपये तक वार्षिक आय वाले अभिभावकों के बच्चों को राज्य शासन ये पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। वर्ष 2015–16 में माह दिसम्बर तक प्रावधान राि 13062.89 लाख रन के विरूद्ध कक्षा 11 वी एवं 12वीं के 124273 विद्यार्थियों को 3451.00 लाख रू. कर वितरण किया गया एवं महाविद्यालय कक्षा के 10912 विद्यार्थियों को 876.00 लाख राशि का वितरण किया गया।

समूह	विषय	दी जाने वाली छात्रवृत्ति दरे	
		छात्रावास	गैर छात्रावास
वर्ग 1	चिकित्सा, इंजीनियरिंग और साइंस, वित्त प्रबंधक समूह	1200	550
वर्ग 2	आयुर्वेदिक, यूनानी, होम्योपैथिक इंजीनियरिंग प्रौद्योगिकी विज्ञान में डिप्लोमा और अन्य स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम	820	530
वर्ग 3	इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और अन्य स्नाकोत्तर पाठयक्रम	570	300
वर्ग 4	सामान्य स्नाकोत्तर पाठ्यक्रम कक्षा 11वीं एवं 12वीं और स्नाकोत्तर तक पाठयक्रम का सामान्य प्रथम वर्ष	380	230

अनुसूचित जनजाति वर्ग के युवाओं के भविष्य निर्माण क लिए उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करने के उद्येश्य से विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रतिवर्ष 10 छात्र–छात्राओं को छात्रवृत्ति का प्रावधान है। वर्ष 2015–16 में 110.00 लाख रूपये प्रावधान के विरूद्ध दिसम्बर माह 2015 तक 19.05 लाख राशि से 29 विद्यार्थियों का चयन किया गया एवं 2 विद्यार्थियों को विदेश, अध्ययन के लिए भेजा गया।

राज्य शासन ने संघ लोक सेवा आयोग तथा मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा परीक्षाओं में विभिन्न स्तरों पर सफल होने वाले अनुसूचित जनजाति के अभ्यार्थियों को प्रोत्साहन राशि का प्रावधान वर्ष 2003–04 से स्वीकृत किया गया है।

(अ) संघ लोक सेवा आयोग परीक्षा के लिए :–

1. प्रारंभिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर – 40000.00 रू.
2. मुख्य परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर – 60000.00 रू.
3. साक्षात्कार उपरांत चयन होने पर – 25000.00 रू.

वर्ष 2015–16 में 158.90 लाख रूपये व्यय पर 1053 विद्यार्थियों को लाभविन्त किया गया है।

प्रतिभागी को कोचिंग हेतु दी जाने वाली सुविधाएं

क्र.	विवरण	चरणवार पाठ्यक्रम	सम्मिलित पाठ्यक्रम
1.	प्रारंभिक परीक्षा की तैयारी के लिए पुस्तको हेतु	10000.00	10000.00
	शिष्यवृत्ति प्रतिमाह, परिवहन, सुविधा, आवास, भोजन सुविधा 10000/– प्रतिमाह (04 माह हेतू)	40000.00	120000.00
	कोचिंग शुल्क पर होने वाले व्यय हेतु (अधिकतम)	50000.00	125000.00
	योग	**100000.00**	**255000.00**
2.	मुख्य परीक्षा की तैयारी के लिए शिष्यवृत्ति प्रतिमाह, परिवहन, सुविधा, आवास, भोजन सुविधा 10000/– प्रतिमाह (04 माह हेतू)	40000.00	
	कोचिंग शुल्क पर होने वाले व्यय हेतु (अधिकतम)	75000.00	
	योग	**115000.00**	
3.	साक्षातकार की तैयारी के लिए		
	शिष्यवृत्ति प्रतिमाह, परिवहन, सुविधा, आवास, भोजन सुविधा 10000/– प्रतिमाह (01 माह हेतू)	10000.00	10000.00
	कोचिंग शुल्क पर होने वाले व्यय हेतु (अधिकतम)	20000.00	20000.00
	योग	**245000.00**	**245000.00**

योजना के लाभ हेतु आय सीमा 5 लाख रूपये निर्धारित की गई है, GATE, CAT परीक्षा में न्यूनतम 70% परसेंटाइल के साथ सफलता प्राप्त की है। उच्च न्यायालय द्वारा आयोजित राज्य न्यायियक सेवा की प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, ऐसे आवेदक जिन्होने राज्य लोक सेवा आयोग की प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण की है वे प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण की है वे प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के वर्ष से अगले 3 वर्षों में आयोजित संघ लोक सेवा आयोग की प्रारंभिक परीक्षा की कोचिंग के लिए किसी एक वर्ष आवेदन कर सकते हैं।

वर्ष 2015–16 में 61.25 लाख रूपये व्यय करके 62 विद्यार्थियों को लाभावित्त किया गया है।

तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा तथा कौशल विकास पाठ्यक्रमों का विगत कुछ वर्षों से तेजी से विकास हुआ है। इन पाठ्यक्रमों के लिए अनुसूचित जनजाति वर्ग के छात्र–छात्राओं के लिए सभी स्तरों पर प्रयास किये जा रहे हैं। इस वर्ग के शिक्षित बेरोजगारों को विशेष गुणवत्ता युक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों। कौशल उन्नयन (Skill Development) के माध्यम से स्वरोजगार स्थापित करने के व निजी क्षेत्रों के उपक्रमों में रोजगार की उपलब्धता सुनिश्चित करने के अवसर प्रदान करने के उद्येश्य से कौशल उन्नयन योजना संचालित की जा रही है।

विभाग द्वारा प्रत्येक विकासखण्डों के 350 आदिवासी युवाओं को प्रशिक्षण करने का लक्ष्य रखा गया है। युवाओं को शिक्षण प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है। युवाओं का चयन ऐसे बेरोजगार युवा जो विद्यालय छोड़ चुके हैं या कक्षा 10वीं उपरांत व्यावसायिक प्रशिक्षण लेकर रोजगार। स्वरोजगार के इच्छुक हैं। वर्ष 2015–16 में 10000 विद्यार्थियों के लक्ष्य के विरूद्ध 5567 को लाभावित्त किया गया है।

तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भी आदिवासी विकास विभाग द्वारा अनेक सुविधाएं प्रदान की जा रही है। प्रदेश में संचालित इंजीनियरिंग एवं पोलीटेकनिक महाविद्यालय में आदिवासी युवाओं के लिए स्थान आरक्षित है। मेरे कार्यस्थल महाविद्यालय में वर्ष 2015–16 में अनुसूचित जनजाति विद्यार्थियों की स्थिति निम्नानुसार है। (यांत्रिक इंजीनियरिंग विभाग)

वर्ष	सामान्य छात्र संख्या	पिछडा वर्ग छात्र संख्या	अनुसूचित जाति छात्र संख्या	अनुसूचित जनजाति छात्र संख्या	कुल योग
प्रथम वर्ष	20	26	18	10	74
द्वितीय वर्ष	22	29	13	07	11
तृतीय वर्ष	19	22	11	04	56

प्रत्येक वर्ष के अनुसूचित जनजाति के छात्र/छात्राएं जिनके अभिभावकों की आय 2.50 लाख से 3 लाख रूपये तक है। उन्हे छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। इन छात्र/छात्राओं के लिए विशेष कक्षाओं का भी प्रबंध किया जाता है।

ये छात्र छात्राएं समय पर कक्षा में किसी कारण वश उपस्थित नही हो पाते या पढ़ने में कमजोर हो उनके लिए अतिरिक्त कक्षाओं का भी प्रबंध किया जाता है। विशेष कक्षाओं में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि विद्यार्थियां के मुताबिक पाठ्यक्रम को समझाया जाए। ऐसी कक्षाएं हर एक ब्रांच के पाठ्यक्रम में सम्मलित की गई है ताकि हर एक विद्यार्थी को समान रूप से इसका लाभ हो सके।

महाविद्यालय में समय–समय पर छात्र–छात्राओं के मूल्यांकन भी किया जाता है ताकि उनके पाठ्यक्रम के अनुसार उनका अवलोकन एवं समझने के स्तर को पहचाना जा सके।

शैक्षणिक स्तर एवं आर्थिक सृदृढ़ता किसी भी वर्ग की सामाजिक स्थिति की पहचान होती है। इसलिए आदिवासी विकास विभाग द्वारा अनुसूचित जनजाति वर्गों का शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास कर समाज के अगले पायदान पर करने का लक्ष्य है। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा अनुसूचित जाति एवं जन जपति के छात्र–छात्राओं को शिक्षण के साथ निशुल्क आवास, भोजन, स्वच्छ पेयजल, विद्युत आदि की सुविधा देने का उद्देश्य भी है। मध्यप्रदेश पहला ऐसा राज्य है जहां अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारी की मान्यता) अधिनियम 2006 का क्रियान्वयन कर 168387 अनुसूचित जनजाति वर्ग के दावेदारों के अधिकारी मान्य किये गये है।

Reference :-

प्रशासकीय प्रतिवेदन आदिम जाति कल्याण विभाग मध्यप्रदेश.

आदिवासी क्षेत्र के ग्रामीण अधिवास का प्रारूप एवं जनांकिकीय अध्ययन छिन्दवाड़ा जिले के संदर्भ में

अर्पणा पुणेकर
शोधार्थी (भूगोल)
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय,
जबलपुर (म.प्र.)

ममता साहू
प्राध्यापक (भूगोल)
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिहोरा,
जबलपुर (म.प्र.)

सारांश

जनजाति अथवा आदिवासी ऐसे मानव समूह है जिन्होंने बाह्य सभ्यता के कुछ तत्वों को ग्रहण करने के पश्चात् भी अपनी मौलिक विशेषताओं को नष्ट होने नहीं दिया है, सामान्यतः जनजातीय शब्द का प्रयोग उन क्षेत्रों के लिए करते है, जो आधुनिक सभ्यता से दूर गहन जंगलों में, पर्वतों की गगनचुम्बी चोटियों पर एवं उनकी तलहटी में निवास करते है। आवास मानव की प्रारंभिक और प्रमुख आवश्यकता है। मनुष्य भूमि पर जिस स्थान को आवास या निवास के लिए चुनता है एवं जंगली जीव जन्तुओं के भय से सुरक्षित बनने के लिए शीत, वर्षा, ग्रीष्म की कठोरताओं से अपने शरीर की रक्षा करने के लिए और खाद्य सामग्री व आवश्यकता की अन्य वस्तुओं को भविष्य में उपयोग हेत संचय के लिए घर, मकान, झोपडी या भवन का निर्माण करता है उसे अधिवास कहते हैं। यही कारण है कि वर्तमान में आदिवासी समाज कृषि को मुख्य व्यवसाय बना चुका है। आदिवासी कृषक छोटी जोत के कृषक होते है जो सामान्यतः पारम्परिक तरीके से कृषि करते हुए पारम्परिक फसलों का ही उत्पादन मुख्य रुप से करते है

' शोधपत्र का उद्देश्य आदिवासी क्षेत्र का अधिवासों के प्रारूप एवं जनांकिकीय अध्ययन करना है। इस शोधपत्र में छिन्दवाड़ा जिले के तामिया के समीप स्थित राजथरी गॉव के गोड़ आदिवासी परिवारों का अध्ययन किया गया है। उनकी आर्थिक स्थिति, घरों के प्रकार, घरों में प्रयुक्त बर्तन, आधुनिक सज्जा सामग्री, व्यवसाय एवं परिवार के सदस्यों की संख्या आदि का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र के अन्तर्गत प्राथमिक समकों द्वारा ऑकड़ो का संकलन किया गया है, प्राप्त ऑकड़ो के आधार पर गोंड़ आदिवासियों का अधिवासों एवं जनांकिकीय अध्ययन, व्यावसायिक संरचना व आर्थिक स्थिति का विश्लेशण कर उन्हें सारणी द्वारा दर्शाया गया है।

निष्कर्षतः यह कह सकते है गोड आदिवासियों के विकास की दर धीमी है। आदिवासी अपनी भौतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक उन्नति के लिए पर्यावरण के घटकों पर आश्रित है। कृषि ही जीविका का मुख्य साधन है। यह आदिवासी समुदाय आज भी अपने विकास हेतु संघर्षरत् है। सरकार आदिवासियों के विकास हेतु अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन करती आ रही है, फिर भी आदिवासी समुदाय अन्य श्रेष्ठ समुदायों की पंक्ति में नहीं पहुच पाया है। आदिवासी समाज को वर्तमान युग के कदम से कदम मिला पाने के प्रयास स्वतंत्रता के पूर्व से ही जारी है और यही आदिवासी समाज थोड़ा ही विकास की मुख्य धारा से जुड़ पाया है।

पारिभाषिक शब्द : आर्थिक विकास, बंद तंत्र, जनजातीय समाज, जनांकिकीय अध्ययन, व्यावसायिक संरचना आवासीय प्रतिरूप।

प्रस्तावना

भारतीय सामाजिक व्यवस्था मे जनजातियों का महत्वपूर्ण स्थान है। जनजातीय समूह देश के सबसे पिछड़े वर्गो में रखे जा सकते है, इन्हें आदिवासी जनजाति कहा जा सकता ह। स्वतंत्र भारत सरकार ने जनजातीय समाज का विकास करने के अनेक प्रयास किये गये। जनजाति में परिवर्तन सूचना क्रांति का महत्वपूर्ण घटक दूरदर्शन एव शिक्षा के प्रचार–प्रसार व शहरीकरण के कारण आने लगा हैं। उनमें धीरे–धीरे परिवर्तन परिलक्षित होने लगा है। उनके खान–पान, पहनाव एव रहन–सहन के तौर तरीकों में भी परिवर्तन स्पष्ट देखा गया है, जनजातोय महिलायें इन परिवर्तनों को अपना विकास मानकर सहर्ष स्वीकार करने लगी ।

छिन्दवाड़ा जिले की कुल जनसंख्या लिंगानुपात 952.08 स्त्रियॉ प्रति हजार पुरुषों पर है एवं अनुसूचित जनजाति का लिंगानुपात 986.17 स्त्रियॉ प्रति हजार पुरुषों पर है, आकड़ें स्पष्ट रुप से दर्शाते है कि अनुसूचित जनजाति का लिंगानुपात अधिक है। जिले में कुल अनुसूचित जनजाति की कुल नगरीय जनसंख्या 47465 है। छिन्दवाड़ा जिला जो मध्यप्रदेश राज्य में स्थित है व क्षेत्रफल की दृष्टि से मध्यप्रदश का एक बड़ा जिला है, अपितु संसाधनों की दृष्टि से भी सम्पन्न है। छिन्दवाड़ा जिला जो सतपुड़ा पर्वत श्रेणियों के मध्य स्थित एक पूर्णतः पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्र है। यहॉ पर गोंड ग्रामीण आदिवासी जनजाति निवास करती ह। इस कारण ग्राम्य अधिवास एवं जनांकिकीय का अध्ययन एवं अधिक महत्वपूर्ण है। अतः शोधकर्ता ने छिन्दवाड़ा जिले के राजथरी गांव में गोंड आदिवासी जनजाति क्षेत्र का ग्रामीण अधिवास प्रारूप एवं जनांकिकीय अध्ययन का चुनाव किया।

शोध क्षेत्र

सतपुड़ा पर्वतीय क्षेत्र में स्थित शोध क्षेत्र छिन्दवाड़ा जिले के तामिया के समीप स्थित प्रतिदर्श ग्राम राजथरी छिन्दवाड़ा तहसील के तामिया विकास खण्ड में 7 कि.मी. दक्षिण में स्थित है। इसका विस्तार 20^0 18′ 30′′ उत्तर से 22^0 19′ 52′′ उत्तरी अक्षांश एवं 78^0 40′ पूर्व से 78^0 42′ पूर्व देशान्तर के

मध्य है। इसके उत्तर में जामिया पाटन, पूर्व में जूनापानी, साजकुही, दक्षिण में धुरवाढ़ाना तथा पश्चिम में डोव तथा जमुनिया गांव है। इस गांव का कुल क्षेत्रफल 656.604 हेक्टेयर है।

राजथरी गांव में आवश्यक सेवा सुविधाओं जैसे– स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, हाट–बाजार एवं प्रशासनिक आदि के लिए तामिया विकासखण्ड़ मुख्यालय 7 कि.मी. से प्राप्त होती है। तामिया निकटतम बाजार शुक्रवार का लगता है। यहॉ लोग अपनी आवश्यकता की सामग्री खरीदते है। अन्य निकटतम बाजार देलाखारी, झिरपा एवं बिजौरी है जो क्रमशः सोमवार, शनिवार एवं मंगलवार को भरते है।

भूगर्भिक संरचना

राजथरी गांव में गोडवाना युग की चट्टानें पायी जाती हैं, जो कहीं–कहीं लाल बलुई मिट्टी के नीचे कुछ फीट की गहराइ में दबी हुई हैं, तो अनेक स्थानों पर ये चट्टानें धरातल पर प्रगट हो जातो हैं, गांव की धरातल अत्यधिक ऊंचा–नीचा हैं। पूरा गांव छोटे–छोटे टीलों एवं पहाडी नालों स भरा है। कुछ खेतों में तो इतने अधिक कि मिट्टी दिखाई हीं नहीं देतीं । गांव का धरातलीय ढ़ाल किसी एक निश्चित दिशा में नहीं है अतः छोटी–छोटी टीलेनुमा पहाड़ियों के बीच–बीच स्थित निम्न भूमि ही जल–प्रवाह का निर्धारण करती हैं। गांव की उत्तरी, पश्चिमी एवं दक्षिणी–पश्चिमी सरहद सांगोडो नाले से निर्धारित होती है। इसी प्रकार गांव की उत्तरी, पूर्वी सीमा भो एक छोटे में नाले से निर्धारित होती है।

जलवाय्

यहॉ की जलवायु साधरण उष्ण है। चारों ओर पहाड़ियों से घिरा होने के कारण राजथरी की जलवायु छिन्दवाड़ा जिले के मैदानी भागों की तुलना में ठण्डी है, तथा वर्ष के अधिकांश भाग में तापमान सुखद रहता ह। यहॉ अधिकांश वर्षा दक्षिण–पश्चिम मानसून से होती है। तामिया में वर्षा का औसत 182.4 से.मी. हैं।

वनस्पति

इस गांव की 12.1 प्रतिशत 79.651 हेक्टेयर भूमि वनाच्छादित है। जिसमें महुआ, हर्रा एवं बांस के वृक्षों की अधिकता है। खेतों, खलिहानों, खेतों की मेड़ों में भी लगाये गये वृक्ष काफी अधिक हैं, इसमें आम, इमली, जामुन आदि मुख्य है।

जनांकिकीय

राजथरी की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत क्रमशः 4.8 एवं 91.9 प्रतिशत है। अतः स्पष्ट कि यह गांव एक पूर्ण आदिवासी जनसंख्या प्रधान गांव है। यहॉ गोंड, लोहार, डेहरिया जाति के लोग बसे हैं।

ग्रामीण अधिवासों की कुछ विषेशतायें निम्न है–

1. ग्रामीण अधिवास में निवास करने वाले लोगा की जीविका का मुख्य आधार कृषि होती है, जिसका भूमि से सीधा संबंध होता है।
2. ग्रामीण अधिवास क मकान प्रायः छोटे तथा स्थानीय उपलब्ध सामग्रियों से निर्मित होते हैं।

3. ग्रामीण अधिवास के मकानों को दो खण्डों में बनाया जाता हैं– एक परिवार के सदस्यों के निवास के लिए तथा दूसरा पशुओं को बॉधने, चारा रखने तथा कषि के औजार आदि रखने के लिए होता है।
4. ग्रामीण अधिवासों का विकास क्षतिजोत्तर अधिक होता है लम्बवत कम।
5. ग्रामीण अधिवास प्रायः प्राकृतिक दृश्यों में स्थित होते हैं।

प्रस्तुत शोध अध्ययन राजथरी ग्राम कें गोंड आदिवासियों में आवासीय प्रतिरूप, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन एव उनके परिवारों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन का विषय वर्षो से पिछड़े आदिम जनजाति के आवासीय, जनांकिकीय व सामाजिक जीवन का वर्णनात्मक अध्ययन करना ही इस शोध प्रबंध का मुख्य उददश्य है।

अध्ययन के उद्देश्य

समस्याओं को केन्द्रित करते हुए शोध कार्य के लिए निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्माण किया गया है।

1. राजथरी गॉव में रहने वाली गोंड आदिवासी जनजाति क्षेत्र का ग्रामीण अधिवास एवं जनांकिकीय अध्ययन करना ।
2. राजथरी गॉव में रहने वाली गोंड आदिवासी जनजाति के पारंपरिक एवं परिवर्तनशील कृषि पद्धतियों का अध्ययन करना।
3. राजथरी गॉव में रहने वाली गोड आदिवासी जनजाति की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
4. अध्ययन क्षेत्र में का रोटी, कपड़ा और मकान के परिवर्तन का आंकलन करना एंव बाहरी संस्कृति के प्रभाव से इनके जीवन स्तर के परिवर्तन का अध्ययन करना ही मुख्य उद्देश्य है।

शोध प्रविधि

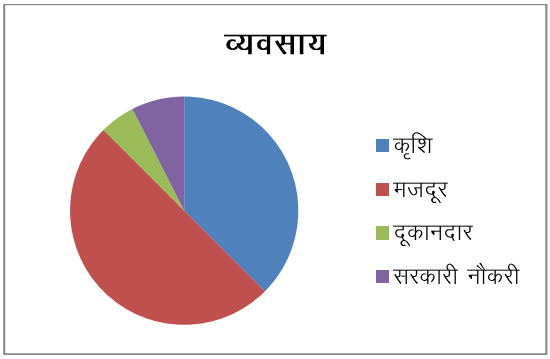
प्रस्तुत शोधपत्र में अध्ययन के उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु समंकों का संकलन प्राथमिक स्त्रोंतों से प्राप्त किये गए है। अवलोकन की सहायता से छिन्दवाड़ा जिले के तामिया विकासखण्ड के सर्वेक्षित ग्राम राजथरी के गोड़ आदिवासी परिवारों का चयन निदर्शन पद्धति का प्रयोग कर अध्ययन किया गया है। सर्वेक्षित ग्राम में निर्देशित प्रादर्शो की संख्या 40 परिवार है। उनकी आर्थिक स्थिति, अधिवासों, घरों के प्रकार, घरों में प्रयुक्त बर्तन, आधुनिक सज्जा सामग्री, व्यवसाय एवं परिवार के सदस्यों की संख्या आदि का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। धार्मिक आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एव राजनैतिक स्थिति आदि का अध्ययन इस शोध में किया गया है।

शोध विधितन्त्र

40 आदिवासी परिवारों के मुखिया उत्तरदाताओं से प्रश्न पूछकर उनके परिवार का स्वरुप आर्थिक स्थिति घरों के प्रकार, व्यवसाय एवं परिवार के सदस्यों की संख्या की जानकारी प्राप्त की गयी। इनका अवलोकन कर उन्हें सारणी, सांख्यिकी रुप से प्रदर्शित किया गया है। मानचित्र, ग्राफ, आरेखों द्वारा संबंधित क्षेत्र से विश्वसनीय समकों का प्रस्तुतीकरण व विश्लेषण किया गया है।

सारणी कमांकः– 1 राजथरी गॉव में रहने वाली निर्देशित गोंड जनजाति की व्यावसायिक संरचना

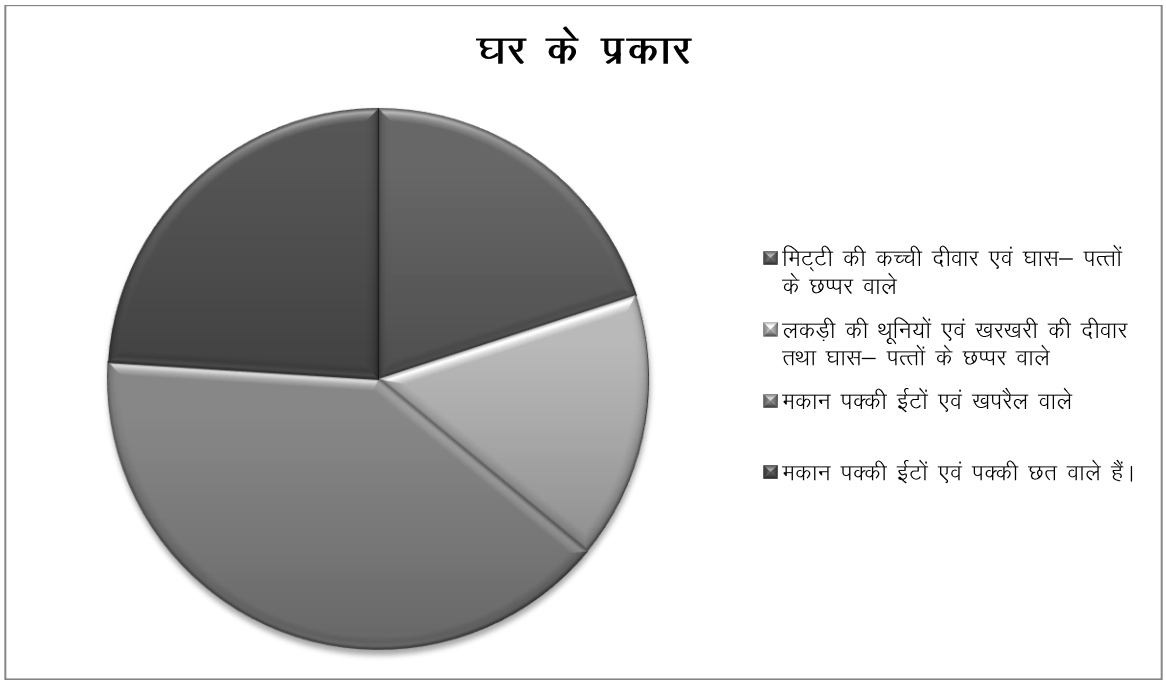
क्रमांक	व्यवसाय	आवृत्ति (n-40)	प्रतिशत (%)
1	कृषि	15	37.50
2	मजदूर	20	50.00
3	छ़कानदार	02	05.00
4	सरकारी नौकरी	03	07.50
	क़ल		100



सारणी क्रमांकः– 1 राजथरी गॉव में रहने वाली निर्देशित जनजाति की व्यावसायिक संरचना का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि 37.50 प्रतिशत व्यक्ति कृषि कार्य में संलग्न है, 50.00 प्रतिशत व्यक्ति कार्य मजदूरी करते है, 05.00 प्रतिशत व्यक्ति की स्वयं की दुकान (किराना की दुकान) है, 07.50 प्रतिशत व्यक्ति सरकारी नोकरी करते है।

सारणी कमांकः– 2 राजथरी गॉव में रहने वाली गोंड जनजाति के निर्देशित घरों के प्रकार

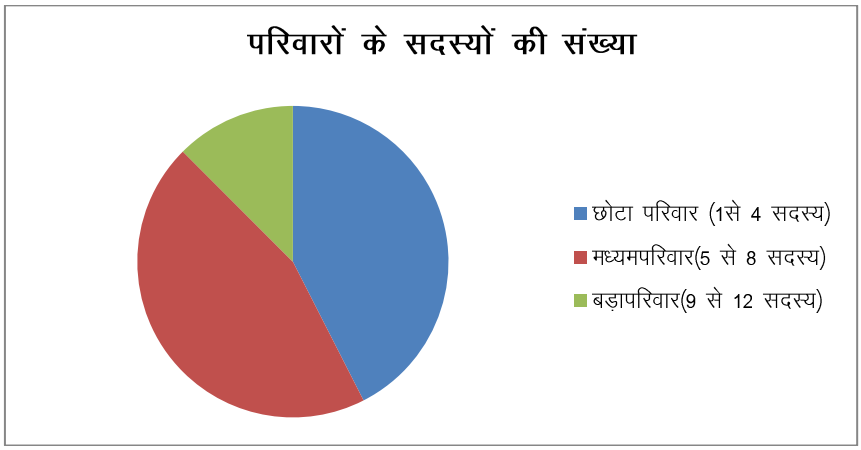
क्रमांक	घर के प्रकार	आवृत्ति (n-40)	पतिशत (%)
1.	मकान मिट्टी की कच्ची दीवार एवं खपरैल वाले	15	37.50
2.	मिट्टी की कच्ची दीवार एवं घास–पत्तों के छप्पर वाले	05	12.50
3.	लकड़ी की थूनियों एवं खरखरी की दीवार तथा घास–पत्तों के छप्पर वाले	04	10.00
4.	मकान पक्की ईटों एवं खपरैल वाले	10	25.00
5.	मकान पक्की ईटों एवं पक्की छत वाले	06	15.00
	कुल		100



सारणी कमांकः– 2 राजथरी गॉव में रहने वाली गोंड जनजाति के निर्देशित परिवारों के घरों के प्रकार का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि 37.50 प्रतिशत मिट्टी की कच्ची दीवार एवं खपरैल वाले मकान है, 12.50 प्रतिशत मिट्टी की कच्ची दीवार एवं घास–पत्तों के छप्पर वाले मकान है, 10.00 प्रतिशत लकड़ी की थूनियों एवं खरखरी की दीवार तथा घास–पत्तों के छप्पर वाले मकान है, 25.00 प्रतिशत मकान पक्की ईटों एवं खपरैल वाले है, 15.00 प्रतिशत मकान पक्की ईटों एवं पक्की छत वाले हैं।

सारणी कमांक – 3 : राजथरी गॉव में रहने वाली गोंड जनजाति के निर्देशित परिवारों के सदस्यों की संख्या

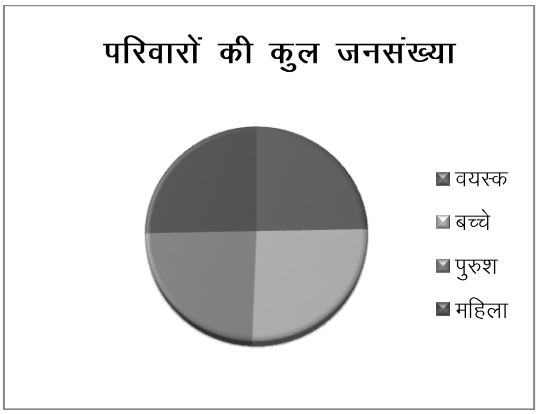
क्रमांक	परिवारों के सदस्यों की संख्या	आवृत्ति (n-40)	प्रतिशत (%)
1.	छोटा परिवार (1 से 4 सदस्य)	17	42.50
2.	मध्यम परिवार (5 से 8 सदस्य)	18	45.00
3.	बडा परिवार (9 से 12 सदस्य)	05	12.50
	क्ल	40	100



सारणी कमांक – 3 : राजथरी गॉव में रहने वाली गोंड जनजाति के निर्दे" ात परिवारों के सदस्यों की संख्या का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि 45.00 प्रति" ात परिवार मध्यम परिवार के अर्न्तगत आते है जिनके परिवारों के सदस्यों की संख्या 5 से 8 व्यक्ति प्रति परिवार है, 42.50 प्रति" ात परिवार छोटा परिवार के अर्न्तगत आते है जिनके परिवारों के सदस्यों की संख्या 1 से 4 व्यक्ति प्रति परिवार है तथा 12.50 प्रति" ात परिवार बड़ा परिवार के अर्न्तगत आते है जिनके परिवारों के सदस्यों की संख्या 9 से 12 व्यक्ति प्रति परिवार है।

सारणी कमांक – 4 : राजथरी गॉव मं रहने वाली गोंड जनजाति के निर्देशित वयस्क, महिला, पुरुष, बच्चों की संख्या

क्रमांक	परिवारों की कुल जनसंख्या	आवृत्ति (n-172)	प्रतिशत (%)
1	40 परिवारों की कुल संख्या	172	100.00
2	वयस्क	25	14.05
3	बच्चे	30	17.44
4	पुरुष	75	43.63
5	महिला	42	24.41



सारणी कमांक – 4 : राजथरी गॉव में रहने वाली गोड जनजाति के निर्देशित वयस्क, महिला, पुरुष, बच्चों की जनसंख्या का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि निर्देषित 40 परिवारों की कुल संख्या 172 व्यक्ति हैं, जिसमें 14.05 प्रतिशत व्यस्क है, 43.63 प्रतिशत पुरुष, 24.41 प्रतिशत महिला तथा 17.44 प्रतिशत बच्चे है।

सारणी कमांक –5 : राजथरी गॉव में रहने वाली निर्देशित गोंड जनजाति के कार्यशील व्यक्ति (पुरुष, महिला)

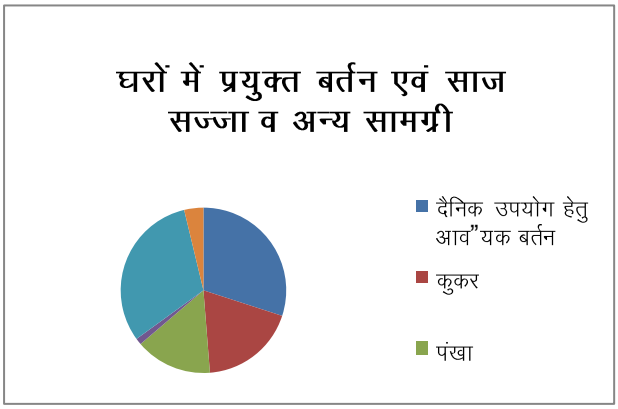
क्रमांक	कार्यरत् जनसंख्या	आवृत्ति	प्रतिशत
1	कार्यरत् पुरुष	75	100
2	कार्यरत महिला	11	26.19

सारणी कमांक – 5 : राजथरी गॉव में रहने वाली निर्देशित गोंड जनजाति के कार्यशील व्यक्ति (पुरुष, महिला) का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि निर्देशित 40 परिवारों की कुल संख्या 172 व्यक्ति में सभी पुरुष 100 प्रतिशत कार्यशील है व उन पर परिवार के भरण–पोषण की जिम्मेदारी है तथा कार्यरत महिला का प्रतिशत 26.19 है। सभी महिला घरों के कार्य व बच्चों को संभालती है तथा खेतों में मजदूरी भी करती है ।

सारणी कमांक –6 : राजथरी गॉव में रहने वाली निर्देशित गोंड जनजाति के परिवार के घरों में प्रयुक्त बर्तन एवं साज सज्जा व अन्य सामग्री

क्रमांक	घरों में प्रयुक्त बर्तन एवं साज सज्जा व अन्य सामग्री	आवृत्ति (n-40)	प्रतिशत (%)
1.	दैनिक उपयोग हेतु आवश्यक बर्तन	40	100.00
2.	क्कर	24	60.00

3.	पंखा	15	37.50
4.	सोफा	12	30.00
5.	गोबरगैस	01	02.50
6.	सायकिल	25	62.50
7.	मोटर सायकिल	03	07.50



सारणी कमांक –6 : राजथरी गॉव में रहने वाली निर्देशित गोंड जनजाति के घरों में प्रयुक्त बर्तन एवं साज सज्जा व अन्य सामग्री का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि निर्देशित 40 परिवारों घरों में 100 प्रतिशत दैनिक उपयोग हेतु आवश्यक बर्तन उपलब्ध है, 60 प्रतिशत के घरों में कुकर है, 30.00 प्रतिशत के घरों में सोफा है, 37.50 प्रतिशत के घरों में पंखा है, 02.50 प्रतिशत के घरों में गोबरगैस प्लान्ट है, 62.50 प्रतिशत के घरों में सायकिल है तथा 07.50 प्रतिशत के घरों में मोटर सायकिल है।

निष्कर्ष

रोजगार की कमी के कारण राजथरी गॉव में रहने वाली गोंड जनजाति के लोग में 50.00 प्रतिशत व्यक्ति मजदूरी एंव, 37.5 प्रतिशत व्यक्ति कृषि कार्य पर निर्भर है। 07.50 प्रतिशत व्यक्ति सरकारी नौकरी करते है। 37.5 प्रतिशत व्यक्ति मिट्टी की कच्ची दीवार एवं खपरैल वाले स्वयं के कच्चे घर में रहते है। एवं 15.00 प्रतिशत मकान पक्की ईटों एवं पक्की छत वाले हैं। राजथरी गॉव में रहने वाली गोंड जनजाति के निर्देशित परिवार 45.00 प्रतिशत परिवार मध्यम परिवार के अर्न्तगत आते है जिनके परिवारों के सदस्यों की संख्या 5 से 8 व्यक्ति प्रति परिवार है। राजथरी गॉव में रहने वाली गोंड जनजाति में 24.41 प्रतिशत महिलाएँ है, अर्थात् आकड़ें स्पष्ट रुप से दर्शाते ह कि अनुसूचित जनजाति का लिंगानुपात कम है। तथा यहॉ 17.44 प्रतिशत बच्चे है। सभी 100 प्रतिशत पुरुष कार्यशील है व उन पर परिवार के भरण–पोषण की जिम्मेदारी है कृषि, मजदूरी, किराना दुकान, सरकारी नौकरी कर परिवार भरण–पोषण करतें है तथा महिला घरों के कार्य व बच्चों को संभालती है अर्थात् कार्यरत महिला का

प्रतिशत 26.19 है। गोड़ स्त्रियां अपने काम के प्रति सजग और मेहनती होती है। घर बनाने से लेकर घर के रख–रखाव तक की जिम्मेदारी स्त्रियां बखूबी निभाती है। महिलाये अभी तक कृषि और वनोपज के कार्यो में स्वंतत्रतापूर्वक हिस्सा लेती है। सरकारी मदद से 02.50 प्रतिशत घरों में गोबरगैस प्लान्ट है, यातायात के साधन के रुप में 62.50 प्रतिशत के घरों में सायकिल है तथा 07.50 प्रति" ात के घरों में मोटर सायकिल है।

अतः निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि आदिवासियों के सामाजिक विकास के लिये उन्हे सामाजिक कुरीतियों के प्रति और अधिक जाग्रत किया जाये, राजनीतिक जागरूकता पैदा की जाये तथा आर्थिक विकास किया जाये शायद तभी आदिवासियों का विकास संभव हो सकेगा। भारतीय जनजातीय वन्य क्षेत्र में साक्षरता, नगरीकरण आदि सुविधाओं से कोसों दूर है। इनकी स्वास्थ्य संबंधी गातिविधियां उनको परंपराओं मान्यताओं और विश्वासों पर आधारित होती है। निष्कर्षतः यह कह सकते है वन्य क्षेत्र में आदिवासियों के विकास की दर धीमी है। आदिवासी अपनी भौतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक उन्नति के लिए पर्यावरण के घटकों पर आश्रित है। कृषि ही जीविका का मुख्य साधन है। यह आदिवासी समुदाय आज भी अपने विकास हेतु संघर्षरत् है। यहॉ की कुल प्रतिदर्श जनसंख्या 57.55 प्रतिशत भाग क्रियाशील है। कार्यशील जनसंख्या 37.50 प्रतिशत कृषि व्यवसाय में संलग्न है। यहॉ कृषि व्यवसाय की स्थिति यहॉ की प्राकृतिक दशाओं के कारण लाभप्रद नहीं है, सिर्फ जीविकोपार्जन का एक आधार है। कार्यशील जनसंख्या 50.00 प्रतिशत कृषि मजदूर हैं। इससे स्पष्ट होता हैं, कि यहॉ के लोग भूमि स्वामी हैं, जो अपने ही खेतों पर कृषि कार्य करते हैं। पारिवारिक उद्योग एवं अन्य व्यवसाय में संलग्न लोग का प्रतिशत बहुत ही कम हैं

सुझाव

सरकार और स्वयसेवी संगठनों की यह प्राथमिक एंव नैतिक जिम्मेदारी है कि वे आदिवासी गोड जनजाति को सामाजिक–आर्थिक उन्नति कर राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा से उन्हे संलग्न करने का प्रयास करे। सरकार ने विकास की धारा को जोड़ने के लिये अनेक कार्यक्रमों का संचालन करें जिसके माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, जीवन के अन्य आयामों को प्रभावित किया जा सकें। यह आदिवासी समुदाय आज भी अपने विकास हेतु संघर्षरत् है। आदिवासी परिवेश स्वाबलम्बी होता है एवं प्रकृति पर पूर्णतः निर्भर होता है। सरकार आदिवासियों के विकास हेतु अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन करती आ रही है, फिर भी आदिवासी समुदाय अन्य श्रेष्ठ समुदायों की पंक्ति में नहीं पहुच पाया है। आदिवासी समाज को वर्तमान युग के कदम से कदम मिला पाने के प्रयास स्वतंत्रता के पूर्व से ही जारी है और यही आदिवासी समाज थोड़ा ही विकास की मुख्य धारा से जुड़ पाया है।

संदर्भ ग्रंथ

अवस्थी.विनादचंद (1962): नटवारा ग्राम क आदिवासियों में सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन जिला सांख्यिकी पुस्तिका, जिला छिन्दवाड़ा, (2001) एवं (2011)

जोशी. वाय. जी., (1972): नर्मदा बेसिन का कृशि भूगोल, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल,

कुमार, प्रमिला, (1977): मध्यप्रदेश : एक भौगोलिक अध्ययन, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल,

शुक्ला. भगवत प्रसाद (1937): ''छिन्दवाड़ा छवि'' दिसम्बर .

शर्मा, एच. एल. (1989): ''बैतूल–'छिन्दवाड़ा पठार में जनसंख्या की संरचनात्मक विशेषतायें, ग्लोब, दिसम्बर

तिवारी डॉ. एस. सी., (1994): ''मघ्यप्रदेश के आदिवासी'' मध्यप्रदेश के प्रमुख आदिवासियों के संबंध में अध्ययन, जबलपुर (म.प्र)

वर्मा. रवि. ''ज्वाला'', (1983): ''छिन्दवाड़ा का बोलता अतीत'' ''अनामिका''

वांशिगटन, एस., (2009) :''ह्यूमन एक्टीविटीज एण्ड इट्स इम्पैक्ट ऑन इनवारोनमेन्ट डिग्रेडेशन छिन्दवाड़ा डिस्ट्रिक्ट, मध्यप्रदेश, (1951–2001)'', अप्रकाशित शोध प्रबंध, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

————————

नरसिंहपुर जिले के आदिवासी क्षेत्रों में कृषि व उद्योगों के बीच सहसम्बंध

डॉ. अधिकेश राय
प्राध्यापक, वाणिज्य
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
नरसिंहपुर (म.प्र.)

''सतपुड़ा और विन्ध्य की वादियों का नूर है, है दमकता उस धरा का नाम नरसिंहपुर।
भूमि जहाँ कलमेटा की उर्वरा से भरपूर है, है जहाँ नरसिंह मंदिर के नाम से प्रसिद्ध नरसिंहपुर है।।''

(नरसिंहपुर गान)

पुण्य सलिला माँ नर्मदा के तट पर 5133 वर्ग किलोमीटर में फैला नरसिंहपुर जिला प्रदेश का पूर्ण साक्षर जिला है, यहाँ के संदर्भ में एक कहावत प्रचलित है ''पढ़ा लिखा न होई, पर नरसिंहपुरिया होई''। नरसिंहपुर तीन शब्दों से बना है नर+सिंह+पुर ''नर'' का अर्थ है आदमी, ''सिंह'' का अर्थ शेर और ''पुर'' का अर्थ है वासी (रहने वाला) अर्थात् जहाँ के रहने वाले शेर क समान ओज से ओत–प्रोत हैं वह है नरसिंहपुर। नरसिंहपुर जिला एक कृषि प्रधान जिला है जो एशिया महाद्वीप में कृषि के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखता है यहाँ की भूमि ''कलमेटा हार'' एशिया महाद्वोप में सर्वाधिक उपज के लिए विश्वविख्यात है। जिले में एशिया महाद्वोप में सबसे ज्यादा सिंचाई (बूंदा प्रणाली) स्प्रिंकलर द्वारा होती है, यहाँ की तुअर दाल का स्वाद दुनिया में कही नहीं मिलेगा। जिले की रीढ़ कृषि है। परिणामस्वरूप यहाँ पर कृषि उत्पादन अधिक होता है, इस संबंध में एक कहावत है– ''अल्ला, अल्ला भर दे गल्ला, खायेगें बच्च, करेंगे हल्ला।''

नरसिंहपुर जिले का जन्म 1 नवम्बर 1956 को हुआ। सन् 1825 में अंग्रेज शासकों ने इसे जिला बनाया परन्तु कुछ वर्ष बाद इसे होशंगाबाद जिले में शामिल कर दिया गया। 1843 में यह जिला पुनः अस्तित्व में आया व 1951 तक जिला बना रहा। 1952 में पुनः होशंगाबाद में शामिल कर दिया गया। 31 अक्टूबर 1956 तक होशंगाबाद जिले का हिस्सा रहा। नरसिंहपुर जिला मध्यप्रदेश के मध्य भाग में स्थित है, नर्मदा नदी जिले की उत्तरी सीमा का निर्धारण करती है, जिले की भौगोलिक स्थिति 22^0 45′ उत्तर और 23^0 15′ उत्तर अक्षांश तथा 78^0 38′ पूर्व 79^0 38′ पूर्वी देशांश के मध्य स्थित है, यह पूर्व से पश्चिम 122 किलोमीटर लम्बा तथा 64 किलोमीटर चौड़ा है, जिसकी समुद्र तल से ऊँचाई 380 मीटर है। जिले की जनसंख्या वर्ष 1911 की जनगणना जनसंख्या 325677 थी। वर्ष 2011 की जनगणना में 1092141 रही इन 100 वर्षों में जिले की जनसंख्या में 253.54 प्रतिशत की वृद्धि हुई।[1]

जिले की कुल कृषि योग्य भूमि 304909 हेक्टेयर, वनक्षेत्र 1,36,207 हेक्टेयर, एवं पड़त भूमि 2902 हेक्टेयर है। मध्यप्रदेश में सर्वाधिक गन्ना नरसिंहपुर जिले में होता है। वर्तमान में 65 हजार

हेक्टेयर में गन्ना की फसल लगाई गई है। नरसिंहपुर जिले में सिंचाई का सबसे प्राचीन साधन कुआँ है। वर्ष 2013–14 में सिंचाई के साधन के रूप में जिले में नहरों की संख्या 3709, कुंओं की संख्या 44807, नलकूपों की संख्या 1,98,774 रही व तालाबों की संख्या 06 है। जिले में नलकूपों व कुंओं के द्वारा सिंचाई सर्वाधिक होती है। वर्ष 2003–04 में समस्त साधनों के द्वारा सिंचित क्षेत्र 171701 हेक्टेयर भूमि था जो वर्ष 2013–14 में बढ़कर 254829 हेक्टेयर हो गया। वर्ष 1870–71 में जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्र 4,96,278 हेक्टेयर था, जिसकी कृषि योग्य भूमि 97333 थी। वर्ष 1948–49 में जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्र बढ़कर 512149 हेक्टेयर हो गया जिसकी कृषि योग्य भूमि 3027.33 वर्ग कि.मी. थी। वर्ष 2003–04 में जिले में गेहूँ की उपज 60045 क्विंटल थी, जो वर्ष 2013–14 में 92030 क्विंटल हो गयी। वर्ष 2003–04 में धान की उपज 230 क्विंटल थी जो वर्ष 2013–14 में 10019 क्विंटल हो गयी।

प्रस्तावना

''उत्तम खेती, मध्यम वान, निखद चाकरी, भीख निदान'' कहावत नरसिंहपुर जिले के आदिवासियों पर सही चरितार्थ होती है। ये मूलरूप से आज भी कृषि से जुड़े हुए हैं व कृषि आधारित उद्योगों को संचालित कर गांधी जी के ग्राम विकास की परिकल्पना ''भारत की आत्मा, भारत के गाँवों में निवास करती है, यदि हमें भारत की उन्नति करना है तो गांवों में लघु कुटीर उद्योगों का विकास करना होगा'', को साकार करने में लगे हैं। कृषि भारतीय जनमानस की माता के समान पालन, भाई के समान शक्तिमान व पिता के समान सुदृढ़ करती है। कृषि भारत के लिए एक धर्मयुद्ध है, जहाँ एक ओर लोगों का जीवन यापन होता है वहीं दूसरी ओर उद्योग संचालित होते हैं, जिससे रोजगार मिलता है। भारत की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है, जो हमारे संस्कारों में रची–बसी है, तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को विकसित करती है।

देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है। अतः यहाँ पर कृषि की उपेक्षा करना आत्महत्या के समान है। कृषि ही सम्पूर्ण विकास की जननी है। जो देश की 100 प्रतिशत जनसंख्या का भरण–पोषण करती है। कृषि ही एक मात्र ऐसा स्रोत है, जो देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या को रोजगार उपलब्ध कराती है एवं समस्त औद्योगिक केन्द्रों को उत्पादन के रूप में कच्ची सामग्री प्रदान कर उद्योगों के अस्तित्व को संरक्षित करती है। यदि भारत को विकास करना है तो कृषि विकास पर ध्यान देना होगा।

भारत के विकास में कृषि व उद्योग ने अपनी अहम् भूमिका निभाई है, कृषिगत उत्पादन का मुख्य उद्देश्य लाभ व सेवा होता है, जो उद्योग की उत्पादन प्रक्रिया को विकास की मुख्य धारा से जोड़ता है। कृषि व उद्योग प्रणाली को विकसित करने में वित्तीय संस्थाओं की अहम् भूमिका होती है, जो देश की कृषि विकास एवं उद्योग व्यवस्था को दीर्घकालीन, मध्यकालीन एवं अल्पकालीन ऋण की व्यवस्था करती है। समस्त वित्तीय सहायता से कृषि अथवा सहायक उद्योगों को प्रोत्साहन प्राप्त होता है, क्योंकि जब कृषक आर्थिक रूप से सम्पन्न होगा तभी देश की सम्पन्नता निश्चित होती है, जो हमारी

अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए आवश्यक है। कृषि विकास दर में वृद्धि देश के आर्थिक विकास को तय करती है।

उद्योग हमारी सक्रियता, अनवरत अथक प्रयास का द्योतक है, आज भारतीय अर्थव्यवस्था का अस्तित्व उद्योग धंधों के अभाव में एकदा जीवित रह सकता है, किन्तु कृषि के अभाव में अर्थव्यवस्था निष्प्राण हो जावेगी। कृषि व उद्योग से सम्बंधित वर्तमान नीति एवं उसके क्रियान्वयन के जो परिणाम सामने आ रहे हैं, उससे छोटे किसानों के लिए कृषि अलाभकारी होती जा रही है, साथ ही कृषि की लागत इतनी बढ़ती जा रही है कि उत्पादन का बढ़ा भाग किसानों के हाथ से निकलकर दूसरों के जेब में जा रहा है।

अतः अपने प्रयासों से कृषि एवं उद्योग इस नीति को कृषकों के प्रत्येक वर्ग को लाभ से जोड़ने का प्रयास शोध पत्र के माध्यम से किया जा रहा है। साथ ही उद्योग विकास के माध्यम से नवीन तकनीकी के साथ रोजगार से जोड़ने का प्रयास किया जावेगा, जो भारत को नवीन आर्थिक नीति से जोड़ने का प्रयास है।

शोध विषय का चयन

आदिवासी हमारी अर्थव्यवस्था के आधार स्तम्भ हैं, वे हमारी संस्कृति के मूल रूप हैं, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शासन द्वारा आदिवासिया के विकास हेतु अनेक योजनायें चलाई गईं ताकि वे विकास से जुड़ सके व आत्मनिर्भर बन सके। इन योजनाओं के वो अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए जो होना चाहिए थे। ये भूमिपुत्र भूमि को माता मानते हैं अतः ये कृषि से जुड़े हुए हैं व पहाड़ों व बंजर भ्मि में जुताई करते मिल जावेंगे अतः मैंने कृषि व उद्योगों के माध्यम से आदिवासी विकास पर शोध पत्र लिखने का प्रयास किया।

समंकों का संग्रहण

यह अध्ययन प्राथमिक समंकों पर आधारित है। मैंन नरसिंहपुर जिले की पॉच तहसीलों के 25 गाँव के 100 आदिवासियों के साक्षात्कार लिये। प्रश्नावली में पूछे गये प्रश्नों का वर्गीकरण कर विश्लेषण किया व निष्कर्ष निकाले। गांवों का चयन रेण्डम विधि द्वारा किया गया।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र निम्न उद्देश्यो को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है :–

1. नरसिंहपुर जिले के आदिवासियों में कृषि और उद्योगों का क्या प्रभाव पड़ा है ?
2. नरसिंहपुर जिले के आदिवासियों में कृषि और उद्यागों से आर्थिक और सामाजिक स्तर पर आये सामाजिक बदलाव का अध्ययन।
3. आदिवासियों द्वारा की जा रही कृषि व कृषि आधारित उद्योगो ंका मूल्यांकन व अध्ययन।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में सांख्यिकी की समान्तर माध्य व कृषि व उद्योगों के बीच सहसम्बंध देखने हेतु कार्लपियर्सन के सहसम्बंध के सूत्र $r = \frac{\sum dxdy}{\sqrt{\sum dx^2 \times \sum dy^2}}$ का प्रयोग किया गया है। परिकल्पना परीक्षण टी टेस्ट द्वारा किया गया है। इस हेतु $\overline{X} \pm \frac{s}{\sqrt{n}} \times t_{.05}$ का प्रयोग किया गया है। परिकल्पना सिद्ध करने हेतु $H_0 : \overline{X} - \mu_0 = O,\ Ha : \overline{X} - \mu_0 \neq O$ का प्रयोग किया गया है।

शोध परिकल्पना

प्रस्तुत शोध पत्र में निम्न परिकल्पनाओं के परीक्षण का प्रयास किया गया है।

1. नरसिंहपुर जिले के आदिवासियों में कृषि और उद्योगों की आय से उनके जीवन स्तर में परिवर्तन हुआ है ?
2. आदिवासियों में कृषि व उद्योगों की आय से आय परिवर्तनों के प्रभाव एवं उन पर पड़ने वाले प्रभाव को देखना।

कृषकों की औसत आय एवं उनके जीवन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

कृषकों की औसत आय तथा जीवन स्तर का मापदण्ड आय के अनुरूप घटता–बढ़ता है, जो

वर्ष	X कृषकों की औसत आय (%में)	dx $X-\bar{X}$ (94)	dx^2	Y जीवन स्तर प्रतिशत में	dy $y-\bar{y}$ (47)	dy^2	$dxdy$
2001	40	-54	2916	20	-27	729	1458
2002	40	-54	2916	20	-27	729	1458
2003	50	-44	1936	25	-22	484	968
2004	50	-44	1936	25	-22	484	968
2005	60	-34	1156	30	-17	289	578
2006	70	-24	576	35	-12	144	280
2007	80	-14	196	40	-7	49	98
2008	80	-14	196	40	-7	49	98
2009	100	6	36	50	3	9	18
2010	100	6	36	50	3	9	18
2011	120	26	676	60	13	169	338
2012	120	26	676	60	13	169	338
2013	150	56	3136	75	28	784	1568
2014	150	56	3136	75	28	784	1568
2015	200	106	11236	100	53	2809	5618
N =15	1410	-	dx^2 = 30760	705	-	dy^2 = 7690	$dxdy$ = 15372

स्रोत –समस्त कृषिगत आँकड़े प्रश्नावली पद्धति द्वारा।

समस्त कृषि की उपज व विक्रय की व्यवस्था द्वारा जीवन स्तर में सुधार की सम्भावनायें निर्मित होती हैं, जो विकास व अर्थव्यवस्था में सुधार की स्थिति प्रदर्शित करती है।**कृषकों की औसत आय व जीवन स्तर का विश्लेषण**

$$\bar{X} = \frac{\sum X}{N} \qquad \bar{X} = \frac{1410}{15} = 94$$

$$\bar{Y} = \frac{\sum Y}{N}$$

$$\bar{Y} = \frac{705}{15} = 47$$

$$r = \frac{\sum dxdy}{\sqrt{\sum dx^2 \times \sum dy^2}} \qquad r = \frac{15372}{\sqrt{30760 \times 7690}}$$

$$r = \frac{15372}{175.38 \times 87.69} \qquad r = \frac{15372}{15379.07}$$

$$r = 0.99$$

कृषकों की औसत आय का विश्लेषण

वर्ष	X कृषकों की औसत आय (प्रतिशत में)	dx X-X **(103)**	dx^2
2005	60	-43	1849
2006	70	-33	1089
2007	80	-23	529
2008	80	-23	529
2009	100	-3	9
2010	100	-3	9
2011	120	17	289
2012	120	17	289
2013	150	47	2209
2014	150	47	2209
N =10	**1030**		dx^2 **= 9010**

यहाँ पर कृषक की औसत आय को $\overline{X}$ तथा जीवन स्तर को $\overline{Y}$ माना गया है। कृषक की आय $\overline{X}$ बढ़ने पर जीवन स्तर $\overline{Y}$ में क्या प्रभाव पड़ता है इसे कार्लपियर्सन के सहसम्बंध द्वारा बताया गया है।

उपरोक्त तालिका में कृषकों की औसत आय को X माना गया है, तथा जीवन स्तर को y से प्रदर्शित किया गया है। कृषकों की औसत आय तथा उनके जीवन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन सहसम्बंध विश्लेषण द्वारा प्रदर्शित किया गया है। सहसम्बंध विश्लेषण का परिणाम 0.99 प्रदर्शित हो रहा है, जो एक उच्च स्तरीय परिणाम होता है। यह उच्च स्तरीय धनात्मक परिणाम समस्त क्षेत्र की विकास स्थिति का प्रदर्शन करता है, तथा जीवन स्तर में सुधार की अपार सम्भावनायें निर्मित करता है, जो विकास दर के साथ अर्थव्यवस्था में भी सुधार को प्रदर्शित करती है यह समस्त विकास की दर द्वारा सम्पूर्ण क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में वृद्धि दर्ज होती है।

कृषि ही समस्त गतिविधियों को सफलता की ओर अग्रसर करती है, तथा सम्पूर्ण विकास की दशाओं को निर्धारित करती है जो आधारभूत कृषि ढाँचे को विकसित करता है। यह सम्पूर्ण ढाँचा समस्त व्यक्तिगत काया की कार्यक्षमता में वृद्धि कर क्षेत्रीय विकास को बढ़ाती है, तथा समस्त रोजगार के स्तरों को बढ़ाती है। रोजगार प्राप्ति द्वारा समस्त प्रकार से जीवन स्तर में सुधार की स्थिति निर्मित होती है। कृषि व उद्योग के मध्य सम्बंधो का विकास पर प्रभाव पड़ता है।

परीक्षण की विधि – T Test द्वारा परीक्षण :– T Test विधि द्वारा कृषि विकास के पश्चात् कृषक क जीवन स्तर में आये परिवर्तनों का अवलोकन तथा उसका मूल्यांकन करना।

t बटन में 95 प्रतिशत विश्वास सीमायें –

99 प्रतिशत विश्वास सीमायें – $\overline{X} \pm \frac{s}{\sqrt{n}} \times t_{.05}$

t- test में समान्तर माध्य तथा प्रमाप विचलन के द्वारा क्षेत्रीय कृषि की लाभदायकता के अनुसार कृषक के जीवन स्तर का अवलोकन व परीक्षण निम्नलिखित है।

जहाँ – $H_0 : \overline{X} - \mu_0 = O,\ Ha : \overline{X} - \mu_0 \neq O$

प्रतिदर्श समान्तर माध्य –

$$\overline{X} = \frac{\sum X}{N} = \frac{1030}{10} = 103 \quad \mu = 94$$

समष्टि–प्रमाप विचन का आंकलन –

$$S = \sqrt{\frac{\sum (x - x)^2}{n - 1}}$$

$$S = \sqrt{\frac{9010}{10-1}} \qquad S = \sqrt{1001.11} \qquad S = 31.64$$

t का क्रान्तिक मान – $r = 9,\ t_{.05} = 2.265$

परीक्षण प्रतिदर्शन – t

$$t = \frac{\left|\overline{X} - \mu\right|}{s} \times \sqrt{n}$$

$$t = \frac{|103-94|}{31.64} \times \sqrt{10} \qquad t = \frac{9}{31.64} \times \sqrt{10} \qquad t = 0.8844 \times 3.162 \qquad t = 0.899$$

निष्कर्ष

t का परिगणित मूल्य 0.899 है। 5 प्रतिशत स्तर पर 10–1 = 9 स्वातन्त्र्यांश के लिए मूल्य 2. 265 से अधिक है। अंतर अर्थ सहित प्रदर्शित हो रहा है, जो कृषकों के जीवन स्तर में आये परिवर्तनों के लिए निःसार्थक सिद्ध होता है, **शून्य परिकल्पना में यह परिकल्पना सत्य है। अतः परीकल्पना सही सिद्ध हुई।** परीक्षण का सिद्धाँत परिवर्तनों के अवलोकन तथा प्रस्तुत गणना के आधार पर सिद्ध होती है, जो सार्थक है। अतः इसमें टी–टेस्ट परीक्षण की परिकल्पना सही है।

संदर्भ

1. श्रीवास्तव, प्रेमनारायण, नरसिंहपुर जिले का गजेटियर
2. प्राथमिक समंकों के अवलोकन द्वारा.
3. प्राथमिक समंकों पर आधारित.
4. उच्च सांख्यिकी विश्लेषण, आगरा पब्लिकेशन, वर्ष 2012, पृ. 306.
5. प्राथमिक समंकों पर आधारित.
6. जिला सांख्यिकी कार्यालय, नरसिंहपुर द्वारा प्राप्त जानकारी।

————————

मध्यप्रदेश में अनुसूचित जनजाति वर्ग के शैक्षणिक विकास हेतु शासकीय योजनाओं का मूल्यांकन

डॉ. अशोक कुमार बारसिया
सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य)
श्री–श्री ल.ना.शासकीय पेंचव्हेली स्नातकोत्तर
महाविद्यालय परासिया, जिला छिन्दवाड़ा

जनजाति समुदाय का मानव इस आधुनिक समाज में अपने पिछड़ेपन के कारण 'आदिमानव' के रूप में जाना जाता है, अत्यधिक प्रगतिशील समाज के सापेक्ष सामाजार्थिक रूप से स्थिर इस समाज को अपनी विशेषताओं के अनुरूप प्राक्साक्षर एवं प्राक्औद्योगिक भी कहा जाता है।

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार ''जनजाति कई परिवारों या परिवार समूह का ऐसा समुदाय है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जो एक सामान्य बोली बोलता है, जो एक सामान्य भू–भाग पर रहने का दावा करता है और जो हमेशा अन्तर्विवाह नहीं करता, चाहे प्रारंभ में करता रहा हो''।

मध्यप्रदेश में अनुसूचित जनजाति वर्ग की जनसंख्या 1,53,16,784 है जो प्रदेश की कुल आबादी का 21.1 प्रतिशत है। भारत सरकार द्वारा प्रदेश में बैगा, भारिया एवं सहारिया जनजाति को विशेष पिछड़ी जनजाति समूह के रूप में मान्यता दी गई है। इस जनजातियों के विकास हेतु प्रदेश में 03 प्राधिकरण तथा 11 अभिकरण कार्यरत है। एकीकृत आदिवासी विकास परियोजनाओं के अंतर्गत 26 वृहद परियोजनाएँ 5 मध्यम परियोजनाएँ, 30 माडा पॉकेट्स एवं 6 लघु अंचल कार्यरत है। प्रदेश में कुल 89 अनुसूचित जनजाति विकास खण्ड है।

प्रस्तुत शोध पत्र में अनुसचित जनजाति विकास हेतु सरकार द्वारा चलाया जा रही विभिन्न शैक्षणिक योजनाएँ एवं सरकारी कल्याण कार्यक्रम पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। सरकारी व्यय से अनुसूचित जनजाति संवर्ग को होने वाले वास्तवितक लाभों के आकलन का प्रयास किया गया है। अनुसूचित जनजाति समूह के कल्याण हेतु कतिपय सुझाव व निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये है। शोध पत्र में प्रस्तुत समंकों हेतु शासकीय प्रकाशनों, पुस्तकों, समाचार पत्रों व बेवसाइट का प्रयोग कर वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयास किया गया है।

अनुसूचित जनजाति वर्ग के सर्वागीण विकास हेतु आयुक्त आदिवासी विकास के माध्यम से विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रम चलाये जा रहे है। कतिपय शासकीय योजनाएँ निम्नानुसार है –

म.प्र. में आदिवासी विकास विभाग द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थाओं को तालिका 1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

तालिका क्रमांक – 01

आदिवासी विकास विभाग द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थान

संस्था का प्रकार	संख्या
प्राथमिक शाला	12643
माध्यमिक शालाएँ	4369
हाई स्कूल	799
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	752
आदर्श उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	08
कन्या शिक्षा परिसर	62
एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय	29
न्यून साक्षरता वाले कन्या शिक्षा परिसर	13
विशेष पिछड़ी जनजाति आवासी विद्यालय	03
क्रीड़ा परिसर	23
प्री–मैट्रिक छात्रावास	1348
पोस्ट–मैट्रिक छात्रावास	130
आश्रम शालाएं	1046
आदीवासी पुनध्ययन प्रशिक्षण केन्द्र	01

प्रदेश में वर्ष 2015–16 में प्राथमिक शालााओं में 27761.56 लाख रूपये, माध्यमिक शालाओं में 15471.78 लाख रूपये, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 14209.16 लाख रूपये व्यय किये गये है। कन्या साक्षरता योजनान्तर्गत वर्ष 2014–15 में कक्षा 11वीं में अध्ययनरत 31.57 हजार छात्राओं को लाभान्वित किया गया है।

राज्य छात्रवृत्ति– राज्य छात्र वृत्ति कक्षा 1 से 5 तक की समस्त बालिकाओं तथा विशेष पिछड़ी जनजाति के बालकों को एवं कक्षा 6 से 10 तक के बालक एवं बालिकाओं को 10 माह हेतु निम्नलिखित दर से छात्रवृत्ति प्रदान की जा रही है –

कक्षा	**बालक**	**बालिका**
	रूपये	**रूपये**
1 से 5 तक	150	150
6 से 8 तक	200	500
9 से 10 तक	600	1300

मध्यप्रदेश में शालेय छात्रवृत्ति हेतु वर्ष 2015–16 में कक्षा 3 से 5 तक 9.57 लाख विद्यार्थियों को 153.55 लाख रूपये कक्षा 6 से 8 तक 9.99 लाख विद्यार्थियों को 3457.40 लाख रूपये एवं कक्षा 9 से 10 तक 93.33 हजार विद्यार्थियों को 890.94 लाख रूपये वितरित किये गये है।

पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति – ऐसे विद्यार्थी जिनके माता–पिता/अभिभावक की आय 3.00 लाख रूपये वार्षिक तक है राज्य शासन द्वारा पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। वर्ष 2015–16 में माह दिसम्बर 2015 तक कक्षा 11–12 के 1,24,273 विद्यार्थियों को 3451 लाख रूपये तथा महाविद्यालयों के 10912 विद्यार्थियों को 176 लाख रूपये पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति का वितरण किया गया है साथ ही 29 विद्यार्थियों को 19.85 लाख रूपये विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये छात्रवृत्ति स्वरूप दिये गये है।

क्रीड़ा परिसर – प्रतिभावान खिलाड़ियों को नियमित प्रशिक्षण देने के लिए 17 बालक क्रीड़ा परिसर तथा 05 बालिका क्रीड़ा परिसर 100–100 सीट क्षमता वाले बनाये गये है। जिनमें प्रवेशित छात्र/छात्राओं को 100 रूपये प्रतिदिवस शिष्यवृत्ति एवं 3000 रूपये वर्ष में एक बार स्पोर्टस किट के लिये प्रदान किया जाता है। वर्ष 2015–16 में 2300 खिलाडियों पर 963.85 लाख रूपये क्रीड़ा प्रतियोगिताओं में व्यय किये गये है।

अनुसूचित जनजाति बस्ती विकास योजना – अनुसूचित जनजाति संवर्ग के लोगों हेतु बेहतर आवास सुविधा उपलब्ध कराने के लिए वर्ष 2015–16 में 2777.12 लाख रूपये व्यय किए गये है।

एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय – प्रदेश के 18 जिलों में 25 एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय संचालित है साथ ही 4 नये विद्यालय 2015–16 में स्वीकृत हुए है।

अनुसूचित जनजाति बालिकाओं हेतु सायकिल रख–रखाव– योजनान्तर्गत कक्षा 9वीं में जिन आदिवासी बालिकाओं को सायकिल प्रदाय की गई थी उन्हें कक्षा 11वीं में प्रवेश लेने पर राशि 1000/– रूपये प्रति बालिका सायकिल रखरखाव भत्ता दिया जा रहा है। वर्ष 2015–16 में इस योजना में 6306 छात्राओं को लाभान्वित किया गया है।

शंकर शाह/रानी दुर्गावती पुरूस्कार योजना– म.प्र. माध्यमिक शिक्षा मण्डल की 10वीं एवं 12वीं बोर्ड परीक्षा में अपने संवर्ग में प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले आदिवासी विद्यार्थियों को निम्नानुसार पुरूस्कार दिया जाता है–

कक्षा	**प्रथम रूपये**	**द्वितीय रूपये**	**तृतीय रूपये**
10वीं	51000	31000	21000
12वीं	51000	31000	21000

विद्यार्थी कल्याण – अनुसूचित जनजाति के आर्थिक रूप से कमजोर विद्यार्थियों को आकस्मिक विपत्ति में विशेष रोग से पीड़ित होने पर इलाज हेतु, विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु रूपये 1000 से रूपये 25,000 तक प्रोत्साहन सहायता प्रदान की जाती है।

सिविल सेवा प्रोत्साहन– योजनान्तर्गत निम्नानुसार सहायता राशि अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को प्रदान की जाती है–

संघ लोक सेवा आयो परीक्षा के लिए –

- प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण होने पर 40,000/– रूपये
- मुख्य परीक्षा उत्तीर्ण होने पर 60,000/– रूपये
- साक्षात्कार उपरांत चयन होने पर 50,000/– रूपये

म.प्र. लोक सेवा आयोग परीक्षा के लिए–

- प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण होने पर 20,000/– रूपये
- मुख्य परीक्षा उत्तीर्ण होने पर 30,000/– रूपये
  साक्षात्कार उपरांत चयन होने पर 25,000/– रूपये उपरोक्त के अतिरिक्त –
- प्रतिभावान विद्यार्थिया को पुरूस्कार–
- विशेष पिछड़ी जनजाति के विद्यार्थियों को गणवेश प्रदाय।
- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पुस्तकालय एवं प्रयोगशालाओं का सुदृढ़ीकरण
- विज्ञान एवं गणित विषयों में प्रवेश हेतु प्रोत्साहन
- पोस्ट मैट्रिक छात्रावासों में आगमन भत्ता
- आवास भत्ता सहायता/छात्रगृह योजना
- सैनिक स्कूल/प्रतिष्ठित स्कूलों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के शुल्क की प्रतिपूर्ति
- बोर्ड परीक्षा शुल्क की प्रतिपूर्ति

समस्याओं के समाधान हेतु परामर्श एवं सुझाव –

- वर्तमान में अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों के लिए मध्यप्रदेश शासन एवं भारत सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं का संचालन किया जा रहा है आवश्यकता है सही हितग्राहियों तक इन योजनाओं का लाभ पहुॅचे।
- ग्रामीण अंचलों में जानकारी एवं जागरूकता के अभाव में आदिवासीजन योजनाओं के लाभ से वंचित है।
- योजनाओं का लाभ देने वाले शासकीय अधिकारियों कर्मचारियों की सोच अनुसूचित जनजाति समूह के लिये सहयोगात्मक होनी चाहिए।
- अनुसूचित जनजाति वर्ग समूह को शिक्षा के क्षेत्र में शासकीय योजनाओं का लाभ लेकर आगे आना होगा तभी, आगे आने वाली पीढ़ीयों का स्वविकास संभव हो सकेगा।

निष्कर्ष

अंत में यही कहा जा सकता है कि शासकीय योजनाएँ एवं सहायताएँ बहुत है आवश्यकता है उनके सही क्रियान्वयन की और वास्तविक व्यक्ति तक लाभ पहुँचाने की। अनुसूचित जनजाति वर्ग से प्रगति पथ पर अग्रसर हुए व्यक्ति अपने वर्ग के पिछड़े लोगों का मार्गदर्शन करे साथ ही स्वयं अनुसूचित जनजाति संवर्ग आगे आकर योजनाओं से लाभ लेकर अपनी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करें। अनुसूचित जनजातियों की पहचान वास्तव में उनकी सांस्कृतिक विरासत व परम्पराएँ हैं अतः बिना उनकी सांस्कृतिक विरासत व पांरपरिक विशेषताओं को परिवर्तित किये विकास योजनाएँ बनाना मेरी समझ म इस संवर्ग के लिए ज्यादा हितकारी होगा।

संदर्भ

1 जाति एक विमर्श – डॉ.जयप्रकाश करदम, नवभारत प्रकाशन दिल्ली

2 आदिवासी समाज और शिक्षा– रामशरण जोशी ग्रंथ शिल्पी नई दिल्ली

3 समाजशास्त्र विश्वकोष – शशि भूषण सिंह अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली

4 मध्यप्रदेश सामान्य ज्ञान – उपकार प्रकाशन आगरा

5 www.india.gov.in

6 www.mp.gov.in

संवैधानिक एवं प्रशासनिक व्यवस्थाएँ–आदिवासी विकास के संदर्भ में

डॉ. कपिल खरे
अतिथि विद्वान, राजनीति विज्ञान
शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ

किसी भो राष्ट्र के अंतर्गत सामुदायिक विविधता की पहचान एवं विभिन्न समुदायों की आकांक्षा को लोकतंत्र के महत्वपूर्ण पहलू के रूप में दृष्टिगत किया जाता है। विश्वपटल पर भारत एक सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश के रूप में उभरकर सामने आया है जहॉ धर्म, जाति, लिंग, क्षेत्र, भाषा एवं संस्कृति के आधार पर विभिन्नताएँ होने के बाद भी ''अनेकता में एकता'' की धारणा दिखाई देती है। विभिन्न प्रकार की विविधताओं के आलोक में भारत के संविधान निर्माताओं द्वारा जनजाति वर्ग के लिए संविधान की पॉचवी एवं छठीं अनुसूची के अंतर्गत स्व–प्रशासनिक शासन व्यवस्था को वर्णित किया गया है। जनजातियों की स्वयं की एक प्रथक पहचान संस्कृति के रूप में होती है जिसका जुड़ाव प्रमुख रूप से प्राकृतिक संरचना से रहता है। अतः लोकतंत्र का उचित मापदण्ड निर्धारित करने हेतु स्थानीय इकाई से प्रारंभ होकर राष्ट्रीय स्तर तक सभी समूहों द्वारा भागीदारी व योगदान सुनिश्चित करता है। प्रशासन इसके लिए आवश्यकतानुसार मूल्यों को निर्धारित कर यह सुनिश्चित करता है कि निर्णय–निर्माण या निर्णय प्रक्रिया में देश के सभी नागरिकों को लाभ प्राप्त हो रहा है अथवा नहीं।

जनजातीय शब्द को उचित रूप से परिभाषित किये जाने पर विद्वानों में एकमत नहीं रहा है, सामान्यतः आदिवासी को किसी विशेष क्षेत्र के मूल निवासी के रूप मे जाना जाता है। इम्पीरियर गजेटियर के अनुसार–''जनजाति आदिमजाति परिवार का वह समूह है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते है, एक सामान्य क्षेत्र में रहते है या स्वयं को उस क्षेत्र से संबंधित मानते है। सामान्यतः यह समूह अन्तःर्विवाही होंत है।''

भारत में बिट्रिश शासन से पूर्व आदिवासी के उद्‌बोधन हेतु कोई शब्द निर्धारित नहीं था। उनके द्वारा ही आदिवासी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया। जनजाति वर्ग हेतु ट्राईब शब्द का प्रयोग सन् 1931 की जनगणना के अंतर्गत किया गया लेकिन सन् 1948 में भारत सरकार के द्वारा इस संवर्ग को संबोधित किये जाने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। भारतीय संविधान के लागू किए जाने पर सभी आदिवासी समूहों को उज्जवल भविष्य व बेहतर सुविधाओं से परिपूर्ण किए जाने हेतु अनच्छेद 342 के अंतर्गत माननीय राष्ट्रपति के आदेश द्वारा जारी अनुसूची में इसका नाम अंकित किया गया तथा ट्राईब शब्द को परिभाषित भी किया गया। भारत में 22 राज्यों की सूचियों के आधार पर 744 जनजाति समूह या उपसमूह है। जिनमें से अधिकांश जनजातियां भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों, विंध्य व सतपुड़ा के पठारों एवं वनीय क्षेत्रों, अंडमान निकोबार द्वीप समूह के जंगल तथा दार्जिलिंग की पहाड़ियों पर निवासरत है। जनजातीय वर्ग का 70 से 95 प्रतिशत भाग मिजोरम, नागालैण्ड, मेघालय, अरूणाचल

प्रदेश व त्रिपुरा में है और मध्यप्रदेश, उडीसा, बिहार, गुजरात व महाराष्ट्र में जनजातीय जनसंख्या का दो तिहाई हिस्सा निवास करता हैं।

देश में ऐसे 75 जनजातीय समूह है जिनकी कुल जनसंख्या लगभग सत्रह लाख है जिनकी अत्याधिक निम्न साक्षरता दर, घटती या स्थिर जनसंख्या, कृषि पूर्व प्रविधि के कारण आदिम जनजाति समूह (प्रिमिटिव ट्राईबल ग्रुप) के रूप में पहचान को गई है। सन् 2011 की जनगणना के आधार पर भारत में जनजातियों की कुल जनसंख्या दस करोड़ तैतालीस लाख है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपलब्ध आंकडों व तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि जनजातीय वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि स्थिति काफी दयनीय है, अतः उनकी इस स्थिति में सुधार कर उन्हें समाज की मुख्य धारा में जोड़ने के उददेश्य से शासन द्वारा संविधान में आवश्यक अनुच्देदों को समाहित व निर्देशित कर विभिन्न शासकीय योजनाओं का शुभारंभ किया गया। अप्रत्यक्ष रूप से संविधान की भूमिका के अंतर्गत महत्वपूर्ण प्रावधानों की व्यवस्था की गई।

अनुच्छेद 15 (4) जनजातीय वर्ग की उन्नति के लिए अनुच्छेद 16 (4) के तहत पिछडे हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की सेवाओं में पर्याप्त नहीं है नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध करने तथा अनुच्छेद 335 में राज्य की सेवाओं में नियुक्ति में अनसूचित जनजातियों के दावो को ध्यान में रखने के लिए राज्य को अधिकार प्रदान किए गये है। लोकतांत्रिक संस्थाओं में इनका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किये जाने कें उददेश्य से लोकसभा (अनुच्छेद 330) तथा राज्य की विधान सभाओ (अनुच्छेद332) एवं विभिन्न स्तरों पर ग्राम एवं नगर पंचायतों (73 वॉ एवं 74 वॉ संविधान संशोधन अधिनियम) में इनके लिए स्थान आरक्षित है। इसके अतिरिक्त संविधान में शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23), धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25,26,27 एवं 28) तथा अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों के लिये प्रशासनिक व्यवस्था (अनुच्छेद 244) एवं कल्याण मंत्री की नियुक्ति अनुच्छेद 164 (1) में की गई है। धारा 19,23,29,46,338,339,342तथा 371 में उल्लेखित प्रावधानों के आधार पर यह प्रावधान किया गया है कि जनजातियों के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुरक्षा प्रदान की जाये। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के उत्थान करने व शोषण को रोकने के लिये अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989 लागू किया गया। संविधान की पॉचवी अनुसूची क्षेत्र में निवासरत जनजातीय लोगो के लिये धारा 344 में प्रशासकीय प्रावधान किया गया है साथ ही पूर्वोत्तर राज्यों में रहने वाली जनजातियों के लिये छठीं अनुसूची की व्यवस्था की गई है।

भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों व धाराओं में निर्दिष्ट किए गये स्वप्नों को साकार किये जाने हेतु समय–समय पर केन्द्र व राज्य शासन द्वारा बहुत सी महत्वपूर्ण परियोजनाएॅ– एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, एनआरएपी ट्राईसेम, जवाहर रोजगार योजना, स्वसहायता समूह, राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, समेकित बाल विकास योजना, सर्वशिक्षा अभियान, जल ग्रहण योजना, छात्रवृत्ति योजना, आश्रम व स्कूल की व्यवस्था, तेन्दूपत्ता नीति आदि महत्वपूर्ण योजनाएॅ संचालित की जा रही है।

सन्1950–51 की प्रथम पंचवर्षीय योजना में आदिवासी विकास के लिये 19.03 करोड़ रूपये द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 42.92 करोड़, तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 50.63 एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में 75 करोड़ रूपये का बजट निर्धारित किया गया।

सन् 1972 में पॉचवी पंचवर्षीय योजना के पूर्व योजना आयोग ने प्रोफेसर श्यामचरण दुबे के नेतृत्व में एक विशेष दल का गठन इस उददेश्य से किया गया कि वह जनजातीय क्षेत्रों में विकास हेतु जनजातीय उपयोजना के निर्माण की सलाह देगी। इसी सलाह को मूल आधार मानकर जनजातियों के विकास हेतु नवीन योजना का निर्माण व संचालन किया जाता है।

यह योजना वास्तव में विकास की एक संकल्पना है जिसके अंतर्गत केन्द्र शासित राज्य एवं राज्य शासन अपने–अपने क्षेत्र के जनजातीय अंचलों के विकास के लिये स्वतंत्र कार्यक्रम निश्चित कर उनके क्रिन्यान्वयन हेतु शासन के सामने पस्ताव भेजते है। इस योजना के क्रियान्वयन से पहले 'अकादमिक दल' के द्वारा किये गये अध्ययन के आधार पर जनजातीय असंतोष के प्रमुख कारणों को ज्ञात किया गया तथा उन कारणों के दुष्प्रभाव को समाप्त किये जाने हेतु एक स्वचलित कार्ययोजना भी तैयार की गई, जो प्रत्येक जनजातीय क्षेत्र की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये निर्मित की गई। इस स्वचलित कार्ययोजना में मूलतः जनजातियों को चार अलग–अलग क्षेत्रों के आधार पर वर्गीकृत कर प्रारंभ में चार चरणों 1974–79,1979–84,1984–89 एवं 1989–97 तक कियान्वित करने के लिये कार्ययोजना बनाई गई। सन्1980 के बाद इस कार्ययोजना का संवर्द्धन कर 'माडा' का निर्माण किया गया। 'माडा' के अंतर्गत उन क्षेत्रों को भी सम्मिलित किया गया जिनमें जनजातियों की जनसंख्या पॉच हजार तक थी। इसके परिणामस्वरूप 245 माडा पॉकेट परियोजना के अंतर्गत 75 प्रतिशत से अधिक जनजातीय समूह प्रभावित हुये।

जनजाति विकास के संवैधानिक प्रतिबद्धता के रहते स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहरलाल नेहरू द्वारा पंचशील के सिद्धांत की घोषणा की गई थी। आदिवासियों की विशेष आवश्यकताओं तथा समस्याओं को समझते हुये सम्पूर्ण भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारंभ किये गये तथा साथ ही साथ जनजातीय सलाहकार परिषद् का भी निर्माण किया गया।

स्वतंत्र भारत के 69 वर्ष पूर्ण हो जाने के पश्चात् भी वर्तमान समय में भी भारतीय संविधान में आदिवासियों को अपनी सांस्कृतिक विभिन्नता और पहचान को संरक्षण प्रदान करने हेतु स्व–प्रशासनिक प्रावधान होने के पश्चात् भी उचित अधिकार प्राप्त नहीं हो पा रहे है। यह कहना भी कठिन है कि किस कारक विशेष का जनजातीय के चौमुखी विकास अथवा उनके जीवन की गुणवत्ता में ह्रास पर कितना प्रभाव पड़ा है।

लेकिन यह सत्य है कि सामाजिक अन्तःकरण का प्रभाव जनजातीय बाहुल्य क्षेत्रों एवं उनकी सभ्यता–संस्कृति पर निश्चित रूप से दिखाई देता है। उनकी निर्भरता गैर–आदिवासी सभ्यता एवं संस्कृति पर पिछले दशकों अधिक बढ़ गई है। इन सारे हस्तक्षेपों का जनजातियों के चौमुखी विकास पर कुछ सकरात्मक तथा कुछ नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। जहॉ साक्षरता बढ़ी है, मातृत्व एवं शिशु मृत्यु

दर में कमी आई है, घरों में उपलब्ध भौतिक संसाधनों में वृद्धि हुई है, यातायात एवं संचार के माध्यमों का वे लाभ प्राप्त कर रहे है आदि। परंतु आज भी सर्वाधिक निर्धन जनजाती संवर्ग से ही है। खाद्य असुरक्षा का सबसे अधिक संकट इसी समुदाय के सामने है। यह समुदाय व्यापक पैमाने पर ऋणग्रस्तता, अंधविश्वास, शोषण, विस्थापन, बीमारी व कुपोषण, जमीन से बेदखली इत्यादि का शिकार हुआ है। 21 वीं सदी में संविधान की पॉचवी एवं छठीं अनुसूची में वर्णित प्रावधानों का खुलेआम उल्लघंन किया जा रहा है जिसकी वजह से आदिवासी समुदाय को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना कर पड़ रहा है, अतः भारतीय संविधान द्वारा की गई संवैधानिक एवं प्रशासनिक व्यवस्थाओं को उचित रूप से लागू करने की अत्यंत आवश्यकता महसूस की जा रही है। इस कार्य हेतु प्रशासनिक अमले के साथ ही देश के नागरिकों को अपना सहयोग प्रदान करना चाहिए, तथा न्यायपालिका के कार्यो में भी पारदर्शिता की आवश्यकता है तभी भारत का आदिवासी समुदाय उचित रूप से समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित हो सकेगा।

संदर्भ

Bose, Nirmal K,(1972) "Some Indian Tribes",National Book Trust, New Delhi

Ghurye,G.S.,(1959) "TheScheduled Tribes",2nd Edition, Popular Book Depot,Lamington Road, Bombay

Goswami, B, (2003) "Constitution Safeguards for Scheduled Castes and Scheduled Tribes",Rawat Publications, Jaipur

Gupta, S.K., Sharma, V.P., Sharda, N.K., (1998) "Tribal Development Appraisal and Alternatives",Indus Publishing Company,New Delhi

चौधरी, एस.एन., मिश्रा, मनीष, (2012) ''आदिवासी विकास : उपलब्धियॉ एवं चुनौतियॉ, भाग–एक, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली

हसन, नदीम, ''भारत में जनजातीय'', हरनाम पब्लिंकेशन, नई दिल्ली

पाण्डेय, आनंद कुमार, पाण्डेय, श्रीमती अर्चना, (2014), ''सामान्य अध्ययन'', चतुर्थ संस्करण, म.प्र. हिन्दी गन्थ अकादमी, भोपाल

सलिल, अनिल कुमार, (2016) ''भारत का संविधान'', प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली

सिंह, रामगोपाल, (2016) ''भारतीय समाज'', तृतीय संस्करण,म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी, भोपाल

शर्मा, डॉ0 श्रीनाथ, (2016), ''जनजातीय समाज'', द्वितीय संस्करण, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

यादव, शरद कुमार,'' जनजातियों का प्रशासनःसंविधान की पॉचवी और छठीं अनुसूची ''

————————

आदिवासी विकास में संचार साधनों का प्रभाव

डॉ. दिनेश ढाकरिया
समाजशास्त्र विभाग,
शासकीय महाविद्यालय तामिया
प्रो. मालती बनारसे
प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग,
शासकीय महाविद्यालय तामिया

शोध संक्षेपिका

आज के आधुनिक युग में संचार के कई रूप है। संचार क्रांति के दो प्रमुख रूप है जिन्होनें समाज के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है वे है– 1. प्रिंट मीडिया और 2. इलेक्ट्रानिक मीडिया। प्रिंट मीडिया में प्रमुख समाचार पत्र, पत्रिकाऐं, पाम्प्लेटस, पोस्टर और र्होडिंग सम्मिलित है, वहीं इलेक्ट्रानिक मीडिया के रूप में टेलीविजन, रेडियों, सिनेमा, कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाईल, सोशल नेटवर्किंग, ई–कॉमर्स, ई–मेल आदि अनेक साधन शामिल है। संचार क्रांति के विभिन्न साधन सूचनाओं और नवीन जानकारियों को व्यवस्थित रूप से एकत्रीकरण, विश्लेषण, संग्रहण तथा एक–दूसरों से शेयर करने का एक तंत्र है। किसी भी समाज को अपने विकास और समृध्दि के लिए सूचनाओं के व्यवस्थित तंत्र की अत्यंत आवश्यकता होती है क्योंकि समाज की प्रत्येक योजनाओं का आधार यही सूचनाएँ होती है और ये सूचनाएँ जितनी सटीक और अल्प समय में समाज के लोगों में प्रसारित होंगी, योजनाओं के सफल होने तथा समाज के विकासशील होने की सम्भावनाएँ उतनी ही बढ जाती है। पातालकोट क्षेत्र के रातेडवासियो में सबसे अधिक फोन/मोबाइल का प्रयोग किया जाने लगा है जिससे वे कम से कम क्षेत्र से अलग रह रहे उनके निज सम्बंधियों और अन्य लोगों से चर्चा करके जिले एवं प्रदेश में चल रही गतिविधियों से अवगत होने लगें है। इसके साथ ही साथ वे लोग अब अपने व्यवसाय से सम्बंधित जानकारियॉ भी फान के माध्यम से प्राप्त करने लगे है। क्षेत्र के युवा विद्यार्थियों के लिए शासन की स्मार्ट फोन वितरण योजना अत्यंत उपयोगी साबित हुई है जिसके माध्यम से वे बहु उपयोगी जानकारियॉ प्राप्त करने लगे है। संचार के साधनों के प्रभाव के रूप में लोगों के दैनिक जीवनशैली मे गुणोत्तर वृध्दि हुई है।

कुंजी शब्द– संचार के साधन, पातालकोट (रातेड) संचार का प्रभाव

प्रस्तावना

वर्तमान युग में अपने और संसार के प्रति लोगों की सोच, संस्कार, रीति–रिवाज और दृष्टिकोण पर संचार साधनों के प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता, संचार का सामान्य अभिप्राय लोगों का आपस में विचार तथा भावनाओं का कुछ संकेतों द्वारा आदान–प्रदान करना है संचार साधनों की मुख्य क्रिया मानव व्यवहार पर प्रभाव डालना है।

जनसंचार का प्रारंभ अखबारों के उदय के साथ माना जाता है लेकिन पिट मीडिया के विकास से पहले परम्परागत रूपों में जनसंचार मौजूद था। व्यापक लोगों तक किसी सूचना को पहुंचाने के लिए ढोल–नगाडे, डुगडुगी, भोंपू, तोप, आग, धुंआ, कबूतर, घुडसवारों जैसे अन्य संकेतों तथा साधनों का उपयोग किया जाता था। इन रूपों में होने वाले जनसंचार में संकेतों की एक ऐसी व्यवस्था समाहित होती थी जिनकी व्यापक लोगों द्वारा एक समान व्याख्या संभव हो जाती थी। जैसे–जैसे तकनीक का विकास होता गया वैसे–वैसे ढोल–नगाडे, डुगडुगी, भोंपू, तोप, आग, धुंआ कबुतरों और घुडसवारों के माध्यम से संदेश भेजने की पुरानी तकनीकों का स्थान 19वीं सदी की यांत्रिक और इलेक्ट्रानिक प्रणाली ने लिया। संचार क्रांति से तात्पर्य परिवर्तन की उस तीव्र प्रक्रिया से है जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग में संचार के परम्परागत साधनों के स्थान पर अत्याधुनिक और विश्वव्यापी साधनों का प्रयोग करना है। कोई भी क्रांति एक आंधी के समान अचानक आती है जो पूर्व की सम्पूर्ण व्यवस्थाओं को तहस–नहस कर जाती है और नई व्यवस्था को प्रतिस्थापित करती है। क्रांति पूर्व नियोजित या अनियोजित दोनों ही प्रकार की हो सकती है। आज हम 21 वीं सदी अर्थात संचार क्रांति के युग में कदम से कदम मिलाकर चल रहें है। संचार के साधन आज के युग में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। आज के आधुनिक युग में संचार के कई रूप है। संचार क्रांति के दो प्रमुख रूप है जिन्होनें समाज के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है वे है – 1. प्रिंट मीडिया और 2. इलेक्ट्रानिक मीडिया। प्रिंट मीडिया में प्रमुख समाचार पत्र, पत्रिकाऐं, पाम्प्लेटस, पोस्टर और र्होडिंग सम्मिलित है, वहीं इलेक्ट्रानिक मीडिया के रूप में टेलीविजन, रेडियों, सिनेमा, कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाईल, सोशल नेटवर्किंग, ई–कॉमर्स, ई–मेल आदि अनेक साधन शामिल है। संचार क्रांति के विभिन्न साधन सूचनाओं और नवीन जानकारियों को व्यवस्थित रूप से एकत्रीकरण, विश्लेषण, संग्रहण तथा एक–दूसरों से शेयर करने का एक तंत्र है। किसी भी समाज को अपने विकास और समृध्दि के लिए सूचनाओं के व्यवस्थित तंत्र की अत्यंत आवश्यकता होती है क्योंकि समाज की प्रत्येक योजनाओं का आधार यही सूचनाएँ होती है और ये सूचनाएँ जितनी सटीक और अल्प समय में समाज के लोगों में प्रसारित होंगी, योजनाओं के सफल होने तथा समाज के विकासशील होने की सम्भावनाएँ उतनी ही बढ जाती है।

अध्ययन क्षेत्र का सामान्य परिचय

शोधकार्य का अध्ययन क्षेत्र विश्वप्रसिध्द पातालकोट के एक ग्राम रातेड को बनाया गया है पातालकोट दो शब्दो से मिलकर बना है। जिसका अर्थ पृथक–पृथक है, कोट का अर्थ चट्टानी दीवारें है, जिसे पातालकोट के निवासी कनात् कहते है। पाताल का अर्थ यहॉ के भारिया जन यहॉ के सबसे निचले स्थल अर्थात् दूधी, गायनी नदियों की खाइयों से लगाते है। पातालकोट का नाम सुनते ही मानव मन–मस्तिष्क में कई परिकल्पनायें उत्पन्न होने लगती है। सर्वप्रथम कोट को भूल कर लोकों का ख्याल

आने लगता है। यह सम्पूर्ण पातालकोट क्षेत्र सदियों से विकास की मूल धारा से कटा सा प्रतीत होता है। जिसका मुख्य कारण यहॉ की भू–संरचना भी माना जा सकता है।

ग्राम रातेड तीन ओर से पहाडीयों से घिरा हुआ है। कुछ वर्ष पहले तक पातालकोट क्षेत्र के किसी भी ग्राम में आसानी से पहुंचपाना सभव न था परंतु शासन–प्रशासन के प्रयासों से अब यहॉ आसानी से पहुंचा जा सकता है क्योंकि पातालकोट क्षेत्र के लगभग 4 से 5 ग्रामों तक बारहमासी सडकों को जोड दिया गया है। सतपुडा पर्वत श्रेणी का एक हसीन हिस्सा पातालकोट क्षेत्र के रूप में देखा जा सकता है, यहीं एक और बात का उल्लेख करना आवश्यक होगा कि विगत 3–4 वर्षों से जिला प्रशासन पातालकोट क्षेत्र के सबसे उपरी हिस्से यानी समतली पहाडियों की चोटी में पातालकोट महोत्सव (साहसिक खेल मेला) Adventure Spots आयोजन कर रहा है जिसमें अनेकों गतिविधियों का संचालन किया जाता है। इस मेले का प्रभाव भी पातालकोट के आदिवासियों में अवश्य देखा जा सकता है। Adventure Spots का आयोजन स्थल से पातालकोट क्षेत्र का दृश्य अत्यंत ही मनोहारी प्रतीत होता है जिसमें नवनिर्मित बारहमासी सडकों का दृश्य सर्पीलाकार परंतु पूर्ण क्षेत्र को बांटनेवाला लगता है।





अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन छिन्दवाडा जिले की तामिया तहसील के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र पातालकोट के एक ग्राम रातेड में किया गया है, जिसमें लगभग 90 प्रतिशत लोग जनजाति समूह (आदिवासी) से है जों हमारे अध्ययन का केन्द्रबिन्दु है। पातालकोट क्षेत्र जो कि 80 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैला है जिसमें कुल 12 आबाद ग्राम है परंतु रातेड ग्राम को चयनित करने के प्रमुख कारणों में सर्वप्रमुख ग्राम में विद्युत की उपलब्धता, ग्राम तक पक्का सडक मार्ग आदि है चूंकि प्रस्तुत अध्ययन ''आदिवासी विकास में

संचार साधनों का प्रभाव'' शीर्षक के अनुरूप पातालकोट के एक ग्राम रातेड पर केन्द्रित है, अतः संचार के साधनों की पहुंच तथा जनजातियों पर इसके प्रभाव को जानने हेतु तथ्य संकलन के प्राथमिक स्त्रोत के रूप में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया और एक सामान्य साक्षात्कार अनुसूची का निर्माणकर ग्राम रातेड के 40 लोगों का साक्षात्कार द्वारा संचार साधनों की पहुंच, उपलब्धता एवं प्रभाव के विषय में तथ्यों को संकलित किया गया है।

इसके साथ ही साथ द्वितीयक स्त्रोत के रूप में संचार साधनों से सम्बंधित विभिन्न पुस्तकें, शोधपत्र, जर्नल्स, रिव्यूज एवं इंटरनेट आदि साधनों द्वारा तथ्यों को संकलित कर शोध पत्र में सहयोग लिया गया है।

अवलोकन

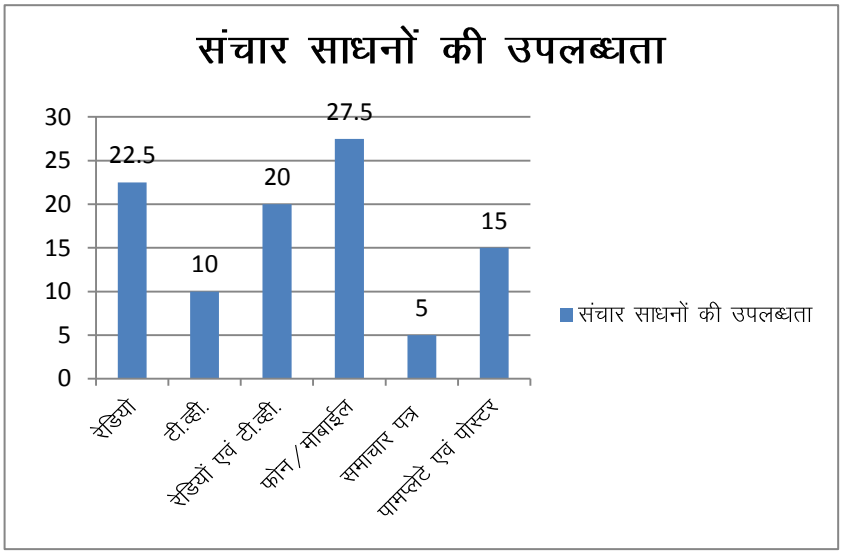
अध्ययन क्षेत्र की भौगोलिक दशा कुछ इस प्रकार है कि लोगों का आवागमन सहज नही हो पाता इस दशा में संचार के साधनों की पहुंच के लिए भी विषम परिस्थिति उपस्थित होती है। संचार के साधनों में सर्वप्रथम रेडियों लगभग 22.50 लोगों के पास उपलब्ध है परंतु क्षेत्र की भू–संरचनाओं के कारण उसके संचालन में भी बाधाएं आती है।

तालिका कमांक–01

रातेड ग्राम में संचार (मीडिया) के विभिन्न साधनों की उपलब्धता

क्रमांक	साधन	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	रेडियो	9	*22.50*
2.	टी. व्ही.	4	*10.00*
3.	रेडियों एवं टी. व्ही.	8	*20.00*
4.	फोन/मोबाईल	11	*27.50*
5.	समाचार पत्र	02	*05.00*
6.	पेमप्लेट एवं पोस्टर	6	*15.00*
योग		**40**	**100.00**

वहीं सबसे अधिक 27.50 लोगों के पास मोबाईल/फोन उपलब्ध है परंतु यहॉ पर भी दशा जस की तस है किसी स्थान विशेष पर ही मोबाईल के टावर उपलब्ध होते है इसके अलावा 20.00 प्रतिशत लोगों के पास टी.व्ही. एवं रेडियों दोनों ही प्रकार के संचार के साधन उपलब्ध है परंतु समस्या



यह है कि बिजली की उपलब्धता नियमित न होने के कारण उसका प्रयोग भी निश्चित समय तक ही कर पाते है। क्षेत्र में केवल 10 प्रतिशत लोग ऐसे है जिनके पास केवल टी.व्ही. उपलब्ध है। क्षेत्र के 15 प्रतिशत लोगों तक विज्ञापनों के पाम्प्लेटस एवं पोस्टरों की पहुंच है, और साथ ही सबसे कम 5 प्रतिशत लोगों के पास तक ही समाचार पत्र पहुंच पाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि क्षेत्रवासियों के पास सर्वाधिक फोन/मोबाईल एवं रेडियों एवं टी. व्ही. की उपलब्धता सबसे अधिक है।

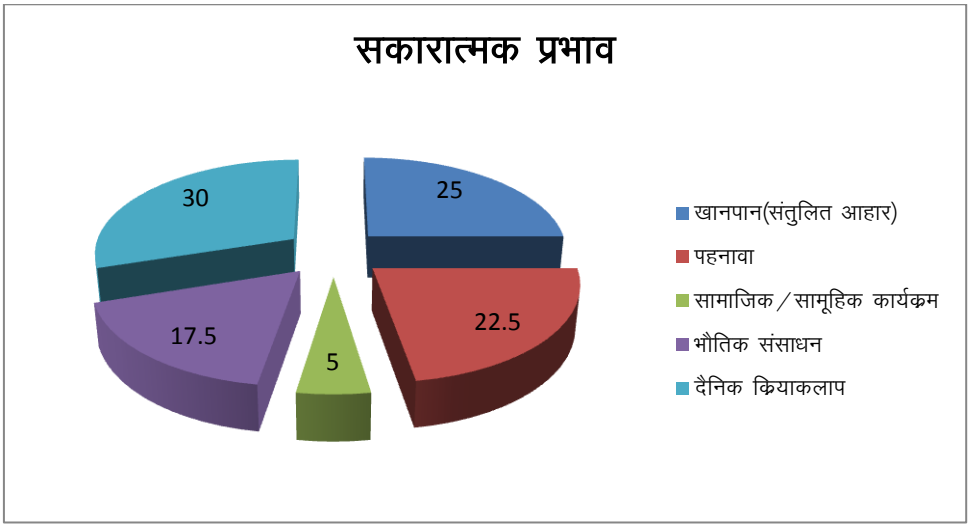
तालिका कमांक–02

आदिवासियों में सकारात्मक प्रभाव

क्रमांक	सकारात्मक प्रभाव के	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	खानपान(संतुलित आहार)	10	25.00
2.	पहनावा	9	22.50
3.	सामाजिक/सामूहिक कार्यक्रम	2	05.00
4.	भौतिक संसाधन	7	17.50
5.	दैनिक कियाकलाप	12	30.00
योग		**40**	**100.00**

तालिका क्रमांक 02 से स्पष्ट होता है कि ग्रामवासियों में से सबसे अधिक 30 प्रतिशत लोगों ने माना कि संचार के साधनों के प्रयोग करने से उनके दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में प्रभाव पडा है वहीं 25 प्रतिशत लोग मानते है कि रेडियों एवं टी. व्ही. के उपयोग करने से उन्हें ज्ञान प्राप्ति हुई और उनके खानपान में संतुलित आहार व अंकुरित अनाज का प्रयोग बढा है। 22.50 लोगों के पहनावे में परिवर्तन आया है और 17.50 प्रतिशत लोग भौतिक संसाधनों को जुटाने लगे है, साथ ही मात्र 05 प्रतिशत लोगों ने माना की उनके सामाजिक/सामूहिक कार्यक्रमों में भी संचार के साधनों का प्रभाव परिलक्षित होने लगा है।

इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संचार के साधनों के प्रभाव के रूप में लोगों के दैनिक जीवनशैली में गुणोत्तर वृध्दि हुई है।



तालिका क्रमांक–03

आदिवासियों में नकारात्मक प्रभाव

क्रमांक	नकारात्मक प्रभाव का	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	आर्थिक बोझ	14	*35.00*
2.	अपराधों में वृध्दि	9	*22.50*
3.	अश्लीलता	4	*10.00*
4.	दुर्व्यसनों में वृध्दि	4	*10.00*
5.	अनावश्यक समय की बर्वादी	9	*22.50*
योग		**40**	**100.00**

रातेड ग्राम का प्रतिनिधित्व कर रहें 40 उत्तरदाताओं में से सबसे अधिक 35 प्रतिशत लोगों ने संचार के साधनों के प्रयोग से आर्थिक बोझ में वृध्दि होना बताया है वहीं 22.50 प्रतिशत लोगों ने समान रूप से अपराधों का बढना और बहुमूल्य समय की बर्वादी होना कहा है। ठीक इसी प्रकार 10 प्रतिशत लोगों ने समान रूप से दुर्व्यसनों एवं अश्लीलता में वध्दि होना स्वीकार किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सबसे अधिक आर्थिक बोझ ग्रामीणजनों में बढा है जबकि इनकी आर्थिक स्थिति पहले से ही सुव्यवस्थित व स्थिर नही है। वहीं अपराधों में वृध्दि व अनावश्यक समय की बर्वादी होने से क्षेत्र विकास में नकारात्मक प्रभाव भो पड सकता है।

विमर्श एवं सुझाव

संचार के साधनों के प्रभाव को किसी भी स्थिति में नकारा नही जा सकता परंतु क्षेत्र विशेष के आधार पर इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव की समीक्षा करने के पश्चात यह अवश्य ही कहा जा सकता है कि क्षेत्र विशेष के लिए संचार के साधन कितने हद तक उपयोगी साबित होंगे। इसी संदर्भ में किया गया पूर्ववर्ती अध्ययन डॉ दिनेश ढाकरिया एवं प्रो.मालती बनारसे, संचार क्रांति एवं सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन (पातालकोट के विशेष संदर्भ में) अत्यंत उपयोगी सिध्द हुआ जिसमें शोधार्थी ने पुरजोर सुझाव दिया था कि क्षेत्र में बिजली एवं सडक की उपलब्धता शासन प्रशासन को प्राथमिकता के आधार पर सुनिश्चित करानी चाहिए ताकि क्षेत्र विकास में आ रही समस्याओं का सामना किया जा सके।

वर्तमान स्थिति तक पातालकोट क्षेत्र के लगभग 12 ग्रामों में से लगभग 4–5 ग्रामों तक बिजलो एवं सडक की उपलब्धता हो चुकी है और वहॉ के क्षेत्रवासी इससे लाभान्वित भी है परंतु संचार के साधनों के प्रयोग और इसके लाभ–हानि पर गंभीरता से विचार मंथन किया जावे तो हम पाते है कि क्षेत्र में सर्वाधिक फोन/मोबाईल एवं रेडियों एवं टी. व्ही. की उपलब्धता सबसे अधिक है जिससे उनके दैनिक जीवनशैली में गुणोत्तर वृध्दि हुई है परंतु इसके दूसरे पक्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ग्रामीणजनों में सबसे अधिक आर्थिक बोझ बढा है जबकि इनकी आर्थिक स्थिति पहले से ही सुव्यवस्थित व स्थिर नही है। वहीं अपराधों में वृध्दि व अनावश्यक समय की बर्वादी होने से क्षेत्र विकास में नकारात्मक प्रभाव भी पड सकता है।

अतः सुझाव के रूप में हम कह सकते है कि क्षेत्रवासियों को विकास की मूलधारा में शामिल करने के लिए अभी भी कुछ प्रमुख तथ्य या बिन्दु है जिन पर गंभीरता से विचार मंथन किया जाना आवश्यक है यथा–

1. ग्रामवासियों के आर्थिक विकास के लिए इनके निश्चित रोजगार की व्यवस्था करना अभी बाकी है।

2. जो क्षेत्र वर्षों से मुख्य सडक व जीवन शैली से कटा हुआ था अब की स्थिति में सडक/बिजली की सुविधा हो जाने से बाहरी तत्वों की आवाजाही क्षेत्र में बढने से अपराधों में निरंतर वृध्दि होगी अतः शासन को इस ओर निश्चित रूप से कोई ठोस कदन बढाने की आवश्यकता है, अन्यथा क्षेत्र की मूल संस्कृति और प्राकृतिक सौंदर्य को मिटने में समय नहीं लगेगा।

निष्कर्ष

शोध कार्य के निष्कर्ष के रूप में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पातालकोट क्षेत्र के रातेडवासियो में सबसे अधिक फोन/मोबाइल का प्रयोग किया जाने लगा है जिससे वे कम से कम क्षेत्र से अलग रह रहे उनके निज सम्बंधियों और अन्य लोगों से चर्चा करके जिले एवं प्रदेश में चल रही गतिविधियों से अवगत होने लगें है। इसके साथ हो साथ वे लोग अब अपने व्यवसाय से सम्बंधित जानकारियॉ भी फोन के माध्यम से प्राप्त करने लगे है।

क्षेत्र के युवा विद्यार्थियों के लिए शासन की स्मार्ट फोन वितरण योजना अत्यंत उपयोगी साबित हुई है जिसके माध्यम से वे बहुउपयोगी जानकारियॉ प्राप्त करने लगे है। वर्तमान स्थिति तक पातालकोट क्षेत्र के लगभग 12 ग्रामों में से लगभग 4–5 ग्रामों तक बिजली एवं सडक की उपलब्धता हो चुकी है और वहॉ के क्षेत्रवासी इससे लाभान्वित भी है परंतु संचार के साधनों के प्रयोग और इसके लाभ–हानि पर गंभीरता से विचार मंथन किया जावे तो हम पाते है कि क्षेत्र में सर्वाधिक फोन/मोबाईल एवं रेडियों एवं टी. व्ही. की उपलब्धता सबसे अधिक है जिससे उनके दैनिक जीवनशैली में गुणोत्तर वृध्दि हुई है परंतु इसके दूसरे पक्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ग्रामीणजनों में सबसे अधिक आर्थिक बोझ बढा है जबकि इनकी आर्थिक स्थिति पहले से ही सुव्यवस्थित व स्थिर नही है। वहीं अपराधों में वृध्दि व अनावश्यक समय की बर्वादी होने से क्षेत्र विकास में नकारात्मक प्रभाव भी पड सकता है।

क्षेत्रवासियों को विकास की मूलधारा में शामिल करने के लिए निरंतर प्रयासरत होते हुये ग्रामवासियों के आर्थिक विकास के लिए इनके निश्चित रोजगार की व्यवस्था की ओर कदम बढाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

वाजपेयी सरला (2008) "आधुनिकीकरण और सामाजिक परिवर्तन" छिन्दवाड़ा जिले की भारिया जनजाति का अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध)।

भारद्वाज, नंद (2007) जनसंचार संस्कृति एवं बाजार नई दिल्ली–सामयिक।

डेविस, किंग्सले (1949) हयूमन सोसायटी, मेकमिलन पब्लिकेशन न्यूयार्क।

ढाकरिया, दिनेश कुमार, (2014) भारिया जनजातियों में विकास योजनाओं का प्रभाव एक–मूल्यांकनात्मक अध्ययन (छिन्दवाडा जिले के विशेष संदर्भ में) (अप्रकाशित शोध प्रबंध)।

दीक्षित ध्रुव कुमार(2000) पातालकोट घाटीः भौगोलिक एवं जनसंख्यात्मक विवेचन म.प्र.हिन्दी ग्रंथ अकादमी।

डॉ.सुद्रास शोभा, (2009) सूचना कांति और भारतीय समाज, सनावद।

जेन्सन एम.डी इन्ट्रोडक्शन टू सोशल प्रोब्लम्स।

लोधा मनोज (2012–13) कम्युनिकेशन एण्ड ट्रायबल डेवलपमेंट, क्लासिकल पब्लिकेशन दिल्ली।

पंत, एन.सी. (2005)– मीडिया लेखन के सिद्यांत नई दिल्ली–तक्षशिला।

पाटी, जगन्नाथ (2004)– मीडिया एण्ड ट्रायबल डेवलपमेंट, कोन्सेप्ट पब्लिसिंग कम्पनी।

रोजनग्रीन कार्ल एरिक (2000)– कम्युनिकेशन–एन इंट्रोडक्शन, सज पब्लिकेशन दिल्ली।

श्रीनिवास,एम.एन. (2009)– आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

सिंह,ओमप्रकाश (2004)– संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम।

तलमाकी रेखा– सोशियो–इकोनॉमिक डेवलपमेंट ऑफ ट्रायबल वोमेन, द वोमेन प्रेस दिल्ली।

ठाकुर देवेन्द्र, ठाकुर डी.एन. (2009)– ट्रायबल डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन दिल्ली।

————————

जनजाति छात्राओं में शिक्षा एवं कानूनी जागरूकता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

(शासकीय महाविद्यालय बिछुआ के विशेष संदर्भ में)

कु. फरहत मंसूरी
(समाजशास्त्र), शोधार्थी,
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल, म.प्र.

डॉ. अर्चना गौर
सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र,
राजमाता सिंधिया शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय,
छिंदवाड़ा (म.प्र.)

भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में जनजातिय देश की सांस्कृतिक धरोहर है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने जनजाति को अनेक नामों से संबोधित किया है। जे.एच.हट्टन ने 'आदिम जातियां', वेरियर ऐल्विन ने देश का 'मूल स्वामी', जी.एस. धुरिये ने 'पिछड़े हुए हिन्दू', तथा आर.के.दास ने इनके लिए 'दलित मानवता' की संज्ञा दी है। जनजातिय समाज की अपनी संस्कृति होती है, उनकी अपनी प्रथायें धार्मिक, राजनीतिक आधार होते है। जिससे ही उन्हें पहचाना जाता है। शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ की जनजाति छात्रायें शिक्षा एवं कानून के प्रति जागरूक हुई ह।

शिक्षा किसी भी राष्ट्र विकास के लिए अनिवार्य शर्त है। अशिक्षित नागरिकों के साथ कोई भी राष्ट्र विकसित राष्ट्रो की कतार में खड़े होने की कल्पना नहीं कर सकता है। शिक्षा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली माध्यम है। महिला एवं पुरूष दोनो शिक्षित हो तब देश व परिवार का विकास निश्चित रूप से हो सकता है। यही बात जनजाति समाज पर भी लागू होती है। म. प्र. जनजाति बाहुल क्षेत्र है, जनजाति के विकास के लिए म.प्र. शासन द्वारा विभिन्न योजनायें चलायी जा रही है इन्हीं योजनाओं का लाभ लेकर जनजाति छात्रायें अपना एवं अपने परिवार का विकास कर रही है।

हमारा भारतीय समाज महिलाओं के मामले में सदा से ही उदार और श्रृद्धावान रहा है, अन्यथा जर की बहु को लक्ष्मी और नारी शक्ति को देवी के रूप में स्थापित न करता। मध्यकाल में इस मामले में कुछ विकृतियां आ गई थी जिन्हें कानून की सख्ती से दूर किया गया। स्वतंत्रता के बाद नारी को समता का अधिकार मिला। स्वतंत्रता के बाद नारी को समता का अधिकार मिला। इसके बाद एक के बाद एक जैसी आवश्यकता समझी गई नारी की सुरक्षा के लिए कानून और अधिनियम बनते गये।

अध्ययन क्षेत्र

शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ में अध्ययनरत् 100 जनजाति छात्राओं को अध्ययन की इकाई के रूप में चयनित किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. बिछुआ महाविद्यालय की जनजाति छात्राओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
2. बिछुआ महाविद्यालय की जनजाति छात्राओं में कानून के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
3. महाविद्यालय में जनजाति छात्राओं के विकास के लिए शासन द्वारा चलायी जा रही योजनाओं के लाभ की जानकारी प्राप्त करना।

उपकल्पना

शासकीय महाविद्यालय बिछुआ की जनजाति छात्रायें शिक्षा एवं कानून के प्रति जागरूक है।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तावित अध्ययन को संपादित करने हेतु अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप (अभिकल्प) के माध्यम से तथ्यों को एकत्र किया गया है। शोध समस्या के अध्ययन में प्राथमिक तथ्य साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। अध्ययन से संबंधित तथ्यों को एकत्र करने के लिए शासकीय महाविद्यालय बिछुआ की 100 जनजाति छात्राओं का चयन स्तरीकृत दैव निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया है। जनजाति छात्राओं में शिक्षा एवं महिलाओं से संबंधित कानूनी जागरूकता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण

प्रस्तुत तालिकाओं के माध्यम से जनजाति छात्राओं मे शिक्षा एवं महिलाओं से संबंधित कानूनों की जागरूकता का अध्ययन (शासकीय महाविद्यालय बिछुआ के विशेष संदर्भ में) इसका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है –

तालिका क्रमांक – 01

शिक्षा के क्षेत्र में संकाय चुनाव में स्वतंत्रता

क्र.	विवरण	हां	नहीं	योग
1	संकाय चुनाव में स्वतंत्रता है	90 %	10 %	100 %

स्त्रोत – महाविद्यालय की छात्राओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त आंकड़े

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 01 यह प्रदर्शित करती है कि कुल उत्तरदाताओं में से 90 प्रतिशत उत्तरदाता को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए संकाय चुनाव की स्वतंत्रता है। ये स्वतंत्रता अधिकांश निर्धन एवं अशिक्षित परिवार से है। इन छात्राओं को परिवार के सदस्यों के द्वारा संकाय चुनाव में कोई भी मदद नहीं मिलती है और न ही इन्हें किसी संकाय विशेष को चुनने के लिए बाधित किया जाता है।

तालिका क्रमांक – 02 उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए परिवार की स्वीकृति

क्र.	तथ्य	हां	नहीं	योग
1	उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए सहज स्वीकृति प्राप्त हुई	80 %	20 %	100 %
2	उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए परिवार पर दबाव बनाकर स्वीकृति ली गई	20 %	80 %	100 %

स्त्रोत – महाविद्यालय की छात्राओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त आंकडे

उपयक्त तालिका क्रमांक 02 यह प्रदर्शित करती है कि कुल उत्तरदाताओं में से 80 प्रतिशत उत्तरदाता को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए सहज स्वीकृति प्राप्त हुई एवं 20 प्रतिशत उत्तरदाता को परिवार पर दबाव बनाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्वीकृति लेना पड़ा।

तालिका क्रमांक – 03 प्रतियोगी परीक्षाओं के प्रति जागरूकता

क्र.	तथ्य	हां	नहीं	योग
1	संकाय के आधार पर प्रतियोगी परीक्षा की पूर्ण जानकारी	25 %	75 %	100 %

स्त्रोत – महाविद्यालय की छात्राओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त आंकडे

उपयक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि केवल 25 प्रतिशत जनजाति छात्राओं को संकाय के आधार पर प्रतियोगी परीक्षा की पूर्ण जानकारी है।

तालिका क्रमांक – 04 शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य

क्र.	तथ्य	हां	नहीं	योग
1	नौकरी प्राप्त करना	38 %	62 %	100 %
2	व्यवसाय करना	15 %	85 %	100 %
3	उपाधि प्राप्त करने के लिए	20 %	80 %	100 %
4	सशक्त होने के लिए	20 %	80 %	100 %

5	निरूत्तर	07 %	93 %	100 %

स्त्रोत – महाविद्यालय की छात्राओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त आंकडे

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 4 से स्पष्ट होता है कि 38 प्रतिशत जनजाति छात्रायें नौकरी प्राप्त करने के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। 15 प्रतिशत छात्राओं को स्वयं का व्यवसाय संचालित करना है वहीं पर 20 प्रतिशत छात्रायें केवल उपाधि प्राप्त करने के लिए शिक्षा ग्रहण कर रही ह। 20 प्रतिशत छात्राओं का मानना है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने से सशक्त हो जायेंगे। 07 प्रतिशत जनजातिय छात्राओं का मानना है कि हमें परिवार पढ़ा रहा है तो हम पढ़ रहे हैं।

तालिका क्रमांक – 05 संविधान के द्वारा प्राप्त अधिकारों के प्रति जागरूकता

क्र.	तथ्य	हां	नहीं	योग
1	जनजाति छात्राओं को प्राप्त अधिकारों की जानकारी	80 %	20 %	100 %
2	जनजाति छात्राओं को प्राप्त कानूनों की जानकारी	70 %	30 %	100 %

स्त्रोत – महाविद्यालय की छात्राओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त आंकडे

उपयक्त तालिका क्रमांक 05 से स्पष्ट होता है कि 80 प्रतिशत जनजाति छात्राओं को संविधान के द्वारा प्राप्त अधिकारों की जानकारी है, अधिकारों के साथ ही 70 प्रतिशत छात्राओं को महिलाओं से संबंधित कानूनों की जानकारी है।

तालिका क्रमांक – 06 वर्तमान में आपके परिवार में किसी महिला का शोषण हो रहा है

क्र.	तथ्य	हां	नहीं	योग
1	परिवार में महिला का शोषण हो रहा है	15 %	85 %	100 %

स्त्रोत – महाविद्यालय की छात्राओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त आंकडे

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 6 से स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में जनजाति छात्रायें अपने अधिकार एवं कानून के प्रति जागरूक हुई है। 15 प्रतिशत जनजाति छात्राओं के परिवार में महिला का शोषण हो रहा है, शोषण का कारण है, घरेलू हिंसा पुत्र के न होने पर ताने देना, खेत में काम करने के लिए दबाव बनाना।

तालिका क्रमांक – 07 लिंग भेद एवं भ्रूण हत्या के प्रति छात्राओं का दृष्टिकोण

क्र.	तथ्य	हां	नहीं	योग
1	लिंग भेद उचित है	10 %	90 %	100 %
2	भ्रूण हत्या उचित है	05 %	95 %	100 %

स्त्रोत – महाविद्यालय की छात्राओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त आंकडे

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 07 से स्पष्ट होता है कि जनजाति छात्रायें लिंगभेद एवं कन्या भ्रूण हत्या को अनुचित मानती है। जनजाति छात्राओं का मानना है कि जब हमें संविधान के द्वारा समानता का अधिकार प्राप्त है तो ये भेदभाव क्यों ? हमें भी स्वस्थ एवं स्वतंत्रपूर्वक जीनें का अधिकार है।

तालिका क्रमांक – 08 महाविद्यालय में चलने वाली योजनाओं का लाभ

क्र.	योजनाओं के नाम	हां	नहीं	योग
1	गांव की बेटी योजना	80 %	20 %	100 %
2	निःशुल्क पुस्तक	100 %	.	100 %
3	निःशुल्क स्टेशनरी	100 %	.	100 %
4	आवास योजना	40 %	60 %	100 %
5	आवागमन योजना	55 %	45 %	100 %

स्त्रोत – महाविद्यालय की छात्राओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त आंकडे

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 08 से स्पष्ट होता है कि जनजाति छात्रायें महाविद्यालय में चलने वाली योजनाओ का लाभ ले रही हैं जो छात्रायें योजनाओं का लाभ नहीं ले सकी है वह छात्रायें योजनाओं से संबंधित दस्तावेज तैयार नहीं करवा पायी थी।

शासकीय महाविद्यालय बिछुआ की छात्रायें शिक्षा एवं कानून के प्रति जागरूक हुई है। छात्राओं ने अपना लक्ष्य भी निर्धारित किया है कि भविष्य में वे क्या बनना चाहती हैं परंतु उन्हें अपने लक्ष्य की प्राप्ति कैसे होगी इसकी जानकारी नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि छात्राओं को विषय के आधार पर कैरियर मार्गदर्शन दिया जाये। शिक्षा ही वह माध्यम है जो छात्राओं में न केवल आत्मविश्वास वैध करती है, बल्कि अपने अधिकारों, महिलाओं से संबंधित कानूनों को जानने एवं अन्याय होने पर सामना करने की शक्ति प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

जैन सुरेशचंद्र, जैन निमित : 'महिला अधिकार (कानून)', तुलसी साहित्य पब्लिकेशन, मेरठ।

तिवारी शारदा, 2007 : 'शिक्षा का समाजशास्त्र', अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली।

शर्मा, वीरेन्द्र प्रकाश, 2013 : 'रिसर्च मेथडोलॉजी', आठवां संस्करण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

शर्मा, पी. आर. 2011 : 'भारतीय नारी तथा कानूनी संरक्षण', पाइन्टर पब्लिकेशन, जयपुर।

————————

प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण का भौगोलिक अध्ययन

बालाघाट जिले क विशेष संदर्भ मे

डॉ. आर. पी. यादव,
विभागाध्यक्ष भूगोल
शासकीय महाविद्यालय बिछुआ

मीना ठाकरे, अतिथि विद्वान भूगोल
शासकीय महाकोशल कला एवं वाणिज्य
स्वशासी महाविद्यालय जबलपुर

शोध सारांश :–

भारत के हृदय स्थल के रूप में स्थित मध्यप्रदेश प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता विशेषकर वन एवं वन्यप्राणियों की विविधता के लिए जाना जाता ह। वहीं मध्यप्रदेश राज्य का बालाघाट जिला प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण जिला है। इस जिले के 52 भाग में घने वन है, जो कि उष्ण कटिबंधीय अद्ध पर्णपाती वन है। ये वन 100 सेंटीमीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते है। बालाघाट के अलावा सीधी, शहडोल, जिलों में भी इन वनों का विस्तार है। इन वनों में बीना धारा, जामुन, महुआ, सेजा, हर्रा, तिन्सा आदि के अतिरिक्त सागौन, साल, नीम, आदि की भी बहुलता है। राष्ट्रीय वन विभागा ने अनुसरण में जनभागीदारी सुनियिचत करने के लिए वन विभाग ने ''संयुक्त वन प्रबंधन'' वन सुरक्षा समिति, ग्राम वन समिति, इको विकास समिति आदि की अवधारणा को अंगीकार किया है। बालाघाट जिले के सभी विकासखंड म पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए आठ साल से रक्षा सूत्र बांधकर पौधा रोपण कार्यक्रम अभियान चलाकर लोगों को इसके प्रति जागरूक किया जा रहा है।

पारिभाषिक शब्दावली –संसाधन, पर्यावरण, उष्ण कटिबंधीय।

प्रस्तावनाः–

प्रकृति ने मानव को अनेक संसाधन दिये है। प्रकृति प्रदत्त इन संसाधनों में जैवीय संसाधनों को विशेष महत्व प्राप्त है। मावन जीवन का आस्त्वि जैविय संसाधनों पर आधारित ह, क्योंकि मानव समाज अपनी विविध आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए इन्ही जैविय संसाधनों का उपयोग करता है। जैवीय संसाधन थल एवं जल दोनों ही स्त्रोतों से प्राप्त होते है। वहीं प्राकुतिक वनस्पति और जीव जंतुओं को स्थलीय संसाधनों में सम्मिलित किया जाता है। प्राकृतिक वनस्पति का स्थलीय संसाधनों म सर्वाधिक महत्व है। प्राकृतिक वनस्पति एक महत्वपूर्ण संसाधन होने के साथ ही वातावरण की प्रत्यक्ष सूचक होती है। किसी प्राकृतिक वातावरण का उपयोग किस तरह से किया जा सकता है, इसका भी अनुमान प्राकृतिक वनों से लगाया जा सकता है। यह मानव के लिए प्रकृति का अनुपम उपहार है। प्राकृतिक वनस्पति का संसाधन के रूप में पयोग आदिकाल में शुरू हो गया था। प्राकृतिक वनस्पति का दूसरा अंग घास, आज के विकसित पशुपालन उघोग का सबसे बडा आधार है। इसी प्रकार किसी भी देश की अर्थव्यवस्था पर वहां की प्राकृतिक वनस्पति का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । बालाघाट जिले में भी

दूसरे जिलों की तुलना में सघन वन क्षेत्र है। यहां 1334 वर्ग किलो मीटर सघन वन क्षेत्र है। मध्यप्रदेश के चार वन मंडल भी बालाघाट जिले में है। बालाघाट जिले की अपार वन संपदा का प्रबंधन व संरक्षण भी सतत् विकास के संकल्प को ध्यान में रख कर किया जा रहा है।





अध्ययन का क्षेत्र :– प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र बालाघाट जिलें में वनों की स्थिति, वन संसाधन, वनों का प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण का भौगोलिक विश्लेषण पर केन्द्रित है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

1.प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य वन संसाधनों का दोहन इस प्रकार करना होगा जो पर्यावरण एवं विकास दोनों के हित में हो।

2.जब पर्यावरण और वन संरक्षित किए जाये तब उसके सुनियोजित उपयोग का लाभ स्थानीय निवासियों

को मिलना चाहिए।

3.ग्रामीण जनता को वन संपदा तथा वनोपज से आर्थिक लाभ पहुचाना।

4.संसाधनों का न्यायोचित उपयोग सुनिश्चित करना ताकि वे वर्तमान के साथ–साथ भावी पीढ़ियो की आवयश्कताओं की भी पूर्ति कर सके।

5.स्थानीय लोगों की जैव विविधता संरक्षण की पंरपरागत विधियों की रक्षा करना।

6.वना की कटाई जंहा तक सभव हो रोका जाना चाहिए।

7.संकटग्रस्त पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण करना।

आंकड़ो का संकलन :– प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक आंकडों पर आधारित है। पुस्तकालय अध्ययन, इंटरनेट, समाचार पत्र–पत्रिकाओं, भारत सरकार के विभिन्न संस्थानों के प्रकाशन, प्रदेश सरकार के प्रकाशन द्वारा आंकडे प्राप्त कर इस शोध पत्र को तथ्य परख बनाया गया है।

शोध प्रविधि :– शोध पत्र में ग्रंथालय अध्ययन पद्धति का उपयोग किया गया है।

विश्लेषण

वन संसाधन :– प्राकृतिक वनस्पति में वृक्ष, झाडियां और घास के मैदान आते है। यह संसाधन सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि मावन के प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ती और उसके वातावरण की उपयोगिता इसी संसाधन पर निर्भर करती है। वन सम्पदा की दृष्टि से मध्यप्रदेश एक समृद्ध राज्य है, और इसी राज्य के बालाघाट जिले में सर्वाधिक 52 वन पाये जाते है। ये वन भौगोलिक वितरण की दृष्टि से उष्ण कटिबंधीय वन की श्रेणी में आते है। ये वन चौडी पत्ती वाले पतझड़ वन होते है । इन वनों में उष्ण कटिबंधीय आर्द्रवन भी पाये जाते है। चूंकि बालाघाट जिला जलवायु वर्गीकरण की दृष्टि से 200 सेमी से अधिक वर्षा, उच्च तापमान, उच्च आर्द्रता वाले प्रदेश में आता है। इस कारण यहां वृक्ष वर्ष भर हरे– भरे रहतें है। बालाघाट जिले के बैहर और परसवाडा विकासखंड में इन वनों की प्रधानता है। बालाघाट जिले के उष्ण कटिबंधीय मानसूनी जलवायु वाले ऐसे क्षेत्र जहां वार्षिक वर्षा 100 से.मी से 200 से.मी के बीच है वहां चौडी पत्ती वाले साल सागौन, ताड, शीसम, बांस, आम, जामुन, बरगद, तथा नीम मुख्य वृक्ष है। ये वन आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। गौण वनों के अन्तर्गत खैर वृक्ष ,लाख,हर्रा, तेंदूपत्ता ,गोंद, बबूल, धावडा आदि आते है। भोजन, वस्त्र, औघोगिक कच्चा माल, जडी –बूटियां, ईंधन के लिए लकडी, पशुओं के लिए चारा, तथा वनों से असंख्य लोगो को रोजगार व आजीविका प्राप्त होती है। लकडी काटने, लकडी चीरने व वन आधारित उघोगों से लाखों लोगों को रोजगार मिलता है। मृदा अपरदन पर नियंत्रण ,बाढ़ों की रोकथाम, मरूस्थल के प्रसार पर नियंत्रण, मिटटी की उर्वरता को बढ़ाना अप्रत्यक्ष लाभ है। वनों में निवास करने वाली आदिम जातियां भी अपने जीवन निर्वाह के लिए वनों से वस्तुएं एकत्र करती है।

बालाघाट जिले में वन प्रबंधन हेतु कार्य आयोजन की क्षेत्रीय इकाईयां निरंतर काम कर रही है। जिसमें दक्षिण बालाघाट क्षेत्रीय इकाई है। जिसके अन्तर्गत वन सुरक्षा समिति, ग्राम वन समिति, ईको विकास समिति काम करती है। बालाघाट जिले में ग्राम वन समिति द्वारा 08 गांवों के आदिवासियों ने 500 एकड क्षेत्र में जंगल तैयार कर दिया है।

बिगडे वन क्षेत्र में वन खंड सीमा से 05 किलोमीटर दूरी तक आने वाली समितियों को ग्राम वन समिति कहा जाता है और ग्राम वन समिति के सदस्य जिले में जैविक दबाव के कारण विरल वनों को सघन करने का काम करते है। बालाघाट जिले में भी राष्ट्रीय वन नीति के अनुसरण में जनभागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए वन विभाग ने संयुक्त वन प्रबंधन की अवधारणा को स्वीकार किया हैं। जिसके तहत् ग्रामीण आदिवासी जनों द्वारा वनों के प्रबधनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है।

वनों पर बढते जैविक दबाव, बढती जनंसख्या तथा कृषि हेतु जमीन की बढती आवश्यकता के कारण वन क्षेत्रों में अतिक्रमण एक गंभीर समस्या है। वर्तमान में संगठित एवं हिसंक अतिक्रमण के

प्रयास भी हो रहे है। कई अशासकीय संगठनों द्वारा भी वन क्षेत्र में अतिक्रमण को प्रोत्साहित करतें की घटनाए भी प्रकाश में आई है। इन्ही घटनाओं को देखते हुए जनभागीदारी एव क्षेत्रीय इकाईयों की सक्रियता से वन अपराधों पर नियंत्रण के लगातार प्रयास किए जा रहे है। पिछले कुछ वर्षो से अवैध कटाई के प्रकरण, अवैध चराई के प्रकरण, अवैध परिवहन के प्रकरण, अतिक्रमण, अवैध खनन जैसे अपराध कम हुए है। वन सुरक्षा की सुनवाई हेतु इंटरनेट आधारित वन अपराध प्रबंधन प्रणाली विकसित की गई है। अग्नि दुर्घटनाओं की सामयिक जानकारी प्राप्त करने हेतु फायर अलर्ट मेसेजिंग सिस्टम विकसित की गई है। अतः जिले में वन संसाधनों के प्रबंधन व पर्यावरण संरक्षण की दिशा में निरंतर सफलता पूर्वक प्रयास गतिमान है।

बालाघाट जिला जलवायु वर्गीकरण की दृष्टि से भारत के 0 डिग्री अंक्षाश से 30 डिग्री दक्षिणी अक्षांश के बीच आता है। निश्चित तौर पर यहां पाये जाने वाले वन भी उष्ण कटिबंधीय वन कहलाते है। जिनका प्रबंधन व संरक्षण पर्यावरण सुरक्षा, बढते वैश्विक तापन, बढते ग्लेशियर, बढता समुद्र जल स्तर, बढता भू–स्खलन, भूमि की घटती उर्वरता, बाढ व सूखा जैसी समस्या के निदान हेतु जरूरी है। स्थूल दृष्किोण से पृथ्वी के भौतिक घटको स्थल, जल, वायू, मृदा को पर्यावरण का प्रतिनिधि माना जाता है, क्योकि यह तत्व प्रत्येक स्थान पर मनष्य को घेरे रहते है। किन्तु इनके अतिरिक्त और भी जैविक तत्व वन, पशु और जीवाणओं का भी मनुष्य पर प्रभाव परिलक्षित होता है। अतः वन संसाधन प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण के एक भौगोलिक अध्ययन में यदि मानव अपने आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में उत्थान और प्रगति करता है, और पर्यावरण के उक्त घटक अपने प्रकृतिक रूप में रहते है। तब उनसे चक्रिय अवस्था में व्यवधान नही आता है, अथवा प्रकृति में संतुलन बना रहता है गुणवत्ता में कोई ह्रास नही होता है। तो कहा जाएगा कि पर्यावरण सुरक्षित करते हुए वहीं के लोग उन्नति कर रहे है। पर्यावरण का संरक्षण मावन, समाज एवं प्रकृति के बीच के संबंधों को अनुकूलतम बनाने के लिए आवश्यक है।

संन्दर्भ सूची :–

1. डॉ नरेन्द्र मोहन अवस्थी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल
2. कुरूक्षेत्र पत्रिका
3. योजना पत्रिका
4. ''मध्यप्रदेश का भूगोल'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल
5 मासिक पत्रिका जनसंपर्क विभाग बालाघाट कार्यालय
6. रिपोर्ट, मध्यप्रदेश वन विभागा
7. मासिक पत्रिका, दक्षिण वन मंडल, बालाघाट

जनजातीय विकास के समक्ष गरीबी की चुनौती

डॉ.आर.एस.त्रिपाठी
प्राध्यापक, समाजशास्त्र,
शासकीय तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कटनी–483501 (म0प्र0)
rstripathi57@gmail.com

शैलेन्द्र वर्मा
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म0प्र0)
versir17@gmail.com

विकास प्रक्रिया और राष्ट्रीय नियोजन में निर्धनता उन्मूलन हेतु चिन्हित किया गया सबसे बड़ा समूह जनजातियॉ है, जो जनसंख्या क्षेत्रीय साधनहीनता और आप निर्धनता सहित सामाजिक मानव विकास संकेतकों से विश्लेषण संदर्भ में चुनौतीपूर्ण स्थिति प्रस्तुत करती है। विकास का चेहरा मानवीय तभी हो सकता है जब देश के 8.36 करोड़ लगभग जनजातीय आबादी को सम्मानजनक जीवन साधन और जीवन प्रत्याशा स्थिति में सुधार हो। वैश्वीकरण की प्रक्रिया और अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के दौर में गरीबी के अवधारणा को पुनः परिभाषित किया है। यह सापेक्षिक पावर्टी इंडेक्स आप निर्धनता और अधिकारिता के संदर्भ में आयी है। इस संदर्भ में डांडेकर फार्मुला से आगे तेदुलकर आंकलन और श्री वी.के.राव कमेटी की रिपोर्ट के आंकलनों का सूक्ष्मता से अध्ययन जनजातीय गरीबी के परिमाण के के लिए करना प्रयास होगा ।

विकास के दो पैराडाइम होंगे लोकतांत्रिक एव पूॅजीवाद की बहस साथ में हो। अरूधती राय का कहना है कि वे कार्य विकास है जो अधिक स अधिक लोगों को लाभ दे सके। आने वाली पीढ़ी को गरीबी की सौगात न दे सके यह प्रयास होना चाहिए। गरीबी का स्थाई हल नहीं पाना त्रासदीपूर्ण है। संसाधन बहुलता के बीच भी रहने वाले जनजातीय समुदाय गरीबी के कुचर्क में फॅसे हैं। महीने भर की नकद आमदनी राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय का 10 गुना तक कम है। कुपोषण और निरक्षरता को जोड़ दे तो आदिवासी मतलब गहन जंगल में झोपड़ी में रहने वाला कुपोषित और निरक्षर परिवार है। यह देश की देहाती क्रांति का दूसरा पहलू है ।

उदारीकरण के बाद गरीबी मापन में ग्रामीण आदिवासी की स्थिति प्रति परिवार प्रतिदिन आमदनी 4 रू. की कल्पना की गई, दूसरी तरफ 2012 में कहा गया कि जिसकी ग्रामीण क्षेत्र प्रतिदिवस 32 रूपय तक रोजी आमदनी है वह गरीब है। शहर में यह मानदण्ड 47 रूपये माना गया है। गरीबी की राजनैतिक अर्थशास्त्र प्रति व्यक्ति कैलोरी मापन तक अधिक सहमत है यहॉ न्यूनतम आय और उपभोग स्तर पर भी बहसें पढ़ी जा सकती हैं। योजना आयोग के आंकलन और शेष अन्य अर्थशास्त्री

गरोबी आंकलन में मतभेद रखते हैं। आंकड़े स्वतंत्र सर्वेक्षण के अलग और राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अलग–अलग हैं। इससे निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम को रोजगार केन्द्रित किया गया जैसे मनरेगा एजेन्सियॉ स्वयं भ्रष्टाचार में लिप्त पाई गईं। आज जिन राज्यों में आदिवासी अधिक जनसंख्या में हैं, वहॉ निर्धनता सीमा रेखा में अधिक जनसंख्या है। ऋण ग्रस्तता के वे आंकड़े जो जनजातीय क्षेत्रों में कमजोर किसानों को भी लेकर एकत्रित किए गए वे स्पष्टतया असफल सूचकांक हैं। स्थानीय साहूकारों के कर्ज अधिक हैं और सूखा अकाल में फिर बढ़ जाते हैं। अनुत्पादक लोन आदिवासो किसानों को निर्धनता के दुष्चक्र में पुनः डाल देता है। साहूकारी के ऋण से बंधुआ मजदूरी की बाध्यता हो जाती है। गॉव जो आदिवासी इलाके के हैं वहॉ आतरिक गैर बराबर जमीन स्वामित्व और कृषिगत अभावों की उपज है। वस्तुतः बंधुआ मजदूरी ऋण ग्रस्तता के साथ ही आदिवासी क्षेत्रों में तेजी से बाहरी क्षेत्रों की ओर मजदूरों का मौसमी प्रवास हो रहा है। विशेषकर मध्यप्रदेश के मजदूर सूरत, अहमदाबाद जैसे क्षेत्रों में रोजगार कमाने जाते हैं यह परिवार निर्धनता का प्रमाण है। भूमिहीन प्रवासी मजदूरों को कानूनी सुरक्षा देने में सरकार पीछे रह जाती है अथवा निर्धन प्रवासी मजदूरों को रोजगार उनके गॉव स्तर पर विभिन्न सरकारी योजनाओं के बावजूद दे नहीं पाती। रोजगार गारंटी योजनाएं जो भूमिहीन ग्रामीण मजदूरों को देनी है अथवा जवाहर रोजगार योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना अपने प्रशासनिक नौकरशाही के दबाव और कागजी खानापूर्ति का शिकार हो जाती है। यह चुनावी लोकप्रियतावाद है जो अधिक से अधिक आदिवासी और सरकार के बीच बिचौलिया पैदा करता है। सरकारी रोजगार योजनाएं भ्रष्टचार से मुक्त नहीं है। आदिवासियों की निर्धनता वास्तव में विकास अवधारणा के वास्तविक, व्यावहारिक या जमीन मूल्यांकन की मॉग करती है। मध्यप्रदेश में भी निर्धनता की सापेक्षिक स्थितियॉ कई प्रश्नों का उत्तर चाहती हैं –

1. आजीविका सम्बंधी प्रयत्नों का जमीनी खाका क्या हो ?
2. स्थानीय संसाधनों के उचित दोहन और प्रमुखतः वन नीति।
3. रोजगार असुरक्षा की दशाएं।
4. ग्रामीण पलायन की दशाएं।

आदिवासी एक परम्परागत समुदायों की जातीय संरचना से भिन्न स्थानीय विशेषताओं का समूहन है, जो आज भी निर्धनता को ईश्वर का दण्ड मानता है। भारत की GDP 7% से 9% या 12% हो जाए। दूर घने जंगलों के आदिवासी इससे कोई ताकत नहीं पा सकते हैं, अपितु मिश्रित हिन्दू जनजाति प्रकार के गॉवों में विषमता की स्थिति यथावत पोषित होकर कार्य करती है। यह प्रयोग किया गया कि परिवार को इकाई मानकर जनजातियों का विकास करना होगा। व्यक्ति को विकास की इकाई न मानकर परिवार को माना जाए। इस तरह बाहर रोजगार हेतु पलायन राकने हेतु परिवार की आय सक्षमता बढ़ाने का तर्क दिया गया परन्तु पंचायत ढॉचे के राजनैतिकरण एवं डिलीवरी एजेन्सी बनाने से पुनः भेदभाव और भ्रष्टाचार का कार्यक्रम आगे बढ़ा । इसके पीछे रोजगार गारंटी योजनाओं के उद्देश्य विलीन हो गए ।

जनजातियों के बीच कार्यकर्ता जाते हैं वे उन्हें छोटे–छोटे जरूरतों के लिए पंचायत से जिला तक भटकते पाते हैं। विरणात्मक न्याय तो है ही नहीं जैसा होना था देश की बड़ी समस्या कालाधन और भ्रष्टाचार है। आदिवासी इलाकों को अशांत बनाए रखने में आगे देश के मध्य क्षेत्र में 28 जिलों जो नक्सलवाद की चपेट में हैं (छत्तीसगढ़ एवं मध्यप्रदेश) उनकी गरीबी की अनुपातिक दशा निर्धनता से शोषण से असंतोष और असंतोष से हिंसा का प्रवाह पिछले दो दशकों से जारी आंदोलनों का बड़ा कारण समझ में आता है ।

8.50 करोड़ आबादी जनजातीय विकास के मिथक एवं यथार्थ के द्वंद के भॅवर में व्यवस्था के संकटों और असफलता के संकट का शिकार कही जा सकती है। स्वैच्छिक संस्थाओं का आदिवासियों के उत्थान के नाम पर सरकारी धन का मनमाना उपयोग और आय–व्यय का ऑडिट खेल है। सत्ता, शासन, राजनैतिक पार्टियॉ, नौकरशाही, बुद्धिजीवी आदिवासी मामलों के विशेषज्ञ सब प्रतिवेदन पर प्रतिवेदन में व्यस्त हो जाते हैं। इसी बीच कम जानी पहचानी संस्थाएं और रोल मॉडल व्यक्ति सामने आ जाते हैं जिन्होंने बालाघाट से बस्तर तक कार्य किया है। जो प्रदेश के आदिवासी अंचल में बड़े नौकरियों के प्रलोभन से बाहर आकर उत्थान का नाम सार्थक कर रहें हैं।

वैश्वीकरण के इस युग में आदिवासियों की गरीबी और साधनहीनता में वास्तविक कमी होगी यह कहना आज असंभव है, परन्तु बदलाव को आज रोका नहीं जा सकता। आंग्ल–मानवशास्त्र, बेरियर ऐल्विन, परम्परा और कही कही खले मानवशास्त्र विश्वविद्यालयों के शोध ग्रंथ सरकारी प्रतिवेदन, भारत मानव शास्त्रीय सर्वेक्षण संगठन का कार्य बौद्धिक अभ्यास से आगे चौराहे पर लोकप्रिय समाजशास्त्र नहीं बना जैसा 2005 से 'Public Sociology' का आहवान पश्चिमी देशो विशेषकर अमेरिका में हुआ है। यह भारत में समाज विज्ञान की विफलता और जड़ता का शिकार माना जा सकता है। मध्यप्रदेश राज्य आदिवासी उपयोजना का बड़ा क्षेत्र है। यहॉ यह योजना TSP (Tribal Subplan) का तीन खण्ड बनाया गया –

1. घनी आदिवासी के क्षेत्र
2. विशेष आदिवासी समूह का पाकेट
3. अति विशेष पिछड़े क्षेत्र व आदिवासी विरल क्षेत्र

एक में क्षेत्र का विकास बांकि दो वर्ग लाभार्थी परिवार मूलक को शामिल किया। छठवीं पंचवर्षीय योजना को क्षेत्र केन्द्रित एवं परिवार केन्द्रित मिलाकर समग्र आदिवासी विकास परियोजना का प्रयोग प्रारंभ किया गया तब छत्तीसगढ़ राज्य में सम्मिलित था। 'कल्चरल एप्रोच' को अधिक महत्व दिया गया। राज्य के 50 में 33 जिले जनजातीय विकास योजना में आते हैं। इसमें 4 पूर्ण तथा 29 जिले आंशिक रूप से सम्मिलित किए गए। 26 प्रमुख ITDP 5 मध्यम एकीकृत जनजातीय परिषद, 30 MADA प्रारंभिक परियोजना क्षेत्रों का विकास खण्डवार चुना गया जो 89 ट्राइबल प्रधान एवं 92 सामुदायिक ब्लाक (CDP) आदिवासी उपयोजना के लिए चुने गए थे। विकास संकेतकों को देखा जा सकता है ।

बैंक सुविधाएं (2001)	ST	SC	GEN
	13.20	19.60	27.92

संवर्ग	छत्तीसगढ़	म.प्र.	उड़ीसा	झारखण्ड
	2004–05 आंकलन : निर्धनता प्रतिशत			
ST	54.70	58.60	75.60	54.20
SC	32.70	42.80	50.20	57.90
OBC	33.90	29.60	36.90	40.20
GEN	29.20	13.40	23.40	37.10

निर्धनता आकलन

हेड रेसियो (HCR)	ST	SC	OBC	OTHER
ग्रामीण (म.प्र.)	58.60	42.80	29.60	13.40
नगरीय (म.प्र.)	44.70	67.30	55.50	20.80
अखिल भारतीय ग्रामीण (म.प्र.)	47.20	36.80	26.70	16.10
अखिल भारतीय नगरीय (म.प्र.)	33.30	39.90	31.40	16.00

म.प्र. हेडकाउंट अनुपात 1973–74 की तुलना में 2007 में 62% कमी आई ।

CASTE GROUPS	HCR	PG	SPG
ST	47.21	08.45	02.50
SC	57.14	12.53	04.02
OBC	32.20	06.40	01.80
OTHER	11.70	01.90	00.46

जनजातियों में निर्धनता

वर्ष	ग्रामीण ST	ग्रामीण SC	ग्रामीण OTHER	ग्रामीण TOTAL
2004-05	61.90	52.70	26.20	41.80
1983-84	63.80	52.70	37.00	45.60

GOI Planning Commision Report.

- D.C.Shah Chronic Poverty in Remote Rural Areas, Evidence from Central Tribal Belt of India, Planning Commission, 2008, MPISSR.
- Poverty Reduction Strategy for M.P. By Shovan Roy, Amita Shah, A.K.Chourasia, Rahul Benerjee, IGIDR, Mumbai, 2008.

III

	SC	ST	सभी
93-94	62.40	65.90	50.00
04-05	53.40	62.30	41.80
% परिवर्तन	(-) 08.90	(-) 03.60	08.30
11-12	31.50	45.30	25.70
% परिवर्तन	(-) 22.00	(-) 17.00	(-) 16.10

Source : Business Standard, March 14, 2014.

1983–84 के आंकड़ों से पता चलता है कि 63.80 प्रतिशत जनजातियॉ गरीबी रेखा से नीचे थीं। 1993–94 में कम होकर 52.20 प्रतिशत 1999–2000 में 45.90 प्रतिशत ग्रामीण प्रतिशत तक कम हो पाया । 2004–05 के संशोधित दांडेकर फार्मूला से यह 61.90 प्रतिशत दर्ज किया गया जबकि राष्ट्रीय औसत 45.60 प्रतिशत से घटकर 41.80 प्रतिशत तक हुआ ।

राज्यों में उड़ीसा 75.60 प्रतिशत, मध्यपदेश 58.60 प्रतिशत, झारखण्ड 54.00 प्रतिशत, छत्तीसगढ़ की 56.00 प्रतिशत जनजातियॉ निर्धनता सीमा रेखा के भीतर गणना में दर्ज की गईं । आसाम की 14. 00 प्रतिशत आदिवासी जनसंख्या गरीबी रेखा के भीतर थी। कर्नाटक 23 प्रतिशत, तमिलनाडू 32.10 प्रतिशत, उत्तराखण्ड में 43.20 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 32.40 प्रतिशत जनजाति की आबादी गरीबी रेखा से नीचे 2004–05 गणना वर्ष में पाई गई।

अरविंद पनगढ़िया ने अनुसूचित जनजातियों में गरीब जनसंख्या का आंकलन निम्नानुसार किया है –

वर्ष	उड़ीसा	म.प्र.	छत्तीसगढ़	गुजरात	झारखण्ड
1993-94	80.60	68.70	64.20	51.30	71.20
2004-05	82.80	77.50	62.90	54.70	59.80
2009-10	62.70	60.90	65.00	47.60	57.60
2011-12	62.50	53.40	51.10	35.90	49.90

Poverty by Social, Religious and Economic Groups in India & its Largest States 1993-94 to 2011-12 ISERP, Working Paper No.2013-02, Page 18-19.

मध्यप्रदेश में जनजातियों के अलग–अलग प्रादेशिक एवं जिलावार जनसंख्या का आंकलन किया जाना जरूरी है क्योंकि निर्धनता की परिभाषा और इसका मानदण्ड जनजातीय समुदाय की आर्थिक स्थिति को देखते हुए कई अन्य संकेतकों को मानदण्ड के रूप में लिया जाना चाहिए जैसा कि मानव विकास प्रतिवेदनों में संकेत किया गया है। म.प्र. के जिलों के स्तर पर कुल जनसंख्या में निर्धन

जनसंख्या का प्रतिशत करके उन्नत और मध्यम उन्नत वर्गीकरण से समझने का प्रयास किया गया है । इसके आधार पर जनजातीय जिले पिछड़े और निर्धनतम समूह में चिन्हित किए गए हैं ।

आदिवासी जनसंख्या बहुल जिले	प्रतिशत	उन्नत	प्रतिशत	मध्यम	प्रतिशत
डिंडौरी	80.00	नीमच	00.10	रीवा	43.60
उमरिया	85.00	ग्वालियर	09.90	कटनी	49.50
मण्डला	77.00	भिण्ड	08.90	नरसिंहपुर	44.00
शहडोल	64.10	देवास	09.80	बालाघाट	49.70
सीधी	60.60	पूर्वी निमाड़	07.40	शिवपुरी	43.00
रायसेन	60.10	बड़वानी	13.50	पन्ना	47.60
सिवनी	61.80	धार	13.50	सीहोर	49.10
झाबुआ	57.00	इंदौर	12.20	हरदा	34.70
विदीशा	54.00	मंदसौर	17.80	होशंगाबाद	32.70
भोपाल	53.00	सतना	16.80		
सागर	54.00	श्योपुर	24.50		
छतरपुर	54.00	मुरैना	14.90		
छमोह	56.00	दतिया	14.20		
बैतूल	57.00	गुना	26.00		
टीकमगढ़	49.20	रतलाम	29.80		
		उज्जैन	27.30		
		शाजापुर	27.60		
		पश्चिम निमाड़	15.40		
		राजगढ़	12.10		
		छिन्दवाड़ा	26.40		

उच्च निर्धनता (ग्रामीण राज्य औसत से) वाले जिले हैं–डिंडौरी, मण्डला, उमरिया, शहडोल, सीधी, रायसेन, सिवनी, झाबुआ जिले में उच्च निर्धनता की गणना 2004–05 सर्वेक्षण में पाई गई थी। नीमच, ग्वालियर, भिण्ड, देवास, धार, इंदौर, मंदसौर जैसे जिले औद्योगिक कारखानों के कारण प्रतिव्यक्ति सकल उत्पाद (GDP) में ऊंचा स्थान पाये रीवा, कटनी, नरसिंहपुर, बालाघाट मध्यम वर्गीकरण

म थे । म.प्र. के जिलों में आर्थिक विकास का स्तर निम्न पाया गया । इसका वर्गीकरण किया गया है। (बत्रा, त्यागी – 2008)

राज्य गरीबी स्तर से 50% से ऊपर तक निर्धनता	नीमच, बड़वानी, गुना, पश्चिमी निमाड़ रतलाम, दतिया, मंदसौर, देवास, भिण्ड
राज्य गरीबी स्तर से 50% से ऊंची निर्धनता औसत में	सागर, झाबुआ, सीधी, शहडोल, डिन्डौरी, मण्डला, उमरिया, रायसेन
राज्य निर्धनता औसत से 50% नीचे	सतना, ग्वालियर, मुरैना, इंदौर, धार, उज्जैन, शाजापुर, छिंदवाड़ा, जबलपुर, भोपाल, नरसिंहपुर
राज्य औसत के 50% बराबर औसत तक निर्धनता	होशंगाबाद, हरदा, श्योपुर, शिवपुरी, सीहोर, रीवा, टीकमगढ़, कटनी, दमोह, पन्ना, विदीशा, छतरपुर, बालाघाट, बैतूल

उपरोक्त विश्लेषण से संकेत मिलता है है कि झाबुआ, डिन्डौरी, मण्डला, जिले राज्य औसत निर्धनता से भो 50 प्रतिशत उच्च निर्धनता वाले जिले हैं। इन जिलों की मुख्य जनसंख्या आदिवासी प्रधान है। जिन औद्योगिक इलाकों में आदिवासी हैं जैसे धार, मंदसौर, छिंदवाड़ा, बालाघाट, बैतूल वहॉ औद्योगिक विकास से सकल उत्पाद GDP के उच्च होने के कारण निर्धनता प्रतिव्यक्ति आय ऊॅची होने से कम थी।

References

Himadri Sinha (2013), Tribal & Poverty Jharkhand Journal of Social Development, V (1).

Nishi Kant Panda (2006), Tribal Development: Imperatives and Compulsions, Orissa Review, December.

Amresh Dubey (2009), Poverty and Undernutrition among Scheduled Tribes in India: A Disaggregated Analysis, IGIDR Project.

Bharti Khambhare (2014), Economic Development of Tribals in Madhya Pradesh, Int.Journal of Creative Research Thoughts, Vol.2(8).

Priyanka Priya Darshni (2015), Tribal Development: Perspective Programmes & Critique, Asian Mirror, Int.Journal of Research, Vol.II(V).

Bhawani Shankar Nayak (2012), Need Based Development to Desired Development Locating the Freudian Idea in Social and Economic Development of Tribal after the New Economic Reforms, Journals of Arts and Humanities, Vol.1(2).

Devdas Sonavane (2014), Challenges of Tribal Development in Maharastra, National Monthly Referred Journal of Research in Commerce & Management Vol.(III).

District Wise Poverty Estimate for Madhya Pradesh State Planning Commission, M.P., 2008, Bhopal Cordinator S.P.Batra, C.Tyagi, Mangesh Tyagi.

आदिवासी विकास और शासन की योजनाएँ (छिन्दवाडा जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. शारदा प्रसाद विनाकिया
सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य
शासकीय महाविद्यालय, तामिया

शोध सारांश

आदिवासी शब्द दो शब्दों आदि और वासी से मिलकर बना है और इसका अर्थ मूल निवासी होता है भारत की जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत से भी अधिक भाग आदिवासियों का है। पुरातन लेखों में आदिवासियों को अत्विका और वनवासी भी कहा गया है। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए अनुसूचित जनजाति पद का प्रयोग किया गया है। आदिवासियों का अपना धर्म है। ये प्रकृति पूजक है और जंगल, पहाड, नदियों एवं सूर्य की आराधना करते है। आधुनिक काल में जबरन बाहय संपर्क में आने के फलस्वरूप इन्होने अन्य धर्म को अपनाना प्रारंभ किया। अधिकांश आदिवासी संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते है। जिले में आदिवासी विकास परियोजनाओं के माध्यम से संचालित विकास कार्यक्रमों से विकास को गति मिली है परंतु आवश्यकता यह है कि आदिवासियों को योजनाओं की अवधारणा से परिचित कराना है ताकि विकास की गतिविधियों में पूर्ण साझेदार बनकर लाभान्वित हो सकें। आदिवासियों के जीवन स्तर में प्रयासों के बावजूद भी सुधार का प्रभाव अपेक्षित नही है। स्वतंत्रता के 60 वर्षो बाद भी इन समुदायों का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर बेहद निम्न है। चूँकि यह आशा करते हैं कि शासन की नीतियों के अनुरूप प्रयास सार्थक सिद्ध होंगे। विकास योजनाओं और कार्यक्रमों के निर्माण एवं उन्हें लाग् करने में अपनायी नीतियों की विस्तृत समीक्षा कर बाधक तत्वों को दूर किया जायेगा।

प्रस्तावना

आदिवासी शब्द दो शब्दों आदि और वासी से मिलकर बना है और इसका अर्थ मूल निवासी होता है भारत की जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत से भी अधिक भाग आदिवासियों का है। पुरातन लेखों में आदिवासियों को अत्विका और वनवासी भी कहा गया है। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए अनुसूचित जनजाति पद का प्रयोग किया गया है। आदिवासियों का अपना धर्म है। ये प्रकृति पूजक है और जंगल, पहाड, नदियों एवं सूर्य की आराधना करते है। आधुनिक काल में जबरन बाहय संपर्क में आने के फलस्वरूप इन्होने अन्य धर्म को अपनाना प्रारंभ किया। अधिकांश आदिवासी संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते है।

छिन्दवाड़ा जिले को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयन के कारण प्रमुख रूप से यह है कि यह आदिवासी बाहुल्य जिले में से एक है, छिन्दवाड़ा जिले में आदिवासी जनसंख्या का 90 प्रतिशत भाग गौंड जनजाति जनसंख्या का है, एवं जिले में भारिया विकास अभिकरण पातालकोट स्थापित है, जो प्रदेश की विशेष पिछड़ी जनजाति में से एक है। आदिवासी बाहुल्य जिला छिन्दवाडा के विकास के लिए शासन द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं की संक्षिप्त जानकारी निम्नानुसार है–

छिन्दवाड़ा जिले में दो परियोजनाएँ

- एकीकृत आदिवासी विकास परियोजना तामिया एवं
- एकीकृत आदिवासी विकास परियाजना सौंसर,

एक विशेष पिछड़ी जनजाति हेतु भारिया विकास अभिकरण पातालकोट, तामिया।

प्रदेश के झाबुआ जिले में 80 प्रतिशत से अधिक आदिवासी आबादी, इसी क्रम में छिन्दवाड़ा जिले में 30 प्रतिशत से अधिक।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन में आदिवासी विकास कार्यक्रम और उनसे सम्बंधित योजनाओं की संक्षिप्त जानकारी को समाहित किया गया है। यह अध्ययन एक प्रकार के मेजकार्य है क्योंकि अध्ययन को पूर्ण करने में केवल द्वितीयक स्त्रोत (अध्ययन) सामग्री व आंकडों का प्रयोग किया गया है।

द्वितीयक स्त्रोत के रूप में विषय से सम्बंधित प्रकाशित संदर्भ पुस्तके, प्रकाशित/अप्रकाशित शोध प्रबंध/शासकीय प्रतिवेदन एवं रिर्पोट, शासकीय अभिलेख, गजेटियर, समाचार पत्र आदि सामग्रियों का प्रयोग किया गया है।

शासन की योजनाएँ एवं क्रियान्वयन

मध्यप्रदेश एवं छिन्दवाड़ा जिले में संचालित आदिवासी विकास योजनाएँ

- आदिवासी विकास योजनाओं की आवश्यकता
- समाजवादी समाज की स्थापना
- आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु,
- रहन–सहन के स्तर में सुधार,
- जीवन–स्तर की गुणवत्ता में सुधार,
- शिक्षा का प्रचार–प्रसार
- दो पक्षों की तुलना (तुलनात्मक सुधार),
- व्यक्तिवादी व्यवस्था में सुधार,

मध्यप्रदेश–आदिवासी विकास उपयोजना के उद्देश्य :–

- जनजातियों का एकीकृत ढंग से सर्वांगीण विकास करना,

- जनजातियों की सुरक्षा एवं शोशण से मुक्ति दिलाना,
- उपयोजना क्षेत्र का निर्धारण – समस्याआ को कार्य की दृष्टि से तीन भागों में बॉटा गया हैः–
  - आदिवासी जनसंख्या बाहुल्य क्षेत्र – आदिवासी उपयोजना,
  - बिखरी हुई जनजातियॉ – परिवार मूलक योजनाएँ,
  - विशेष पिछड़ी जनजातियॉ– व्यक्ति/परिवार मूल –मानव संसाधन विकास कार्यक्रम।

एकीकृत आदिवासी विकास योजनाएँ एवं विकास

- कृषि विभाग –
- उद्यानिकी विभाग :–
- पशुपालन विभागः–
- महिला एवं बाल विकास विभाग :–
  - आई.सी.डी.एस. पोशणाहार योजना,
  - धरती मॉ योजना,
  - आयुष्मति योजना,
  - शहरी पोषण आहार योजना।
- आवागमन एवं संचार (सड़क निर्माण),
- शिक्षा विभाग,
- विद्युत विभाग,
- भूमि संरक्षण विभाग,
- सहकारिता विभाग,
- वन विभाग,
- स्वास्थ्य सेवा विभाग,
- उद्योग विभाग–उद्यमी विकास संस्थान भोपाल, हाथ करघा उद्योग सौंसर, जिला उद्योग एवं व्यापार केन्द्र छिन्दवाड़ा,

मध्यप्रदेश एवं छिन्दवाड़ा जिले में आदिवासी विकास कार्यक्रम

आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा संचालित योजनाएँ

अ. संस्थाओं का संचालन

- प्राथमिक से उच्च–माध्यमिक तक शालाओं का संचालन,
- एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालयों का संचालन,
- उत्कृष्ट छात्रावास योजना,

ब. छात्रवृत्ति/शिष्यावृत्ति योजना

राज्य–छात्रवृत्ति (कक्षा 1 से10 तक), पोस्ट–मैट्रिक छात्रवृत्ति, छात्रावास एवं आश्रम शालाएँ शिष्यावृत्ति, प्रवीण्यता छात्रवृत्ति, छात्रगृह योजना, छात्रावास आगमन भत्ता।

स. शिक्षा प्रोत्साहन योजना

गणवेश वितरण योजना, विद्यार्थी कल्याण योजना, कन्या साक्षरता प्रोत्साहन योजना, मध्यान्ह भोजन योजना, शिक्षा प्रोत्साहन हेतु ग्राम पंवायतों को पुरुस्कार, अशासकीय संस्थाओं को अनुदान, सिविल सेवा परीक्षा प्रोत्साहन योजना, सर्वश्रेष्ठ छात्रावास /आश्रम एवं हाईस्कूल/ हायर सेकेन्डरी स्कूलों को पुरुस्कार योजना, बोर्ड परीक्षा शुल्क प्रतिपूर्ति, विदेशों में अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति,

द. व्यक्ति/परिवार/समुदाय मूलक योजना

अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण योजना, आदिवासी राहत योजना, अनुसूचित जनजाति बाहुल्य बस्ती विकास योजना, आदिवासी मंजरे/टोलों का विद्युतिकरण,कृषकों के कुँओं तक विद्युत लाईन विस्तार, आदिवासी संस्कृति परिरक्षण।

इ. मध्यप्रदेश आदिवासी वित्त एवं विकास निगम

– कृषि से संबंधित योजनाएँ, यातायात क्षेत्र से संबंधित योजनाएँ, सेवा क्षेत्र से संबंधित योजनाएँ, उद्योग क्षेत्र से संबंधित योजनाएँ, आदिवासी महिला–सशक्तिकरण योजना।

6. आदिवासी विकास और प्रशासकीय व्यवस्था

आदिवासो उपयोजना के मुख्य दो लक्ष्य रखे गये है

1. आदिवासियों का एकीकृत ढंग से सर्वांगीण विकास करना
2. आदिवासियों की सुरक्षा एवं हर तरह के शोषण से बचाना,

आदिवासी के विकास के लिए उनकी समस्यायों को तीन भागों में बॉटा गया

1. आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र, 2. बिखरी हुई जनजातियॉ 3. विशेष पिछड़ी हुई जनजातियॉ,

उपरोक्त आदिवासियों की समस्याओं के निवारण हेतु अलग पद्वतियॉ

1. आदिवासी उपयोजना,
2. परिवार मूलक योजनाएँ,
3. परिवार/समुदाय मूलक– मानव संसाधन विकास कार्यक्रम।

प्रदेश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल – 3.08 लाख वर्ग कि.मी.,

आदिवासी उपयोजना क्षेत्र – 0.93 लाख वर्ग कि. मी.,

कुल भौगेलिक क्षेत्रफल का 30.19 प्रतिशत,

प्रदेश में आदिवासी उपयोजना के तहत एकीकृत आदिवासी विकास परियोजना– 26 वृहद, 05 मध्यम, 30 मॉडा–पॉकेट तथा 06 लघु अंचल,

आदिवासी उपयोजना के अंतर्गत– जिले– 33, विकास–खण्ड– 92 पूर्ण एवं 89 आंशिक, ग्राम – 18144,

मध्यप्रदेश में कुल जनजातियॉ– 42, उपसमूह– 161, एवं 3 विशेष पिछड़ी जनजातियॉ – सहारिया, बैगा ,भारिया।

छिन्दवाड़ा जिले में दो एकीकृत आदिवासी विकास परियोजनाएँ– तामिया ,सौंसर। एक पातालकोट भारिया विकास अभिकरण– तामिया,

आदिवासी विकास परियोजनाओं की प्रशासनिक संरचनाः–

राजय सरकार स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान में रखना, आदिवासी क्षेत्रों के विकास कार्यक्रमों के मार्गदर्शन एवं संचालन के लिए मंत्री– मंडलीय उपसमितियॉ का गठन किया गया–

अध्यक्ष– मुख्य मंत्री,

सदस्य– योजना, आदिम जाति कल्याण ,वित्त, कृषि,

सचिव– आयुक्त, आदिम जाति कल्याण विभाग, के अधीन––

1. निदेशक आदिवासी विकास,
2. संभागीय स्तर,
3. जिला स्तर
4. परियाजना स्तर –

– वृहद–तामिया, मध्यम–सौंसर, अभिकरण–भारिया, मॉडा–लहगडुआ,

परियोजना सलाहकार मंडलः– आदिवासी उपयोजना के नियोजन, संचालन और अनुश्रवण का दायित्व, परियोजना स्तर पर कार्य करती है।

अध्यक्ष– परियोजना क्षेत्र का आदिवासी विधायक या शासन द्वारा नामांकित जनप्रतिनिधि,

सदस्य– जिला पंचायत अध्यक्ष, परियोजना क्षेत्र के गैर–आदिवासी विधायक, परियोजना क्षेत्र के जनपद पंचायत अध्यक्ष, जिला पंचायत के दो आदिवासी सदस्य, समाजसेवी गैर शासकीय दो व्यक्ति, मैनेजर स्थानीय बक, अध्यक्ष केन्द्रीय सहकारी बैंक, अध्यक्ष भूमि विकास बैंक,

सचिव– परियोजना प्रशासक (एकीकृत आदिवासी विकास परियोजना),

परियोजना सलाहकार मंडलः–

अ.– बैठकें– प्रत्येक तीन–तीन माह में कम से कम एक बैठक, कुल सदस्यों के 1/3 सदस्य उपस्थित होना चाहिए,

ब.– अधिकार– विकास कार्यों की प्रशासकीय एवं वित्तीय अनुमति देना, अधूरी योजनाओं को पूरा करना एवं लाभ निश्चित् करना,

स. दायित्व– क्षेत्रीय समस्याओं पर आधारित योजनाओं का कियान्वयन, निरीक्षण एवं मूल्यॉकन,

द. कार्य– 1. पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजना का प्रारूप तैयार करना, 2. एक निर्धारित योजना अधोसंरचना और मानदण्ड को ध्यान में एकीकृत योजना तैयार करना,

जुलाई 1977. में योजना आयोग द्वारा दो उपाय–

1. मॉडा– आदिवासी उपयोजना क्षेत्र के बाहर आदिवासी केन्द्रित आबादी कम से कम 10,000 ,
2. परिवार/ समुदाय उन्मुखी कार्यक्रम – आदिवासी केन्द्रित क्षेत्र – आदिवासी समुदाय के 3 या 4 गॉव और 50 प्रतिशत से अधिक आबादी आदिवासियों की हो।

विशेष–पिछड़ी जनजाति समूह–

मध्यप्रदेश में तीन विशेष पिछड़ी जनजाति समूह है :– सहारिया, बैगा एवं भारिया । इस हेतु विकास अभिकरण की स्थापना की गयी। मध्यप्रदेश के 13 जिलों में 10 विकास अभिकरण गठित हैं। इसी क्रम में छिन्दवाड़ा जिले में एक पातालकोट (भारिया) विकास अभिकरण, तामिया कार्यरत है।

सरकार द्वारा बजट आबंटन–

विशेष केन्द्रीय सहायता–

1. इस सहायता का उपयोग परिवारोन्मुखी, आयवर्धक योजनाओं एवं अंतःसंरचना विकास योजनाओं,
2. उपयोगिता प्रमाणपत्र प्रति तिमाही प्राप्त किया जाए एवं उपयोगिता प्रमाणपत्र के अभाव में विशेश केन्द्रिय सहायता को रोकी न जाए,
3. विशेष केन्द्रिय सहायता का प्रयोग 80 प्रतिशत, अंतःसंरचना विकास और 20 प्रतिशत व्यक्तिगत/परिवार उन्मुखी योजना पर व्यय किये जायेंगे,
4. वर्तमान में राज्य सरकार द्वारा शत प्रतिशत विशेष सहायता कोष सीधे एकीकत आदिवासी विकास परियोजना का उपलब्ध करा दी जाती है।
5. विशेष केन्द्रीय सहायता कोष का अन्य उद्देश्य के लिए अलग से मांग संख्या 41, 42, 68, 82, 83 निर्मित की गयी है।

संविधान के अनुच्छेद 275 (1)– संविधान के अनुसार भारत सरकार के संचय कोश में से एक निश्चित राशि प्रतिवर्ष विशेष सहायता के रूप में राज्य सरकार को प्रदान की जाती है, इसका प्रयोग निम्न प्रकार से किया जायेगाः–

1. बेवर खेती करने वाले आदिवासियों का पुनर्स्थापन एवं पुनर्वास करने,
2. वन ग्रामों में पेयजल, बिजली, सड़क, आदि की सुविधाएँ,
3. आदिवासी क्षेत्रों में व्याप्त विशेष बीमारियों की रोकथाम,
4. दुर्गम क्षेत्रों में आदिवासियों को आबंटित भूमि का विकास,
5. विशिष्ट स्वास्थ्य योजनाएँ,
6. अनुसूचित जनजाति महिला संगठनों हेतु आर्थिक विकास की योजनाएँ,
7. भूमि अपवर्तन, ऋण व बंधुआ मजदूरों के प्रकरणों की जॉच हेतु विशेष कार्यक्रम,
8. असुरक्षित और संवेदनशील आदिवासी क्षेत्रों के लिए क्षेत्रीय कार्यक्रम,
9. विशिष्ठ आदिवासी शिल्प प्रशिक्षण एवं उत्पादन केन्द्र,
10. विशिष्ट पिछड़ी जनजातियों के लिए आवासीय विद्यालय,

स्वीकृति जारी करना की प्रकिया–

1. कार्ययोजना के प्रस्ताव के साथ संबंधित विभाग के सक्षम अधिकारी से तकनीकी स्वीकृति,
2. परिवार मूलक योजनाओं के लिए केवल सबंधित एजेन्सी तथा बैंको को सूचित करना,

विशेष केन्द्रीय सहायता राशि के उपयोग हेतु दिशा–निर्देश–

1. राशि का उपयोग विशिस्ट पिछड़ी जनजाति समूह के लोगों के हितार्थ ही किया जायेगा,
2. आवर्ती व्यय वाली कोई भी योजना नही ली जायेगी,
3. राशि की कमी या तकनीकी कमी के कारण अपूर्ण पड़ी योजनाओं पर राशि व्यय नही की जायेगी,
4. मध्यप्रदेश आदिम जाति मंत्रणा परिषदः– संविधान के अनुच्छेद 244(1) के अनुसार प्रदेश अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन, नियंत्रण एवं आदिवासियों के हित संरक्षण के लिए मध्यप्रदेश आदिम जाति मंत्रणा परिशद की नियमावली 1957 के अनुसार–

अध्यक्ष– मुख्यमंत्री म.प्र.

उपाध्यक्ष– मंत्री, आदिम जाति कल्याण,

सदस्य– 17 अनुसूचित क्षेत्र के विधान सभा सदस्य एवं तीन गैर–शासकीय सदस्य सहित कुल 20 सदस्य।

सचिव– मध्यप्रदेश शासन आदिम जाति कलयाण विभाग के सचिव,

परियोजना प्रशासकों के कार्य–

- परियोजना क्षेत्र का निरंतर भ्रमण करना,
- विभिन्न विकास विभागों के विकास कार्यक्रमों की देखरेख एवं मूल्यॉकन करना,
- प्रत्येक तीन माह में जिला स्तरीय सलाहकार मण्डल की बैठक आयोजित करना, कार्यवाही लिखना एवं क्षेत्रीय अपर आयुक्त को भेजना,
- प्रत्येक वर्ष के अंत में विकास की विभागवार विस्तृत मूल्यांकन प्रतिवेदन भौतिक एवं वित्तीय उपलब्धियों को दिखाते हुए संचालक आदिम जातीय क्षेत्रीय विकास योजनाएँ तथा आयुक्त आदिवासी विकास को भेजा जायेगा।
- नियोजन– परियोजना अधिकारी अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले आदिवासी एवं अनुसूचित जाति क्षेत्र के विकास के लिए वित्तीय साधनों को ध्यान में रखते हुए वार्षिक योजना/ पंचवर्षीय योजनायें तैयार करना ।
- योजनाओं की स्वीकृति– परियोजना अधिकारी अपने अधिकारों के अन्तर्गत योजनायें स्वीकृत करता है एवं निर्धारित नीतियों एवं प्राथमिकताओं के अनुसार परियोजना सलाहकार मण्ड़ल या अनुसूचित जाति/जनजाति विकास समिति की सलाह से कार्यक्रमों और योजनाओं को अंतिम रूप देना ।

- अनुश्रवण– आदिवासी उपयोजना एवं विशेष घटक योजना के अन्तर्गत योजनाओं की प्रगति का अवलोकन,
- अनुसूचित जाति व जनजातियों के हितों की रक्षा और शोषण से मुक्ति के लिये शासकीय नीति और निर्देशों का पालन करना एवं कानूनी सहायता का लाभ अधिक से अधिक लोगों को मिले ऐसी व्यवस्था करना ।
- समन्वय– विभिन्न विकास विभागों में आपस में तालमेल बैठाना एवं योजनाओं को तैयार करना एवं अनावयक अड़चनों को दूर करना।
- प्रत्येक विभाग की हितग्राही मूलक योजनाओं व निर्माण कार्यों को देखना व मूल्यांकन करना– लक्ष्य–पूर्ति, वास्तविक लाभ एवं कठिनाईयों को देखना,
- परियोजना अधिकारी अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले विभिन्न कार्यालयों व संस्थाओं का निरीक्षण करना।
- परियोजना अधिकारी/ प्रशासक इन ग्रामों में 15 दिन भ्रमण एवं 8 दिन रात्रि विश्राम भी करेंगे।
- आदिवासी उपयोजना की व्यापक प्रचार–प्रसार की व्यवस्था की जायेगी।

8. आदिवासी विकास योजनाएँ– उपलब्धियाँ

आदिवासी विकास परियोजनाओं के क्रियान्वयन हेतु राज्य शासन द्वारा निर्धारित बजट जिला पंचायतों को अनुदान स्वरूप उपलब्ध कराया जाता है। जिसे परियोजना सलाहकार मण्डल से स्वीकृत कार्यों पर ही व्यय किया जाता है। परियोजना क्षेत्र की विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन, नियोजन एवं अनुश्रवण अनुकूल वातावरण में सम्पन्न हो ऐसा प्रयास किया जाता है। विकास योजनाओं के लिए निम्नलिखित मदों में आबंटन प्राप्त होता हैः–

- विशेष केन्दिय सहायता
- संविधान के अनुच्छेद–275(1) ,
- विशेष केन्द्रिय सहायता– मॉडा
- पातालकोट विकास अभिकरण एवं
- अन्य मदों से प्राप्त सहायता।

1. **विशेष केन्द्रीय सहायताः**– विशेष केन्द्रिय सहायता राशि का आबंटन एकीकृत आदिवासी विकास परियोजनाओं और मॉडा–पॉकेटों, क्लस्टरों, आदिम जाति समूहों और बिखरे हुए आदिवासी समूहों के लिए विशेष मापदण्डों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। सन् 1996–97 से एकीकृत पद्वति लागू कर एकीकृत आदिवासी विकास परियोजनाओं को सशक्त बनाया गया है,

सभी विकास परियोजनाओं हेतु उनकी जनसंख्या और क्षेत्रफल के आधार पर बजट में प्रावधान किया जाता है। जो आधारभूत–न्यूनतम सुविधाओं पर खर्च की जा सकेगी :–

- ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में शुद्व पेयजल उपलब्ध कराने ,
- ग्रामीण एवं शहरी में शत प्रतिशत प्राथमिक–स्वास्थ्य सुविधाएँ ,
- आदिवासी बी. पी. एल. परिवारों को आवास उपलब्ध कराने,
- परियोजना क्षेत्र में शिक्षा को जन–जन तक पहुचाना ,
- प्राथमिक शालाओं में मध्यान्ह–भोजन कार्यकृम का विस्तार करना,
- पहुॅच विहीन ग्राम/पारों/टोलों को सड़क से जोड़ना एवं विद्युतिकरण,
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली व्यवस्था को और अधिक शक्तिशाली बनाना
- शाला, आश्रम, छात्रावास, कुएँ, तालाब, नहर आदि की मरम्मत परव्यय
- अपूर्ण कार्यो को प्राथमिकता के आधार पर पूर्ण करना ,
- पूॅजीगत मद के अंतर्गत अधोसंरचना एवं निर्माण कार्य तथा राजस्व मद के अंतर्गत व्यक्ति एवं परिवार मूलक आर्थिक विकास कार्य,

संविधान के अनुच्छेद 275(1) :– यह अनुदान सहायता राशि का प्रयोग –

(1) अत्यंत पिछड़े क्षेत्रों में संचार साधनों की व्यवस्था करना, भूमि को कृषि योग्य बनाने

(2) साहूकारों एवं महाजनों से भूमि वापस दिलाने, बॅधुआ मजदूरी से छुटकारा दिलाने तथा आदिवासी क्षेत्रों में व्याप्त कोई महामारी, बीमारी की रोकथाम करने,

(3) आदिवासी क्षेत्रा की निर्धन परिवार की महिलाओं के आर्थिक विकास के लिए स्व–सहायता समूह बनाना

(4) आदिवासी क्षेत्रों में आवासीय विद्यालयों अथवा सुधार ग्रहों की स्थापना करना आदि के लिए किया जा सकता है।

पातालकोट विकास अभिकरण–

पातालकोट (भारिया) विकास अभिकरण तामिया की स्थापना से ही सतत् भारिया विशेष पिछड़ी जनजाति के उत्थान हेतु अनेक विकास कार्यक्रम विभिन्न एजेन्सियों के माध्यम से किये गये है, उन सभी विकास कार्यक्रमों पर पातालकोट (भारिया) विकास अभिकरण तामिया की स्थापना वष 1979–80 से 2011–12 तक प्राप्त आबंटन 1651.83 लाख रुपये के विरुद्व 1020.72 लाख रुपये व्यय किये जा चुके हैं।

अन्य मदों से प्राप्त राशि–

1. **ग्रामीण विकास विभाग** 2. **राजीव गांधी खाद्यान्न सुरक्षा मिशन** 3. **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना** 4.**जैव विविधता कार्यक्रम**।

संविधान की अनुछेद 275–(1)– संविधान के अनुछेद 275–1 के तहत उपयुक्त योजना प्रस्तावित करने पर क्षेत्र के विकास के लिये संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है ।

क्षेत्र में कुछ अशासकीय स्वयं सेवी संस्थायें जैसे म.प्र. विज्ञान सभा, नेहरू युवा केन्द्र, आदिवासी विकास परिषद एवं अन्य अशासकीय सहायता प्राप्त संस्थाओं द्वारा भी विकास कार्य संचालित कियो जा रहे है। युनिसेफ द्वारा भी कुछ योजनायें समय–समय पर घोषित की जाती रही है।

- **राजीव गांधी मिशन**– राजीव गांधी मिशन के अन्तर्गत जलग्रहण क्षेत्र विकास मिशन, मत्स्यपालन विकास मिशन, स्वास्थ्य एवं उद्योग–धन्धे की योजनायें भी संचालित हो रही है। विशेषकर भूमि संरक्षण और जल–संरक्षण की योजनायें वृहत स्तर पर कियान्वित की जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में समुदाय आधारित शिक्षा–योजना के अन्तर्गत आबंटन प्राप्त हो रहा है।
- **सांसद एवं विधायक निधि** – माननीय संसद एवं विधायक निधि से प्राप्त आबंटन से भी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति योजनायें संचालित की जाती है।

विमर्श एवं सुझाव

छिन्दवाड़ा जिले की आदिवासी विकास परियोजनाओं का अध्ययन किया गया और महसूस किया कि आदिवासी विकास से संबंधित समस्याएँ कोई एक नहीं वरन् अनेक है। इनके चहुमुखी विकास के लिए शासन स्तर के प्रयार निरंतर जारी है परंतु इन प्रयासो का प्रभाव आदिवासियों को प्रभावित व लाभान्वित कर पा रहा है ऐसा कम ही प्रतीत होता है। कई योजनाओं की स्थिति तो यहॉ तक पाई गई कि याजनाओ को कागजों में ही अमलीजामा पहना दिया गया हो, क्योंकि योजना का आदिवासी क्षेत्र में प्रभाव लगभग शून्य प्रतीत हुआ। हालाकि यह स्थिति सभी योजनाओं की नहीं है कुछ योजनाओं के सकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिले, जो आदिवासी क्षेत्र के विकास के लिए मोल का पत्थर साबित हुये है(डॉ.दिनेश कुमार ढाकरिया)।

शासन की किसी भी योजना का प्रारंभ और संचालन सबसे प्राथमिक स्थिति है केवल योजना का प्रारंभ करने से आदिवासी क्षेत्र का विकास संभव नहीं है बल्कि उसके समुचित ढंग से कियांवयन से विकास संभव है। अतः किसी योजना के कियांवयन में अनेक समस्या खडी होती है सबसे पहले इन समस्याओं का निराकरण किया जाना शासन और जनप्रतिनिधियों की प्राथमिकता होनी चाहिए। इन प्रमुख समस्याओं को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

अ. **आदिवासियों से संबंधित प्रमुख समस्याए** :– शिक्षा का अभाव, जानकारी का अभाव, रूढ़िवादी विचारधारा, इच्छा शक्ति की कमी, बेरोजगारी की समस्याएँ, पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन, सांस्कृतिक एवं धार्मिक उदासीनता, ऋणग्रस्तता की समस्या, चिकित्सा सुविधाओं का अभाव, पौष्टिक

आहार की कमी, अत्यधिक निर्धनता, मद्यपान के आदी, पुनर्वास की समस्या, मनोरंजन के साधनों का अभाव और नैतिक पतन।

ब. परियोजनाओं से संबंधित समस्याए :– दुर्गम क्षेत्र, पहाड़ी एवं अनुत्पादक भूमि, कृषि जोतों की कम, सिंचाई साधनों का अभाव, योजनाओं का चयन वास्तविकता के अनुरूप नही, योग्य एवं कर्मठ अधिकारियों का अभाव, स्थानीय लोगों का सहयोग नही स्थानीय राजनीति का प्रभाव।

स. शासन स्तर की समस्याए :– सरकारी तंत्र की निष्क्रियता, सरकार की त्रुटिपूर्ण नीतियॉ, विभिन्न विभागों में आपसी सामंजस्य का अभाव, उच्च अधिकारियों एव मैदानी अमले में संवादहीनता, योजनाओं के कियान्वयन में भ्रस्टाचार, नवीन भूमि व्यवस्था, रोजगाार मूलक शिक्षा का अभाव, तामिया तक सिमटा अभिकरण।

समस्याओं के निराकरण हेतु सुझावः– कृषि विकास पर जोर, कृषि से संबंधित व्यवसायों पर जोर– फलोत्पादन , पशुपालन , मछली पालन, शैक्षणिक सुविधाओं का विस्तार, शोषण से मुक्ति, वनाधिकार कानून पर अमल, योजनाओं के चयन में प्राथमिकता का निर्धारण, विकास कार्यक्रमों में आदिवासियों की सक्रिय भागीदारी, विकास कार्यक्रमों की सतत् निगरानी, जन–प्रतिनिधियों का सहयोग, संबद्ध विकास–विभागों में समन्वय, प्रगति का निरीक्षण एवं विश्लेषण, पभावशाली प्रशासन की आवश्यकता, पेयजल की समुचित व्यवस्था, पौस्टिक आहार की व्यवस्था, आदिवासियां में आत्मनिर्भरता की भावना, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरूकता, स्वयसेवी संस्थाओं की भूमिका, बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार ।

वास्तव में एकीकृत आदिवासी विकास परियोजनाओं का उद्देश्य आदिवासियों का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी दृष्टियों से सर्वागींण विकास करना है।

निष्कर्ष

जिले में आदिवासी विकास परियोजनाओं के माध्यम से संचालित विकास कार्यक्रमों से विकास को गति मिली है परंतु आवश्यकता यह है कि आदिवासियों को योजनाओं की अवधारणा से परिचित कराना है ताकि विकास की गतिविधियों में पूर्ण साझेदार बनकर लाभान्वित हो सकें। आदिवासियों के जीवन स्तर में प्रयासों के बावजूद भी सुधार का प्रभाव अपेक्षित नही है। स्वतंत्रता के 60 वर्षो बाद भी इन समुदायों का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर बेहद निम्न है। चूँकि यह आशा करते हैं कि शासन की नीतियों के अनुरूप प्रयास सार्थक सिद्ध होंगे। विकास योजनाओं और कार्यक्रमों के निर्माण एवं उन्हें लागू करने में अपनायी नीतियों की विस्तृत समीक्षा कर बाधक तत्वों को दूर किया जायेगा। इस हेतु स्थानीय स्तर पर जन–प्रतिनिधियों एवं ग्रामीण समुदाय के लोगों की सहभागिता को सुनिश्चित करना होगा।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि योजनाओं से आदिवासी क्षेत्र का विकास तभी संभव है जब वे स्वयं ही विकास की भावना से प्रेरित हो। विकास योजनाएँ केवल एक यंत्र की तरह कार्य

करती है जिनके माध्यम से जनजाति क्षेत्रों में व्याप्त शक्तियों का विकास किया जा सकता है, आदिवासियों का नही। आदि–वासियों के विकास हेतु उनकी भावनाओं को रोजगारोन्मुखी बनाना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

ढाकरिया, दिनेश कुमार, (2014) भारिया जनजातियों में विकास योजनाओं का प्रभाव एक–मूल्यांकनात्मक अध्ययन (छिन्दवाडा जिले के विशेष संदर्भ में) (अप्रकाशित शोध प्रबंध)

तिवारी, शिवकुमार (2005) ''मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

श्रीवास्तव, ए. आर.एन. (2007) ''जनजातीय भारत'' म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

शर्मा, ब्रह्मदेव (2012) ''आदिवासी विकास एक सैद्धांतिक विवेचन'' म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

शर्मा, श्री नाथ, (2006) ''जनजातीय समाज''मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी मध्यप्रदेश भोपाल।

मिश्र उमाशंकर, तिवारी प्रभात कुमार,(1975)''भारतीय आदिवासी''उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी लखनऊ।

मिश्र, सुरेश (2000) ''मध्यप्रदेश के गोड़ राज्य'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल म.प्र.।

उपाध्याय विजशंकर एवं पाण्डेय गया ''जनजातीय विकास'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

पालीबाल चन्द्रमोहन (1986) ''आदिवासी हरिजन आर्थिक विकास'' बस्तर जिले के विशेष सन्दर्भ में नार्दन बुक संटर नई दिल्ली।

सिन्हा, ए0एम0 (1995)''मध्यप्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर'' छिन्दवाड़ा गजेटियर यूनिट डायरेक्ट्रोरेट ऑफ राज्य सभा एवं संस्कृति डिपार्टमेंट ऑफ कल्चर, मध्यप्रदेश शासन भोपाल।

भारत 2013 गवेषणा, संदर्भ और प्रशिक्षण विभाग द्वारा संचलित सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, सूचना भवन नई दिल्ली।

जनसम्पर्क विभाग(2011) ''आगे आये लाभ उठाये'' आयुक्त जनसम्पर्क मध्यप्रदेश,भोपाल।

————————

जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक विकास का भौगोलिक अध्ययन (मध्यप्रदेश के संदर्भ में)

डॉ. शाहिदा बेगम मंसूरी,
भूगोल विभाग, शासकीय महाविद्यालय, शहपुरा, डिण्डौरी

ABSTRACT

भारत की "हृदय स्थली" मध्यप्रदेश राज्य के दक्षिण पूर्वी भाग में, सतपुड़ा अंचल की उच्च भूमि पर सिवनी जिला स्थित है। जिले को वर्तमान स्वरूप मध्यप्रदेश के गठन के साथ ही 1 नवंबर 1956 को प्राप्त हुआ। सिवनी जिला मूल रूप से पहाड़ों एवं जंगलों से घिरा हुआ आदिवासी बहुल क्षेत्र है। यहां निवासरत आदिवासियों में गोंड जनजाति की संख्या सर्वाधिक है।

जिला सिवनी की स्थिति 21°36′ से 22° 57′ उत्तरी अक्षांश तथा 79°19′ से 80° 17′ पूर्वी देशांन्तर है। जिले का आकार बहुत विषमता लिए हुए है। दक्षिण की ओर संकरा तथा उत्तर की ओर अपेक्षाकृत चौड़ा है। जिले की लंबाई उत्तर से दक्षिण तक 153 किलोमीटर है, तथा चौड़ाई 69 किलोमीटर है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8758 वर्ग किलोमीटर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से सिवनी जिला प्रदेश में 24वें स्थान पर है। जिले की समुद्र तल से ऊँचाई 619 मीटर है। सिवनी जिला जबलपुर संभाग में स्थित है। यह जिला पाँच जिलों से घिरा हुआ है। इसके उत्तर में जबलपुर जिला स्थित है, उत्तर – पूर्व में मंडला जिला, उत्तर पश्चिम में नरसिंहपुर जिला, दक्षिण पूर्व में बालाघाट जिला तथा दक्षिण पश्चिम में छिंदवाड़ा जिला स्थित है। जिले के दक्षिण में महाराष्ट्र राज्य के दो जिले नागपुर एवं भण्डारा स्थित हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में मध्यप्रदेश की जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक विकास पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ा का आवश्यकतानुसार समावेश किया गया है।

***

प्रस्तावना

जनजातियाँ एक ऐसा मानव समुदाय है जो अलग निश्चित भू–भाग में निवासरत होती है तथा इनकी अपनी अलग संस्कृति, रीति–रिवाज अलग भाषा होती है। जनजातियाँ सभ्य समाज से दूर एकाकी जीवन व्यतीत करती हैं, तथा इनका निवास स्थान मुख्यतः वनों एवं पहाड़ी भागों में होता है। यह प्रकृति के प्रेमी होते हैं। इन्हें अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की पहचान है। भारत में उत्तर,

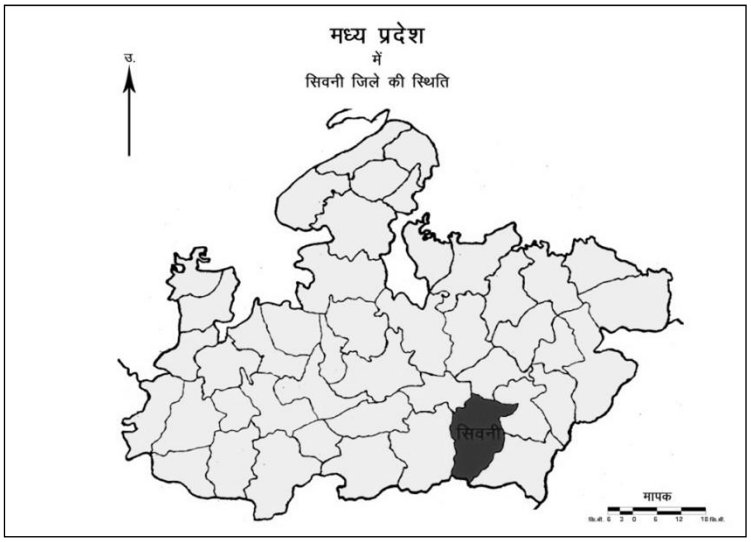
दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में विभिन्न प्रकार की जनजातियाँ निवास करती हैं। इसी लिये भारत को जनजाति बाहुल्य देश की संज्ञा दी गई है। जनजातियाँ वास्तव में छिपे हुये खज़ाने हैं।

समाजिक आर्थिक विकास के अंतर्गत परिवार की आय में वृद्धि, शिक्षा का विकास, अच्छा व्यवसाय और धन इन सभी के विकास को सम्मिलित किया जाता है। जनजातियों के सामाजिक आर्थिक विकास की बात की जाए तो इनके लिये भारत सरकार द्वारा कई प्रकार की योजनाएँ संचालित की जा रही हैं।

प्रारंभिक समय में मानव जंगलों और पहाड़ों में निवास करता था तथा फल–फूल और शिकार की सहायता से अपने जीवन का निर्वाह करता था। मानव समाज विकास प्रक्रिया से गुजरता हुआ वर्तमान अवस्था तक पहुंचा है। सम्पूर्ण मानव समाज का विकास एक साथ नहीं हुआ है। कुछ समाज विकास की परम्परा में आगे बढ़ गए, तो दूसरे समाज काफी पीछे रह गए। जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता गया, मानव समाज की आथिक, राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं का भी विकास होता गया। आखेट और पशुपालन के बाद भी मानव का भटकना समाप्त नहीं हुआ। अनेक मानव समाज आज भी अपने जीवन का निर्वाह करने के लिये जंगलों से फल–फूल एकत्रित करते हैं, शिकार करते हैं। इस प्रकार मानव समाज का यह समूह और अधिक विकसित हो गया, जो जनजाति के नाम से संबोधित किये जाने लगा।

अध्ययन क्षेत्र

जिला सिवनी की स्थिति 21°36′ से 22° 57′ उत्तरी अक्षांश तथा 79°19′ से 80° 17′ पूर्वी देशान्तर है। जिले का आकार बहुत विषमता लिए हुए है। दक्षिण की ओर संकरा तथा उत्तर की ओर अपेक्षाकृत चौड़ा है। जिले की लंबाई उत्तर से दक्षिण तक 153 किलोमीटर है, तथा चौड़ाई 69 किलोमीटर है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8758 वर्ग किलोमीटर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से सिवनी जिला प्रदेश में 24वें स्थान पर है। जिले की समुद्र तल से ऊँचाई 619 मीटर है। सिवनी जिला जबलपुर संभाग में स्थित है। यह जिला पाँच जिलों से घिरा हुआ है। इसके उत्तर में जबलपुर जिला स्थित है, उत्तर – पूर्व में मंडला जिला, उत्तर पश्चिम में नरसिंहपुर जिला, दक्षिण पूर्व में



बालाघाट जिला तथा दक्षिण पश्चिम में छिंदवाड़ा जिला स्थित है। जिले के दक्षिण में महाराष्ट्र राज्य के दो जिले नागपुर एवं भण्डारा स्थित हैं। जिले में 6 तहसील (सिवनी, कुरई, लखनादौन, घंसौर, केवलारी एवं बरघाट) तथा 8 विकासखण्ड (सिवनी, कुरई, लखनादौन, घंसौर, छपारा, केवलारी, धनोरा एवं बरघाट) हैं। जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार जिले में कुल 1612 ग्राम हैं, जिसमें 1585 आबाद ग्राम हैं तथा 27 वीरान ग्राम हैं। जिले में कुल ग्रामों में 36 वन ग्राम हैं। सिवनी जिले में तीन नगरपालिका (सिवनी, लखनादौन तथा बरघाट) 8 जनपद पंचायत एवं 645 ग्राम पंचायत हैं।

विधि तंत्र

प्रस्तत शोध पत्र में प्राथमिक आंकड़ों अवलोकन एवं साक्षात्कार अनुसूची के द्वारा प्राप्त किये गए हैं तथा द्वितीय आंकड़े पुराने शोध एवं पुस्तकों सर्वे रिपोर्ट के द्वारा प्राप्त किये गए हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्य निम्न लिखित हैं –

1. अध्ययन क्षेत्र के भौगोलिक पर्यावरण का अध्ययन करना।
2. जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
3. जनजातियों के उत्थान के लिये सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं को ज्ञात करना।

जनजातियों का समाजिक आर्थिक विकास

जनजातियों के सामाजिक आर्थिक विकास के लिये उनकी सामाजिक आर्थिक स्तर की ओर दृश्टि डालना आवश्यक है। सामाजिक आर्थिक स्तर, किसी व्यक्ति की संयुक्त आर्थिक और सामाजिक स्थिति का कुल माप है। इससे ज्ञात होता है कि व्यक्ति कार्य करने के लिये कितना तैयार है। किसी व्यक्ति की आय, f”kक्षा और रोजगार के आधार पर अन्य व्यक्ति की तुलना में व्यक्तिगत तथा पारिवारिक आर्थिक और सामाजिक स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है। जब किसी भी परिवार के सामाजिक आर्थिक स्तर को ज्ञात किया जाता है तो परिवार की आय, f”kक्षा का स्तर और व्यवसाय का vf”kलषण किया जाता है साथ ही संयुक्त आय, व्यक्तिगत आय और घर के सदस्यों की व्यक्तिगत vf”kषताओं का भी vf”kलेषण किया जाता है। सामान्यतः इसे उच्च, मध्यम और निम्न तीन श्रेणियों में बांटा जाता है। आय, f”kक्षा, व्यवसाय और धन का vf”kलेषण करके सामाजिक आर्थिक स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है।

जनजातियों के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण है उनकी आय का स्तर निम्न होना। कृशि और मजदूरी करके अपनी जीविकोपार्जन करने वाली जनजातीय वर्ग की आय का स्तर कम होता है आय का स्तर बढ़ाने के लिये जनजातियों का शिक्षित होना बहुत आवश्यक है। शिक्षित होने से जनजातियों

को नौकरी मिल सकेगी। कृशि कार्यों में आधुनिक तकनीकों का उपयोग बढ़ेगा। इनके सोचने विचारने की क्षमता का विकास होगा। अतः शिक्षा के स्तर को बढ़ावा दिया जाना आवश्यक है।

जनजातियों के व्यवसाय व्यवसाय की ओर दृश्टि करन से ज्ञात होता है कि कृशि पर आधारित क्रियाकलापों पर निर्भरता अधिक है।

जनजातियों के विकास के लिये सरकार द्वारा उठाए गए कदम

जनजातियों के सामाजिक आर्थिक विकास के लिये भारत सरकार द्वारा कई प्रकार की योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। वन धन योजना, जनजातीय उपयोजना आदि महत्वपूर्ण योजनाएं संचालित की जा रही हैं। जनजातियों के सामाजिक आर्थिक तथा समग्र विकास के लिये भारत के संविधान में प्रावधान और सुरक्षा उपाय प्रदान किये गए हैं।

जनजातियों के तेजी से सामाजिक आर्थिक विकास के उद्देश्य से 'जनजातीय उपयोजना' (TSP) तैयार की गई। यह केन्द्रीय उपयोजना है, इसके अंतर्गत राज्यों को जनजातीय मामलो के मंत्रालय द्वारा 100% वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। जनजातीय शोषण से सुरक्षा करना तथा जनसामान्य एवं जनजातीयों के बीच अंतर को समाप्त करना इस योजना का उद्देश्य है।

जनजातियों की समस्याओं की बात की जाए तो यह वर्तमान समय में भी सामाजिक संपर्क स्थापित नहीं कर पातीं हैं। यही कारण है कि इनमें शिक्षा की कमी, स्वास्थ्य का निम्न स्तर, निम्न पोशण पाया जाता है। शिक्षा की कमी के कारण जनजातियाँ सरकार द्वारा दी जा रही सुविधाओं स वंचित रह जाती हैं अथवा पूर्ण लाभ नहीं उठा पाती हैं। जनजातीय योजनाओं का ज्ञान भी इन्हें नहीं हेाता है। यही कारण है कि यह सामाजिक रूप से अधिक पिछड़ी हुई हैं। अधिकांशतः जनजाति आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई होती है। यह अपनी जीविका चलाने के लिये मजदूरी करते हैं। आर्थिक तंगी के कारण यह अपनी संतानों को पढ़ा लिखा नहीं पाते।

जनजातियों के हितों की रक्षा के लिये 2003 में 89वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के द्वारा राश्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना की गई। संविधान में जनजातियों के राजनीतिक हिता को ध्यान में रखते हुये जनजातीय संख्या के अनुपात में राज्यों की विधानसभा और पंचायतों में स्थान को सुरक्षित रखा गया है। संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त जनजातियों के हितों की ओर सरकार भी अपने स्तर से ध्यान देती है। सरकारी सहायता अनुदान, अनाज बैकों की सुविधा, आर्थिक उन्नति हेतु प्रयास, सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व हेतु उचित शिक्षा व्यवस्था, छात्रावासों का निर्माण, छात्रवृत्ति की उपलब्धता तथा सांस्कृतिक सुरक्षा उपलब्ध कराती है। केन्द्र तथा राज्यों में जनजातियों के कल्याण हेतु अलग–अलग विभागों जैसे जनजातीय सलाहकार परिशद की स्थापना की गई है। सरकारी नौकरियों में जनजातियों को आयु सीमा में तथा योग्यता में विशेश छूट की व्यवस्था है। जनजातीय छात्रों के लिये एकल्व्य आदर्श आवासीय विद्यालय योजना प्रारंभ की गई है। दूरदराज़ के क्षेत्रों में निवास करने वाले

विद्यार्थियों को मध्यम और उच्च स्तरीय शिक्षा प्रदान कराना इसका उद्देश्य है। निम्न साक्षरता वाले जिलों में जनजाति कन्या शिक्षा योजना चलाई जा रही है। जिससे अधिक से अधिक कन्याओं को इसका लाभ प्राप्त हो सके और अधिक मात्रा में कन्याएं शिक्षित हो सकें।

निष्कर्ष

जनजातियों के व्यवसायिक आंकडों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इनमें कृशि कार्य का प्रतिशत सर्वाधिक पाया जाता है। सरकार द्वारा इनके सामाजिक आर्थिक सुधार के लिये निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं जिसमें इनकी शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। 1961 में केवल 10.3% जनजातीय जनसंख्या साक्षर थी जबकि 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 66.1% जनजातीय जनसंख्या साक्षर पाई गई। यह सरकार के सफल प्रयास हैं।

भारत की अधिकांश जनजातीय जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों और सुदूर अंचलों में निवास करती हैं। भारत की कुल जनसख्या का 8.6% जनजातीय जनसंख्या है। नगरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षत्रों में निवास करने वाले जनजातीय परिवार अधिक पिछड़े हुये हैं। जनजातियों में शिक्षा के स्तर में थोड़ी बढ़ोतरी हुई है परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी शिक्षा का स्तर निम्न है।

समस्या को दूर करने हेत, सुझाव

- सरकार जनजातियों की स्थिति में सुधार और इनके विकास के लिये अपने स्तर पर सराहनीय प्रयास कर रही है परंतु अभी भी सरकारी योजनाओं का पूर्ण लाभ जनजातियों को प्राप्त नहीं हो पा रहा है, इनके लाभ में आने वाली रूकावटों को दूर करना होगा।
- जनजातियों के आर्थिक समस्याओं को दूर करने के लिये जनजातीय परिवारों को कृशि हेतू भूमि देने की आवश्यकता है तथा स्थानांतरित खेती पर रोक लगाना होगा। कृशि के अत्याधुनिक तरीकों से जनजातियों को अवगत करना अति आवश्यक है।
- शिक्षा से संबन्धित जनजातियों की समस्याओं को दूर करने लिये सामान्य शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की आव" यकता है। विद्यालयों में इन्हें व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये जिससे शिक्षा प्राप्त करने के बाद बेरोजगार न रह सकें। इनके लिये कृशि, पशुपाल, मुर्गी पालन, मत्सय पालन, मधुमक्खी पालन एवं अन्य प्रकार की हस्तकलाओं का प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये।
- जनजातियों की स्वास्थ्य से संबन्धित समस्याओं को दूर करने के लिये चिकित्सालय एवं चिकित्सक तथा दवाईयों की व्यवस्था कराना चाहिये जिससे इन्हें स्वास्थ्य संबन्धी समस्याओं से राहत मिल सके। पौश्टिक आहार एवं विटामिन की गोलियां दी जानी चाहिये जिससे महिलाएं एवं शिशु कुपोशण का शिकार न हो सकें।

संदर्भ सूची

- राशिद, इश्तियाक (2008), ''इन्वायरोन्मेन्ट्स रिसोर्स एण्ड सस्टेटेनेबल डेवलपमेन्ट'' आर. के. पब्लिकेशन, न्यू डेल्ही।
- सिंह, (श्रीमती) वन्दना (1999), "बैतूल जिले में जनजातीय स्वास्थ्य", आदिवासी स्वास्थ्य पत्रिका, जून 1999, आर. एम. आर. सी., जबलपुर।
- सिरकार, प्रोनोव कुमार (2002), "फैक्टर इफेक्टिंग फूड एण्ड न्यूट्रिशन ऑफ ओनांग", ट्राइबल हेल्थ बुलेटिन, वाल्युम–8(1), आर. एम. आर. सी., जबलपुर।
- शाहिदा, (2014), ''गोंड जनजाति प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य संरक्षण (सिवनी जिले के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन) पी. एच. डी. शोधग्रंथ, रानी दुर्गावती विश्व विद्यालय, जबलपुर।
- वर्मा, एन. एम. (1996), "ट्राइबल डेवलपमेंट इन इंडिया", के. एम. राय मित्तल फॉर मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

****

छिन्दवाड़ा जिले में साक्षारता का भौगोलिक अध्ययन

रघुवीर उइके

अतिथि विद्वान–भूगोल

शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला–छिन्दवाड़ा (म0प्र0)

प्रास्तावनाः–

मानव के विकास के लिए साक्षरता एक महत्वपूर्ण प्रारंभिक तत्व तथा एक अच्छा उपाय है (Hussain & Taufique, 2004)। शिक्षा का संसाधन विकास में धनात्मक सह–संबंध होता है। साक्षरता किसी क्षेत्र के आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, गरीबी एवं जनसंख्या वृद्धि पर रोक के लिए आवश्यक है, जिससे जनसंख्या नीतियों बाल विवाह, जन्म–दर, मृत्यु–दर, जीवनस्तर एवं निर्वाचन इत्यादि प्रभावित होता है। साक्षरता के अभाव में निःसन्देह परम्परावादी, भाग्यवादी, निराशावादी, बाल विवाह, पर्दा–प्रथा इत्यादि कुप्रथाएं विकसित होती हैं। इसलिए साक्षरता किसी देश, प्रदेश एवं क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक दृष्टि के साथ जीवन स्तर के विकास की प्रक्रिया क लिए अति आवश्यक है (प्रसाद एवं महावर, 2001)।

विभिन्न देशों में साक्षरता की परिभाषा भिन्न हैं। भारत में समझ के साथ लिखने एवं पढ़ने की क्षमता को साक्षरता का मापदण्ड माना गया है। उन्नत देशों में औपचारिक शिक्षा के विशिष्ट स्तर को माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करने का आधार माना गया है। राष्ट्रसंघ के जनसंख्या आयोग के अनुसार – ''किसी भाषा में साक्षरता संदेश को समझकर पढ़ एवं लिख सकने की क्षमता रखने वाले व्यक्ति को साक्षर कहा जाता है''(Gosal, 1972)।

प्रो. गोपाल कृष्ण के अनुसार – ''10 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति मे समझ के साथ पढ़ने–लिखने या गणना करने की क्षमता विकसित नहीं होती।'' साक्षरता विकास का एक बड़ा सूचक होता है तथा शैक्षणिक स्तर के विश्लेषण का एक उपयुक्त मापक होता है (Singh, 1986)।

छिन्दवाड़ा जिला मध्य प्रदेश के 53 जिलों में से एक है तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से मध्यप्रदेश में छटवां स्थान रखता है, जिसका क्षेत्रफल 11815 वर्ग किलोमीटर है, जो जबलपुर संभाग के अंतर्गत आता है। छिन्दवाड़ा जिला सतपुड़ा पर्वत श्रेणी में स्थित है, जिसका भौगोलिक स्थिति विस्तार $21^0$28′ से $22^0$49′ उत्तरी अक्षांश एवं $78^0$10′ से $79^0$24′ पूर्वी देशातर के मध्य स्थित है। छिन्दवाड़ा जिला का गठन नवम्बर 1956 में हुआ था। इसके अंतर्गत सौंसर तहसील आती है जिसका भौगोलिक स्थिति विस्तार $21^0$28′ से $22^0$49′ उत्तरी अक्षांश एवं $78^0$10′ से $79^0$24′ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है, जिसका क्षेत्रफल 627.90 वर्ग किलोमीटर है। छिन्दवाड़ा जिला की कुल जनसंख्या 1849283 है एवं सौंसर तहसील की कुल जनसंख्या 169480 है एवं जिला मुख्यालय से सौंसर तहसील की दूरी 57 कि.मी. है। जिले की समुद्र तल से ऊँचाई 1164 मीटर एवं सौसर तहसील की समुद्र तल से ऊँचाई 862 मी. है।

वर्तमान में छिन्दवाड़ा जिले की सीमा पाँच जिलों से मिलती है। उत्तर–पश्चिम में होशंगाबाद, पश्चिम में बैतुल, उत्तर में नरसिंहपुर, पूर्व में सिवनी एवं पश्चिम में महाराष्ट्र राज्य का नागपुर जिला से घिरा है। वर्तमान में छिन्दवाड़ा जिला में 9 तहसीलें छिन्दवाड़ा, अमरवाड़ा, हर्रई, तामिया, जुन्नारदेव, परासिया, चौरई, बिछुआ, सौंसर एवं 11 विकासखण्ड हैं। (जिला गजेटियर 1971)।

साक्षरता का वितरण

आर्थिक दृष्टि से अर्थव्यवस्था साक्षरता प्रतिरूप निर्धारण का प्रमुख कारक है। (Golden, 1968)। मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से साक्षरता जनसंख्या का ऐसा सामाजिक पक्ष है जिसके आधार पर सामाजिक विकास का मापदण्ड निश्चित किया जा सकता है। (हीरालाल, 1993)। किसी भी देश के सामाजिक विकास, आर्थिक प्रगति तथा राजनैतिक प्रौढ़ता उसके नागरिकों के शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। शिक्षा मनुष्य के सामाजिक व मानसिक पृथकत्व को भी समाप्त करता है (पंडा, 2000)। शिक्षा को सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास का मुख्य आधार माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार साधारण संदेश को समझ के साथ पढ़ने एवं लिखने की क्षमता को साक्षरता कहा जाता है (शर्मा, 2004)।

छिन्दवाड़ा जिले में साक्षरता का विवरण

छिन्दवाड़ा जिले में 1981, 1991, 2001 तथा 2011 में साक्षरता में प्रति दशकीय वृद्धि होती गई है जिले में 1981 में कुल साक्षरता दर 28.19 प्रतिशत थी जो 1991 में बढ़कर 44.90 प्रतिशत हो गई 1981 से 1991 के बीच साक्षरता में 16.71 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जिल में 2001 में 65.8 प्रतिशत एवं 2011 में साक्षरता 66.36 प्रतिशत है। किसी भी क्षेत्र की साक्षरता दर में वृद्धि उस क्षेत्र के विकास का सूचक माना जाता है। छिन्दवाड़ा जिले में साक्षरता में वृद्धि हो रही है। तालिका से स्पष्ट होता है कि जिले में स्त्री–पुरूष साक्षरता में वृद्धि हाती रही है। 2011 में जिले में स्त्री साक्षरता 57.26 प्रतिशत एवं पुरूष साक्षरता 75.17 प्रतिशत एवं कुल साक्षरता 66.36 प्रतिशत है। जिले में पुरूष की तुलना में स्त्री साक्षरता में अधिक अंतर पाया जाता है। 2011 में स्त्री–पुरूष साक्षरता में 17.91 प्रतिशत है।

छिन्दवाड़ा जिले में 2011 में सबसे अधिक साक्षरता सौसर तहसील में (78.85 प्रतिशत) व छिन्दवाड़ा तहसील में (78.85 प्रतिशत) है जो दूसरे स्थान पर है। जिले में सबसे कम साक्षरता जुन्नारदेव (54.21 प्रतिशत) व हर्रई तहसील में (54.82) प्रतिशत है। जिले में तामिया 58.13 प्रतिशत परासिया 63.52 प्रतिशत अमरवाड़ा 64.71 प्रतिशत साक्षरता दर है जो जिले की कुल साक्षरता औसत साक्षरता 66.36 प्रतिशत से भी कम है। जिले में 2001 में पुरूष साक्षरता 76.4 प्रतिशत थी जो 2011 में पुरूष साक्षरता 75.17 प्रतिशत रही है 2001–2011 के बीच पुरूष साक्षरता में 1.23 प्रतिशत की गिरावट

आई है परन्तु महिला साक्षरता 2001 में 34.6 प्रतिशत थी व 2011 में 22.66 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 57.26 प्रतिशत हो गई जिले में 2001–2011 के बीच कुल साक्षरता में 0.56 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

जिले में स्त्री–पुरूष साक्षरता में बहुत विषमता पाई जाती है। पिछले कुछ दशकों में स्त्री साक्षरता की वृद्धि पुरूषों की तुलना में तीव्र रही है व स्त्री–पुरूष साक्षरता के मध्य अंतर में भी क्रमशः गिरावट आई है। जिले में स्त्री–पुरूष साक्षरता में वृद्धि होने के निम्न कारण रहे है–

1. जिले में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई है।
2. जिले के गॉव में प्राथमिक स्कूलो की उपलब्धता।
3. स्त्री–पुरूष शिक्षा के प्रति जागरूकता।
4. स्त्री–पुरूष बाल विवाह का कम होना।

पिछले कुछ दशकों में राज्य शासन एवं जिला प्रशासन के द्वारा स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। गाँव में बालिका विद्यालयों की स्थापना के साथ–साथ गाँव से दूर दूसरे गाँव में शिक्षा प्राप्त करने जाने वाली स्त्रियों को निःशुल्क साईकिल वितरण एवं निःशुल्क पठन–पाठन सामग्री उपलब्ध कराना तथा हर गाँव को सड़कों द्वारा जोड़ना जिससे गाँव से बाहर पढ़ने जाने के लिए असुविधा न हो, जिससे स्त्री शिक्षा में वृद्धि हो रही है।

समस्यायें :–

1. जिले में जनसंख्या में वृद्धि के कारण कृषि भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है।
2. जिले में कृषि में वृद्धि के लिये किसानों को समय–समय पर कृषि से संबंधित खाद्य–बीज व औजार उपलब्ध नहीं होते है जिससे कृषि उत्पादकता में गिरावट आ रही है।
3. जिले में जनसंख्या वृद्धि के कारण आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।
4. जनसंख्या में बेरोजगारी बढ़तो जा रही है जिले में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है।
5. बढ़ती बेरोजगारी के कारण ग्रामीण क्षेत्र के लोग रोजगार पाने के लिये नगरीय क्षेत्र में पलायन कर रहे है।
6. जिले में रोजगार पाने के लिये आये लोग नगरीय क्षेत्रों में गंदगी बस्ती को जन्म दे रहे है, जिससे पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।
7. जनसंख्या में वृद्धि के परिणाम स्वरूप आवास सुविधा पर प्रभाव पड़ रहा है जिससे लोग एक ही मकान में दो या तीन परिवार निवास कर रहे है।
8. जिले में पहाड़ी क्षेत्रों में परिवहन की उचित व्यवस्था नहीं है।
9. जनसंख्या वृद्धि के कारण जिले में बस, रेलगाड़ी, जीप आदि परिवहन के साधनों पर लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही है।
10. जिले में वनों की अवैध कटाई से पर्यावरण संतुलन बिगड़ता जा रहा है।

11. जिले में पुरूष की तुलना में महिला साक्षरता कम है।
12. जिले में महिला साक्षरता है तो वह भी प्राथमिक स्तर एवं माध्यमिक स्तर की ही अधिक है।
13. महिला शिक्षा में उच्च स्तर की शिक्षा का अभाव है।
14. जिले में आर्थिक स्तर कमजोर होने के कारण विद्यार्थी स्कूल छोड़ रहे है।
15. जिले में ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा की सुविधा न होने के कारण निम्न स्तर के विद्यार्थी उच्च शिक्षा से वंचित रह रहे है।
16. जिले में प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है।
17. जिले में तकनीकीय शिक्षा संस्थान का अभाव है।
18. जिले में स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक उपलब्ध नहीं है। जिसे प्रति शिक्षकों पर विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने से उचित अध्यापन नहीं हो पा रहा है।
19. जिले में जनसंख्या की तुलना में स्कूलों की संख्या कम है जिससे स्कूलों में विद्यार्थियों का दबाव बढ़ता जा रहा है।
20. जिले में प्राथमिक स्कूलों में विद्यार्थियों के लिये बैठने की उचित व्यवस्था नहीं है एक ही कमरे में दो या तीन कक्षाओं के विद्यार्थी बैठते है तथा स्कूलों म फर्नीचर व खेल सामग्री का अभाव है।
21. अभिभावकों के मन में लड़कियों को शिक्षा के लिये दूसरे स्थान पर न पहुँचाने की एक सामाजिक बुराई प्रचलित है ये अपनी पुत्रियों को 5 से 10 किलोमीटर की दूरी पर शिक्षा के लिये भेजना पसंद नहीं करते है।
22. जिले में विभिन्न स्थानों पर कन्या विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की संख्या बहुत कम है।
23. जिले का पातालकोट स्थान के लोग आज भी शिक्षा के महत्व व जागरूकता से वंचित है, इस क्षेत्र में शिक्षा आज भी शून्य है।

सुझाव :–

- जिले में जनसंख्या में हो रही वृद्धि को नियंत्रित करने के लिये जिले में परिवार नियोजन कार्यक्रम को लागू कर कठोरता से कार्यक्रम का पालन करने के लिये परिवार में जागरूकता लाना चाहिए।
- जिले में कृषि से संबंधित उन्नत खाद्य–बीज एवं औजार उपलब्ध कराना चाहिए ताकि खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हो जिससे प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्ध हो।
- जिले में ग्रामीण क्षेत्रों पर रोजगार बढ़ाना चाहिए ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को अधिक से अधिक रोजगार प्राप्त हो सके एवं बेरोजगारी की समस्या कम हो सके।
- जिले में ग्रामीण स्तर पर आवास व स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार होना चाहिए।

- जिले में परिवहन के साधनों की व्यवस्था ठीक होना चाहिए ताकि जनसंख्या के दबाव को कम किया जा सके एवं यातायात से होने वाली दुर्घटनाओं से बचा जा सके।
- जिले में विकासखण्ड स्तर पर विद्यालयों एवं कन्या विद्यालयों को बड़ी मात्रा में स्थापित किया जाना चाहिए।
- क्षेत्र आधारित आर्थिक योजनायें बनाई जानी चाहिए।
- किसानों को कृषि के लिये ऋण देने के लिये उत्तम प्रकार की शाखा की स्थापना किया जाना चाहिए ताकि किसानों को समय पर ऋण मिल सके।
- जिले के विभिन्न विकासखण्ड में विशेषकर जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा प्रणाली शुरू करना एवं जनजातीय परिवारों में शिक्षा का महत्व व जागरूकता को लाने की आवश्यकता है।
- स्कूलों में प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है।
- प्राथमिक स्कूलों में अधिकांश स्थानीय भाषा होनी चाहिए जिससे कि छात्र भाषा को समझ सके।
- जिले में स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए।
- जिले में शिक्षा पर अधिक वित्तीय पूर्ति की आवश्यकता है, ताकि विद्यार्थियों को उद्देश्यपूर्ण शिक्षा प्राप्त हो सके।
- माध्यमिक शिक्षा से ही शिक्षा को उद्देश्यपूर्ण बनाया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थी पढ़ने में उत्साहित हो।
- स्कूलों में फर्नीचर, खेल सामग्री की उचित व्यवस्थाएँ जरूरी है।
- जिले में साक्षरता एवं शिक्षा का प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए ताकि लोगों में शिक्षा का महत्व व सामाजिक चेतना जागृत हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूचि :

1. Sharma S. (1999), Determinants of Literacy in Meghalaya : A correlation Analysis, Hill Geographer, *The Geographical Society of North-Eastern Region Shillong (India),* Vol. XV, (pp 69-75).
2. Samanta Gopa (June, 2003), Gender Disparity in Literacy in West Bengal, The Deccan Geographer*, Research Journal of The Deccan Geographical Society, Pune*., Vol.-24, No. 1, (pp 31-42).
3. Krishna Gopal & Shyam Madhav (March, 1977), Literacy in India, Geographical Review of India, *The geographical society of Kolkata Indias*, Vol.-39, (pp 117-122).

4. प्रसाद रामा एवं महावर गोपीलाल (जून–दिसम्बर, 2001) राजस्थान में साक्षात्कार का भौगोलिक विश्लेषण, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, *उत्तर भारत भूगोल परिषद, गोरखपुर,* अंक–37, (पृष्ठ संख्या 9–18)।

5. सिंह आर. पी. (दिसम्बर, 1986), अवध प्रदेश में महिला साक्षरता का स्थानिक विश्लेषण, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, *उत्तर भारत भूगोल परिषद, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश (भारत),* अंक–22, (पृष्ठ संख्या 1–15)।

6. Hussain Mokamic & Taufique Mohd. (June, 2004), Pattern of Literacy in Bihar : A Geographical Analysis, Geographical Review of India*, The Geographical Society of India*, Vol-66, (pp 201-206).

7. दुबे पुष्पा एस. (1988), जनसंख्या शिक्षण, *विवेक प्रकाशन, दिल्ली।*

8. हीरालाल (2001), जनसंख्या भूगोल, *वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।*

9. पाण्डा पी.डी. (2004), जनसंख्या भूगोल, *हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मध्य प्रदेश भोपाल*।

10. दुबे कमला कांत एवं सिंह महेन्द्र बहादुर (1994), जनसंख्या भूगोल, *रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली।*

कृषि पर जनसंख्या वृद्धि एक प्रभावः छिन्दवाड़ा के संदर्भ में

दुजारी बोसम
अतिथि विद्वान–भूगोल
शासकीय महाविद्यालय तामिया, जिला–छिन्दवाड़ा (म0प्र0)

कृषि परिवर्तनों पर जनसंख्या वृद्धि का स्पष्ट रूप से प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या की वृद्धि होने पर अधिक मूलभूत आवश्यकता है (Mishra 1982) माल्थस के अनुसार प्रकृति की मेज सीमित अतिथियों के लिए ही लगी है इसलिए जो बिना निमंत्रण के आवेगा उसे अवश्य भूखा मरना पड़ेगा। बहुत से अध्ययन यह प्रदर्शित करते है कि जनसंख्या वृद्धि कृषक समुदायों को उनकी कृषि पद्धतियों एवं भूमि उपयोग में परिवर्तन के लिए बाध्य करती है।

प्रारम्भिक काल में खनन क्रियायें एवं खनिजों की खोजे की गति बहुत मन्द थी। समय के साथ–साथ जनसंख्या में परिवर्तन (वृद्धि) हुई है जनसंख्या वृद्धि से खनन क्रियायें एवं खनिजों की खोज में वृद्धि हुई है। किसी भो देश विशेष की प्रगति का मापदण्ड उसके द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले खनिज पदार्थो की मात्रा द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में जनसंख्या में वृद्धि हुई है उन क्षेत्रों में खनिजों का उपयोग एवं खनन क्रियाये में भी वृद्धि हुई है। खनन क्रियाओं से निकलने वाले अवशिष्ट पदार्थ गैसे एवं अन्य हानिकारक पदार्थ से पर्यावरण प्रभावित हो रहा है।

जिले में दशकीय जनगणना के आधार पर वर्ष 1921 में जनसंख्या में वृद्धि में 4.09 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई है। जनसंख्या में यह कमी भयंकर महामारी एवं सूखा की स्थिति उत्पन्न होने से जनसंख्या वृद्धि में गिरावट आई है। जिले में वर्ष 1961 के बाद से जनसंख्या वृद्धि में तीव्रता आई है। जिले में वर्ष 1961 में 21.52 प्रतिशत वर्ष 1971 में 25.95 प्रतिशत वर्ष 1981 में 24.63 प्रतिशत एवं जिले में सबसे उच्च जनसंख्या वृद्धि जनगणना वर्ष 1991 में 27.21 प्रतिशत रही है।

सन् 2011 की जनगणनानुसार जिले की जनसंख्या की दर्शाविद वृद्धिदर 13.07 प्रतिशत रही है जबकि राज्य की जनसंख्या की दर्शाविद वृद्धिदर 2011 में 20.3 प्रतिशत रही है अर्थात जिले की दशकीय वृद्धि दर राज्य की वृद्धिदर की अपेक्षा कम है। जनसंख्या में वृद्धि से तात्पर्य किसी विशिष्ट अवधि में किसी विशेष क्षेत्र में जनसंख्या में हुए परिवर्तन से है। जनसंख्या में वृद्धि होने पर परिवर्तन धनात्मक तथा हास होने पर ऋणात्मक होता है। किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या में द्रुतगति से वृद्धि के परिणाम स्वरूप वहाँ मिवसिल जनसंख्या व कृषि उत्पादित खाद्य पदार्थो के उपभोग में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है (शर्मा 2003)।

तालिका

छिन्दवाड़ा जिले में जनसंख्या वृद्धि 2011

(विकासखण्ड / तहसीलवार)

क्र.	जिला / तहसील / विकासखण्ड	जनसंख्या 2011	वृद्धि (%में)

जनसंख्या की वृद्धि दर में अनेक प्रादेशिक क्षेत्रीय तथा स्थानीय अंतर पाये जाते है। किन्ही भागों में वृद्धि दर अति उच्च है, तो कई भागो में निम्न है। जिले में 2011 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर का क्षेत्रीय वितरण के आधार पर सबसे अधिक जनसंख्या वृद्धि तहसील में प्रतिशत है जो सबसे कम दशाब्दिक वृद्धि दर तहसील में प्रतिशत है। इसी प्रकार जिले में जनसंख्या की दशाब्दिक वृद्धि वर्ष 2011 में

जनसंख्या वृद्धि की समस्या सम्पूर्ण विश्व के लिए एक चुनौती है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या के विपरीत प्रभाव पर्यावरण पर पड़ा है जो मानव जाति के लिए खतरे का संकेत है। बढ़ती जनसंख्या के कारण विकास प्रयास विशेष रूप में विकासोन्मुख राष्ट्रों में निष्प्रभावी साबित हो रहे है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का अत्याधिक मात्रा में दोहन एवं उपयोग किये जाने से प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण प्रभावित हो रहा है। परन्तु अधिक प्रभाव सांस्कृतिक पर्यावरण यथा जीवन स्तर अपराध, आयु, वैवाहिक स्तर में परिवर्तन हो रहा है, जिससे अनेकानेक विसंगतियॉ पैदा हो रही है।

आवास –

अपने ऐतिहासिक काल सेभारत प्रमुख रूप से गाँवों का देश रहा है। किसी बस्ती को पूर्णतः नगरीय या ग्रामीण कहना कठिन है। नगरीय ग्रामीण संकल्पना मात्र एक मानसिक अनुभूति है जो वास्तविकता से बहुत दूर है। (Chandra 2005)।

आवास मानव की मूलभूत आवश्यकता है मकान अस्थायी एवं स्थायी रूप से भी बनाये जा सकते है। मानव द्वारा स्थायी रूप से बनाये गये मकान से ही अधिवासों एवं बस्तियों का जन्म होता है। (Chandra 2002) 2011 की जनगणना के अनुसार देश की जनसंख्या का 68.8 प्रतिशत गाँवो में तथा 31.7 प्रतिशत नगरों में निवास रहती है।

छिन्दवाड़ा जिला की कुल जनसंख्या सन् में 2090922 व्यक्ति है। जिसमें से 2011 की जनगणना के अनुसार कुल 1585739 व्यक्ति गॉवों में निवास करते है एवं कुल 505183 व्यक्ति शहरों में निवास करते है। अतः जिले में कुल जनसंख्या का 75.84 प्रतिशत लोग ग्रामीण एवं 24.16 प्रतिशत लोग नगरीय है। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में दो रूपों में विभक्त किया गया है।

ग्रामीण आवास –

जनसंख्या के आधार पर ग्रामीण जनसंख्या को बाँटा गया है। जिले की कुल जनसंख्या में से 75.84 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रो में निवास करती है। जनगणना 2011 जिले में जनसंख्या में 2001 की तुलना में 2011 में ग्रामीण जनसंख्या में 0.30 प्रतिशत एवं 188659 व्यक्तियों की वृद्धि हुई है। जिले में सर्वाधिक ग्रामीण जनसंख्या तामिया (100.00 प्रतिशत) एवं बिछुआ तहसील (100.00 प्रतिशत) है।

सबसे कम ग्रामीण जनसंख्या परासिया तहसील में (62.28 प्रतिशत है)। दूसरे स्थान पर छिन्दवाड़ा तहसील (62.40 प्रतिशत है। 2001 से 2011)

ग्रामीण/नगरीय जनसंख्या

2001–2011

क्र.	तहसील/विकासखण्ड	जनसंख्या					
		2001			2011		
		कुल	ग्रामीण	नगरीय	कुल	ग्रामीण	नगरीय
1	तामिया	89278	89278	0	114176	114176	0
2	अमरवाड़ा	136864	124768	12096	159063	144922	14141
3	हर्रई	111436	102006	9430	135188	124188	11000
4	चौरई	169438	158044	11394	189470	176514	12956
5	जुन्नारदेव	214320	153926	60394	240547	182162	58385
6	परासिया	193078	72181	120897	193536	83765	109771
7	उमरेठ	77851	77851	0	91457	91457	0
8	छिन्दवाड़ा	283563	130011	153552	337144	147103	190041
9	मोहखेड	14829	148829	0	168340	168340	0
10	सौसर	169480	125971	43509	181692	118282	63410
11	बिछुआ	77544	77544	0	87691	87691	0
12	पांढुरना	177602	136671	40931	192618	147139	45479
13	कुल	1849283	1397080	452203	2090922	1585739	505183

	दसवर्षीय प्रतिशत अंतर 2001–2011			नगरीय जनसंख्या प्रतिशत	
	कुल	ग्रामीण	नगरीय	2001	2011
तामिया	27.9	27.9	0.0	0.0	0.0
अमरवाड़ा	16.2	16.2	16.9	8.8	8.9
हर्रई	21.3	21.7	16.6	8.5	8.1
चौरई	11.8	11.7	13.7	6.7	6.8
जुन्नारदेव	12.2	18.3	3.3	28.2	24.3
परासिया	0.2	16.0	9.2	62.6	56.7
उमरेठ	17.5	17.5	0	0	0
छिन्दवाड़ा	18.9	13.1	23.8	54.2	56.4
भोल्खेड	13.1	13.1	0	0	0
सौसर	7.2	6.1	45.7	25.7	34.9

बिछुआ	13.1	13.1	0	0	0
पांढुरना	8.5	7.7	11.1	23.0	23.6
कुल	13.1	13.5	11.7	24.5	24.2

तालिका

छिन्दवाड़ा जिला में ग्रामीण जनसंख्या एवं प्रतिशत

तहसीलवार

क्र.	तहसील / विकासखण्ड	ग्रामीण जनसंख्या			ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत		
		1991	2001	2011	1991	2001	2011
1	छिन्दवाड़ा	248325	277611	315443	71.94	64.38	62.40
2	अमरवाड़ा	185172	124768	144922	91.72	91.32	91.10
3	तामिया	76632	89278	114176	100.00	100.00	100.00
4	हर्रई	–	102006	124188	–	91.54	91.86
5	सौसर	170455	125971	118282	82.99	74.33	65.11
6	परासिया	135928	151261	175222	55.26	55.58	61.48
7	जुन्नारदेव	136349	153926	182162	69.31	71.82	75.72
8	पांढुरना	211779	136671	147149	78.06	76.95	76.39
9	चौरई	131671	158044	176514	93.47	93.27	93.16
10	बिछुआ	–	77544	87691	–	100.00	100.00
11	जिला	1206351	1397080	1585739	76.90	75.54	75.84

स्त्रोत भारत की जनगणना 2011 एवं जिला सांख्यिकी पुस्तिका 2007

की तुलना में सौंसर तहसील में ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात 9.23 प्रतिशत सबसे अधिक घटा है। जिले में परासिया तहसील में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत सबसे कम है परन्तु 2001 की तुलना में 2011 में ग्रामीण जनसंख्या का 5.90 प्रतिशत सबसे अधिक बढ़ा है।

तालिका

छिन्दवाड़ा जिला में नगरीय जनसंख्या 2011

क्र.	तहसील / विकासखण्ड	नगरीय जनसंख्या			नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत		
		1991	2001	2011	1991	2001	2011
1	छिन्दवाड़ा	96858	153552	190041	28.06	35.62	37.60
2	अमरवाड़ा	16733	12096	14141	8.28	8.68	8.80
3	सौसर	34931	43509	63410	17.01	25.67	34.89
4	परासिया	110027	120897	109771	44.74	44.42	38.52
5	जुन्नारदेव	60373	60396	58385	30.69	28.18	24.27
6	पान्दुरना	34227	40931	45479	21.94	23.05	23.61
7	चौरई	9202	10852	12956	6.53	6.73	6.83
8	तामिया	–	–	–	–	–	–
9	बिछुआ	–	–	–	–	–	–
10	हर्रई	–	9430	11000	–	8.40	8.13
11	जिला	362351	452203	505183	23.10	24.46	24.16

स्त्रोत – जनगणना 2011 एवं जिला सांख्यिकी पुस्तिका–2007

नगरीय आवास –

नगर क्षेत्र विशेष की तत्कालीन मानव सभ्यता के विकास के प्रतीक होते है। नगरीय क्षेत्र बढ़ने के साथ–साथ सभ्यताओं का विकास होता है साथ ही मानव बसाव अधिक संघन होने से पर्यावरण को प्रभाव करते है। जिससे पर्यावरणीय समस्याऐं उत्पन्न होने लगती है। नगरीय क्षेत्र वे होते है जहाँ समय के साथ स्थान में परिवर्तन होता है। नगरीय क्षेत्र में मानवीय सुख–सुविधाऐं उपलब्ध होता है। नगरों में मानवीय क्रियाकलापों का पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

जिले में नगरीय आवास भी पाया जाता है। जिले में ग्रामीण अधिवासों की तुलना में नगरीय अधिवास कम पाया जाता है। जिले में सर्वाधिक नगरीय जनसंख्या 2011 के अनुसार परासिया तहसील में 38.52 प्रतिशत दूसरे स्थान पर 37.60 प्रतिशत छिन्दवाड़ा तहसील है। जिले में 2011 की जनगणना के अनुसार 20 प्रतिशत से अधिक नगरीय जनसंख्या परासिया 38.52 प्रतिशत छिन्दवाड़ा 37.60 प्रतिशत सौसर 34.89 प्रतिशत जुन्नारदेव 24.27 प्रतिशत पांढुरना 23.61 प्रतिशत तहसीलों में है। छिन्दवाड़ा तहसील में जिला मुख्यालय होने से नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत पाया जाता है। परासिया एवं जुन्नारदेव तहसीलों में कोयला खनन क्रियाऐं होने से नगरीय जनसंख्या पाई जाती है। सौसर एवं पांढुरना तहसील उपजाऊ भूमि एवं औद्योगिकीकरण होने से नगरोय जनसंख्या है। जिले में 2011 की जनगणना के अनुसार 2001 की तुलना में (2001 में 24.46 प्रतिशत एवं 2011 में 24.16 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या) 0.30 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या कम हुई है। जिले में की जनगणना के अनुसार सर्वाधिक सौंसर तहसील में 9.22 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या में वृद्धि हुई है परासिया तहसील में 5.9 प्रतिशत तथा जुन्नारदेव तहसील 3.91 प्रतिशत की कमी आई है। परासिया एवं जुन्नारदेव तहसील में नगरीय जनसंख्या कोयला खनन क्षेत्र होने के कारण नगरों में निवास करती थी परन्तु विगत कुछ वर्षो से इन क्षेत्रों में कोयला की खदान विगत कुछ वर्षो से इन क्षेत्रों में कोयला की खदाने बंद होने के कारण कोयला खदानों में कार्यरत व्यक्ति इन स्थानों को छोड़कर अन्यत्र स्थानों पर चले गये या पहुंचा दिया गया है। इस कारण से इन तहसीलों में नगरीय जनसंख्या में गिरावट आई है।

लिंगानुपात –

किसी भी क्षेत्र के भौगोलिक विश्लेषण के लिए दोनों लिगों का अनुपात आधारभूत है क्योंकि यह न केवल स्थल रूप का एक महत्वपूर्ण लक्षण है अपितु यह अन्य जन सांख्यिकीय तत्वों को भी महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है (Trewartha, 1953)। लिंगानुपात किसी क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक दशाओं के सुधार का प्रदर्शक होता है और यह प्रादेशिक विश्लेषण का एक उपयोगी साधन होता है। (फ्रेंकलिन 1956)।

भारत में लिंगानुपात को प्रति हजार पुरूषों के पीछे स्त्रियों की संख्या से प्रगट किया जाता है जबकि लिंगानुपात प्रदर्शित करने का अंतराष्ट्रीय मापदण्ड प्रति 100 स्त्रियों के पीछे पुरूषों की संख्या से है (पंडा 2004)।

तालिका

स्त्री/पुरूष अनुपात राज्य एवं जिला 1901–2011

जनगणना वर्ष	राज्य			जिला		
	कुल	ग्रामीण	नगरीय	कुल	ग्रामीण	नगरीय
1901	0	0	930	1046	1045	1067
1911	967	973	903	1020	1022	996
1921	949	959	863	1026	1029	982
1931	947	957	862	1011	1014	966
1941	946	957	869	997	1001	948
1951	945	953	902	995	1002	916
1961	932	947	860	980	993	894
1971	920	934	864	968	987	879
1981	921	934	878	965	984	899
1991	912	921	887	953	967	906
2001	919	927	898	952	961	925
2011	931	936	918	964	967	956

स्त्रोत– भारत जनगणना 2011

छिन्दवाड़ा जिले में लिंगानुपात तहसीलदार 1991–2011

क्र.	तहसील/विकासखण्ड	प्रतिहजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या			
		1991	2001	2011	वृद्धि
1	छिन्दवाड़ा	948	947	958	+11
2	तामिया	979	961	979	+18
3	अमरवाड़ा	982	977	971	-6
4	जुन्नारदेव	952	967	980	13
5	परासिया	931	941	966	25
6	चौरई	945	941	942	1
7	सौंसर	945	935	944	9
8	पांढुरना	961	948	953	5
9	बिछुआ	–	969	972	3
10	हर्रई	–	–	1005	-
11	जिला छिन्दवाड़ा	953	952	964	+12

स्त्रोत – भारत जनगणना 2011 एवं जिला सांख्यिकीय पुस्तिका 1991–2001

लिंगानुपात को ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग किया जाता है

$$\text{लिंगानुपात} = \frac{\text{महिलाओं की कुल जनसंख्या}}{\text{पुरूषों की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

छिन्दवाड़ा जिले में लिंगानुपात का औसत मध्यप्रदेश राज्य की अपेक्षा अधिक है। जिले में जनगणना 2011 में लिंगानुपात प्रतिहजार पुरूषों पर 964 स्त्रियों की संख्या है जबकि राज्य में प्रति हजार पुरूषों पर 931 स्त्रियों की संख्या है। जिले में 1991–2001 की जनगणना में प्रतिहजार पुरूषो पर 952 स्त्रियों की संख्या ह। इससे स्पष्ट है कि 1991–2001 में 10 वर्षो में 1 स्त्री की संख्या में कमी आई है, परन्तु 2011 में प्रतिहजार पुरूषों पर 964 स्त्रिया है, इससे स्पष्ट होता है कि 2001–2011 के बीच 10 वर्षो में 12 स्त्रीयों की संख्या बड़ी है। जिले में 2011 की जनगणना के अनुसार सर्वाधिक लिंगानुपात

हर्रई तहसील में 1005 है सबसे कम लिंगानुपात चौरई तहसील में 942 है। छिन्दवाड़ा जिले में जिले की औसत 964 से अधिक स्त्री–पुरूष अनुपात 2011 में हर्रई 1005 जुन्नारदेव 980 तामिया 979 बिछुआ 972 अमरवाड़ा 971 परासिया 966 तहसीलों में रहा है। जिले के औसत से कम छिन्दवाड़ा 958 पांढुरना 953 सौसर 944 चौरई 942 तहसीलों में स्त्री–पुरूष अनुपात रहा है। जिले में स्त्री–पुरूष अनुपात 2011 में सर्वाधिक स्त्रियों की संख्या में वृद्धि परासिया तहसील में 25 स्त्री हुई है। 2001 से 2011 के बीच के 10 वर्षो में जिले की अमरवाड़ा तहसील को छोड़कर सभी तहसीलों में लिंगानुपात में वृद्धि हुई है। अमरवाड़ा तहसील में 06 महिलाऐं घटी है। स्त्री की संख्या के घटने के निम्न कारण है –

1. बालिकाओं को बालक से कम दर्जा देना।
2. बालिकाओं के जन्म पर उनका ज्यादा ख्याल न रखना।
3. बालिका मृत्युदर एवं मातृत्व मृत्युदर अधिक होना।

आयु संरचना –

आयु संरचना को अपने विशिष्ट महत्व के कारण ही विभिन्न देशों या प्रदेशों की जनसंख्या की तुलना हेतु एक आधार के रूप में लिया जाता है (दुबे एवं सिंह 1994) आयु संरचना जनसंख्या के विकास को मापने का प्रमुख आधार है, बडों की तुलना में बच्चो का अनुपात कम होना चाहिए। आयु वर्गो का सामाजिक व आर्थिक प्रभाव तथा उनके वितरण में क्षेत्रीय विभिन्नताओं को समझना गहन विचार का विषय है (Clork 1972) वृद्ध एवं बच्चों की संख्या यदि हमारी कार्यशील जनसंख्या (युवा वर्ग) की तुलना में अधिक होगी तो क्षेत्र विकास की गति धीमी हो जाती है तथा विकास में यह पिछड़ने लगता है (शर्मा 2004)।

जनगणना तिथि और जन्मतिथि के बीच के समय के अंतराल को आयु कहते है जन्म तिथि दिन माह और वर्षा में व्यक्त की जाती है पर जनगणना आयु को पूर्ण वर्षो में बताया जाता है जनसंख्या की आयु संरचना उसकी आधारभूत जैव शारीरिक विशेषता है मनुष्य की आयु उसकी आवश्यकताओं कार्यक्षमता तथा विचारों को प्रभावित करता है। किसी राष्ट्र के जनसंख्या की आयु संरचना के अध्ययन से हम उसके जनशक्ति की पूर्ति, निर्भरता अनुपात तथा सामाजिक–आर्थिक क्रियाकलाप संबंधी ज्ञान प्राप्त होता है। जनसंख्या के आयु संघटन के तीन मुख्य कारक है– जन्मता, मर्त्यता तथा प्रवास (Chandna 2004 P-225)। आयु संघटन के तीन कारक एक दूसरे पर निर्भर है तथा इनमें से किसी एक में परिवर्तन बाकी दो को भी प्रभावित करता है इन्हीं के कारण सामाजिक व आर्थिक दशाएं आयु संघटन को प्रभावित करती है। जन्मदर ही किसी जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्गो में लोगो के अनुपात को प्रभावित करती है (Clork 1972 P. 66)।

यह कहा जासकता है कि किसी भी की जनसंख्या का आयु संरचना अध्ययन उस देश की जनाकिकीय सामाजिक आर्थिक राजनीतिक नीतियों का निर्धारण में अप्रत्यक्ष सहायक होता है।

आयु संरचना को प्रभावित करने वाले कारक

जन्मदर–

जन्मदर ही किसी जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्गी में लोगो के अनुपात को प्रभावित करती है। इसलिए लैटिन अमेरिका अफ्रीका तथा एशिया के देशों में जहां जन्मदर उच्च है वहां जनसंख्या में युवा वर्ग का प्राधान्य है क्योकि इन देशों में जीवन संभाव्यता भी कम है अतः वृद्ध आयु वर्ग की जनसंख्या कम है। जिन देशो में जन्म दर कम है वहां युवा वर्ग की जनसंख्या कम तथा वृद्ध आयु की जनसंख्या अधिक होती है। जन्मदर में निरंतर गिरावट से भी जनसंख्या में उच्च आयु वर्ग की जनसंख्या का अनुपात बढ़ता जा रहा है। अध्ययन क्षेत्र में जन्मदर उच्च है जिससे जनसंख्या में युवा वर्ग के अनुपात में निरंतर वृद्धि होती जा रही है।

मृत्युदर –

मृत्युदर किसी जनसंख्या के आयु संघटन को प्रभावित करतो है। आयु संरचना पर मृत्यु दर का प्रभाव इस प्रकार होता है कि भिन्न–भिन्न आयु वर्गो में मृत्युदर भिन्न–भिन्न होती है। सामान्य तौर पर यदि केवल शिशु मृत्युदर में सुधार होता है तो बच्चों का अनुपात अधिक हो जाता है तथा बड़े लोगो का अनुपात कम हो जाता ह। इसी प्रकार यदि युवा व वृद्ध आयु वर्गो में मृत्युदर कम हो जाती है तो उच्च आयु वर्ग की जनसंख्या का अनुपात अधिक हो जाता है।

प्रवास –

जनसंख्या की आयु संरचना में प्रवास का प्रभाव होता है क्योंकि प्रवासियो का अपना विशेष आयु वर्ग तथा प्राकृतिक वृद्धि प्रारूप हाता है क्योंकि प्रवासी अपेक्षाकृत नौजवान होते है तथा इनकी प्राकृतिक वृद्धि–दर उच्च होती है इसलिए इसका प्रभाव अल्पकालिक यह होता है कि वृद्ध लोगों का अनुपात कम हो जाता है। युवा व आर्थिक रूप से क्रियाशील जनसंख्या अधिक प्रवास करती है। इससे प्रवासित क्षेत्र में युवाआ की जनसंख्या अधिक हो जाती है।

उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त किसी स्थान का आयु संघटन युद्ध विपदाओं प्राकृतिक आपदाओं जनसंख्या नीतियों इत्यादि से भी महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित होता है। आयु संघटन पर युद्ध का परिणाम बहुत अधिक होता है क्योंकि इसमें नौजवान पुरूष काफी मारे जाते है। किसी विशेष आयु वर्ग के पुरूषों का समाप्त होना भी जन्मदर को प्रभावित करता है तथा इसका प्रभाव आयु संघटन पर पड़ता है।

आयु संबंधी आंकड़ों के विश्लेषण की विधियां

आयु संबंधी आंकड़ों के विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत या रूपांतरित करके उन्हें अध्ययन के लिए उपयोगी बनाया जाता है। मानचित्र तथा आरेखों में प्रगट करने के लिए भी इनका रूपांतरण आवश्यक होता है। शोध कर्ताओं के द्वारा निम्नलिखित तीन विधियों से आयु संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण किया जाता है।

1. आयु पिरामिड द्वारा
2. आयु वर्ग बनाकर
3. आयु सूचकांक ज्ञात कर

आयु वर्ग –

किसी देश व क्षेत्र की जनसंख्या को अध्ययन की दृष्टि से तीन आयु वर्ग में बांटा जा सकता है।

1. बाल आयु वर्ग
2. प्रौढ़ आयु वर्ग
3. वृद्ध आयु वर्ग

साक्षरता –

मानव के विकास के लिए साक्षरता एक महत्वपूर्ण प्रारभिक तत्व तथा एक अच्छा उपाय है (Hussain of Taufique, 2004)। शिक्षा का संसाधन विकास में धनात्मक सह संबंध होता है। साक्षरता किसी क्षेत्र में आर्थिक विकास सामाजिक प्रगति, गरीबी एवं जनसंख्या वृद्धि पर रोक के लिए आवश्यक है, जिससे जनसंख्या नीतियों बाल विवाह जन्म–मृत्यु दर जीवन स्तर एवं निर्वाचन इत्यादि प्रभावित होता है। साक्षरता के अभाव में निःसंदेह परम्परावादी भाग्यवादी, निराशावादी बाल विवाह पर्दा–प्रथा इत्यादि कुप्रथाएं विकसित होती है। इसलिए साक्षरता किसी देश प्रदेश एवं क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक दृष्टि के साथ जीवन स्तर के विकास की प्रक्रिया के लिए अति आवश्यक है (प्रसाद एवं महावर 2001)।

विभिन्न देशों में साक्षरता की परिभाषा भिन्न है। भारत में समझ के साथ लिखने एवं पढ़ने की क्षमता को साक्षरता का मापदण्ड माना गया है। उन्नत देशों में औपचारिक शिक्षा के विशिष्ट स्तर को माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करने का आधार माना गया है। राष्ट्रसंघ ने जनसंख्या आयोग के अनुसार– ''किसी भाषा में संदेश को समझकर पढ़ एवं लिख सकने की क्षमता रखने वाले व्यक्ति को साक्षर कहा जाता है'' (Gosal 1972)

प्रो. गोपाल कृष्ण के अनुसार – ''10 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति में समझ के साथ पढ़ने–लिखने या गणना करने की क्षमता विकसित नहीं होती''। साक्षरता विकास का एक बड़ा सूचक होता है तथा शैक्षणिक स्तर के विश्लेषण का एक उपयुक्त मापक होता है (Singh 1986)।

साक्षरता का वितरण –

आर्थिक दृष्टि से अर्थ व्यवस्था साक्षरता प्रतिरूप निर्धारण का प्रमुख कारक है। (Golden 1968)। मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से साक्षरता जनसंख्या का ऐसा सामाजिक पक्ष है जिसके आधार पर सामाजिक विकास का मापदण्ड निश्चित किया जा सकता है (हीरालाल 1993)। किसी भी देश के सामाजिक विकास आर्थिक प्रगति तथा राजनैतिक प्रोढ़ता उसके नागरिकों के शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर निर्भर करता है (पंडा 2000)। शिक्षा को सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास का मुख्य आधार माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार साधारण संदेश को समझ के साथ पढ़ने एवं लिखने की क्षमता को साक्षरता कहा जाता है (शर्मा 2004)

छिन्दवाड़ा जिले में साक्षरता का प्रतिशत 2011

तहसील/विकासखण्ड	कुल जनसंख्या साक्षरता प्रतिशत			स्त्री–पुरूष में अंतर
	पुरूष	स्त्री	कुल	
तामिया	67.81	48.23	58.13	19.58
हर्रई	64.53	45.29	54.82	19.24
अमरवाड़ा	74.31	54.81	64.71	19.5
चौरई	78.21	61.51	70.12	16.7
जुन्नारदेव	62.52	45.88	54.21	16.64
परासिया	72.95	53.83	63.52	19.12
मोहखेड	80.55	61.33	71.11	19.22
छिन्दवाड़ा	80.36	62.79	71.78	17.57
सौंसर	85.66	71.63	78.85	14.03
बिछुआ	79.07	61.1	70.21	17.97
पांढुरना	81.04	64.97	73.19	16.07
1981	38.58	17.42	28.19	21.16
1991	49.16	28.50	44.90	20.66
2001	76.4	34.6	65.8	41.8
2011	75.17	57.26	66.36	17.91

आर्थिक दृष्टि से व्यापक गरीबी और स्त्रियों को निम्न व्यावसायिक संलग्ना के कारण स्त्री और पुरूष साक्षरता में विभेद पाया जाता है। (Krishna shyam 1973)। भारतीय समाज में नारी वह केन्द्र है जिसके इर्द–गिर्द परिवार घूमता है। यह शक्ति समृद्धि और शिक्षा की देवी कही जाती है लेकिन व्यवहारिक दृष्टिकोण इसके विपरीत है, पुरूष के साथ इसका संबंध आश्रित का है और इसकी क्रिया–कलाप घरेलू कार्यो तक सीमित है। यह पुरूश की अर्धांगिनी कही जाने वाली एक शोषित बहुसंख्यक है, जो अधिकांशतः निरक्षर एवं अशिक्षित है (सिंह, 1986)।

छिन्दवाड़ा जिले में 1981, 1991, 2001 तथा 2011 में साक्षरता में प्रति दशकीय वृद्धि होती गई है जिले में 1981 में कुल साक्षरता दर 28.19 प्रतिशत थी जो 1991 में बढ़कर 44.90 प्रतिशत हो गई 1981 से 1991 के बीच साक्षरता में 16.71 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जिले में 2001 में 65.8 प्रतिशत एवं 2011 में साक्षरता 66.36 प्रतिशत है। किसी भी क्षेत्र की साक्षरता दर में वृद्धि उस क्षेत्र के विकास का सूचक माना जाता है। छिन्दवाड़ा जिले में साक्षरता में वृद्धि हो रही है। तालिका से स्पष्ट होता है कि जिले में स्त्री–पुरूष साक्षरता में वृद्धि होती रही है। 2011 में जिले में स्त्री साक्षरता 57.26 प्रतिशत एवं पुरूष साक्षरता 75.17 प्रतिशत एवं कुल साक्षरता 66.36 प्रतिशत है। जिले में पुरूष की तुलना में स्त्री साक्षरता में अधिक अंतर पाया जाता है। 2011 में स्त्री–पुरूष साक्षरता में 17.91 प्रतिशत है।

छिन्दवाड़ा जिले में 2011 में सबसे अधिक साक्षरता सौसर तहसील में (78.85 प्रतिशत) व छिन्दवाड़ा तहसील में (78.85 प्रतिशत) है जो दूसरे स्थान पर है। जिले में सबसे कम साक्षरता जुन्नारदेव (54.21 प्रतिशत) व हर्रई तहसील में (54.82) प्रतिशत है। जिले में तामिया 58.13 प्रतिशत परासिया 63.52 प्रतिशत अमरवाड़ा 64.71 प्रतिशत साक्षरता दर है जो जिले की कुल साक्षरता औसत

साक्षरता 66.36 प्रतिशत से भी कम है। जिले में 2001 में पुरूष साक्षरता 76.4 प्रतिशत थी जो 2011 में पुरूष साक्षरता 75.17 प्रतिशत रही है 2001–2011 के बीच पुरूष साक्षरता में 1.23 प्रतिशत की गिरावट आई है परन्तु महिला साक्षरता 2001 में 34.6 प्रतिशत थी व 2011 में 22.66 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 57.26 प्रतिशत हो गई जिले में 2001–2011 के बीच कुल साक्षरता में 0.56 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

जिले में स्त्री–पुरूष साक्षरता में बहुत विषमता पाई जाती है। पिछले कुछ दशकों में स्त्री साक्षरता की वृद्धि पुरूषों की तुलना में तीव्र रही है व स्त्री–पुरूष साक्षरता के मध्य अंतर में भी क्रमशः गिरावट आई है। जिले में स्त्री–पुरूष साक्षरता में वृद्धि होने के निम्न कारण रहे है–

1. जिले में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई है।
2. जिले के गॉव में प्राथमिक स्कूलो की उपलब्धता।
3. स्त्री–पुरूष शिक्षा के प्रति जागरूकता।
4. स्त्री–पुरूष बाल विवाह का कम होना।

पिछले कुछ दशकों में राज्य शासन एवं जिला प्रशासन के द्वारा स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। गाँव में बालिका विद्यालयों की स्थापना के साथ–साथ गाँव से दूर दूसरे गाँव में शिक्षा प्राप्त करने जाने वाली स्त्रियों को निःशुल्क साईकिल वितरण एवं निःशुल्क पठन–पाठन सामग्री उपलब्ध कराना तथा हर गाँव को सड़कों द्वारा जोड़ना जिससे गाँव से बाहर पढ़ने जाने के लिए असुविधा न हो, जिससे स्त्री शिक्षा में वृद्धि हो रही है।

संदर्भ ग्रंथ

- पी.आर. नायडू– भारत के आदिवासी विकास की समस्याएं।
- डॉ. श्री कमल शर्मा– मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- डॉ. शिवकुमार तिवारी– मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति।
- डॉ नरेन्द्र मोहन अवस्थी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल
- कुरूक्षेत्र पत्रिका
- योजना पत्रिका
- मध्यप्रदेश का भूगोल'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भापाल

———000———

SCENARIO OF TRIBAL DEVELOPMENT IN INDIA



GOVT. COLLEGE BICHHUA

District - Chhindwara (M.P.)

Email: hegcbicchh@mp.gov.in,

Website: www.mpcolleges.nic.in/gdcbichhua

ISBN -978-93-5268-356-7

POPULATION, DEVELOPMENT AND ENVIRONMENTAL DEGRADATION









Dr. Rajendra Prasad Yadav

Proceedings of the National Research Seminar

(13-14 March 2016)

On

POPULATION GROWTH, SOCIO-ECONOMIC DEVELOPMENT AND ENVIRONMENTAL DEGRADATION



Government College Bichhua

Raja Shankar Shah University Chhindwara (M.P.)

© Copyright, Author

All right reserved. No Part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted, in any form by any means, electronic, mechanical, magnetic, optical, chemical, manual, photocopying, recording or otherwise, without the prior written consent of its writer.

Dr. Rajendra Prasad Yadav

Department of Geography

Govt. College Bichhua

District- Chhindwara (M.P.)

ISBN- 978-93-5268-356-7

Month & Year of Publication- November, 2018

Preface

Population growth and socio-economic development are the major factors which seen responsible for disequilibrium in the ecosystem. The later is meant to meet the needs and demands of the former. Therefore population change can be considered a basic factor in all human environmental problems. The population explosion is in fact the worst and basic form of environmental degradation. The growing population is changing the natural and cultural environment to improve ith standard of living. The socio-economics development has been outstripped by unprecedented growth of population in our country and, therefore, the living standard of population is declining signicantly. This high growth of population decreased per capita productivity and income and resulted in widespread poverty, inadequate diet, low level of eduction and health, houseless families, over-crowded social amenities such as houses, hospitals, schools, etc. Consequently, the rising population is directly related with the degradation of socio-economic environment.

The growth of population has close relationship with the natural resources and environment. The population growth and their characterstics provide a fundamental basis for the evaluation of socio-economic situation in a region. It is now realised that the demographic measures are among the key factors in the planning process for socio-economic development.

The crucial role played by socio-economic development in fertility decline is by now widely recognized in the demographic literature. However, when such development takes place at a slow pace, direct intervention in the form of family planning efforts can be, and often is, attempted. Thus, both socio-economic development and family planning programme efforts are expected to contribute to fertility decline.

Rapid rate of industrialization, urbanization, agricultural development and above all population growth have put great pressure on the use of land, water and vegetation resulting into degradation of land as wasteland through

rapacious exploitation of forest resources and consequent accelerated rate of soil erosion, degradation os surface water, both rivers and lakes, because of discharge of immense volume of untreated polluted sewage and effluents coming out of industrial installation and urban centres into our rivers, acute air pollution in the urban agglomerations since 1950.

Rapid rate of increase in population has been held responsible as one of the most significant factors of environmental degradation because everincreasing population puts greater demands on the use of limited resources of a country. In fact, industrial expansion, urban growth, agricultural development, increase in means of transport and communication etc. Are the outcome of population growth because the people must generate better facilities fo their existence and better life. The development of scientific techniques and advanced technologies has to be made in order to save the humanity from hunger and natural calamity and disaster. Consequently, the rate of exploitation of natural resources increases more rapidly than the rate of population growth which causes depletion and exhaustion of certain valuable non-renewable resources.

The authors have made their the best efforts to justify their views on the theme, Population growth, socio-economic development and environmental degradation. This proceeding of the seminar would be useful for researchers, social scientists and the students.

Rajendra Prasad Yadav

POPULATION GROWTH, SOCIO-ECONOMIC DEVELOPMENT AND ENVIRONMENTAL DEGRADATION

Index

Sr.No.	Topic	Name	Page no.
01	जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक–आर्थिक विकास तथा पर्यावरणीय अवनयन का सम्बन्ध	डॉक्टर श्रीकमल शर्मा	01
02	Remote Sensing &GIS for Tribal Development	Dr. R P Tiwari Dr. Rajendra Prasad Yadav	23
03	Population Growth and its Effects on Environment: A Case Study of Bilaspur City (C.G)	Dr. Narendranath Guria	28
04	Population Growth, Environmental Management And Climate Change	Dr. Neelima Bagde, Dr. Shampa Jain	41
05	Approach and Attempt for the conservation of House Sparrow: A Small Step for Bight Future	Prashant Thote	49
06	Water Resource Management in Gondia District (MS)	Dr. Rajani Chaturvedi Dr. Lalitkumar Thakur	60
07	Level of Urbanization and Development in Jammu and Kashmir	Rouf ur Rafiq Mudassar Bashir	72
08	Environmental Hazards and Disaster Management	Sandhya Sharma	86
09	षासकीय नीतियॉ एवं कानूनी प्रावधान–पर्यावरण संरक्षण के परिपेक्ष्य में	डॉ. कपिल खरे	92
10	नागपूर शहर : गलिच्छ बस्ती की जनांकिकी– एक भौगोलिक अध्ययन	डॉ.आर.एन.साखरे डॉ.एस.एस.देषपांडे	95
11	Geographical Study of Industrial Development in Chandrapur District	Dr.R.P.Yadav Dr.S.D. Thakur	109
12	"EVALUATING DYNAMICS OF LAND USE AND LAND COVER FOR SUSTANABLE DEVELOPMENT OF GONDIA DISTRICT"	Dr.Arun Chaturvedi	119
13	Population growth and Socio-Economic imbalance	Naveen Chourasiya	124
14	पर्यावरण पतन और मानवीय स्वास्थ्य	कु. रश्मि नागवंशी	129

15	शस्य प्रतिरूप एवं पर्यावरण संतुलन	डॉ. सुमन लता पुरोहित एवं श्रुति तिवारी	136
16	छिन्दवाड़ा जिले की जनसंख्या का अध्ययन : एक भौगोलिक दृष्टिकोण	डॉ0 आर. पी. यादव एवं डॉ. शाहिदा बेगम मंसूरी	140
17	ग्लोबल वार्मिंग एंव जलवायु परिवर्तन का समाज पर प्रभाव	अरविंद धुर्वे एवं देवेन्द्र धुर्वे	148
18	कृषि विकास पर सिंचाई एवं जल प्रबंधन के प्रभाव का भौगोलिक अध्ययनः छिन्दवाड़ा जिले के विषेष संदर्भ मे।	डॉ. बी. एन. त्रिपाठी एवं देवालाल माण्डेकर	151
19	पारिस्थितिक संतुलन वनाम मानव विकास	माधवलाल पाठे	155
20	जनसंख्या वृद्वि का कृषि विकास सिंचाई एवं जल प्रबंधन के प्रभाव (सौंसर –पांढुर्णा राज्यमार्ग व्हाया मोहगाव सड़क पर स्थित ग्रामों के संदर्भ में)	डॉ. बी. टेंभरे एवं दिलीप ढोबाले	158
21	बैतूल जिले में जनजातियो के विकास का भौगोलिक अध्ययन	डॉ.प्रताप सिंह राजपूत	164
22	बदलता पर्यावरण और वैश्विक चुनौतियों में साहित्य का स्वर	डॉ. कैलाष गाकरे	168
23	जैविक कृषि पारिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन	डॉ. प्रमोद पगारे	172
24	छिन्दवाड़ा जिले में अपवाह तंत्र तथा जलवायु का अध्ययन	रामप्रकाष डेहरिया	175

जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक–आर्थिक विकास तथा पर्यावरणीय अवनयन का सम्बन्ध

Interrelationship between Population Growth, Socio-Economic Development and Environmental Degradation

डॉक्टर श्रीकमल शर्मा

सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष भूगोल विभाग,

एवं संचालक जनसंख्या शोध केन्द्र

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (मध्यप्रदेश)

आमुख

पर्यावरण विशेषकर प्राकृतिक पर्यावरण में स्वाभाविक रूप से सतत् परिवर्तन होते रहते हैं। मानव अपनी आवश्यकताओं की आपूर्ति संसाधनों से करता है जो पर्यावरण के अंग हैं। उसका सामाजिक–आर्थिक विकास इन पर आधारित है। इन तीनों– मानव, (प्राकृतिक) संसाधन तथा (सामाजिक आर्थिक) विकास के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है (शर्मा 2005 तथा 2014)। मानव का सामाजिक–आर्थिक विकास पर्यावरण पर निर्भर होता है तथा बदले में यह पर्यावरण को प्रभावित भी करता है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों का दोहन करता आया है। पहिले जनसंख्या कम तथा उसकी वृद्धि मंद थी। अस्तु माँग भी सीमित थी और प्रकृति पर मानव की छाप भी नगण्य थी। बाद में मनुष्य ने तकनीकी का उत्तरोत्तर विकास किया, अनेको संस्थाओं की स्थापना की जिनकी मदद से वह प्राकृतिक संसाधनों का वृहद् पैमाने पर दोहन करने लगा जिससे उसने विध्वंसक का रूप धारण कर लिया। यातायात के साधनों के विकास ने प्रत्यक्षतः और परोक्ष रूप से इस विरूपण को गति दी। पर्यावरण के अवनयन के साथ ही इनसे प्रदूषण का (क्षय) रोग भी शुरू हुआ और इन प्राकृतिक तत्वों की वहनीयता के कारण प्रदूषण का प्रभाव–क्षेत्र बढ़ता गया। प्रोद्यौगिक मानव के व्यक्तिवादी और व्यावसायिक दृष्टिकोण, संसाधनों का अविवेकपूर्ण एवं लोलपतापूर्ण दोहन तथा उस पर आधारित नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की निरंतर बढ़ती गति ने अनेकों पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दिया है। विकास के नाम पर किये जाने वाले बड़े पैमाने के उत्पादन और उपभोग के कारण पर्यावरण में असंख्य अवांच्छनीय तत्वों का विसर्जन होने लगा है। इस तरह मानव पृथ्वी का रूप बदल रहा है और पर्यावरण का अवनयन (degradation) आर प्रदूषण कर रहा है (शर्मा 2011)। इन परिवर्तनों के साथ मानवजनित परिवर्तन चिन्ता का विषय बनता जा रहा है।

जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण अवनयन में भूमिका

पर्यावरणीय समस्याओं के कारणों को ढूढ़ने का प्रयास किया जाता रहा है, लेकिन इसका सार्वभौमिक कारण नहीं ढूढा जा सका है, तथापि मौलिक तीन कारण माने जाते हैं (Myers, 1994, 55-56)। इनमें **जनसंख्या का घनत्व और वृद्धि** मुख्य कारण माना जाता है। इनके कारण संसाधनों पर दबाव बढ़ता है। फलतः संसाधनों की समाप्ति, कमी, अत्यधिक दोहन, परिमाणतः पर्यावरण अवनयन निरंतर बढ़ता है। दूसरे, **सामाजिक–आर्थिक विशेषकर औद्योगिक विकास** पर्यावरण एवं पारिस्थितिक परिवर्तन का मुख्य कारण है। पर्यावरण पर गहरी छाप छोड़ने वाले कारकों में तकनीकी में तीव्र परिवर्तन भी काफी महत्वपूर्ण है। जीवीय ऊर्जा पर आधारित तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव बनाने वाली आधुनिक प्रौद्योगिकी के भयावह गति से उपयोग के कारण प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र पर काफी दबाव पड़ा है। यह पाया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश में प्रदूषण में वृद्धि तकनीकी के कारण हुई है न कि बढ़ती जनसंख्या अथवा सम्पन्नता के कारण (कामनर 1972)। यहाँ तक कि पिछड़े देशों में भी जनसंख्या वृद्धि की तुलना में तकनीकी वृद्धि का पर्यावरण पर प्रभाव दो गुने से अधिक है। इन देशों में बढ़ती जनसंख्या एक–चौथाई से एक–तिहाई तक प्रदूषण के लिए जिम्मेवार है। तीसरे, बड़े पैमाने के उत्पादन ने वस्तुओं का **बड़े पैमाने पर उपभोग** सम्भव बनाया और यह उपभोग भारी मात्रा में और विविध रूपों में अपशिष्टों को जन्म देते हैं जो पर्यावरण की संरचना ही बदल रहे हैं। मानवजनित परिवर्तन वातावरण के तत्वों की प्रक्रियाओं तक को प्रभावित करने लगे हैं। इस तरह जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक–आर्थिक विकास एवं पर्यावरण के अपकर्षण एवं प्रदूषण का सीधा एवं घनिष्ठ संबंध है।

जनसंख्या वृद्धि एवं विचारणीय बिन्दु

मानव शक्ति की मात्रा उनकी **संख्या** से ज्ञात की जाती है। साधारणतया संख्या बढ़ने के साथ मानव शक्ति की उपलब्धि बढ़ती जाती है। फलतः संसाधन उपयोग सहित सभो विकास कार्यों के लिए श्रमिकों की कमी बाधक नहीं हो सकती। इनका प्रादेशिक वितरण श्रम के केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के स्वरूप को चित्रित करता है। यद्यपि श्रम काफी गतिशील कारक है, तथापि स्थानीय श्रम की लागत अपेक्षया कम होती है। स्वयं जनसंख्या का वितरण समग्र संसाधना तथा अर्थव्यवस्था की वहन–क्षमता (carrying capacity) को प्रतिविंम्बित करता है। इसके साथ ही मांग भी जनसंख्या और उसके वितरण पर निर्भर होती है।

निर्विवादरूप से **जनसंख्या की वृद्धि** से श्रम की आपूर्ति बढ़ने की संम्भावना होती है; परन्तु जनसंख्या और उसकी वृद्धि को अन्य संसाधनों के वितरण के संदर्भ में देखना चाहिए। भारत जिन समस्याओं से जूझ रहा है उनमें से अधिकतर की जड़ में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि है। वृद्धि सभी जीवों की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीवों का वंश बढ़ता है। इस दृष्टि से जनसंख्या की वृद्धि भी कोई नई बात नहीं है। जब तक यह वृद्धि वातावरण और स्वयं के विकास के लिए समस्या नहीं बन

जाती तब तक वृद्धि चिन्ता का कारण नहीं होती। परन्तु जब वृद्धि इतनी तेज होने लगे कि **मानव भूमि पर भार बन जाय** और प्रकृति उसके लालन–पालन में असमर्थ होने लगे तो वृद्धि एक गंभीर समस्या हो जाती है। दुनिया के विकासशील देशों के साथ भारत में यही स्थिति आ गई। पृथ्वी के सीमित संसाधनों पर जनसंख्या के बढ़ते असीमित दबाव को रोकने अथवा सीमित करने के लिए जनसंख्या का नियंत्रण आवश्यक है। इसके कई कारण हैं। यह सार्वभौमिक सत्य है कि हरेक व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में विकसित होने की चाहत है, व्यक्तिगत और सामाजिक गुणवत्ता बढ़ाने की ललक है, साथ ही अपने चारो ओर के पर्यावरण को सुरक्षित रखने की तमन्ना भी है। यह तभी संभव है जब आर्थिक उत्पादन बढ़े, सामाजिक उत्थान हो, सभी को काम का अवसर मिले तथा सब में आत्मविश्वास पैदा हो। ऐसा होने में दो प्रमुख समस्याएं हैं– **एक** तरफ निरंतर बढ़ती मानव संख्या और उससे अधिक तेजी से बढ़ती उनकी अभिलाषाएं और इच्छाएं तथा **दूसरी** ओर इनके पूर्ति के साधनों का सीमित और स्थिर होना। ऐसी स्थिति में अगर विकास करना है तो **दो विकल्प हो सकते** हैं– या तो जनसंख्या और उसकी आवश्यकताओं को सीमित किया जाय अथवा संसाधनों की आपूर्ति बढ़ाई जाय। इनमें संसाधनों की पूर्ति बढ़ाना विकास के बाद ही संभव होता है। अस्तु एक ही विकल्प खुला रह जाता है कि जनसंख्या को नियंत्रित किया जाय।

भारत में जनसंख्या की वृद्धि (Growth of Population)

किसी देश या क्षेत्र में एक निश्चित अवधि में जनसंख्या में होने वाले कुल परिवर्तन को जनसंख्या वृद्धि कहते हैं। यह परिवर्तन दो प्रकार का होता है–(1) धनात्मक परिवर्तन, एवं (2) ऋणात्मक परिवर्तन। जब जनसंख्या बढ़ती है ता उसे धनात्मक परिवर्तन कहते हैं तथा जब जनसंख्या घटती है तो उसे ऋणात्मक परिवर्तन कहते हैं। जनसंख्या में परिवर्तन तीन कारणों–जन्म, मृत्यु एवं प्रवास से होता है। भारत में सन् 1901 में 23.84 करोड़ व्यक्ति थे जो बढ़ कर सन् 2011 में 121.08 करोड़ हो गए। इन 110 वर्षो में जनसंख्या में 5 गुनी से अधिक (407.6 प्रतिशत) वृद्धि हुई। भारत की जनसंख्या 1.64 प्रतिशत प्रति वर्ष की गति से बढ़ रही है। यह वृद्धि दर विश्व–जनसंख्या वृद्धि दर (1. 16 प्रतिशत) से बहुत अधिक है। वर्ष 1951 के बाद से जनसंख्या की वृद्धि दर तीव्र हो गई है। भारत में प्रतिवर्ष आस्ट्रेलिया महाद्वीप के बराबर जनसंख्या जुड़ जाती है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि का कारण तेजी से घटती मृत्यु दर तथा मंद गति से घटती जन्म दर है (शर्मा 2006, शर्मा एवं जैन 2007)। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण पिछले 60 वर्षो में जितना विकास हुआ है, वह भी कम पड़ गया है। प्रति व्यक्ति आय एवं जीवन स्तर में विशेष प्रगति नहीं हो पाई, गरीब परिवारों की संख्या बढ़ गई।

तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणाम

तीव्र जनसंख्या वृद्धि के अभिप्रभाव का मूल्यांकन कई विद्वानों ने किया है (विश्वस्तर पर डेविस 1963, बोसरप 1965, बिल्सबरो तथा जार्स 1993; राज्य स्तर पर मिश्रा एवं शर्मा 1983, शर्मा 2008)।

विश्वस्तर पर इसकी चिन्ता संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1984 से करना आरभ्भ कर दिया (यूएनओ 1984)। इसके कारण जहाँ भोज्य पदार्थों एवं अन्य वस्तुओं की मांग की पूति के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर असाधारणरूप से दबाव बढ़ा है और उनकी गुणवत्ता में तेजी से कमी आई, उनका विनाश होने लगा है तथा कमी महसूस की जाने लगी है और सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र चरमरा गया है, वहीं स्वयं सामाजिक–आर्थिक विकास की प्रभाविता भी कम हो रही है। इसका सहज अनुमान निम्न संक्षिप्त विवरण से मिल सकता है।

संसाधनों पर तीव्रता से बढ़ता दबाव

तेजी से बढ़ती भारी जनसंख्या की जरूरतों को पूरा करने के लिए **आधारभूत संसाधनों**– कृषित भूमि, वन एवं जल की मांग इतनी बढ़ गई है कि इनका उत्पादन उनकी क्षमता से बहुत अधिक हो रहा है। जैसे भारत में भूमि पर जनसंख्या का दबाव निरंतर बढ रहा है। जहाँ सन् 1921 में एक वर्ग किमी में केवल 81 लोग रह रहे थे वहाँ अब (सन् 2011) 382 व्यक्ति रह रहे हैं। अधिक जनसंख्या के दबाव का अन्दाज इससे हो सकता है कि विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश चीन में मध्य–2010 में प्रति वर्ग किमी 140 व्यक्ति और सयुक्त राज्य अमेरिका में 32 व्यक्ति ही रहते हैं। **इस तरह भूमि पर अत्यधिक दबाव एक गम्भीर समस्या है और इसे समय रहते रोका जाना चाहिए।**

जनसंख्या के दबाव का सही चित्र ग्रामीण जनसंख्या का कृषित भूमि पर दबाव के माध्यम से देखा जा सकता है। सन् 2011 में भारत में शुद्ध कृषित भूमि के प्रति वर्ग किमी 591 ग्रामीण व्यक्ति थे। अर्थात् प्रति ग्रामीण के पीछे सिर्फ 0.169 हेक्टर भूमि आती है। देश में खाद्यान्नों का सन् 2010–11 में प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन 1930 किलोग्राम है। इस तरह प्रति व्यक्ति उपलब्ध 0.169 हेक्टर से केवल 326 किग्रा खाद्यान्न उत्पन्न हो सकता **सोचिए कि क्या इतने में एक व्यक्ति का गुजर–बसर हो सकता है?**

भारत जैसे देश में यह समस्या और भी गंभ्भीर है; क्योंकि देश की दो–तिहाई (सन् 2011 में 68.4 प्रतिशत) जनसंख्या गांवों में रहती है और क्रियाशील जनसंख्या का आधे से अधिक सीधे खेती से जुड़ी है। खेती वाली भूमि पर अधिक दबाव के दो विचारणीय दुष्परिणाम हैं। **एक, कृषित भूमि का निरंतर टुकड़ों में विभाजित होना** है। पिता की भूमि सन्तानों में बंटती जाती है और दो–तीन पुस्तों में बड़े किसान भी **छोटे–छोटे सीमान्त किसान** बन जाते हैं। इस प्रक्रिया के कारण भारत में सन् 2010–11 में **100 में से 67** जोतकारों के पास 1 हेक्टर से कम जमीन है। वर्ष 1970–71 में केवल 51.0 प्रतिशत जोतकार सीमान्त वर्ग में थे। सोचें कि क्या इतनी छोटी जोत से एक परिवार का भरणपोषण हो सकता है? इस कारण ये सीमान्त किसान अपनी भूमि का अधिक से अधिक शोषण करने के लिए विवश हैं।

दूसरी ओर कृषि का विस्तार सीमान्त भूमि पर किया जाता है जो कृषि योग्य नही होती। भारत में हर गांव में भूमि के लिए छीना–झपटी का दृश्य देखा जा सकता है। वन भूमि, पड़ती भूमि,

गांव की सार्वजनिक भूमि आर चारागाहों तक में फसलें बोई जाने लगी हैं। लोग इनसे अधिक से अधिक लाभ लेते हैं, परन्तु उनके संरक्षण की किसी को परवाह नही होती है (Misra & Sharma 1983)। इससे अनेकों पर्यावरणीय समस्याएं जन्म लेती हैं (**तालिका 1**)।

तालिका 1 भारत में विभिन्न भूमि उपयोगों के अन्तर्गत प्रतिशत क्षेत्रफल, 1950–2010

भूमि उपयोग के वर्ग	1950-51	2009-10	प्रतिशत में अन्तर
वन	13.2	22.3	9.1
गैरकृषीाय उपयोगों की भूमि	3.1	8.58	5.5
ऊसर तथा कृषि के अयोग्य भूमि	12.5	5.5	-7.0
स्थायी चारागाह	2.2	3.33	1.1
विविध वृक्षों के अर्न्तगत भूमि	6.5	1.1	-5.4
कृषियोग बेकार भूमि	7.5	4.22	-3.3
पड़ती भूमि	9.2	8.61	-0.6
निरा बोया गया क्षेत्र	38.8	45.93	7.1
दुफसली क्षेत्र	11.1	37.27	26.2

तालिका 1 से स्पष्ट है कि कृषीय उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषित भूमि का विस्तार किया गया है। सन् 2009–10 में निरा कृषित भूमि 14.0 करोड़ हेक्टेयर है जो देश के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का लगभग 45.8 प्रतिशत है। सन् 1950–51 में यह शुद्ध बोया गया क्षेत्र 11.87 करोड़ हेक्टर था जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का 38.8 प्रतिशत ही था। इस तरह इन छः दशकों में शुद्ध बोया गया क्षेत्र केवल 17.9 प्रतिशत ही बढ़ा है। अति मंद वृद्धि संकेत दे रहा है कि इस देश में सदियों से कृषि की जा रही है और कृषियोग्य सभी भूमि पर इसका विस्तार हो चुका है। फलतः उस भूमि पर खेती का विस्तार हो रहा है जो भौतिक दृष्टि से कृषि के लायक नहीं है; जैसे कि ऊसर और बंजर भूमि, वृक्षीय भूमि, चारागाह और कृषियोग्य बेकार भूमि। इनके दाम पर ही निरा कृषित भूमि बढ़ी है। कृषि के क्षैतिज विस्तार के साथ ही इसका ऊर्ध्वाधर (ऊपर की ओर) विस्तार किया जा रहा है। सन् 1950–51 में 1.32 करोड़

हेक्टेयर भूमि पर एक से अधिक बार कृषि की गई थी जो निरा कृषित भूमि का केवल 11.0 प्रतिशत थी। यह दुफसली क्षेत्र बढ़ कर सन् 2009–10 में 5.18 करोड़ हेक्टेयर हो गई है जो निरा कृषित भूमि का 37.3 प्रतिशत है। यह वृद्धि 297% है। इसके कारण पड़ती भूमि तेजी से घटी है जिसका प्रभाव उत्पादकता पर पड़ा। कृषित भूमि का विस्तार, शस्य–गहनता में आशातीत वृद्धि तथा उत्पादकतावर्धक निवेशों का बेतहाशा उपयोग। इन तीनों से जीवनाधार पारिस्थितिकी तंत्र का तेजी से क्षरण हो रहा है, जिस पर संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम ने गहन चिन्ता व्यक्त किया है (UNEP, 2009)।

कृषीय उत्पादन बढाने के लिए पानी, उर्वरक और विभिन्न रसायनों पर आधारित खेती के तरीके को अपनाया गया। इससे खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ा भी परन्तु खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपलब्धता साठ वर्षों में (सन् 1951 में 395 ग्राम से सन् 2011 में 462 ग्राम) सिर्फ **67** ग्राम ही बढ़ पाई। इनसे पर्यावरण को जो नुकसान हो रहा है वह तो अलग है।

जल पर दबाव की यही स्थिति है। कहा जाता है कि अगर अब विश्व युद्ध होता है तो वह पानी के लिए होगा। भारत में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति **कुल उपयोग योग्य जल की उपलब्धता** सन् 1951 में 3450 घन मीटर से घटकर सन् 2000 में 1250 घन मीटर हो गयी है। भारत सरकार का लक्ष्य है हर को पानी और सफाई की सुविधा उपलब्ध कराना। तथापि **केवल 90 प्रतिशत नगरों में जलपूर्ति की व्यवस्था** हो पाई है। जल की मात्रा और गुणवत्ता का अनुमान तो सागर की जलपूर्ति को देख कर आसानी से लगाया जा सकता है। सागर देश के 423 प्रथम श्रेणी के नगरों में एक है। ग्रीष्मकाल में यहाँ कई दिनों में एक बार पानी मिलता है। जल पूर्ति की इसकी जब इतनी गंभ्भीर समस्या है तो कल्पना की जा सकती है कि छोटे नगरों की क्या स्थिति होगी ? गांवों की दशा और भी दयनीय है। नेशनल सैम्पुल सर्वे के अनुसार देश के **आधे से अधिक गांवों में सुरक्षित पेयजल की सुविधा नहीं ह**।

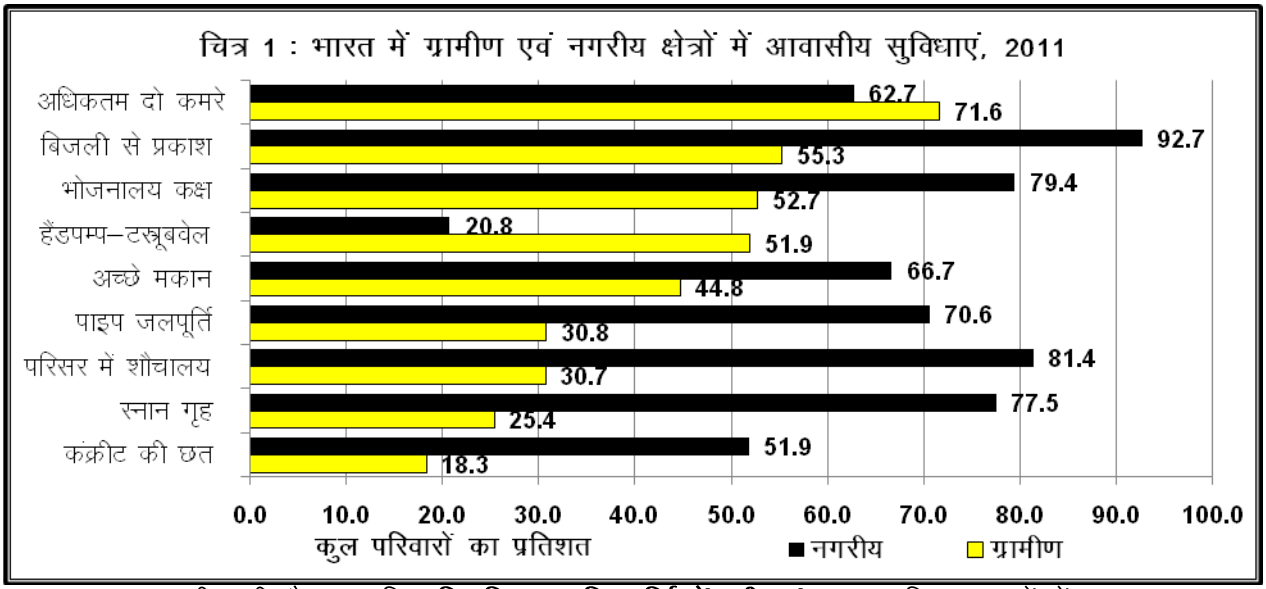
कम से कम भूमि से अधिक से अधिक पैदावार लेने की होड़ में जमीन के नीचे से इतनी अधिक मात्रा में जल निकाला जाने लगा है कि पानी का तल तेजी से नीचे जा रहा है। हर गाँव के कुएं यह कहानी कहते हैं। क्षेत्रीयस्तर पर मध्यप्रदेश के मालवा को देखिए। पग–पग नीर का क्षेत्र कहे जाने वाले इस भाग में पेय जल की इतनी भीषण समस्या होती है कि रेल से पानी की सप्लाई करनी पड़ती है। इसका कारण इस प्रदेश में ट्यूब वेल्स का बहत अधिक घनत्व का होना है (Sharma, 1987)। **जनसंख्या का भारी दबाव ही इस तरह की समस्याओं की जड़ है**। बढ़ती मांग के विपरीत जल की आपूर्ति सीमित एवं स्थिर है। साथ ही अत्यधिक शोषण, अपर्याप्त संरक्षण, दुरुपयोग, प्रदूषण एवं गैर–जिम्मेवार प्रबन्धन के कारण इसका न्यूनीकरण हो रहा है तथा यह उपयोग के अयोग्य होता जा रहा है। भारत में अधोभौमिक जल के अत्यधिक दोहन के कारण जलतल बहुत नीचे चले जाने के कारण 10 राज्यों में 114 जिलों को काली सूची में रखा गया है (Abrol, Sharma and Sekhon, 2004)।

सामाजिक–आर्थिक विकास के प्रभाव में कमी आना

तीव्र जनसंख्या वृद्धि का दुष्प्रभाव सीधे सामाजिक और आर्थिक विकास की प्रभाविता पर पड़ता है। देश की 29.5 प्रतिशत जनसंख्या किशोर (14 साल से कम उम्र की) है। इसके दो प्रमुख प्रतिफल होते हैं– **बच्चों के लालन–पालन, स्वास्थ्य और शिक्षा के प्रबन्ध का बहुत अधिक भार** और दूसरे **क्रियाशील श्रमशक्ति पर अत्यधिक निर्भरता**। वैसे ही भारत बच्चों के विकास के लिए विकसित देशों की तुलना में बहुत कम खर्च कर पाता है तथापि यह व्यय ही उसकी अर्थव्यवस्था के लिए बहुत अधिक है। उल्लेखनीय है कि स्वास्थ्य सुबिधाओं की उपलब्धता के कारण मृत्यु दर कम हुआ है साथ ही जन्म के समय जीवन–प्रत्याशा काफी बढ़ गई है। इस कारण कुल जनसंख्या में वृद्धों का अनुपात (8 प्रतिशत) भी बढ़ा है। इसका भी दबाव क्रियाशील जनसंख्या पर पड़ा है। फलतः क्रियाशील आयु वर्ग के प्रति 1000 व्यक्ति पर 600 व्यक्ति निर्भर हैं। यह बहुत अधिक निर्भरता है।

यद्यपि देश में **सामाजिक सेवाओं** में स्वतंत्रता के बाद आशातीत वृद्धि हुई है। फिर भी इन **पर बहुत अधिक दबाव है।** जैसे कि प्रति अस्तपाल पर 34,163 व्यक्ति आश्रित हैं। सबको प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य होते हुए भी सात वर्ष से अधिक आयु वर्ग के 100 में केवल 74.4 लोग ही साक्षर हो पाये हैं। इसका मतलब है कि देश **सम्पूर्ण साक्षरता से अभी काफी दूर** है। अल्पायु (0–6 वर्ष) वालों के बड़े होने पर यह समस्या और गम्भीर ही होनी है। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अभी भी

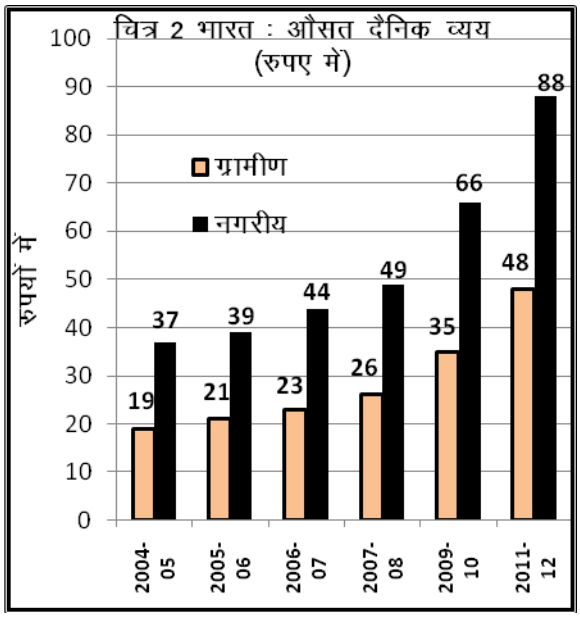
(सन् 2013–14 में) मिडिल शिक्षा आयुवर्ग के 15 प्रतिशत बच्चे–बच्चियों का स्कूलों में प्रवेश नहीं है। सन् 1950–51 से सन् 2013–14 के मध्य प्राथमिक स्कूलों की संख्या 5 से गुनी और मिडिल स्कूलों की



संख्या लगभग 15 गुनी बढ़ी है। तथापि **प्रति शिक्षक विद्यार्थियों की संख्या** प्राथमिक स्कूलों में 24 स बढ़ कर 28 और मिडिल स्कूलों में 20 से 30 हो गई। आज स्थिति यह हो गई है कि गलीकूचे में स्कूल

होते हुए भी भारी डोनेशन के बाद भी बच्चे को प्रवेश दिलाना टेढ़ी खीर हो गई है। **बच्चों का अधिक अनुपात ही इसका मुख्य कारण है।**

तेजी से बढती जनसंख्या को **आवास** मिलना एक विकट समस्या है। देश के रेलवे स्टेशन इसका जीते–जागते चित्र हैं। सन् 2011 में प्रति 100 आवासी घर के पीछे 513 व्यक्ति थे। कुल 86.6 प्रतिशत परिवारा के पास ही अपने मकान हैं। रहवासी घरों में से एक–तिहाई से अधिक (37.1 प्रतिशत) घर एक कमरे वाले तथा इनसे थोड़े कम (31.7 प्रतिशत) दो कमरों वाले थे। केवल आधे मकान अच्छे स्तर के थे। ये मकान बहुत ही छोटे आकार के हैं। भारत के राष्ट्रीय सैम्पुल सर्वे ने अपने 63वें राउण्ड के सर्वेक्षण (सन् 2006–07) में पाया कि देश में 55 प्रतिशत से अधिक परिवारों के मकानों का प्रति व्यक्ति क्षेत्रफल 100 वर्ग फुट से कम था। यह क्षेत्रफल संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति बन्दी न्यूनतम निर्धारित क्षेत्रफल 60 वर्ग फुट के करीब है। कुल मकानों में से 58 प्रतिशत में स्नानगृह, 53.1 प्रतिशत में शौचालय तथा 38.3 प्रतिशत में रसोई गृह नही हैं। जनसंख्या वद्धि के साथ आवासीय समस्या बढ़ती ही जा रही है (**चित्र 1**)।



तालिका 2 भारत : स्तर के अनुसार प्रति माह व्यय (रुपयों में)

वर्ष	ग्रामीण		नगरीय	
	2009-10	2011-12	2009-10	2011-12
निचले 10 प्रतिशत	377.06	503.49	521.32	702.26
ऊपरी 10 प्रतिशत	2394.66	3459.77	5673.16	7651.68

न्यून आर्थिक प्रगति : प्रति ग्रामीण व्यक्ति व्यय–

आर्थिक प्रगति जानने के लिए चार संकेतकों का सहार लिया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों की प्रति व्यक्ति आय के समंक उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आय के प्रतिनिध के रूप में प्रति व्यक्ति मासिक व्यय का उपयोग किया जाता है। राष्ट्रीय सैम्पुल सर्वे संगठन समय–समय पर इनके आंकड़े एकत्रित करता रहता है। पिछले सात वर्षों के तुलनीय आंकड़े उपलब्ध हैं जिनसे साफ है कि ग्रामीण भागों में प्रति व्यक्ति प्रति दिन व्यय वर्ष 2004–05 में रु 19 से बढ़ कर वर्ष 2011–12 में रु 48 हो गया है (**चित्र 2**)। इस तरह रु 29 की वृद्धि हुई। इसी काल में नगरीय क्षेत्रों में प्रति दिन प्रति व्यक्ति व्यय रु 37 से बढ़ कर रु 88 हो गया। यह रु 51 की बढ़ोत्तरी है। इस तरह ग्रामीण क्षेत्र न केवल काफी पीछे हैं बल्कि अपेक्षया मंद गति से आगे बढ़ रहे ह। दूसरे, वर्ष 2011–12 में नगरीय प्रति व्यक्ति व्यय ग्रामीण क्षेत्र से 1.87 गुना अधिक है। वर्ष 2011–12 में यह 1.92 गुनी अधिक थी। अर्थात् दोनों के बीच का अन्तर घट तो रहा है, लेकिन मंद गति से। इस विभिन्नता के कारण लोग कहते हैं कि यहाँ दो देश हैं, एक भारत और दूसरा इण्डिया।

ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक सुधारों का प्रभाव नगरों तक सीमित रह गया है और गांव तक पहुंचना बांकी है।

स्वयं ग्रामीण भागों में ही निम्न व्यय समूह और उच्च व्यय समूह के व्यय में काफी अन्तर है (**तालिका 2**)। वर्ष 2011–12 में ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति मासिक व्यय का ऊपरी 10 प्रतिशत लोगों का औसत (रु 3459.77) निम्न 10 प्रतिशत के औसत व्यय (रु 503.49) से लगभग 7 गुना अधिक है। यह अन्तर शहरी गरीब–सम्पन्नों की तुलना में कम है, परन्तु इसका बढ़ना चिन्तनीय है।

प्रति व्यक्ति व्यय के स्थानिक वितरण से पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों की पेटी सुस्पष्ट उभरती है। ओडिशा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, बिहार, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश मिलकर देश की सबसे गरीब ग्रामीण वृहद् पेटी का निर्माण करते हैं। योजनाकाल के छः दशकों के प्रयत्नों के बाद भी इन राज्यों की व्यय क्षमता बहुत ही सीमित है। अधिक व्यय–क्षमता वाले वे राज्य हैं जहाँ कृषि उन्नत होने के साथ ही अन्य व्यवसाय विकसित हैं। अस्तु विपन्न राज्यों की विकास योजनाओं में स्थानीय संसाधनों निर्यात के बजाय उनके रूपान्तरण के आधार पर स्थानीय विकास पर जोर दिया जाना चाहिए।

गरीबी रेखा से नीचे ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात – गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले लोगों का अनुपात भी आर्थिक दशा का एक प्रमुख संकेतक है। भारत के गरीबों के समंक निम्न **तालिका 3** में प्रस्तुत हैं। इस तालिका के समंको से चार तथ्य स्पष्ट होते हैं। एक, समग्र देश के साथ ग्रामीण भागा में भी गरीबों का अनुपात कम हो रहा है। दूसरे, सन् 1973–74 और 2011–12 के मध्य ग्रामीण क्षेत्रों में 33.2 प्रतिशत बिन्दु की कमी हुई, परन्तु नगरीय क्षेत्र में 35.3 प्रतिशत बिन्दु की। इस तरह घटने की गति ग्रामीण भागों में नगरों की तुलना में मंद है। तीसरे, अभी भी ग्रामीण भागों में गरीबों का अनुपात नगरों की तुलना में दो गुना है। वर्ष 2011–12 में देश के एक–चौथाई (25.7 प्रतिशत) ग्रामीण गरीबी रेखा के नीचे हैं, परन्तु नगरीय क्षेत्र में इनका हिस्सा केवल 13.7 प्रतिशत है। चौथे, गरीबों का सकेन्द्रण गांवों में है। वर्ष 2012–13 में देश के अनुमानित कुल 26.93 करोड़ गरीबों में से 22. 09 करोड़ (देश के 82 प्रतिशत) गरीब ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे हैं।

स्वयं ग्रामीण भागों में गरीबों के अनुपात में बहुत अधिक क्षेत्रीय विभिन्नता है। राज्यों में यह अनुपात गोवा में 6.81 प्रतिशत और हिमाचल प्रदेश में 8.48 प्रतिशत से लेकर झारखण्ड में 40.84 प्रतिशत और छत्तीसगढ़ में 41.61 प्रतिशत तक है। इस तरह अधिकतम अनुपात न्यूनतम का छः गुना से अधिक है। देश के औसत से अधिक ग्रामीण गरीबों के अनुपात का वितरण प्रति व्यक्ति व्यय के वितरण के विपरीत है।

तालिका 3 भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या की प्रवृत्ति, 1973–2012 (संख्या करोड़ में)

वर्ष	संम्पूर्ण भारत		ग्रामीण क्षेत्र		नगरीय क्षेत्र	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1973-74	32.1	54.9	26.1	56.4	6	49
2011-12	26.9	21.7	21.7	25.7	5.9	13.7

स्रोतः भारत सरकार– आर्थिक सर्वेक्षण 2001–2002 तथा भारत सरकार– योजना आयोगः प्रेस नोट आन पावर्टी इस्टिमेट 009–10. * तेन्दुलकर कमेटी के आधार पर

अर्थात् जहाँ गरीबों का अनुपात कम है वहाँ प्रति व्यक्ति व्यय अधिक है। गरीबों का अनुपात बढ़ने पर किए जाने वाले व्यय की मात्रा घट जाती है।

मुख्य कर्मियों की व्यावसायिक संरचना – ग्रामीण भागों में जीविका चलाने के लिए अपेक्षया अधिक लोगों को काम करना पड़ता है। इसीलिए ग्रामीण क्षेत्रों में (40.5 प्रतिशत) नगरीय क्षेत्र (39.8 प्रतिशत) की तुलना में सहभागिता दर अधिक है। इस कारण देश के कुल कर्मियों में से लगभग तीन–चौथाई गांवों में ही हैं। परन्तु गांवों में रोजगार एक विकट समस्या है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार कवल 41.8 प्रतिशत ग्रामीण ही काम करने वालों की श्रेणी आते हैं। इन कुल कर्मियों में लगभग एक–तिहाई (29.8 प्रतिशत) तो सीमान्त कर्मी हैं जिन्हे साल के आधे दिनों में भी काम नहीं मिल पाता। इनका हिस्सा पिछली जनगणना की तुलना में बढ़ा है। कुल पुरुषों का आधे से अधिक (53 प्रतिशत) परन्तु महिलाओं का एक–तिहाई से कम (30.0 प्रतिशत) कर्मी की श्रेणी में आते हैं। फलतः क्रियाशील जनसंख्या पर अकर्मियों की निर्भरता बहुत अधिक है। ग्रामीण क्रियाशील जनसंख्या का लगभग तीन–चौथाई (72.3 प्रतिशत) भाग का भाग्य अभी भी कृषि से जुड़ा है। इसमें एक–तिहाई से अधिक भूमिहीन कृषक मजदूर हैं। इस तरह सीमान्त कर्मी तथा खेतिहर मजदूर मिलकर कुल कर्मियों के दो–तिहाई होते हैं जिन्हे काम पाने की अपेक्षा है।

वर्ष 1950–51 से 2011–12 के मध्य स्थिर भाव के आधार पर ज्ञात सकल राष्ट्रीय उत्पादन लगभग 18.75 गना बढ़ी है, परन्तु प्रति व्यक्ति आय केवल 5.35 गुनी ही बढ पाई। **प्रति व्यक्ति आय में मंद वृद्धि** जनसंख्या की वृद्धि के कारण है। प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 38037 रु. है। **परिणाम है विस्तृत निर्धनता**। सन् 2009–10 में लगभग एक–तिहाई (29.8 प्रतिशत) जनसंख्या गरीब है। महत्वपूर्ण है कि विभिन्न कार्यक्रमों के कारण गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वालों का कुल जनसंख्या में अनुपात तेजी से घटा है फिर भी 35.5 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे रह रहे। **अगर इसी गति से जनसंख्या गुणित होती रहेगी तो इनका स्तर ऊपर उठेगा कैसे**?

मानव विकास– भारत ने मानव विकास में उल्लेखनीय प्रगति की है, तथापि सन् 2011 में विश्व के 187 देशों में से इसका 134 वां स्थान है। इस दृष्टि से भारत '**मध्यम मानव विकास**' वर्ग में आता है। स्वयं देश के अन्दर मानव विकास में काफी विभिन्नता है। इन्स्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड मैन पावर रिसर्च द्वारा वर्ष 2007–08 की सूचनाओं के आधार पर सन् 2011 में प्रकाशित भारत की मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार मानव विकास सूचकांक छत्तीसगढ़ में 0.36 से लेकर केरल में 0.79 तक है। राज्यों में केरल सर्वश्रेष्ठ है। इसके साथ ही दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, गोवा और पंजाब मानव सूचकाक की दृष्टि से प्रथम पांच राज्य हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, उत्तराखण्ड, जम्मू–कश्मीर, पश्चिमी बंगाल और पूर्वी विशेष दर्जा प्राप्त राज्यों में भी मानव विकास का स्तर अच्छा है। न्यून मानव विकास सूचकांक वाले पांच राज्य– छत्तीसगढ़ (0.358) ओडीशा (0.362) बिहार (0.367), मध्यप्रदेश (0.375) तथा झारखंड (0.376) हैं। ये राज्य देश के मध्य, उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रों पर फैले हैं।

संयोग से ये राज्य तीव्र जनसंख्या वृद्धि के राज्यों में हैं। सामान्यतया जो राज्य आर्थिक विकास में पिछड़े हैं वे मानव विकास में पीछे हैं। आर्थिक दृष्टि से विकसित राज्य मानव विकास में भी आगे हैं।

विकास की काली छाया : प्राकृतिक पर्यावरण का अवनयन एवं प्रदूषण

कृषि विकास के लिए अपनाए गए पैकेज प्रोग्राम के माध्यम से कृषि के विस्तारीकरण और गहनीकरण के कारण पारिस्थितकी तंत्र दुष्प्रभावित होने लगा है। पर्यावरण का निम्न रूपों में अवनयन होता है :

(1) वन–विनाश एवं भूमि उपयोग में परिवर्तन।

(2) रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवारनाशक तथा अन्य रासायनों के बढ़ते प्रयोग से प्रदूषण।

(3) सिंचाई के विस्तार से उत्पन्न समस्याएं, तथा

(4) जैविक समुदाय में परिवर्तन।

बाढ़ अपरदन, जलाशयों में सिल्ट जमा होना आदि स्पष्ट दुष्परिणाम हैं। साथ ही वनों पर निर्भर पशुधन की गुणवत्ता एवं कार्यशीलता में तेजी से गिरावट आई है। सिंचाई का विस्तार भी कृषि विकास से जुड़ा है। निर्विवाद सिंचाई के उपजदर बढ़ती है, साथ ही कई समस्याएं पैदा होती हैं। मिट्टी की संरचना में तेजी से परिवर्तन, लवणीकरण, क्षारीकरण तथा दलदल की समस्याएं मुख्य हैं। भारत में सिंचित क्षेत्र का आधा भाग इस तरह की समस्याओं से ग्रस्त हैं। इसके अलावा भूमिगत जल के तल में उठाव की भी समस्या पैदा हो गई।

अनुपयुक्त भूमि पर कृषि का विस्तारः–तेजी से बढ़ती भारी जनसंख्या फलतः कृषि का विस्तारीकरण एवं गहनीकरण के कारण आधारभूत संसाधनों – कृषित भूमि, वन एवं जल की मांग इतनी बढ़ गई है कि इनका उत्पादन उनके पुनरुत्पादन की क्षमता से बहुत अधिक हो रहा है। इसके मुख्य परिणाम कृषित भूमि का अनुपयुक्त भूमि पर विस्तार, कृषि के विस्तार हेतु वनों की सफाई, कृषि–उत्पादन की गहनता बढ़ाना फलतः भूमि की गुणवत्ता मे कमी आना हैं। **तालिका 4** से स्पष्ट है कि पिछले साठ वर्षों में ऊसर तथा कृषि के अयोग्य भूमि, विभिन्न वृक्षों के अन्तर्गत भूमि तथा बेकार भूमि का विस्तार कम हुआ है। इनके दाम पर निरा कृषित भूमि और वनों के अन्तर्गत भूमि बढ़ी है।

तालिका 4 भारत में भूमि उपयोग में हुए परिवर्तन, 1950–2013			
भूमि उपयोग के वर्ग	1950-51	2012-13	प्रतिशत में अन्तर
वन	13.2	22.9	9.7
गैरकृषीाय उपयोगों की भूमि	3.1	8.7	5.6
ऊसर तथा कृषि के अयोग्य भूमि	12.5	5.7	-6.8
स्थायी चारागाह	2.2	3.4	1.2
विविध वृक्षों के अर्न्तगत भूमि	6.5	1.0	-5.5
कृषियोग बेकार भूमि	7.5	4.1	-3.4
पड़ती भूमि	9.2	8.6	-0.6
निरा बोया गया क्षेत्र	38.8	45.7	6.9
दुफसली क्षेत्र	11.1	38.9	27.7

वन–विनाशः–कृषि–विस्तार का सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव वनों पर पड़ा है। वन अनेकों काम करते हैं। देश का सेंन्ट्रल फारेस्ट्री बोर्ड के अनुसार भारत में सन् 1951 से अगले 25 वर्षों में 43.28 लाख हेक्टर वन भूमि का अनेकों विकास कार्यों के लिए प्रयोग किया गया। देश के भूमि उपयोग के समंकों के अनुसार वर्ष 2012–13 में 7 लाख वर्ग किमी पर वन हैं जो देश के प्रतिवेदित क्षेत्र का 22.9 प्रतिशत है। इस तरह सन् 1950–51 की तुलना में 9.7 प्रतिशत अतिरिक्त भूमि वनों के अन्तर्गत आ गई है। परन्तु यह क्षेत्र प्रशासन की दृष्टि से वन विभाग के अन्तर्गत है, वास्तविक वक्षीय वनों के अन्तर्गत नहीं। फारेस्ट सर्वे ऑफ इण्डिया की 'इण्डिया स्टेट फारेस्ट रिपोर्ट 2013 के अनुसार देश के केवल 2.54 प्रतिशत भाग पर घने वन और 9.70 प्रतिशत भाग पर मध्यम घने वन हैं। साथ ही 2.78 प्रतिशत पर

वृक्षीय आवरण हैं। इसके विपरीत लगभग 9 प्रतिशत पर खुले वन पाए जाते हैं। इस तरह वन पारिस्थितिकी तंत्र चरमरा चुका है। वनों को साफ कर कृषि के विस्तार से बहुमूल्य वन–सम्पदा की कमी तो हो ही रही है। तीव्र ढ़ालों से वृक्षों को साफ करने से मिट्टी का अपरदन और बाढ़ आने की आवृत्ति बढ़ी। नदी एवं जलाशय में तेजी से सिल्ट जमा होना, वन्य–जीवो का लुप्त होना तथा जैव विविधता मे कमी आना वन–विनाश के ही परिणाम हैं। वनों के नष्ट होने से वनों पर निर्भर रहने वाले वनवासियों का तो जीवनतंत्र ही बिखर गया है। दूसरे, वन नष्ट होने पर पशधन को गंभीर समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

नगरीकरण (Urbanization)

जनसंख्या वृद्धि के साथ नगरीकरण भी तेजी से बढ़ रहा है। वर्ष 2011 में भारत में कुल 37.7 करोड़ नागरिक नगरों में रहते हैं जो देश की कुल जनसंख्या का 31.2 प्रतिशत है। यद्यपि यह अनुपात विश्व के 53 प्रतिशत (2015 में) से काफी कम है, फिर भी पर्यावरणीय समस्या उत्पन्न करने में आगे है। देश में नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर (2.47% प्रति वर्ष) ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर (1.25% प्रति वर्ष) से काफी अधिक है। देश में कुल 7935 नगर हो गए हैं जिनमें से 2774 नगर केवल एक दशक 2001–2011 के मध्य बने हैं। कुल नगरो में 468 एक लक्षी नगर हैं जबकि सन् 1951 में इनकी संख्या केवल 76 थी। इस तरह नगर बड़े से वृहद और वृहदतर होते जा रहे हैं।

यह स्थापित सत्य है कि विकासशील देशों में नगर तथा शहर ही आर्थिक वृद्धि के ध्रुव हाते हैं और वहीं से ही विकास के साधन आंतरिक भागों की ओर फैलते हैं। इस प्रकार वे नए आविष्कारों के तथा उनके प्रसरण के केन्द्र होते हैं। इसका परिणाम है कि इन केन्द्रों पर सुविधाओं और सेवाओं तथा रोजगार के अवसर सकेन्द्रित होते हैं। इनके आकर्षण के कारण ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का प्रवाह शहरों की ओर होता है। उदाहरण के लिए वर्ष 1991–2001 के मध्य भारत में 5.17 करोड़ व्यक्ति गांवों से नगरों में आए। फलतः नगर के थोड़े क्षेत्र पर भारी जनसंख्या एकत्रित हो जा रही है। इतने अधिक उपभोक्ताओं द्वारा कूडा–करकट और अवशिष्ट पदार्थ उत्पन्न किया जाता है कि इनका विस्थापन नगरों की गंभीर समस्या बन गई है। अनौपचारिक व्यवसाय तथा अनौपचारिक अधिवास का विकास, आवास की विकट समस्या, गरीबी का सकेन्द्रण, कृषित भूमि पर नगर का आक्रमण तथा प्रदूषण का विकराल होता रूप मुख्य हैं। नगर ऊष्मा–द्वीप बन गए हैं तथा इनका जलवायु परिवर्तन में उल्लेखनीय हिस्सा माना जाता है।

इनके साथ ही असंख्य समस्याओं का क्रम आरंभ होता है जिनमें पर्यावरण एवं पारिस्थिकी अवनयन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इनके कारण अधिक उत्पादन तथा बहुत अधिक उपभोग हैं जिनमे उद्योग तथा परिवहन के साधन सहायक हैं जो नए पर्यावरणीय आपदाओं को जन्म देते हैं। इनमें ध्वनि प्रदूषण, नगरीय जल का अत्यधिक दोहन तथा दूषित किया जाना, बहुत अधिक कचरा का उत्पन्न होना

मुख्य हैं। इनसे निवास्य का पर्यावरण न्यून होता जाता है। आवागमन की गति एव आवृत्ति बढ़ने के कारण कई तरह के प्रदूषण जन्म लेते हैं। इनमें वायु प्रदूषण उल्लेखनीय है। विभिन्न प्रकार की गैसें मोटर गाड़ियों एवं कल कारखानों से निकलकर वायु में सतत् मिलती रहती हैं। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वर्ष 2013 में विश्व के 20 बड़े प्रदूषित नगरों में से 13 भारत में थे और दिल्ली विश्व का सबसे प्रदूषित शहर बन गया है। जलपूर्ति की भी समुचित व्यवस्था नहीं होती। पाइप लाइनें पुरानी हो चुकी हैं तथा उनमें छिद्र हैं जिनसे उनमें गंदा पानी मिलता रहता है। शहरों में साफ पेय जल की कमी महत्वपूण समस्या है। फलतः लोगों को विशेषकर मलिन बस्ती के निवासियों की गंदे जल पर निर्भर रहना पड़ता है।

मल निकास व्यवस्था और मलजल यहाँ की नगरीय समस्याओं में मुख्य हैं। अधिकांश नगरों में इनकी व्यवस्था अपर्याप्त है। अधिकतर कारखाने अपने अवशिष्ट पदार्थ को मलजल निकास तंत्र में अथवा नदी में छोड़ते हैं। फलतः जल प्रदूषित होता रहता है। जैसे कि गंगा को अपवित्र करने में उसके किनारे बसे नगरों का गंदा जल बहाकर लाने वाले असंख्य नाले ही मुख्य हैं। अधिकतर नगरों में ठोस कूड़ा–करकट के सफाई और समाप्त करने की भी उचित व्यवस्था नहीं है। इसे खुले स्थान पर फेंक दिया जाता है। लगभग आधा कचरा साफ ही नहीं किया जाता जो सड़कों, घरों के बीच की जगह आदि पर जमा होता रहता है। इनसे अनेको स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं पैदा होती हैं।

मलिन बस्तियों के विकास का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सन् 2011 में देश के 2613 नगरों ये बस्तियाँ स्थापित हो चुकी थीं जिनमें 6.6 लाख व्यक्ति निवास कर रहे थे। ये कुल नगरीय जनसंख्या के 17.4 प्रतिशत हैं। आन्ध्र प्रदेश की एक–तिहाई से अधिक (36.1 प्रतिशत) नगरीय लोग मलिन बस्तियों में रहते हैं। छत्तीसगढ़ (32.0 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (28.4 प्रतिशत), महाराष्ट्र (23.3 प्रतिशत), ओडिशा (22.3 प्रतिशत), पश्चिम बंगाल (22.1 प्रतिशत) और सिक्किम (20.4 प्रतिशत) में एक चौथाई से अधिक लोग मलिन बस्तीवासी रहते हैं। दिल्ली शहर में भी सैकड़ों मलिन बस्तियाँ हैं। इन बस्तियों की समस्याएं इनकी स्थिति से जुड़ी है। मलिन बस्तियाँ शहर के सीमान्त भाग, दूषित जल–निकास के स्थल, जलाप्लावित तथा पहाड़ियों के ढाल पर स्थित होती हैं। इन बस्तियों में रहने के लिए मूलभूत सुविधाएँ तक नहीं उपलब्ध होती, जैसे कि रहने के घर में न तो पर्याप्त जगह, न ही साफ पेय जल की सुबिधा, न ही साफ–सफाई की सुविधा और न ही आवागमन के लिए सड़कें। ऐसी पर्यावरणीय दशा में डायरिया, पेचिस, टाइफाइड आदि बीमारियाँ आम होती हैं। गंदे, छोटे घरों के साथ ही ये बस्तियाँ गैर–कानूनी होती हैं। फलतः स्थानीय प्रशासन इन पर ध्यान नहीं देता। मलिन बस्ती प्रधान इन नगरों का जन्म गांवों से नगरों की ओर बड़े पैमान के प्रवास के कारण होता है। तीव्र गति से बढ़ने के कारण इन शहरों में आवास सहित जल और मलमूत्र के प्रवाह तथा परिवहन सहित अन्य आवश्यक सेवाओं का उतनी तेजी से विकास नहीं किया जा सकता। फलतः यहाँ के निवासी अनेकों तरह के अभावों के शिकार होते हैं तथा इनकी कमी अनेकों सामाजिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देती है, जिनमें विभिन्न तरह के अपराधों का पनपना बहुचर्चित है।

नगरों के समीप के जलाशय न केवल स्थल से आए रोगाणुओं तथा बैक्टीरिया से दूषित होते हैं बल्कि ये सिंथेटिक यौगिक, जैसे कीटनाशक, से भी प्रदूषित होते हैं जो यहां के जलजीवों में एकत्रित होते रहते हैं। इनमें विषैले पदार्थ, जैसे कैडमियम और पारा, निरंतर इकट्ठे होते जाते हैं और मानव इनका उपयोग करता है तो इनकी विषाक्तता बढ़ जाती है। इस तरह नगर आधारित प्रदूषण केवल नगर के प्रभाव क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहता वल्कि आसपास के वातावरण को प्रभावित करता है। इसका उदाहरण फारस की खाड़ी है। भूभागों से घिरी यह उथली, सकरी तथा छोटी खाड़ी की दुर्बल पारिस्थितिकी सीमावर्ती नगरों और औद्योगिक केन्द्रों से जनित प्रदूषकों से गंभीर खतरे में है। खाली तेल वाहक टैंकरों के धोने से तथा पेट्रोलियम के लीकेज से जल निरंतर प्रदूषित होता जा रहा है। नगरों के मलजल एवं कूड़ा–करकट प्रदूषण के अन्य स्रोत हैं। इन कारणों से इन जलाशयों का मनोरंजन के लिए प्रयोग खतरनाक हो गया है।

विकासशील देशों में नगरों का विस्तार अनियंत्रित होता है। नगरीकरण के साथ अधोसंरचना तथा अन्य नगरीय विकास का भी तेजी से वृद्धि हुई; परन्तु कृषीय भूमि के दाम पर। फलतः अधिकतर नगर अच्छी प्रकार की कृषित भूमि पर फैल जाते हैं। जैसे कि नई दिल्ली सहित दिल्ली नगर में 100 से अधिक गांव समाहित हो गए हैं। विश्व में वर्ष 2000 में 50 लाख वर्ग किमी भूमि निर्मित संरचनाओं (builtup) के अन्दर है। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) का अनुमान है कि यह भूमि सन् 2030 तक 70 लाख वर्ग किमो तथा सन् 2050 तक 90 लाख वर्ग किमी हो जाएगी। इस फैलाव से अच्छी भूमि की कमी तो होती जा रही है; साथ ही नगरों के बिखराव के कारण सामुदायिक सेवाओं, यथा सड़क, जल प्रदाय, मलजल निकास व्यवस्था आदि का प्रबंध करना महगा और कठिन होता है। इस फैलाव से आसपास के प्राकृतिक भूदृश्य भी नष्ट हो जाते हैं और मनोरंजन के स्थलों की कमी हो जाती है। शहरों का प्रभाव आसपास के भूमि उपयोग पर पड़ता है। सामान्यता भूमि का गहन उपयोग साग–सब्जी आदि के लिए किया जाने लगता है। निवेश की कमी और पड़ती की अवधि कम होने से यह भूमि बेकार होने लगती है। इस तरह नगरीकरण पर्यावरण का विनाशक बन गया है। इसी कारण सम्पोषक नगरीय विकास की अवधारणा काफी बलवती हो रही है।

कृषीय भूमि का अवनयन (Agricultural land degradation)

कृषि पर अत्यधिक दबाव, उसका अनुपयुक्त भूमि पर विस्तार तथा अनुपयुक्त कृषि–पद्धति के कारण कृषि वाली भूमि की गुणवत्ता निरंतर कम हो रही है। भारत में लगभग 13 करोड़ हेक्टर (कुल क्षेत्रफल का 45 प्रतिशत) भूमि अपरदन की गंभीर समस्या से ग्रस्त है। यहाँ नलिका अपरदन, खड्ड अपरदन, स्थानान्तरी कृषि, कृषित बेकार भूमि, रेतीला भाग, मरुस्थल एवं जल–प्लावन के कारण भूमि खराब हुई है। यह अनुमान है कि खेती वाली मिट्टी के 1 मिमी के अपरदन से 10 किलोग्राम नाइट्रोजन तथा 2 किलोग्राम फास्फोरस का नुकशान होता है। जल एवं वायु द्वारा अपरदन से प्रभावित क्षेत्र का राष्ट्रीय कृषि कमीशन ने अनुमान लगाया है। इसमें लगभग 6.9 करोड़ हेक्टर में यह गंभीर समस्या है।

लगभग 7 करोड़ हेक्टर कृषित भूमि भी वर्षा से तीव्र अपरदन से ग्रसित है। अपरदन के अलावा मिट्टी की गुणवत्ता लवणीकरण तथा जल प्लावन से भी गिरी है। इनके कारण हैं– अनुपयुक्त स्थलों पर जलाशय, नहर एवं तालाबों का निर्माण, नहर जल का अधिक उपयोग तथा बाढ़ के जल को रंध्ररहित शैल के क्षेत्रों की ओर मोड़ना। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में अनियंत्रित सिंचाई के कारण क्षारीय एवं लवणीय मिट्टी का क्षेत्र बढ़ा है। इस समस्या का विशद् विश्लेषण सुरेन्द्र सिंह (1987) ने भारत के मरुस्थल के संदर्भ में किया है। राजस्थान के पश्चिमी जिलों में नहर (जसवंत सागर एवं इंदिरा गांधी नहर) तथा तालाबों के कारण भारी मात्रा में भूमि बेकार हो गई है।

मरुस्थलीकरण (Desertification)

उपजाऊ और गैर–मरुस्थली भूमि का अनुपजाऊ मरुभूमि में बदल जाना ही मरुस्थलीकरण है। अर्थात् पारिस्थितिकी अवनयन से मरुस्थल–जैसी दशा बनना ही मरुस्थलीकरण कहलाता है। इसमें मरुस्थलों का नवीन क्षेत्र पर विस्तार तथा अल्प वर्षा वाले भाग का अवनयन दोनों सम्मिलित हैं। मरुस्थलीकरण के कारणों में प्राकृतिक कारण, जैसे सूखा, और मानवीय गतिविधियाँ दोनों हैं। मरुस्थलों के सीमान्तों पर बढ़ती जनसंख्या और जानवरों के दबाव के कारण मरुस्थलों का विस्तार हो रहा है। शुष्क, अर्धशुष्क और अल्पार्द्र भागों में अत्यधिक मानव व्यवधानों के कारण वहाँ का पारिस्थितिकी तंत्र बिगड़ने लगता है और भूमि मरु होन लगती है। ये व्यवधान अतिरेक कृषि, अति–पशुचारण, वन–विनाश तथा घटिया जल–प्रबन्धन के रूप में होते हैं। इनसे वानस्पतिक आवरण नष्ट हो जाता है, मिट्टी की उत्पादकता समाप्त हो जाती है और भूजल का तल गिर जाता है; फलतः जैव–विविधता तथा उत्पादकता समाप्त हो जाती है। इससे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक तनाव उत्पन्न होता है। मरुस्थलीकरण गरीबी का कारण एव परिणाम दोनों है। गरीब सीमांतक किसान जीविका अर्जित करने के लिए नाजुक अनुपयुक्त भूमि पर खेती करते हैं जो मरुस्थलीकरण का कारण बनता है।

मानव व्यवधान के कारण उपजाऊ भूमि का मरुस्थल में परिवर्तित होने का सुन्दर उदाहरण भारत में राजस्थान का पश्चिमी हिस्सा है। इस भाग में पाए गए प्राचीन प्रागैतिहासिक अवशेषों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि ईसवी के प्रथम शताब्दी तक यह भाग भी आर्द्र था तथा भूरे बर्तनों तथा रंगमहल नाम से प्रसिद्ध संस्कृतियाँ यहाँ पनपीं। परंतु मनुष्य ने यहाँ के वानस्पतिक आवरण को इतनी क्रूरता से कृषि के विस्तार एवं पशुचारण के माध्यम से नष्ट किया कि अन्ततोगत्वा यह भाग रेगिस्तान में परिवर्तित हो गया। वनस्पतियों के नष्ट होने से धूलि के कण ऊपरी वायुमंडल में पहच कर गाढ़े बादल के रूप में स्थिर हो गए हैं, जिनकी उपस्थिति के कारण अब भी इस भाग में वर्षा नहीं हो पाती, यद्यपि दक्षिण–पश्चिमी मानसूनी हवाएं इनके ऊपर से गुजरती हैं। तथापि इस शुष्क क्षेत्र की भरण–पोषण की क्षमता की तुलना में भूमि पर जल एवं पशुधन का दबाव बहुत अधिक है। फलतः पशुओं को चराने के लिए पशुपालकों को घूमना पड़ता है। यद्यपि घुमन्तू पशुचारक मरुस्थलों में जाने से बचते हैं, परन्तु अपने भूमि उपयोग के माध्यम से वे अपने साथ मरुस्थल लेकर चलते हैं। जनसंख्या के

बढ़ते दबाव के कारण भी कृषि और ईंधन के लिए वनस्पतियाँ नष्ट की जा रही हैं। इस तरह संसाधनों का अत्यधिक दोहन ही मरुस्थलीकरण का मूल कारण है और यह शुद्ध मानवकृत समस्या है।

आधुनिक तकनीकी का पर्यावरणीय प्रभाव

पर्यावरण पर सर्वाधिक प्रभाव जीवाश्मीय ऊर्जा पर आधारित आधुनिक तकनीकी का पड़ा है जिसस न केवल पड़े पैमाने पर उत्पादन एवं वितरण संभव हुआ बल्कि उसी अनुपात में संसाधनों का विदोहन, विरूपण एवं पर्यावरण का प्रदूषण भी हुआ है। वास्तव में तकनीकी के परिवर्तन के कारण आर्थिक विकास और पर्यावरणीय गुणवत्ता के बीच का संतुलन बिगड़ जाता है। फलतः पयावरणीय आपदाओं (hazards) की संख्या बढ़ती जा रही है। इनसे पर्यावरण में संकट पैदा करने वाले पदार्थ–फोटोरसायन धुंआ, विषैले रसायन, द्रुत पादप सुपोषण (eutrophication) तथा अवशिष्ट रसायनों का भारी मात्रा में पर्यावरण में संकेद्रण– जैसी प्रक्रियाएं विकराल रूप ले सकीं। विकसित देशों में तकनीकी का पर्यावरण पर प्रभाव सर्वाधिक है, परन्तु भारत जैसे देशों ने विकसित देशों की तकनीकी का अनुकरण करके उनसे संबंधित समस्याओं को ओढ़ लिया है। जैसे कि पेट्रोरसायन तथा कीटनाशक रसायनों पर आधारित हरित क्रान्ति ने यहां भी जल एवं भूमि प्रदूषण को बढ़ाया है।

हरित क्रांति (Green Revolution) – खाद्यान्नों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए कृषीय उत्पादन बढ़ाने का दो तरफा प्रयास किया गया। एक, कृषि का नवीन क्षेत्रों पर विस्तार जिसकी परिणति वन–विनाश में हुई। दूसरा प्रयास कृषि को अधिक गहन बनाने का है, जिसमें एक ही भूमि से साल में कई फसलें ली जाती हैं। यह दूसरा प्रयास शुद्ध रूप से उर्वरक–कीटनाशक–प्रधान आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों पर आधारित उत्पादन–प्रणाली है जो प्रकृति प्रदत्त कृषीय आधारों, जैसे मिट्टी की उर्वरता, वनस्पतियों द्वारा सतत् दिए जान वाले पोषक चक्र और जल का पुनःसंभरण आदि, का तीव्रता से क्षरण करती है। इसका आरंभ चमत्कारी बीजों के आविष्कार एवं उपयोग से हुआ। इस प्रकार के बीज में कई गुण थे जिनमें मुख्य गुण अधिक उपज देना है। इससे अधिकतम लाभ पाने के लिए सिंचाई का विस्तार, उर्वरका एवं कीटनाशक दवाओं का उपयोग भी काफी बढ़ा।

रासायनिक उर्वरक हरित क्रांति का मुख्य अंग है। उपज बढ़ाने के लिए इनका भारी मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इन उर्वरकों का कुछ भाग मिट्टी में जमा होता रहता है। इससे मिट्टी में नाइट्रोजन बढ़ाने वाले सूक्ष्म जीवों का विनाश होता है। फलतः मिट्टी का बांझपन बढ़ना और जल सोख कर रखने की क्षमता का कम होना आदि समस्याएं बढ़ती हैं। कुछ वर्षों में मिट्टी अनुपजाऊ होने लगती है। उर्वरकों एव रसायनों का अवशिष्ट भाग पानी के साथ बहकर जलाशयों में पहुंचता है, जिससे जल प्रदूषण प्रांरभ होता है। जल की रासायनिक बनावट में तेजी से परिवर्तन होता है और जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को खतरा पैदा हो जाता है। जल में लगातर पोषक तत्व एकत्रित होते जाते हैं, जिससे शैवाल जैसे अवांच्छनीय वनस्पति की वृद्धि होती है। इस प्रक्रिया को पादप सुपोषण

(eutrophication) कहते हैं। उर्वरक एवं कीटनाशक–खरपतवार नाशक रासायन रस कर भूमिगत जल में भी मिल जाते हैं। इस तरह जल एवं भूमि का प्रदूषण बढ़ता है। फलतः बिना साफ किए सतही तथा भूमिगत जल के प्रयोग से जीवन एवं स्वास्थ्य को खतरा पैदा हो गया है। इसके साथ ही इन उर्वरकों एव रसायनों के अवशेष फसलों में भी उपस्थित रहते हैं जो मानव के लिए मंद विष का काम करते हैं। उल्लेखनीय है कि सन् 1962 में रसेल कार्सन की पुस्तक साइलेंट स्प्रिंग (Silent Spring) में पर्यावरण पर विशेषकर पक्षियों पर कीटनाशक के दुष्प्रभावों को सप्रमाण प्रस्तुत किया गया। इस खोज के बाद ही पर्यावरणीय आन्दोलन का जन्म हुआ तथा तबसे संयुक्त राष्ट्र संघ कई अन्तर्राष्टीय संगोष्ठियों का आयोजन करता आ रहा है।

सिंचाई का विस्तार भी कृषि–विकास से जुड़ा है। निर्विवादरूप से बिना अन्य निवेशों का उपयोग किए हुए भी सिंचाई से उपज दर बढ़ती है; परन्तु साथ ही कई तरह की समस्याएं भी पैदा होती हैं। इससे मिट्टी की संरचना में तेजी से परिवर्तन होता है। लवणीकरण, क्षारीकरण तथा दलदल की समस्याएं इनमें मुख्य हैं। भारत में सिंचित क्षेत्र का आधा भाग इस तरह की समस्याओं से ग्रस्त है। इसके अलावा भूमिगत जल के तल में उठाव और उससे अन्य समस्याएं पैदा हो गई हैं। अंत में हरित क्रांति पूंजी–प्रधान प्रक्रिया है; फलतः केवल बड़े किसानों की ही पहुंच इन तकनीकी तक है और छोटे तथा सीमान्त कृषक इसके लाभ से वंचित हैं। फलतः हरित क्रांति से सामाजिक विषमता भी बढ़ी ह।

उत्खनन एवं निर्माण–उद्योग के प्रभाव (Impact of Mining and Manufacturing)

औद्योगिक सभ्यता का विकास खनिजों के बिना असंभव है। साथ ही इनकी खोज और उत्खनन से पर्यावरण बड़े पैमाने पर अवनयन होता है। आधुनिक किस्म के औद्योगीकरण से इतनी तेजी से आर्थिक वृद्धि हुई कि औद्योगीकरण को आर्थिक विकास का रामबाण माना जाने लगा। इसकी दो मुख्य विशेषताएं हैं– एक बड़े पैमाने पर उत्पादन, दूसरे, इस हेतु कच्चे माल, ईंधन और ऊर्जा की भी भारी मात्रा में माँग एवं खतप है। फलतः उत्पादन बढ़ने के साथ पर्यावरण का विरूपण बढता जाता है।

आधुनिक औद्योगिक विकास में खनिजों का आधारभूत महत्व है। इस कारण खनिजों का जितनी तेजी से दोहन वर्तमान समय में हो रहा है, उतनी तेजी से पूर्व में कभी भी नहीं हुआ। भारत में खोदे गए सभी खनिजों का कुल मूल्य सन् 1951 में रुपए 89.2 करोड़ से बढ़कर सन् 2013–14 में 2781.5 अरब रुपए हो गया। इस प्रकार चौसठ वर्षो में उत्पादित खनिजों का मूल्य 3118 गुना बढ़ा है। इतनी तीव्र वृद्धि खोदे गए खनिजों की मात्रा एवं उनके मूल्य में वृद्धि दोनों के कारण हुई है। खनन के कारण विस्तृत क्षेत्र में उथल–पुथल होता है। सतही खनन से ऊपरी मलवे का अम्बार लग जाता है; जिससे वानस्पतिक आवरण तथा सम्बद्ध पारिस्थितिकी तंत्र तो नष्ट हो ही जाता है, अपरदन की गति भी तीव्रतर हो जाती है। जलाशय दूषित हो जाते हैं; वायुमंडल में धूल और धुंआ फैल जाता है। खनिजों के

संशोधन से वायु तथा जल का प्रदूषण बड़े पैमाने पर होता है। खनिजों का औद्योगिक प्रक्रिया से गुजरने पर बहुत अधिक प्रदूषण होता है। उनके परिवहन से भी प्रदूषण का खतरा रहता है।

औद्योगिक प्रक्रिया से वांछित वस्तुएँ तो प्राप्त होती ही हैं, उनके अलावा अनेकों अवांछनीय उत्पाद भी निकलते हैं। ये उत्पाद औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ, प्रदूषित जल, जहरीली गैसें, रासायनिक अवक्षेप, एयरोसाल, धूल, राख आदि के रूप में होते हैं। औद्योगिक कारखानों से निकर कर ये अवांछनीय तत्व वातावरण में मिलते जा रहे हैं, जिनसे वायु, जल एवं भूमि का असहनीय सीमा तक प्रदूषण होता जा रहा है। इनकी जलवायु परिवर्तन में अहम् भूमिका स्वीकार की गई है।

कारखानों से निकले अपशिष्ट पदार्थों को तालाबों, झील, जलाशयों, नालों–नदियों में बहा दिया जाता है। फलतः विषैले–पदार्थ बहकर पानी में पहुंचते हैं। औद्योगिक कूड़ा–करकट की सफाई, और निक्षेपण, आपंक का पानी में बहाना, मिथाइल के रूप में पारा का विमोचन आदि प्रदूषकों के प्रमुख रूप हैं। उद्योगों से कई तरह के प्रदूषक उत्पन्न होते हैं, जैसे क्लोरीन, सल्फेट, बाइकार्बोनेट, नाइट्रेट, सोडियम, मैगनीशियम, फास्फेट आदि के आयन। सभी बह कर नदियों में पहुंचते हैं। जैसे कि कानपुर महानगर में स्थित सैकड़ों चमड़े के कारखानों भर से प्रति दिन 58 लाख लीटर दूषित जल गंगा में पहुंचता है। इसी तरह मध्य प्रदेश जैसे पिछड़े राज्य में भी नदियों के किनारे स्थित 500 से अधिक औद्योगिक इकाइयों द्वारा प्रति दिन भारी मात्रा में हांनिकारक अवशिष्ट रासायनिक पदार्थ बहाने के कारण प्रदेश की दस नदियों का जल प्रदूषित हो गया है। इनमें सोन, चम्बल, कुरैल, बेतवा, हसदेव, अरपा, खारून, मलेन, तमती, खान और महानदी मुख्य हैं। राज्य के जल प्रदूषण नियंत्रक बोर्ड के सर्वेक्षण के अनुसार प्रदूषक की सबसे सोचनीय दशा सोन और खान नदियों में है।

उद्योगों का उतना ही दुष्प्रभाव वायु पर पड़ता है। वायु प्रदूषण के मुख्यतः तीन स्रोत हैं – शक्ति एवं बिजली के कारखानें, मोटर गाड़ियाँ एवं निर्माण उद्योग के कारखानें। पहिले स्रोत से सल्फर, नाइट्रोजन आक्साइड, कार्बन डाई आक्साइड; दूसरे स्रोत से कार्बन मोनो आक्साइड, सीसा; तीसरे से अनेकों विषैली गैंसे और रसायन वायुमंडल में पहुंचते हैं। कारखानों से विशेषकर जीवाश्मीय ईंधनों (कोयला, पेट्रोलियम) का प्रयोग करने वाले कारखानों से निकलने वाली गैसों में कार्बनडाई आक्साइड (CO_2) सबसे महत्वपूर्ण है। इन गैसों के वायुमंडल में सान्द्रण से 'हरित गृह प्रभाव' में (greenhouse effect) वृद्धि हो रही है जिससे वायुमंडल का तापमान बढ़ रहा है। सन् 1950 से अब तक धरातल का तापमान 0.6^0 सेग्रे बढ़ गया है। जिस कारण आर्कटिक सागर की वर्फ पिघल रही है। फलतः समुद्र तल ऊपर उठ रहा है। औसत प्रति वर्ष उत्थान सन् 1870 से सन् 1992 तक 1.7 मिमी, परन्तु इसके बाद अब तक 3.26 मिलीमीटर था। इस भूमण्डलीय तापन (global warming) का मुख्य कारण वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड की वृद्धि है। हरित गृह प्रभाव बढ़ाने में लगभग आधा हिस्सा इसका है।

निष्कर्ष (Conclusion)

निष्कर्ष के रूप में ब्राडलैंड कमीशन (1987) का उद्धरण बहुत ही समीचीन है कि "कई प्रकार के विकास उन पर्यावरणीय संसाधनों का क्षरण करते हैं जिन पर वे आधारित होते हैं और यह पर्यावरणीय अवनयन आर्थिक विकास को कमजोर करता है।" जलवायु–परिवर्तन, प्रदूषण, जल संकट तथा रासायनिक कचरा आधुनिक विकास–जनित मुख्य पर्यावरणीय समस्याएं हैं। वर्तमान में जलवायु–परिवर्तन को सर्वोपरि समस्या माना जा रहा है; क्योंकि यह अकेले ही भविष्य को बदलने में समर्थ है तथा मानव विकास में बाधा बन सकता है। उपर्युक्त चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि 'जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक–आर्थिक विकास एवं पर्यावरण अवनयन' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, अर्थात् दोनों का अस्तित्व साथ–साथ है। मानव बिना विकास के रहा नहीं जा सकता और विकास के आधार पर्यावरण और संसाधन को नष्ट करने को भी सोच नहीं सकता। इसलिए इन दोनों में तालमेल बैठाने की महती आवश्यकता है। इसके प्रयास की दो दिशाएं हो सकती हैं, एक जनसंख्या वृद्धि का नियंत्रण तथा पर्यावरण का संपोषित प्रबन्धन। यह तभी संभव है जब पर्यावरण के प्रति आम आदमी की सोच तथा दृष्टिकोण को बदला जाय और पर्यावरण अवनयन से परिचित कराया जाय। जब सामाजिक–राजनैतिक प्रतिबन्ध कड़े नहीं होते तो लोग पर्यावरण के संरक्षण पर ध्यान नहीं देते। दृष्टिकोण और आचरण का घनिष्ट संबंध है। व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण लाग पारिस्थितिकी तथा सामाजिक और आर्थिक परिपेक्ष्यों पर ध्यान नहीं देते हैं। उनमें सामुदायिक भावनाओं की कमी होती है और केवल व्यक्तिगत लाभों पर नजर होती है। ऐसे में पर्यावरण अवनयन एवं प्रदूषण को कम करना संभव नहीं होता।

संदर्भ (References)

Abrol, I.P., B.R. Sharma and G.S. Sekhon, editors (2004) ***Groundwater Use in North-West India.*** New Delhi: Centre for Advancement of Sustainable Agriculture, 202pp.

Bilsborrow, R.E. and M.E. Geores (1993) Population, Landuse and the Environment in Developing Countries: What we can learn from cross-national data? in David Pease and Katrina Brown, eds, ***The Causes of Tropical Deforestation.*** London: University College London.

Boserup Ester (1965) ***The Conditions of the Agricultural Growth: The Economics of Agrarian Change Under Population Pressure***. London: Allen and Unwin.

Brundtland Commission (1987) World Commission on Environment, ***Our Common Future***. New Delhi: Oxford Univ. Press, XI, 1-2.

Commoner, Berry (1972) The Environmental Cost of Economic Growth; ***Chemistry in Britain***, Cambridge: United Kingdom, Vol. 8, No. 2, pp. 52-65.

Davis, Kingsley (1963) The Theory of Change and Response in Modern Demographic History. ***Population Index***, Vol. 29, No. 4, pp. 345-366.

Misra, V.C. & S.K. Sharma (1983) Population Growth and Agricultural Changes in Madhya Pradesh: Analysis of their Correlates, ***National Geographer,*** XVIII-2, 141-152.

Myers, Niorman (1994) Population and the Environment: The Vital Linkages, pp. 55-63 in U.N., ***Population Environment and Development***. Proceedings of the United Nations Expert Group Meeting, New York.

Sharma, S.K. and C.K. Jain (2007) Anatomy of Problematic Population Growth in Madhya Pradesh. ***Madhya Bharti,*** Vol. 53, pp. 1-12.

Sharma, S.K. (1987) Dilemma of Resource Development and Environmental Crises in M.P., pp. 236-254, in H.S. Sharma and M. L. Sharma, eds. ***Environmental Design and Development,*** Jodhpur: Scientific Publishers.

Sharma, S.K. (2005) Man, Environment, Resources and Development: A Search for Interrelationship in Madhya Pradesh. ***Indian Cartographer***, Vol. 25, 23-31, 2005.

Sharma, S.K. (2006) Curbing Population Growth in India. ***Annals of the National Association of Geographers, India,*** Vol *XXVI* (No. 2), pp 45-55.

Sharma, S.K. (2008) Population Pressure and Changes in Landuse in Madhya Pradesh. pp 7-20, in Alok Ranjan, ed, ***Population and Health Indian 2007.*** Bhopal: Shyam Institute.

Sharma, S.K. (2011) आधुनिक विकास का एक चिन्तनीय फलक – पर्यावरणीय प्रभाव (Anxious Facets of Modern Development: Environmental Impacts (Hindi). ***Raashtriya Bhaugolik Patrika,*** (**BHU Hindi Journal),** Vol.2 pp.1-32.

Sharma, S.K. (2014) Population and Resource Development: The Contemporary Situation in Madhya Pradesh in H.N. Misra, ed. ***Managing Natural Resources: Focus on Land Water***. Delhi: PHI Learning Pvt Limited.

Singh, Surendra (1987) Geomorphology, Man and Environmental Degradation in the Indian Desert, pp. 81-94 in H.S. Sharma and M.L. Sharma, eds, ***Environmental Design and Development***. Jodhpur: Scientific Publishers.

United Nations (1984) ***Population, Resources, Environment and Development***. Proceedings of the Expert Group. New York: Department of International Economic & Social Affairs.

United Nations Environment Programme (2009) ***The Environmental Food Crisis: The Environment's Role in Adverting Future Food Crises*** – A UNEP Rapid Response.

Remote sensing & GIS for Tribal Development

Dr. R P Tiwari
Govt. P.G. College Tikamgarh

Dr. Rajendra Prasad Yadav
Professor of Geography
Govt. College, Bichhua Chhindwara, M.P.

Abstract

This paper starts with a brief historic overview of remote sensing and Remote sensed imagery is integrated within a GIS. Remote sensing is defined as the technique of obtaining information about objects through the analysis of data collected by special instruments that are not in physical contact with the objects of investigation. As such, remote sensing can be regarded as "reconnaissance from a distance," "tele detection," or a form of the common adage "look but don't touch." Remote sensing thus differs from in situ sensing, where the instruments are immersed in, or physically touch, the objects of measurement. A common example of an in situ instrument is the soil thermometer. Geographic information system (GIS) is a computer-based tool for mapping and analyzing feature events on earth. GIS technology integrates common database operations, such as query and statistical analysis, with maps. The tribal communities live in about 15 per cent of the country's area, in varying ecological and geo-climatic conditions, plains, forests, hills and inaccessible areas. Tribal groups are at different stages of social, economic and educational development. A geographic information system (GIS) is a technological tool for comprehending geography and making intelligent decisions. GIS manages location-based information and provides tools for display and analysis of various statisticsfor Tribal Development including population characteristics, economic development opportunities

Introduction

Tribal development aims at maintaining the balance between often conflicting ideals of economic growth and nurturing environmental quality and viability. Remote sensing provides a good data base for generating baseline information on natural resources, a pre-requisite for planning monitoring and Employment, of any developmental programme. "Remote Sensing is defined as the science and technology by which *characteristics* of objects of interest can be identified without direct contact"

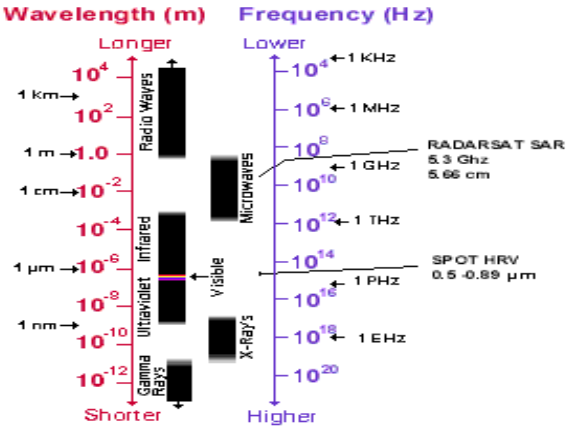
The energy collected and measured in remote sensing has been electromagnetic radiation, including visible light and invisible thermal infrared (heat) energy, which is reflected or emitted in varying degrees by all natural and synthetic objects. The scope of remote sensing has been recently

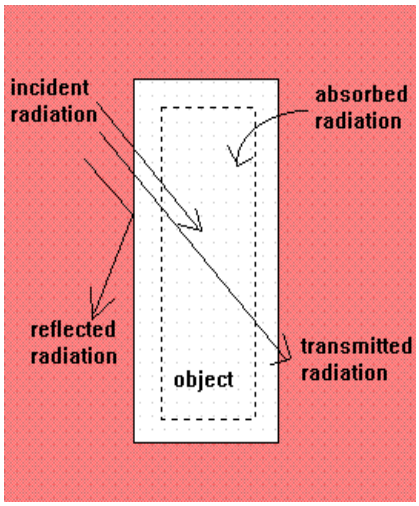
broadened to include acoustical or sound energy, which is propagated under water. With the inclusion of these two different forms of energy, the human eye and ear are examples of remote sensing data collection devices. Remote Sensing is a technology to observe objects' size, shape and character without direct contact with them. The reflected or radiated electromagnetic (EM) waves are received by sensors aboard platform. The characteristics of reflected or radiated EM waves depend on the type or condition of the objects. By understanding characteristics of EM response and comparing observed information, we can know the size, shape and character of the objects.

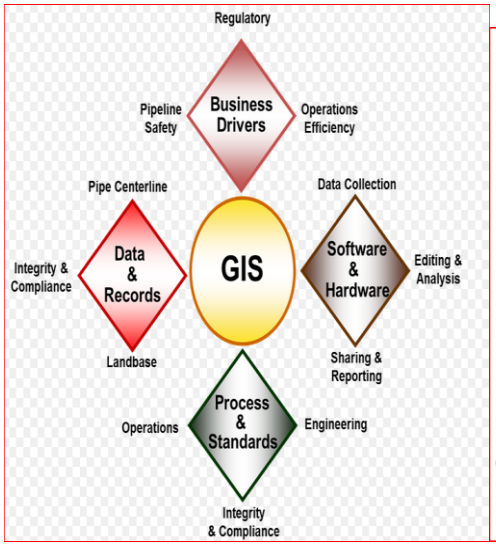
Sensors:

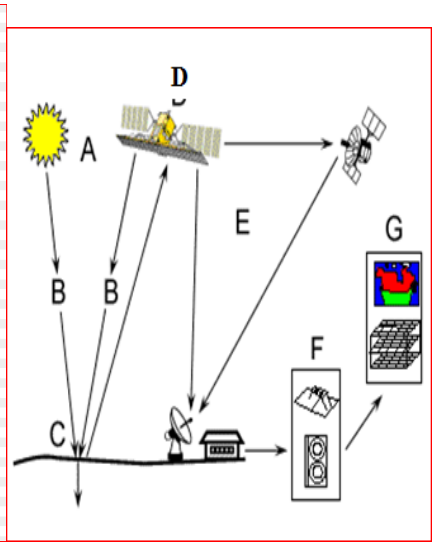
Sensors are Optical, Visible (*Reflectance),* **Near Infrared (***Reflectance),* **Thermal Infrared** *Thermal Radiation* **Microwave, Passive** (Scatterometer) *Microwave Radiation:* **Active** (**SAR**, Altimeter) *Backscatter* **Laser: Active** *Intensity, Time*

Every material on earth shows its own strength of reflection in each wavelength when it is exposed to the EM waves Sensors aboard a platform are capable to acquire the Strength of reflection and radiation in each Wavelength.Strength of reflection and radiation of EM waves from plants, earth and water in each wavelength.









Energy Source (A) - The first requirement for remote sensing is to have an energy source (Sun) which illuminates or provides electromagnetic energy to the target of interest.

Radiation and the Atmosphere (B) - As the energy travels from its source to the target, it will come in contact with and interact with the atmosphere it passes through. This interaction may take place a second time as the energy travels from the target to the sensor.

Interaction with the Target (C) - Once the energy makes its way to the target through the atmosphere, it interacts with the target depending on the properties of both the target and the radiation.

Recording of Energy by the Sensor (D) - after the energy has been scattered by, or emitted from the target, we require a sensor (remote -not in contact with the target) to collect and record the electromagnetic radiation.

Transmission, Reception, and Processing (E) - the energy recorded by the sensor has to be transmitted, often in electronic form, to a receiving and processing station where the data are processed into an image (hardcopy and/or digital).

Interpretation and Analysis (F) - the processed image is interpreted, visually and/or digitally or electronically, to extract information about the target which was illuminated.

Application (G) - the final element of the remote sensing process is achieved when we apply the information that we have been able to extract from the imagery about the target, in order to better understand it, reveal some new information, or assist in solving a particular problem.

Transfer of Electromagnetic Energy by Conduction, Convection& Radiation: Transmission of electromagnetic energy through a medium or vacuum.

Energy Sources are:

• Visible Light is only one form of electromagnetic energy.

• Radio waves, heat, ultra-violet rays and X-rays are other familiar forms.

• All of this energy is inherently similar, and radiates in accordance with basic wave theory.

The light which our eyes - our "remote sensors" – can detect is part of the visible spectrum.

It is important to recognize how small the visible portion is relative to the rest of the spectrum.

There is a lot of radiation around us which is invisible to our eyes, but can be detected by other remote sensing Instruments and used to our advantage.

Advantages of Satellite Observation

• Enables to observe a broad area at a time

• Enables to observe the area for a long period

- Repeat pass observation (Time series data, Change detection)

• Enables to know the condition without visiting the area

• Enables to know invisible information

- Sensors for various electromagnetic spectrum (Infrared, microwave)

Remote Sensing Applications:

Remote sensing imagery has many applications in mapping land-use and cover, agriculture, soils mapping, forestry, city planning, archaeological investigations, military observation, and geomorphologic surveying, land cover changes, deforestation, vegetation dynamics, water quality dynamics, urban growth, etc. Remote sensing is a method to observe the earth surface or the atmosphere from out of space using satellites (space borne) or from the air using aircrafts (airborne). Remote sensing uses a part or several parts of the electromagnetic spectrum. It records the electromagnetic energy reflected or emitted by the earth's surface. The amount of radiation from an object (called radiance) is influenced by both the properties of the object and the radiation hitting the object. The human eyes register the solar light reflected by these objects and our brains interpret the colors, the grey tones and intensity variations. In remote sensing various kinds of tools and devices are used to make electromagnetic radiation outside this range from 425 to 750 nm visible to the human eye, especially the near infrared, middle-infrared, thermal-infrared and microwaves. Likewise other scientific technology, A Geographical Information System (GIS) is a system of hardware, software and procedures to facilitate the management, manipulation, analysis, modeling, representation and display of geo-referenced data to solve complex problems regarding planning and management of Sustainable development, water resources, crops development, and disaster management.Geographic Information System (GIS) offers the capability of integrating suchspatial and attribute data and subsequent generation of developmental plan for Tribal development such as tribal society and culture, ethos, demography, levels of development and contemporary socio-economic issues.GIS organizes geographic data so that a person reading a map can select data necessary for aspecific project or task. A thematic map has a table of contents that allows the reader to add layersof information to a basemap of real-world locations. A good GIS program is able to process geographic data from a variety of sources and integrateit into a map project. Many countries have an abundance of geographic data for analysis, and Government often make GIS datasets publicly available.The data is broughtback to the GIS crew that prepares the maps and reports for management review. The applications of GIS include mapping locations, quantities and densities, finding distances and mapping and monitoring change. Remote sensing is the art and science of making measurements of the earth using sensors on airplanes or

satellites.These sensors collect data in the form of images and provide specialized capabilities for manipulating, analyzing, and visualizing those images.GIS allows you to link databases and maps to create dynamic displays. Additionally, it provides tools to visualize, query, and overlay those databases in ways not possible with traditional spreadsheets. These abilities distinguish GIS from other information systems, and make it valuable to a wide range of public and private enterprises for explaining events, predicting outcomes, and planning strategies. In emerging technology paradigm, "Geographical Information System (GIS)" has emerged as powerful tool which has potential to organize complex spatial environment with tabular relationships. By virtue of providing synoptic view of a fairly large area at a regularinterval, spaceborne multispectral data have been used at operational level forgenerating base line information on mineral resources, soils, ground water andsurface water, land use/land cover, forests, etc. at scales ranging from regional for Tribal Development

There is a major information gap in the mapping of land and tidal boundary, qualitative estimation of suspended sediment concentration, chlorophyll mapping, bathymetry of shallow waters, etc. can be collected and all these data will help in effective ecology management in Tribal Area community.

Conclusion

To complete the remote sensing process, the data captured and recorded by remote sensing systems must be analyzed by interpretive and measurement techniques in order to provide useful information about the subjects of investigation. These techniques are diverse, ranging from traditional methods of visual interpretation to methods using sophisticated computer processing. It cannot be emphasized too strongly that data is not information. Accordingly, the two major components of remote sensing are data capture and data analysis while Functions of GIS include data entry, data display, data management, Information retrieval analysis and broad-scale investigation of Land, water undeveloped areas Based on remote sensing a variety of data pertaining to the like, identification of Forest, Lands, plant community, biomass estimation, water resources Population growth extremely in the field of Geography for Tribal area Development. GIS offersan ideal environment for integration of spatial and attribute data on naturalresourcesand economic needs of the people in tribal areas.

Population Growth and its Effects on Environment: A Case Study of Bilaspur City (C.G)

Dr. Narendranath Guria
Head, Deptt. of Geography
Chaitanya Arts & Science College,
Pamgarh, Chhattisgarh

Abstract

Growth of population in recent times has caused much concern, living in a period of unparalleled population growth. Although there are signs indicating that this unusual rate of increase is coming to an end in some parts of the Bilaspur City. Bilaspur City mostly migrate people being one of the factors determining population growth, has attracted enough attention.

In the rural context livelihoods depends more directly on natural resources than in the urban context where cash-based income streams and assets are more significant. And, poor people impact less on the forces causing environmental degradation in urban areas. Urban environmental degradation is primarily associated with health impacts. As a result, the causes, consequences and distributional costs of urban deprivation are commonly more adequately addressed via political and economic policies rather than through direct intervention into environmental processes.

Key Notes: Population Growth, Pollution Issues, Policy implications, Environmental Degradation.

Introduction

The most important fact about the experience of population growth so far has been that not only the population of the Bilaspur has been growing; even the rate of growth has been rising. Migration means the movement of people from one place to the other place. It is an important control of population growth after fertility and morality. Migration of people into an area from outside is called immigration or in migration,

It also contributes to environmental degradation through over exploitation of natural resources like land, air and water. The result is that health of those dependents on untreated

water resources is increasing at risk. Moreover degraded environment can accelerate the process of impoverishment, again because the poor depend directly on natural assets. Acceleration in poverty alleviation is imperative to break this link between poverty and the environment. The deterioration of natural resources and unsafe living conditions affects the environment and health of the poor people.

Objectives

(i) recall the concept of environmental degradation and factors that cause it;

(ii) explain how exploitation of natural resources leads to environmental degradation;

(iii) explain the relationship between population growth and environmental degradation;

(iv) discuss the impact of industrialization on abiotic (air, water and soil) and biotic resources (plants and animals) of the environment;

(v) list local, regional and global backlashes caused by environmental degradation;

(vi) Describe the impact of environmental degradation on life.

Population Growth Rate

In the census 1991 we found that the total population of the Bilaspur City was 1,95,882. The population as per census of the year 2001 is 2, 74,917and 2011 is 3, 35, 293 decadal growth rate 21.96 %. Its outgrowth areas are Tifra, Sirgitti and Devri – Khurd. The City has been divided into 4 zones, which are further divided into 55 election wards for administrative purposes by the Municipality. Out of these 55 wards, seven wards come in the area of South Eastern Central Railway Administration. There are 46 notified slum pockets in Bilaspur. The total slum population is about 40, 383 thereby making about 20% of total population.

High increase in population was observed between 1991 and 2001 due to the addition of 07 wards in 1994, the creation of the new State, establishment of Zonal headquarter of South Eastern Central Railway & High Court of Chhattisgarh. The floating population in the City is around 50,000. People visit the City daily for official, business and personal purposes. Bilaspur showed a maximum decadal growth rate during 1951-61 and subsequently a gradual increase in the growth rate 121.76 %. Than growth rate in 1971 is 10.58 % , 1981 is 53.42%, 1991 growth rate 22.25% Census 2001 is 52.87% and low rate of 2011is 29.96% Respectively.

Table No.1 Bilaspur City: Decadal Growth Rate (1901-2011)

Census Year	Population	Decadal Change	Decade Variation (%)
1901	18, 987	-	-
1911	19, 350	963	5.07
1921	24, 295	4,945	25.55
1931	31, 374	7,079	29.14
1941	37, 460	6,086	19.40
1951	39, 099	1,639	4.38
1961	86, 706	47,607	121.76
1971	95, 881	9,175	10.58
1981	1, 47, 106	51,225	53.42
1991	1, 79, 833	32,727	22.25
2001	2, 74, 917	95,084	52.87
2011	3, 35, 293	60,376	21.96

Source: Census of India -2011,

Trend of Urbanization

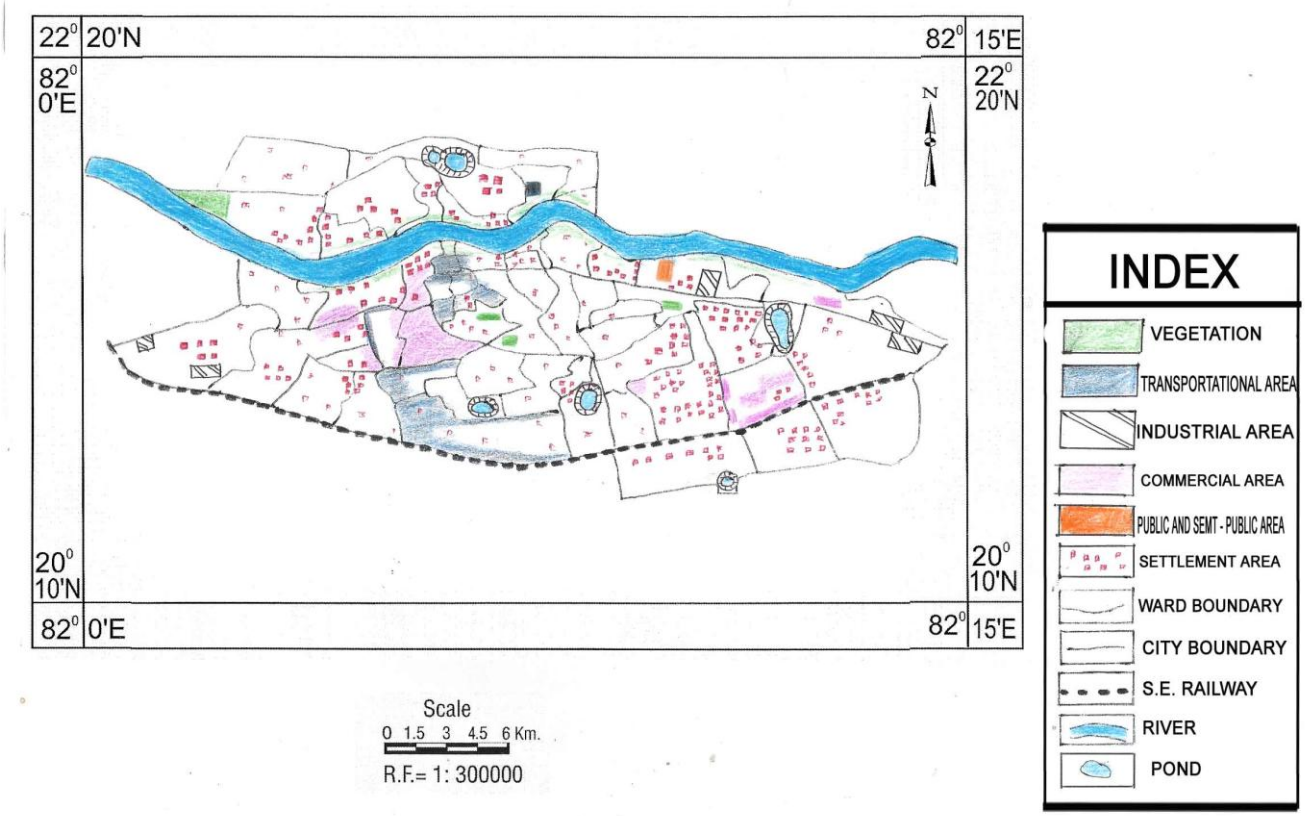
Process of urbanization in the region has been slow till 1951 but since then it has accelerated. The Decennial Growth rate of urban population has declined from 48.90 % in 1991, 36.24 % in 2001 to 22.60 % in 2011 through rate has been higher than that of Madhya Pradesh and the country. The proportion of rural population in Chhattisgarh has come down from96.96 % in 1901, 79.91 % in 2001 to 76.75 % in 2011.

Table No. 2 Bilaspur City: Urban area in Bilaspur City

Sl.No.	Urban Units	Area	Population
1	Nagar Public Nigam	2650	179833
2	Railway area	327.8	28132
3	Srigitti	647.7	9087
4	Debri Khurd	186.2	4929
5	Tifra	730.8	7639
	Total		229620

Source: Bilaspur Municipal Corporation, 2012

Bilaspur City: Land Utilization



Map No.1 Bilaspur City: Land Utilization

Source: Municipal Corporation, Bilaspur, C.G

Urbanization and Environment

Urban life is city life. More and more people are moving to cities from rural area in search of jobs. The rural-urban migration is also partly due to population growth and poverty in the cities. Urbanization means permanent settlement of people in cities and this has resulted in degradation of the environment in various ways. Industrialization opened up many new jobs. Industries attracted rural youth to cities and their migration become easier with the improvement in communication and transport facilities.

Effects of Population Growth

One of the major causes of environmental degradation in Bilaspur could be attributed to rapid growth of population, which is adversely affecting the natural resources and environment. The three fundamental demographic factors of births, deaths and migration produce changes in population size; composition, distribution and these changes raise a

number of important questions of cause and effect. The pressures on the environment intensify every day as the population grows. The rapid increase of human numbers combines with desperate poverty and rising levels of consumption are depleting natural resources on which the livelihood of present and future generations depends. Poorer people, who cannot meet their subsistence needs through purchase, are forced to use common property resources such as forests for food and fuel, pastures for fodder, and ponds and rivers for water.

1. Environmental challenges

Population growth and economic development are contributing to many serious environmental problems in Bilaspur. These include pressure on land, land/soil degradation, forests, habitat destruction and loss of biodiversity, changing consumption pattern, rising demand for energy, air pollution, global warming and climate change and water scarcity and water pollution. Pressure on land Bilaspur city faces the most acute pressure on agricultural land. It shows variations in land use and a narrow range of fluctuations in the proportion of net sown area to total land in the City since 2001 to 2001. Out of total geographical area of 329 Thousands hectares, only 306 Thousands hectares is the reporting area. The land for non-agricultural uses (housing, industry and others) is increased from 9.36 Thousands hectares in 2001 to 22.97 Thousands hectares in 2011 census.

2. Forest resources

To regulate unabated diversion of forestland for non-forestry purposes, Forest (Conservation) Act, 1980 was enacted. It has resulted in reduction of diversion of forest area for non-forestry purposes considerably and the present rate of diversion is 16, hectare annually (Economic Survey of Bilaspur, 1991-01). Forests are an important natural resource of Bilaspur. They play an important role in providing raw materials to industries and generating income and employment Bank (Angelsen, A. 1997). Forests also play an important role in enhancing the quality of environment by influencing the ecological balance and life support system (checking soil erosion, maintaining soil fertility, conserving water, regulating water cycles and floods, balancing carbon dioxide and oxygen content in atmosphere etc. They have moderate influence against floods and thus they protect the soil erosion.

3. Declining per capita forest land and agricultural land

The population growth has resulted in a downward trend in per capita availability of forest and agricultural land since the 1950s. Per capita availability of forests in Bilaspur is much lower than the Chhattisgarh average. The per capita availability of forest land and agricultural, Overall per capita availability of forestland had oscillated around 0.113 hectare during the 1950s, and then has consistently declined. The per capita availability of forest land

declined from 0.124 hectares per capita from 1991-01 to 0.071 The growth of population is expected to be faster than hoped for improvements in forest cover as well as quality.

4. Net availability of food grains

The per capita net availability of food grains in Bilaspur is presented. The per capita net availability of food grains in Bilaspur indicates that, there is an availability or shortage of food grains in the City. Increasing trends in per capita availability of food grains is largely due to cereals. Although, per capita availability of pulses seems to have gone down since 1961 but the availability of the edible oil, sugar and cotton cloth depict an increasing trend. Overall the per capita availability of food grains had gone up from 395 grams per capita per day in 2001 to 458 grams per capita per day in 1999-2000. The per capita availability of cereals increased from 334 grams per capita per day in 2001 to 426 grams per capita per day in 1999-2000. Furthermore, per capita availability of pulses declined from 61 grams per capita per day to 32 grams per capita per day over the period. However, the per capita per day availability of pulses had gone down during the period but simultaneously the per capita per day availability of edible oil, sugar and cotton cloth has been consistently increased during the period. Of course, availability does not mean accessibility because of lack of purchasing power among poor sections of society. However, better organizational management can assure better distribution and thus consumption when the availability is assured.

5. Habitat destruction and loss of biodiversity

Protection of earth's biological diversity is an important goal in its own right. Biodiversity has direct consumptive value in food, agriculture, medicine, industry etc. It also has the aesthetic and recreational value. The greatest threat to biodiversity is not destruction of plants and animals per se, but rather the destruction of their habitat. Bilaspur is one of the 12 mega-biodiversity City of the Chhattisgarh. From about 70 percent of the total geographical area surveyed so far 46,000 plant species and 81,000 animal species representing about 7 percent of the Chhattisgarh's flora and 6.5 percent of the Chhattisgarh's fauna have been described. It is estimated that in the Chhattisgarh wide perspective slightly over 1000 animal species and sub-species are threatened with the extinction rate of one per year, while 20,000 flowering plants are thought to be at risk (Compendium of Environment Statistics, 2000).

6. Rising demand for energy

Coal production through open cast mining; its supply to and consumption in power stations and industrial boilers leads to particulate and gaseous pollution, which can cause pneumoconiosis, bronchitis and respiratory diseases. The energy production/consumption in Bilaspur during 1950-51 to 2000-2001 is depicted. Energy production and consumption has

increased steadily in Bilaspur since 1950 onwards. The bulk of commercial energy comes from the burning of fossil fuels viz. coal and lignite in solid form, petroleum in liquid form and gas in gaseous form. In addition to emission of greenhouse gases, the burning of fossil fuels has led to several ecological problems and associated with health problems like cancer risk, respiratory diseases and other health problems. Burning of traditional fuel adds a large amount of carbon-di-oxide into atmosphere and increases air pollution (Agarwal, B 1997). This clearly indicates that burning of fossil fuels, especially coals, emits lot of carbon di oxide in the atmosphere and leads to global warming. The increasing population numbers and growing affluence have already resulted in rapid growth of energy production and consumption in Bilaspur, and this trend can only be expected to accelerate in the future.

7. Air pollution

Bilaspur city is the most polluted in the Chhattisgarh. Air in metropolitan cities has become highly polluted and pollutant concentrations exceeds limit considered safe by the Chhattisgarh Health Organization (WHO). Table 3 The main factors accounts to urban air quality deterioration are growing industrialization and increasing vehicular pollution, industrial emissions, automobile exhaust and the burning of fossil fuels kills thousands and lives many more to suffer mainly from respiratory damage, heart and lung diseases.

Table No. 3 Bilaspur City: Air Pollution Perametre, 2010- 2012
Air Pollution 2010

Month	So2	NoX	RSPM	SPM
Sep	6.22	15.64	-	409.8
Oct	5.35	13.68	-	348.77
Nov	9.87	23.45	-	386.75
Dec	7.386	20.486	-	402.78

Air Pollution 2011

Month	So2	NoX	RSPM	SPM
Aprl	9.435	22.112	-	418.43
May	9.062	20.5	-	393.036
June	6.814	17.799	-	334.225
July	7.64	19.873	-	224.91
Aug	6.446	13.453	-	140.18
Sep	7.879	24.504	-	212.425
Oct	9.96	28.014	-	341.025

Nov	9.37	25.281	-	430.95
Dec	6.735	21.338	-	370.62

Air Pollution 2012

Month	So2	NoX	RSPM	SPM
Jan	6.884	26.442	-	307.358
Feb	7.014	22.997	-	329.144
March	9.372	25.533	-	390.322
April	8.8	24.47	-	403.658
May	6.652	18.426	-	371.5
June	5.54	16.41	-	275.46
July	4.38	14.88	-	175.2
Aug	4.51	13.01	-	113.38

Source: Environmental department, Bilapur(C.G)

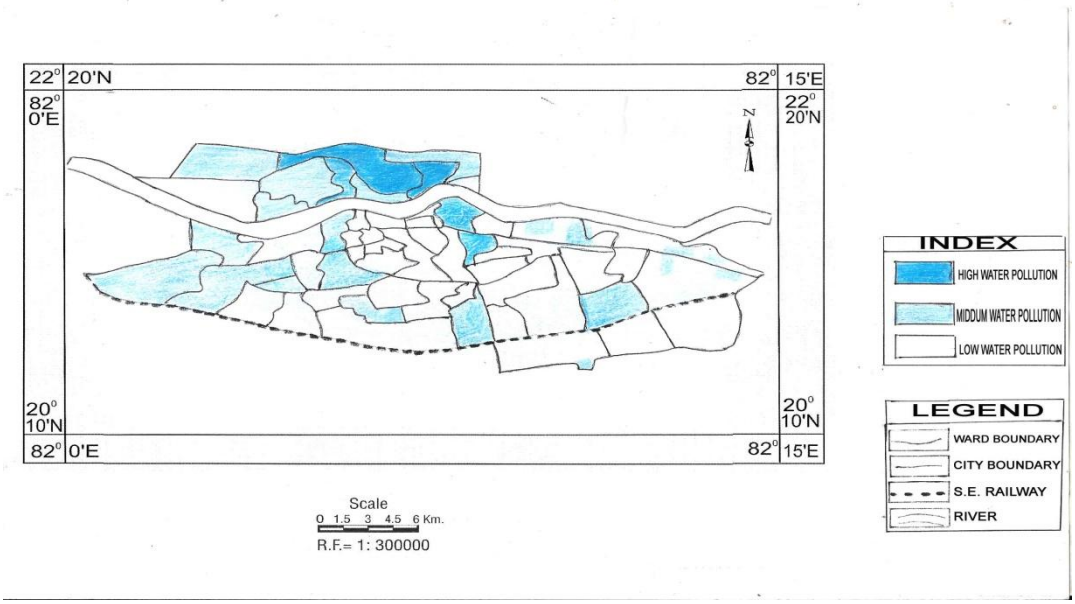
8. Global warming and climate change

The City's large population and rapidly increasing energy use plays an important and growing role in global warming. Global warming can have major physical, environmental and socioeconomic consequences, which can be both positive and negative. The estimation of these impacts is complex and marked with uncertainties. Climate change would cause changes in precipitation patterns, ocean circulation and marine systems, soil moisture, water availability, and sea level rise (Bhargava, Gopal, 1999). These would make an impact on agriculture, forestry and natural eco-systems like wetlands and fisheries. Also with rising temperatures, and subsequent increasing heat stress and alternation in patterns of vector-borne diseases, the global population would be more vulnerable to health problems, causing disruptions in settlement patterns and large-scale migration.

9. Water security and water pollution

The amount of water available per person has declined in recent decades - primarily because of population growth and water scarcity is projected to worsen in the future. The water pollution in Bilaspur comes from three main sources: domestic sewage, industrial effluents and run off from activities such as agriculture. Levels of solid wastes increased in rivers and ponds and other water systems are also heavily polluted due to the intrusion of solid wastes (Bhargava, Gopal, 1999),

Bilaspur City: Water Pollution Scenario



Map No. 6 Bilaspur City: Water Pollution Scenario

Source: Municipal Corporation, Bilaspur C.G

Largely because of widespread pollution, access to safe drinking water remains an urgent need as only 70.1 percent of the households in urban areas and 18.7 percent in rural areas received organized pipe water supply and others have to depend on surface and ground water which is untreated (Statistical Abstract of Bilaspur, 1999). Even small quantities of these residues ingested daily along with food can build up high levels in the body fat.

Policy implications

The creation of employment opportunities is essential in agricultural areas with high poverty, unemployment and landlessness. Poverty also affects the demographic characteristics of the population and hinders the transition to slower population growth (Agarwal, B 1997). There is a need to control poverty and population growth below replacement level in the City. Wastewater treatment plants should be established in accordance with the need of time and its usage should be encouraged. The environment protection should not be a responsibility of government alone but local people and leaders should be encouraged to make dedicated efforts to eradicate the environmental problems.

The increasing population numbers and growing affluence have already resulted in rapid growth of energy production and consumption in Bilaspur city and this trend can only be expected to accelerate in the future. The environmental effects like air pollution and global warming are of growing concern owing to increasing consumption levels.

Impact of population growth on environment

With growing population, requirement for space, shelter, and commodities have exerted enormous pressure on the environment. To provide for these, land use has change dramatically. It has already been seen that forests have been cleared for cultivation of grain and fruit crops.

1. **Clearing land for cultivation to grow more food**

Forests and natural grasslands have been converted to farmlands. Wetlands have been drained and arid lands have been irrigated. These changes have been made to grow more food and more raw materials. But in doing so, the natural resources have been depleted and the landscapes have undergone drastic changes.

2. Water scarcity

Water received as rainfall, flows into rivers, lakes and other water bodies. Some of it seeps into the ground and reaches the ground water. At certain depth of the soil, all the pore spaces between soil particles are saturated with water. This depth is called Water the water table may remain stable if the drawn from the ground water is replenished by the seepage of the rain water.

3. Need for human settlements

Apart from excessive land use changes for growing food, large population means greater requirement for shelter. To make houses for so many, stones and other building materials have to be quarried more rocks have to be blown off and more water to be used.

4. Need for transport

Elaborate network of transport is required to fulfill the growing need of teeming Thousands. Various modes of transports have been developed which consume growing quantities of fossil fuels such as coal, gas and petroleum, polluting the atmosphere.

5. Need for various commodities

The raw materials and fossil fuels and water needed to run industries for manufacturing these products lead to their depletion. Rapid industrialization has also led to pollution from dumping of industrial effluents into rivers and other water bodies. Rapid industrialization has caused much damage to the environment. Mining activities have

depleted stock of mineral resources particularly fossil fuels (Agarwal, B 1997). Present day industrial civilization is becoming a burden on nature and it is time for us to learn to live in harmony with nature.

6. Slum development

Over populated areas result in congested roads and slum formation which lack basic amenities like drinking water, drainage, waste disposal, lack of hygienic conditions and filthy environment create potential conditions for public health problems including spread of epidemic diseases. Discharge of untreated effluents and throwing of waste into water bodies have polluted most of the lakes and rivers.

7. Pollution resulting from overpopulation

Arpa river is suffering from pollution due to discharge of effluents from industries, human settlements, bathing, washing of clothes and throwing of garbage into the river.

Summary and Conclusion

Rapid population growth continues to be a matter of concern for the City as it has manifold effects, one of the most important being environment degradation. The outcomes of excessive population are industrialization and urbanization. The study reveals that rapid population growth has led to the overexploitation of natural resources. The deforestation has led to the shrinking of forest cover, which eventually affects human health. The considerable magnitude of air pollution in the City also pulls up the number of people suffering from respiratory diseases and many a times leading to deaths and serious health hazards.

Wastewater treatment plants be established in accordance with the need of time and its usage should be encouraged. The heavy penalty should be imposed on industries disposing off the wastes into the river. Moreover, the landfills are to be properly managed to prevent ground water contamination. Since slums are one of the major sources of water pollution proper measures should be taken to facilitate the slums with water and sanitation facilities.

Table No. 4 Bilaspur City: Water Pollution of Arpa River, 2011

Sl.No	Characteristics	Units (℃)	Date & Result		
			15-07-011		
			Result -1	Result -2	Result -3
1	Temparature		30	29	29
2	Appernce		Clear	S.Turbid	S.Tutbid
3	Odour	ph units	Odourless	Odourless	Odourless
4	Ph	NTU	7.5	7.5	7.5
5	Turbidity	ns/gm	8.1	11.8	10.1
6	sp.Conductivity	mg/l	299	804	592
7	Total solid	mg/l	160	384	264
8	Suspended soild	mg/l	124	331	218
9	fixed dissolved solid	mg/l	36	53	46
10	Amm.Nitrogen	mg/l	1.12	1.31	1.3
11	Nitrate Nitrogen	mg/l	1.39	1.7	1.7
12	Nitrite Nitrogen	mg/l	0.04	0.076	0.057
13	Phosphate(po4)	mg/l	1.21	1.28	1.2
14	Sulphate(So4)	mg/l	35	70	95
15	Dissolved Oxigen(Do)	mg/l	41	42	42
16	BOD (3 days 27℃)	mg/l	6.7	6.5	615
17	COD	mg/l	1.9	2.4	1.5
18	Total Alkalinity	mg/l			
19	Total Hardness	mg/l	160	220	370
20	Calcium	mg/l	150	188	160
21	Calcium hardness	mg/l	70	110	100
22	Magnesium	mg/l	80	78	60
23	Flaoride	mg/l	28	44	40

Source: Environmental department, Bilapur (C.G.)

Reference

Agarwal, B (1997): “Gender, Environment and Poverty Interlinks: Regional Variations and Temporal shifts in Rural India, 1971-91”, World Development, Vol.25, No.1, pp.23-52.

Anon, (1995), "Ambient Air Quality-Statcity and Statistics, Central Pollution Control Board.

Anon, (1997), "Dhanbad Water Supply Cut-Off', The Telegraph, Anand Bazar Patrika Limited, Calcutta, December 11, 1997.

Anon, (1997), "Tiny Killers", Down to Earth, Society for Environmental Communications, New Delhi, November 15, 1997. Bhargava, Gopal, (1992), Pollution and Its Control; Mittal Publishing Hocitye, New Delhi.

Bhargava, Gopal, (1999),"The Pollution Story in Black and White", Down to Earth, Sunita Narain Publications, New Delhi.

Population Growth, Environmental Management and Climate Change

Dr. Neelima Bagde
Department of Zoology
R. S. Govt. Girls College Chhindwara
E-mail-neelimabagde@gmail.com

Dr. Shampa Jain
Department of Zoology
Govt. Model Science College (Auto.) Jabalpur

Abstract:

Climate change has been described as the biggest global health threat of the 21st century. World population is projected to reach 9.1 billion by 2050, with most of this growth in developing countries. While the principal cause *of climate change is high consumption in the developed countries, its* impact *will be greatest on people in the developing world. Climate change and population can be linked through adaptation (reducing vulnerability to the adverse effects of climate change) and, more controversially, through mitigation (reducing the greenhouse gases that cause climate change). The contribution of low-income, high-fertility countries to global carbon emissions has been negligible to date, but is increasing with the economic development that they need to reduce poverty. Rapid population growth endangers human development, provision of basic services and poverty eradication and weakens the capacity of poor communities to adapt to climate change. Significant mass migration is likely to occur in response to climate change and should be regarded as a legitimate response to the effects of climate change. Linking population dynamics with climate change is a sensitive issue, but family planning programmes that respect and protect human rights can bring a remarkable range of benefits. Population dynamics have not been integrated systematically into climate change science. The contribution of population growth, migration, and urbanization, ageing and household composition to mitigation and adaptation programmes needs urgent investigation.*

Key Words: Mitigation, Climate, Sustainable, Adaptation, Population.

Introduction

According to the United Nation (UN) World Population Prospects 2008 Revision, (1) the world population has reached 6.8 billion with 5.6 billion (82%) living in the less developed regions. It is projected to reach 9.1 billion by 2050, an increase close to the

combined populations of China and India today. Most of this growth will be in developing countries, where population is projected more than to double, from 835 million inhabitants in 2009 to 1.7 billion in 2050.

There is general agreement that human industrial activity has released vast quantities of greenhouse gases, about 900 billion tonnes of carbon dioxide, 450 of which have stayed in the atmosphere. About 80% of carbon dioxide emission is caused by industrialization and the remaining by land use such as deforestation. There is strong evidence that the burning of fossil fuels since the beginning of the industrial revolution has already caused a 0.75°C rise in global temperatures and 22 cm rise in sea level during the twentieth century. During the twenty-first century, the earth's average surface temperature rises are likely to exceed the realistic target threshold of 2°C above preindustrial average temperature. The Intergovernmental Panel on Climate Change estimates that by 2100, global temperatures could rise by 1.1–6.4°C and sea level by 28–79 cm. In addition, weather patterns will become less predictable and extreme climate events, such as storms, floods, heat waves and droughts, will occur with increasing frequency and severity.

It is already clear that the impacts of climate change will fall disproportionately upon developing countries and the poorest sectors within all countries, thereby exacerbating inequities in health status and access to adequate food, clean water and other resources, (2). A recent Lancet UCL Commission on Managing the Health Effects of Climate Change identified climate change as ‘the biggest global health threat of the twenty-first century, (3). The principle cause of climate change is high consumption in developed countries, while the impact of climate change will be worst on poor people in developing countries. (Table-1)

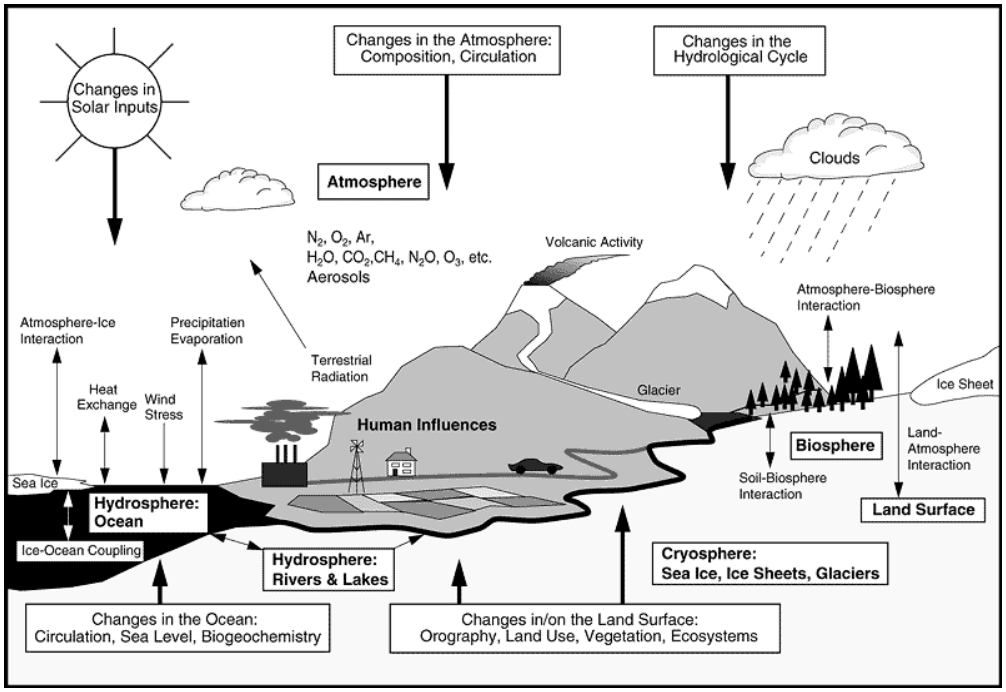


Table-1: COUNTRY WISE EMISSION RANKING

Country	Percentage Emission	Emission wise Global ranking	Percentage Per capita	Ranking
China	25%	1	8.1%	6
US	14.4%	2	19.9%	1
EU	10.2%	3	8.8%	4
India	6.9%	4	2.4%	120
Russia	5.7%	5	16.2%	2
Japan	3.1%	6	10.4%	3

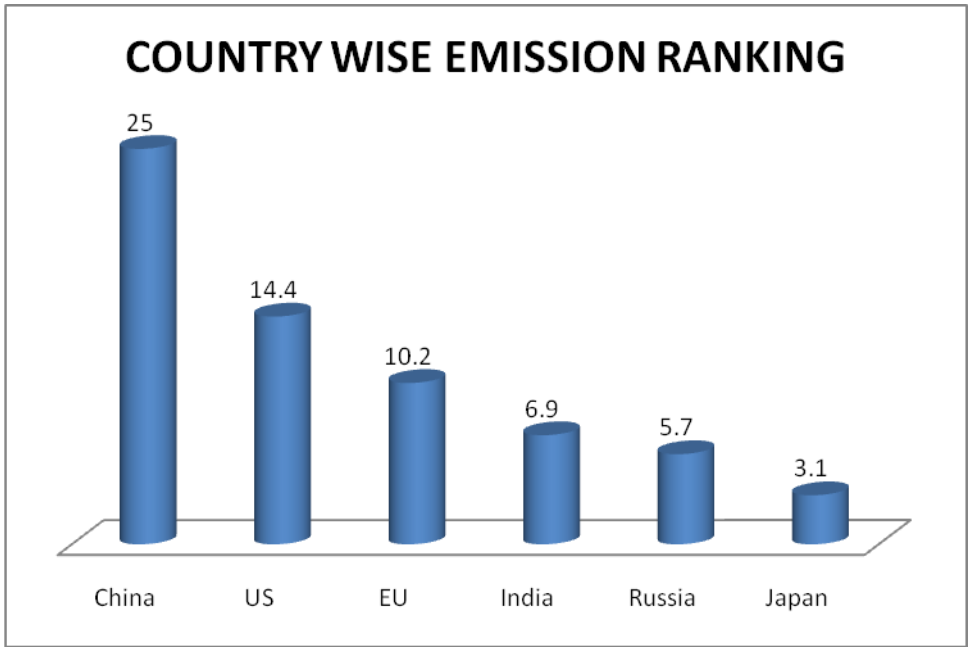


Fig-1 Country wise Carbon emission ranking

Mitigation and adaptation

It is important to recognize two distinct ways in which population issues can be linked to climate change: mitigation (reducing the greenhouse gases that cause climate change) and adaptation (reducing vulnerability to the adverse effects of climate change). Few experts doubt the importance of population in relation to climate change adaptation, but the link between population and climate change mitigation is more controversial. The statement that 'people cause climate change' is often made to emphasize that climate change, as it currently

unfolds, is a human-induced, rather than a natural, phenomenon. However, the principle cause of climate change is high consumption by people in developed countries where population growth has been low or negative. At national the level, therefore, there is a lack of association between growth of greenhouse gas emissions and growth of populations during the last century. It is more accurate to say that consumers, rather than people, cause climate change; there is enormous variation in greenhouse gas emissions between individuals with high consumption levels in developed nations with low fertility rates, and individuals with low or negligible consumption in poor nations with high fertility rates. In other words, climate change is driven more by consumer behavior than simply by population number.

While acknowledging the lack of association between population growth and greenhouse gases in the past, the relation between these two dynamics in the future becomes more critical. As illustrated in (Fig.-1) lower-middle income nations, such as China, with rapidly developing economies, are already contributing an increasing proportion of the growth in global greenhouse gas emissions. In simplistic terms, it is the pattern of development and consumer behavior in such countries that will determine the nature and extent of links between population dynamics and climate change in the future. This does not detract from the view that ‘larger future world populations will face greater challenges than smaller ones in achieving climate-sustainable emissions’ and that ‘the total human impact on the earth system scales with population’.(4) In starker terms, China has claimed that its one-child policy, which is estimated to have reduced the population of China by 500 million should be seen as contributing to its overall actions on climate change.

Rapid population growth has a negative impact on human development, provision of basic services and poverty eradication; these effects are magnified and become more urgent in the context of climate change. Reducing the rate of population growth has long been a development goal because of the detrimental effect of rapid population growth on economic development. No country, barring a few oil-rich states, has risen from poverty while still maintaining high average fertility. In developing countries, where birth rates have successfully declined by 25–40%, the resulting economic growth can be directly attributed to fertility decline.(5,6) The link between slowing population growth and enhanced economic development is well documented, (7,8)particularly at the micro level.

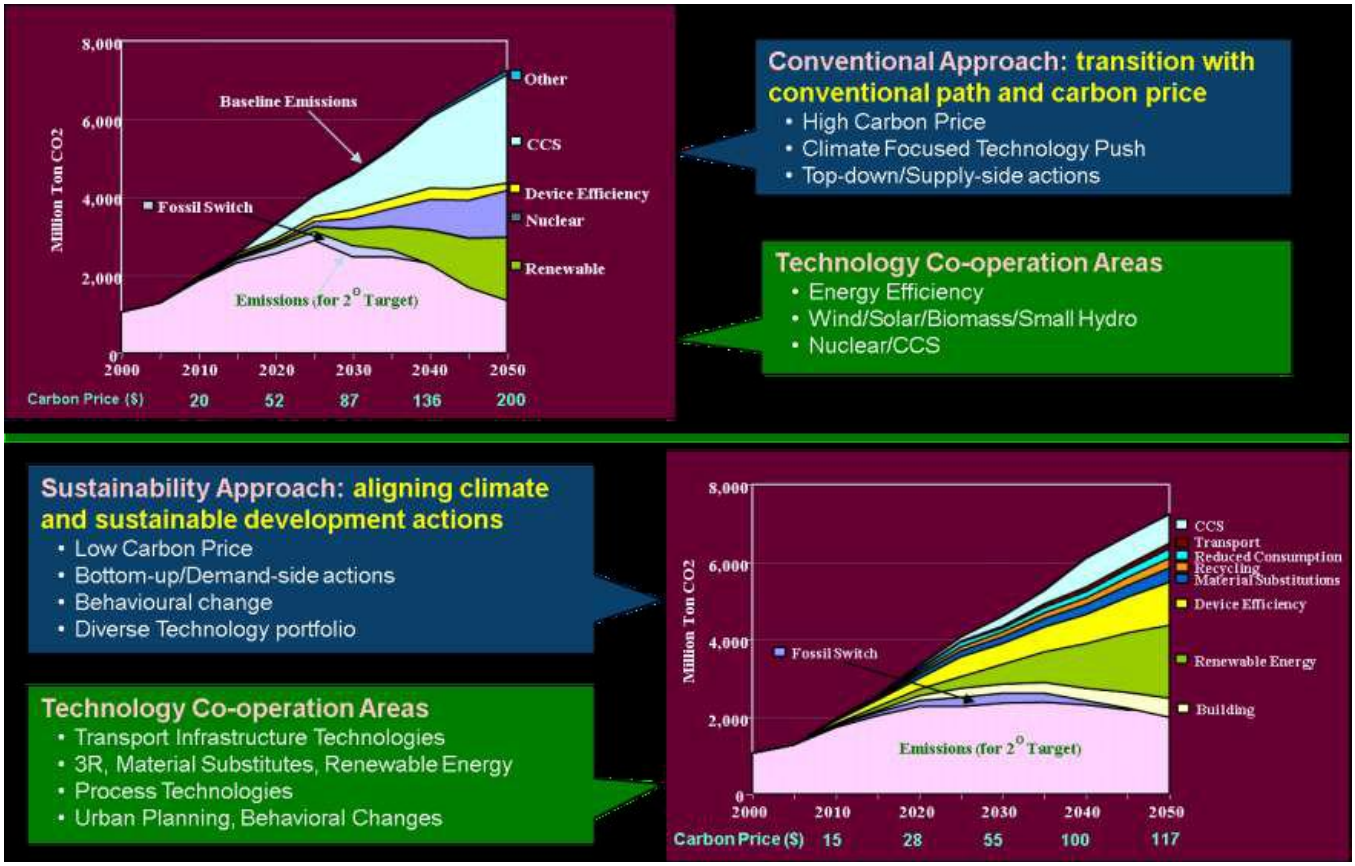


Fig- 2: Mitigation Perspective

Migration

Migration is a crucial aspect of the link between population and climate change. Large-scale population movement is likely to intensify as changing climate leads to the abandonment of flooded or arid and inhospitable environments. The resulting mass migration will lead to many serious health problems both directly, from the various stresses of the migration process, and indirectly, from the possible civil strife that could result from chaotic movement of people. (9,10)

The majority of environmental migrants have so far come from rural areas within the least developed countries.(11) But in the future, there may indeed be unprecedented levels of environmentally induced migration out of urban areas, as rising seas threaten to inundate densely populated coastal areas, where 60% of the world's 39 largest metropolizes are located, including 12 cities with populations of more than 10 million. (12, 13) One third of the world's population currently lives within 60 miles of a shoreline. There is an urgent need to encourage the growth of cities in climate-safe areas.

It is not only rapid population growth but rapid urbanization that is causing problems for the poorest countries. (14)While fertility in urban areas is generally much lower than in

rural areas, in-migration can be high and by 2050 it is estimated that 80% of the world's population will live in urban areas, putting huge pressures on infrastructures important for health (water, sanitation, health services) as well as employment opportunities. Social support networks in urban areas are often weak as rural family bases are weakened. Informal urban settlements are growing and people living in them are often faced with severe health problems. Climate change could exacerbate these problems by increasing in-migration to urban areas from rural agricultural land that is threatened by climate change, or by increasing migration from very poor to moderately poor countries, thus increasing pressure on their infrastructures, as well as by direct impacts on the populations of coastal mega cities.

Migration is a coping strategy employed by many rural communities. (15) Migration associated with environmental decline is usually characterized by short distance and long-term movements, and while there are dire predictions for huge numbers of environmental refugees, these very high figures are unlikely to materialize. However, migrant groups are more vulnerable to a range of stressors including impacts from climate change and poor access to health care.

Action Plan for Climate change in India:

Protecting the poor through an inclusive and sustainable development strategies sensitive to climate change, achieving national growth and poverty alleviation, efficient and cost effective strategies, effective implementation through unique linkages, new and innovative mechanism for sustainable development. Co-benefits to society at large focus on adaptation mitigation and scientific research. Eight national missions implemented by Indian government. That is solar, water, agriculture etc.

Conclusion

India’s contributions represent the utmost ambitious action in the current state of development. It incorporates our developmental challenges and priorities. Recent decisions of the Government represent a quantum jump in our aspirations & demonstrate unparalleled vision. India’s development plans will continue to lay a balanced emphasis on economic development and environment.

References

United Nations, Department of Economic and Social Affairs Population Division. World Population Prospects: The 2008 Revision, Highlights. 2009. Working Paper No ESA/P/WP.210, 1-107.

UK Department for International Development. Degrees of Separation: Climate Change, Shared Challenges, Shared Opportunities 2008. Futerra Sustainability Communications.

Costello A, Abbas M, Allen A, et al. (2009) Lancet and UCL Institute for Global Health Commission: managing the health effects of climate change. *Lancet ;*373*:*1693-733

Newman K, Mayhew S, Stephenson J. (2009) Population Dynamics and Climate Change: A Report on the Implications of Population Issues for Development and Climate Change Goals. UK Department for International Development 1-30.

Bloom D, Williamson JG.(1998) Demographic transistions and economic miracles in emgerging Asia. *World Bank Econ Rev;*12*:*419-55.

Eastwood R, Lipton M. (1998) The impact of changes in human fertility on poverty. *J Dev Stud ;*36*:*1-30.

Population Matters—Demographic Change, Economic Growth and Poverty in the Developing World. New York*:* Oxford University Press*;* 2001.

21st Century India: Population, Economy, Human Development and the Environment. Oxford*:* Oxford University Press*;* 2010.

The End of Population Growth in the 21st Century. (2004) New challenges for human capital formation and sustainable development. London*:* Earthscan.

African Foundation for Population and Development and Population Action International. London*:* Development and Reproductive Health*;* 2007. In return of the population growth factor: its impact upon the Millennium Development goals. Report of Hearings by the All Party Parliamentary Group on Population.

Witty C. (2009) Department for International Development: Panel Discussion at Chatham House.

Bryant L, Carver L, Butler CD, et al. (2009) Climate change and family planning: least developed countries define the agenda. *Bull World Health Organ* 2009*;*87*:*852-857.

Nicholls RJ, Wong PP, Burkett VR, et al. (2007) Cambridge, UK*:* University Press*;*Coastal systems and low-lying areas. Climate change 2007: impacts, adaptation and vulnerability. Contribution of Working Group II. In Fourth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change*; p.* 315-56.

Satterthwaite D. (2009) The implications of population growth and urbanization for climate change. *Environ Urban;* 21:545-67.

Tacoli C. (2009) Crisis or adaptation? Migration and climate change in a context of high mobility. *Environ Urban;* 21:513-25.

Approach and Attempt for the conservation of House Sparrow: A Small Step for Bight Future

Prashant Thote
Gyanodaya Vidya Mandir
Narsingarh

Abstract

Birds are sensitive to environmental changes and act as an indicator of ecological balance of a particular habitat. House sparrow is one of the endangering species of recent times. It has important role in the Urban Environment and helps in maintaining the ecological balance. In the past decade, India has witnessed massive urbanization. There has been a paradigm change in the lifestyle and living conditions amongst the people and to some extent, this can be considered as one of the major causes for the decline in the sparrow population. It is whistle blower for all of the us to initiate step for conservation of these small birds. In our Institution we have taken the pioneer step by setting Nest pot in the various locations where sparrow is noticed and places where the change nesting is positive .We have installed 50 nest pot in and around the campus. We also motivate students if sparrow is noticed around the home to install the Nest pot and catch the picture and get the certificate of appreciation as rewards. Students show the clean interest in installing the net post at the home and its surrounding and sending the photographs. We have distributed the some grains procured from the market as a source of food. We used organic pesticides than road spectrum insecticides in institution Bio Park. We have mission for the conservation of sparrow and distributed the free net pot for the conservation .

Key words: House sparrow, Conservation, Bo-diversity, Bio-indicator, and Artificial Nest Box

Introduction

Sustainable development is seeking to meet the needs of the present without compromising those of future generations. We have to learn our way out of current social and environmental problems and learn to live

Sustainably, if we desire to survive as a species. Sustainable development is a vision of development that encompasses populations, animal and plant species, ecosystems, natural resources

and that integrates concerns such as the fight against poverty, gender equality, human rights, education for all, health, human security, intercultural dialogue. Education for sustainable development aims to help students to develop the attitudes, skills and knowledge to make informed decisions for the benefit of themselves and others, now and in the future, and to act upon these decisions.

Biodiversity describes the number, variety and variability of living organisms. Biodiversity leads to stability of the ecosystem. In the process of biological evolution many small and big animals and plants were born and many were extinct for ever due to climatic change, earth quake, volcanic eruptions and other natural disasters. Species which could adapt themselves with the changing circumstances survive still; Dinosaurs that could not adapt had dwindled away. Biodiversity of an ecosystem or of a geographical area includes various kinds of trees, plants, animals, birds, insects and even micro-organisms. It has been estimated that in the great store house of the earth's biodiversity. The environmental science is being incorporated in the school curriculum in various countries all over the world. The environmental **education curriculum and its implementation in different Asian countries and in India are also reported.**

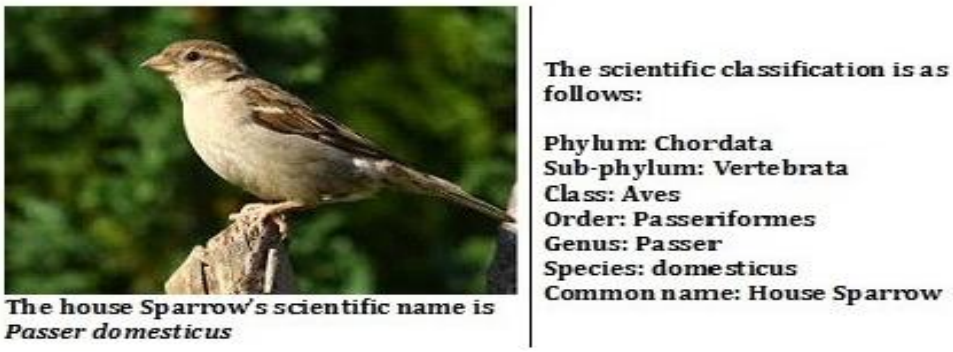


Fig -1:Scintific Infomration

The house sparrow is a bird of a sparrow family passeridae and found in the most of the part of the world. Birds are sensitive to environmental change anhence act as an ecological balance of particular environment. Ecologist believe that the above mentioned bird as species with human hence recognizing and indicated as birds species dependent on human environment. This is lovely chirping bird. It is a non –migratory bird. It is closely associate with human habitations and cultivations throughout the globe from historic time. Because of its numbers, ubiquility and associations with settlement, the house sparrow is culturally prominent. House sparrow is a social birds and flock together in search of food and may

travel a range of 2 to 4 Km. It is a gregarious bird and from the colony of around 10-20 pairs. It is an omnivorous bird and feeds on grains, weeds, seeds, fruits buds nectar and kitchen scrap. It is adaptable bird and one of the most urbanized one, nesting, roosting, and foraging areas of within a range of 1.5 to 2.0 km. It reproduces three to four broods every year having 3-4 clutches of eggs. The house sparrow plays important role in our life. They are useful in eradicating insects .They feed their chicks with larvae of alfalfa weevil and cut worms both of them harm alfalfa crop. House sparrow are natures bio-indicator and help dispersions of seeds.

In India house sparrow was one of the most commonly found bird a decade ago. House sparrow is the familiar friend from early childhood and every individuals consciously or unconsciously has been hearing stories, rhymes etc above it. One could find these birds crippling near every settlement feeding on grains and tiny soft bodies women present in the ground.

In past decades, India has witnessed massive a urbanization. There has been a paradigm change in the life style and living conditions amongst people and to some extent this can be considered as one of the major cause of the decline in sparrow populations.

Descriptions

House sparrows are small, plump, brown grey bird with short tail powerful beak. It has length of 16 CM (6.3 inches) and Mass of 24 to 40 grams. Female birds and young birds are colored pale brown and gray and male have brighter black and white and brown markings. It is a small bird and beak of thick, legs are short with pale pink colored.





Male Sparrow **Female Sparrow**

Fig-2 Male and Female Bird

One of the peculiar behavior of the house sparrow is dust bathing. It is characterized by the act of grooming while rolling or moving around in dust or sand with the purpose of cleaning fur, feathers or skin and removing parasites. Dust bathing is maintenance behavior. They also bath in water or in dry or melting snow. Water bathing is similar to dust bathing with the sparrow standing in shallow water and rollicking water over its back with wings also ducking its head under water



Figure 3 – Dust bathing and Water bathing



Figure 4 – Group feeding



Figure 5 – Three types of Net boxes



Figure 6 – Four types supplementary feed



Babul



Kaner



Pomegranate



Lemon Tree



Guava



Savani



Custard apple



China Rose



Bamboo



Laxora



Mehendi



Bougainvillea

Figure 7 – Roosting plants preferred by House Sparrows



Figure 8: Response of Sparrow to artificial nest site

Habitat and food habitat

House sparrow like areas that have been modified by human settlement, farms residential and urban areas. They are attracted to buildings for the roosting and shelter. They used to build their nest in the thatched roofs, sun shades , any nook or cranny, lofts , kitchen , exhaust holes , hanging baskets , used poles with end caps , garden trees and shrubs .

House sparrow mostly eats grains, seeds, as well as live stocks feed and in cities discarded food. Among the crops they crones, oats, wheat and sorghum. At the time of spring they prefer to feed on flower with yellow colored and fruits.

Importance of House Sparrow

Each and every organism in this planet has its own role to play and participate, to maintain ecological balance. It is an important member of Urban and natural food chain and food webs. It feed on grains, like rice, wheat, cumbu and also larva of mosquito, dragon fly etc. The chick stage is insect eating phase for the sparrow feeds on small insects of garden. It is proven well suited for studies of general biological problems, such as evolutionary mechanism, temperature metabolism and pest control. Sparrow helps in natural pest control process in which human beiges also favored without expenses.

Pollination is the process of transfer of pollen to the female flower as a part of sexual reproduction. Sparrow visit many flowers in a day food. At the time of visit they carry pollen and dropped in the female flower that leads to fertilizations of the flower. Hence sparrow is play important role in pollination.

Reason for the population decline

A number of hypotheses have been put forward as positive cause of decline of house sparrow in rural, urban and suburban habitat. It is included in the IUCN red list .During last 25 years its population has remarkably decreased. It is a whistle blower for us. Number of reasons for the decline the sparrow populations from mythology to mentality of common man. List of factors are listed below-

- **Loss of habitat**- This is most important factor for the cause of vanishing sparrow from street to house. Evaluation of architecture erodes thatched roof and tiles house from the society. Due to ultra modern technology old spacious buildings have been changed to the shapes where sparrow do not find suitable habitat .Lots of tree and bushes are being cleaned for big buildings. It is request to architect community to

design modern housing in a such a way that it helps in conservations of biodiversity .Buildings may designed in very easily through creating internal nesting opportunities.

- **Lack of food-** Due to modern life style people tends to buy things in pocket which is cleaned and dry. Chance of cleaning and drying the grains in the front of house, balconies and top of floor is now a matter of chance. This modification leads to scarcity of food for this tiny scavenging social friend. Many road side shops are closed due to flourishing of modern departmental store to get packed food and little chance to find spill over grains on the road from shop to the house. Due to the use of broad spectrum insecticides, availability of insects is very minimum. Insects are second most feed for young chicks. It is also affect accessibility of position less food. Sparrow is spotted near organics fields and perching on the ground for food. The concept of vegetable garden at home is replaced by crotons and ornamental plants which support less insect's life, i.e. major food item for the sparrow.

- C**hanging human life style-** Due to rapid urbanization and migration of people from rural. There are increase demands of houses in urban and semi-urban areas. Due to architectural design change in the structure of house, there are no crevices/holes for nesting birds. This leads to drastic decline house sparrow. There is change in attitude of people towards conservation and biodiversity in negative direction. Previously human having symbiotic relationship with animals and birds. People never mind house sparrow to build nests in their houses where access is limited to common man. Now days people do not allow the sparrow to nests either inside or outside of the house. Rapid increasing in the automobiles is crowded the cities is the great concerned. The combustion of unleaded petrol has the emission of methyl nitrate. Methyl nitrate is the cause of steady declined the house sparrow.

- **Competition**- The Collared Dove, Rock Pigeon (*Columba livia*) and Rock chat are likely to compete with House Sparrows for food and nesting place.

- **Electromagnetic Radiations-** Many environmental scientists in opined that i.e. microwave or electromagnetic radiation is not able to withstand by sparrow. The electromagnetic radiation causes irritation and reduces the reproductive capacity as well as the hatchlings are either destroy or born with serious deformities. It also effect immune system. It is believed that magnetic waves are affecting eggs of sparrow. But our study on effect of electromagnetic radiation on sparrow does not support these findings.

World Sparrow Day

World Sparrow Day is a day designated to raise awareness on the **house sparrow** and other common birds to urban environments, and of threats to their populations, observed on 20 March. It is an international initiative by the **Nature Forever Society** of India in collaboration with the Eco-Sys Action Foundation (France) and numerous other national and international organisations across the world.

The Nature Forever Society was started by Mohammed Dilawar, an Indian conservationist who started his work helping the house sparrow in **Nashik**, and who was named one of the "Heroes of the Environment" for 2008 by ***Time*** for his efforts. The idea of marking a World Sparrow Day came up during an informal discussion at the Nature Forever Society's office. The idea was to earmark a day for the house sparrow to convey the message of conservation of the house sparrow and other common birds and also mark a day of celebration to appreciate the beauty of the common biodiversity which is taken so much for granted. The first World Sparrow Day was celebrated in 2010 in different parts of the world. The day was celebrated by carrying out different various kinds of activities and events like art competitions, awareness campaigns, and sparrow processions as well as interactions with media.

World Sparrow Day also has a broader vision to provide a platform where people who are working on the conservation of the house sparrow and other common birds can network, collaborate and exchange conservation ideas which will lead to better science and improved results. It aims to provide a meeting ground for people from different parts of the world to come together and form a force that can play an important role in advocacy and in spreading the awareness on the need of conserving common biodiversity or species of lower conservation status.

Conservation

House sparrows are opportunistic and are able to live where ever there are suitable nesting sides, roosting sites and enough food ability. The steady decline of the house sparrow in India is widely recognized. It is the time to take fruitful efforts to conserve the tiny social, human associated bird. It is our responsibility to save this small, lovable beautiful and harmless bird for environment and for ourselves. It required part of our heart and little effort that may create great impacts in the life system of house sparrows.

Suggestions and recommendations

To overcome the problem of fast decline populations of the house sparrow, the following suggestions are made-

- Artificial nest may be installed.
- Key types of the nest boxes like wooden nest boxes, earthern pots, shoe boxes may be installed in an around our premises.
- Supplementary feeds may include kakun, rice, bajara and mixture of al three also may be available to them.
- Place a small cup of bowel of water just near the bird nesting area available to have a water bath or drink .During summer this may help the bird to avoid dehydration.
- We must create awareness among people and ask to make bird nests and hang them at appropriate height and place.
- When people make newer homes a bird's nest can be constructed within or near the building, so that these birds can build their nests.
- Bio pesticides and Bio–insecticides may be used in our gardens and fields as far as possible and there by we are encouraging organic farming, this would contribute towards the conservation of ecosystem

Conclusion

Numbers of conservational efforts are going on for House Sparrow conservation in India. We have put a small step for the conservation of sparrow by installing 50 pot in institutional campus. We have installed sparrow spot in various locations such as under the tree cover, window with holes, cycle stand, washroom corners, verandah's and room that are not frequently used but accessible to sparrow. We also facilitate food and availability to sparrow. Now student's are also taking clean interest in installation of sparrow sports at their resident too. It is our duty to convey our message of responsibility along with professional knowledge.

In future we want to strengthen the conservation efforts by an organizing seminar, workshops, training courses and developing learning material and facility of getting readymade durable sparrow home in the market. Therefore by adopting these initiatives we can easily bring back the house sparrow in our life. So, that future generation also enjoys the watching of these small birds and chirping life's in our home. Sparrow may be conserve by individual with little efforts.

References

Ali S, Ripley SD (1987) Handbook of the birds of India and Pakistan. 2nd Edn, Oxford University Press, New Delhi, India.

Balakrishnan P (2005) A survey report on the House Sparrow Passer domesticus in south India. Malabar Trogon 3: 4-6.

Balakrishnan P, Jijeesh N, Kurikkal MS, Maya T, Lijitha MP (2011) Distribution, abundance and nest site characteristics of the House Sparrow Passer domesticus in Manjeri Municipality, Kerala. Technical

Balaji S (2014) Artificial nest box for house sparrow: An apt method to save the dwindling species in an urban environment. International Journal of Biodiversity and Conservation 6: 194-199

Ghosh S, Kim KH, Bhattacharya R (2010) A survey on house sparrow population decline at Bandel, West Bengal, India. J Korean Earth Sci Soc 31: 448-453.

Joshi DK (2009) House Sparrow (Passer Domesticus): The Endangered Bird. Orissa, Review: 53-55.

Daniels RJR (2008) Can we save the sparrow. Current Science, 95: 1527-1528.

Vijayan VS (2003) Where have all the sparrows gone? Down to Earth, New Delhi, India.

Water Resource Management in Gondia District (MS)

Dr. Rajani Chaturvedi
Associate Professor
Dr. Lalitkumar Thakur
Lecturer
P.G.Deptt. of Geography, N.M.D.College, Gondia

Abstract

The study of Water Resource Management helps to understand the present status of the Irrigation Potential and future chances of irrigation development. Agriculture occupies a dominant position in the economy of India. But this major economic activity is rendered hazardous by scant rainfall in large areas and by erratic monsoon elsewhere. Agriculture has suffered a great deal on account of the character of rainfall. There are outbursts and long unforeseen and uncalled for breaks. The Character of rainfall is one of the chief reasons for the sufferings of Indian farmer and season for committing suicide of the farmers. Different systems of irrigation are complementary and supplementary rather than competitive as observed by famine enquiry commission. "The problem of water supply will not be solved by mere extended application of one particular method of irrigation but by the use of all methods". India being basically known as agricultural dominant country where More than 65% of population inhabiting in villages. Villagers & farmers are synonymous in Indian context. Though various efforts have been made to promote industrial sector in India, even till today agriculture is the mainstay of Indian population. Decadal growth of population imposes pressure on land to fulfill their basic requirement. Horizontal expansion of land particularly in India is now very limited in scope.

Introduction

Agriculture occupies a dominant position in the economy of India. But this major economic activity is rendered hazardous by scant rainfall in large areas and by erratic monsoon elsewhere. Agriculture has suffered a great deal on account of the character of rainfall. There are outbursts and long unforeseen and uncalled for breaks. The Character of rainfall is one of the chief reasons for the sufferings of Indian farmer and season for committing suicide of the farmers. Different systems of irrigation are complementary and supplementary rather than competitive as observed by famine enquiry commission. "The

problem of water supply will not be solved by mere extended application of one particular method of irrigation but by the use of all methods".

India being basically known as agricultural dominant country where More than 65% of population inhabiting in villages. Villagers & farmers are synonymous in Indian context. Though various efforts have been made to promote industrial sector in India, even till today agriculture is the mainstay of Indian population. Decadal growth of population imposes pressure on land to fulfill their basic requirement. Horizontal expansion of land particularly in India is now very limited in scope. Therefore there is a need of vertical expansion & i.e. in the form of multiple cropping or in a nut shell by increasing agriculture intensity by increasing area sown Morgaone than once. It is only possible by developing irrigation means of the region because irrigation is the first prerequisite condition for the green revolution of any region.

Objectives

a) The present study is aimed at finding out the state of existing irrigation in the district.
b) Potentiality will be determined by using different techniques-both of the surface and ground water source.
c) After making a brief survey of the existing management practices.
d) An attempt will be made of find out what further management is required and the management practices useful for the study area.

Hypothesis

Proper water resource management and conservation can prove beneficial to agricultural development and can enhance irrigation potential in the district.

Data Base and Methodology:-

1. Rain being the only source of water an analysis of the rainfall of the last 20 years will be attempted by collecting data for the region from the meteorology department.
2. Statistics regarding the existing irrigation facilities and the crops grown will be collected.
3. The Ground water potential and availability will be made known by collecting data from various government agencies.
4. Data manipulation to arrive at how much area the potentials, how much of them are utilized will be undertaken.
5. Using a questionnaire a sample survey of various tahsils will be selected on stratified sampling basis. Due care will be taken to include 75% of the sampled villages as

irrigated villages. About 1% of the cultivators of the selected villages would be interviewed on the basis of land holding.

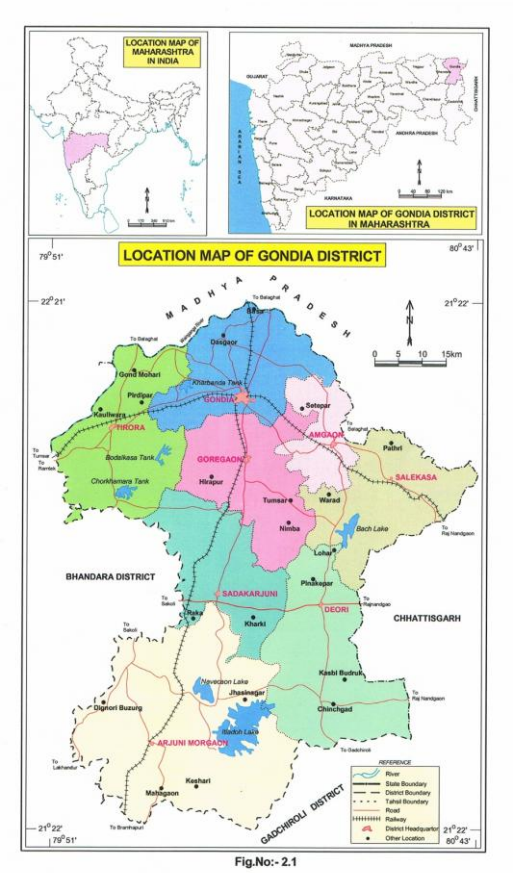


Fig.No:- 2.1

Profile of the Gondia District

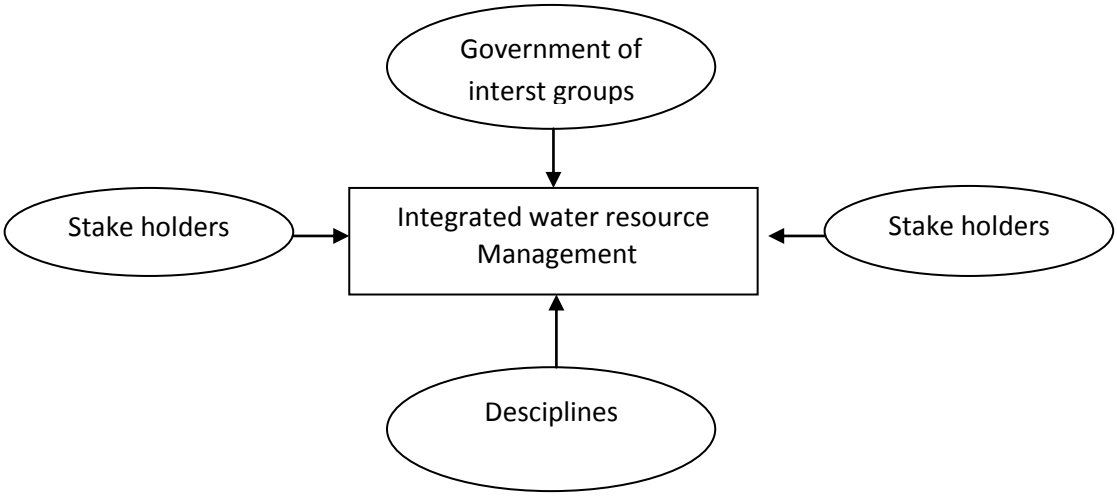
Gondia District is the eastern District of Maharashtra comprising eight Tahsils. They are Gondia, Tirora, Amgaon, Goregaon, Salekasa, Sadak Arjuni, Deori and Mor. Arjuni. The District is located on 20˚39′ N to 21˚38′N and 69˚27′ E to 80˚45′E. The District is reformed in 1st May 1999. It is separated from old Bhandara District.

According to census of 2011 total population of the District is 1312331 comprising 662524 male and 649807 female. In the District 225100 (17%) population & 1096631 (83%) resides in urban & rural area. Round about 8.55% population added in the last ten years in the total population. As per the census of 2011 the arithmetic density of the population in the District is 234 persons per Sq. Km. through this figure differ in urban areas i.e. 196 persons per sq.km. in rural area and 407 persons per sq.km. in urban areas. In the last decade the pressure of population on land has been increased as this ratio was 213 persons the figure of density was 188 persons while in urban areas it was 425 persons per sq.km.

In the year 2011 the sex ratio in the District is 981 female per 1000 male, though in Goregaon Tahsil this ratio is 1014 female. In the year 2001 the sex ratio was 1005 female for the District as a whole while 1010 in the rural area & 970 in the urban area. The above distribution reveals that the District is far better than the national average. It is the indicator of increasing literacy level or rqate of the District.

Components & view points

Water resource management itself which uses structural and non structural measures to control article and human made water resources systems. Water resource facilies and environment elements work together in water resource management to achive the purpose.



Irrigation Scheduling for crops

Irrigation scheduling is the process of determining when, and how much water to be irrigated. Proper irrigation scheduling indicates the correct time (When to irrigate) and amount of irrigation water of each irrigation. It saves water and energy, bought of yield, and reduces the production cost time of irrigation is usually governed by two major condition (i) water need of crops (ii) Availability of irrigation water. Water needs of crops is however the prime consideration to decide the time of irrigation.

Net irrigation requirement

It is the depth of irrigation water inclusive of effective rainfall, ground water contribution and available soild moisture considered for timing, the irrigation to meet the consumptive use requirement of the crop. It is the amount of irrigation water required just to bring the said moisture content to the root zone between field capacity and the root zone before application of irrigation water.

Gross irrigation requirement

It is the amount of irrigation water must be applied to the soil surface to meet the net irrigation requirement for each irrigation. Hence, gross irrigation requirement (GIR) is the net irrigation, requirement plus water application losses or thetotal amount of irrigation water to be applied through irrigation.

$$\text{Gross irrigation requirement} = \frac{\text{Net irrigation requirement}}{\text{Efficiency of irrigation system}}$$

for a given irrigation method, field efficiency varies with skill used in planning, lay out and operating the system besides solid physical properties and climate to be sure that net amount of moisture to be replaced at each irrigation enters and retained in root zone, it may be necessary to apply a larger amount of water to the soil surface to effect any loss.

Irrigation Interval

Two successive irrigations during the peak period of communptive use of the crop is known as irrigation interval. It is a function of both the crop and the soil. For a given crop, light shallow soils require More frequent irrigation than fined texture heavy soil. As the day become hotter the moisture use rate increases. The irrigation interval is to be used for this period is known as design interval which can be calculated by the given formula

$$\text{Design interval} = \frac{\text{Net amount moisture between field capacity at starting level}}{\text{Peak period moisture use rate of crop.}}$$

Irrigation Period

It refers to the number of days that can be allowed for applying one irrigation to a given design area durig the peak peiod of the crop under consideration. It can be calculated by the Formula,

$$\text{Irrigation period} - \frac{\text{Net amount moisture between starting of irrigation and lower limit of moisture depletion}}{\text{Peak peiod moisture use rate of crop.}}$$

Watershed Management

Another part of water resource management for agriculture is related with the water shed management. The district is divided in 13 Watersheds.

Watersheds are a geo-hydrological unit with a common drainage outlet. It is a land surface bounded by a divide which contributes runoff to a common drainage point. The present agricultural practices greatly increase run off and soil erosion reduce ground water recharge, cause floods and sedimentation of reservoirs etc. As a result cultivated land resource base is shrinking and its productive capacity is diminishing. Irrigation systems are never fully efficient. Some water is always lost in canals and on the farmer's fields. Part of this speeds into the soil. While this will help leach salt out of the root zone. It will also contribute to a rise of the water table A high water table is risky because the sale to return to the root zone. Therefore both the water losses and water table must be strictly controlled. It requires careful management of irrigation system and a good subsurface drainage system.

Runoff erosion and drainage represent serious problems in many areas. These problems can be solved by evolving development which take into consideration natural topography and drainage patterns of land. The collection of excess water and its utilization to provide greater stability to rain fed agriculture appears to be a viable developmental alternative.

Principles of watershed management

Principles of watershed management related with the various resources systems are as follows :-

- Protecting fertile top soil.
- Minimizing silting up tanks, reservoirs and lower fertile land due to runoff.
- Insitu conservation of rain water.
- Safe diversion of runoff to storage structures through grossed water ways.
- Stabilization of gullies and construction of checkdams for increasing ground water recharge.
- Water harvesting for supplemental irrigation
- Improving infrastructural facilities for storage of rain water in tanks.

Objectives of watershed management

It implies the proper use of all land and water resource of watershed for optimal use of natural water resource and production with minimum hazard. The different objectives of a watershed management programms are:-

- To control damaging runoff.
- To manage and utilize runoff for useful purposes.
- To control erosion and effect reduction in the sediment production
- To moderate floods in the down stream areas
- To enhance ground water storage wherever applicable and
- Appropriate use of the land resources in the watershed and thus developing forest and fodder resources.

Watershed development consists of three an element of operation out of which first element is related with the soild moisture conservation, control land erosion and harvest runoff. It is necessary to conserve into form ponds, small tanks or small dams for recycling or to recharge ground water down stream storage of water inrunoff harvest tanks serves the purpose or providing irrigation to crops when needed.

Catchment Area Development Programme for soil and water conservation:- (Panlot Development Programme)

In the district for the agricultural development the government has taken a programme for conservation of water and soil known as catchment area development programme. The details of this programme as follows:-

Progress of soil & Water Conservation under Catchment Area Development Programme

Sl. No.	Taluka	Under Catchment Development Programme			Completed catchment till the end of 2010-11			No. of complete developed villages		
		Selected Villages	No. of Catch-ment	Total Area Selected (in hect)	No. of Completed	Completed Catchment area (in hect)	Cost (in Rs.)	Gap between selected & completed villages		Ratio of catchment area developed out of the district total
1	Tirora	07	03	2689	03	2689	68.77	07	00	14%
2	Goregaon	12	04	4195	04	4195	69.74	04	08	22%
3	Gondia	03	01	333	01	333	42.25	01	02	02%
4	Amgaon	05	02	1511	02	1511	60.04	05	00	08%
5	Salekasa	07	02	1799	02	1799	32.25	07	00	09%
6	Sadak Arjuni	04	02	2722	02	2722	50.64	04	00	14%
7	Arjuni Morgaon	07	03	2982	03	2982	86.01	07	00	16%
8	Deori	06	03	2743	03	2743	94.10	06	00	14%
	Total	**51**	**20**	**18975**	**20**	**18975**	**503.80**	**41**	**10**	**100%**

At the beginning of the programme 51 villages from various talukas have been selected under the catchment development programme. The numbers of catchment at beginning were 20 in numbers. Out of the total selected villages the highest number was in Goregaon taluka where it was 12. The second highest villages were in Tirora, Salekasa and Morgaon Arjuni where the number was 06. The least number of villages under this scheme selected was in Gondia taluka accounting only 03.

As the selected villages was highest in Goregaon taluka, so the catchment it was 04 while in Tirora, Morgaon Arjuni, Deori 03 catchment area were selected for water conservation and soil conservation. In the district the cultivated area taken for the development in hectare was 18975. According to the number of catchment area and selected villages, these cultivated areas were decided, e.g. in the Goregaon taluka, where the number of catchment area land selected villages both were highest, for the development agriculture in the district was also maximum 4194 hectare, out of the district total 22% of the catchment area. In Gondia taluka only 01 catchment area was selected and the numbers of selected village were only 03. Therefore the least area was allocated in the taluka that was only 333

hectare, accounting only 2% of the district total catchment area development programme. Amongst various talukas the ratio ranges between 14 to 16% of the district total.

The plus point of this scheme is that the decided target and completed target are not varied; it is reveals from the table. The government has invested about 504,00,000 Rs. in the district for completion of the project. In each and every taluka the amount distributed under the programme to fulfill the target ranges between minimum 32.25 lac in Salekasa taluka and maximum for Deori i.e. 94.10 lac.

The gap between selected villages and completely developed villages indicates that about 80% target have been achieved as the selected villages were 51 and completely developed villages were 41 in the district. Every taluka has achieved the decided target except in Goregaon and Gondia taluka, this target could not be completed, where the gap 02 successively.

It indicates that the government has made sincere efforts to enhance the quality of soil and to conserve precious water resource available in the region to develop agriculture economy of the pegion.

Planning & Policy Paper for Development of Agriculture & Irrigation in the District:-

Warabandi system for water resource management it is a rotational system of supplying water is based on the proper allocation of available water to farmers in equal proportion to their holdings. The principle management objective in this system is to achieve higher efficiency of water use. This results in maximum production per unit of available water. Though it may not be the maximum production per unit land irrigated. In the district warabani system in practice particularly in Morgaon Arjuni Taluka under the Itiaidho project. Under this scheme 65 societies has been registered and about 70 crore rupees sanctioned by the world bank to finance for the implementation of this system.

The process of operation is this warabandi system is as follows:-

i. Distribution system

Water from the source i.e. by river or peservoir is diverted to main canal. This canal feeds two or Morgaone branch canals which supply water to tributaries. They are connected to the water course through fixed discharge outlet which is the measuring structure through which water is admitted from government distributaries into a formers watercourse.

Waters allocation

The district irrigation department has provided the information that in the traditional irrigation supply system, the rate of supply of water is 130 rupees per hectare and on the basis of the total hectare area irrigated the remuneration or the amount is collected from cultivators, for this system the employees of the irrigation department has to reach the cultivator & place

to collect the said amount and it is a very tedious and difficult job to collect the amount but in this system certain rate of flow of water is allocated on the basis of water need is cubic meter and at the very beginning this amount is collected from the society and not to the individual cultivators. That's why a wastage of time and not completing the said amount collection is reduced by this method its value is often a compromise between demand and supply. The ratio which the operating period of a distributor bares to the total period of a crop is called capacity factor. The factors help in operation of the distributory while drawing water from the reservoirs.

The benefits of this Warabandi systems are :-

1. Every member of the society gets water as per his requirement.
2. The farmer is informed of the date of irrigation in advance.
3. Water is given according to crop requirement.
4. Total area to be irrigated in a day specifies.
5. There must not be any encroachment into others right.
6. System servers for everybody so everybody takes interest to see the system work.

The distribution of water in the system is a two tier system first tier of distribution is managed by the District irrigation official. The distribution of water coming out of an outlet and flowing into a water course, in the second tier of distribution and this is managed by society farmed by farmers association. Whenever a distributor is in operating a water course relieves authorized share of water at a constant rate round the clock and water distribution proceeds from head to tail. This system is on the trial and beginning stage. In the Pench project in Nagpur district about 127 such societies has been registered.

Conclusion

In the context of the findings stated above some viable recommendations for improving irrigation facilities and water resourcement have been made as under.

Although irrigation in the district has stimulated and accelerated growth and it's transformation due to development of various irrigation projects and ground water, still there is plenty of scope for bringing additional area under irrigation. Two fold development strategies could be adopted to augment the irrigation facilities firstly, by introducing rational water management practice as elaborate in the chapter water resource management and by improving the existing facilities and secondly by extending the facilities of irrigation as there is a spatio variations in the existing facilities there. As state in the chapter ground water scenario and potential and actual utilization of water resource in the district, existing facilities are not being put to their optimum use on account of it's misuse and improper maintenance

and non awareness at different stages. In this regard following recommendations may be made.

- The rainfall regimes indicate that weather and climate of the district is changing, as continuous drought in the region from last five to six years has been accounted.
- In spite of growing rice other remunerative cash crops and horticulture should be developed so that misuse of water can be reduced.
- Cultivator of the region should behave in the form of economic advantage theory to produce pulses, oilseeds and vegetables and floriculture, fruit culture so that they can get maximum return of the water available in the field.
- Due to rice and paddy, flood irrigation is applied which needs field logged with the water, creating soil erosion and leaching of the soil, leading to degrade the soil quality of the region.
- Water losses through seepage, especially in canal and lift irrigated tracts by distributaries and channels are common.
- The district being predominantly backward district of Maharashtra where percentage of BPL holders are very high, lift irrigation cannot be accessible being very costly, subsidity and financial support should be provided to cultivators where there is a potential of developing the facility.
- Although scientific methods of irrigation like drip, sprinkles for checking water losses are costly, they may be adopted considering the need of water in the region. Some innovative cultivators who are growing papaya and banana in the farm house have adopted drip irrigation by which they are not proving water to the crop but fertilizers and pesticides too.
- For attaining the full efficiency of irrigation and for ensuring an adequate return on investment on other costly inputs, scientific management of soil and water conservation is essential. In this regard testing of soil facilities which are concentrated only in Gondia & Amgaon should be extended in the remaining parts of the district.
- Though for soil and water conservation catchment area development programme which is known as ‘Panlot Vikas Karyakram’ has been taken by government should be strengthen.
- Land development practices are recommended as a pre-requisite in irrigation command areas, they are the layout of plots, facilities available in the water courses, field channels, drainage etc.

- For the extension of irrigation facilities various means can be adopted. The conjunctive use of surface and ground water seems to be of much importance. In the lift and canal irrigated region, the ground water from dugwells may be regarded as a good source of supplemental irrigation, especially when water is scantly in rivers and canals.
- As post monsoon water levels are shallow in major part of the district extreme care should be taken while selecting the sites for artificial recharge structure.
- The sites need to be selected where hydrological conditions are favourable i.e. where sufficient thickness of saturated aquifers exists and water level are Morgaone than 5m deep, such area are restricted and concentrated in central and southern part of the district occupying parts of Deori and Arjuni Morgaon talukas.
- Surface water is Morgaone dependable than ground water in some part of the district, it's potentiality has to be increased by different measures like contour banding, check dams, percolation tanks and afforestation.
- As there is no perennial streams are available in the region there is a need of accrued water to feed the crops. Though various projects have been developed in the district. However it is observed that due to inadequate funds and slow working of the project, cost of the project increased which are not completed due to inadequate funds and the scheme is held up. Finance for this needs top priority in Govt.. budget. The funds can also be raised through National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD) or even by World Bank on a long term basis.
- Some of the projects were held up because the canals which would be created will pass from the long forest area of the district for this NOC from the forest department is needed and due to environmental protection law, this is very tidius and difficult job but recently the Govt. of Maharashtra was recently free the Zudpi Jungle area of about 22000 hectare which was in between Dhapewada Tappa No. 1 and Pandgi. So this land will be free to use the track preparation for distribute water.
- The proper functioning of irrigation machinery depends on adequate maintenance and repair facilities. For this technical hands are needed. But these being short the machines remain idle for certain period and it becomes fatal to the standing crops. Hence it is recommendable that a chain of repairing workshops may be initiated in order to setup maintenance cells at every nodal centre.

- In view of this organization of agricultural support programme through camps, demonstrations, training should be provided by various government development agencies and voluntary institutions like NGO should play vital role in this context.
- To reduce the fellow land and other cultivable waste application of improved technology for extending cultivation should be done.
- There seems to be a limited scope to bring additional land under cultivation hence to feed the growing population intensity of cropping need be enhanced. As its clear from the chapter general land use that area sown Morgaone than once in the district is very less due to improper use of water available and non availability of irrigation facilities. Concentration should be given to decentralize the working and availability of irrigation source so that this area can be increased at large.

Reference

Chaturvedi: (1976) "Second India Studies – Water". The MCmillan Company of India Ltd.

Dakshinamurtic C: (1973) "Water Resources of India and their Utilization in India",

Duckham A.N: (1967) "Weather and farm Management Decisions, Weather and Agriculture, Taylor J.A. ed. 1967 London P.P. 69-78.

Dutta, Ashok: (1972) "Indian Resources, Potentialities and Planning" Oxford and IBH Publishing Company.

Firman, David: (1956) "Current Expansion of Irrigation to Increase Food Proudction in the Gangetic Plain, Annals of Association of American Geographer June, P 246.

Govt. of Maharashtra (2009) Director of Ground Water Survey and Development agency, Nagpur 2003, Collected papers on Ground water

गुर्जर एस.: (2012) जल संसाधन भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद दृ

————————

Level of Urbanization and Development in Jammu and Kashmir

Rouf ur Rafiq

Research Scholar, School of studies in Environment Management
Vikram University Ujjain, M.P, 456010, India
Cell no. : +91-8821983543 E-mail: roufevs13@gmail.com

Mudassar Bashir
Department of Education,
Government of Jammu & Kashmir.

Abstract

The demographic phenomenon of urbanization is interpreted as a process involving the absolute and relative growth of towns and cities within defined area vis-à-vis the function of socio-economic changes that took place through time. The present paper examines the level and degree of urbanization, and comparative trend of the urban growth. The Study focuses on some important determinants of urbanization like Literacy rate, percent age of non-agricultural workers, sex ratio, density of roads, density of towns and population distribution with their impact on urbanization process using statistical technique for measuring the dispersion of the determinants like standard deviation and coefficient of variation. Although the level of urbanization in the state of Jammu and Kashmir has increased yet it has always remained lower than the national level. At the district level the urban growth in 2001 varied from less than 10 per cent in five districts and more than 50 per cent in one district Srinagar only. Maximum share of urban population is present in class 1 towns followed by class 1V, CLASS 11, CLASS 111, CLASS V, and CLASS VI Towns respectively.. There is positive correlation with all determinants except the sex ratio. The regression analysis shows that one unit change in the non- agricultural workers leads to the change of 1.4 unit change in urban population which is highest as compared to other determinants.

Keywords: Urbanization Determinants Growth pattern Dispersion Trends

Introduction

Urbanization refers to the process by which the rural population gets transformed into an urban population (Bhagat, 1992). It is a finite process--- a cycle through which a nation

passes as they evolve from agrarian to industrial society (Davis, 1965). Historical evidence suggests that urbanization process is inevitable and universal (Kundu, 2009). Urbanization is a specific process of reorganization of space, which is operationalzed through spatial redistribution of population among a hierarchical system of settlements of various sizes and having mixes of rural - urban attributes along a continuum in response to vertical shifts within the work force (Raza, 1981). Urban growth is simply a concentration of differentiated but functionally integrated specialization and advanced technology (Kundu, 2011). Currently developed countries are characterized by high level of urbanization and some of them are in final stage of urbanization process and experiencing slowing down of urbanization due to host of factors. The onset of modern and universal process of urbanization is relatively a recent phenomenon and is closely related with industrial revolution and associated economic development (United Nations, 1996).

A majority of the developing countries, on the other hand started experiencing urbanization only since the middle of 20th century (Hussain, 2000), In India as many as 833 million (68.84%) persons live in rural areas and about 377 million(31.16%) live in urban areas. India hosts a total of 11976 towns as per 2011 Census. For the first time since independence, the absolute increase in population is more in urban areas than in rural areas (Census, 2011).

The history of urbanization in Jammu and Kashmir State is fairly old. Towns and urban places like Pandrethan, Naranag, Awantipora have their origin in the ancient period (Sidiqque, 1988). During this and medieval periods, urbanization was associated with the seats of administration, capitals and trading centers. During the period of Sikhs and subsequently after the arrival of English people, the rate of urbanization accelerated and present the growth of this urban population has turned to be a matter of concern for administrators and planners. The pull factors of urbanization in Jammu and Kashmir forces the rural migration to urban areas (Srinagar and Jammu) for want of employment though not conducive for the urban environment (Zutshi, 1986). It is in the back drop of this phenomenon that the present study has been carried out to analyze the features of urbanization in the study area.

Aims and Objectives

The main objectives of the study are as follows.

1. To analyze the growth pattern of urbanization in Jammu and Kashmir
2. To establish the hierarchal order of urban areas in the state.
3. To determine the impact of selected socio-economic indicators on urbanization

Methodology

The present study is based on secondary sources of information like Census of India under different series, reports published by various government and non-government agencies and literature available on various aspects of urbanization of the state. Judicious use of statistic has been used in the study to arrive at desired conclusions.

Study Area

The State of Jammu and Kashmir is located between 32° 17′ N to 37° 06′ N latitude and 73° 26′ E to 80° 30′ E longitude and is the part of North Western Himalayas (Fig. 1.1). It occupies a land area of 2,22,236 Km^2. The State of Jammu and Kashmir is about 425 km from north to south and extends over 520 km from east to west. The state is divided into three administrative divisions

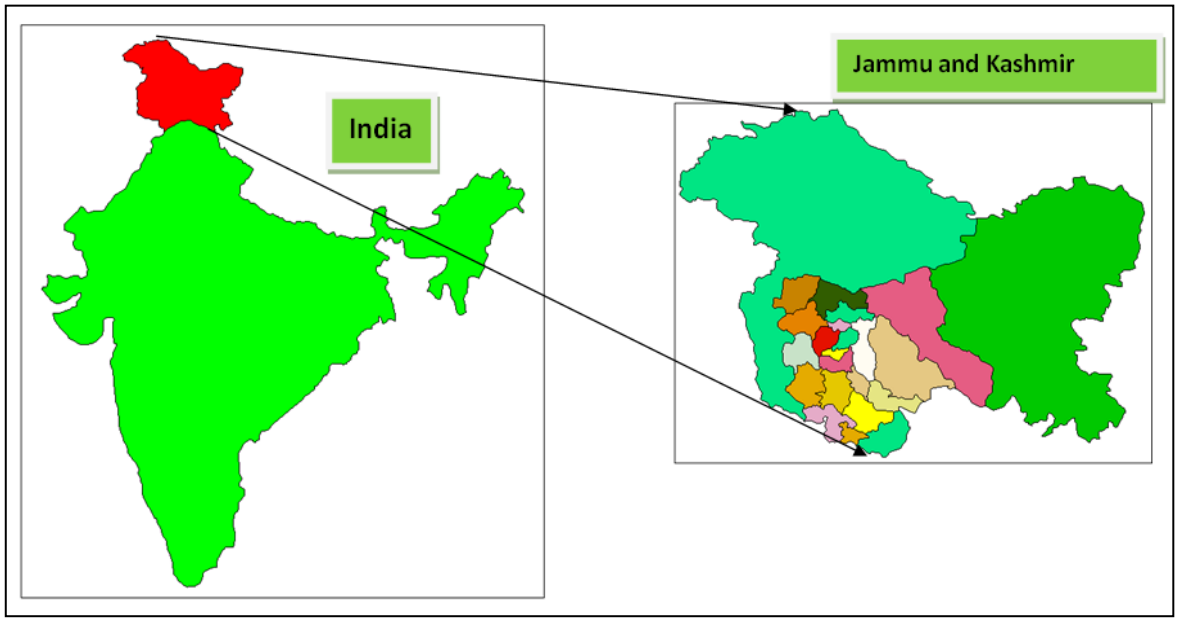


Fig.1.1

i.e., Jammu, Kashmir and Ladakh. The percentage area wise share of the three divisions of the state are 19% (Jammu), 11% (Kashmir), and 70% (Ladakh). The above three regions differ from one another in their relief, climate, drainage, vegetation, language, culture etc. The State is comprised of 22 districts.

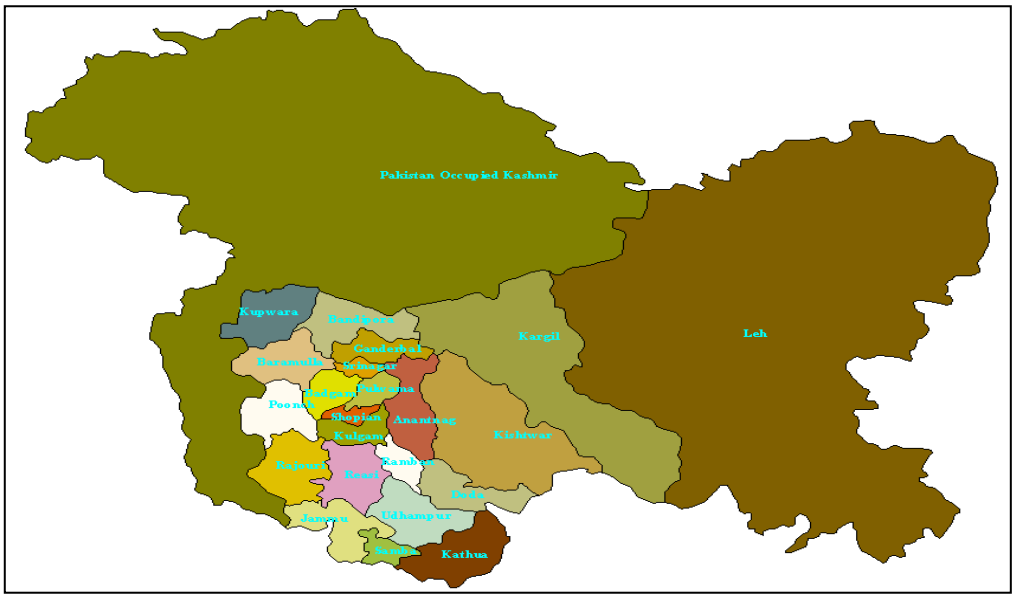


Fig 1.2

Results and Discussion

The present research work presents a detailed account on the growth and spatial patterning of growth, trends of rank fluctuation in districts, degree of urbanization, and characteristics of towns by class and size.

The urbanization of the state is of recent origin in the 20th century. It has steadily increased after an initial decline between 1911-1921 and 1941. The level of urbanization in Jammu and Kashmir State in true sense is in its early stage as the state continues to be predominated by rural population. Jammu and Kashmir State has 24.8 percent urban population to total population and stands on 15th rank in the country (Census, 2001

Table: 1 Levels of Urbanization

Year	India	Jammu and Kashmir
1901	10.85	07.42
1911	10.29	11.71
1921	11.18	11.04
1931	11.99	15.39

1941	13.86	13.12
1951	17.29	14.05
1961	19.97	16.16
1971	19.91	18.59
1981	23.24	21.05
1991	25.71	22.00
2001	27.78	24.80

Source: Census of India, J&K Series, 2001

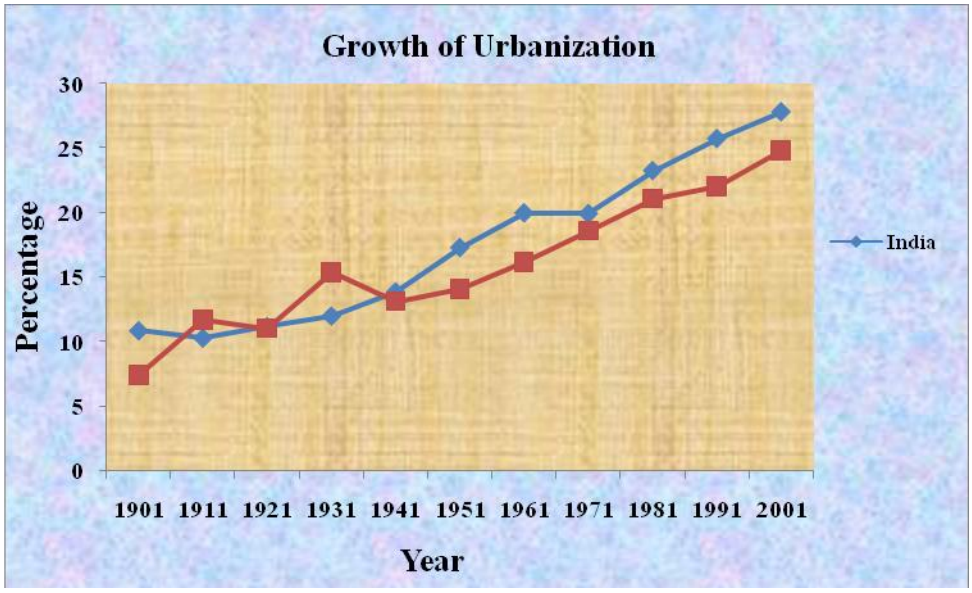


Fig. 1.3

Increase in the level of urbanization in the Jammu and Kashmir state has gained momentum since 1961. (Fig 1.3). Amongst the districts of the state of Jammu and Kashmir the highest level of urban Population is in district Srinagar followed by Jammu and leh.

Table 2: Shifting of Districts According to levels of Urbanization (1981-2001)

Urbanization (%)	Level	Districts (1981)	Districts (2001)
0-10	Very Low	Kupwara, Udhampur, Pulwama, Kargil, Doda, Rajouri and Poonch	Kupwara, Poonch, Rajouri, Doda and Kargil
10-20	Low	Leh, Baramullah, Anantnag, Kathua, and Budgam	Pulwama, Budgam, Kathua, Anantnag, Udhampur and Baramullah
20-30	Medium	Jammu	Leh
Above 30	High	Srinagar	Srinagar and Jammu

Source: Census of India, J&K Series, 2001

Table 2 reveals that during last two decades, Udhampur and Pulwama shifted from very low level of urbanization to Low (10- 20%) of urban population and Leh district shifted from Low level (10-20%) to Medium (20-30%), while as Jammu district shifted from Medium to High level of urban population. In 1981, six districts of the state were having less than 10% of urban population and five districts were having 10-20% urban population, while as one district have urban population between 20-30% and one district above 30%, but in 2001, the number of districts having more share of their population residing in urban areas increased and from table 2, it is evident that in 2001, only five districts were in very low level of urban population category (Fig 1.4), while as six districts were in low category (10-20%), one district in Medium category (20-30) and two in high category (Above 30%).

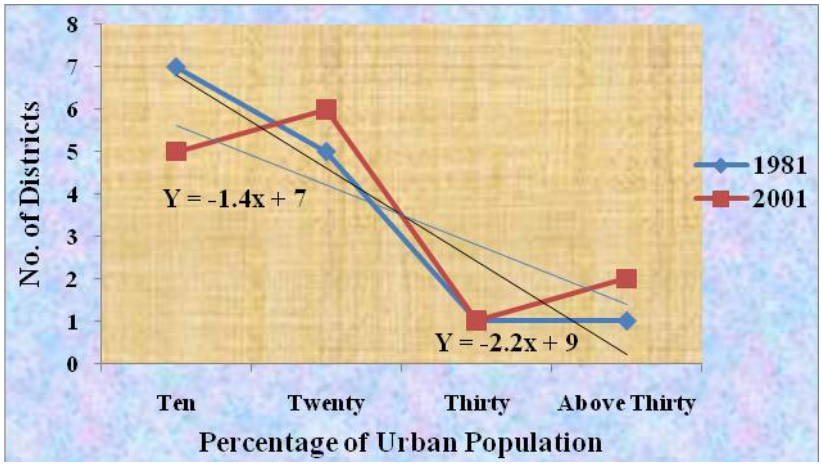


Fig. 1.4

In Jammu and Kashmir growth of urban population has increased in all the districts except the district Srinagar and Budgam during the last two decades from 1981 to 2001 because of the migration of Kashmiri pandits from these areas in 1990 due to political strife in the state. At the district level, urbanization varies considerably and only two districts have urban population above the state average while the remaining districts have below the state average. The district wise growth of urbanization in the state is given in the table 3.

Table 3: Growth of Urbanization (1981-2001)

District	**1981**	**2001**
Anantnag	8.98	14.40
Baramullah	13.49	16.94
Budgam	14.13	11.66
Doda	5.92	7.50
Jammu	29.64	44.50
Kargil	5.34	8.63
Kupwara	2.95	3.96

Kuthua	11.38	14.21
Leh	12.75	23.39
Pulwama	8.98	10.72
Poonch	6.32	6.32
Rajouri	5.23	6.98
Srinagar	80.50	78.59
Udhampur	9.53	16.00
Total	21.05	24.8

Source: Census of India, J&K Series, 1981 and 2001

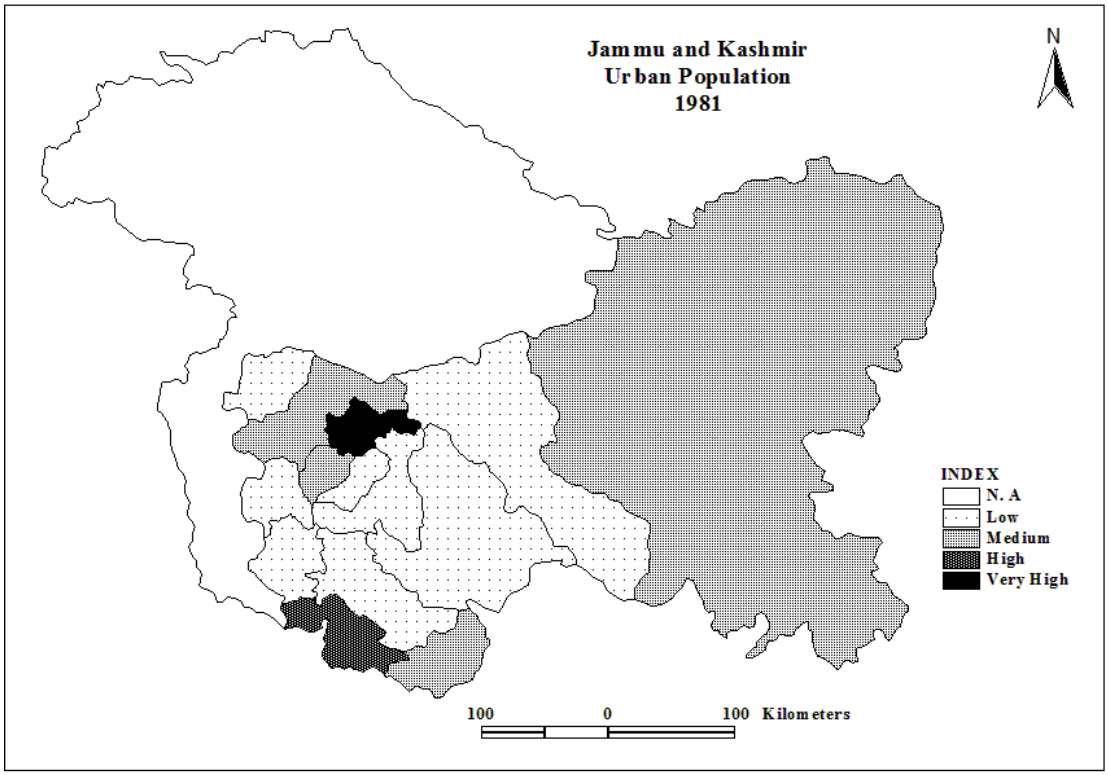


Fig. 1.5

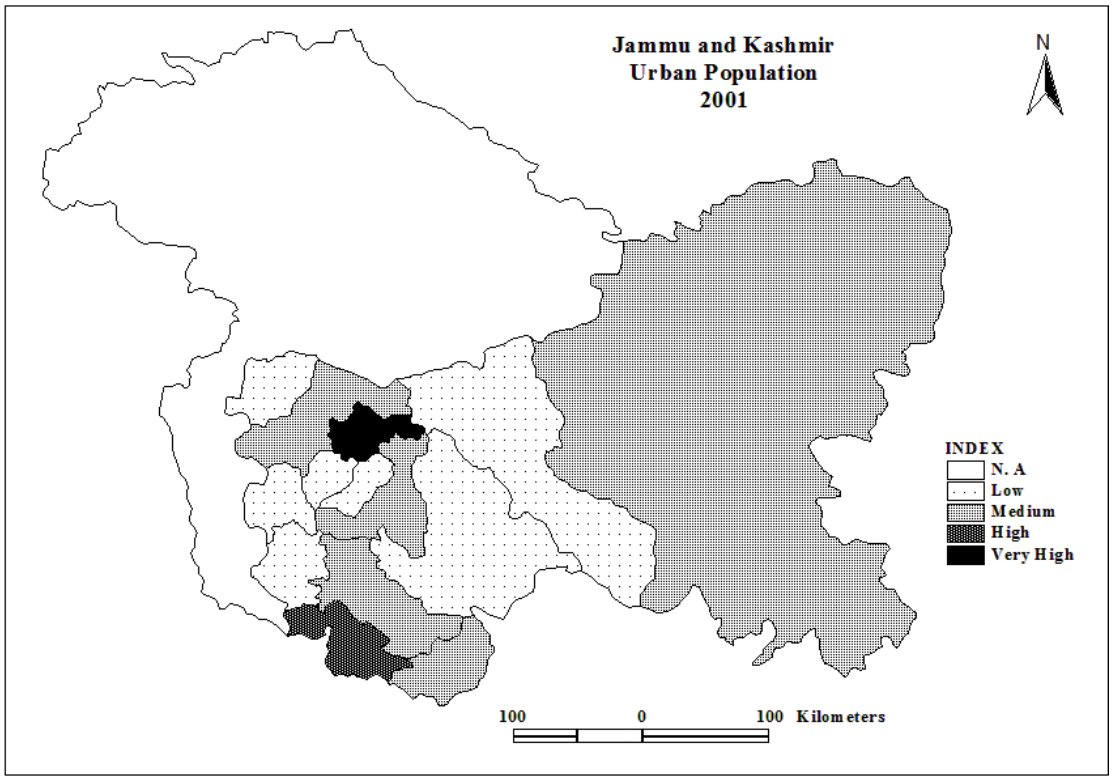


Fig. 1.6

Table 4 shows that only two towns of Jammu and Kashmir fall in the category of class I towns contributing 59.72% of the total urban population in 2001 which was 64.22% in 1981 showing -4.50% decrease from 1981 to 2001 as the large scale migration took place in 1990 due to political turmoil in the state. In 1981 there was not even a single town in class II category but in 2001 there were 5 class II towns in Jammu and Kashmir state because the major hinterland of Srinagar and Jammu city developed economically due to the direct trade links with the two capital cities of Srinagar and Jammu. However the growth of the towns falling under the other categories showing a stunted growth constituting 11.9% of the total urban population .However class III towns are showing the decreasing number of towns because all the class III towns in 1981 were shifted to class II towns in 2001 and only 7 towns of class IV in 1981 shifted to class III towns in 2001.The highest number of towns in Jammu and Kashmir in 1981 and 2001 are in class VI towns as these towns are scattered in the different parts of the state as large number of these class VI towns are tourist based towns.

Table: 4 Distribution of Urban Population by Size / Class of Towns in 1981 and 2001

Class	Population range	No. of Towns 1981	No. of Towns 2001	Increase/Decrease in the no. of towns 1981-2001	%age Share of Urban Population 1981	%age Share of Urban Population 2001	Increase/decrease in the %age share of urban population 1981-2001
I	1,00,000 & above	02	02	0	64.22	59.72	-4.50
II	50,000 to 99,999	0	05	05	0	11.9	11.9

III	20,000 to 49,999	05	07	02	11.75	8.63	3.12
IV	10,000 to 19,999	07	20	13	6.96	11.10	4.04
V	5,000 to 999	20	20	0	11.60	5.2	-6.40
VI	Less than 5,000	24	21	-3	5.47	2.73	-2.74
	All Classes	58	75	17	100	100	+5.42

Source: *Census of India, J&K Series, 2001*

There occurred a lot of migration from these small towns to the cities as a result of which their growth got retarded. Since the role of small towns in the field of industrialization and agricultural and rural development is enormous, there growth is imperative for the balanced urbanization in the state. It is because of this fact that small towns are often called as "Bridge" between the rural and the urban universe or between the big cities and the rural settlements.

In general it may be summarized that the state of Jammu and Kashmir has only two class I cities(Srinagar and Jammu) and rest of the towns are small towns, falling mainly in class IV, V, and VI categories .Many of the small towns are still not having social amenities which they should have. In fact, several of the small towns have the characteristics of Indian village. In order to determine the impact of determinants (socio-economic) on urbanization different indicators have been used like literacy, non-agricultural workers, sex ratio etc. The variation in distribution shown by the statistical measure (Coefficient of Variation) shows 105.83% variation in the distribution of urban population followed by 70% in town density and 59% in population distribution while as sex ratio showed only 4% of variation of the distribution.

Table: 4 Coefficient of variation of different determinants of urbanization

S/No.	District	Percent Urban population (2001)	Literacy (2001)	Sex Ratio (2001)	Percent of Non agriculture workers in (2001)	Density of Towns Km^2 (2001)	Percent of Total Population 2001	Density of Roads /100 Km^2
1.	Anantnag	14.40	44.10	922	48	0.22	11.62	34
2.	Baramulla	16.94	44.57	909	54	0.1	11.59	34
3.	Budgam	11.66	40.94	918	55	0.07	5.90	63
4.	Doda	7.50	46.92	905	31	0.05	6.86	07
5.	Jammu	44.50	77.30	907	68	0.22	15.61	52
6.	Kargil	8.63	58.21	901	49	0.007	1.14	05
7.	Kupwara	3.96	40.80	929	37	0.08	6.36	27
8.	Kuthua	14.21	65.29	907	43	0.22	5.40	29
9.	Leh	23.39	62.24	805	58	0.002	1.17	02

10.	Pulwama	10.72	47.76	938	44	0.22	6.28	61
11.	Poonch	6.32	51.07	916	30	0.05	3.69	18
12.	Rajouri	6.98	57.65	891	29	0.1	4.75	18
13.	Srinagar	78.59	59.31	871	87	0.1	12.30	67
14.	Udhampur	16.00	54.64	871	36	0.1	7.34	18
	Mean	**18.84**	**53.61**	**899.28**	**47.78**	**0.10**	**7.14**	**31**
Standard Deviation		**19.94**	**10.46**	**37.89**	**16.13**	**0.07**	**4.23**	**21.21**
Coefficient of Variation		**105%**	**19.51%**	**4.11**	**33%**	**70%**	**57%**	**68.41**

Source: Census of India, J&K Series, 2001

The table 5 shows the correlation between the urban population and the determinants of the urbanization. The correlation value (r) of the determinants of the urbanization shows that the urbanization is positively associated with all the determinants except the Sex Ratio with which the urbanization is negatively associated. The highest correlation of urbanization was found with non-agricultural workers. So, among all these determinants, non-agricultural workers are an important determinant of urban population in the Jammu and Kashmir. The low positive correlation was found between urban population and density of roads followed by density of towns.

Table: 5 Correlation Analyses of the Determinants of Urban Population

S.NO.	DETERMINANTS	CORRELATION (r Value)
1	Literacy	+0.48
2	Non-Agricultural Workers	+0.88
3	Sex Ratio	-0.24
4	Density of Towns	+0.15
5	Population distribution	+0.58
6	Density of Roads	+0.08

Table: 6 Regression Analysis of the Determinants of the Urban Population

Independent variables	Intercept (a)	Slope (b)
Literacy	-31.02	0.93
Non-agricultural workers	-33.56	1.09
Sex Ratio	132.36	-0.12
Density of Towns	14.45	39.94

Population Distribution	-0.77	2.74
Density of Roads	14.63	0.09

The regression analysis was carried out by taking urban population as dependent variable and the determinants as independent variables. The regression results analysis shows that one unit change in non agricultural workers, literacy, sex ratio, density of towns, population distribution, density of roads leads to the change of 1.04 units,0.93 units,-0.12 units, 39.94 units, 2.74 units, 0.09 units in urban population respectively.

Conclusion

There has been a marginal increase in the urban population (21 percent in 1981 to 24.8 percent in 2001) in the state of Jammu and Kashmir. Out of the total urban population, fifty eight percent is concentrated in Kashmir division while only 1.5 percent in Ladakh division and the rest 40% urban population is concentrated in Jammu division. The number of towns in the state has increased from fifty eight in 1981 to seventy five in 2001. The number of towns located in Kashmir division increased from 24 to 35 during these twenty years, while as in Jammu division the number of towns increased from 32 to 39 and in ladakh region, there was no increase in the number of towns during these twenty years. In the case of Kashmir division major urban centers are concentrated only in few pockets of Jehlum valley floor. The Srinagar urban agglomeration recorded a concentration of 39.51 percent of urban population and Jammu urban agglomeration recorded 29.39 percent of urban population to total urban population in the state. Thus these two urban agglomerations in the state contribute 68.90 percent of total urban population in the state and 31 percent of the urban population is distributed in the remaining 12 districts of the state. It indicates that these two cities occupy primate city position having concentration of socio-economic and service sector activities. Thus the engines of economic development are conspicuous by their absence in the rest of the districts in the state. The size of population for towns in the state shows that only Srinagar and Jammu were the class I towns having population more than one lakh. The state recorded only five class II and these towns were Baramulla, Anantnag, Sopore, Udhampur and Kathua as these towns have some growth generating activities. They have some economic influence in their adjacent hinterlands and mostly have developed due to service and trade activities while the other towns of the valley lack the required social, economic and credit infrastructure to develop their own areas. The low level of inter-sectoral diversification, weak trade linkages, rudimentary stages of development of agro-pastoral and horticulture resources and low level of technology for harnessing natural resources have contributed to the low level of urbanization in the state of Jammu and Kashmir. There is a great variation in

the distribution of the urban population in the Jammu and Kashmir which needs orderly and effective restructuring for achieving the goals of balanced regional urban development. Appreciation the need for slowing down of large cities urban growth and providing encouragement to the growth of small and medium towns by giving greater emphasis to the provision of infrastructural and other facalties to the small towns, to equip them to act as growth and service centers for the rural hinterland (especially in class IV, V and VI) should be adopted for achieving decentralized urban growth process.

Refrences

B. Zutshi, (1986), "*Population Distribution in Jammu and Kashmir*", Ed. Geography of Jammu and Kashmir, Arana Publishing House, New Delhi.

B. Zutshi, 1998, "*Human Resource and Social Cultural Changes in Jammu and Kashmir*"

Baghat. R.B, (1992), "*Urbanization in India, A Demographic Reappraisal*", Department of Geography Maharashi Dyand University Rohtak 124001, India.

Baghat. R. B. (1992), "*Components of Urban Growth in India with Reference to Haryana*" Finding from Recent Censuses Nagarlok, vol, 25, No.3, pp- 10-14

Bala.R.and Krishen.G (1982,), "*Urbanization in the Border Regions (A case study of India's Border Districts Adjoining Pakistan"*, The Geographical Journal. Vol.148, no..1 March (1982) pp.43-49

Bhat.A.R (2005),"*Human Resource and Socio-economic Development in Kashmir Valley, A Geographical Interpretation"*, Dulpreet publishing House.Delhi110018

Bhat.M.A (2003), "*Pattern of Urbanization in Jammu and Kashmir*", Valley Book House publishers Hazratbal Srinagar 190006

Bhat.M.S (1994), "*Levels of Urbanization in Jammu and Kashmir, A District level Analysis"*, Indian Journal of Regional sciences,vol.26,No.1,pp.79-85

Bhat.M.S (2008), "*Urban System in Himalayas"*, Dulpreet Publishing House New Delhi 2008.

Bose.A (1978), "*India's Urbanization (1901-2001)*", Tata McGraw hills Publishing company Limited New Delhi.

Brockerhoff,(1999), "*Urban Growth in Devloped Countries; a Review Projections and Prediction"*, Population and Development Review, Vol 25, No. 4 pp757-778.

Carter.H (1995), "*The Study of Urban Geography* (Fourth Edition)", London Edward Arnold.

Census of India 2001, "Jammu and Kashmir, Series 2, paper-2 of 2001", rural-urban distribution of population, p.ix.

Census of India, 2001, Series I India, Final Population Totals, "*Urban Agglomeration and Towns".*

Census of India, Series 2, "*Jammu and Kashmir Provisional population*" page 2 of 2001 rural urban distribution of population

Davis, K. (1965), "*The Urbanisation of the Human Population*" .Scientific American, 213(3), 41-53.

Hussain Majid (2000), "*Systematic Geography of Jammu and Kashmir*", Rawat publications 2000. P.239-247. .

Hussain Majid (2002); "*Human Geography* (Third Edition)" Rawat Publication Jaipur and New Delhi.

Kundu A., 2009, "*Exclusionary Urbanisation in Asia: A Macro Overview*", Economic & Political Weekly, Vol. XLIV no. 48, pp. 48-58

Kundu A.,2011, "*Trends and Processes of Urbanization in India",* IIED and UNFPA, Urbanization and emerging population issues-6

Kundu, A. (2006), "*Trends and pattern of Urbanisation and their economic implications*, India Infrastructure Report 2006, Oxford, New Delhi.

Mishra R.P,(1998), "*Research Methodology*" Concept Publishing Company, New Delhi, 110059.

Mohan, Rakesh, Pant, C. (1982), "*Morphology of Urbanisation in India: Some results from 1981 census",* Economic and Political Weekly, 18 and 25 September

Moonis Raza, et.al. 1981. "*Urbanization and National Development*." In M. Honio (Ed.), Urbanization and Regional Development. Marazen, Asia Nagoya.

Ramachandran.R (1999); "*Urbanization and Urban Systems in India*", Oxford University press.

Sidiqque.M (1988), "*Urbanization In Jammu and Kashmir- A Regional Analysis, in Geography of Jammu and Kashmir*", Eds. Majid Hussain and Others, Arina Publishers pp 215-239..

Singh.R.L, 1973, "*Urban Geography In Developing Countries*", Published By The National Geographical Of India, Varanasi-221005.

Takashi Shinoda, 1996, "*Morphology of India's Urbanization*" The Developing Economics XXXIV-4.

United Nations 1996 and 2010, "*World Urbanization Prospects (revision figures for different years)"*, UN Population Division, New York.

United Nations. (1999)' *"Prospects for Urbanization - 1999 Revision*", United Nations, Department of Economic and Social Affairs, Population Division.

Environmental Hazards and Disaster Management

Sandhya Sharma
Govt.Autonomous P.G. College Chhindwara(M.P.)

Abstract

A disaster is the product of a hazard such as earthquake, flood or windstorm coinciding with a vulnerable situation which might include communities, cities or villages. A disaster occurs when hazards and vulnerability meet. Disaster management can be defined as the body of policy and administrative decisions and operational activities, which pertain to the various stages of a disaster at all, levels. Broadly disaster management can be divided into pre-disaster and post-disaster contexts. There are three key stages of activity that are taken up within disaster management. They are: 1. Pre-disaster 2. Disaster occurrence 3. Post-disaster

As Indians we need to be aware of likely hazards and potential hazards, how when and where they are likely to occur, and the problems which may result of an event. During the time of a disaster there will be delay before outside help arrives. At first, self-help is essential and depends on a prepared community-that is a community which has: 1.An alert, informed and actively aware population 2 A Preparedness and Response Plan

Keywords:- Hazards, Risk, Vulanerability

Introduction

The terms "hazard" and "risk" are often used interchangeably. However, in terms of risk assessment, these are two very distinct terms. As defined above, a hazard is any biological, chemical, mechanical, or physical agent that is reasonably likely to cause harm or damage to humans or the environment with sufficient exposure or dose. Risk is defined as the probability that exposure to a hazard will lead to a negative consequence, or more simply, Risk = Hazard x Dose.

Environmental hazards

Natural hazard risks have threatened people, society, the natural environment, and the built environment, particularly more vulnerable people, throughout history, and in some cases, on a day to day basis. The social, natural and built environment are not only at risk from geophysical hazards such as earthquakes, floods, volcanoes and tsunami, but also from man-made technological hazards including industrial explosions, release of chemical hazards and major accident hazards (MAHs). Man-made hazards include the emergence of risks to

people and the built environment in the modern world where hazards are presented by terrorist threats and technological hazards.

Kates (1978) went on to define environmental hazard as "the threat potential posed to man or nature by events originating in, or transmitted by, the natural or built environment". Keith Smith (1992) says that this definition includes a broader range of hazards ranging from long term environmental deterioration such as acidification of soils and build-up of atmospheric carbon dioxide to communal and involuntary social hazards such as crime and terrorism to voluntary and personal hazards such as drug abuse and mountain climbing.

Environmental hazards usually have defined or common characteristics including their tendency to be rapid onset events meaning they occur with a short warning time, they have a clear source of origin which is easily identified, impact will be swift and losses suffered quickly during or shortly after on-set of the event, risk of exposure is usually involuntary due to location or proximity of people to set hazard and the "disaster occurs with an intensity and scale that justifies an emergency response" (Smith, Environmental hazards, 1992).

Disaster can take various forms, including hurricane, volcano, tsunami, earthquake, drought, famine, plague, disease, rail crash, car crash, tornado, deforestation, flooding, toxic release, and spills. These can affect people and the environment on the local regional level, national level or international level (Wisner et al, unknown) where the international community becomes involved with aid donation, governments give money to support affected countries' economies with disaster response and reconstruction post-disaster.

In defining hazard it is important to distinguish between natural hazards which may be defined as "extreme events that originate in the biosphere, hydrosphere, lithosphere or atmosphere" (David Alexander, 2000) or as Keith Smith (1992) says, "a potential threat to humans and their welfare" and technological hazards which include earthquake, landslide, hurricane and tsunamis and technological and man made hazards including explosions, release of toxic materials, episodes of severe contamination, structural collapses, and transportation, construction and manufacturing accidents etc. There is also a distinction to be made between rapid onset natural hazards, technological hazards and social hazards and the consequences of environmental degradation such as desertification and drought, which are described as being of sudden occurrence and relatively short duration (McGuire, et al., 2002).

Causes, effects and management

Earthquakes Hazrds and Disasters:-

An earthquake is a series of underground shock waves and movements on the earth's surface caused by natural processes writhing the earths crust. On January 26 2001 a devastating earthquake occurred in the Kachchh district of the state of Gujarat. The earthquake measured a magnitude of M6.9 on Richter Scale. According to official estimates, the total loss of life was 13,805 and 12, 05,198 houses were damaged. Several key factors that contribute to vulnerability of human populations to earthquakes:

a. Location of settlements in an earthquake prone area, especially on soft ground, on area prone tolandslides or along fault lines.
b. Dense collection of weak buildings with high occupancy.
c. Non-engineered buildings constructed by earth, rubble, buildings with heavy roofs (more vulnerable than light weight structures), poor quality and maintenance of buildings

Main Mitigation strategies

Follow Indian Standard Codes for construction of buildings. Enforcement of the Byelaws including Land use control and restriction on density and heights of buildings Strengthening of important lifeline buildings which need to be functional after a disaster. Upgrade level of safety of hospital, fire service buildings etc.

Public awareness, sensitization and training programmes for Architects, Builders, Contractors, Designers, Engineers, Financiers,Government functionaries, House owners, Masons etc. Reduce possible damages from secondary effects such as like fire, floods, landslides etc. e.g. identify potential landslide sites and restrict construction in those areas.

Community Based Mitigation:-

Community preparedness along with public education is vital for mitigating the earthquake impact. Earthquake drills and Public awareness programme.

Tsunami Hazards and Disasters :-

TSUNAMI –is a Japanese word meaning "harbour wave". These waves,which often affect distant shores, originate from undersea or coastal seismic activity, landslides, andvolcanic eruptions. Whatever the cause, sea water is displaced with a violent motion and swells up,ultimately surging over land with great destructive power.

The general causes of Tsunamis are geological movements. It is produced in three major ways. The most common of these is fault movement on the sea floor, accompanied by an earthquake. To say that an earthquake causes a tsunami is not completely correct. Rather,

both earthquakes and tsunamis result from fault movements. Probably the second most common cause of tsunamis is a landslide either occurring underwater or originating above the sea and then plunging into the water. The third major cause of tsunamis is volcanic activity. The flank of a volcano, located near the shore or underwater, may be uplifted or depressed similar to the action of a fault.

26th December, 2004, A massive earthquake of Magnitude 9.0 hit Indonessia generating Tsunami waves in South-east Asia & eastern coast of India. Height of tsunami waves ranged from 3 – 10 m affecting a total coastal length of 2260 km in the States of Andhra Pradesh, Tamil Nadu, Kerala & UTs of Pondicherry, Andaman & Nicobar Islands. Tsunami waves travelled

upto a depth of 3 km from the coast killing more than 10,000 people & affected more than lakh of houses leaving behind a huge trail of destruction.

Tsunami warning should be disseminated to local, state, national aswell as the international community so as to be prepared as they are capable of crossing acrosscontinents. The information can be broadcasted to the local emergency officers and the general public. On receiving of the warning the action should be to evacuate the place as decided in the evacuation plan. Communities in the coastal areas are faced by the wrath of cyclones, storm surge and tsunami waves. It is important that the community is better prepared to take suitable actions on receiving of the threat and follow emergency evacuation plans and procedures.

Site Planning and Land Management:-

Within the broader framework of a comprehensive plan, site planning determines the location, configuration, and density of development on particular sites and is, therefore, an important tool in reducing tsunami risk. The designation and zoning of tsunami hazard areas for such open-space uses as agriculture, parks and recreation, or natural hazard areas is recommended as the first land use planning strategy. This strategy is designed to keep development at a minimum in hazard areas.

Landslide Hazards and Disasters:-

LANDSLIDES – are slippery masses of rock, earth or debris which move by force of their own weight down mountain slopes or river banks.

Geological Weak material:- weathered materials, jointed or fissured materials, contrast in permeability and contrast in stiffness (stiff, dense material over plastic materials). Erosion: Wave erosion of slope toe, glacial erosion of slope toe, subterranean erosion (Deposition

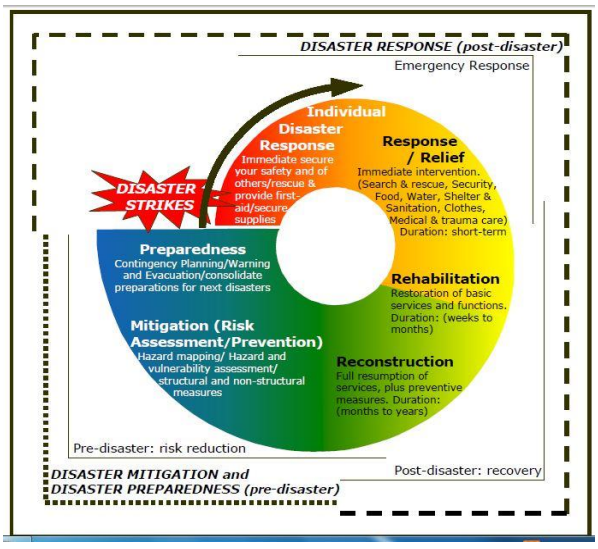
loading slope or its crest, Vegetation removal. Intense rainfall: Storms that produce intense rainfall for periods as short as several hours or have a more moderate intensity lasting several days have triggered abundant landslides.

The most damaging landslides are often related to human intervention such as construction of roads, housing and other infrastructure in vulnerable slopes and regions. Other community based activities that can mitigate landslides are education and awareness generation among the communities, establishing community based monitoring, timely warning and evacuation system.



Communities can play a vital role in identifying the areas where there is land instability. Compacting ground locally, slope stabilization (procedures such as terracing and tree planting may reduce damages to some extent), and avoiding construction of houses in hazardous locations are something that the community has to agree and adhere to avoid damage from the possible landslides. This would also reduce Source: http://www.geoengineer.org/photos/reearth1.jpg

Conclusion



Risk reduction can take place in two ways:

1. Preparedness

Preparedness therefore encompasses those measures taken before a disaster event which are aimed at minimising loss of life, disruption of critical services, and damage when the disaster occurs. All preparedness planning needs to be supported by appropriate legislation with clear allocation of responsibilities and budgetary provisions.

This protective process embraces measures, which enable governments, communities, and individuals to respond rapidly to disaster situations to cope with them effectively. Preparedness includes the formulation of viable emergency plans, the development of warning systems, the maintenance of inventories and the training of personnel. It may also embrace search and rescue measures as well as evacuation plans for areas that may be at risk from a recurring disaster.

2. Mitigation

Mitigation embraces all measures taken to reduce both the effect of the hazard itself and the vulnerable conditions to it in order to reduce the scale of a future disaster. Therefore mitigation activities can be focused on the hazard itself or the elements exposed to the threat. Examples of mitigation measures which are hazard specific include modifying the occurrence of the hazard, e.g. water management in drought prone areas, avoiding the hazard by siting people away from the hazard and by strengthening structures to reduce damage when a hazard occurs. In addition to these physical measures, mitigation should also be aimed at reducing the physical, economic and social vulnerability to threats and the underlying causes for this vulnerability.

Reference

Keith Smith, environmental hazards, 1992

Smith, Keith (2001). Environmental Hazards: Assessing risk and reducing disaster. New York, New York, USA: Routledge. ISBN 0-415-22464-0. McGuire,2002, p 10

Alexander, D.E. 2002. Principles of Emergency Planning and Management. Terra Publishing, Hertfordshire, England.

Craig Taylor, Erik VanMarcke, ed. (2002). Acceptable Risk Processes: Lifelines and Natural Hazards. Reston, VA: ASCE, TCLEE. ISBN 9780784406236.

Indian National Centre for Ocean Information Services (INCOIS) "Ocean Valley", Gajularamaram B.O, Via-IDA Jeedimetla S.O, Hyderabad 500055

Disaster Mitigation and Management Centre (DMMC) Secretariat Campus, Govt. of Uttaranchal Dehradun -248001 (Uttaranchal),

Center for Disaster Mitigation & Management, Anna University Chennai-600025

Indian Institute of Technology, Guwahati North Guwahati, Guwahati 781039 Assam.

शासकीय नीतियॉ एवं कानूनी प्रावधान–पर्यावरण संरक्षण के परिपेक्ष्य में

डॉ. कपिल खरे

अतिथि विद्वान, राजनीति विज्ञान

शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ

भारत में पर्यावरण संरक्षण का इतिहास काफी प्राचीन रहा है। वैदिक संस्कृति पर्यावरण संरक्षण के पर्याय के रूप में रही है। भारतीय मनीषियों के द्वारा सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना गया। मध्यकालीन तथा मुगलकालीन भारत में भी पर्यावरण के प्रति विशेष आर्कषण रहा है।

पर्यावरण को नष्ट करने का कार्य सर्वप्रथम अंग्रेजो के द्वारा अपनें आर्थिक लाभ की प्राति के लिए किया गया। अतः ब्रिट्रिश शासन काल में ही पारिस्थितिकीय असंतुलन विनाशकारी दोहन की नीति के कारण दिखाई देना प्रारंभ हो गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीयो में पश्चिती प्रभाव, औधोगिकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप तृष्णा जागृत हुई, जिसके कारण विभिन्न प्रकार के पदूषणो का जन्म हुआ।

पर्यावरण की गुणवत्ता और आर्थिक विकास एक ही सिक्के के दो महत्वपूर्ण पहलू है, जैसे – जैसे प्रौधोगिकीय प्रगाति तीव्र गति स हो रही है। वैसे – वैसे पर्यावरण संबंधी चुनौतियॉ भी लगातार बढ़ती जा रही है। ऐसे समय में प्रकृति के द्वारा उपलब्ध संसाधनो के संरक्षण की आवश्यकता दिन – प्रतिदिन महसूस की जा ही है अतः इस महत्वपूर्ण कार्य हेतु उचित कदम के रूप में संविधान संशोधन की आवश्यकता भी महसूस की गयी परन्तु भारतीय संविधान में सींधे तौर पर पर्यावरण संरक्षण के प्रावधनों को लागू नहीं किया गया। सर्वप्रथम सन् 1972 में हुए स्टॉकहोम सम्मेलन ने भारत सरकार का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की ओर आर्कषित किया। तत्पश्चात पर्यावरण संरक्षण को सांविधानिक दर्जा प्रदान किया गया। भारत सरकार द्वारा सन् 1976 में संविधान में संशोधन कर राज्य के नीति – निर्देशक सिद्धान्तो में दो महत्वपूर्ण अनुच्छेद 48 तथा अनुच्छेद 51 ए (जी) को जोडा गया। अनुच्छेद 48 ए राज्य सरकार को यह निर्देश देता है कि ***'' यह राज्य का कर्तव्य है कि वह पर्यावरण को सुधारे तथा देश में वनों एवं वन्य जीवन का संरक्षण भी करें''।*** अनुच्छेद 51 ए (जी) नागरिकों यह कर्तव्य प्रदान करता है कि वह वनों, नदीयों, झीलों तथा प्राकृति पर्यावरण का संरक्षण करें तथा उसमें सुधार कर सभी जीवधारियों के प्रति दयालु प्रवृति रखे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् तीव्र गति से बढ़ते औधोगिकरण, शहरीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण गुणवत्ता में निरंतर कमी आती गयी है। पर्यावरण की गुणवत्ता की इसी कमी में प्रभावी नियंत्रण व प्रदूषण के परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार क द्वारा समय – समय पर अनेक कानूनों का मुख्य आधार प्रदूषण पर नियंत्रण रखना तथा प्रदूषण का निवारण करना रहा है। प्रशासनिक स्तर पर इस

कार्य के लिए पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की स्थापना की गयी है। यह मंत्रालय पर्यावरणीय नीति की संरचना तैयार करना, पर्यावरणीय एवं वाानिकी कार्यक्रमो के कार्यान्वयन की योजना का निर्माण करना, पर्यावरणीय संरक्षण को विनियमित एवं सुनिश्चित करना, वनस्पति, वनों एवं वन्य जीवन का संरक्षण करना तथा उनका सर्वेक्षण करना, जैसे महत्वपूर्ण कार्यो को पूर्ण करता है। इन कार्यो को पूर्ण करने में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय संगठनात्मक ढॉचे में अनेक प्रभाग, निदेशालय बोर्ड, अधीनस्थ कार्यालय, सवायत्त संस्थाऍ एवं शासकीय क्षेत्र के उपक्रम भी सम्मिलित होते है।

इसी प्रकार औधोगिक प्रदूषण की रोकथाम के लिए भी केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गयी है, जो पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के साथ एक सांविधिक प्राधिकरण है। राज्य पर्यावरण विभाग और राज्य प्रदूषण निंयत्रण बोर्ड राज्य स्तर पर इस कार्य को करने वाली विनिर्दिष्ट एजेंसिया है।

केन्द्र सरकार द्वारा पर्यावरण कें संरक्षण हेतु अनेक कानून एवं नीतियॉ अधिनियमित किये गये है जिनमें ***'' पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986''*** सर्वप्रमुख है। इसके अतिरिक्त **जल प्रदूषण कानून** – रीवर बोडर्स एक्ट 1956, जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974, जल उपकर (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1977, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986, **वायु प्रदूषण सम्बन्धी कानून** – फैक्ट्रीज एक्ट 1948, इनफलेमेबल्स सबस्टाएसेज एक्ट 1952, वायु प्रदूषण (निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1981) **भूमि प्रदूषण संबंधी कानून** – इण्डस्ट्रीज (डेवलपमेन्ट एण्ड रेगुलेशन) अधिनियम 1951, इनसेक्टीसाइडस एक्ड 1968, अर्बन लैण्ड (सीलिंग एण्ड रेग्यूलेशन) एक्ट 1976, वन तथा वन्यजीव संबंधी कानून – फोरेस्टस कंजरवेशन एक्ट 1960, वाइल्ड लाईफ प्रोटेक्शन एक्ट 1972, फोरेस्ट (कनजरवेशन) एक्ट 1980, वाइल्ड लाईफ (प्रोटेक्शन) एक्ट 1995, जैव – विविधता अधिनियम 2002 आदि है।

कानूनी प्रावधानो की अनपूर्ति किए जाने की दिशा में एक व्यापक नीतिगत संरचना भी तैयार की गयी है जिसके अंतर्गत ***'' राष्ट्रीय पर्यावरण नीति – 2006''*** अति महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही राष्ट्रीय प्राणी उद्यान नीति, राष्ट्रीय वन नीति 1988, राष्ट्रीय संरक्षण नीति और पर्यावरण विकास सम्बंधी नीतिगत वक्तव्य 1992, प्रदूषण के उपशमन से सम्बन्धित नीतिगत वक्तवव्य 1992, राष्ट्रीय जल नीति 2002, वन्य जीवन संरक्षण कार्यनीति 2002 प्रमुख है।

योजना कार्यक्रम एवं व्यापक नेटवर्क के रूप में पर्यावरणीय सूचना प्राणाली भी स्थापित की गई है जिसके माध्यम से पर्यावरणीय सूचना को संग्रहण करना, उनका मिलान एवं भण्डारण करना, सूचना प्राप्ति करना तथा विभिन्न प्रयोक्ताओ को सूचना प्रदान करने जैसे मुख्य कार्य किए जाते है। भारत सरकार के द्वारा बहुत से बहुपक्षीय पर्यावरण संबंधी समझौतो पर भी हस्ताक्षर किये गये है। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और वहनीय विकास प्रभाग पर्यावरण एवं वन मंत्रालय में समस्त अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण सहयोग और वहनीय विकास के विषयो में समन्वय लाने वाला केन्द्र बिन्दू है।

भारत में पर्यावरण से संबंधित उपरोक्त कानूनो एवं नीतियो का निर्माण उस समय किया गया था जब पर्यावरण प्रदूषण इतना व्यापक रूप में नहीं था। अतः इनमें से अधिकांश कानून व नीतियॉ

अपनी उपयोगिता खो चुके है। परन्तु अभी कुछ कानून एवं नीतियॉ पर्यावरण संरक्षण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे है।

संदर्भ

Bas, D. D., (`1994), "Commentary on the Constitution of India", Vol.E, Universal Book Traders, Delhi

Bakshi, P.M (1992), "The Environment (Protection) Act 1986 '', Indian Law Institute, New Delhi

Diwan, P. (1987),"Environment Protection,Problems,Politics,Administration & Law", Deep & Deep Publications, New Delhi

Singh,Surdip, U(2005), Macmillan India Ltd., New Delhi

Upadhaya, J. J. R., "Environmental Laws",4th Edition, (2005), Central Law Agency, Allahabad

"Survey of Environment", (1994-2004), The Hindu

www.hindi.indiawaterportal.org/Node

नागपूर शहर : गलिच्छ बस्ती की जनांकिकी– एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ.आर.एन.साखरे
जगत महाविद्यालय, गोरेगांव
डॉ.एस.एस.देशपांडे
वसंतराव नाईक शासकीय समाज
विज्ञान संस्था, नागपूर

प्रस्तावना :

किसी इकाई क्षेत्र में आवासी लोगो की संख्या ही स्थानिक इकाई क्षेत्र की जनसंख्या कहलाती है।

हाउसर तथा डंकन के अनुसार ''जनांकिकी जनसंख्या के आकार, क्षेत्रीय वितरण, गठन व उनमें परिवर्तन और इन परिवर्तनो के भाग जो की जन्म दर, मृत्यु दर, देशान्तरण एंव सामाजिक गतिशीलता के रुप में जाने जाते है, का अध्ययन करता है।''[1]

प्रो. जी. टी. ट्रिवार्थी के अनुसार ''जनसंख्या भूगोल का प्रमुख उद्देश्य पृथ्वी के सतह पर जनसंख्या के वितरण में प्रादेशिक अंतरो को समझाना है। जनसंख्या वह संदर्भ बिंदू है जहां से सभी अन्य तत्वो का अवलोकन किया जाता है जिससे वे (तत्व) एकाकी या सामूहिक रुप में सार्थकता तथा अथर्वता प्राप्त करते है जनसंख्या ही सभी तत्वो का फोकस बिंदु है।''[2]

जान. आई. क्लार्क महोदय के अनुसार ''जनसंख्या भूगोल जनसंख्या के वितरण, संघटन, प्रवास तथा वृद्धि की क्षेत्रीय विभिन्नताओ को स्थाना की प्रकृति के विभिन्नताओ से संबन्धो की व्याख्या करता है।''[3]

प्रत्येक शहर किसी न किसी प्राकृतिक संसाधन के आस–पास स्थापित होता है विश्व में बहुतया शहर नदी के पास ही स्थापित हुए है इन्ही की तरह नागपूर शहर भी नाग नदी के समीप बसा है सूती वस्त्र उद्योग का यह मुख्य केन्द्र रहा जिससे लोग आकर्षित होकर नागपूर में बसे।

धीरे–धीरे यहाँ औद्योगिकरण होने लगा, प्रशासकिय सेवाए उपलब्ध होने लगे, मध्य प्रदेश की राजधानी होने से विकास अधिक होने लगा, दूसरी ओर शिक्षा सेवा से आकर्षण बढ़ता चला और शहर का विस्तार भी उसी गती से होने लगा वर्तमान में 217.56 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में विस्तृत है।

नागपूर शहर : गलिच्छ बस्तियों में जनसंख्या वितरण तथा घनता :

नागपूर शहर : विभागीय गलिच्छ बस्तियों की जनसंख्या तालिका

विभाग	जनसंख्या 2010–11	प्रतिशत
पूर्व	2,33,608	29.06
पश्चिम	1,60,572	19.97
उत्तर	2,04,800	25.48

दक्षिण	1,12,398	13.97
मध्य	92,553	11.51
समग्र	8,03,871	100.00

(स्त्रोत : म. न. पा. स्लम विभाग, नागपूर)

नागपूर शहर के भौगोलिक क्षेत्रफल के 9.09 प्रतिशत क्षेत्र अर्थात 19.75 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में 8,03,871 व्यक्ति रहते है।

नागप्र शहर : विभागीय गलिच्छ बस्तियों का क्षेत्रफल तालिका

विभाग	विभागीय क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	गलिच्छ बस्तियों का क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	गलिच्छ बस्तियों का क्षेत्रफल प्रतिशत
पूर्व	38.50	5.2949	17.73
पश्चिम	112.00	4.6823	51.57
उत्तर	40.25	4.4627	18.53
दक्षिण	17.37	3.9941	8.00
मध्य	9.05	1.3233	4.17
समग्र	217.56	19.7573	100.00

(स्त्रोत : म. न. पा. स्लम विभाग, नागपूर)

नागपूर शहर के भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 9 प्रतिशत क्षेत्रफल पर गलिच्छ बस्तियों का अस्तित्व है अर्थात लगभग 20 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल पर विभागीय क्षेत्रफल की तुलना में दक्षिण विभाग अग्रीम है तथा पश्चिम विभाग सबसे कम प्रमाण को दर्शाता है। केवल क्षेत्रफल का अभ्यास करे तो पूर्व विभाग में सर्वाधिक क्षेत्र में गलिच्छ बस्तियाँ स्थापित है सबसे कम क्षेत्रफल मध्य नागपूर में प्रतित है।

नागपूर शहर : विभागीय गलिच्छ बस्तियों की घनता तालिका

विभाग	जनसंख्या	क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	जनसंख्या घनता प्रति (वर्ग कि.मी.)
पूर्व	2,33,608	5.2949	44,119
पश्चिम	1,60,572	4.6823	34,293
उत्तर	2,04,800	4.4627	45,892
दक्षिण	1,12,398	3.9941	28,141
मध्य	92,553	1.3233	69,941
समग्र	8,03,871	19.7573	40,687

(स्त्रोत : म. न. पा. स्लम विभाग, नागपूर)

नागपूर शहर के गलिच्छ बस्तियों के लगभग 20 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में लगभग 8 लाख व्यक्ति रहते है अर्थात लगभग 40 हजार व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में रहते है। मध्य विभाग में सर्वाधिक लगभग 70 हजार व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में रहते है। उत्तर तथा पूर्व विभाग की जनसंख्या घनता लगभग 45 हजार है दक्षिण नागपूर की घनता विरल है लगभग 28 हजार व्यक्ति प्रति वर्ग कि.

मी. है भाहर की सर्वाधिक सघन गलिच्छ बस्ती उत्तर विभाग में ''खोब्रागडे नगर'' 3,93,939 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. तथा विरल घनता वाली बस्ती पश्चिम विभाग में ''एकात्मा नगर के पूर्व'' 152 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. क्षेत्र में विस्तृत है।

नागपूर शहर के विभागीय क्षेत्रों में वर्गीकृत जनसंख्या घनता के आधार गलिच्छ बस्तियाँ तालिका

वर्गीकृत जनसंख्या घनता प्रति वर्ग कि.मी.	गलिच्छ बस्तियों की संख्या						
	पूर्व	पश्चिम	उत्तर	दक्षिण	मध्य	समग्र	प्रतिशत
10,000 से कम	2	16	5	6	2	31	7.31
10,001 से 30,000	17	19	20	11	7	74	17.45
30,001 से 60,000	33	33	30	14	8	118	27.83
60,001 से 90,000	26	14	27	5	2	74	17.45
90,001 से 1,20,000	10	6	9	5	7	37	8.73
1,20,001 से 1,50,000	5	6	7	4	1	23	5.42
1,50,000 से अधिक	10	16	20	14	7	67	15.80
स्मग्र	103	110	118	59	34	424	100.00

(स्त्रोत : म. न. पा. स्लम विभाग, नागपूर)

नागपूर शहर में स्थित गलिच्छ बस्तियों की जनसंख्या घनता लगभग 40,000 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है। इस जनसंख्या घनता को वर्गीकृत करने पर यह प्रतीत होता है की शहर में 30,000 से 60,000 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. में रहने वाले सर्वाधिक लगभग 28 प्रतिशत बस्तियाँ है, निम्नतम लगभग 5 प्रतिशत बस्तियाँ ही ऐसी है जहॉ घनता 1,20,000 से 1,50,000 व्यक्ति रहते है। सघन घनता 1,50,000 से अधिक व्यक्ति रहने वाले लगभग 16 प्रतिशत बस्तियाँ है।

नागपूर शहर : जनसंख्या संरचना

किसी भी जनसंख्या से जैविक एंव सांस्कृतिक गुणों का अध्ययन, वहां के जनसंख्या के स्वरूप को समझने में महत्वपूर्ण होता है इसके अंतर्गत जनसंख्या की प्रजाति, जन्मदर, मृत्युदर, लिंगानुपात, आयु संरचना, धर्म, भाषा, साक्षरता एंव शैक्षणिक उपलब्धियॉ, व्यवसायिक संरचना, वैवाहिक स्थिति आदि गुणो का अध्ययन किया जाता है।

नागपूर भाहर की 43 चयनित बस्तियों के 20 प्रतिशत अर्थात 2095 परिवारो की जनसंख्या का सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी का विश्लेषण किया गया।

नागपूर शहर : आयु संरचना : जनगणना तिथि और जन्मतिथि के बीच के समय के अंतराल को आयु कहते है। जन्मतिथि दिन, माह और वर्ष में व्यक्त की जाती है पर जनगणना आयु को पूर्ण वर्षो में बताया जाता है। जनसंख्या की आयु संरचना उसकी आधारभूत जैव शारीरिक विशेषता है। मनुष्य की आयु उसकी आवश्यक्ताओ, कार्यक्षमता तथा विचारो को प्रभावित करता है। आयु मनुष्य की क्षमता का सूचकांक होता है। किसी राष्ट्र के जनसंख्या की आयु संरचना के अध्ययन से हम उसके जनशक्ति की पूर्ति, निर्भरता तथा सामाजिक–आर्थिक क्रिया कलाप संबन्धी ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

नागपूर शहर : विभागीय क्षेत्रों की जनसंख्या आयु संरचना तालिका

विभाग	आयुवर्ग									
	0 – 14		15 – 29		30 – 44		45 – 59		60 से अधिक	
	M	F	M	F	M	F	M	F	M	F
पूर्व	16.73	17.27	16.47	15.58	7.43	12.28	8.14	2.94	1.78	1.38
पश्चिम	18.67	18.98	14.24	14.74	6.77	13.66	9.12	2.31	1.23	1.04
उत्तर	16.59	16.72	11.73	14.02	12.08	12.70	5.20	4.94	2.29	3.71
दक्षिण	19.49	18.32	17.54	14.81	6.08	11.89	7.70	3.21	0.49	0.49
मध्य	16.64	19.23	12.93	13.88	8.77	13.06	7.80	3.33	2.16	2.18
समग्र	17.30	18.30	14.00	14.46	8.50	12.73	7.66	3.33	1.79	1.93

(आकडे प्रतिशत में) (स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

नागपूर शहर के विभागीय क्षेत्रों के चुनिंदा बस्तियों के सर्वेक्षण द्वारा संकलित जनसंख्या 12,584 व्यक्ति को आयु संरचना में वर्गीकृत करने से स्पष्ट है की आयु वृद्धि के साथ जनसंख्या मे लोप हो रहा है।

इस संकलित आकडो का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है की बाल आयु वर्ग लगभग 36 प्रतिशत है इसी वर्ग में दक्षिण विभाग में सर्वाधिक लगभग 38 प्रतिशत जनसंख्या है एवं निम्न पूर्व विभाग में 34 प्रतिशत जनसंख्या है।

प्रौंढ आयु वर्ग की जनसंख्या लगभग 61 प्रतिशत है इसी वर्ग में सर्वाधिक जनसंख्या पूर्व विभाग की लगभग 63 प्रतिशत एंव निम्नतम मध्य विभाग की 60 प्रतिशत है।

वृद्ध आयु वर्ग की जनसंख्या का प्रतिशत लगभग 4 है तो इसी वर्ग में सर्वाधिक मध्य विभाग में 4 प्रतिशत से अधिक है एवं निम्नतम दक्षिण विभाग में लगभग 1 प्रतिशत से कम है।

नागपूर शहर : लिंग संरचना : लिंगानुपात से तात्पर्य किसी जनसंख्या में सभी आयु वर्गो के कुल स्त्रियो व पुरुषो का अनुपात है। आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में स्त्रियों व पुरुषों की भूमिका परस्पर पूरक होती है। लिंगानुपात किसी क्षेत्र के वर्तमान सामाजिक, आर्थिक दशाओ का सूचकांक होता है। लिंगानुपात का प्रभाव जनसंख्या की वृद्धि, विवाह दर तथा व्यवसायिक संरचना एवं उपभोग के प्रतिरुप सामाजिक आवश्यकताएँ और उसके मनोवैज्ञानिक विशेषताओ को समझने में लिंगानुपात का अध्ययन उपसामग्री होता है किसी क्षेत्र के लिंगानुपात में परिवर्तन से विभिन्न आयु स्तरो पर पुरुषों एवं स्त्रियों के जन्मदर और मृत्युदर में परिवर्तन तथा प्रयास के स्वरुप का ज्ञान होता है। इससे सामाजिक, आर्थिक जीवन की प्रवृत्तियों विश्लेषण और जनांकिकी तत्वो के प्रभाव को समझने में सहायता मिलती है।

नागपूर शहर : विभागीय क्षेत्रों की लिंग संरचना तालिका

विभाग	पुरुष जनसंख्या (प्रतिशत)	स्त्री जनसंख्या (प्रतिशत)	प्रति हजार पुरूशो की तुलना में स्त्रीयो की संख्या
पूर्व	50.56	49.44	978

पश्चिम	50.04	49.96	998
उत्तर	47.90	52.09	1088
दक्षिण	51.27	48.73	951
मध्य	48.31	51.68	1070
समग्र	49.24	50.76	1031

(स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

नागपूर शहर की गलिच्छ बस्तियों में पुरुषों एवं स्त्रियों की जनसंख्या का अनुपात लगभग समान है। दक्षिण नागपूर में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों की जनसंख्या सर्वाधिक है, वही उत्तर नागपूर में पुरुषों को तुलना में स्त्रियों की जनसंख्या सर्वाधिक है। इन बस्तियों में प्रति हजार पुरूषों की तुलना में 1031 स्त्रियाँ है जो सर्वाधिक उत्तर नागपूर में 1088 तो निम्नतम दक्षिण नागपूर में 951 है। गलिच्छ बस्तियों के आधार सर्वाधिक स्त्रियाँ 1667 ''सोनपुर गॉव'' में तथा निम्नतम 615 स्त्रियाँ ''मंगलवारी बाजार' बस्ती में प्रतित है।

नागपूर शहर : निर्भर अनुपात : जनसंख्या के आयु संरचना का सुक्ष्म अध्ययन हेतू जनसंख्या को आवश्यक्तानुसार आयु वर्गो में बाटा गया है।

1) बाल आयु वर्ग 0 – 14 वर्ष

2) प्रौंढ आयु वर्ष 15 – 59 वर्ष

3) वृद्ध आयु वर्ग 60 से अधिक वर्ष

1) बाल आयु वर्ग : इस आयु वर्ग में 15 वर्ष से कम आयु के बालक, बालिकाओं को वर्गीकृत किया जाता है। कुल जनसंख्या में यदि इनका प्रतिशत 20 से नीचे चला गया तो जनसंख्या घटने लगती है। यह आयु वर्ग भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा, स्वास्थ आदि के लिये युवा व प्रौंढ वर्गो पर आश्रित होता है तथा आर्थिक दृष्टी से अनुत्पादक वर्ग होता है इसे पूर्व जनशक्ति कहॉ जाता है।

2) प्रौंढ आयु वर्ष : 15 से 59 आयु समूह में वर्गीकृत जनसंख्या इस वर्ग में सम्मिलित है। यह वर्ग राष्ट्र के जनशक्ति का स्त्रोत होता है। यह आर्थिक दष्टी से उत्पादक वर्ग है। जैवशारीरिक दृष्टि से पुनरुत्पादन भी करता है तथा अन्य वर्गो की तुलना में सबसे अधिक गतिशील भी है। शेष दो वर्ग इसी पर आश्रित होते है। उन्नत देशो में प्रौंढ आयु वर्ग में कुल जनसंख्या का 60 प्रतिशत से 65 प्रतिशत तक होता है। 15 – 39 यवा आयु वर्ग तथा 40 से 59 प्रौंढ आयु वर्ग। युवा आयु वर्ग में प्रौंढ आयु वर्ग की तुलना में आर्थिक क्रियाशीलता अधिक होती है। यही वर्ग देश के सैनिक शक्ति तथा श्रम शक्ति का स्त्रोत है।

3) वृद्ध आयु वर्ग : इस वर्ग में 60 से अधिक आयु समुहो के व्यक्ति सम्मिलित है। यह एक सेवा निवृत वर्ग होता है। उन्नत देशो में इनका प्रतिशत 8 से 12 के बीच होता है, पिछडे देशो में यह 4 प्रतिशत कम होता है। यद्यपि यह आयु वर्ग प्रौंढ आयु वर्ग पर आश्रित होता है पर इसी के ज्ञान तथा अनुभवो पर ही देश का प्रशासन तथा सामाजिक–आर्थिक क्रियाकलाप संचालित होता है। इस आयु वर्ग में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का प्रतिशत अधिक होता है।

निर्भरता अनुपात से युवा और प्रौंढ जनसंख्या पर शिशुओं और वृद्धो का भार ज्ञात होता है विकसित देशो में यह भार कम होता है क्योंकी इनमे 0 – 14 आयु वर्ग में जनसंख्या बहुत कम होती है। विकासशील देशो में इस आयु वर्ग में 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या होने के कारण निर्भरता अनुपात बहुत अधिक होता है।

निर्भरता अनुपात केवल अनुत्पादक आयु समुहो का उत्पादक आयु वर्ग से अनुपात को प्रकट करता है यह किसी जनसंख्या के वृहद् निर्भरता की ओर संकेत करती है वास्तविक भार को नही बता पाती क्योंकि 15 से 59 आयु वर्ग में सभी व्यक्ति उत्पादक कार्य नही करते। इनमे से कई आत्मनिर्भर नही होते।

नागपूर शहर के विभागीय गलिच्छ क्षेत्रों में आयु सूचकांक के आधार आश्रित जनसंख्या तालिका

क्षेत्र	बाल आयु <15	प्रौंढ आयु 15–59	वृद्ध आयु 60>	बाल + वृद्ध	आश्रित जनसंख्या प्रतिशत
पूर्व	34.00	62.84	3.16	37.16	59.13
पश्चिम	37.64	60.08	2.27	39.91	66.42
उत्तर	33.30	60.70	6.00	39.30	64.74
दक्षिण	37.82	61.20	0.97	38.79	63.38
मध्य	35.87	59.78	4.34	40.21	67.26
समग्र	35.60	60.67	3.73	39.33	64.82

(आकडे प्रतिशत में) (स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

इन आकडों से स्पष्ट है की इन गलिच्छ बस्तियों में 64.82 प्रतिशत जनसंख्या आश्रित है। तुलनात्मक अध्ययन से सर्वाधिक जनसंख्या मध्य नागपूर की 67.26 प्रतिशत आश्रित है एवं निम्नतम पूर्व नागपूर की 59.13 प्रतिशत जनसंख्या आश्रित है। किन्तु इन सूचकांक के आधार प्राप्त आश्रित जनसंख्या सदैव सच नही हो पाती क्योंकि इन्ही बस्तियों के बच्चो से बाल मजदूरी का प्रकार है सभी प्रौंढ आयु वर्ग के लोग उत्पादक कार्य नही करते तो कई वृद्ध आयु वर्ग के लोग उत्पादक कार्य करते है।

नागपूर शहर : वैवाहिक जनसंख्या संरचना : विवाह की आयु तथा वैवाहिक जीवन की अवधि जन्मदर को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक है। शीघ्र विवाह उच्च जन्मदर तथा देर से विवाह निम्न जन्मदर के द्योतक है। शीघ्र विवाह करने से वैवाहिक जीवन की अवधि लम्बी हो जाती है। इससे जन्मदर उच्च होता है। किसी स्त्री के विवाह की आयु में यदि दो वर्ष की वृद्धि होती है तो एक बच्चे का जन्म कम होता है।

नागपूर शहर के विभागीय गलिच्छ क्षेत्रों में वैवाहिक जनसंख्या संरचना तालिका

क्षेत्र	वैवाहिक जनसंख्या	अवैवाहिक जनसंख्या	वैवाहिक जनसंख्या		अवैवाहिक जनसंख्या	
			पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
पूर्व	6.97	10.88	3.45	3.52	5.61	5.27
पश्चिम	8.11	12.63	4.09	4.01	6.21	6.41
उत्तर	8.07	9.93	3.62	4.45	5.00	4.92

दक्षिण	3.23	4.93	1.52	1.71	2.66	2.27
मध्य	13.87	21.46	6.65	7.22	10.42	11.04
समग्र	40.17	59.83	19.33	20.92	29.91	29.90

(आकडे प्रतिशत मे) (स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

इन संकलित आकडो से स्पष्ट है की इन गलिच्छ बस्तियों में 40.17 प्रतिशत जनसंख्या वैवाहिक है तथा 59.83 प्रतिशत अविवाहित जनसंख्या है। आकडो से स्पष्ट होता है की प्रत्येक परिवार में औसतन 3 व्यक्ति अविवाहित है। तुलनात्मक दृष्टि से मध्य नागपूर में सर्वाधिक 13.87 प्रतिशत जनसंख्या विवाहित है तथा सबसे कम दक्षिण नागपूर में विवाहित जनसंख्या 3.23 प्रतिशत है।

अविवाहित जनसंख्या भी मध्य नागपूर में सर्वाधिक 21.46 प्रतिशत तो अल्प मात्रा में दक्षिण नागपूर में 4.93 प्रतिशत है। लिंग के आधार विवाहित पुरुषो की जनसंख्या 19.33 प्रतिशत एवं स्त्रियाँ 20.92 प्रतिशत है। अविवाहित पुरुषो की जनसंख्या 29.91 प्रतिशत तो स्त्रियाँ 29.90 प्रतिशत है। गलिच्छ बस्तियों में अग्रीम 'भानखेडा' है जहॉ वैवाहिक जनसंख्या 8.56 प्रतिशत, अविवाहित जनसंख्या 11.51 प्रतिशत है। वैवाहिक पुरुष जनसंख्या 4.04 प्रतिशत तथा स्त्रियाँ 4.52 प्रतिशत तो अविवाहित पुरुषो की जनसंख्या 5.62 प्रतिशत तथा स्त्रियाँ 5.90 प्रतिशत है।

नागपूर शहर : व्यवसायिक जनसंख्या संरचना : जीविका उपार्जन के लिये की जाने वाली उत्पादक आर्थिक क्रियाओ को व्यवसाय कहते है। जनसंख्या की व्यवसायिक संरचना उसके आर्थिक विशेषताओं को स्पष्ट करता है। व्यक्ति की व्यवसायिक स्थिति उसके विचार, सामाजिक दृष्टिकोण, व्यक्तित्व प्रगट करता है फिर भी जनसंख्या की आर्थिक विशेषता उसका एक भ्रामक लक्षण है।

नागपूर शहर के विभागीय गलिच्छ क्षेत्रों की व्यवसायिक जनसंख्या संरचना तालिका

क्षेत्र	व्यवसायिक जनसंख्या	व्यवसायिक पुरुष जनसंख्या	व्यवसायिक स्त्री जनसंख्या
पूर्व	28.97	42.25	15.39
पश्चिम	28.52	42.38	14.63
उत्तर	35.73	52.39	20.41
दक्षिण	26.51	35.36	17.20
मध्य	30.25	50.00	11.79
समग्र	30.13	46.16	15.02

(आकडे प्रतिशत मे) (स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

इन संकलित आकडो से स्पष्ट है की इन गलिच्छ बस्तियों में 30.13 प्रतिशत जनसंख्या व्यवसायिक है। विभागीय क्षेत्रों की तुलना में सर्वाधिक उत्तर नागपूर में 35.73 प्रतिशत तथा निम्नतम दक्षिण नागपूर में 26.51 प्रतिशत जनसंख्या व्यवसायिक है। लिंग के आधार इन बस्तियों में पुरुष 46.16 प्रतिशत तथा स्त्रियॉ 15.02 प्रतिशत जनसंख्या व्यवसायिक है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से उत्तर नागपूर में सर्वाधिक पुरुष 52.39 प्रतिशत तथा इसी क्षेत्र में सर्वाधिक स्त्रियाँ 20.41 प्रतिशत व्यवसायिक है। पश्चिम नागपूर के 'सोनपूर' बस्ती में पुरुषों की व्यवसायिक जनसंख्या 75.00 प्रतिशत है तथा न्यूनतम व्यवसायिक पुरुष जनसंख्या दक्षिण नागपूर के 'मांग गारोडी टोली' में 23.26 प्रतिशत है। स्त्रियों का

सर्वाधिक व्यवसायिक समग्रदान उत्तर नागपूर के 'नागराज नगर' मे 40.00 प्रतिशत है एवं न्यूनतम व्यवसायिक स्त्रियों का समग्रदान उत्तर नागपूर के 'तक्षशिला नगर' में 0.00 प्रतिशत है।

नागपूर शहर के विभागीय गलिच्छ क्षेत्रों में विभिन्न व्यवसायो में लिप्त जनसंख्या : तालिका

विभागीय गलिच्छ क्षेत्र	व्यवसायिक जनसंख्या व्यक्ति	मजदूरी गृह निर्माण	दूकान में कार्यरत	घरकाम	निजि दफ्तरो में कार्यरत	रिक्षा चालक	मिस्त्री गृह निर्माण	प्रशास किय सेवा में कार्यरत	कंपनी में कार्यरत	पेन्टीग कार्य	खोमचे वाला	आटो चालक	हमाल	सब्जी विक्रेता	टेलर	अन्य
पूर्व	651	21.50	5.99	8.90	7.06	6.76	7.68	9.21	3.23	1.69	2.30	2.76	0.77	2.00	1.23	18.89
पश्चिम	741	27.66	6.34	8.90	6.74	4.32	6.48	5.80	3.24	1.75	2.97	2.83	2.97	1.48	1.48	17.00
उत्तर	810	24.56	10.12	9.50	0.00	8.40	3.95	0.49	4.94	3.70	1.85	1.97	0.25	1.11	3.20	22.59
दक्षिण	272	11.76	2.94	4.77	0.73	2.94	4.77	7.72	0.00	1.47	4.04	0.73	9.56	1.47	0.73	46.32
मध्य	1345	25.42	8.40	5.20	8.92	3.86	3.12	3.49	2.75	3.72	2.23	2.30	1.93	2.75	1.93	23.94
समग्र	3792	24.20	7.62	7.49	5.74	5.38	4.88	4.61	3.21	2.84	2.45	2.32	2.13	1.95	1.92	23.20

(आकडे प्रतिशत मे) (स्त्रोत : लेखक द्वारा सकलित)

इन आकडो से स्पष्ट है की इन गलिच्छ बस्तियों की 30.13 प्रतिशत जनसंख्या 61 प्रकार के व्यवसायो से जूडे है जिनमे 14 मुख्य व्यवसाय तथा 47 अन्य व्यवसाय है इन मुख्य व्यवसायो में गृहनिर्माण मजदूरी, दूकानो में काम करना, घरकाम, निजी दफ्तरो में काम करना, रिक्षा चलाना, मिस्त्री काम गृहनिर्माण, प्रशासकिय सेवा में कार्यरत, कंपनियो में कार्यरत, खोमचेवाला, आटोचालक, हमाल, सब्जी विक्रेता, टेलरिंग है। इसके अतिरिक्त अन्य व्यवसायो में मुख्यरुप से केरोसिन बेचना, कबाडी, नलकाम, ठेला चलाना, ठेकेदारी करना, पंचर दूकान, वेल्डर, माटका (करघा चलाना), सायकल दुरूस्ती, फुटकर व्यवसाय (बाजार–बाजार), कुली, पान दुकान, गैरेज मे, बैंडपार्टी मे, बिडी बनाना, चौकीदारी, मोची, भिकारी, खाटीक, चूडी विक्रेता, सूतार, कपडा व्यवसाय चाय दूकान, फोटोग्राफर, किराणा दूकान, मछली व्यवसाय, ड्रायव्हर, मेक्यानिक, वेटर, हंजाम, होटल मे, बर्तन विक्रेता, सेवा निवृत्त, फल विक्रेता, फेब्रीकेशन, लोहार, डेकोरेशन, कुंभार, लॉंड्रो दूकान, शराब निकालना, दूध विक्रेता, इलेक्ट्रोशियन, पत्थर तोडना, धोबी, खानसामा, टयूशन लेना, अगरबत्ती बनाना इत्यादी व्यवसाय इन गलिच्छ बस्तियों के लोग करते है।

संपूर्ण गलिच्छ बस्तियों में मुख्य व्यवसाय मजदूरी है जिसमे 24.20 प्रतिशत व्यवसायिक जनसंख्या लिप्त है तथपश्चात दूकानो में काम करना, घरकाम को महत्व दिया गया है।

नागपूर शहर : शिक्षा : एक रुढिवादी समाज में शिक्षा की कमी ही उसके आर्थिक पिछडेपन का कारण होता है किसी क्षेत्र के सामाजिक विकास, आर्थिक प्रगति वहॉ के नागरिको के शिक्षा पर निर्भर करता है। शिक्षा मनुष्य के सामाजिक व मानसिक पृथकत्व को भी समाप्त करता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा, जन्मदर, विवाह की आयु, प्रवास तथा आर्थिक प्रतिरुपो को प्रभावित करता है।

नागपूर शहर के विभागीय गलिच्छ क्षेत्रों में शिक्षित जनसंख्या तालिका

क्षेत्र	शिक्षित जनसंख्या	शिक्षित पुरुष जनसंख्या	शिक्षित स्त्री जनसंख्या
पूर्व	92.22	92.08	92.25
पश्चिम	91.80	91.85	91.76
उत्तर	82.44	86.46	78.75
दक्षिण	60.14	61.03	59.20
मध्य	90.22	91.25	89.25
समग्र	87.04	88.12	86.01

(आकडे प्रतिशत मे) (स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

संकलित आकडो से स्पष्ट है की गलिच्छ बस्तियों में 87.04 प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है। पुरुषों की शिक्षित जनसंख्या 88.12 प्रतिशत एवं स्त्रियों की शिक्षित जनसंख्या 86.01 प्रतिशत है। विभागीय क्षेत्रों की तुलना करे तो सर्वाधिक पूर्व नागपूर में 92.22 प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है। तो सबसे कम दक्षिण नागपूर में 60.14 प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है। लिंग के आधार पुरुषों एवं स्त्रियों में सर्वाधिक पूर्व नागपूर में क्रमशः 92.08 प्रतिशत एंव 92.25 प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है एवं सबसे कम संख्या में शिक्षित पुरुष एवं स्त्री उत्तर नागपूर में इनकी जनसंख्या क्रमशः 61.03 प्रतिशत एवं 59.20 प्रतिशत है।

साक्षरता की दृष्टि से सर्वाधिक साक्षरता जनसयंख्या 99.26 प्रतिशत पश्चिम नागपूर के 'न्यु वैशाली नगर' की है। तथा सबसे कम साक्षर जनसंख्या 14.98 प्रतिशत दक्षिण नागपूर के 'मांग गारोडी टोली' बस्ती की है।

पुरूषों की साक्षर जनसंख्या सर्वाधिक 100 प्रतिशत पश्चिम नागपूर के 'न्यु वैशाली नगर' की है तथा सबसे कम साक्षर जनसंख्या 14.42 प्रतिशत दक्षिण नागपूर के 'मांग गारोडी टोली' की है।

स्त्रियों में साक्षर जनसंख्या सर्वाधिक 100 प्रतिशत पूर्व एवं पश्चिम नागपूर के क्रमशः 'शांती नगर' 'CRPF' एंव 'कांचीपुरा–2' की है तथा सबसे कम साक्षर स्त्री जनसंख्या 15.58 प्रतिशत दक्षिण नागपूर के 'मांग गारोडी टोली' बस्ती की है।

नागपूर शहर के विभागीय गलिच्छ क्षेत्रों में शिक्षा का स्तर एवं जनसंख्या तालिका क्र : 4.12

क्षेत्र	जनसंख्या						
	प्रायमरी	प्राथमिक	माध्यमिक	एस.एस. सी.	एच.एस. एस.सी.	ग्रेज्युएट	पोस्ट ग्रेज्युएट
पूर्व	35.25	39.47	12.51	2.85	1.56	0.45	0.09
पश्चिम	40.45	38.99	10.05	1.69	1.08	0.31	0.04
उत्तर	33.35	23.20	14.20	7.19	3.93	0.31	0.18
दक्षिण	25.83	22.22	7.50	3.12	1.07	0.78	0.00
मध्य	35.56	32.56	15.05	3.58	2.36	0.94	0.16
समग्र	35.32	32.60	12.79	3.67	2.13	0.58	0.11

(आकडे प्रतिशत मे) (स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

इन आकडो से स्पष्ट है की शिक्षा का स्तर जिस तरह बढता है शिक्षित जनसंख्या का प्रमाण कम को रहा है तुलनात्मक दृष्टिकोण से उत्तर नागपूर एंव मध्य नागपूर की गलिच्छ बस्तियों के शिक्षा स्तर ठीक नही कहॉ जा सकता किंन्तु अन्य क्षेत्रों के शैक्षणिक हास दर से उच्च है। प्रायमरी एवं प्राथमिक शिक्षा प्राप्ति तक साधारण स्थिती प्रतीत है ततपश्चात प्रत्येक एक उच्च स्तर शिक्षा प्राप्ति में 1/3 जनसंख्या प्रतीत है।

नागपूर शहर के विभागीय गलिच्छ क्षेत्रों में पुरूषों का शिक्षा स्तर एंव जनसंख्या तालिका

क्षेत्र	जनसंख्या						
	प्रायमरी	प्राथमिक	माध्यमिक	एस.एस. सी.	एच.एस. एस.सी.	ग्रेज्युएट	पोस्ट ग्रेज्युएट
पूर्व	32.57	40.75	13.38	3.26	1.85	0.35	0.08
पश्चिम	36.54	39.92	11.07	2.15	1.38	0.31	0.07
उत्तर	34.53	26.61	13.81	7.27	3.68	0.28	0.28
दक्षिण	24.52	23.57	7.98	3.04	1.14	0.76	0.00
मध्य	31.00	36.03	16.34	3.44	3.03	1.12	0.27
समग्र	32.52	35.00	13.54	3.77	2.42	0.63	0.18

(आकडे प्रतिशत मे) (स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

इन संकलित आकडो से स्पष्ट है की इन बस्तियों में पुरुषो का शिक्षा का स्तर निम्न है और वह गलिच्छ बस्तियों का लक्षण भी है। यहाँ 88.12 प्रतिशत पुरुष जनसंख्या शिक्षित है किन्तु शिक्षा का स्तर जिस तरह बढ़ता है उसका 1/3 जनसंख्या हो उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त है। इन विभागीय क्षेत्र का तुलनात्मक अध्ययन करे तो मध्य नागपूर की गलिच्छ बस्तियों का स्तर अन्य विभागीय क्षेत्रों की अपेक्षा उच्च माना जा सकता है। प्रायमरी एवं प्राथमिक स्तर पर सभी विभागीय क्षेत्रों की समाधानकारक स्थिति है किन्तु उच्च स्तर की शिक्षा में जनसंख्या का हासदर काफी अधिक प्रतीत होता है।

नागपूर शहर के विभागीय गलिच्छ क्षेत्रों में स्त्रियों का शिक्षा स्तर एवं जनसंख्या तालिका

क्षेत्र	जनसंख्या						
	प्रायमरी	प्राथमिक	मध्यमिक	एस.एस. सी.	एच.एस. एस.सी.	ग्रेज्युएट	पोस्ट ग्रेज्युएट
पूर्व	37.98	38.16	11.61	2.43	1.26	0.54	0.09
पश्चिम	44.38	38.06	9.01	1.23	0.77	0.31	0.00
उत्तर	32.26	20.06	14.56	7.11	4.15	0.34	0.08
दक्षिण	27.20	20.80	7.00	3.20	1.00	0.40	0.00
मध्य	39.82	29.32	13.84	3.70	1.74	0.78	0.04
समग्र	38.05	30.27	12.07	3.57	1.85	0.53	0.05

(आंकडे प्रतिशत मे) (स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

गलिच्छ बस्तियों में शिक्षा का स्तर निम्न होता है यह लक्षण गलिच्छ बस्तियों का है। किन्तु आकड़ों के आधार स्थानिक बस्तियों में स्त्रियों की शिक्षित जनसंख्या 86.01 प्रतिशत है जो की पुरुषों के

शिक्षित जनसंख्या से कम है। शिक्षा का स्तर जिस तरह क्रमानुसार उच्च होता है उसी तरह स्थानिक स्त्रियों की उच्च शिक्षा प्राप्ती में हास दर 1/3 से भी अधिक प्रमाण में कमी आ रही है।

किन्तु प्रायमरी शिक्षा प्राप्ती में स्त्रियाँ पुरुषों से अव्वल है किन्तु तुलनात्मक अध्ययन से पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का उच्च शिक्षा प्राप्ति में हास दर पुरुषों से अधिक है। विभागीय क्षेत्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है की उत्तर नागपूर की स्त्रियों का शिक्षा स्तर अन्य विभागो की तुलना में ठीक है।

जन्मदर को प्रभावित करने वाले कारको के अंतर्गत सामाजिक कारक महत्वपूर्ण है। शैक्षणिक स्तर तथा उर्वरता का सम्बध घनिष्ठ है। व्यापक असाक्षरता तथा अत्यल्प साक्षरता उच्च जन्मदर का प्रमुख कारण है तथा परिवार नियोजन की सफलता में एक बडी बाधा है। शिक्षा से स्त्रियों में सामाजिक व आर्थिक चेतना आती है और पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति अधिक जागृति होती है। इससे उनके सामाजिक स्थिति में भी सुधार होता है।

नागपूर शहर : धर्म संरचना : धार्मिक विश्वास का मानव जीवन पर व्यापक प्रभाव होता है इससे अनेक जनांकिकी गुण भी प्रभावित होते है। जात कर्म और मृतक संस्कार अलग–अलग है। पर सभी धर्म ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते है। सत्य, अहिंसा, दया, विश्वास सभी धर्मो का मूल आधार है। धर्म मनुष्य को एकता के सूत्र में बांधने वाला कारक है पर यही मनुष्यो में विभाजन का कारक भी है। धर्म का प्रभाव मनुष्य की संस्कृति पर कई तरह से पड़ता है। लोगो की जीवन पद्धति, प्रथाएँ, कलाएँ, साहित्य, मूर्तिकला एंव स्थापत्य कला, गृह निर्माण पर धर्म का व्यापक प्रभाव देखा जाता है।

नागपूर शहर के विभागीय गलिच्छ क्षेत्रों में जाति अनुसार संरचना तालिका

क्षेत्र	जनसंख्या								
	बौद्ध	मुस्लिम	गोंड	मेहतर	तेली	कोष्टी	कुणबी	भूजिया तेली	अन्य
पूर्व	27.59	9.43	1.65	19.54	10.41	6.41	4.98	3.38	16.60
पश्चिम	26.05	11.43	20.44	7.77	9.39	1.66	5.00	0.00	18.24
उत्तर	51.87	7.71	4.19	1.46	5.33	6.62	3.04	2.56	17.20
दक्षिण	14.42	10.43	3.31	9.55	2.04	0.00	1.75	0.00	58.48
मध्य	49.60	10.73	3.98	0.02	2.14	5.76	2.38	3.39	22.00
समग्र	38.35	10.07	6.95	6.14	5.68	4.71	3.46	2.27	22.36

(परिवार के आकड़े प्रतिशत मे) (स्त्रोत : लेखक द्वारा संकलित)

स्थानिक क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर हमें कुल 2095 परिवार में 12584 व्यक्तियों की जानकारी प्राप्त हुई जिसमे सर्वाधिक 38.35 प्रतिशत जनसंख्या बौद्ध जाति को है तत्पश्चात 10.07 प्रतिशत मुस्लिम, 6.95 प्रतिशत गोंड, 6.14 प्रतिशत मेहतर, 5.68 प्रतिशत तेली, 2.27 प्रतिशत भूजियातेली एंव 22.36 प्रतिशत जनसंख्या अन्य जाति की है।

अन्य जातियो में मुख्य रुप से कुंभार, भोई, पोवार, खाटीक, गोवारी, सोनार, कंहार, चंबार, पासोलोधी, सतनामी, बढई, निशाद, ऋषिदेव, माली, झा, वर्मा, धोबी, मारकांडे, कुरमी, सैनी, मखारी, पासवान, बेदार, मलाकार, तियर, शाहू, तेलगू, मांग, शिम्पी, कलार, काचीं, राजपूत, हलवाई, कोहडी,

ढिंबर, पिंजारी, मांगगारोडी, ब्राम्हण, मराठा, लोहार, नाईक, वट्टी, परदेशी, राजपूत ठाकूर, जैस्वाल, गढेरिया, यादव, मरार एंव गोसाई जाति के लोगो का समावेश अन्य जाति में है। कुल 60 जाति के लोग 2095 परिवार में रहते है।

विभागीय क्षेत्रों का अध्ययन करने से स्पष्ट है की जातिय आधार पर सर्वाधिक 38.35 प्रतिशत जनसंख्या बौद्ध जाति की है। मध्य एवं उत्तर नागपूर में लगभग आधी जनसंख्या बौद्ध जाति की है। केवल 14.42 प्रतिशत जनसंख्या दक्षिण नागपूर में है। लगभग 83.70 प्रतिशत बस्तियों में बौद्ध जाति के लोग रहते है। इन गलिच्छ बस्तियों में दूसरी बडी जाति मुस्लिम है जिनकी जनसंख्या 10.07 प्रतिशत है सर्वाधिक जनसंख्या पश्चिम, दक्षिण एवं पूर्व नागपूर में है उत्तर नागपूर में सबसे कम 39.53 प्रतिशत बस्तियों में इनका अस्तित्व है। मुख्यतः हिरवी नगर, पडोले नगर, पडोले नगर, रामपेठ, अजनी चूना भट्टी, इंदिरा नगर, गोवा कालोनी, नोगा (रेल्वे), गुलाब बाबा झोपडपट्टी, तकिया धंतोली–2 एवं लोधीपूरा में बहुसंख्यक के रुप में है।

गोंड जाति की जनसंख्या 6.95 प्रतिशत है। पश्चिम नागपूर में इनकी जनसंख्या 20.44 प्रतिशत है जो इस क्षेत्र की दूसरी बडी जाति है। अल्प संख्या में पूर्वी नागपूर में 1.65 प्रतिशत है। इनका अस्तित्व मुख्य रुप से अजनी चूना भट्टी, गिट्टीखदान, सुदामनगरी, न्यू वैशाली नगर, मकर धोकडा, लक्ष्मीनगर झोपडपट्टी, राजीवगांधी नगर, डॉ. आनंद कौसल्यान नगर, तकिया धंतोली–2, भोईपूरा, कुंभारपूरा एवं लोधीपूरा बस्तियों में बहुसंख्यक रुप में है लगभग 55.81 प्रतिशत बस्तियों में इस जाति का अस्तित्व है मुख्य रुप से मकर धोकडा बस्ती गोंड जाति की बस्ती है।

मेहतर, वाल्मीकी या सुदर्शन जाति की जनसंख्या नागपूर शहर में 6.14 प्रतिशत है विभागीय स्तर पर सर्वाधिक जनसंख्या पूर्व नागपूर में 19.54 प्रतिशत तो सबसे कम जनसंख्या मध्य नागपूर में 0.02 प्रतिशत ह मुख्य रुप से यह जाति मेहतरपूरा, सुदर्शन नगर, सुदामनगरी, गोवा कालोनी, काफला बस्ती में बहुसंख्यक है। मुख्यतः मेहतरपूरा, सुदर्शन नगर एवं काफला बस्ती में संपूर्णतः इसी जाति का अस्तित्व है लगभग 25.58 प्रतिशत बस्तियों में इस जाति का अस्तित्व है।

तेली जाति का नागपूर की इन बस्तियों में पांचवा स्थान है इनकी जनसंख्या 5.68 प्रतिशत है। पूर्व एवं पश्चिम क्षेत्रों में इनकी जनसंख्या अधिक है अल्प मात्रा में दक्षिण एवं मध्य नागपूर में है लगभग 37.20 प्रतिशत बस्तियों में इस जाति का अस्तित्व है। मुख्यतः गायत्री नगर एवं कुंभारपुरा इतवारी मे इस जाति के लोग बहुसंख्यक में रहते है।

हलबा कोष्टी जाति के लोग क्रमशः नागपूर में छटवे स्थान पर है इस जाति की जनसंख्या 4.71 प्रतिशत है। पूर्व, उत्तर एवं मध्य नागपूर में बहुसंख्यक है अल्प जनसंख्या 1.66 प्रतिशत पश्चिम नागपूर में है। लगभग 30.23 प्रतिशत बस्तियों म इनका अस्तित्व है। इनका अस्तित्व मुख्यरुप से हिरवी नगर, पडोले नगर, शांतीनगर, आदिवासी नगर, गायत्री नगर, भानखेडा एंव अन्य बस्तियों में है मुख्यतः गायत्री नगर एंव वैशाली नगर में बहूसंख्यक रुप से अस्तित्व है।

कुणबी जाति का अस्तित्व सातवे क्रम पर है इनकी जनसंख्या 3.46 प्रतिशत है लगभग 37.20 प्रतिशत बस्तियों में इनका अस्तित्व है अधिक संख्या में मुख्यतः शांती नगर, रामपेठ, आदिवासी नगर,

सुदामनगरी एवं अन्य बस्तियों में इनका अस्तित्व है मुख्यतः राजीव गांधी नगर एवं कुंभारपूरा इतवारी में बहुसंख्यक में रहते है।

भूजियातेली जाति के लोग का क्रम जनसंख्या की दृष्टि से आठवे क्रम पर है इनकी जनसंख्या 2.27 प्रतिशत है। सर्वाधिक मध्य एवं पूर्व क्षेत्रों में है एवं उत्तरी क्षेत्र में अल्पसंख्यक के रुप में है लगभग 13.95 प्रतिशत बस्तियों में इनका अस्तित्व है मुख्यतः भोईपूरा, मेकोसाबाग एवं हिरवी नगर में बहूसंख्यक रुप में है। पश्चिम एवं दक्षिणी क्षेत्रों में इनका अस्तित्व नगन्य है।

अन्य जाति का अस्तित्व नागपूर शहर में 22.36 प्रतिशत है। सर्वाधिक 58.48 प्रतिशत दक्षिण एवं अल्पसंख्यक के रुप में 16.60 प्रतिशत पूर्व नागपूर में है। इन जातियो में मुख्यरुप से मांग गारोडी, कहार, लोधो, कुंभार एवं मांग जाति के लोग मुख्य है। लगभग 74.42 प्रतिशत बस्तियों में इनका अस्तित्व है। 'हिरवी नगर', 'पडोले नगर' में ही सर्व जाति का अस्तित्व है। एक जाति अस्तित्व में पूर्व नागपूर में 'मेहतर' जाति की 'मेहतरपूरा' एवं 'सुदर्शन नगर' है एवं मुस्लिग जाति की 'औलिया नगर' बस्ती है। पश्चिम नागपूर में गोंड जाति की 'मकर धोकडा' बस्ती एंव बौद्ध जाति की 'सोनपूर गाव' है। उत्तर नागपूर में बौद्ध जाति की 'खोब्रागडे नगर', मुस्लिम जाति की 'नोगा' (रेल्वे) बस्ती है तथा दक्षिण नागपूर में बौद्ध जाति की 'डॉ. आम्बेडकर नगर' बस्ती मुख्य ह।

निष्कर्ष :

किसी इकाई क्षेत्र में आवासी लोगो की संख्या ही स्थानिक इकाई क्षेत्र की जनसंख्या कहलाती है। नागपूर शहर के लगभग 9 प्रतिशत क्षेत्र में अर्थात 19.75 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल पर 424 गलिच्छ बस्तियों में 8,03,871 व्यक्ति रहते है अर्थात प्रति वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में 40,687 व्यक्ति रहते है। सर्वेक्षण हेतू 10 प्रतिशत बस्तियाँ अर्थात 43 बस्तियों में 20 प्रतिशत परिवार अर्थात 2095 परिवारो से प्रत्यक्ष मुलाखात ली गई। इन प्राप्त आकडेवारी के आधार आयु संरचना में लगभग 36 प्रतिशत बाल आयु वर्ग; लगभग 61 प्रतिशत प्रौंढ आयु वर्ग तथा लगभग 4 प्रतिशत वृद्ध आयु वर्ग के लोग है। लिंग संरचना के आधार पुरूष और स्त्रियों का प्रमाण लगभग समान है। पुरूष 49.24 प्रतिशत तो स्त्रियाँ 50.76 प्रतिशत; प्रति हजार पुरूषों पर 1031 स्त्रियों की संख्या है। यहाँ आश्रित जनसंख्या 64.82 प्रतिशत है। वैवाहिक स्थिति देखे तो 40.17 प्रतिशत वैवाहिक; 59.83 प्रतिशत अवैवाहिक जनसंख्या है। वैवाहिक पुरूष 19.33 प्रतिशत; वैवाहिक स्त्रियाँ 20.90 प्रतिशत; अवैवाहिक पुरूष 29.91 प्रतिशत; अवैवाहिक स्त्रियाँ 20.90 प्रतिशत है। यहाँ 30.13 प्रतिशत जनसंख्या व्यवसायिक है जिसमे पुरूष 46.16 प्रतिशत तो स्त्रियाँ 15.02 प्रतिशत है। यह व्यवसायिक जनसंख्या 61 प्रकार के व्यवसायों से जुड़े है जिनमे 14 मुख्य व्यवसाय तथा 47 अन्य व्यवसाय है इन मुख्य व्यवसायो में गृहनिर्माण मजदूरी 24.20 प्रतिशत; दुकान में कार्यरत 7.62 प्रतिशत; घरकाम 7.49 प्रतिशत; निजि दफ्तरो में कार्यरत 5.74 प्रतिशत; रिक्षा चालक 5.38 प्रतिशत; मिस्त्री गृहनिर्माण 4.88 प्रतिशत; प्रशासकीय सेवा में कार्यरत 4.61 प्रतिशत; कंपनी में कार्यरत 3.21 प्रतिशत; पेन्टीग कार्य 2.84 प्रतिशत; फेरीवाले 2.45 प्रतिशत; आटोचालक 2.32 प्रतिशत; सब्जी विक्रेता 1. 95 प्रतिशत; टेलर काम 1.92 प्रतिशत तथा 23.20 प्रतिशत अन्य व्यवसाय में लिप्त है। यहाँ 87.04

प्रतिशत जनसंख्या साक्षर है जिनमे 88.12 प्रतिशत पुरूष तो 86.01 प्रतिशत स्त्रियाँ है। शिक्षा का स्तर क्रमानुसार उच्च होने पर उच्च शिक्षा प्राप्त जनसंख्या 1/3 प्रतित है। प्रायमरी में 35.32 प्रतिशत; एस. एस.सी. 3.67 प्रतिशत; एच.एस.एस.सी. में 2.13 प्रतिशत; स्नातक में 0.58 प्रतिशत तथा पदव्यूत्तर में मात्र 0.11 प्रतिशत है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों में शिक्षा का प्रमाण थोड़ा अधिक है। जातिनुसार संरचना देखे तो सर्वाधिक 38.35 प्रतिशत बौद्ध जाति की जनसंख्या; 29.21 प्रतिशत हिन्दू (गोंड, मेहतर, तेली, कोश्टी, कुणबी एंव भूजियातेली); इसलाम 10.07 प्रतिशत तथा 22.36 प्रतिशत अन्य जाति के लोग इन गलिच्छ बस्ती में रहते है।

संदर्भ सूची

हाउसर तथा डंकन; जनांकिकी एंव जनसंख्यात्मक समस्याये; सप्तम संस्करण; आर.एल.पाटनी; 6

प्रो. जी.टी. ट्रिवार्थी; जनसंख्या भूगोल; 1995; डॉ. बी.पी. पंडा;

जान. आई. क्लार्क; जनसंख्या भूगोल; 1995; डॉ. बी.पी. पंडा; 4

————————

"Geographical Study of Industrial Development in Chandrapur District"

Dr.R.P.Yadav
Professor of Geography,
Govt .College.Bichhua,
District Chhindawa MP

Dr.S.D. Thakur
Head Department of Geography
Janta Mahavidyalaya, Chandrapur
District Chandrapur

In the Survey of the industrial geography of the District of Chandrapur it is clearly stated that the industries in the district are mainly concerned with raw material, mainly coal. Various factories in this area have raised the standard of living of the people of the District. From the primary economic activities, people have shifted the second and third economic activated. Since there is the availability of coal, dolomite, limestone and iron in the Chandrapur area, we can not deny the prosperity of industry in this region. As a student of industrial Geography and teacher of geography, it is necessary to look into this matter with a researching attitude. Geographer can solve the cultural, social and industrial issues of the area and the environmental issues through various measures. The industrial geography covers the study of the process of industrializations, its link to the local raw materials. It also considers the factories that could come in the future due to technological change and need, suggesting ideal geographical location for various industrial etc.

Chapter Introductions

While economic development is taking place in the world and country, Chandrapur district is not left behind. Chandrapur district is known as an industrial District in Maharashtra. The District had one of the largest power plants in Asia. About 28% of the total electricity generation in Maharashtra is generated from this city and today Chandrapur District has emerged as the largest electricity producing District in Maharashtra. It is known as the largest coal producing District and the largest cement producing District. Dolomite and limestone mines are abundant in the District along with coal mineral resources. There are a total five cement manufacturing factories in the District. Contribute to the economic development of the District. India's largest paper manufacturing factory, Ballarpur Industries Limited (BILT) is located at Ballarshah, south of Chandrapur city. The largest sponge iron factory in Maharashtra is located at Ghugghus in Chandrapur tahsil. There are several paddy mills in Brahmapuri, Saoli and Sindewahi areas. Therefore, the city of today Chandrapur is known as" **The City of Black Gold" and The City of Electricity."**

Thirty years ago. This District was identified as backward District of Maharashtra, District of tribal, forest and tiger, but in the last ten to fifteen years, the District in now being

identified by industries and mines. While all the above industries are developing In the District, the pollution from these factories is huge. Therefore, today Chandrapur city and locality is unfortunately known as the people of chandrapur region. People involved in farming 35 years age are now gradually turning to secondary economic activity and industry. The proportion of people declining from primary business to the second and third economic activities is increasing.

Importance of area.

District of Chandrapur located on the Deccan Plateau in India, is rich in mineral wealth. Mineral metals found in the District are mainly stockpiles of coal, iron ore and manganese. There are about 750 small industries and 86 large industries on the District. Many industries are attracted to chandrapur District due to the coal mining in the District. The District has mines in Chandrapur, Bhadravati, Worora, Ghugghus, Ballarpur, majri, Sasti, Ratnapur and Lohara. The important reserves of iron ore are in Lohara Asola, Devalgaon, and Pimpalgaon in the District.

Research Objectives:

1. To take historical review of industrial development in the District of Chandrapur.
2. To link the industrial development with its resources in the District of Chandrapur.
3. To find out the sequence in the District of Chandrapur and its development of various periods.
4. To examine the relation between present industrial development and social as well as population

Structure in the District of Chandrapur.

Research Hypothesis:

1. Industries in the District of Chandrapur are established near the sector of raw material. Other small scale industries have also been developed on the basis of major industries.
2. Communications equipment is a major contributor to the development of industries in Chandrapur District. Therefore, the industries in the district have played an important role in the growth and development of rural and urban settlements in the region.
3. In view of the resources available in the Chandrapur district, there is great potential for other industries to develop-

Research Methods & Date Collection:-

The required information and data have collected from Industrial Development Corporation of Maharashtra, District Industries Center, Maharashtra Pollution Control Board, Chandrapur District Gazetteer and Chandrapur District Economic Social Commentary etc.

the source ar well as information on industrial history, is available in the census section, interviews, department books, magazines, government reports, NGO records have taken into consideration.

Statistics of the production of various minerals in Chandrapur district have collected form Bureau of mines, Ministry of Coal and Maharashtra Pollution Control Board, etc. will be collected form the organization. The list of various industries of district of different time period is prepared. Also, the ideal location of an industry based on the available resources in chandrapur district, have studied with the help of Weber's theory.

Geographical Background:-

Chandrapur district is located in the South Eastern part of the state of Maharashtra in Nagpur region. The geographical location of this district is $19^0\ 30^0$ to $20^0\ 45^0$ North Latitude and $78^0\ 46^0$ to $79^0\ 75^0$

East Longitude: The district has total 11,443 sq.km geographical land area which covers 3.72% of the total area of the state the administrative district is divided into 15 tahsils- Chandrapur, Ballarpur,Rajura, Bhadravati, Warora, Chimur, Nagbhid Brahmapuri, Sindewahi, Mul, Saoli, Gondpipari, Korpana, Pombhrna and jivti. Geographical, Chandrapur district is divided into four subdivisions – Wardha Maidan, Central Highland, Wainanga Plain and Southrn Highlands. Most of the area in the district is covered with Deccan rocks, contains minerals such as quartz, ameshist, koolsite, asate and jasper.

Historical Background of Industrialization:-

Industrial development has evolved time with technology. In addition to the scientific advancement of humankind, the industry is also spinning. The industries that were developed in the old days have changed their face with the advancement of technology. The earlier industries in chandrapur district were mainly cottage industries which were run in the house with the help of a family head, a group or an organization. But in the course of time, all these industries have closed down in the last few years. The main reasons for this are likely to be closed down due to the strategic implications of British rule or new industrial policy and comparatively new industries had been grown. The old industry was in harmony with the daily needs of humankind. But now the industry, however, does not meet the needs of the locals. The purpose of this industry, however, is solely to exploit our good nationally and internationally or to increase their export of goods.

Historical Overview of Industries in chandrapur district:-

Before 30 years, Chandrapur district was known as forest district, higher district, Gond district, tribal district, but in the past thirty years, huge factories and raw material based industries have come to his district. Therefore today the district of Chandrapur is recognized

as an industrial district, has found tools and weapons mainly in the ancient times. Caves also appear in some areas, the cave from the 1st to 8th centauries of Buddhist Ears. Cave of the Rashtrakuta period of the 6th century are prominent where in some Buddhist inscriptions of the Wakataka dynasty can be seen. Mainly, all these caves are carved by hand. From this is can be seen that those days. No metal was used as a tool there is also evidence of melting of iron in the district. As well as pottery, oil, mill, basket, making, pottery, leather industry is also very famous during this period. Soap industries in Rajasthan also appeared to some extent here. Along with the tsar silk industry in chanda district, the cotton fabric of chanda, Mary and bramhapuri worked for many years making brass utensils during the next two World Wars, the industry started to gain momentum in the financial sector and mainly during the British period, real industrial development was mainly driven by the development of coal mines.

Why Old-Fashioned Industries Developed in the District of Chandrapur?

The old-fashioned man was in a dilapidated state over the arsenal and tools of the archaeological period in the district. He used to live on the banks of the rivers. All of these men lived in the cave at that time and he had an Assyrian weapon to engulf the cave. The Erie and Wardha Rivers were major and perennial rivers in the district. Sasti finds physical caves in the river Wardha. Therefore, these people have stabilized in this place and hence the first colony has also come into being at this place. In addition, they have also created weapons for hunting. One way they have built stone killer factories in this place. That is to say, a large factory was bullit here. All these things were available in chandrapur district and hence the development if this industry can be seen in chandrapur district.

Geographical Overview of Industrial Development in the district of Chandrapur:-

The industrial sector is prominent in the economy of Maharashtra which is still number one in the country. Chandrapur district in one of the best industrial areas in Nagpur region thought Gujarat, Karnataka and Andhra Pradesh are expected to invest a lot. Due to the available minerals and perennial flowing rivers, many industries have been set up in the city area of chandrapur today. The industrial Development Corporation (MIDC) has been set up in the district to encourage industrial development and attract foreign investment directly in Maharashtra. MIDC has endeavored to boost industrial growth based in natural resource wealth in this area and today many industries are seen to be established in this backward district. Maharashtra Industrial Development Corporation (MIDC) has acquired 214.57 hectares of land in this area and has developed 46 plots at Padoli. Similarly, 154.62 hectares of land has been developed for the villages of korpana, Bhoigaon, Nandgaon, Ekody and Kawathala in the district. Western Coalfield Limited (WCl) operates 26 coal mines in the

district, where the coal is supplied to the Chandrapur Super Thermal Power Station, which is one of the largest power plants in Asia. But Chandrapur district is not known for this sole purpose. Other industries are scattered in various places in the district. Ballarpur industries Limited are located in India's number one paper factory in the district, which in about 20 km form Chandrapur city.

Industrial Settlement in Chandrapur District :-

The state government established the Maharashtra Industrial development Corporation (MIDC) in Chandrapur district at 13 places, with a modification of 3 thousand 263.76 hectares, so that the industry could be encouraged and the industry developed. In these 13 industrial development corporation, 769 plots have been stated and 113 plots of them, 303 seats have been given. Currentlym, most of the industrial activity is concentrated around Chandrapur, Warora and Brahmapuri tehsil. There is no distribution of such industries is small. The data from 2010-2011 to 2015-2016 shows that the area of Maharashtra Industrial Development Corporation in the district is seen in Chandrapur, Warora, Chimur, Nagbhid, Shindewahi, Bhadravati, Mulm Rajura, Gondpipari tahsil. But the number of industries under the Industrial Development Corporation (MIDC) is the highest in the district.

Geographical Location of Industries in the District of Chandrapur :-

According to Lord Beverage, the industrial sector is to provide space for various industries that is, determine the planned location of the industry. In recent years, German economist Alfred Weber has described the phenomenon of minimum transport cost theory given in the book "theory of the Location of Industries" published in 1909, becomes important in this regard. After studying Waver's theory with regard to industry in Chandrapur district, it is observed that large industries like Cement industry, Chandrapur, thermal power Station (CSTPS), Ballarpur Paper Mill (BILT) are concentrated in the raw material location. For cement industry, Limestone mines and coal-fired coal- fired coal mines are located 6 to 8 km in Korpana tahsil in the district. Both of these are impure raw materials and transpiration is the most expensive thing, is seems that there are established raw material based industries.

The Chandrapur Ferro Alloys project appears to have been established in the district based on 'Minimum' transportation Cost, The major raw materials for this industry are iron ore, manganese, coal and limestone which are abundantly available in the district. Therefore, the project has been established which are abundantly available in the district. Therefore, the project has been established at this place near the raw material. Also, the location of the city's thermal power station industry is concentrated on raw material basis. A large number of coal mines for this powar industry are in the district and all the coal mines in Durgapur, Rayatwari, Padmapur, Babupeth, Sasti, Majari, Ghugghus, Ballarpur and bhatadi are within

13 km Chandrapur city and the above coals supplied to this project. Significantly, Chandrapur is a city situated on the banks of two rivers. So in the same area, both the coal and the water are obtained from Chandrapur.

Classification fo Industries in Chandrapur District:-

A) Raw Material Based Industries

1. Agriculture Based Industry
2. Mineral Resource Industry
3. Forest Resource Based Industry

In Chandrapur district, agro-based industries include textile industry, silk industry, oil ghani, bamboo work. Chandrapur is an old cotton weaving industry. Many handicraft based industries are found in this area. The cotton fabrics found in the district are widely known for their excellence and durability. The rice milling industry is prominent in agriculture based industry. About 3.67% of the total employment in the district was in the factory. According to the District Industries Center, the district currently has 184 rice mills. Along with these paddy industries, the location of tasar silk industry in the cottage industry based on the agricultural industry in the district.

Chandrapur district is rich in various valuable mineral resources. Coal, iron and Limestone are important and major minerals in the district. The reserves of limestone in Rajura and Korpana tahsil are 54, 70, 00,000 tones. For this reason, the highest, cement industry in the district is 75% in korpana tahsil. L&T Cement, Manikgarh Cement, Ambuja Cement, Murali Industries and ACC industry have been started here. Coal reserves in Chandrapur tahsil are 1,22,70,00,000 tonnes. Industries like coal mines and power plant have accelerated due to increase in availability of coal in the district. Chandrapur Super Thermal power Station (CSTPS), which is the largest power plant in Asia, was established in the basis of coal. Chandrapur Ferro Alloy Project is the only public sector project in the country that is involved in manganese based production in, mineral based industries, which is abundantly available in the district. Chromium, manganese and silicon are the main Ferro alloys. Due to the government's policy of promoting mineral based industries, the entrepreneurs of the country will get better investment opportunities in Chandrapur district.

B) Classification of Industries Based on size

1. Large Scale Industry
2. Small Scale Industry
3. Cottage and Village Industry

In Chandrapur district there are 32 large industries like Paper Mill, Cement Industry, Ordnance Factory, Maharashtra Electro smelt and about 6000 small and medium sized

industries. But the distribution of this industry is uneven. Chandrapur tahsil has the highest number of industries in the district, which is 50.00% Because of the huge availability of raw materials needed for the big industry here; there is a huge incensement in the industry in large scale. As well as the limestone mines are highest in korpana tahsil of the distinct, it is seen that the large concentration of cement industry is concentrated here. The proportion of the industry here is 12.5% Also the fact that there is a paper mill factory in Ballarpur also shows a huge incensement in the number of industries In Mul, Bramhapuri and Warora tahsil, the proportion of large-scale industries is 3.12% In short, because of the large number of industries and its steady growth, the industrial development is seen in this district.

Bhadravati and Korpana tahsil, the proportion of small industry 1.98% is seen is Rajura tahsil. The root cause of the small scale industry here is the large number of industries in this area. The proportion of the small scale industries is 0.66%, 0.33% 1.32%, 1.32% respectively, in Jivati, Gondpipari, Pombhurna, saoli tahsil.

There is a disparity in the distribution of cottage industry with large and small industries are the district. The highest cottage industry in the district is based on BRICS which is 35.22%, The proportion of the fabric based industry is 32.07% the rice-based and computer-based industries are 8.17% and 3.16% respectively. The cottage industry, based on other industries is 21.38% In short; the cottage industry based on other industries in Chandrapur district is witnessing rapid growth. One of the major reasons for the growth of this industry is that the cottage industry has gained more importance in this district because of the large number of people getting employment form the cottage industry. In the district, the rural industries have a huge boost and the number of textile based village is 4.34% The number of rural industries based on rice mill is 17.30% followed by fabrication based 40% other industries based on rural

Industries 60.88% Overall, there is an incensement in the proportion of village industries in the district, which is reflected in the rapid growth in population.

Overall, the new technology in Chandrapur district has seen an incensement is rural industries and cottage industries mainly in agriculture based industries, textile based industries, polymer and chemical based industries and services industries mineral wealth-based industries, forest-based industries, engineering and energy-based industries have declined. The main reason for this is that people from rural areas are migrating to urban areas in search of jobs. Due to this, there has been a slight decline in industries and cottage industries in the rural areas. Secondly, people in rural areas do not have sufficient capital to set up industries and without knowledge of government schemes, they cannot establish industries.

Major Industries in Chandrapur District

1. Ballarpur Industries Limited (BILT)
2. Chandrapur Super Thermal Power Station (CSTPS)
3. Cement Industry
4. Chandrapur Ferro Alloy Plant
5. Rice Mill

Ballarpur Industries Limited is India's largest paper production and print paper company. Today, the paper mill is seen as the industry that employs most people in Vidarbha. There are currently 4,160 employers in the industry with 1200 regulars, 160 employers and 2800 contractors. The production of this mill is exported to various countries in European Market. More than 53% of the company's wood-free paper is available in the market. Paper production in 1953-54 increased from 5,000 tons to 30 thousand tons in 1964-65, during the year 1957-58 total sales of about 200 lakhs were made in this industry. It made a profit of Rs.60 lakh during 1964-65, the selling price was Rs, 570 lakh and the total profit is around Rs,90 lakh. In the FY 2009, Ballarpur Industries Limited (BILT) generated total revenue of rs. 2899.3 crore.

The highest cement production in Chandrapur district is 75% in Korpana tahsil. Ambuja Cement, Manikgarh Cement, Ultratech Cement and murli cement are the major manufacturers. The main reason for the high cement-based industries in the korpana area is availability of the huge stockpile. The annual cement production capacity of this industry is 3 to 5 metric tons. Musty employs are working in Manikgarh Cement Pvt. Ltd is 28.68% Whereas 25.48% in ACC Cement Pvt. Ltd and 23.53% in Ultratech Pvt. Ltd are the employability in the cement industries. The percentage of total workers based on industry is 12.54% Overall; the dependence on the cement industry in Chandrapur district is huge. The urbanization in Chandrapur district has seen a sharp incensement as the workers here migrate for employment from the rural area.

Coal Mining:-

There 35 coal mines of different capacities in the Chandrapur district. There are 28 coal mines under WCL, of which 11 is underground and 17 are open-cast mines. The total production capacity per month is 182469 metric tons. The Total coal production capacity per day is 1790 tones. But due to the daily coal mining operations, its total capacity is 186886 cubic meters per day. Durgapur, Padmapur and Bhatadi are the major coal mines in the district. The characteristics of the coal reserves here are that major coal mines in the district. The characteristics of the coal reserves here are that 50% of the coal reserves here will be available in thermal power plants, cement industry, paper mills, brick industry, limestone fertilizers and chemical industries.

The coal mines in the district are spread over the agricultural land of the farmers and 81.51% of the total coal mining area is occupied, of which 7.68% area is under forest and 9.34% area is occupied the government. Chandrapur tahsil has the highest number of coal mines tones. Durgapur, padmapur, Bhatadi, Hindustan Lalpeth, Mahakali, Rayatwari, Nandgaon and Mana are the Major Coal mines. The coal Mines cover about 43.39% of the total mining area.

Number of Pollution Categories and Industries in Chandrapur District

Due to the industrialization of Chandrapur district today there is a huge Pollution Due to the increasing category of pollution in the district, the industry is divided according to the area of red, Orange and green category. There is no pollution industry at MIDC Ghugghus and MIDC Tadail. Here the number of industries in the red category is 3 and 5 respectively. Only one industry breaks down into highly polluting category. The number of hightly polluted and hevily polluted industries in Chandrapur and Ballarpur are 2 and respectively. Also the number of industries in the red category and green category are more visible in this area. The study of industrial category in the five years 2010-1, 16 in Chandrapur district showed that our of 788 industries in 2010-11,163 increased to 197 while the number of industries in the Orange and Green category showed a decrease in the in the 2015-16 as compared to the year 2010-11. Due to the overall industrial development of the district, the problem of pollution is widespread today. According to a recent Green Peace India survey, Chandrapur district ranks fourth among the ten polluted cities in the country.

Conclusion, Problems and solutions

Industrial development in Chandrapur district depends on the old cottage industry and the industry born in the pist- independence period. The geographical condition has a big impact on the development of large and medium scale enterprises the correlation of industrial development is baded on the local raw material and many industries depend on coal raw material and forest resources. Due to the increase in availability of coal industries such as coal mines and power plants have accelerated, in the beginning. All these industries were mainly based on agriculture to other large industries like cement industry, thermal power station, Ballrpur paper mill (BILT), Paddy mill have been established in the raw material area and other industries have also been developed along with the development of this large industry.

Only the coal based industry is seen in the district. Agro-based tourism has not developed; therefore, efforts should be made to ensure that the district is fully integrated and balanced. This requires the use of new technology and machinery. It is Important to note that the use of power tools for industrialization will not compromise the balance of the

environment. By using less environmental resources it is also important to pay attention towards imbalance of environment.

Bibliography:-

- Boesch H. (1964), A Geography of world Economy, Van Nostrand Company, New York
- Alexander John W. (1950), Geography of Manufacturing: What is it? Journal of Geography 49.
- Venkaish V. (1987), Impact Development and economic growth: Implication for porvety reduction and income inequality, Industrial development for 21st Century. Pellervo Economic research Institute, Helsinki, Finland.
- Balaji Shammi (2012) women entrepreneurs: a new face of India URIM, Novembar 2012, Volume2, Issue 11,
- Dr. Dudure S.P (2016) A Study of the Absence of Permanent Coal Mine Labors at Chanda Rayatwatri Colliery, Stuated in Western Coal Field Limited Chandrapur, Maharashtra IRACST- International Journal of Commerce, Business and Management (IJCBM),ISSN:2319-2828 Vol. 5, No.3.

"EVALUATING DYNAMICS OF LAND USE AND LAND COVER FOR SUSTANABLE DEVELOPMENT OF GONDIA DISTRICT"

Dr.Arun Chaturvedi
Former Principal Scientist & Head
Division of land Use Planning

SUMMARY

Land is one of the most important natural resource in which all human activities are based. It supports all living organisms including plants as well as every primary production system such as rods, industries, storage for surface, groundwater and for communication. Agricultural development is observed worldwide, with the increasing population pressure and duman activities the demand for limited land and soil resources for agriculture and other land uses is increasing. Among all the natural resources, it is necessary to conserve land including soil, as perhaps it is the most precious and since no large scale agriculture can take place without its anchorage.

History is replete with conflicts between communities for access to land and control over its uses. Human activities have altered the Earth's environment by changing the land use and land cover (LULC) in the past several centuries (Liu et al.2005a 2005b).

Basically Land use land cover change (LULCC) is the modification of earth's terrestrial surface by human activities. Although modification of land by human to obtain livelihoods and other essentials Is been followed from thousands of years, the extent, intensity and rate of LULC changes are far grater now than were in the past. There changes are driving forces for local, regional and global le level unprecedented changes in ecosystems and environmental providing critical input to decision-making of ecological management and environmental planning for future (Dwivedi et al.2005).

There are some fundamental differences between land use land cover. Land use refers to the purpose of land used, of example, recreation, wildlife habitat or agriculture, this does not describe the land cover, for example, and can be uses for recreation in forests, shrubs, grasslands, or manicured lawns. Land cover refers to the surface cover on the land, whether vegetation, urban infrastructure, water, bare soil or other, it does not describe the use of land, and the use of land may be different for lands with the same cover type. For instance, a land cover type of forest may be used for timber production, wildlife management or recreation, it might be private land a protected watershed or a popular state park, in short, land use indicates how people are using the land, whereas land cover indicates the physical land type.

Land has various uses and these are guided by the human desire to meet certain like international commitments. Some choices of land use for the present level of 'development' where land is used for the following purpose.

- Maintenance of forest cover up to a certain specific level for ensuring ecological stability.

- Production of cereals and other food crops for ensuring food security.
- Production of fodder for the live stock that ensures supply of other food stuffs necessary for humane beings.
- Maintenance of water bodies for irrigation and supply of water for drinking and other purposes.
- Cultivation of commercial crops for use as input by other production activities.
- Extraction of minerals, and establishing industrial enterprises. (M.V.Rao et. Al 2016)

Classification of land is a method of grouping land on the basis of their basic characteristics, existing use, yield capacity and their classes as to be of use in relation to their suitability utilization as envisaged in the plan. It relates to climatic factors, soil characteristics, slope and degree of erosion, water supply and drainage and similar environmental conditions affecting land use and productivity.

Land use/land cover classification system was evolved in response to the need for the classification of landscape units to help and solve land use and land use planning problem. Land transformation is one of the important field of human induced environmental transformation, with an extensive history dating lack to antiquity.

Development in all forms is essential for all countries, for this purpose various methods are adopted which includes economic planning, spatial planning etc. Land use planning in India came with the emergence of need for planning the development of town and cities. Prior to independence, the need for planning was not high as there was limited proportion of population and resource availability, but with the passage of times and increase in population the condition of urban areas started deterioration and the need to go for development. Planning was emphasized. The population depends on land for food, fuel employment. This demand will get doubled within the next 25 to 50 years as a result of population growth. Even the places where land is still plentiful many people are deprived of its benefits.

Land use planning is the process of evaluating land and alternative patterns of land use and other physical, social and economic conditions for the purposes of selecting and adopting objective. Land use planning may be at national, regional, state, district, watershed or village and also at farm level. The techniques and even the strategy of land use planning can be very different at national level, at village level and at any level in between. The process involves the participation of the land users and several other stakeholders. It entails systematically evaluating land and alternative pattern of land use, choosing that use which meets specified goals, and drawing up of policies and programmers for the use of land.

It has always been a matter of debate if land Use Planning is possible in any democratic state where the absolute owner has absolute rights over the property. He may use the property as he likes. Thankfully, there are certain compulsions, which restrict his rights to use the property as he likes. The restrictions are imposed under various levels. Mostly in common interest of public is large. The issues of human development and ecological preservation are not exclusive but mutually inclusive in today's

world . it is ironic that land utilization which "manifests the man-environment relationship at any given time and place" is not given the same importance.

Land use planning and management is a known strategy. For achieving sustainable development. A properly land use plan based on sound scientific and technical procedures, and land utilization strategies can summarize rationally the future demands. The is accompanied by a strong planning process, where communities and various stakeholders are involved, can strengthen the decision making process on allocation and utilization of land resources.

There is bound to be conflict over land use. The demands for arable land, grazing, forestry, wildlife , tourism and urban development are more than the available land resources. In the development countries, these demands are increasing day by day. Land use planning helps in choosing the best option for land and water use, economic and social situations. Lt's purpose is to use and practice the land that will meet the needs of the people during the security of resources for the future.

"Sustainable development is the management and conservation of the natural resources base and the orientation of technological and institutional change in such a manner so as to ensure the attainment and continues satisfaction of human needs for the present and future generations. Such sustainable development (in the agriculture, forestry and fisheries sectors) conserves land, water, plant and animal genetic resources, is environmentally non-degrading, technically appropriate, economically viable and socially acceptable" (Document CL 94/6 94th session of the FAO Council,1988)

Sustainable land use planning helps to meet the needs of the present and at the same time it conserves resources for future generation. This requires a combination of production and conservation, the production of the goods now needed by the people, with the conservation of the nature. A community that destroys its land also destroys its future. Land use must be planed for the whole community because the conservation of soil, water and land resources is often beyond the means of individual land users.

Study area

Gondia district was separated from old bhandara district on 1st Mat 1999 and it is situated on the northeast border of the Maharashtra state. Waingangā is the main River of the region along with wagh River as an important tributary, climate is basically Monsoon having rhythmic change according to the season. In the hilly areas light and gravel soil is prominent while loamy soil is found in the river basis. The district is called as a "District of Tank" because many large and small Tanks are situated here. Variety of vegetation and plants are in the forest area of the district National highway No.6 is passing through the district and is located in Mumbai- Howarah railways. National level airport is also located in birsi Village. In the district total number of tehsils are eight namely Gondia, Goregaon, Tiroda, Arjuni, moregao, Deori, Amgaon, Salekas and Sadak, Arjuni.

The total Geographical area of Gondia district is 5,21,271.69 ha. And it lies between $20^0$39' N to 21^0 38' N latitude and $79^0$27 east to 80^0 42' E longitude.

Chaptar -V-

This chapter is devoted to Land Use and Land Cover dynamics of past 40 years.

- Spatio – temporal analysis of land use and land cover by using village wise attribute data for 40 year (1981 to 2011) has been studied. In this land use and land cover, area occupied by Forest, Net Sown Area, Cultivable waste, Area Not Available for Cultivation, Irrigated Area have been analyses. In this study it is observed that from 1981 to 2011, the forest area is increased by 6.76 per cent and the Net sown Area is increased by 2.97 per cent. The cultural waste Land is increased by 0.76 per cent and the land which is not available for cultivation area decreased by 5.53 per cent. The irrigated area is increased by 4.61 per cent.
- In this chapter both positive and negative changes are calculated from 1981 to 2011 and the zone wise maps are also prepared. Zone wise maps are also correlated with the soil and its parameter, land capability and suitability.
- A detailed study through sample survey of selected villages of gondia district was conducted in total 6 Villages, through door to door survey from the area which is having different characteristics and total 1677 interviews were conducted by preparing a scheduled questionnaire in which following information was gathered.
- Total population of a village, sex structure of population, literary structure, caste and occupational structure has been studied. On the other than this number of farmers of different categories according to land holding, productivity analysis, area under various crops, productivity of Rice, Tur gram are studied, Electricity facility and BPL holders of sample villages is also described.
- The income of the villagers is also discussed. Area under fallow land is also described in this chapter. In this survey, data is collected for the present year and also before 10 years to showcase change analysis.
- On the basis of the study of above aspects conclusion have been drawn and efforts have been made to explain them. The resource consumption pattern by the population of district has been analyzed through perception studies.

Chapter VI :-

In this chapter land Use Plan for the study area is explained. The land Use Plan of the study area is created using different parameters. The parameters are Development of agriculture, Development Forest resources. Development of Wasteland area, area included.

For Land Use Plan the existing land use and land cover pattern is studied and is correlated with the attribute data. The land capability of the district is also explained. The and suitability for the paddy. Tur and Gram was analyzed in this chapter.

The land management units which are most important parameters of this plan are also studied and prepared with the help of existing land use soils maps. The land management units are also correlated with the land use classes.

For agriculture development the productivity analysis is calculated. For forest development the NTFP production is also studied and the previous study of the district on forest resources is studied.

In land use planning for sustainable development following categories are and

Economic development

- Intensive Agriculture Zone
- Agriculture with Conservation Approach
- Agriculture with special management
- Commercial Agriculture
- New markets and Industrial Zone
- Social Forestry Zone
- Wasteland plantation

Environmental Development

- Afforestation
- Extensive forest management zone for soil conservation approach
- Water protected area
- Flood plain vegetation
- Zone for fishing

Social Development

- Health Centers and Education centers

  These categories are made on the basis of different Land use, LMU, soil Characteristics soil erosion, slops, forest zone, cultivated area, industries, Agro industries, Irrigated Area, Population and infrastructure facilities. On the basis of all these different categories, the Land Use Plan for sustainable development is prepared.

Population growth and Socio-Economic imbalance

Naveen Chourasiya

Govt. College Bichhua, Distt. Chhindwara (M.P.)

The people are important to develop the economy and society. The people make and use resources and are themselves resources with varying quality. 'Resources' 'calamities' and disasters' are all meaningful only in relation to human beings. Their number; distribution; growth and characteristics or qualities provide the basic background and understanding and appreciating all aspects of the environment. Human being are producers and consumers of earth's resources. Therefore, it is important to know how many people are there in a country, where do they live, how and why their numbers are increasing and what are their characteristics.

Population growth –Growth of population refers to the change in the numbers of inhabitants of a country during a specific period of time .The growth of population is affected by the birth rate, death rate and by the large scale of migration .

Birth rate is a number of live births per thousand persons in a year. It is a major component of growth because in India, birth rates have always been highest than death rates.

Death rate is a number of death per thousand persons in a year. The main cause of the rate of growth of the Indian population has been the rapid decline in death rates.

Migration is the movement of people across regions and territories. Migration can be internal or International

At present the world's population has crossed a 7 billion mark. China is the most populous country. India and china account for 37% of the world's population. 60% of the world population is living in Asia, 15%in Africa,13.5% America,11% in Europe and 0.5% in Oceania.

The growth in population of India has rapidly increased during the last century. In particular, it has gone up from about 400 million in 1961 to over a billion people in the year 2011 .In these 50 years, the country has added more than 700 million people which makes the grown rate alarming . It is estimated that at this rate of growth in population, the country will double its population in next 36 years. Every sixth person on the earth is an Indian.

Population is an asset for the country rather than a liability . It is an important indicator of the Socio-Economic strength of a country. Population becomes human capital when there is investment made in education, health and skill development. Thus, investment

in human capital yields highest return, therefore in the entire process of development, the focus should be on the well-being of human being .

The aim of this paper is to analyze the impact of socio-economic factors on the infant mortality in the urban fringe villages of Chhattisgarh.

The study is based on primary data. Information regarding ten cities namely Raipur, Bhilai, Durg, Rarnandgaon, Bilaspur, Korba, Ambikapur, Raigarh, Jagdalpur and Dhamtari are covered in this study. Primary data have been collected from 40 fringe villages in the region. Four villages from each of these ten cities have been purposive and randomly selected. Information from all the 1835 mothers, from all the 40 selected villages, who have delivered a baby or whose child died or child birth and death both occurred during the year 2011, have been obtained by schedules.

All the 1835 mothers gave birth to 1871 live and 16 still babies, and in all 137 infants died in the year 2011. The infant mortality rate in the fringe areas was 75.65 per thousand. A highest IMR of 109.09 per thousand in Ambikapur fringe areas is reported because of low economic status and low level of education particularly among the tribal community. The perinatal, neonatal, and post-neonatal mortality rates in the fringe areas have been 31.00, 58.26, and 14.97 per thousand respectively. The mortality rate of male children (74.92 per thousand) has slightly more than female children (71.58 per thousand). The IMR for female infants exceeded, particularly in Ambikapur, Bhilainagar, Raipur, Raigarh and Jagdalpur cities than the male infants.

The determinants namely socio-economic factors which include types of family, size of family, caste, parents level of education ,occupational structure of parents and Family income have considerably affected the infant mortality in the city fringes of Chhattisgarh.

The effects of overpopulation and the depletion of natural resources is inter related. Depletion of natural sources is one of the most critical problems the world community is facing, especially after the sharp increase in the world population during the last century. Each person has a number of vital and non vital requirements all of which require consumption of the earth's resources. As natural resources are becoming scarcer, production ventures shrinking. However, in an overpopulated society, demands sore. This causes prices of goods to rise in a bid to balance the demand and supply chain. An extreme scenario of critically depleted natural resources combined with an extremely high consumer base is scarcity. It this case, production becomes so low it cannot even cover the needs of those consumers accepting extraordinary prices. In overpopulated societies, the number of people available and willing to work is high. However, if the local economy doesn't have the ability

to expand and include the ever-growing work force, then the result can be widespread unemployment.

Urbanization

Urbanization is a process that leads to the growth of cities due to industrialization and economic development and that leads to urban - specific changes in specialization, labour division and human behaviours. Due to uncontrolled urbanization in India and abroad, environmental degradation has been occurring very rapidly and causing many problems like shortages of housing, worsening water quality, excessive air pollution, noise, dust and heat and the problems of disposal of solid wastes and hazardous wastes. Due to the movement of people from rural to urban areas. Urbanization happens because of the increase in the extent and density of urban areas and low production of farm produce. The most important issues are climate changes, freshwater scarcity, deforestation, and fresh water pollution and population growth. These problems are very complex and their interactions are hard to define and solve. The attention to reduce the generation of solid waste at the sources through mandatory standards and regulation fee and tax incentives and education and voluntary compliance. Failure of governance in today's cities has resulted in the growth of informal settlements and slums that constitute unhealthy living and working environment and it may overcome by the literacy, advance agriculture and sustainable industrial development with providing basic needs to rural in their own location or areas.

The practice of growing plants and rearing animals for food, clothing and other useful product is called agriculture. In order to provide food for the large population, food production has become very important. In modern agriculture tons of artificial fertilizers is used to improve the fertility of land and to obtain a better yield of crop. Excess of nitrates used as fertilizers seep into the ground water or are carried into ponds or lakes. On entering the drinking water system these substances can lead to various health hazards. Pesticides are widely used to control household pests and agricultural pests can also become dangerous water pollutants. Herbicides are used to clear off the weeds. These herbicides and pesticides are carried by winds or percolate through water and are finally washed down the river and streams and enter the sea. Here, these become incorporated into the producers and than along the food chain these accumulate in large quantities in the bodies of higher animals and plants

Urbanization Process has taken a rapid growth in India. Undoubtedly, it is a good sign for development of the country, but at the same time, it has been a serious threat to the urban

people Increasing population growth has increased urban problems in Sagar city Topsided urbanization, faulty urban planning and urbanization with poor economic base and without having functional categories led to some basic problems like housing slums, transport, water supply and sanitation, water pollution and air pollution inadequate provision for social infrastructure etc. in the city. So for combating. With the overcrowding in the city, the number of slums and squatter settlement has also increased. The slums has also become overcrowded and lock sanitary facilities where deterioration of social environment and spread of disease is a common feature. Thus there is need of taking strict measures to rehabilitate slums dwellers to better living areas while making planning strategy for the city. This paper is a task to point out the problems faced by the slum dwellers some suggestions have also been given at the end to overcome the problems.

Conclusion-

This paper examines the long term effect of additional people in developed countries on the standard of living. The tool used is the mathematical theory of economic growth, and the key element in the analysis is the ways that technical change responds to population size, density, and growth. This book places the central fact of economic development in the long run--productivity change--into neo-classical grwoth theory, to show the influence of population in a way that is consistent with the observed facts about the overall relationship between population and economic growth, as well as with the facts about other linkages within the overall model. The book can serve as a practical guide to policy decisions on population growth--births, deaths, and immigration--in larger developed countries such as the US or West Germany. Only underlying 'real' variables--labor, capital, technology, output, income, and education--are used in the model. In between the fixity of capital resources in a given time span and the common sense knowledge that more people exist and in better circumstances than before, something is clearly left out. Technical knowledge is what has been left out of the equation. New technology more than compensates for the reduction in resources caused by a larger number of people. The level of technology that is combined with labor and capital in the production function must be influenced by population directly or indirectly, rather than being an exogenous function of time's passage as has been thought traditionally in growth theory. The model indicates that, at reasonable discount rates, faster population growth has a higher present value than does slower population growth.

Reference-

Bas, D. D., (`1994), "Commentary on the Constitution of India", Vol.E, Universal Book Traders, Delhi

www.hindi.indiawaterportal.org/Node

Bakshi, P.M (1992), "The Environment (Protection) Act 1986 '', Indian Law Institute, New Delhi

Diwan, P. (1987),"Environment Protection,Problems,Politics,Administration & Law", Deep & Deep Publications, New Delhi

Singh,Surdip, U(2005), Macmillan India Ltd., New Delhi

Upadhaya, J. J. R., "Environmental Laws",4th Edition, (2005), Central Law Agency, Allahabad

"Survey of Environment", (1994-2004), The Hindu

- Singh,Surdip, U(2005), Macmillan India Ltd., New Delhi

पर्यावरण पतन और मानवीय स्वास्थ्य

कु. रश्मि नागवंशी
सहायक प्राध्यापक (भौतिकशास्त्र)
रा.सि.शा.क.महा.वि. छिन्दवाड़ा

पर्यावरण (Environment) दो शब्दो से परि तथा आवरण से मिलाकर बना है जिसमे परिशब्दत का आशय घेरे या ढके हुण से होता है पर्यावरण से आशय मानव अथवा किसी जीवधारी के चारो और पाये जाने वाले उस आवरण से है जिसमे रहकर वह जीव विशेष रूप से अपना जीवन यापन करता है

इस संदर्भ मे ए. जी. टान्सले (। ळ ज्ंदेसमअ) के शब्दों में प्रभावकारी दशाओं का वह सम्पूर्ण योग जिसमे जीव धारी निवास करते ह पर्यावरण कहलाता है।

पर्यावरण प्रदूषणः– पर्यावरण का वह कोई भी परिवर्तन जो पर्यावरण की गिरावट में योगदान देता है पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है कुछ वस्तुओं का गलत समय पर गलत मात्राओं में तथा गलत स्थानों पर पाया जाना पर्यावरण प्रदूषण है

ओडल के शब्दां मे – हवा जल तथा मृदा के भौतिक रासायनिक एवं जैविक गुणो के किसी ऐसे अवांछनीय परिवर्तन को जिससे मनुष्य स्वयं को तथा सम्पूर्ण परिवेश के प्राकृतिक जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों को हानि पहुँचाता है प्रदूषण कहते है।

एम. वाल्टर के अनुसार – प्रदूषण मानवीय गति विधियों के सह– उत्पाृद होते है जो पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव डालते है डेसमान के शब्दों में – उस दशा या स्थिति को प्रदूषण कहते है जब मावन द्वारा पर्यावरण में विभिन्न तत्वों एवं ऊर्जा का उस सीमा तक साद्रण या संग्रहण हो जाए पारिस्थितिक तंत्र द्वारा आत्मसात करने की क्षमता से अधिक हो।

प्रदूषण उत्पन्न करने वाले पदार्थ प्रदूषक कहलाते है अतः पर्यावरण प्रदूषक को जल वायु तथा मिट्टी के अतिरिक्त अवयवों अथवा प्रदूषक तत्वों का प्रतिफल माना जा सकता है जो पर्यावरण के प्राकृतिक गुणा पर प्रतिकुल का प्रभाव डालतें है।

पर्यावरण प्रद्षण पर्यावरण अवनयन की अतिंम सीमा होती है जब पर्यावरण अवनयन इतना अधिक हो जाता है कि वह विभिन्न जीव जंतुओ के लिए विशेष रूप से मानव के लिए हानिकारक व जानलेवा हो जाता है तो उसे पर्यावरण प्रदूषण का जाता है।

प्रदूषण के स्वणरूप के आधार पर निम्नालिखित दो प्रकार का पर्यावरणीय प्रदूषण होता है।

1. भौतिक या प्राकृतिक प्रदूषण– भौतिक प्रदूषण पर्यावरण के भौतिक घटको – जल, वायु, मृदा आदि में पाया जाता है इसी आधार पर इन्हें जल प्रदूषण वायुप्रदूषण एवं भूमि प्रदूषण कहा जाता है।

2. सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रदूषण सामाजिक एवं सास्कृतिक प्रदूषण के अंतर्गत आर्थिक प्रदूषण धार्मिक, प्रदूषण सामाजिक प्रदूषण इत्याादि प्रकार के प्रदूषण सम्मिलित किये जाते है वायु

प्रदूषण एवं मानवीय स्वास्थ्य :–

पर्यावरण की समस्याओं में वायु प्रदूषण प्राथमिक महत्व का है क्योकि वायु की गुणवत्ता के ह्रास या वायु प्रदूषण से मानव ही नही वरन भू– पटल के समस्त जैव अस्तिव का प्रश्न जुडा है वायु एक सर्वत्र सुलभ संसाधन है जिसके शुद्धिकरण कार्य अपेक्षाकृत कठिन तथा मंहगा होता है अतः सार्वजनिक स्वास्थ्य के दृष्टि कोण से वायु प्रदूषण अन्यय सभी प्रदूषणों से अधिक हानिकारक होता है साथ ही इसके प्रभाव भी अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्रों में अनुभव किये जाते है

1. दहन – मानव अपने विभिन्न क्रियाकलापों में कोयला तथा पेट्रोलियम पदार्थों का अधिकाधिक उपयोग कर रहा है। इससे वायुमण्डल में कार्बन मोनो–ऑक्साइड तथा सल्फर–डाई–आक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। वायुयानों, जलयानों, सड़क एवं रेल वाहनों पट्रोल एवं डीजल चालक मशीनों तथा कोयला जलाने वाली भट्टियों में दहन से जो धुआँ निकलता है। उससे कार्बन–डाई–आक्साइड के अतिरिक्त सल्फर–डाई–आक्साइड तथा ओजोन जैसी विषाक्त गैस निकलती है जो वायु का प्रदूषित करती है। इसके अतिरिक्त अधजले हाइड्रोकार्बन व नाइट्रोजन आक्साइड कभी दहन क्रिया में निकलते है। जो सूर्य के प्रकाश से क्रिया करके परोक्सी एसीटाइल नाइट्रेट ;च्ण्।ण्छद्ध गैस बनाते है। इससे वायु के सर्वप्रथम प्रदूषणों में से एक माना जाता है। मोटर वाहनों के उत्सर्जन से निकली गैस एवं विषाक्त पदार्थ स्वच्छ वायु को प्रदूषित एवं विषाक्त बनाते है। नगरों तथा महानगरों में होने वाले कुल वायु प्रदूषण का 50 से 60 प्रतिशत भाग मोटर वाहनों से होता है।

धातु कर्मा प्रक्रम – विभिन्न धातुकर्मी प्रक्रमों में धूल तथा धुआँ निकलता है। इनमें सीसा, क्रोमियम, बेरीलियम, निकिल, आर्सेनिक, वेनेल्यिम तथा जस्ता जैसे तत्व उपस्थित रहते है। ये वायु प्रदूषण का कारण बनते है।

औद्योगिक अपशिष्ट :– मानव निर्मित उद्योगों में पेट्रो रसायन रासायनिक उर्वरक, सीमेंट, काँच तथा कागज आदि उद्योग मुख्य रूप से वायु प्रदूषण के लिए उत्तरदायी होते है। इन उद्योगों से उतसर्जित प्रदूषण गैसों में कार्बन मोनो आक्साइड तथा नाइट्रोजन आक्साइड मुख्य है। विभिन्न प्रकार के हाइड्रोकार्बन, धातुकण, विभिन्न फ्लोराइड तथा रेडियो सक्रिय पदार्थ भी प्रदूषण तत्वों के रूप में वाय में पहुँचते है। तथा वायु प्रदूषण उत्पन्न करते है।

परमाणु विस्फोट :– परमाणु बमों के विस्फोट से भयंकर एवं विनाशककारी रेडियो धर्मी कण तथा रेडियों धर्मी विकिरण उत्पन्न होते है जो वायु को प्रदूषण करते है। ये रेडियो धर्मी कण वर्षा के जल के साथ मिलकर भूपटल की घास तथा अन्य वनस्पति पर गिरते है। जब इस घास और वनस्पति को दुधारू पशु खाते है। तो इनके शरीर व दूध में रेडियों धर्मी तत्वों की मात्रा पहुँच जाती है। साथ ही वायु में उपस्थित रेडियो धर्मी तत्वों का मानव शरीर में सांस द्वारा अवशोषण होता है। जिससे असामयिक वृद्धावस्था, हड्डी कैंसर, थाइराइड कैंसर, त्वचा कैंसर, फेफड़ों का कैंसर विभिन्न मांनसिक रोग उत्पन्न होते है।

आणविक पदूषण :– विध्वंसकारी पदार्थों में रेडियोधर्मी पदार्थ सर्वाधिक विषकारी होते है। जैविक विषों की तुलना में रेडिया धर्मी पदार्थों में हानिकारक अधिक उच्च होते है। आणविक प्रदूषण प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाला एक ऐसी पर्यावरणीय प्रदूषण है। जो रेडियोधर्मी खनिजों के विखण्डन के समय किसी कारण वश रेडियोधर्मिता के विकरण वायुमंडल में मिल जाने से होता है। अतः रेडियोधर्मिता से उत्पन्न प्रदूषण रेडियोंधर्मिता या आणविक प्रदूषण कहलाता है। यह प्रदूषण परमाणु विद्युतग्रहों तथा परमाणु विस्फोटकों व परमाणु उद्योगों तथा शोधों में आणविक खनिजों का असावधानी पूर्वक उपयोग अधिक प्रदूषण उत्पन्न करता है। आणविक खनिजों का असावधानी पूर्वक उपयोग अधिक प्रदूषण उत्पन्न करता है। आणविक विकरण से रेडियोंधर्मी तत्वों के अति सूक्ष्म कण सैकड़ों वर्षों तक पर्यावरण में बने रहे है। यह ऐसा प्रदूषण है। जिसमें पृथ्वी पर समस्त मानव जाति के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। रेडियोधर्मिता मानव के शरीर की कोशिकाओं तथा तंतुओं पर सीधे क्रिया करती है। जिसके दुष्प्रभाव से कैंसर जैसी भयानक बीमारी होने का खतरा बढ़ जाता है। एक्सरे मशीनों पर कार्य करने वाले, घड़ियों के डायल पर रेडियम पेंट करने वाले ,आणविक भट्टी पर कार्य करने वाले व्यक्तियों में कैंसर होता है। साथ ही त्वचा तथा श्वास की अनेक बीमानियों एवं इसके दूष्प्रभाव गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। आणविक प्रभाव से मानव शरीर के गुण सुत्रों में अनचाहे परिवर्तन होने पर विकलांग तथा अपंग बच्चे पैदा होते है।

ध्वनि प्रद्षण :– ध्वनि प्रदूषण से मशानों की आवाज, लाऊडस्पीकर, विमान, यातायात के समस्त साधन है। मानव शरीर पर शोर के प्रभाव का मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकुल प्रभाव डालता है ध्वनि 80 डेसीबल पर मनुष्य में अस्वस्थतों तथा बेचेनी पैदा करती है। ध्वनि प्रदूषण के कारण मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव हमें बहरापन, चिडचिडापन, उच्च रक्तचाप एवं हृदय की बीमारियों आदि के रूप में देखने को मिलते हैं ।

ग्रीन हाऊस प्रभाव :– एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी ग्रह या उपग्रह के वातावरण में मौजूद कुछ गैसें उस ग्रह या उपग्रह के वातावरण क ताप को अपेक्षाकृत अधिक बनाने में मद्द करती है इन गैसों को ग्रीन हाऊस गैसें कहते है। कार्बनडाई आक्साइड जल– वाष्प मिथेन आदि। ग्रीन हाऊस प्रभाव नहीं होता तो शायद पृथ्वी पर जीवन भी नहीं होता सूर्य की लघु तरंग विकिरण पृथ्वी के धरातल पर शीघ्रता से प्रवेश कर जाती है जबकि पृथ्वी से दीर्घ तरंग विकिरण का वायुमंडल में विशेषकर मेघो की उपस्थिति के कारण अवरोध होता है। इसी तथ्य का परिणाम है कि पृथ्वी के वायुमंडल के तापन में वृद्धि होती है।

समताप मण्डल में स्थित ओजोन परत समस्त भूमण्डल के लिए एक सुरक्षा कवच का काम करती है। यह सूर्य की हानिकारक पराबैगनी किरणों को ऊपरी वायुमण्डल में ही रोक लेती है उन्हें पृथ्वी की सतह पर नहीं पहुँचने देती पराबैगनी विकरण मनुष्य, जीव जन्तुओं तथा वनस्पतियों के लिए अत्यंत हानिकारक है। पराबैंगनी किरण से त्वचा का कैंसर होने की संभावना रहती है। यह मनुष्य और पशुओं की डी.एन.ए. संरचना में बदलाव लाती है। इसके कारण आँखों में मोतियाबिन्द की बीमारी उत्पन्न होती है। यदि समय से उपचार ना किया जाए तो मनुष्य अंधा भी हो जाता है। पराबैंगनी किरण

मनुष्य की प्रतिरोध क्षमता को कम करती है। जिसके कारण वह कई संक्रामक रोगों को शिकार हो जाता है। यदि गर्भवस्थी महिला इसके संपूर्क में आ जाए तो गर्भवस्थ शिशु को अपूर्णीय क्षति हो जाती है।

अधिकर पर्यावरण संकट जैसे –भूकम्प, सुनामी, ज्वालामुखी ,भू–स्खलन ,चक्रवात ,टाइकेन वज्रपात, बाढ़ ,सूखा तथा महामारी यह देखा गया है कि मनुष्य इन प्राकृतिक संकट को अनदेखा कर देता है जिससे संकट निरन्तर बढ़ता जाता है। और विनाश का कारण बन जाता है । सन् 2001 मे भूकम्प के बाद भी भुज का विकास नही रूका यह 2006 तथा 2007 मे पुनः भूकम्प के झटके के बाद भी जारो रहा।

आपदा एक अनपेक्षित घटना है, जो की ऐसी ताकतो से घटित होती है जो मानव के नियन्त्रण मे नही हो पाती। यह कुछ समय के लिये घटित होती है और मनुष्य मे नुकसान का कारण बन जाती है इससे निपटने के लिये हमे समान्य दी जाने वाली वैद्यानिक सेवाओ की अपेक्षा प्रयत्न करने पड़ते है। आपदाओं कि उत्त्पति का सम्बन्ध मानव कियाकलापो से भी है कुछ मानवीय गतिविधियाँ तो सीधे रूप से इन आपदाओ के लिये उत्तरदायी है। जैसे भोपाल गैस त्रासदी ,चेर्नोबिल नाभिकिय आपदा ,युद्ध ,सी. एफ. सी. (क्लोरो फ्लोरो कार्बन) गैस वायुमण्डल मे छोड़ना तथा ग्रीन हाउस गैसे , ध्वनि ,वायु ,जल तथा मिटटी सम्बन्धी पर्यावरण प्रदुषण आदि । मानव गतिविधी भी परोक्ष रूप से आपदा को बढ़ावा देती है। वनों को काटने के वजह से भू–स्खलन और बाढ़ जैसे प्रभाव सामने आते है। जिनकी वजह से आपदा परोक्ष रूप म प्रभावित होती है। यह मानना है पिछले कुछ सालो से मानवकृत आपदाओं की संख्या और परिणाम दोनो में ही वृद्धि हुई है और कई स्तर पर ऐसी घटनाओं से बचने के भर सक प्रयत्न किये जा रहे है। लेकिन इस सन्दर्भ में अब तक सफलता नाम मात्र ही हाथ लगी है। मानवकृत आपदा में से कुछ का निवारण संभव है प्राकृतिक आपदा पर रोक लगाने की सम्भावना बहुत ही कम है। इसलिए सबसे अच्छा तरीका है इसके असर को कम करना और इनका प्रबन्धन करना है।

मानव भौगोलिक अध्ययन का केन्द्र बिन्दु है, इसलिए किसी स्थान विशेष के भौगोलिक अध्ययन में जनसंख्या एवं उसकी विशेषताओं का अध्ययन एक महत्वपूर्ण पक्ष होता है। किसी भी क्षेत्र के संतुलित व सर्वांगीण विकास में उस क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या का सबसे प्रमुख योगदान होता है। इसलिए किसी क्षेत्र की जनसंख्या का मूल्यांकन एक महत्वपूर्ण पक्ष है, क्योंकि किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाली जनसंख्या उसके सम्पूर्ण भौगोलिक व्यक्तित्व की द्योतक होती है।

किसी क्षेत्र विशेष में जनसंख्या में अप्रत्याशित वृद्धि होती है, तो यही जनसंख्या उस क्षेत्र विशेष में विभिन्न प्रकार की समस्याओं को जन्म देती है। वर्तमान समय में विश्व के अधिकांश विकासशील देश जनसंख्या विस्फोट से आक्रांत है। विशेषकर विश्व के विकासशील राष्ट्रों के विकास में यह जनसंख्या विस्फोट बाधक सिद्ध हो रहा है। जनसंख्या के निरन्तर बढ़ते दबाव के कारण जहाँ एक तरफ गरीबी, खाद्य संकट, कुपोषण, अशिक्षा, बेरोजगारी जैसी समस्याएँ जन्म ले रही हैं, वहीं दूसरी तरफ पर्यावरण प्रदूषण, सामाजिक सुरक्षा एवं पारिस्थैतिकी सन्तुलन भी प्रभावित हो रहा है। चूंकि मानव संसाधन का प्रणेता, परिष्कारकर्ता एवं उपभोक्ता होते हुये स्वयं एक संसाधन है तथा मानव अपनी बौद्धिक क्षमता,

कार्यशीलता के बल पर क्षेत्र के संसाधनों का उपयोग, अवस्थापनात्मक तत्वों के विकास को बढ़ावा देता है, इसलिए किसी भी क्षेत्र के समन्वित विकास के लिए उस क्षेत्र के जनसमुदाय की संख्या उसकी वृद्धि तथा क्षेत्रीय वितरण का विश्लेशण किसी भी क्षेत्र के विकास प्रतिरूप को समझने के लिए आवश्यक होता हैं । अतः जनसंख्या में वृद्धि एवं ह्रास सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्रभावित करती है। बढ़ती हुयी जनसंख्या के अनुरूप विकास नहीं होगा तो मानव के जीवन स्तर में क्रमशः ह्रास होगा। इस संदर्भ में जनसंख्या वृद्धि का अध्ययन समसामयिक एवं प्रासंगिक है।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में अध्ययनार्थ चयनित क्षेत्र सरयूपार मैदान में जनसंख्या वृद्धि का स्थानिक –क्षेत्रीय प्रतिरूप का अध्ययन किया गया है। सरयूपार मैदान कृषिप्रधान क्षेत्र है। उपयुक्त भौगोलिक परिस्थितियों के कारण यह क्षेत्र सदैव ही मानव बसाव हेतु अनुकूल रहा है, जिससे यह क्षेत्र सघन जनसंख्या वाला क्षेत्र रहा है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि एवं तत्जनित समस्याओं के कारण इस क्षेत्र का अपेक्षित आर्थिक विकास नहीं हो पाया। वर्ष 1901 में इस क्षेत्र की कुल जनसंख्या 7237028 थी, जो वर्ष 2011 में बढ़कर 30717708 हो गयी। अतः विगत 110 वर्षों में क्षेत्र की जनसंख्या में 324.45 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अध्ययन क्षेत्र में प्राकृतिक आपदाओं, आर्थिक विपन्नता एवं महामारी आदि के कारण वर्ष 1901 से 1961 तक जनसंख्या वृद्धि की दर अतिन्यून रही है। वर्ष 1971 (15.048 प्रतिशत के पश्चात् क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक एवं भौतिक कारकों के विकास के कारण जनसंख्या में तीव्रगति से वृद्धि हुयी है, यह वृद्धि दरवर्ष 1991 तक लगातार रही है, लेकिन वर्ष 2001 एवं 2011 में 24.66 प्रतिशत एवं 23.93 प्रतिशत वृद्धि के साथ वृद्धि दर में क्रमशः 0.28 प्रतिशत एवं 0.95 प्रतिशत की कमी हुयी है। इस प्रकार क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि के कारण इसका भारी दबाव है। जनसंख्या वृद्धि की तुलना में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं एवं मानव उपयोग में लाये जाने के कारण ह्रासोन्मुख हैं तथा जनसंख्या एवं संसाधन के सम्बन्ध के अनुसार जनाधिक्य की स्थिति है। आवश्यकता है कि जनसंख्या वृद्धि दर पर नियंत्रण किया जाय तथा प्राकृतिक संसाधनों की न केवल संसाधनता बढ़ायी जाय वरन् उसका तार्किक एवं विवकेपूर्ण उपयोग किया जाए।

वास्तव में पर्यावरण प्रदूषण एवं पारिस्थितिक असंतुलन का मूल कारण मानव जनसंख्या में बृद्धि हैं क्योंकि ये विस्तार नगरीकरण,औद्योगीकरण बढती हुई जनसंख्या का प्रतिफल हैं। कहा जाता हैं कि ''अधिक जनसंख्या गरीबी को बुलावा देती है और गरीबी प्रदूषण को जन्म देती हैं। विश्व में जनसंख्या विस्फोट ने प्रकृति से विरासत में मिले बहुमूल्य पदार्थ – वायु वनस्पति और जल को कम करने के साथ–साथ उन्हें प्रदूषित ही नही किया बल्कि पूरी प्रकृति के चक्र को ही अस्त–व्यस्त कर दिया है । निर्धन देश बढ़ती जनसंख्या के लिये भोजन वस्त्र और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं को जुटाने के लिये संसाधनों का असंतुलित दोहन करने के लिये बाध्य है । जिसका कुप्रभाव पर्यावरण पर पड़ता हैं । जनसंख्या बृद्धि से निवास स्थान तथा स्वास्थ्य सेवा में अपर्याप्तता होने लगती हैं । इसी तरह कृषि भूमि में कमी , वन का दहन , बेरोजगारी की समस्या एवं निर्धनता का कुप्रभाव पर्यावरण पर पड़ता हैं । नदियों के किनारे रासायनिक कारखाने बनने से नदी का पानी प्रदूषित हो रहा हैं । वाहनों की संख्या बढ़ने से ,डीजल,पेट्रोल के उपयोग से निकलने वाले धुएँ से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा हैं । पर्यावरण को

एक नया खतरा प्लास्टिक व पॉलिथिन की थैलियों से हो गया हैं । ये नदी नाले , व भूमि को खराब कर रही हैं । बढ़ते शोर से पर्यावरण में ध्वनि प्रदूषण हो रहा हैं । आज पर्यावरण के बिगड़ते हालात के प्रति सत्त सावधान रहने की आवश्यकता हैं ।

भारत एक विकासशील देश है, जहाँ अधिकांश जनसंख्या कृषक के रूप में निवास करती है। भारत आज भी कई स्थितियों में मानसून पर निर्भर है। जलावायु का कृषि क्षेत्र एवं उस पर निर्भर लोगो पर विशिष्ट रूप से प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में जलवायु में हो रहे अनियमित परिवर्तन से मौसम की अनियमितायें नागरिकों के जीवन को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।इस जलवायविक परिर्वतन के पीछे अनेक कारण हैं, जिनमें कुछ प्रकृतिजन्य है, तो कुछ तो मनुष्य द्वारा स्वंय निर्मित किये गये है, प्रकृति में उपलब्ध समस्त प्रकार के प्रदूषण जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण हैं, वहीं भारत जैसे राष्ट्र में मूलभूत ढाँचा या अवसंरचना अपर्याप्त होने के कारण भी जटिल मौसमी समस्याओं से निपटने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न समस्याओं के निदान हेतु निम्न प्रयास किए जा सकतें हैं–

- पर्यावरणिक स्वास्थ्य से संबंधित मुद्दो, सामाजिक स्वास्थ्य विषयों पर एकीकृत नीतिगत दिशा–निर्देशों को भारत में तीव्रता से प्रसारित दिशा–निर्देशों को भारत में तीव्रता से प्रसारित किए जाने की आवश्यता है।
- अंतर्राष्ट्रीय वार्ताओ में जलवायु परिवर्तन एवे जैव विविध्ता से जुडे हुए प्रश्नों को सम्मिलित कर प्राथमिक तौर पर विचार किया जाना चाहिए।
- किसी भी प्रकार की परियोजना एवं पर्यावरण संबंधी निर्णय लेते समय कठोरता से नियमों का पालन किया जाना चाहिए।
- जैव विविधता एवं वन्यजीव संरक्षण को प्राथमिकता –प्रदान कर जलवायु परिवर्तन में कमी लाई जा सकती है।
- पारिस्थितिकीय परीक्षण अथवा इको परीक्षण जैसे नवीन अपकरणों को अपनाया जाना चाहिए।
- आपदा प्रबंधन को प्राथमिकता के साथ कियान्वयित किए जाने की आवश्यकता है।
- पर्यावरण के संबंध में उत्तदायिता को औद्योगिक खतरों, प्रदूषिण के अतिरेक पारिसिथितिकी प्रणाली की अखंडता, स्थायित्व एवं प्राकृतिक संसाधनों के संदर्भ में समान रूप से लागू किया जाना चाहिए।
- वैज्ञानिक एवं अकादमिक समुदाय को एक साथ मिलकर इस दिशा में प्रयास करना चाहिए।
- हरित लेखांकन और हरित जी. डी. पी की अवधारणा को राष्ट्रीय और राज्यों की प्यावरण कार्य योजनाओं एवं अन्य विकास योजनाओं के साथ जोड़ो जाना चाहिए।

भारत और उसके भू– भाग में प्राकृतिक आपदाओं की संख्या निरंतर बढ़ रही है, जिसका प्रभाव पर्यावरण, मानव जीवन एवं अर्थव्यवस्था पर पड़ता है, वहीं रसायनों पर अत्यधिक निर्भरता ने औद्योगिक एवं रासानिक आपदाओं के जोखिम को तीव्रतर कर दिया हैं जलवायविक परिवर्तन में कमी लाने हेतु मानव को अपनी जीवनशैली मे परिवर्तन लाने की महती आवश्यकता है तभी राष्ट्र की अनेक अप्रत्याशित समस्याओं का`लघु करने में सहायता मिलेगी। प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली अप्रत्याशित क्षति से भी राष्ट्र को मुक्ति मिलेगी और राष्ट्र हमेशा प्रगति पथ की ओर गतिमान रहेगा परन्तु पर्यावरणीय हास के आधार पर नही।

संदर्भ सूची–

1. म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
2. प्रतियोगिता संदर्भ– काम्पिटिशन रिफ्रेशर एकेडमी।

शस्य प्रतिरूप एवं पर्यावरण संतुलन

डॉ. सुमन लता पुरोहित
महाकोशल कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर
श्रुति तिवारी
शोध छात्रा, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर

शस्य प्रतिरूप से तात्पर्य फसलों के उत्पादन में हेर–फेर करके फसलों का उत्पादन करना, जिससे फसलों की पैदावार या उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि होती है। फसल प्रणाली की बड़ी विविधता की वजह से एक विशेष प्रकार की फसलों के तहत खेती को शामिल किया जाता है, अर्थात् फसलों पर जलवायु, मृदा, का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है जिससे फसलों के उत्पादन में वृद्धि या कमी होती है। फसल पद्धति में बदलाव के अंतर्गत विभिन्न फसलों के अंतर्गत क्षेत्र का अनुपात है। फसल प्रणाली के चुनाव के संबद्ध में सामाजिक तकनीकी के विकास करकों के द्वारा फसलों के उत्पादन में वृद्धि होती है।

ग्लोबल वार्मिंग से तात्पर्य वैश्विक औसत तापमान में हुई वृद्धि से है। पिछले कुछ दशकों में पृथ्वी और उसके वायुमण्डल का तापमान निरंतर बढ़ रहा है। वैश्विक तापनमान में वृद्धि को पर्यावरणविद्वो ने ग्रीनहाउस की संज्ञा दी है। इसका मुख्य कारण पर्यावरण प्रदूषण के लिए उत्तरदायी ग्रीनहाउस गैसे है। आज यह बात पूर्णरूप से प्रमाणित हो चुकी है कि हरित ग्रह प्रभाव से जलवायु तथा मौसम प्रमुख रूप से प्रभावित हो रहे है। ग्लोबल वार्मिंग के लिए उत्तरदायी गैसों में कार्बनडाय आक्साइड और क्लोरो फ्लोरो कार्बन भी प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। इन गैसों का प्रयोग रेफ्रिजरेटर, वातानुकूलित संयंत्र, हेयरस्प्रे, प्रसाधन सामग्री, अग्निशामक यत्रों में किया जाता है। इन पदार्थो से उत्सर्जित गैसे वायुमण्डल को नुकसान पहुॅचाती है।

भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से जबलपुर न केवल मध्यप्रदेश के मध्य में स्थित है बल्कि इसे सम्पूर्ण भारत का मध्य बिन्दु माना जाता है। जबलपुर जिला $24^0$49.24^{0}8 उत्तरी अक्षांश तथा $78^0$21.80^{0}58 पूर्वी देशांतर है के मध्य स्थित है। इसका संपूर्ण क्षेत्रफल 519.369 वर्ग कि.मी. है। समुद्र तल से इसकी ऊॅचाई 394 मी. है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार जिले की जनसंख्या 2256369 है तथा जनसंख्या घनत्व 216/वर्ग किलोमीटर है।

जबलपुर जिला एक कृषि प्रधान जिला है। यहॉ अनेक प्रकार की फसलों को पैदा किया जाता है। इन फसलों की पैदावार पर मौसम तथा जलवायु का विशेष रूप से प्रभाव पड़ रहा है। धरती का तापमान तथा कार्बन डाय आक्साइड की मात्रा बढ़ने से कृषि कार्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। यह परिवर्तन अन्य क्षेत्रों के लिए लाभदायक और कुछ क्षेत्रों के लिए नुकसानदायक होता है। जबलपुर जिले में पिछले कुछ दशकों से ग्लाबल वार्मिंग का प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि पर पड़ रहा है। जिससे कई हिस्सों में

सूखे की स्थिति उत्पन्न हुई है तथा कुछ क्षेत्रों में फसलों की पैदावार में वृद्धि हो रही है। अर्थात् बेमौसम फसलों का उत्पादन हो रहा है जिससे कृषि पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ रहा है।

पर्यावरण अवनयन का प्रश्न मानव को उत्तरजीविता के लिये एक प्रमुख वैश्विक चिन्ता के रूप में उभरा है। विश्व के पर्यावरण एवं विकास आयोग के आयोग के अनुसार भविष्य में विश्व के समक्ष निरंतर बढ़ते हुये पर्यावरण ह्रास, निर्धारता तथा प्रदूषण की समस्याएं उग्र होगी। आर्थिक विकास के कारण पारिस्थितिक संकट इतना अधिक हो गया है कि विकास के अर्थशास्त्र में पर्यावरण का परिरक्षण एवं सरंक्षण अत्यावश्यक हो गया है। आधुनिकीकरण के द्वारा प्रकृति को पदार्थो में रूपान्तरित किया जा रहा है। संसाधनों के दवाब में पारिस्थितिक क्षति तीव्रतर हो रही है। स्थल, जल एवं वायु प्रतिफल प्रदूषित हो रहे है। वन विनाश भंयकर दर से जारी है। हरित क्रान्ति के परोक्ष प्रभावघतक सिद्ध हो रहे है। औद्योगिक क्रान्ति पर्यावरण एवं मानवता के लिये महान खतरा बन गयी है। मानव का पर्यावरण रासायनिक उत्सर्जनों, एरोसोल, विषाणु बहिर्वाहो, सीवेज (जल–मल) पीड़क नाशक, ठोस अपशिष्ट, दूषित वर्षा जल, धूल एवं विकिरण से सम्पूक्त हो रहा है। पर्यावरण की अपनयन भविष्य में बढ़ता ही रहेगा। अतएव पर्यावरण अवनयन की समस्या विकासशील देशों की ही नहीं, अपितु विकसित देशों की भी समस्या बन गयी है। इसी कारण अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं, वैज्ञानिक, नीति–निर्माता तथा भूगोलवेत्ता इस समस्या के निवारण के लिए एक मंत्र पर एकत्रित हुये है। पर्यावरणीय संकट ने विश्व को प्राविधिकी एवं संसाधनों को पर्यावरण की क्षति पूर्ति के लिये प्रेरित किया है तथा हानिकारण रसायनों के विकल्पों के प्रयोग पर बल दिया है जिससे प्रकृत्ति और उसके संज्ञान सुरक्षित रहे।

पर्यावरण का सामान्य अर्थ 'परिवेश' से है। किन्तु भूगोल के दृष्टिाकोण से पर्यावरण अजैविक एवं जैविक तत्वों का समुच्चय है, जिसे जैवमण्डल कहा जाता है। पृथ्वी का गतिशील तन्त्र, विशेषतः जैवमण्डलीय तन्त्र अनेक भौतिकव अभौतिक गोचर जैविक प्रक्रमों द्वारा नियंत्रित होता है, भौतिक, रासायनिक तथा जैविक प्रक्रम निरंतर सक्रिय होकर पृथ्वी के धरातल के पदार्थो का निर्माण, अनुरक्षण तथा विनाश करते हैं। ये सभी तत्व (पदार्थ) मानव के लिए उपयोगी होते है। किन्तु इनका गलत प्रयोग करके मानव इन्हें नष्ट तथा संदूषित कर देता है। जिससे वे पुनः प्रयोग में नहीं लाये जा सकते ।

प्राकृतिक पर्यावरण के भौतिक व जैविक प्रक्रम इस प्रकार कार्य करते है कि किसी स्थान व काल में विशेष पर्यावरण के किसी भी भाग में कोई भी प्राकृतिक परिवर्तन होने पर भी दीर्धकाल में पर्यावरण का सन्तुलन बना रहता है। वस्तुतः प्राकृतिक पर्यावरण एक स्वनियामक तन्त्र है। किन्तु जब मानवीय कारणों में पर्यावरण के किसी तत्व को क्षति पहुंचती है तो पहले वह स्वनियायक व्यवस्था के अंतर्गत संतुलित होने का प्रयास करता है। लेकिन सहन सीमा से अधिक आघात होने पर उसका संतुलन बिगडने लगता है। समस्त जीवों में मानव सर्वाधिक शक्तिशाली कारक है जो अपने कौशल, चातुर्य, तकनीक एवं अदम्य साहस से पयावरण से तत्वों को प्रभावित करता है। यह प्रभाव

अतिक्रमण का रूप भी लेता है। फलतः जानबूझकर या अनजाने में मानव पर्यावरणीय तत्वों का दुरूपयोग करने लगता है जिससे पर्यावरण के तत्वों की गुणवता में ह्रास होने लगता हैं। जब पर्यावरण के तत्वों की

निरंतर अवमानना हाने लगती है तो पर्यावरण के प्रतिकूल प्रभाव दृष्टिगोचर होते है। पर्यावरण के ह्रास से परिस्थितिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। पर्यावरण के अवनयन से जीवन की गुणवत्ता घटने लगती है। जिससे जीवन चक्र बदलने लगता है। गतिरोध बढ़ने पर विकास की प्रक्रिया उल्टी दिशा में मुड़ने लगती है जो अवनति का मार्ग प्रशस्त करती है। इसका प्रभाव समस्त जैन मण्डल पर पड़ता है तथा जीवधारियों का जीवन संकटमय हो जाती है। पर्यावरण की इसी परिवर्तित स्थिति को अवनयन या ह्रास कहा जाता है। पर्यावरण के प्रति मानव के अमैत्रीपूर्ण कार्य, प्रदूषण विस्तार, वन विनाश, अधिक जनभार, संसाधनों का अनुचित दोहन आदि पर्यावरण ह्रास के लिये उत्तरदायी है। पर्यावरण ह्रास के लिये मानव ही सबसे अधिक उत्तरदायी है। मानवीय क्रियाकलापों द्वारा भौतिक तत्वों का इस सीमा तक गुणात्मक ह्रास कि उनकी स्वनियमन व्यवस्था पंगु हो जाये तथा उनके कुप्रभावा से सभी जैव प्रजातियों को क्षति पहुंचने लगे। जनसाधारण के लिये पर्यावरण अवनयन तथा पर्यावरण प्रदूषण पर्यायवाची शब्द है जिनका सम्बन्ध पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास होने से है। किन्तु दोनों शब्दों में कारणों, मात्रा तथा तीव्रता के आधार पर अन्तर स्पष्ट किया जासकता है। पर्यावरण प्रदूषण का अभिप्राय स्थानीय स्तर पर मानवीय क्रिया से होने वाले गुणवत्ता ह्रास से है। जबकि पर्यावरण अवनयन प्राकृतिक प्रक्रमों तथा मानवीय क्रियाओं द्वारा स्थानीय, प्रादेशिक एवं वैश्विक स्तर पर होता है।

पर्यावरण एक ऐसा समेकित तन्त्र है जिसमें सभी तत्व इस प्रकार क्रिया एवं प्रतिक्रिया करते है जिससे एक सन्तुलन सदैव बना रहे। धरातल, संरचना जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मिट्टी जलराशियां आदि सभी प्राकृतिक तत्व एक ओर तो पर्यावरण के निर्धारण तत्व है, दूसरी ओर मानवीय क्रियाओं को भी निर्धारित करते है। ''पाश्चात्य सभ्यता की प्रगति ने पृथ्वी का बलात्कार इस सीमा तक किया है कि अनापूर्ति वाले संसाधनों का क्षय तथा भंगुर पारितन्त्र विषैले तथा विनष्ट हो गये है।'' वैज्ञानिक तथा प्राविधिक विकास मानवता का उपकार करने के साथ–साथ पर्यावरण के अवनयन के लिये भी उत्तरदायी है। यह सभ्यता नगरों में जनसंख्या उद्योगों तथा वाहनों के संकेन्द्रण के कारण अधिक है। नार्थम के अनुसार नगरीय क्षेत्रों में दो प्रकार का पर्यावरणीय अवनयन होता है–भौतिक एवं सामाजिक। पर्यावरण के भौतिक अवनयन में स्थानीय प्राकृतिक तत्वों का संदूषण होता है। जबकि सामाजिक अवनयन में नगरीय स्थानों का संदूषण होता है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण अवनयन को दो प्रमुख वर्गो में रखा जा सकता है। पहला भौतिक या प्राकृतिक एवं दूसरा मानवीय । यद्यपि दोनों ही वर्ग परस्पर संबंधित है। तथापि दोनों की पृथक व्याख्या अभीष्ट है। आज इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में, प्राविधिक वैज्ञानिक विकास जनातिरेक नगरीकरण तथा औद्योगीकरण के कारण विश्व अनेक पर्यावरणीय समस्याओं का सामना कर रहा है। पर्यावरण का प्रदूषण मानव द्वारा प्राविधिकी के अनियोजित तथा अविवेकपूर्ण उपयोग का प्रतिफल है। पर्यावरण प्रद्षण का विस्तृत विवेचना अगले अध्याय में किया

जायेगा। इस अध्याय में पर्यावरण पर मृदा, अपरदन, वन विनाश मरूस्थलीकरण बड़े बांधों के निर्माण खनन कीटनाशकों के उपयोग, प्राविधिक विकास के प्रभावों का विवेचना सम्मिलित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

- म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- डॉ.जी.आर. मदन : परिवर्तन और विकास का समाज शास्त्र ।
- अमर कुमार : योगेन्द्र सिंह का समाज शास्त्र ।
- डॉ. आई. एस.चौहान : भारत में सामाजिक परिवर्तन ।
- Upadhaya, J. J. R., "Environmental Laws", 4th Edition, (2005), Central Law Agency, Allahabad
- "Survey of Environment", (1994-2004), The Hindu
- www.hindi.indiawaterportal.org/Node
- Diwan, P. (1987),"Environment Protection, Problems,Politics, Administration & Law", Deep & Deep Publications, New Delhi
- Singh,Surdip, U(2005), Macmillan India Ltd., New Delhi

————————

छिन्दवाड़ा जिले की जनसंख्या का अध्ययन : एक भौगोलिक दृष्टिकोण

डॉ0 आर. पी. यादव
प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय बिछुआ
डॉ. शाहिदा बेगम मंसूरी,
भूगोल विभाग, शासकीय महाविद्यालय, शहपुरा, डिण्डौरी

शोध शारांश

जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने वाले अनेक कारक होते हैं। जनसंख्या से किसी भी क्षेत्र की सुविधाओं एवं आर्थिक स्थिति को ज्ञात किया जा सकता है। अधिक जनसंख्या वहीं निवास करती है जहां उसे हर प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध होती है।

मध्यप्रदेश राज्य में भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से प्रथम स्थान है। यह सतपुड़ा पठार के दक्षिण–पश्चिम हिस्से में $21^0$27'30" से $22^0$47'45" उत्तरी अक्षांश और $78^0$20'10" से $79^0$24'30" पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। छिन्दवाड़ा जिले का आकार दक्षिण से उत्तर की ओर लम्बा, समरूपता लिए हुए है।

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तावना

सामान्यतः पर भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक जनसंख्या वितरण को प्रभावित करते है परन्तु इन्हें प्रभावित करने वाले तत्वों का विश्लेशण भौतिक व सांस्कृतिक आपदाओं के बिना अधूरा है। वर्तमान में इन आपदाओं की संख्या बढ़ती जा रही है जो कि जनंसख्या मानचित्र को अस्थायी रूप से प्रभावित करती है।

जनसंख्या वितरण का अर्थ पृथ्वी पर जनसंख्या के विक्षेपण से है। इससे पृथ्वी पर मनुष्य के स्थिति जन्य प्रतिरूप का ज्ञान हाता है। जनंसख्या वितरण से किसी भी क्षेत्र की जनांकिकी विशेषताओं को जाना जाता है। तथा मानव के विभिन्न भौतिक एवं आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक अन्तसम्बंधों तथा क्षेत्रीय भिन्नता का अध्ययन किया जाता है। जनसंख्या वितरण एवं जनसंख्या धनत्व दोनों परस्पर संबंधित है। दोनों में यह अंतर है कि जनसंख्या वितरण में अधिक बल स्थितिगत तथा जनंसख्या धनत्व में अनुपातिक संबंध पर दिया जाता है। जनसंख्या धनत्व में अनुपातिक सम्बन्ध पर दिया जाता है। जनंसख्या वितरण क्षेत्रीया प्रारूप से संबंधित है जिसमें जनसंख्या वितरण प्रारूप रेखीय, विकीर्ण केन्द्रक जमघट आदि आते है। जनसंख्या धनत्व का संबंध जनसंख्या आकार एवं क्षेत्रफल से होता है। यह तो सर्वविदित है कि न तो जनंसख्या वितरण और न ही इसका जमाव समस्त संसार में एक जैसा है फलतः धनत्व भी भिन्न भिन्न है।

अध्ययन क्षेत्र छिन्दवाड़ा जिला

मध्यप्रदेश राज्य का छिन्दवाड़ा जिला सतपुड़ा की पर्वतमालाओं पर अपना दामन फैलाये भारत के मध्यस्थल में बसा है। स्वर्णिम पुरातन अतीत प्रचुर खनिज सम्पदा अपने आंचल में संजोए हरी–भरी पर्वतमालाओं के बीच छिन्दवाड़ा जिले का अपना अविस्मरणीय एवं अनोखा इतिहास है। छिन्दवाड़ा जिला मध्यप्रदेश के चुने हुए आदिवासी बाहुल्य जिलों में से एक है। देवगढ़, पातालकोट, तामिया घाटी से लेकर पचमढ़ी तक का क्षेत्र जो कि गोण्डवाना क्षेत्र के नाम से प्रख्यात है, साथ ही अपनी प्राकृतिक अद्वितीय घटा के लिए भी सुविख्यात है, एवं यह वृद्ध आदिवासी संस्कृति को भी अपने में संजोए हुए है।

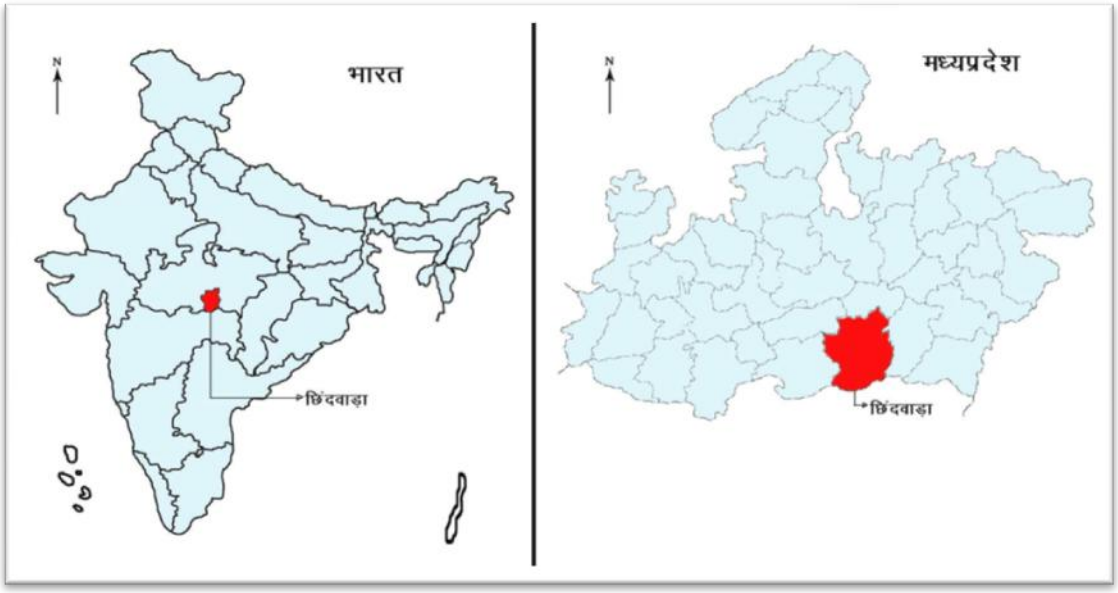
महाभारत काल की उज्जवी स्मृतियों और परम्पराओं से संबंद्ध अपने अंतराल में हरित स्वर्ण के लिए उच्च शिखर के सौंदर्य की ओर मुखर बिन्दु दृष्टिगोचर होते हैं। सतपुड़ा पठार पर्वतमालाओं के इर्द–गिर्द, कलकल करती हुए नदियों का अपना अपूर्व अस्तित्व हैं। इसी सतपुड़ा के प्रायः मध्य भाग में नर्मदा के कछार से लगा हुआ छिन्दवाड़ा जिले का क्षितिज है।

सतपुड़ा पर्वत की सुरम्य घाटियों में स्थित छिन्दवाड़ा जिला मध्यप्रदेश के दक्षिणी जिलों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। छिन्दवाड़ा जिले का भौगोलिक विस्तार सतपुडा पठार के दक्षिण पश्चिम हिस्से में $21^0$28′ से $22^0$49 उत्तरी अक्षांश एवं से $78^0$10′ से $79^0$24′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राज्य के कुल क्षेत्रफल का 2.66 प्रतिशत क्षेत्र जिले में आच्छादित होकर नवाँ स्थान लिया है, तथा इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 11,815 वर्ग कि.मी है। जिले की लंबाई उत्तर से दक्षिण 136 कि. मी. तथा पूर्व से पश्चिम की ओर चौड़ाई लगभग 104 कि. मी. है। जिले के अंदर समुद्र तल से विभिन्न स्थानों की ऊँचाई 862 से 1200 मीटर है। दक्षिणी भाग में महाराष्ट्र राज्य के नागपुर एवं अमरावती जिले के मैदानी भाग में जिले की सीमा लगती है। उत्तर में नर्मदा घाटी स्थित जिला होशंगाबाद एवं जिला नरसिंहपुर तथा पश्चिम एवं पूर्व में क्रमशः बैतूल तथा सिवनी जिला स्थित है।

प्राकृतिक रचना की दृष्टि से इस जिले को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम नागपुर जिल का मैदानी भाग का वह क्षेत्र जिसके ऊँचाई के बराबर सौंसर तहसील का मैदानी भाग आता है। दूसरा मध्यक्षेत्र का हिस्सा जिसमें अमरवाड़ा तथा छिन्दवाड़ा तहसील दक्षिण हिस्सा एवं सौंसर तहसील का उत्तरी हिस्सा सम्मिलित है। तीसरा क्षेत्र अधिकांशतः उत्तरी क्षेत्र का है, जिसमें सतपुड़ा का पहाड़ी हिस्सा आता है, जो घाटियों से आच्छादित है।

भौगोलिक दृष्टि से छिन्दवाड़ा प्राकृतिक सुबमा तथा साधनों की सुविधा से भरपूर है। छिन्दवाड़ा गजेटियर 1995 के अनुसार इस जिले के पर्वत तथा पठारी भाग सतपुड़ा की महादेव पर्वत श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। जिले में भू–भाग की सामान्य औसत ऊँचाई लगभग 2150 फीट आंकी गई है। उत्तरी भाग में ऊँची पर्वत श्रेणियों तथा उनके मध्य में स्थित पठार पश्चिम से पूर्व की ओर फले हुए हैं। इस भाग की औसत ऊँचाई लगभग 2500 फुट है। इसके दक्षिण में छोटी घाटी बिखरी हुई श्रखलाओं से विशाल पठारी भाग हैं। इसकी औसत ऊँचाई 1900 फीट है।

मानचित्र कमांक 3.1 भारत एवं मध्यप्रदेश में छिन्दवाड़ा जिले की स्थिति



जिले में 11 हजार 815 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में कुल 1084 ग्राम स्थित हैं। इनमें 81 वीरान हैं। इन ग्रामों में प्रशासन तंत्र अपना प्रशासन 06 राजस्व अनुविभाग से संचालित करता है। जिले के 4217 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र में 49 वन ग्राम भी स्थित हैं। जिला कुल 09 तहसीलें व 19 राजस्व सर्कल तथा 319 पटवारी हल्कों में विभक्त हैं। जिले में 11 विकासखण्ड हैं। विकासखण्डों में से बिछुवा, तामिया, हरई, जुन्नारदेव चार विकासखण्ड आदिवासी वर्ग के और अमरवाड़ा छिन्दबाड़ा, चौरई, मोहखेड़, पांढुर्ना, परासिया सौंसर सात सामुदायिक वर्ग के विकासखण्ड हैं।

जिले में 8 विधानसभा क्षेत्र 4 नगरपालिका, 8 नगर पंचायत, 11 जनपद पंचायत और 804 ग्राम पंचायतें हैं। जिले में 1903 आबाढ़ ग्राम और 1935 राजस्व ग्राम हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

1. छिन्दवाड़ा जिले के भौगोलिक पर्यावरण का अध्ययन करना।
2. छिन्दवाड़ा जिले की जनसंख्या का अध्ययन करना।

सारणी क्र 1 जिला छिन्दवाड़ा : जनसंख्या का वितरण

विकासखण्ड	1991	प्रतिशत	2001	प्रतिशत	2011	प्रतिशत
छिन्दवाड़ा	219631	14	282740	15.28	337059	16.12
मोहखेड़	125552	8	148423	8.02	168299	8.05
तामिया	76632	4.88	89278	4.82	113949	5.45
जुन्नारदेव	196722	12.54	214320	11.58	240651	11.51
परासिया	245955	15.67	272158	14.71	284952	13.63
अमरवाड़ा	119210	7.59	146294	7.91	159164	7.61
हर्रई	82695	5.27	102006	5.51	134893	6.45

चौरई	140873	8.98	169438	9.16	189468	9.06
सौंसर	140591	8.96	169480	9.16	18580	0.88
बिछुआ	64835	4.13	77544	4.19	87679	4.19
पाण्र्दुना	156006	9.94	177602	9.6	192612	9.21
कुल	1568702	100	1849283	100	2090306	100

स्त्रोत : पी–एच.डी. शोध प्रबंध

प्रस्तुत सारणी में छिन्दवाड़ा जिले की जनसंख्या के वितरण को प्रदर्शित किया गया है। अध्ययन हेतु जिले के वर्ष 1991 तथा 201 के जनगणना संबंधी आँकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 15,68,702 है। वर्ष 2001 में जनगणना में 2,80,581 की वृद्धि के साथ बढ़कर 18,49,283 हो गई । वर्ष 1991 में जिले के 11 विकासखण्डो में सबसे अधिक जनसंख्या वाला विकासखण्ड परासिया (2,45,955), 15.67 प्रतिशत जनसंख्या है तथा सबसे कम जनसंख्या बिछुआ विकासखण्ड (64,835) 4.13 प्रतिशत जनसंख्या है। वर्ष 2001 में सबसे अधिक जनसंख्या छिन्दवाड़ा में 2,82,740 है जो कूल जनसंख्या का 15.28 प्रतिशत है। सबसे कम जनंसख्या वाला विकासखण्ड बिछुआ (77,544) है कुल जनसंख्या का 4.19 प्रतिशत है। वर्ष 1991 तथा 2001 की जनगणना के अनुसार जिले की सबसे अधिक जनसंख्या वाले विकासखण्ड में परिवर्तन हुआ है। वर्ष 1991 में जनंसख्या की दृष्टि से परासिया विकासखण्ड का प्रथम स्थान 15.67 प्रतिशत है जबकि वर्ष 2001 में इसका दूसरा स्थान 14.71 है अर्थात् वृद्धि दर में कमी आई है। छिन्दवाड़ा विकासखण्ड की जनसंख्या 14 प्रतिशत से बढ़कर 15.28 प्रतिशत हो गई है।

जिला छिन्दवाड़ा : जनसंख्या का लिंग अनुसार वितरण

वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार छिन्दवाड़ा जिले की कुल जनंसख्या 15,68,702 आँकी गई है। जिसमें कुल स्त्री जनसंख्या 7,97,235 तथा कुल पुरूष जनसंख्या 8,36,302 है। जिले मे सबसे अधिक जनसंख्या परासिया विकासखण्ड में 2,45,955 है जिसमें कुल स्त्री जनसंख्या 1,18,572 तथा कुल पुरूष 1,27,383 है। परासिया में स्त्रीयों की तुलना में 8,811 पुरूष अधिक है। इसके विपरीत जिले मे सबसे कम जनंसख्या बिछुआ विकासखण्ड में 64,835 है। जिसमें स्त्रियों की कुल संख्या 31,919 तथा पुरूषों की संख्या 32,916 है। बिछुआ विकासखण्ड में स्त्रियों की संख्या की तुलना में 997 पुरूषों की संख्या अधिक है। छिन्दवाड़ा जिले की कुल स्त्री जनसंख्या तथा कुल पुरूष जनंसख्या के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि हर्रई विकासखण्ड में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या 145 अधिक है। अर्थात् स्त्रियों की सामाजिक स्थिति काफी अच्छी है। इसके अलावा जिले के अन्य विकासखण्डों में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कम है।

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार उपर्युक्त सारणी का निर्माण किया गया है। छिन्दवाड़ा जिले की कुल जनसंख्या 18,49,283 है। जिसमें कुल स्त्री जनसंख्या 9,01,146 तथा कुल पुरूष जनसंख्या

9,47,342 है। जिले में सबसे अधिक जनंसख्या छिन्दवाड़ा विकासखण्ड में 2,82,740 है जिसमें स्त्री जनसंख्या 1,36,887 तथा पुरूष जनसंख्या 146053 है। इसके विपरीत सबसे कम जनसंख्या बिछुआ विकासखण्ड में 77,544 है। जिसमें स्त्री जनसंख्या 38,161 तथा पुरूष जनसंख्या 39,383 है। सबसे अधिक जनसंख्या वाले विकासखण्ड़ में स्त्रियों की तुलना में 9,166 पुरूष अधिक है। बिछुआ विकासखण्ड़ में स्त्रियों की तुलना में 1,222 पुरूष संख्या अधिक है। छिन्दवाड़ा जिले में एकमात्र हर्रई विकासखण्ड़ है जहां पर स्त्रियों की कुल जनसंख्या पुरूषों की कुल जनसंख्या के बराबर 51,003 है। हर्रई विकासखण्ड़ में स्त्रियों को समाज में पुरूषों के समान स्थान प्राप्त है। परन्तु वर्ष 1991 की अपेक्षा स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कमी आई है।। 1991 में जहां इनकी संख्या पुरूषों से अधिक है। वहीं 2001 में पुरूषों के बराबर है।

प्रस्तुत सारणी क्रमांक 5.4 में वर्ष 1991 के आँकड़ों को प्रदर्शित किया गया है। इसमें छिन्दवाड़ा जिले की ग्रामीण, नगरीय जनसंख्या तथा क्षेत्रफल का अध्ययन किया गया है। जनगणना से प्राप्त आँकड़ों की एक आधारभूत विशेषता इसका ग्रामीण तथा नगरीय वितरण है। उपर्युक्त सारणी से ज्ञात होता है कि जिले में सबसे अधिक ग्रामीण जनसंख्या छिन्दवाड़ा विकासखण्ड में 14,5793 है, कुल ग्रामीण जनसंख्या से इसका प्रतिशत 12.71 है। सबसे कम ग्रामीण जनसंख्या बिछुआ विकासखण्ड में है जिसका प्रतिशत 0.42 है। नगरीय क्षेत्र में रहने वाली कुल जनसंख्या का अनुपात नगरीकरण के स्तर को प्रदर्शित करता है। नगरीय जनसंख्या में जैसे–जैसे वृद्धि होती है नगरों की संख्या तथा आकार में वृद्धि होती है। जिले में 8 विकासखण्डो में नगरीकरण का प्रभाव देखा गया है। तामिया, हर्रई, तथा बिछुआ विकासखण्डों को नगरों के अन्तर्गत नहीं रखा गया है। छिन्दवाड़ा विकासखण्ड में सबसे अधिक 20.37 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय है। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 22.01 वर्ग कि.मी. है। सबसे कम नगरीय जनसंख्या चौरई विकासखण्ड़ में है जिसका प्रतिशत 2.54 है।

जिला छिन्दवाड़ा : ग्रामीण, नगरीय जनसंख्या, वर्ष 2001

जनसंख्या धनत्व

जनसंख्या धनत्व सामान्य शब्दों में एक निश्चित भू–भाग के सम्पूर्ण क्षेत्रफल एवं सम्पूर्ण जनसंख्या के अनुपात को कहा जाता है। जनसंख्या के सामान्य वितरण के अपेक्षा जनसंख्या का धनत्व किसी क्षेत्र की जनसंख्या के क्षेत्रीय संबंध की व्याख्या करने में अधिक सक्षम होता है।

यह अनुपात प्रति इकाई क्षेत्र, प्रति वर्ग किलोमीटर, प्रति हेक्टेयर, प्रति वर्ग मील तथा प्रति मील में ज्ञात किया जाता है। अन्य शब्दों में जनसंख्या घनत्व का अभिप्राय प्रति इकाइ भू–क्षेत्र पर निवास करने वाली जनसंख्या से है। किसी प्रदेश में जनसंख्या घनत्व आर्थिक विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों के विकास की अवस्था पर निर्भर करता है। किसी क्षेत्र के जनसंख्या का भार, अधिक तथा न्यून जनसंख्या के निर्धारण तथा क्षेत्रीय तुलना हेतु जनसंख्या घनत्व का महत्व है।

छिन्दवाड़ा जिले के ग्रामीण तथा नगरीय घनत्व के जनसंख्या संबंधी आँकड़ो को लिया गया है। तुलनात्मक अध्ययन हेतु वर्ष 1991 तथा वर्ष 2001 के जनसंख्या घनत्व का अध्ययन किया गया है। वर्ष

1991 में जिले में कुल जनसंख्या का औसत घनत्व 133 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है वर्ष 2001 में जिले का औसत घनत्व बढ़कर 157 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया है। क्षेत्रीय स्तर पर इसमें पर्याप्त भिन्नता है। वर्ष 1991 में औसत ग्रामीण घनत्व 103.53 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कि वर्ष 2001 में बढ़कर 120.13 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमोटर हो गया अर्थात इस अवधि में औसत 16 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में वृद्धि हुई है। वर्ष 1991 में औसत नगरीय घनत्व 2220.85 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कि वर्ष 2001 में बढ़कर 2430.15 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया। इस अवधि में औसत 209.3 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि ग्रामीण घनत्व की तुलना में अधिक है।

जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या वृद्धि से अभिप्राय किसी क्षेत्र विशेष में एक निश्चित अवधि में निवास करने वाले लोगों की संख्या में परिवर्तन से है। यह परिवर्तन धनात्मक हो अथवा ऋणात्मक उस प्रदेश में उपस्थित वातावरण की संभावनाओं के प्रति मनुष्य की अनुक्रिया को अवश्य ही प्रतिबिम्बित करती है। जनसंख्या वृद्धि उस क्षेत्र के आर्थिक विकास, सामाजिक, जागरूकता, सांस्कृतिक आधार, ऐतिहासिक घटनाओं एवं राजनीतिक विचारधारा की सूचक होती है। जनसंख्या वृद्धि से यह ज्ञात होता है कि व्यक्तियों का रहन सहन आर्थिक संसाधनों की तुलना में जनसंख्या वृद्धि अधिक है तो देश के आर्थिक विकास मे अवरोध उत्पन्न होगें। किसी भी देश की जनसंख्या वहां के निवासियों की जन्म दर, मृत्यु दर तथा प्रवास पर निर्भर करती है। इन कारणों के कारण उसमें वृद्धि अथवा कमी होती है। जनसंख्या पर ही राष्ट्र का आर्थिक स्वरूप निर्भर करता है, उपरोक्त सारणी क्रमांक में भारत, मध्यप्रदेश तथा छिन्दवाड़ा जिले में जनसंख्या वृद्धि का अध्ययन किया गया है।

सारणी क्रमांक 2 भारत, मध्यप्रदेश तथा छिन्दवाड़ा जिले में जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत में)

क्रं	वर्ष	जनसंख्या वृद्धि प्रतिशत में		
		भारत	मध्यप्रदेश	छिन्दवाड़ा
1	1951	13.13	8.67	5.85
2	1961	21.51	24.27	27.29
3	1971	24.8	28.67	25.95
4	1981	24.74	25.23	24.63
5	1991	23.86	26.84	27.21
6	2001	21.34	24.34	17.88
7	2011	17.64	20.3	13.03

स्त्रोत : जिला सांख्यकीय पुस्तिका 1951–2011

उपरोक्त सारणी को देखने से ज्ञात होता है कि जनसंख्या वृद्धि के अध्ययन हेतु वर्ष 1951 से 2001 के आँकड़ो को प्रतिशत में ज्ञात किया गया है। वर्ष 1951 में भारत, मध्यप्रदेश तथा छिन्दवाड़ा जिले में वृद्धि सबसे कम क्रमशः 13.13, 8.67 तथा 5.85 है वर्ष 1971 में तीनों स्तर पर वृद्धि की प्रवृत्ति देखी गई है यह वृद्धि क्रमशः 24.80, 28.67 तथा 25.95 है इसके पश्चात् के वर्षों में जनसंख्या वृद्धि में निरन्तर कमी दर्ज की गई है। इसका कारण लोगों में जागरूकता, शिक्षा का विस्तार है।

लिंग अनुपात

किसी भी देश के विकास में लिंग अनुपात की महत्वपूर्ण भूमिका के फलस्वरूप जनसंख्या भूगोल में इसका अध्ययन आवश्यक है। लिंग सरंचना का तात्पर्य स्त्रियों और पुरूषें के पारस्परिक अनुपात से है। लिंगानुपात को प्रति 1000 पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या से दर्शाया जाता है। विश्व में कई देशों यूरोप, लेटिन अमेरिका, अफ्रीका आदि अधिकांश देशों में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या अधिक है जबकि एशिया के अधिकांश देशों में स्त्रियों की तुलना में पुरूषों की संख्या अधिक है।

छिन्दवाड़ा जिले के वर्ष 2001 के लिंगानुपात के आँकड़ो के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि जिले में हर्रई विकासखण्ड में लिंगानुपात बराबर है। यहां प्रति 1000 पुरूषों में स्त्रियों की संख्या 1000 है। यह अच्छे संकेत है कि यहां समाज का स्त्रियों के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार है। परन्तु वर्ष 1991 की तुलना में वर्ष 2001 की अवधी में स्त्रियों की संख्या में कमी आई है। इस अवधि में मोहखेड तथा तामिया विकासखण्ड में भी कमी दर्ज की गई है वर्ष 2001 में लिंगानुपात क्रमशः 969.2, 960.5 है। जिले में सबसे कम लिंगानुपात चौरई विकासखण्ड में प्रति 1000 पुरूषों पर 934.7 स्त्रियां है आँकड़ो से यह स्पष्ट होता है कि यहां स्त्री योनी के बच्चों तथा स्त्री बच्चों को किशोरावस्था में पर्याप्त देखभाल एवं सुविधाएं उपलब्ध नहीं है। इसका कारण समाज का पक्षपाती व्यवहार है यहां स्त्री मृत्युदर पुरूष मृत्युदर की अपेक्षा कहीं अधिक है साथ ही आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग में महिलाओं द्वारा कठिन कार्य अथवा जोखिम पूर्ण कार्य करना है। इसके अलावा जलवायु, पोषण, मकान की सुविधा, रोशनदान की व्यवस्था रूढ़ीवादी परम्पराएँ आदि प्रमुख कारक है।

छिन्दवाड़ा जिले में 191–2001 दशक की अवधि के मध्य लिंग अनुपात मे पर्याप्त भिन्नता है। सारणी क्रमांक 5.18 के जनसंख्या संबंधी ऑकड़ो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जिले में कुल स्त्री जनसंख्या की तुलना में कुल पुरूष जनसंख्या अधिक है। वर्ष 1991 में जिले का औसत लिंगानुपात 953 है। जबकि वर्ष 2001 में कमी की प्रवृत्ति है। प्रति 1000 पुरूषों में स्त्रियों के मध्य ग्रामीण लिंग–अनुपात में कमी दर्ज की गई है इस अवधि में ग्रामीण लिंगानुपात 967 से गिरकर 961 हो गया है। लिंग–अनुपात में कमी की यह प्रवृत्ति मुख्यतः अधिक प्रजननता एवं स्त्रियों में अधिक मृत्यु दर का परिणाम है। इसके अलावा लड़को को अधिमान्यता एवं लड़कियों की उपेक्षा, लड़के एवं लड़की के स्वास्थ्य के स्तर में भिन्नता, लिंग सापेक्ष मृत्यु के घटने का सबसे बड़ा कारण लोगों में अशिक्षा है। जिले में नगरीय लिंगानुपात में वृद्धि दर्ज की गई है जो कि संतोषजनक है नगरीय परिवेश में रहने वाले

लोगों ने इस अन्तर का आंशिक रूप से कम किया है। वर्ष 1991 में नगरीय लिंगानुपात 906 है जो वर्ष 2001 में बढ़कर 924 हो गया। ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति कुछ हद तक ठीक है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

छिन्दवाड़ा जिला जनसंख्या की दृश्टि से संपन्न जिला है। यहां सभी प्रकार की जनसंख्या हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जनजाती जनसंख्या आदि निवास करते हैं। जिले के विकासखण्डो में सबसे अधिक अनुसूचित जाति जनसंख्या परासिया विकासखण्ड 30,470 है कुल अनुसूचित जाति में इसका प्रति ात 17.59 है। दूसरे स्थान पर जामई विकासखण्ड है यहां अनुसूचित जाति जनसंख्या 28.764 है जिसका प्रतिशत 16.61 है जिले मे सबसे कम अनुसूचित जाति जनसंख्या तामिया विकासखण्ड में 4,896 है जो कुल अनुसूचित जाति का 2.82 प्रतिशत है। छिन्दवाड़ा जिले के ग्रामीण तथा नगरीय घनत्व के जनसंख्या संबंधी आँकड़ो को लिया गया है। तुलनात्मक अध्ययन हेतु वर्ष 1991 तथा वर्ष 2001 के जनसंख्या घनत्व का अध्ययन किया गया है। वर्ष 1991 में जिले में कुल जनसंख्या का औसत घनत्व 133 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है वर्ष 2001 में जिले का औसत घनत्व बढ़कर 157 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया है। क्षेत्रीय स्तर पर इसमें पर्याप्त भिन्नता है। वर्ष 1991 में औसत ग्रामीण घनत्व 103.53 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कि वर्ष 2001 में बढ़कर 120.13 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया अर्थात इस अवधि में औसत 16 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में वृद्धि हुई है। वर्ष 1991 में औसत नगरीय घनत्व 2220.85 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कि वर्ष 2001 में बढ़कर 2430.15 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया। इस अवधि में औसत 209.3 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि ग्रामीण घनत्व की तुलना में अधिक है।

सन्दर्भ ग्रंथ

- चांदना, आर.सो. (1987), "जनसंख्या भूगोल," कल्याणी पब्लिकेशन, लुधियाना
- पण्डा, बी.पी. (1986), "जनसंख्या भूगोल," मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्य अकादमी, भोपाल।
- हीरालाल (1986), "जनसंख्या भूगोल," वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर
- तिवारी, व्ही.के. (1997), "भारत का जनसंख्या भूगोल," भाग – 1 तथा 2, हिमालय, पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई।
- तिवारी, व्ही.के. (1998), "जनसंख्या भूगोल," हिमालय, पब्लिशिंग हाऊस, गिरगाँव, मुम्बई।
- सुन्दरम् के.व्ही. (1985), "जनसंख्या भूगोल," हेरीटेज पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

****

ग्लोबल वार्मिंग एंव जलवायु परिवर्तन का समाज पर प्रभाव

अरविंद धुर्वे
सहायक प्राध्यापक भौतिकी
शासकीय महाविद्यालय अमरवाड़ा, जिला–छिन्दवाड़ा (म0प्र0)
देवेन्द्र धुर्वे
एम फिल.,शोधार्थी भूगोल

प्रस्तावना : प्रकृति एक तरफ मूक एवं जड. तो दूसरी तरफ वाचाल व चेतन सभी चीजों की जननी है। प्रकृति की तथाकथित सबसे बुध्दिमान रचना–मनुष्य हमेशा से प्रकृति के महत्व के प्रति जागरुक रहा है, लेकिन इसके ही कुछ संरक्षको ने अपनी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए प्रकृति को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रुप से चुनौती देता रहा है। विकास के नाम पर प्रत्येक अनैतिक मानवीय गतिविधियों से प्रकृति में अत्याधिक हस्ताक्षेप के कारण प्रकृति पर आज ग्लोबल वार्मिंग जैसा खतरा मंडरा रहा है जिससे मानव जीवन का अस्त्तिव में संकट में पड गया है। आज का युग पर्यावरणीय चेतना का युग है, हर व्यक्ति अपने पर्यावरण के प्रति चिन्तित है। ज्ञान और विज्ञान की हर शाखा के विद्वान, चिन्तक पर्यावरण की सुरक्षा और संचालन के प्रति वैश्विक चेना जाग्रत कर रहें है।

ग्लोबल वार्मिंग का बढता खतराः–

कार्बन उत्सर्जन से ओजोन परत कमजोर हो रही है जिसके कारण सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणें पृथ्वी पर हानिकारक प्रभाव डाल रही हैं। जन स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा हो रहा है। जलवायु परिवर्तन ने कृपि व उत्पादों के उत्पादन पर भी खतरा पैदा हो गया है इससे बचने के लिए आवश्यक है कि कार्बन के उत्सर्जन को कम किया जाए। मानव दारा निर्मित ग्रीनहाउस, ब्व्$_2$ के कारण उत्पन्न कम्बल जैसे प्रभाव के कारण पृथ्वी की सतह के तापमान में होने वाली क्रमिक वृध्दि को हरित गृह प्रभाव कहते है। कार्वन–डाइऑक्साइड की अधिक सान्द्रता के कारण वह मेथेन एवं नाइट्रस ऑक्साइड के साथ एक स्तर बना लेती है, जो कि कम तरंगदैर्ध्य वाली उष्मीय विकिरणों को पृथ्वी से बाहर नहीं जाने देती जिसके कारण पृथ्वी का तापमान पृथ्वी का ताप अत्यधिक बढ रहा है। हरित गृह प्रभाव शब्द का उपयोग सर्वप्रथम जें. फूरियर ने सन 1827 में किया था। इसे वायुमण्डलीय प्रभाव या ग्लोबल वार्मिंग अथवा ब्व्$_2$ समस्या भी कहते हैं।

ग्रीन हाउस गैसें ग्रीनहाउस प्रभाव के लिए उत्तरदायी होती है, कुछ गैसें वातावरण में प्राकृतिक रुप से पैदा होती है जबकि अन्य विश्वभर में कुल नाइट्रस ऑक्साइड का 40 प्रतिशत उत्सर्जन मानवीय क्रियाकलापो का परिणाम होता है, कार्बन डाइ–ऑक्साइड तथा ओजोन प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाली ग्रीन–हाउस गैसें जो विभिन्न मानवीय कारकों जेसे अपजल प्रबंधन, औद्योगिक प्रक्रियाएं जीवाश्म ईंधन का दहन और वनोन्मूलन जैसे जमीन के प्रयोग में बदलाव सम्मिलित है। इनसें अत्यधिक मात्रा में मीथेंन गैस निकलती है जो वायुमंडल में छ$_2$ब की वृध्दि में योगदान कर रही है।

रेफ्रीजरेशन से क्लोरो फलोरो कार्बन का उत्सर्जन, अग्निशमन प्रणालियों में क्लोरो फलोरो कार्बन व हैलोजन के साथ अक्रियाशील कार्बन डाइ–ऑक्साइड की मात्रा में तेजी से वृध्दि हो रही है।वैज्ञानिकों का मानना है, कि नाइट्रस ऑक्साइड, मूलत उर्वरकों में उपयोग किया जाता है, जो खेतों से बहकर नहरों में पहुंच जाती है, जो जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। नाइट्रस ऑक्साइड का वायुमंडल में जीवनकाल 120 साल है, यह एक पोंड कार्बन डाइ आक्साइड की तुलना में 300 गुना योगदान दे रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार अगले दो दशकों में धरती का औसत तापमान 0.3 डिग्रो हुआ है, इसलिए वैश्विक स्वास्थ्य सर्वे कार्यक्रमों में सुधार शोध, स्वास्थ्य व्यवसायियों की शिक्षा और अंतराष्ट्रीय सहयोग आज की आवश्यकता है। औद्योगिक राष्ट्रों में जलवायु परिवर्तन के सबसे गंभीर प्रभाव संभवतया लू के थपेड़ों के रूप में देखे जा सकेंगे। इण्टर गवर्नमेण्ट पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज आई पीसीसी की ताजा रिपोर्ट के अनुसार 1 से 3 डिग्री सेल्सियस की वैश्विक तापवृद्धि संभवतया शीतोष्ण क्षेत्रों में अत्यधिक गर्म दिवसों की संख्या में वृद्धि करेगी जिसके परिणाम स्वरूप तापघात के कारण कई हजार अतिरिक्त मौतें प्रतिवर्ष हो सकती है। गर्मियों की बढती तपिश से बचने के लिए वातनुकूलन विधियों को प्रयोग करनें में सक्षम लोग इसका अधिकाधिक उपयोग करेंगे जिससे विद्युतगृहों के द्वारा वायु प्रदूषण में वृद्धि होगी। विद्युत संयंत्रों से निकलने वाले बारीक कण सीधे तौर पर सांस एवं दिल की बीमारियॉ के कारण अस्पतालों में होने वाली भर्तियों से जुडे हैं।

ग्लोबल वर्मिंग के कारण विश्व समाज पर पडने वाले प्रभाव :

खादय पैदावार में कमी, बढती जनसंख्या, भोजन की समस्या, पेयजल का नित गहरता संकट, शुध्द वायु की कमी, उपजाउ भूमि का संकुचन, ईधन की पूर्ति के प्रयास में खाध आपूर्ति स्त्रोत का क्षरण, तेजाबी बारिस का खतरा, मिटटी कटाव का अधिक होना, बाढ प्रकोप में निरन्तर वृध्दि, सुनामी प्रकोप भारत के तटीय क्षेत्रों के डूबने की आशंका, विश्व के औसत तापमान में वृद्वि के कारण द्वीपो एवं समुद्व तटीय क्षेत्रों के डूब जानें का खतरा एवं विभिन्न के बीमारियों का वरण एवं सूखा, भूकंप, तूफान की संभाबना बढ जाएगी। एक रिपार्ट के अनुसार भारत में कृपि पर 60 प्रतिशत आबादी निर्भर हैं। ठण्ड के दिनों में 0.5 डिग्री सेण्टीग्रेट तापमान बढने से गेहूं की फसल प्रति हेक्टेअर 0.45 टन कम हो सकती है अर्थात उत्पादकता में 17 प्रतिशत की कमी होगी। देश के लगभग 50 प्रतिशत जैवविविधता पर खतरे के बादल मंडरा रहे है यदि तापमान 1.5 से 2.5 डिग्री सेल्सियस बढा तो लगभग 25 प्रतिशत पौधा ओर जानवरों की प्रजातियां विलुप्त हो सकती है। हम सब प्राकृतिक रूप से अविभाज्य एक ही पर्यावरण के अंश है, इसका संरक्षण करना हम सब का नैतिक उत्तरदायित्व हैं।

निष्कर्षः– ग्लोबल वार्मिंग एवं जलवायु परिवर्तनः– एक प्रमुख दीर्घकालिक समस्या है जिसके अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक समाधान की आवश्यकता है। इसलिए सभी को उपभोक्तावादी संस्कृति का परित्याग कर त्यागवादी संस्क्ति को अपनाना चाहिए। प्रगति और प्रकृति एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी न

होकर पूरक है, अतः विकास वही है जिससे हम प्रक्ति की मूल सम्पदा को बचाये रखते हुए ब्याज से ही काम चलाते रहें। हमें आचार्य चाणक्य का यह कथन याद रखना चाहिए कि –''साम्राज्य की स्थिरता के लिए पर्यावरण की स्वच्छता आवश्यक है।''स्वच्छ पर्यावरण को मानव अधिकार मानकर यदि परियोजनाओं का आकलन किया जाए तो काफी हद तक इस समस्य का हल ढूंढा जा सकता है। अब आवश्यकता इस बात की हैं कि हमें अपनी पारंपरिक जीवनशैली को पुनः अपनाने का प्रयास करना चाहिए। कुल मिलाकर प्रत्युत्तर में हमें कार्बन उत्सर्जन को नियन्त्रित करने की कोशिश करनी चाहिए इसका विचारहीन एंव अनैतिक प्रयोग हमें विपत्ति में लाकर खडा कर देगा ,जो लम्बे समय बाद हमारे सर्वनाश के लिए अवश्य ही जिम्मेदार होगा। जब हम पर्यावरण को अनजाने में इसे नुकसान पहुंचा रहे थे, तो यह क्षम्य था, लेकिन आज हम अपनी गतिविधयों के परिणाम को जानते है और इसे रोकने के लिए सर्व़श्रेठ प्रयास करना हमारा कर्तव्य व दायित्व है।

संदर्भः–

- पाण्डेय, एस. एस., (1962) "समाजशास्त्र", टाटा मैक्ग्रा हिल्स एज्यूकेशन।
- सिंह, जे. पी.,(2013) "समाजशास्त्रः अवधारणाएं एवं सिद्धांत", तृतीय संस्करण, पी. एच. आई. लर्निंग प्रा. लि.,नई दिल्ली
- सिंह, सविन्द्र, (2012)''पर्यावरण भूगोल'', प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

———

"कृषि विकास पर सिंचाई एवं जल प्रबंधन के प्रभाव का भौगोलिक अध्ययनः छिन्दवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में"

डॉ. बी. एन. त्रिपाठी,

भूगोल विभाग

शास. महिला मानकुवरबाई महाविधालय जबलपुर (म.प्र.)

देवालाल माण्डेकर,

पी.एचडी.शोध छात्र

रानी दुर्गावती विश्वविधालय जबलपुर (म.प्र.)

देश में हाल के वर्षो में कृषि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रांति हुई है। आधुनिक कृषि नवाचारों का उपयोग बढ़ाने के लिऐ रामबाण साबित हुआ है। इन नवाचारों में उच्च उपज बीजों की विविधता, उर्वरक, कीट और रोग नियंत्रण, उपकरण और औजार के लिए रसायनों के रूप में नई और बेहतर जानकरी, बेहतर कृषि पद्वतियों और तरीकों में सुधार और कृषि प्रबंधन और विपणन प्रणाली की प्रथाए शामिल है। इनमें से सिंचाई कृषि विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे खेती में गहनता की सुविधा उपलब्ध होती है। रबी के मौसम में नमी को कमी की वजह से परती छोड़ी हुई भूमि में उत्पादकता और उत्पादन में स्थिरता में वृद्वि सुनिश्चित करने के लिये समय पर पानी की अपूर्ति की जाती है। बागवानी फसलों के तहत क्षेंत्र का विस्तार भी सिंचाई के विकास के द्वारा संभव हुआ है। एक ही समय में, उर्वरकों और उन्नत बीजों का उपयोग के साथ सिंचाई की जाती है। कृषि विकास पर विस्तृत सिंचित सुविधाओं का इन और दूसरी संभावित योगदानों का मूल्यांकन किया जाना हैं।

आर्थिक विकास के लिए कृषि सिंचाई अधार है। परंतु पानी की कमी प्रमुख कारण है। भारत का कृषि क्षेत्र लगभग सम्पूर्ण जलसंसाधन का लगभग 90 प्रतिशत जल का उपयोग करता है, और देश इस सिंचाई जल का 80 प्रतिशत भूमिगत जल द्वारा प्राप्त करता है। अतः जल की कमी का एक बड़ी समस्या है।

मध्यप्रदेश सहित देश के अनेक राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, उ.प्र., आंध्रप्रदश, कर्नाटक ,तमिलनाडू, गुजरात तथा राजस्थान के सूखते हुए जलस्त्रोतों के कारण जल प्रबंधन व्यवस्था में सुधार के उपायो में तीव्रता लाना अवाश्यक हो गया है। क्योंकि जल की कमी के कारण कृषि अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

दूसरी ओर भूजल में बढ़ते उपयोग से प्रदूषण बढ़ रहा है। रासायनिक द्रृष्टि से पेयजल की उपयुक्तता निर्धारण में नाइट्रेड तथा फलोराईड की महती भूमिका होती है। हमारे देश के कई राज्यो में भूजल में नाइट्रेड, फलोराइड एवं आसेनिक की सांद्रता अधिक हो जाने के कारण लाखो लोग इनक दुष्प्रभाव से पीडित है। केद्रीय भू जल बोर्ड ने जनजागृति कार्यक्रमों, जल प्रबंधन प्रशिक्षण कार्यक्रमों भूजल पुस्तिकाओं के वितरण जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रमों कों कियान्वित करके भुजल के गिरते स्तर को रोकने की दिशा में प्रभावी प्रयास किये हैं, एवं पानी कों प्रदूषण से बचाने के ठोस कदम उठाये जायें।

देश में प्रचलित सिंचाई के कई साधन हैं, हालांकि विकास कार्यक्रम निर्मित सिंचाई क्षमता का पूरा उपयोग के मुख्य उद्देश्य के साथ किया जा रहा है। राज्य में लागू इष्टतम कृषि उत्पादन प्राप्त करने और एक एकीकृत कमांड(सांसद कतंजि अपप प्लान, 84) सिंचित क्षेत्रों के सामाजिक–आर्थिक विकास के बारे में लाने. इसके अलावा सिंचाई का विकास एक स्थानीय घटना है। सिंचित क्षेत्र की सीमा में असमानता के लिए वार्षिक वर्षा और उसके परिर्वतनशीलता की मात्रा एक निश्चित सीमा तक सम्बधित है। भूमि की गुणवत्ता भी सिंचाई के निर्धारको में से एक है। प्रमुख सिंचित क्षैत्र मध्यम से बहुत अच्छी गुणवत्ता भूमि पर विकसित किये गये है। सामाजिक आर्थिक स्थिति इस असमानता पैदा करने में अक्सर, नहर और नलकूपों के क्षेत्रों में सिंचाई की उच्च तीव्रता और इन सार्वजनिक क्षेत्र म है, और हमेसा की तरह राजनैतिक रूप से जागरूक क्षेत्रों में है। इस दृष्टिकोण से दोनो वर्गो के लोग सीमांत और छोटे और सामाजिक पिछड़े समुदाय मुख्य रूप से पीछे है, चूंकि सिंचाई का अन्य कृषि उत्पादकता के उपयोग पर निर्णायक प्रभाव है। इन लोगों को अपने प्रभुत्व के क्षेत्रों के लिए इसकी उपलब्धता उचित है।

निर्मित सिंचाई सम्भाव्य क्षमता का पूरा उपयोग, अनुकूलतम कृषि उत्पादन प्राप्त करने और कमांड क्षेत्र से सम्बधित एकीकृत सामाजिक ,आर्थिक विकास मुख्य उद्देश्य से सम्बन्धित राज्य में कियान्वित किये जा रहे हैं। कृषि के आधुनिक तकनीक का ज्ञान का अभाव होना ,अपने कृषि कार्य से दूर जाना आदि का विश्लेषण एवं अध्ययन करना मुख्य उद्देश्य है ।

स्वपोषी विकास वर्तमान में सबसे अधिक चर्चित विषय है । दुनिया भर में बुद्धिजीवियों, नीति निर्धारकों और पर्यावरण विदों के लिये यह एक चुनौती का विषय है । स्वपोषी विकास मानव समुदाय के साथ–साथ पर्यावरण के अस्तित्व से जुड़ा है । पर्यावरण में अस्थिरता तब आती है । जब प्राकृतिक संसाधनों का लम्बे समय से क्षय हो रहा हो । इस स्थिति में सम्पूर्ण प्राणी मात्र के नष्ट होने की संभावना बढ़ जाती ह ।

स्वपोषी विकास (SUSTAINABLE DEVELOPMENT) विकास की वह अवधारणा है, जिसमें विकास की नीतियॉ बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मानव की न केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति हो, वरन् अनंतकाल तक मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित हो सके । इसम प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा पर विशेष बल दिया जाता है । यह संसाधनों के उपयोग की एक

अनुकूलतम स्थिति है, जिसमें पयावरण संरक्षण के साथ–साथ वर्तमान आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए आगे आने वाली पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित की जाती है । वस्तुतः यह अवधारणा विकास के साथ–साथ प्राकृतिक तथा परिस्थितिकीय तंत्र को सुरक्षित रखने की चुनौती है । यह केवल आर्थिक विकास नहीं है, इसमें बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक और पर्यावरण विकास भी सम्मिलित है ।

स्वपोषी विकास एक ऐसी अवधारणा है, जो वर्तमान जरूरतो को पूरा करते हुए भविष्य में जमीन, जल, जंगल, जंतु और मानव जाति की परस्पर निर्भरता की वकालत करता है । इसके अंतर्गत वही तकनीक उचित मानी जायेगी जिसमें आर्थिक पक्ष के साथ–साथ परिस्थितिकी तंत्र तथा नैतिकता का भी ध्यान रखा जावेगा । इसके अंतर्गत व्यापार करने की परंपरागत पद्धतियॉ है, उनके स्थान पर ऐसी पद्धतियॉ अपनामी होगी, जिससे समस्त विकास प्रक्रिया में पर्यावरणीय एवं सामाजिक चुनौतियों का समावेश हो । ऐसा विकास जो धरती की परिस्थितिकी को संतुलित रखे और इसका भाग हो ।

सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि अनियोजित विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन के कारणों को जाने बिना उठाये गये छोटे–छोटे कदम इस समस्या को हल करने में मददगार साबित हो पायेंगे, जिसका हम सामना कर रहे हैं ?

इस अवधारण के अंतर्गत एक ऐसे तंत्र को विकसित करने की आवश्यकता है, जिसमें तेज गति से उपयोग किये जाने प्राकृतिक संसाधनों का पुर्नउत्पादन हो सके । यह विकासशील देशों को विकास की सीमा निर्धारित करने के लिये कहती है । वर्तमान विकास योजनाओं में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पर्यावरण की कम से कम क्षति हो । प्राकृति संसाधनों का उपयोग उस मात्रा में किया जाना चाहिये, जिस मात्रा में उनका पुर्नउत्पादन हो रहा हो ।

स्वपोषी विकास के लिये व्यापक जनभागीदारी और सामाजिक विकास की भावना आवश्यक है । यह सामूहिक प्रयासों से ही संभव है । इसके लिय प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी । गांधी जी कहा करते थे ''प्रत्येक की जरूरत के लिये पृथ्वी पर सब कुछ मौजूद है, लेकिन उनके लालच के लिये नहीं'', अतः हमें आगे आने वाली पीढ़ी का भविष्य यदि सुरक्षित रखना है तो अपनी जरूरतों को ऐसे स्त्रोतों से पूरा करना होगा, जिन्हे पुनः उत्पादित किया जा सके । ऐसे ही समस्त तथ्यों का प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषण किया गया है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

- छिन्दवाड़ा विकास का एक दशक (1991–2001), जिला छिन्दवाड़ा।

- धुर्वे, डॉ. शालिनी (2012), ''गोंड जनजाती में नगरीयकरण (छिदवाड़ा जिले के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन), अप्रकाशित शोध ग्रंथ, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर।
- जिला सांख्यिकीय पुस्तिका 2019, 2004, 2006, 2008 छिन्दवाड़ा, म. प्र.।
- बंजारी, गुलाब (2002), ''आदिवासी विकास परियोजनाओं का मूल्यांकन– छिन्दवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में'' वाणिज्य संकाय, शोध ग्रंथ, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.).
- कुमार, प्रमिला, (1977): मध्यप्रदेश : एक भौगोलिक अध्ययन, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल,
- शुक्ला. भगवत प्रसाद (1937): ''छिन्दवाड़ा छवि'' दिसम्बर .
- शर्मा, एच. एल. (1989): ''बैतूल–'छिन्दवाड़ा पठार में जनसंख्या की संरचनात्मक विशेषतायें, ग्लोब, दिसम्बर
- तिवारी डॉ. एस. सी., (1994): ''मध्यप्रदेश के आदिवासी'' मध्यप्रदेश के प्रमुख आदिवासियों के संबंध में अध्ययन, जबलपुर (म.प्र)
- वर्मा. रवि. ''ज्वाला'', (1983): ''छिन्दवाड़ा का बोलता अतीत'' ''अनामिका''

पारिस्थितिक संतुलन वनाम मानव विकास

माधवलाल पाठे

शासकीय महाविद्यालय बिछुआ

मानव जीवन का अस्तित्व पर्यावरण पर निर्भर करता है। वर्तमान समय में पर्यावरण के घटक जैविक अजैविक दोनों ही प्रदूषित हो रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप मानव और प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है। जिसका प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। पर्यावरण में घुली विषैली गैसें कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईआक्साइड, नाईट्रोजन ऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन, वाष्प गंध, धुंआ–धूल के कण फफूंद, फंगस और अनेक जीवाणुओं की उपस्थिति में मानव स्वास्थ्य को चुनौतियां दी हैं। मानव द्वारा प्रयोग किये जाने वाले जीवन उपयागी साधनों जिनमें ईधन, अनाज, जल, साग–सब्जी, फल आदि सभी रासायनिक उर्वरकों के कारण दूषित हो रहे हैं। क्योंकि मानव की अज्ञानता, जनसंख्या वृद्धि, वनों का विनाश, समाज म साफ सफाई का अभाव, बढ़ती गंदगी, गंदे आवास, प्रदूषित जलने मानव स्वास्थ्य को खतरा पैदा कर दिया है। प्राकृतिक आपदायें बाढ़, सूखा, महामारी, संक्रामक रोग, वायुजनिक रोग, जल प्रदूषण से उत्पन्न रोग और वायरस से उत्पन्न रोगों ने मानव के अस्तित्व को खतरा पैदा कर दिया है।

मानव विकास

इनका सबका कारण और दायित्व मानव पर भी है उसने अपने स्वार्थ के कारण पार्यावरण का अत्यधिक दोहन और उसका प्रदूषण किया है जिसके कारण ही समाज में पर्यावरण और मानव के बीच प्राकृतिक संतुलन गड़बडा गया है जिससे भयानक संक्रामक रोग मानव अस्तित्व को खतरा पैदा कर रहे है और उनके आगे आधुनिक समाज के स्वास्थ्य विकास के प्रयास बोने होते जा रहे हैं। मानव के मार्यों का दुष्परिणाम ही प्राकृतिक प्रदूषण, वन विनाश, जल प्रदूषण, खनिज प्रदूषण, खाद्य प्रदूषण, ऊर्जा संसाधनों का प्रदूषण, पास्थितिक प्रदूषण, जेव विविधता संरक्षण प्रदूषण, पर्यावरण प्रदूषण, वायु जल, मृदा, और महासागरीय प्रदूषण के साथ ध्वनि शोर तापीय, न्यूक्लीक, संकट की अनेक सामाजिक समस्यायें उत्पन्न कर दी हैं। पर्यावरण प्रदूषण और मनव स्वास्थ्य के लिए मानव जनहित कार्य, जनसंख्या वृद्धि एक बड़ा कारण है जिसके कारण है जिसके कारण ही मानव स्वास्थ्य मानव अधिकार, महिला और बाल कल्याण प्रभावित हो रहा है। यदि हम चाहते हैं कि मानव स्वास्थ्य की रक्षा की जाये, तो हमें पर्यावरण को शुद्ध बनाने का प्रयास करना होगा। इसके लिये वनों का विकास, घास के मैदानों का विकास, पहाड़ नदी नालों तालाबों और प्राकृतिक स्थलों का संरक्षण करना होगा ताकि हम मानव को हम वायु प्रदूषण, अम्ल वर्षा, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, तापीय प्रदूषण, तेल प्रदूषण एवं अतिरिक्त

ऊर्जा स्त्रोत प्रदूषणों, खदान प्रदूषण, मिट्टी संरचना क्षरण और प्रद्षण तथा अवशिष्ट पदार्थों के निष्तारण प्रदूषण के हानि कारक प्रभावों से बचने का प्रयास करना होगा।

जलवायु का प्रभाव किसी भी देश के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर पडता हैं। जैसे कि भारत में जलवायु की विविधता स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती हैं इसलिए मानसूनी पवनो को भारत की जीवन धुरी कहा जाता हैं भारत में जलवायु दशाओ के कारण वर्ष भर कृषि कार्य किया जाता हैं। क्योकि यह विभिन्न प्रकार की फसले हेतु तापमान वर्ष भर अनुकूल होता हैं। जलवायु की विभिन्नता विविध फसलो के उत्पादन हेतू एक अनुकुल वातावरण का निर्माण करती हैं।

प्राचीन काल में भारत में दुध की नदियॉ बहा करती थी परन्तु वर्तमान समय में कुछ महिनो को छोडकर बाकी माह में शुष्क होते हैं सदाबहार चारागाह, भूमि का आभाव हो रहा हैं। वर्षा की अनिशिचतता का प्रभाव सबसे अधिक कृषि पर पडता हैं क्योकि वर्षा पर्याप्त मात्रा नही होने के कारण कृषि फसलो पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडता हैं। जैसे जलवायु परिवर्तन के कारण ग्रीष्म ऋतु में उष्न तथा नम जलवायु मानव के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड रहा हैं जिससे मनुष्य की कार्य करने की क्षमता हीन हो रही हैं। इसके अलावा वन सम्पदा, उधोग, परिवहन एव मानव जीवन में विभिन्नता प्ररिलक्षित हो रही है।

सतत विकास

सतत विकास या स्वपोषी विकास, विकास की वह अवधारणा है जिसमें विकास की नीतियां बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मानव की न केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति हो, वरन् अनन्त काल मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित हो सके। इसमें प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। सतत विकास, संसाधनों के उपयोग करने का एक आदर्श मॉडल प्रस्तुत करता है, जिसमें पर्यावरण के संरक्षण के साथ–साथ वर्तमान मानवीय जरूरतों को पूरा करते हुए आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं को भी पूरा करना सुनिश्चित किया जाता है। सतत विकास को तीन पृथक–पृथक भागों में विभक्त किया गया है– पर्यावरणीय स्थायित्व, आर्थिक स्थायित्व और सामाजिक–राजनीतिक स्थायित्व। सतत विकास, मानवकेन्द्रीत अधिक न होकर पारिस्थितिकीय केन्द्रित अधिक है। वही तकनीक उचित मानी जाएगी जिसमें आर्थिक पक्ष के साथ–साथ पारस्थितिकीय एवं नैतिक पक्ष का भी ध्यान रखा जाए। जबकि मौजूदा समय में लंबी–चौड़ी सड़कों, बड़े बांधों, वृहद आकार के पुलों, ज्यादा फसल उत्पादन विकास और सकल घरेलु उत्पाद (जीडीपी) के बढ़ने को ही विकास का मानदंड़ बताया जा रहा है, जो की सतत विकास की अवधारणा से परे हैं। आर्थिक स्थायित्व के लिए सूचना, एकता और सहभागिता अथवा भागिदारी जैसे तत्वों की पहचान की गई है। सतत विकास कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति सूचना प्रदाता है और वह सूचना ग्रहणकर्ता भी है। सतत विकास के अन्तर्गत व्यापार करने की परंपरागत पध्दतियां हैं उनके स्थान पर नई पध्दतियां लानी होगी, जिनमें कि समस्त विकास प्रक्रियाओं में पर्यावरणीय एवं सामाजिक चिंताओं को सतत विकास की धारा में जगह

मिलेगी। सतत विकास को प्राप्त करने के लिए निर्णय निर्माण में व्यापक जनभागीदारी को मूलभूत आधार माना गया है।

प्रस्तुत शोध आलेख में सतत विकास के विविध अंगों–उपांगों तथा उससे जुड़ी वैश्विक चिंताओं को रेखांकित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास परिषद द्वारा निर्धारित सतत विकास क्षेत्र के दायरे में आने वाले विषयों में कृषि, जल, वायुमंडल, जैवतकनीक, सक्षमता निर्माण, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता, उपभोग एवं उत्पादन पध्दतियां, जनांकिकी, मरूस्थलीकरण एवं अकाल, आपदा नियंत्रण एवं प्रबंधन, शिक्षा एवं जनजागरण, ऊर्जा, पारिस्थितिकीय तंत्र, वित्त, वन संपदा, स्वच्छ जल, स्वास्थ्य, मानव विस्थापन, सूचक, उद्योग, सहभागिता एवं निर्णय लेने में सूचना, अंतरराष्ट्रीय कानून, पर्यावरण सुदृढ़ता के लिए अंतरराष्ट्रीय परस्पर सहयोग, संस्थागत व्यवस्था, भू–प्रबंधन, पर्वत श्रृंखला, महासागर एवं सागर, निर्धनता, प्रौद्योगिकी, परिवहन आदि को सम्मिलित किया गया है। ''प्रकृति और संस्कृति का संयोजन ही पर्यावरण है।'' इस अवधारणा पर चलकर यूरोपीय संघ द्वारा प्रायोजित 'विविध दुनिया में सतत विकास' ने बहुसैध्दांतिक क्षमताओं को एकीकृत करना और सांस्कृतिक विविधताओं की व्याख्या करना, सतत विकास की रणनीतियों के प्रमुख अवयव निर्धारित किए हैं। निश्चित रूप से सतत विकास का विचार और महत्ता समकालीन दुनिया में निरंतर लोकप्रिय हो रहा है, क्योंकि सतत विकास मानव समुदाय के साथ–साथ पर्यावरण के अस्तित्व से भी जुड़ा है। विकास में अस्थिरता उस समय आती है जब प्राकृतिक संसाधनों तथा वातावरण का लंबी अवधि तक क्षय होता रहा हो। इस स्थिति में मानवीय जीवन अस्थिर हो जाएगा और वैश्विक स्तर पर सम्पूर्ण जैव तंत्र नष्ट होने की संभावना बलवती होगी। स्पष्टतः सतत विकास को प्राप्त करने के लिए व्यापक जनभागीदारी और सामाजिक उत्तरदायित्व को मूलाधार माना जा सकता है।

संदर्भः–

- पाण्डेय, एस. एस., (1962) "समाजशास्त्र", टाटा मैक्ग्रा हिल्स एज्यूकेशन।
- सिंह, जे. पी.,(2013) "समाजशास्त्रः अवधारणाएं एवं सिद्धांत", तृतीय संस्करण, पी. एच. आई. लर्निंग प्रा. लि.,नई दिल्ली
- सिंह, सविन्द्र, (2012)''पर्यावरण भूगोल'', प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

जनसंख्या वृद्वि का कृषि विकास सिंचाई एवं जल प्रबंधन के प्रभाव

सौंसर –पांढुर्णा राज्यमार्ग व्हाया मोहगाव सड़क पर स्थित ग्रामों के संदर्भ में

डॉ. बी. टेंभरे
सहा. प्राध्यापक भूगोल
रा. दु. शा. महा. मण्डला (म.प्र.)
दिलीप ढोबाले
अतिथि व्याख्याता (भूगोल)
शास. महाविद्यालय बिछुआ जिला छिंदवाड़ा

वर्तमान में जनसंख्या विस्फोट एंव दूषित होता पर्यावरण सम्पुर्ण विश्व के साथ ही भारत की एक प्रमुख समस्या हैं । भारत में जनसंख्या वृद्वि बहुत तेजी से हो रही हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या के बराबर जनसंख्या बढ़ रही हैं। म. प्र. में जनसंख्या 72597565 वृद्वि दर 20.30 एंव छिंदवाड़ा जिलें की जनसंख्या 2090306 वृद्वि दर 13.00 है।

सौंसर –छिंदवाड़ा राजमार्ग व्हाया मोहगाव हवेली सड़क मार्ग पर स्थित गावो में प्रत्यक्ष अवलोकन एंव सर्वेक्षण द्वारा सर्वेक्षित गावो में मोहगाव, छत्रापूर, पंधराखेड़ी, सांवगी, रझाड़ी पिपला, उमरा, सावजपाणी, भुली, तथा मोंरडोंगरी में गावों के क्षेत्रफल लगभग डेंढ गुणा वृद्वि हो रही है। जिसका मुख्य कारण जनसंख्या वृ,द्वि एंव जिसके कारण परिवारो की संख्या बढ़ी रही हैं।

मानव ने परिवार के पालन–पोषण के लिए आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक मे विकास प्रगत प्रौद्योगिक, रासयनिक खादो के उत्पादन तथा उपभोग मे वृद्वि सिचाई के साधनो एंव सुविधाओ में वृद्वि तथा विस्तार, अधिक उत्पादन वाले बीजो के विकास आदि के माध्यम से कृषि में पर्याप्त विस्तार एंव विकास (कृषि क्षेत्र में विस्तार कृषि की उत्पाकता में वृद्वि तथा नेट कृषि उत्पादन में व्रृद्वि) किया हैं। तथा निरन्तर बढ़ती मानव जनसंख्या के कारण बढती खाद्यानों की मांग की पूर्ती तो कर दी है परंतु साथ ही साथ घातक पर्यावरणीय समस्याओ को भी जन्म दिया हैं।

सर्वेक्षित गॉवो के पास के कृषि भूमि पर निवास क्षेत्र का विस्तार हो रहा तथा चारागाह वन भूमि, परती भूमि आदि का उपयोग कृषि कार्यो के लिए किए जाने लगा हैं। जिसके कारण वन क्षेत्र मे कमी वन क्षेत्रो में जगली जीवो में कमी भूमि में कमी पशुपालन में कमी के कारण दिर्घ तकनीक उपजाउ क्षमता में कमी किटनास्को के उपयोग भूमि, जीव जन्तुओं पर प्रभाव हो रहा है तथा भूमिगत जल स्तर में भी कमी हो रही है।

मानव जनसंख्या वृद्वि को ध्यान में रखते हुए कृषि के विस्तार एवं विकास की रफ्तार को निश्चय ही कायम रखना है परन्तु साथ ही साथ यह भी देखना है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कृषि विकास की बढ़ती रफ्तार के कारण पर्यावरण अवनयन की समस्या कही भयावह रूप न धारण कर ले।

बढ़ता तापमान आज दुनिया के सामने सबसे बड़ा मुद्दा है। अनेक संगठन इस स्थिति में है कि वे इसके क्षेत्रवार प्रभाव तक बता पाने समक्ष है। इस परिवर्तन से प्रत्येक बीता हुआ दिन सृष्टि के लिए अतिरिक्त जोखिम पैदा करता जा रहा है। सन् 1850 से अब तक के सर्वाधिक 20 वर्षो की गणना करें तो हम पायेगें कि सन् 1995 से लेकर 2015 तक के बीस में से उन्नीस वर्ष पिछले 100 वर्षो में सर्वाधिक गरम थे। कुछ रिपोर्ट हमें आसन्न चुनौतियों के बीच पृथ्वी पर जीवन को बचाए रखने का सुझाव भी देती है। उदा.के लिए आईपीसीसी पैनल के सदस्य रह चुके राजेन्द्र पचौरी का कथन है कि हम भले उत्सर्जन को बहुत सीमित कर ले और वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा इसी स्तर पर बनाएं रख तों समुद्री स्तर पर रखें तो भी समुद्री जल स्तर 0.04 मी.से 1.4मी. तक बढ़ने की आशंका बनी रहेगी,क्योंकि समुद्री जल के गर्म होने की क्रिया तो जारी रहेगी ही,जिससे फलस्वरूप समुद्री क्षेत्र में फैलाव होना लाजमी है। समुद्रों के जल स्तर की बढती रफ्तार सन् 1961 के 1.8 मिमी प्रतिवर्ष की तुलना में 1993 में 3.1 मिमी प्रतिवर्ष तक पहुंच गई है। इसकी मुख्य वजह है कि बढ़ते तापमान से हो रही घनत्व वृध्दि और ग्लेशियरों व पहाड़ी ध्रुवों पर जमी बर्फ और ध्रुवों की चादरों का पिघलाव।

अनुमान है कि 21 वीं सदी के अंत तक समुद्री जलस्तर में वृध्दि का कदा 18 से 59 सेमी का स्तर लेगा। तापमान में वृध्दि के कुछ असर आकस्मिक और अपरिवर्तनीय भी होंगें। दक्षिण पूर्व एवं दक्षिण पूर्व एशिया के तटीय क्षेत्रों खास तौर से बड़ी आबादी वाले वृहद डेल्टा प्रदेशों में बाढ़ का ज्यादातर खतरा रहेंगा यदि भारत की स्थिति देखे तो इसका परिणाम सन् 2004 में हिंदमहासागर में आयी भयावह सुनामी के रूप में देखा जा सकता है। जहां एक ओर जलवायु चक्र परिवर्तन से कई प्राकृतिक आपदाओं का खतरा सामनें आया है,वहीं दूसरी ओर प्रदूषण और मृत्युदर में भी भारी वृध्दि हुई है। रिपोर्ट की माने तो 1850 से लेकर अब तक 1995 से 2015 के 20 वर्षों में 0.74 डिग्री सेल्सियस वृध्दि हुई है जो पिछले 100 वर्षों में तापमान वृध्दि के बराबर है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो वह दूर नहीं जब पृथ्वी मात्र हमारी सपनों की दुनिया ही रह जाएगी। अभी हाल ही में पेंरिस (फ्रांस) में संपन्न हुए विश्व जलवायु परिवर्तन सम्मेंलनों जैसे कई कारगर सभाओं के साथ–साथ जमीनी हकीकत पर भी उपाय आवश्यक हैं। यह केवल एक देश या एक संस्था का कार्य नहीं बल्कि यह तो समेकित एवं सर्व ग्राह विषम है जिसमें मात्र सरकारों या संगठनों की जिम्मेंदारी आवश्यक नहीं है बल्कि यह तो प्रत्येक नागरिक की जागरूकता और उपयुक्त कदम की पर्याय है। मेरे अनुसार पर्यावरण प्रदूषण एवं जलवायु परिवर्तन सबसे ज्वलंत एवं अत्यंत अनुकरणीय मुद्दा है,इसमें देशों–विदेशों के महान वैज्ञानिकों,विद्वानों,को एक साथ मिलकर आगे आना चाहिए तथा इसके कारगर उपाय करने चाहिए यथासंभव हमें तथा सभी को जागरूक होकर सतत् इनके निवारण के लिए अविरत प्रयास करने चाहिए।

वर्तमान में जनसख्या विस्फोट एंव दूषित होता पर्यावरण सम्पुर्ण विश्व के साथ ही भारत की एक प्रमुख समस्या हैं । भारत में जनसंख्या वृद्धि बहुत तेजी से हो रही हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या के बराबर जनसंख्या बढ़ रही हैं। म. प्र. में जनसंख्या 72597565 वृद्धि दर 20.30 एंव छिंदवाड़ा जिलें की जनसंख्या 2090306 वृद्धि दर 13.00 है।

कृषि–

सौंसर –छिंदवाड़ा राजमार्ग व्हाया मोहगाव हवेली सड़क मार्ग पर स्थित गावो में प्रत्यक्ष अवलोकन एंव सर्वेक्षण द्वारा सर्वेक्षित गावो में मोहगाव, छत्रापूर, पंधराखेड़ी, सांवगी, रझाड़ी पिपला, उमरा, सावजपाणी, भुली, तथा मोंरडोंगरी में गावों के क्षेत्रफल लगभग डेंढ गुणा वृद्वि हो रही है। जिसका मुख्य कारण जनसंख्या वृ,द्वि एंव जिसके कारण परिवारो की संख्या बढ़ी रही हैं।

मानव ने परिवार के पालन–पोषण के लिए आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक मे विकास प्रगत प्रौद्योगिक, रासयनिक खादो के उत्पादन तथा उपभोग मे वृद्धि सिचाई के साधनो एंव सुविधाओ में वृद्धि तथा विस्तार, अधिक उत्पादन वाले बीजो के विकास आदि के माध्यम से कृषि में पर्याप्त विस्तार एंव विकास (कृषि क्षेत्र में विस्तार कृषि की उत्पाकता में वृद्धि तथा नेट कृषि उत्पादन में व्रृद्धि) किया हैं। तथा निरन्तर बढ़ती मानव जनसंख्या के कारण बढती खाद्यानों की मांग की पूर्ती तो कर दी है परंतु साथ ही साथ घातक पर्यावरणीय समस्याओ को भी जन्म दिया हैं।

सर्वेक्षित गॉवो के पास के कृषि भूमि पर निवास क्षेत्र का विस्तार हो रहा तथा चारागाह वन भूमि, परती भूमि आदि का उपयोग कृषि कार्यो के लिए किए जाने लगा हैं। जिसके कारण वन क्षेत्र मे कमी वन क्षेत्रो में जगली जीवो में कमी भूमि में कमी पशुपालन में कमी के कारण दिर्घ तकनीक उपजाउ क्षमता में कमी किटनास्को के उपयोग भूमि, जीव जन्तुओं पर प्रभाव हो रहा है तथा भूमिगत जल स्तर में भी कमी हो रही है।

मानव जनसंख्या वृद्धि को ध्यान में रखते हुए कृषि के विस्तार एवं विकास की रफ्तार को निश्चय ही कायम रखना है परन्तु साथ ही साथ यह भी देखना है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कृषि विकास की बढ़ती रफ्तार के कारण पर्यावरण अवनयन की समस्या कही भयावह रूप न धारण कर ले। कृषि मनुष्य द्वारा किया जाने वाला सर्वाधिक प्राचीन उद्यम है, जिसकी उपस्थिति सभी तरह के समाजों में भिन्न रूपों में पाई जाती है। आधुनिक समय में हुए औद्यागिकरण के फलस्वरूप व नगरीकरण के बावजूद भी सबसे अधिक जनसंख्या कृषि कार्यो में लगी हुई है। विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 45 प्रतिशत कृषि कार्य पर अश्रित है। विकासशील देशों की तो 80 प्रतिशत जनसंख्या की जीविका का आधार कृषि है। कृषि भारत का प्राचीन व्यवसाय है। भारत की 64 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर है। सकल घरेलू उत्पादन का 25 प्रतिशत कृषि व्यवसाय से प्राप्त हो रहा है। देश में राष्ट्रीय आय का 28 प्रतिशत कृषि से प्राप्त होता है।यहाँ विश्व की 16.5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। भारत की जनसंख्या नियमित रूप से तीव्र गति से बढ़ रही है। जिसका दबाब कृषि भूमि पर पड़ रहा है। जनसंख्या खाघ पूर्ति के लिए कृषि उत्पादन पर जोर दिया जा रहा है। भोजन मानव की मूलभूत आवश्यकता है और अन्न से ही जीवन है अथवा इसकी पूर्ति के लिए 60 के दशक में भारत में हरित क्राति आई और 'अधिक अन्न उगाओं' का नारा दिया गया इसे 'भारतीय कृषि का आधुनिकीकरण' कहा गया। समय के साथ वैश्वीकरण का प्रभाव कृषि विकास पर पडनें लगा ।

प्रस्तुत शोध–पत्र का प्रमुख उददे्श्य म.प्र के कृषि विकास का वर्णन करना व म.प्र के कृषि विकास में वैश्वोकरण के प्रभाव अध्ययन करना है। प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक आँकडों का

संकलन किया गया है। शोध पत्र की रोचकता और विविधता लाने तथ्यों की पहचान विश्लेषण व व्याख्या का मार्ग प्रशस्त करने हेतु मानचित्रों का व दण्डारेखों ग्राफों का उपयोग किया जाएगा। जिससे यर्थाथता का चित्रण प्रदर्शित हो सके।

प्रस्तुत शोध–पत्र का अध्ययन क्षेत्र म.प्र. है, म.प्र. राज्य भारत वर्ष के केन्द्र में स्थित होने के कारण भौगोलिक, प्राकृतिक ,आर्थिक व कृषि सहित सभी क्षेत्रों में सामान्यीकरण की विशेषताओं से युक्त कृषि प्रधान राज्य है। म.प्र. के लिए कृषि वास्तविक अर्थो में जीवन रेखा रही है। म.प्र. की 70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जिसका प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कृषि ही अजिविका का साधन होता है। राज्य की कुल भूमि 49 प्रतिशत भाग पर कृषि की जाती है। म.प्र. की प्रमुख फसलें सोयाबीन गेहूँ, चना, दलहन आदि है व सर्वाधिक कृषि भूमि उज्जैन में हैं। म.प्र. की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है तथा अर्थिक गतिविधियों उद्योग तथा सेवा क्षेत्र से निकटता से जुड़ी है ,म.प्र. के सकल राज्य घरेलू उत्पादन में कृषि क्षेत्र का अंशदान 22.47 प्रतिशत है। कषि क्षेत्र की विकास दर 1.18 प्रतिशत है। म.प्र. से कृषि विभाग का नाम अब किसान कल्याण तथा कृषि विभाग हो गया ।

देश में हाल के वर्षो में कृषि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रांति हुई है। आधुनिक कृषि नवाचारों का उपयोग बढ़ाने के लिऐ रामबाण साबित हुआ है। इन नवाचारों में उच्च उपज बीजों की विविधता, उर्वरक, कीट और रोग नियंत्रण, उपकरण और औजार के लिए रसायनों के रूप में नई और बेहतर जानकरी, बेहतर कृषि पद्वतियों और तरीकों में सुधार और कृषि प्रबंधन और विपणन प्रणाली की प्रथाए शामिल है। इनमें से सिंचाई कृषि विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे खेती में गहनता की सुविधा उपलब्ध होती है। रबी के मौसम में नमी की कमी की वजह से परती छोड़ी हुई भूमि में उत्पादकता और उत्पादन में स्थिरता में वृद्वि सुनिश्चित करने के लिये समय पर पानी की अपूर्ति की जाती है। बागवानी फसलों के तहत क्षेंत्र का विस्तार भी सिंचाई के विकास के द्वारा संभव हुआ है। एक ही समय में, उर्वरकों और उन्नत बीजों का उपयोग के साथ सिंचाई की जाती है। कृषि विकास पर विस्तृत सिंचित सुविधाओं का इन और दूसरी संभावित योगदानों का मूल्यांकन किया जाना हैं। आर्थिक विकास के लिए कृषि सिंचाई अधार है। परंतु पानी की कमी प्रमुख कारण है। भारत का कृषि क्षेत्र लगभग सम्पूर्ण जलसंसाधन का लगभग 90 प्रतिशत जल का उपयोग करता है, और देश इस सिंचाई जल का 80 प्रतिशत भूमिगत जल द्वारा प्राप्त करता है। अतः जल की कमी का एक बड़ी समस्या है।

मध्यप्रदेश सहित देश के अनेक राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, उ.प्र., आंध्रप्रदेश, कर्नाटक ,तमिलनाडू, गुजरात तथा राजस्थान के सूखते हुए जलस्त्रोतों के कारण जल प्रबंधन व्यवस्था में सुधार के उपायो में तोव्रता लाना अवाश्यक हो गया है। क्योंकि जल की कमी के कारण कृषि अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। दूसरी ओर भूजल में बढ़ते उपयोग से प्रदूषण बढ़ रहा है। रासायनिक द्वृष्टि से पेयजल की उपयुक्तता निर्धारण में नाइट्रेड तथा फलोराईड की महती भूमिका होती है। हमारे देश के कई राज्यो में भूजल में नाइट्रेड, फलोराइड एवं आसेनिक की सांद्रता अधिक हो जाने के कारण लाखो लोग इनके दुष्प्रभाव से पीडित है। केद्रीय भू जल बोर्ड ने जनजागृति कार्यक्रमों, जल प्रबंधन

प्रशिक्षण कार्यक्रमों भूजल पुस्तिकाओं के वितरण जसे महत्वपूर्ण कार्यक्रमों कों कियान्वित करके भुजल के गिरते स्तर को रोकने की दिशा में प्रभावी प्रयास किये हैं, एवं पानी कों प्रदूषण से बचाने के ठोस कदम उठाये जायें।

सिचांई–

देश में प्रचलित सिंचाई के कई साधन हैं, हालांकि विकास कार्यक्रम निर्मित सिंचाई क्षमता का पूरा उपयोग के मुख्य उदेश्य के साथ किया जा रहा है। राज्य में लागू इष्टतम कृषि उत्पादन प्राप्त करने और एक एकीकृत कमांड(सांसद कतंजि अपप प्लान, 84) सिंचित क्षेत्रों के सामाजिक–आर्थिक विकास के बारे में लाने. इसके अलावा सिंचाई का विकास एक स्थानीय घटना है। सिंचित क्षेत्र की सीमा में असमानता के लिए वार्षिक वर्षा और उसके परिर्वतनशीलता की मात्रा एक निश्चित सीमा तक सम्बधित है। भूमि की गुणवत्ता भी सिंचाई के निर्धारको में से एक है। प्रमुख सिंचित क्षैत्र मध्यम से बहुत अच्छी गुणवत्ता भूमि पर विकसित किये गये है। सामाजिक आर्थिक स्थिति इस असमानता पैदा करने में अक्सर, नहर और नलकूपों के क्षेत्रों में सिंचाई की उच्च तीव्रता और इन सार्वजनिक क्षेत्र में है, और हमेसा की तरह राजनैतिक रूप से जागरूक क्षेत्रों में है। इस दृष्टिकोण से दोनो वर्गो के लोग सीमांत और छोटे आर सामाजिक पिछड़े समुदाय मुख्य रूप से पीछे है, चूंकि सिंचाई का अन्य कृषि उत्पादकता के उपयोग पर निर्णायक प्रभाव है। इन लोगों को अपने प्रभुत्व के क्षेत्रों के लिए इसकी उपलब्धता उचित है।

निर्मित सिंचाई सम्भाव्य क्षमता का पूरा उपयोग, अनुकूलतम कृषि उत्पादन प्राप्त करने और कमांड क्षेत्र से सम्बधित एकीकृत सामाजिक ,आर्थिक विकास मुख्य उद्देश्य से सम्बन्धित राज्य में कियान्वित किये जा रहे हैं। कृषि के आधुनिक तकनीक का ज्ञान का अभाव होना ,अपने कृषि कार्य से दूर जाना आदि का विश्लेषण एवं अध्ययन करना मुख्य उद्देश्य है।

निष्कर्ष–

मानव बिना विकास के रहा नहीं जा सकता और विकास के आधार पर्यावरण और संसाधन को नष्ट करने को भी सोच नहीं सकता। इसलिए इन दोनों में तालमेल बैठाने की महती आवश्यकता है। इसके प्रयास की दो दिशाएं हो सकती हैं, एक जनसंख्या वृद्धि का नियंत्रण तथा पयावरण का संपोषित प्रबन्धन। यह तभी संभव है जब पर्यावरण के प्रति आम आदमी की सोच तथा दृष्टिकोण को बदला जाय और पर्यावरण अवनयन से परिचित कराया जाय। जब सामाजिक–राजनैतिक प्रतिबन्ध कड़े नहीं होते तो लोग पर्यावरण के संरक्षण पर ध्यान नहीं देते। दृष्टिकोण आर आचरण का घनिष्ट संबंध है। व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण लोग पारिस्थितिकी तथा सामाजिक और आर्थिक परिपेक्ष्यों पर ध्यान नहीं देते हैं। उनमें सामुदायिक भावनाओं की कमी होती है।

सन्दर्भ ग्रंथ

- पण्डा, बी.पी. (1986), "जनसंख्या भूगोल," मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्य अकादमी, भोपाल।
- हीरालाल (1986), "जनसंख्या भूगोल," वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर
- सिंह, सविन्द्र, (2012)''पर्यावरण भूगोल'', प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- तिवारी, व्ही.के. (1997), "भारत का जनसंख्या भूगोल," भाग – 1 तथा 2, हिमालय, पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई।
- प्रसाद रामा एवं महावर गोपीलाल (जून–दिसम्बर, 2001) राजस्थान में साक्षात्कार का भौगोलिक विश्लेषण, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, *उत्तर भारत भूगोल परिषद, गोरखपुर,* अंक–37, (पृष्ठ संख्या 9–18)। पाण्डा पी.डी. (2004), जनसंख्या भूगोल, *हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मध्य प्रदेश भोपाल*।
- दुबे कमला कांत एवं सिंह महेन्द्र बहादुर (1994), जनसंख्या भूगोल, *रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली।*
- सिंह आर. पी. (दिसम्बर, 1986), अवध प्रदेश में महिला साक्षरता का स्थानिक विश्लेषण, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, *उत्तर भारत भूगोल परिषद, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश (भारत),* अंक–22, (पृष्ठ संख्या 1–15)।

बैतूल जिले में जनजातियो के विकास का भौगोलिक अध्ययन

डॉ.प्रताप सिंह राजपूत
सहायक प्राध्यापक (अतिथि विद्वान)
शासकीय महाविद्यालय, सारनी

प्रस्तावना

मनुष्य अपने परिवेश की उपज है उसे बेहतर बनाने के लिए उस परिवेश को बदलना होगा जिसमें वह पलता–बढ़ता है और इसी परिवेश को आधुनिक समाज ने आर्थिक शब्दों में विकास से विभूषित किया है परन्तु आधुनिक विकास का जो मानदण्ड है उसे आदिवासी समाज स्वीकार करने में कोई दिलचस्पी नहीं रखता। आदिवासी समाज की न्यूनतम आर्थिक आवश्यकताएं विकसित समाज के लिए एक चुनौती है। एक ऐसी चुनौती जो "उपभोक्ता संस्कृति" अथवा "मीडिया संस्कृति" से कोसों दूर प्रकृति की गोद में अमन चैन की जिन्दगी व्यतीत कर रहा है परन्तु हमें तो क्रमशः आदिवासी का विकास करना है। राष्ट्र की धारा से जोड़ना है परन्तु राष्ट्र की धारा से वह जुड़ना नहीं चाहता प्रकृति का यह पुत्र विकास से दूर भागता है उसे बंधन नहीं चाहिए, अनुदान नहीं चाहिए, बड़े–बड़े कारखाने नहीं चाहिए। वह पूर्ण रूप से स्वच्छंद जीविका चलाना चाहता है उसे पंचवर्षीय योजना के भौतिक और वित्तीय लक्ष्यों से कुछ लेना–देना नहीं है। जीवित रहने की आवश्यकता और वस्तु विनिमय प्रणाली से वह दुनिया का सबसे सुखी इंसान है।

आर्थिक विकास के साहित्य में आदिवासी समाज को बहुधा गरीब कह दिया जाता है। गरीबी एक नितांत भिन्न अवधारणा है बतौर साधारणतः आदिवासी परिदृश्य से उसका कोई संबंध नहीं है– परन्तु जो आदिवासी समाज अभी दुर्गम क्षेत्रों में रहते है जहां नैसर्गिक संसाधन इतने समूह है कि जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं सीमित है और संसाधन विपल है– स्वतंत्रता के बाद से ही आदिवासी विकास शासन का प्राथमिक दायित्व रहा है, आदिवासी विकास की पहल ब्रिटिश शासन के दौरान मध्यप्रदेश जिसे सेन्ट्रल प्राविसैंस एंड बरार के नाम से जाना जाता था। सहकारिता तथा ग्रामीण विकास विभाग द्वारा कार्यक्रम क्रमांक 237 के अंतर्गत शोध क्षेत्र के आदिवासी क्षेत्रों में सहकारिता गतिविधियों का विकास से संबंध था जिन प्रमुख कार्यक्रमों को शामिल किया गया उनमें :–

1 जीवन की आयातित आवश्यकताओं के लिए बेहतर बीज, खाद, उपकरण इत्यादि के सहकारी वितरण के द्वारा विकास करना।

2 संबंधित उद्योगों को ऊपर उठाना तथा नियंत्रित करना।

3 कॉटेज सब्सिड्रीज़ उद्योगों को बढ़ावा देना आर ऐसे उद्योग के उत्पादों की बिक्री की व्यवस्था करना।

4 गोदामों, भण्डारों संघों के लिए कार्यालय और व्यापार से विकसित बहु–उद्देश्य वाले समाजों के निर्माण के लिए।

अध्ययन क्षेत्र

आदिवासी बाहुल्य जिला बैतूल दक्षिण में सतपुड़ा की श्रृंखलाओं में फैला है। उत्तर मे नर्मदा की घाटी और दक्षिण में बरार का मैदान है। इसकी स्थिति 21^0 22′ से $22^0$23′ उत्तरी अक्षांश एवं $77^0$10′ से $78^0$33′ देशांतर के मध्य है। भौगोलिक दृष्टि से बैतूल जिले का क्षेत्रफल 10,07,800 हेक्टेयर भूमि है। जिले की अधिकतम लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर 161 किलोमिटर है जबकि उत्तर से दक्षिण की ओर इसकी लम्बाई 106 किलोमिटर है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार बैतूल जिले की कुल जनसंख्या 15,75,247 है जिस में आदिवासी जनसंख्या 667018 निवास कर रही है। इस जिले को 10 विकासखण्डों में विभाजित किया गया है जिस में 7 आदिवासी विकासखण्ड एवं 3 सामुदायिक विकासखण्ड है।

शोध क्षेत्र में आदिवासी प्रायः कपड़ों का प्रयोग करने लगे हैं गोंड आदिवासी छोटी धोती पहनते हैं कमीज भी। आदिवासी महिलाऐं संदरी फालिया या घुटनों तक समुद साड़ी का प्रयोग करने लगी है। बैगा जाति लंगोट की तरह छोटी धोती पहनते है उनकी स्त्रियां लाल रंग की साड़ी का प्रयोग करती है। लेकिन वर्तमान वेष–भूषा से प्रभावित होकर आदिवासी भी पाजामा–धोती–कमीज–जवाहर कोट पहनते ळें

शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन में जनजातियों की शिक्षा, कृषि, खाद्य संसाधन की प्रकृति और प्रकृति के मध्य संबंधी का अध्ययन एक महत्वपूर्ण संसाधन है।

1 शोध क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने के कारण शिक्षा का अनुपात कम।

2 जिले की जनजातियों का द्वितीय एवं तृतीय क्षेत्र में संलग्न न होना।

3 आदिवासी बाहुल्य का कृषि में जात का आकार कम होने के कारण उत्पादन कम होना।

औद्योगिकरण की आदिवासियों पर प्रभाव

औद्योगीकरण के नाम पर जो ढ़ांचा बनाया जा रहा है उससे समूचे देश में बेदखल लोगों की एक लम्बी फौज खड़ी हो रही है। चाहे कोयले की खाने हो या फिर बिजली बांध या अन्य भारी कारखाने हो, कुल मिलाकर उसका लाभ धनिक वर्ग के लोगों के लिए है। जिस गरीब आदिवासी की जमीन से कोयला निकलता है उससे कहा जाता है कि राष्ट्र के विकास के लिए तुम्हें अपना सब कुछ कुर्बान करने के लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसा ही कहकर उसकी जमीन मिट्टी के मोल खरीद ली जाती है और विकास के लिए जिस निर्माण की बुनियाद रखी जाती है उसमें आदिवासियों की भूमिका केवल ढ़ांचे निर्माण तक श्रमिकों की हैसियत रहती है उसके बाद वे सड़क पर होते है। सैकड़ों वर्षों से जिस जमीन से वह जुड़ा होता है उससे बेदखल मात्र ही उसकी तकदीर है उसकी जमीन के बदले

हर्जाने के लिए कोई समय निर्धारित नहीं की जाती। एक अधिसूचना के द्वारा जमीन सरकार की हो जाती है।

आदिवासी शिक्षा की समस्या

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य शासन की यह जिम्मेदारी है कि कमजोर वर्गो विशेषकर आदिवासियो की शिक्षा से संबंधित गतिविधियों में तेजी से विस्तार करें लेकिन शोध क्षेत्र अधिकांश जनसंख्या अज्ञान, गरीबी और पिछड़ेपन का सबसे प्रमुख कारण है। क्षेत्र की जनसंख्या शिक्षित है वो भी उन्नति के विभिन्न अवसरों का लाभ भी नहीं उठा पाते यही स्थिति आदिवासियो के संदर्भ में विशेषकर देखी जा रही है। मध्यप्रदेश में शासन की कोशिश है कि कोई भी आदिवासी बालक–बालिका गरीबी के कारण शिक्षा से वंचित न रहे। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार शोध क्षेत्र की कुल साक्षरता–64.4 प्रतिशत है जिसमें ग्रामीण साक्षरता 64.4एवं नगरीय साक्षरता 86.8 प्रतिशत है।

निष्कर्ष

आदिवासी बाहुल्य जिला बैतूल जो भारत की हृदयस्थली में निवास करने वाली जनजातियां की जनसंख्या सन् 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 1575362 है जिसमें आदिवासी बाहुल्य जाति की कुल जनसंख्या 667018 है जिसमें पुरूषों की सख्या 333166 एवं महिला की संख्या 333852 है जिसमें पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं की संख्या अधिक है चुंकि इस क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी जाति के लोग पहाड़ों के बीच बसे गांवों में निवास करते है। जिसके कारण शहर की वेष–भूषा रीति–रिवाजों, खानपान, रहन–सहन आचार–विचार में अंतर देखने को मिलता है जो अज्ञान, शोषण, गरीबी, और पिछड़ेपन का सबसे प्रमुख कारण है। आदिवासियों का अशिक्षित होना जो प्रशिक्षित है उन्नति के विभिन्न अवसरों का लाभ नहीं उठा पाते यह स्थिति आदिवासियों के संदर्भ में विशेष रूप से देखी जा सकती है। वे पिछड़े, शोषित और गरीब इसी कारण है कि उन तक शिक्षा की रोशनी नहीं पहुॅच पाई और वे अशिक्षा के अंधकार में भटकते हुए सामान्य समाज से अलग पड़ गई। क्षेत्र में प्रमुख रूप से कोरकू, गोंड परधान, पथरी आदि जनजाति सतपुड़ा के वनीय अंचलो में निवास करती है जिसमें चिचोली, भैंसदेही तहसील में प्रमुख रूप से निवास करती है।

सुझाव

1 क्षेत्र में चारगाह क्षेत्र अधिक है। इसलिए डेयरी फार्मिंग को प्रोत्साहित करें।

2 आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा के विस्तार से आदिवासी जातियों का समग्र विकास किया जा सकता है।

3 द्विफसलीय क्षेत्र में वृद्धि करना भी वर्तमान में बहुत आवश्यक है।

4 सुलभ यातायात हेतु प्रत्येक गांव को पक्की सड़क से शहरों के साथ गांव को जोड़ना।

5 आदिवासी जातियों के माता–पिता को शिक्षा के प्रति रूची होना चाहिए।

6 क्षेत्र में उचित वनोपज के विपणन की व्यवस्था करना।

संदर्भ ग्रंथ

- पी.आर. नायडू– भारत के आदिवासी विकास की समस्याएं।
- डॉ.जी.आर. मदन : परिवर्तन और विकास का समाज शास्त्र ।
- अमर कुमार : योगेन्द्र सिंह का समाज शास्त्र ।
- डॉ. आई. एस.चौहान : भारत में सामाजिक परिवर्तन डॉ. श्री कमल शर्मा– मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- डॉ. शिवकुमार तिवारी– मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति।

————————

बदलता पर्यावरण और वैश्विक चुनौतियों में साहित्य का स्वर

डॉ. कैलाश गाकरे
अतिथि विद्वान (हिन्दी)
शासकीय महाविद्यालय मवई, जिला मण्डला म0प्र0

मानव सम्यता का विकास वनों की गोद में हुआ है, शायद इसीलिये वैदिक कालीन ऋषियों एवं मुनियों ने अध्ययन, अध्यापन एवं लेखन की प्रक्रिया का सफल संचालन प्रकृति के सुरम्य परिवेश में किया एवं वनों के महत्व को रेखांकित किया। लेकिन आज का अतिउभोक्तावादी मनुष्य नाश और निर्माण की सतत प्रवाहित पक्रिया में सिर्फ नाश की प्रवृत्ति को लेकर चल रहा है। जिसके कारण अनेकानेक समस्याओं का जन्म हो रहा है जिससे प्रकृति का संतुलन विगड़ रहा है। मनुष्य और प्रकृति के मध्य सामंजस्य की स्थापना के लिये मानवीय गुणों के विकास के साथ पीढ़ी दर पीढ़ी पर्यावरण संचेतना की सामाजिक जागरूकता के लिये ऋषियों ने प्रकृति के प्रति मानव प्रेम को श्रद्धेय दृष्टि के साथ व्याख्यायित किया क्योंकि श्रद्धानवत् श्रद्धेय को कभी भी नुकसान नहीं पहुंचा सकता है। पृथ्वी को सूर्य की विनाशकारी किरणों से वचाने के लिये ''भू–**लोक**'' की शांति अर्थात विकार मुक्ति के माध्यम से उसके महत्व के प्रति दायित्व बोध कराया।

बढ़ती जनसंख्या के साथ बढ़ती मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नगरीयकरण और औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने वायुमण्डल को पूरी तरह से प्रभावित किया वहीं दूसरी ओर प्रयुक्त जल के साथ निकले मलवे से जल एवं थल दोनों को विषाक्त कर दिया। साथ ही वन प्रदेशों मे व्याप्त आरोग्यप्रदाता औषधियॉ भी प्रदूषित हो रही है। वहीं पारिस्थितिक तंत्र को नष्ट करने में मनुष्य की अत्याधुनिक कृषि व्यवस्था ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिससे कृषि मित्र कीट भी नष्ट हो रहे है तथा नदियों, तालाबों के जल के साथ भूमिगत जल भी प्रदूषित हो गया है। अज्ञानतापूर्ण विकास की इस प्रक्रिया में हमें ध्यान ही नहीं है कि हमारा जन्म संसार में सिर्फ विनाश के लिये ही हुआ है या फिर विनाश के साथ निर्माण की प्रक्रिया को संचालित करने क लिये भी हुआ है? ज्ञान विज्ञान के विविध क्षेत्रों में प्रगति के पश्चात् भी हम नाटकीय जीवनशैली जीने के लिय विवश हैं। मनुश्य सभ्यता के विकास के साथ असभ्य होता जा रहा है। आज की अतिउपभोक्तावादी संस्कृति ने प्राकृतिक परिवेश से पूरी तरह से अलग कर दिया है। इस अप्राकृतिक जीवनशैली के कारण हम अनेकानेक रोगों के शिकार हो रहे है और हमारा स्वास्थ्य ह्रासोन्मुख हो रहा है।

प्रस्तुत शोध पत्र में पर्यावरण और विकास के मध्य निर्मित असंतुलन के कारण गिरते मानवीय स्वास्थ्य और उससे परिलक्षित होने वाले प्रभावों को रेखांकित कर पर्यावरण की गहराती चुनौतियों से निजात पाने के उपायों एवं सुझावों को वर्णित करने का लघु प्रयास किया गया है।

जलवायु परिवर्तन से आशय किसी क्षेत्र में दीर्ध अवधि के दौरान विभिन्न कारणों से जलवायु में होने वाले परिवर्तन से लगाया जाता है। वर्तमान समय में प्रदूषण एक गंभीर समस्या है। इसका विस्तार आज क्षेत्रिय स्तर से लेकर विश्व स्तर तक देखा जा सकता है। प्रदूषण की समस्या का प्रत्यक्ष संबंध जलवायु परिवर्तन से है। इसका प्रभाव जीवजंतु ,पेड पौधों तथा वातावरण में देखा जा सकता है। वर्तमान समय में बढते औधोगिकरण, नगरीकरण, आधुनिकरण इत्यादि ने प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न की है जिसका सीधा संबंध जलवायु परिवर्तन से है।

जलवायु परिवर्तन के कारण वातावरण मे अनेक परिवर्तन होते है जैसे ग्रीन हाऊस प्रभाव, ओजोन परत में छिद्र, तापमान वृद्धि अम्लीय वर्षा ,तथा हिम क्षेत्रो का तीव्र गति से पिघलना इत्यादि ।

स्पष्ट कहा जा सकता है कि यदि इसी तरह से प्रदूषण बढ़ता रहा तो आने वाले भविष्य में जलवायु में तीव्र परिवर्तन मानव एवं जीव जन्तु के लिये जीवन में अभिशाप होगा।

किसी स्थान, प्रदेश या देश के नैसर्गिक परिवेश की भौगालिक क्षेत्र, जलवायु व उसमें पाये जाने वाले जीव जन्तुओं एवं पेड़ पौधों की प्रजातियों को सामूहिक रुप से उस स्थान विशेष की जैव विविधता कहा जाता है। जैव विविधता शब्द का प्रयोग 1985 से किया जा रहा है। ज्यादातर मीडिया,सरकार, वैज्ञानिक पर्यावरणविद जैव विविधता शब्द का उपयोग करते हैं।

आधुनिक कविता में भौतिक विकास के फलस्वरुप जैव विविधता में आये परिवर्तन को कवियों ने अभिव्यक्त किया है। जगदीश तिवारी का मत है कि हमने ही अपने कर्मो से सुखद भविष्य का दर्पण तोड़ा है प्रकृति को नष्ट किया है आज हम अनेक प्राकृतिक आपदाओं मे घिर गये हैं। वे लिखते हैं – ''हमने अपने ही कर्मों से /सपनों का दर्पण तोड़ा हैं/ जब से ही इस मन आंगन में/पतझड़ का घोड़ा दौड़ा है/ कैसा इस भोले मन में अब/ शंकाओं का लगा है डेरा/ जैस किसी अकेले हिरन को/ शेरों ने आकर है घेरा/''

कृषि वैज्ञानिक जैव विविधता में पेड़ पौधों तथा जीव जन्तुओं को आवश्यक मानते हैं। पेड़ पौधों की कमी से प्रदूषण एवं तापमान में वृद्धि हो रही है। ये पेड़ पौधे जीव जन्तु ही प्रकृति के सौन्दर्य हैं, शोभा हैं तथा आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं जव विविधता की महत्ता को बी. भट्टाचार्य जया, रोबोट, नहीं इन्सान चाहिये में व्यक्त करते हैं– ''घंटियों की/ मधुर आवाज के बीच/ एक प्रार्थना/ एक गूंज/ प्राकृतिक जल, जंगल/ जीवन चाहिये/ रोबोट नहीं/ इन्सान, चाहिये/''

प्रारंभ से लेकर आज तक के कवि जैव विविधता– की संरक्षण को प्रतीक बिम्ब आदि शिल्पों के माध्यम से प्रकृति की सुरक्षा तथा उसका संवर्धन की बात करते आ रहे है। आज रसायन की बरसात हो रही है, धरती की सौंधी महक खो रही है, कंक्रीट के घने जंगल खड़े हो रहे हैं, किन्तु कवि को विश्वास है एक न एक दिन मनुष्य के सपने पूरे होगें। गोविन्द गुंजन 'समय का चरवाहा' मे कहते हैं– ''फूंकता रहता है/ अपनी बांसुरी पर नयी नयी तानें/ जो छूती रहती है सबको।''

भौतिक प्रगति जैव विविधता को ह्रास किया है। हमारे कवियों ने प्रकृति की संवर्धन व उसकी सुरक्षा की बात पहले से करते आ रहे हैं। यह हम सबका कर्तव्य है कि जैव विविधता को बनायें रखें।

वर्तमान समय में समाज एक ओर भूमंडलीकरण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की चका–चौंध से हमें आकर्षित करते हुए भोग और विलासिता के संसाधन उपल्बध करा रहे हैं वही दूसरी ओर इनके कारण पर्यावरण प्रदूषण और पर्यावरण संरक्षण का प्रश्न हमारे समक्ष बहुअयामी दृष्टि समेटे खड़ा दृष्टिगोचर होता है। जिसके कारण संकटपूर्ण परिस्थितियाँ निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। पर्यावरण और मानव के बीच अटूट संबंध है। औद्योगिकरण, शहरीकरण, परिवहन के अनगिनत संसाधन तथा दिन–ब–दिन बढ़ती जनसंख्या के कारण पूरा पर्यावरण निरन्तर प्रदूषण के संकट से ग्रस्त होता जा रहा है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरन्तर इसका दोहन करता जा रहा है। बदलते सामाजिक परिवेश में हमें पर्यावरण संरक्षण के प्रति जनसामान्य में जागरूकता उत्पन्न करना होगा। पर्यावरण मे प्रति सामाजिक चेतना प्राचीन काल से ही हमारी जीवन शैली एवं चिन्तन का अभिन्न अंग रहा है। तमिल कवि बैरमतु की कविता का अनुवाद इन्दराज वैद ने कविता में प्रकृति के बदलते स्वरूप के साथ कुछ इस प्रकार चिन्ता जतायी है।

फूल चाहिएए कांटे नहों/धूप चाहिए तपन नहीं

हवा चाहिए अंधड़ नहीं, नदियां चाहिए बाढ़ें नहीं।

भूख चाहिए उपवास नहीं, ऊर्जस्विता चाहिए मांसलता नहीं।

सृष्टि के प्रवाह में, मिट्टी का बुदबुदा है भूमंडल

बुलबुलों से भरी फेन सी, जीवराशि युक्त है धरती हमारी

आज बढती हुई जनसंख्या विभिन्न प्राकतिक संसाधनों का उपयोग बढती हुई मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस प्रकार कर रही है जिससे पर्यावरण के विभिन्न स्वरुपों में परिवर्तन हो रहा है। पर्यावरण में निहित संसाधनों का अत्याधिक उपयोग, अवांछित उपयोग और दुरुपयोग ही पर्यावरण असन्तुलन के लिए उत्तरदायी है।

आज विश्व की आधी जनसंख्या कृषि कार्य मे संलग्न है तथा कृषि ही जीविका का मुख्य साधन है। पिछले कछ वर्षों में कृषि क्षेत्र में अत्याधिक वृध्दि हुई है जिससे अनेक पर्यावरणीय समस्याऍ उत्पन्न हुई हैं। आज कृषि भूमि केवल थोडे से लोगों के हाथों मे सीमित रह गई है। भूमि के निरन्तर उपयोग होने और गहन खेती के कारण भूमि कि उर्वरा शक्ति कम हो गई हैं कृषि भूमि खाली छोडने से मृदा अपरदन होने लगा है। आज कृषि कि गलत विधियों के कारण मरुस्थलीय और अर्धमरुस्थलीय क्षेत्र पैदा हो रहे है। सिंचाई से खारेपन में वद्वि हो रही है। कृषि योग्य भूमि के निरन्तर उपयोग से जैविक तत्वों का विनाश हो रहा है। वनों के निरन्तर विनाश से वन्य जीवों की संख्या में भारी कमी आई है। शेर,

चीता और अन्य मॉसाहारी वन्य पशुओं कि कमी के कारण आज शाकाहारी पशुओं की संख्या में बढोत्तरी हुई है जिसका स्पष्ट प्रभाव वन विनाश पर देखा जा सकता है जिससे वन्य जीव पारिस्थितिकी प्रभावित हुई है।

जल प्रकति की सबसे महत्वपूर्ण देन है, यह सभी जीवों के लिए आवश्यक है परन्तु मनुष्य पर उसकी निर्भरता अन्य सभी जीवों से कहीं अधिक है। आज औद्योगीकरण के कारण जल प्रदुषित हो रहा है। मनुष्य अपना अपशिष्ट पदार्थ को जल में फेंक रहा है। आज जल में अपशिष्ट पदार्थ, विभिन्न रसायनों और कार्बनिक पदार्थो की मात्रा के कारण ऑक्सिजन कि कमी हो रही है जिससे जल जीवों का विनाश हो रहा है। यही नहीं जलीय चक्र पर मनुष्य की गतिविधियॉ अधिक सक्रिय हो रही है जिससे जल चक्र नष्ट हो रहा है।

खनिज पदार्थ भी आज सीमित मात्रा में उपलब्ध है। यही नहीं इनका भौगोलिक वितरण भी असमान है। आज मनुष्य की अविवेकपूर्ण खनन निति खनिज भण्डारों को समाप्त करने के लिए काफी है। जैसे–जैसे औद्योगीकरण होता गया खनिज आधारीत उद्योग विकसित होते गये, उपलब्ध खनिज पदार्थों की मात्रा में कमी आती गई। औद्योगीकरण के कारण विभिन्न जहरीली गैसों का वायुमण्डल में सान्द्रण बढता गया, जिससे भूमण्डलीय तापन में वृध्दि हुई है।

–ःसंदर्भः–

- चौधरी, एस.एन., मिश्रा, मनीष, (2012) ''आदिवासी विकास : उपलब्धियॉ एवं चुनौतियॉ, भाग–एक, कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली
- हसन, नदीम, ''भारत में जनजातीय'', हरनाम पब्लिंकेशन, नई दिल्ली
- शर्मा, डॉ0 श्रीनाथ, (2016), ''जनजातोय समाज'', द्वितीय संस्करण, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
- पाण्डेय, आनंद कुमार, पाण्डेय, श्रीमती अर्चना, (2014), ''सामान्य अध्ययन'', चतुर्थ संस्करण, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
- सलिल, अनिल कुमार, (2016) ''भारत का संविधान'', प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली
- सिंह, रामगोपाल, (2016) ''भारतीय समाज'', तृतीय संस्करण,म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी, भोपाल
- हिन्दी साहित्य का इतिहास– रामचंद्र शुक्ल।
- हंस पत्रिका।

————————

जैविक कृषि पारिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन

डॉ. प्रमोद पगारे
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल
श्री हेमन्त चौधरी (शोधार्थी)
शास. एम.जी.एम.पी.जी. महाविद्यालय, इटारसी (म.प्र.)

आधुनिक गहन कृषि पद्धति ने हमें खाद्यान्न उत्पादन में स्वालम्बी बना दिया है, परन्तु पर्यावरण अवनयन के रूप में बड़ी कीमत चुकानी पड़ रही है। हरित क्रांति के नाम पर जिन प्रविधियों और प्रणालियों का उपयोग किया गया है, उससे गंभीर पारिस्थितिकी समस्यायें उत्पन्न हुई हैं। रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से मिट्टी की उर्वर क्षमता का ह्रास, जल एवं वायु प्रदूषण तथा मानव स्वास्थ्य प्रभावित हो रहे हैं। एक ओर हरित क्रांति थक चुकी है, दूसरी ओर पश्चिमी मर्यादाओं पर आधारित कृषि विकास की आधुनिक प्रणाली अपोषणीय बन चुकी है। फलस्वरूप विश्व के विकसित राष्ट्र गहन कृषि पद्धति की स्थापन्न, जैविक कृषि पद्धति की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। अतः इस दृष्टि से परम्परागत भारतीय कृषि अथवा जैविक कृषि पद्धति का वैज्ञानिक निहितार्थों का पुर्नबोध अपेक्षित है।

जैविक कृषि पारिस्थितिकी अनुकूल कृषि कर्म है, जो मूलतः प्राचीन भारतीय कृषि पर आधारित नवीन कृषि संकल्पना है। इस पद्धति में जैविक तत्वों तथा क्रॉप रोटेशन के माध्यम से उच्च कृषि उत्पादन प्राप्त किया जाता है। इस कृषि प्रबंध प्रक्रिया में वातावरण स्वास्थ्य, जैव विविधता, जैविक चक्र तथा मिट्टी की जैविक प्रणालियों का संरक्षण व पोषण करते हुए उत्पादन सुनिश्चित किया जाता है। अतः यह कृषि समन्वित–पोषक तत्व प्रबंधन एवं समन्वित सतत् कृषि विकास की अवधारणा पर आधारित है।

देश का प्रमुख खाद्यान्न उत्पादक होशंगाबाद मैदान के कृषक आधुनिक कृषि के दुष्परिणामों से परेशान जैविक कृषि की ओर उन्मुख हो रहे है। इस शोध आलेख में जैविक ग्राम निटाया, जिला होशंगाबाद की जैविक कृषि तथा रासायनिक कृषि पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है, जो आनुभाविक उपागम पर आधारित है। जैविक कृषि पारिस्थितिकी का विश्लेषण सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों, कृषि अनुसंधान एवं मिट्टी परीक्षण शोध केन्द्र पवारखेड़ा की रिपोर्ट पर आधारित है।

कृषक साक्षात्कार अनुसार रासायनिक कृषि की अपेक्षा जैविक कृषि में प्रति हेक्टेयर उत्पादन लागत कम होती है तथा गेंहू का उत्पादन प्रति हेक्टेयर 25 क्विंटल तक होता है। रासायनिक कृषि में गेंहू का उत्पादन 16–18 क्विंटल तक होता है। जैविक कृषि में उत्पादित खाद्यान्न का मूल्य अपेक्षाकृत अधिक होता है। अतः जैविक कृषि में शुद्ध लाभ भी अपेक्षाकृत अधिक होता है। जैविक कृषि भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक संरचना, जल धारण क्षमता के विकास में सहायक, कम लागत में प्राकृतिक प्रयास है जो दीर्घकालीन स्थिर उत्पादन सुनिश्चित करता है तथा पर्यावरण को स्वच्छ एवं संतुलित बनाये रखने में सहायक है।

प्राकृतिक आपदायें–

आपदा एक अनपेक्षित घटना है, जो की ऐसी ताकतो से घटित होती है जो मानव के नियन्त्रण मे नही हो पाती। यह कुछ समय के लिये घटित होती है और मनुष्य मे नुकसान का कारण बन जाती है इससे निपटने के लिये हमे समान्य दी जाने वाली वैद्यानिक सेवाओ की अपेक्षा पयत्न करने पड़ते है। आपदाओ कि उत्त्पति का सम्बन्ध मानव क्रियाकलापो से भी है कुछ मानवीय गतिविधियाँ तो सीधे रूप से इन आपदाओ के लिये उत्तरदायी है। जैसे भोपाल गैस त्रासदी ,चेर्नोबिल नाभिकिय आपदा ,युद्ध ,सी. एफ. सी. (क्लोरो फ्लोरो कार्बन) गैस वायुमण्डल मे छोड़ना तथा ग्रीन हाउस गैसे , ध्वनि ,वायु ,जल तथा मिटटी सम्बन्धी पर्यावरण प्रदुषण आदि । मानव गतिविधी भी परोक्ष रूप से आपदा को बढ़ावा देती है। वनों को काटने के वजह से भू–स्खलन और बाढ़ जैसे प्रभाव सामने आते है। जिनकी वजह से आपदा परोक्ष रूप में प्रभावित होती है। यह मानना है पिछले कुछ सालो से मानवकृत आपदाओं की संख्या और परिणाम दोनो में ही वृद्धि हुई है और कई स्तर पर ऐसी घटनाओं से बचने के भर सक प्रयत्न किये जा रहे है। लेकिन इस सन्दर्भ में अब तक सफलता नाम मात्र ही हाथ लगी है। मानवकृत आपदा में से कुछ का निवारण संभव है प्राकृतिक आपदा पर रोक लगाने की सम्भावना बहुत ही कम है। इसलिए सबसे अच्छा तरीका है इसके असर को कम करना और इनका प्रबन्धन करना है।

जलवायु परिवर्तन

पर्यावरण एक बहुआयामी विषय हैं , पर्यावरण तथा विकास के बीच एक अटूट संबंध हैं , पर्यावरण के उचित प्रबंधन तथा विकास को स्थायी बनाये रखने की विफलता से हमारे अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया हैं। विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि दर तथा ऊर्जा संसाधनों का अत्यधिक दोहन से सतत विकास के लिये वैश्विक चिंता की चुनौती न संपूर्ण मानव समाज को इस दिशा में सोचने के लिये बाध्य कर दिया हैं।

जलवायु परिवर्तन की इस प्रोसेस में पर्यावरण , प्राकृतिक संसाधनों का दोहन , निवेश की दिशा में प्रौद्योगिकी का विकास तथा पारिस्थितिक तंत्र, जैव विविधता ,तथा अन्य पर्यावरणीय स्तंभों को मानवीय क्रियाकलापों ने पर्यावरण संकट को जन्म दिया हैं । सतत विकास के तीन स्तंभ आर्थिक , पर्यावरण, और सामाजिक खंभें पर्यावरण विषय पर मानव जाति के बिगडते संबंधों को सुधारने की आज नितांत आवश्यकता हैं। विकास के नाम पर प्रत्येक अनैतिक मानवीय गतिविधियों से प्रकृति में अत्याधिक हस्ताक्षेप के कारण प्रकृति पर आज **ग्लोबल वार्मिंग** जैसा खतरा मंडरा रहा है जिससे मानव जीवन का अस्त्तिव संकट में पड गया है ।

वर्तमान परिदृश्य में भारत ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व में पर्यावरण को बचाना और कूडा प्रबंधन हमारा सामाजिक ,आर्थिक और जैविक कर्त्तव्य बन गया हैं । अतः प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर विकास करना ही सतत विकास और प्रकृतिदत्त संसाधनों का उचित प्रबंधन हैं।

मानव आने सर्वागीण विकास हेतु जिस बेरहमी से पर्यावरण एवं परिस्थितिकी के घटकों का शोषण कर रहा है, उसके चलते हमारे समक्ष पर्यावण एवं पारिस्थितिकी असंतुलन की ऐसी स्थिति उत्पन्न होती जा रही है जो मानव अस्तित्व के लिए ही खतरा उत्पन्न कर रही है। यहीं कारण है कि

कई वर्षो पूर्व से पर्यावरण संरक्षण हेतु जन जागरूकता जाग्रत करने के प्रयास होते रहे है और लगातार चल रहे है।

अमरीका में 1969 में राष्ट्रीय पर्यावरण नीति विधेयक बनाया गया, 1970 में हालैण्ड की सरकार ने पर्यावरण की सुरक्षा पर एक श्वेत पत्र प्रस्तुत किया, 1971 में फ्रांस की सरकार ने प्रकृति एवं पर्यावरण की सुरक्षा हेतु अलग मंत्रालय की स्थापना की है।

भारत में भी पर्यावरण संरक्षा संबंधी अधिनियम बनाने का कार्य स्वतंत्रता पूर्ण ही प्रारंभ हो गया था। 1877 में वन अधिनियम पारित किया गया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51-A (G) में उल्लेखित तथ्यों के अनुसार प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य बनता है कि वह पाकृतिक पर्यावरण की रक्षा करें। पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के कारण जलवायु परिवर्तन की समस्या उत्पन्न हो रही है। समस्त विश्व इन खतरों के प्रति अत्यन्त चिंतित है, क्योंकि जीवाश्व ईधनों के बेलगाम उपयोग ने वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों तथा कार्बन के कणो की मात्रा में भारी वृद्धि कर दी है। फलतः पृथ्वी के सामान्य तापमान में तेजी से वृद्धि तो हो रही है साथ अन्य दूसरी समस्याएँ जैसे वर्षा का असमान वितरण, समुद्रो व महासागरों के जल स्तर के बढ़ने से तटीय क्षेत्रों तथा टापुओं के जलमग्न होने की आशंका तेजी से बढ़ती हा रही है।

जलवायु परिवर्तन पर वचनबद्धताओं को पूरा करने की भारत की प्रस्तावित पहलों के प्राथमिकता वाले क्षेत्र –

1. तापीय विद्युत उत्पादन में नवीन, अधिक दक्ष तथा स्वच्छ प्राद्योगिकियों को अपनाना।
2. अक्षय ऊर्जा उत्पादन का प्रोन्नयन करना तथा समग्र ईंधन मिश्रण में वकल्पिक ईंधनों के हिस्से को बढ़ाना।
3. परिवहन क्षेत्रक से होने वाले उत्सर्जन को कम करना।
4. अर्थव्यवस्था, विशेष रूप से उद्योग, परिवहन, भवनों एवं उपकरणों में ऊर्जा दक्षता का प्रोन्नयन करना।
5. कचरे से उत्सर्जन को कम करना।
6. जलवायु प्रत्यास्थी अवसंरचना विकसित करना।
7. हरित भारत मिशन एवं वनीकरण (वृक्षारोपण) के अन्य कार्यक्रमों का पूर्ण क्रियान्वयन।
8. जलवायु प्रत्यास्थी को बढ़ाने तथा जलवायु परिवर्तन से असुरक्षा को कम करने हेतु अनुक्रियाओं का नियोजन व क्रियान्वयन।

छिन्दवाड़ा जिले में अपवाह तंत्र तथा जलवायु का अध्ययन

रामप्रकाश डेहरिया

अतिथि व्याख्याता भूगोल विभाग, विश्वविद्यालय सागर

छिन्दवाड़ा जिला सतपुड़ा पर्वत के दक्षिणी पश्चिमी में स्थित है एवं बीहड़ पहाड़ियों टीलों एवं पाताल कोट क्षेत्र की गहराई लिए असमतल भू–भाग युक्त जिला है। इसकी धरातलीय ऊँचाई दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ती है। छिन्दवाड़ा जिला का पठारी भू–भाग सामान्यतः समुद्र तल से 862 मीटर ऊँचा है। धरातलीय असमानताओं के लिए प्रसिद्ध यह जिला आकर्षण का केन्द्र भी है। (जिला गजिटियर 1971)

छिन्दवाड़ा जिला मुख्यालय ढक्कन युगीन शैलों ऊपरी तथा निम्न गौंडवाना चट्टानों तथा आर्कियन युगीन नीस तथा ग्रेनाइट चट्टानों से बनाहै। इन चट्टानों का निर्माण प्राचीन काल में लावा से हुआ था, कान्हान घाटी एवं दक्षिण में सौसर के उच्च क्षेत्र में आर्कियन युगीन चट्टानों का विस्तृत रूप से फैलाव है। गौंडवाना शैल के क्षेत्र सतपुड़ा श्रेणी के नाम से जाना जाता है। उत्तरी दक्कन के पठार का भूगर्भिक संरचना के आधार पर बेसाल्ट ग्रेनाइट नीस परतदार शैलों में विभाजित है। (जिला गजे. 1971)

आर्कियन शैल धारवाड़ शैल का ही प्रतिरूप है, जो छिन्दवाड़ा के दक्षिणी भाग कान्हान नदी की कछार एवं सौंसर क्षेत्र में पूर्णतयः पाई जाती है। इसी का खेदार रूप रूपान्तरित चट्टानें है एवं इसके रूप शिस्ट, नीस, संगमरमर तथा मैंगनीज के सिलिकेट्स पाये जाते है। (जिला गजिटियर 1971)

गोंडवाना शैल समूह की चट्टानों मोरलैंड पठार पचमढ़ी के पहाड़ी क्षेत्र में पाई जाती है। जिले में पच एवं कन्हान नदी घाटियों में कोयले के भंडार इसी युग की बराकर सिरिज की शैलों में संचित है। ऊपरी गोंडवाना युगीन शैल है, जो कि अमरवाड़ा पठार के नाम से जाना जाता है। ये शैले आसानी से विखण्डित हो जाती है। जिस कारण इन चट्टानों का धरातल काफी कटा–फटा एवं विखण्डित होकर रेत में बदल जाता है।

लामेटा श्रेणी आर्कियन्स तथा दक्कन ट्रेप के संक्रमण क्षेत्र में पाई जाती है। लमेटा श्रेणी सौंसर तहसील के लोधीखेडत्रा रामाकोना के उत्तर में कैली है, छिन्दवाड़ा में भी इसका विस्तार है। ये चट्टाने–चूनामय तालुका प्रस्तर कंग्लोमरेट्स, ग्रिटस आदि है। (जिला गजे. 1971)

दक्कन ट्रेप छिन्दवाड़ा जिले के अमरवाड़ा पठार, सांवरी, मोहखेड़ चाँद के समतल भूभाग सहित छिन्दवाड़ा पठार सौसर तथा कही–कही पचमढ़ी में पाई जाती है। दक्कन का पठारी भाग

की भूमि बेसाल्ट चट्टानों से युक्त है। बेसाल्ट (काली) परतदार चट्टानो तामिया (बिजोरी) शैल का प्रधानता है। इन शैलों से काली मिट्टी का निर्माण हुआ है, जो कृषि के लिए बहुत उपयोगी है।

उच्चावच एवं भौतिक विभाग –

भौगोलिक दृष्टि से छिन्दवाड़ा जिला प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से सम्पन्न एवं विषम धरातलीय क्षेत्र है। छिन्दवाड़ा जिला का पठारी भाग सतपुड़ा की महादेव पर्वत श्रेणी के अंतर्गत आता है। जिसे धरातलीय भू–भाग की ऊँचाई लगभग 1000 मीटर है। इसका अधिकांश भू–भाग समुद्र सतह से 600 से 900 मीटर के मध्य ऊँचा है। उत्तरी भाग में ऊँची पर्वत श्रेणीयां तथा उनके मध्य में स्थित सामान्य ढाल वाला पठार पश्चिम से पूर्व की ओर फैला हुआ है। जिले के दक्षिण में छोटी–छोटी बिखरी हुई तीव्र ढाल वाली श्रृंखलाएँ विस्तृत है, जिसके दक्षिण में ऊँचाई लगभग 300 मीटर हो जाती है। जिले में नदियों का प्रवाह होने के कारण यहॉ के धरातल में विविधता दिखाई देती है।

छिन्दवाड़ा जिला के उत्तर–पश्चिम भाग पर महादेव श्रेणी में पचमढ़ी की पहाड़िया विस्तृत है। तवा तथा उसकी सहायक नदियॉ इन भागों को खड्डों में विभक्त करती है। तवा घाटी के पूर्व–पश्चिम में ऊँची चोटी की श्रृंखला है जिसमें विशषकर किलनदेव (ऊचाई 1101 मीटर) उल्लेखनीय है। किलनदेव तथा भांवरगढ चोटियों के बीच से तवा नदी बहती है। यह भाग अत्यधिक तीव्र ढाल वाला अपरदित पहाड़ियों तथा गहरे कटे–कटे गार्ज वाला है। जिसमें लेटराइट मिट्टियाँ पाई जाती है जंगलो की अधिकता के कारण केवल समतल एवं उपजाऊ घटियों में ही खेती की जाती है। (जिला गजे. 1971)

छिन्दवाड़ा जिले के उत्तर–पश्चिम भाग में अमरवाड़ा का पठार स्थित है। इस भाग में विषम पहाड़ियाँ तथा तरंगित पठार है, जहाँ खुली पर्वतीय चट्टाने है। यह क्षेत्र हर्रई और गोरपानी उच्च भाग के नाम स जाना जाता है। सतपुड़ा श्रेणी की औसत ऊँचाई 900 मीटर है। इस क्षेत्र के पूर्व में सिवनी एवं उत्तर में नरसिंहपुर जिला से जुड़ा है। इस क्षेत्र में अधिकांश वन एवं पर्वतीय क्षेत्र है, जहाँ मुख्य रूप से जनजाति क्षेत्र माना जाता है।

छिन्दवाड़ा जिला में विस्तृत भाग को छिन्दवाड़ा के पठार के नाम से जाना जाता है। इस पठार का अधिकांश भाग समतल है, परंतु कही–कही पर निम्न पहाड़ियाँ पाई जाती है। इस पठार का सामान्यतः औसत ढाल 4^0 से कम है। इसका उच्च पठारी भाग अपरदित होकर मैदानी भाग में परिवर्तित हो रहा है, जिस कारण इस भाग में मिट्टी की गहराई पाई जाती है तथा कृषि के लिए विशेष उपजाऊ मिट्टी इस क्षेत्र में पाई जाती है। इस क्षेत्र में चौरई का मैदानी भाग, चाँद (पेंच घाटी) सांवरी–मोहखेड़ मैदानी भाग तथा भटौरिया क्षेत्र जो कि इस क्षेत्र के समतल

भाग है। समतल भाग होने के कारण इन क्षेत्रों में संघन जन घनत्व एवं अधिकांश भाग पर कृषि की जाती है। छिन्दवाड़ा पठार कठोर प्रायद्वीपीय पठारी भाग का एक अंश है, जो विश्व के प्राचीनतम भू–भागों में से एक है।

ऊपरी कान्हान घाटी की समुद्र सतह से 400 फुट मीटर ऊँचा है जिसका समुद्र सतह से नीचे को ओर निम्न ढाल 4^0 है। ऊपरी कान्हान के दक्षिण में नागपुर का मैदान है तथा सौंसर के दक्षिण–पश्चिम भाग में फैंला है। ऊपरी कान्हान घाटी में कान्हान एवं जाम नदी प्रवाहित होती है। कान्हान जिले के उत्तरी भाग से निकलकर छिन्दवाड़ा जिला की दक्षिण में भौतिक संरचना का निर्धारण करती है। कान्हान घाटी से भवन आदि निर्माण के लिए रेत प्राप्त होती है तथा सिंचाई के लिए उपयुक्त है (जिला गजिटियर 1971)

अपवाह तंत्र –

देश के आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में प्राचीनकाल से ही नदियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। किसी भी देश में नदियॉ वर्षा के बाद अपना सिंचाई के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। किसी भी क्षेत्र में बिना नदी के असिंचित क्षेत्र एवं कृषि के क्षेत्र में पिछड़ा क्षेत्र माना जाता है। नदी के द्वारा जलपूर्ती एक साधन है। आज वर्षा की असमानता के कारण नदी ही सिंचाई एवं पेयजल के रूप में अपना स्थान रखती है। वर्षा की असमानता के कारण अधिक वर्षा से मृदा अपरदन होता है एवं कम वर्षा से जल की आपूर्ति होने लगती है। छिन्दवाड़ा जिले में निम्न प्रकार से नदियों का अपवाह तंत्र है एवं जिले के लिए महत्वपूर्ण है।

जिले की नदियॉ भारत के दो प्रमुख अपवाह तत्र गोदावरी एवं नर्मदा का अंग है। इन नदियों का प्रवाह क्षेत्र निम्नानुसार है–

नदी बेसिन	नदी	लम्बाई कि.मी. में	जिले में प्रवाह क्षेत्र वर्ग
नर्मदा	तवा	97	520
	शक्कर	80	986
	सीतारेवा	52	790
	दूधी	25	600
गोदावरी	कान्हान	176	3200
	पेंच	184	4840
	वर्धा	31	225
सीधा प्रवाह			669

स्त्रोतः जिला गजेटियर 1971

जिले में नर्मदा नदी बेसिन की प्रमुख नदियां निम्न प्रकार हैः–

तवाह नदी :–

तवा नदी तामिया तहसील के पर्वतीय क्षेत्र से निकलकर पश्चिम की ओर बहती हुई होशंगाबाद जिले से 8 कि.मी. पहले नर्मदा नदी में तवा नदी का संगम है। तवा नदी की लम्बाई

97 कि.मी. है, जिले में प्रवाह क्षेत्र 520 वर्ग किलोमीटर है। तवा नदी का आकार चौड़ा और रेतीला होने के कारण तवा नाम से जाना जाता है। तवा नदी पश्चिमी भाग में जल प्रवाहित करती है। तवा नदी पर तवा जलाशय बनाया गयाहै परन्तु कृषि की दृष्टि से इस नदी को महत्वपूर्ण भूमिका नही है। इस नदी पर मध्यप्रदेश का सबसे लम्बा बाँध बनाया गया है।

दूधी –

यह नदी तामिया तहसील के पातालकोट से निकलकर उत्तर की ओर बहती हुई नर्मदा नदी में मिल जाती है। यह लगभग 0.50 कि.मी. पहाड़ियों के बीच चक्करदार एवं गहरे मार्ग में बहती ह।

सीतारेवा–

यह नदी महादेव पर्वत से निकलकर उत्तर की ओर बहती हुई शक्कर नदी में मिल जाती है।

शक्कर नदी –

इसका उद्‌गम स्थान इल्हादेव पहाड़ पर स्थित सूकरी नामक ग्राम है। यह नदी गाडरवाड़ा के आगे जाकर नर्मदा नदी में मिल जाती है।

जिले में गोदावरी नदी बेसिन की प्रमुख सहायक नदियां निम्न प्रकार है–

पेंच नदी :–

टेढ़े–मेढ़े मार्ग से प्रवाहित होने के कारण इसे पेंच नदी कहा जाता है। यह नदी मोहतुर पहाड़ से निकलकर पूर्व–पश्चिम की ओर बहती हुई तोतलाढोह बाँध में मिल जाती है। पेंच नदी की कुल लम्बाई 184 किलो मीटर ह, इस नदी जिले में प्रवाह क्षेत्र 4840 वर्ग किलोमीटर है। इस नदी को छिन्दवाडा जिले की जीवन रेखा माना जाता है। इस नदी पर चौरई विकास खण्ड के अंतर्गत माचागोरा नामक सिचाई एवं जल विधुत परियोजना का निर्माण किया गया है। इस नदी के दोनो ओर कोयले के विशाल भण्डार की संभावना है।

कान्हान नदी :–

इस नदी का उद्‌गम अल्मोद जागीर है। यह नदी जिले में लगभग 113 किलो मीटर बहती है। इसकी प्रमुख सहायक नदी जाम है। इस नदी पर रामाकोना के पास सिलारी नामक जल प्रपात है। यह नदी कृषि के लिए बहुत उपयोगी मानी जाती है।

जाम नदी :–

यह नदी अपने उद्‌गम स्थान मोही के पहाड़ से निकलकर संगम गॉव के पास कन्हान नदी में मिल जाती है। भोहगाँव हवेली से 1.5 किलो मीटर दूरी पर घोघरी खापा नामक ग्राम के

पास जाम नदी का जल लगभग 100 फुट की ऊँचाई से गिरता है जो एक जल प्रताप का रूप धारण करता है।

वर्धा नदी –

वर्धा नदी अपने उद्‌गम स्थान दोहवादना चोटी जोकिमुलताई के उत्तर–पूर्व में स्थित से निकलकर 18 किलोमीटर छिन्दवाड़ा की दक्षिणी सीमा बनाते हुए महाराष्ट में बैनगंगा पैनगंगा नदियों से मिलकर पर्णाहिता नाम से प्रसिद्ध है।

मिट्‌टियाँ –

मिट्‌टी सम्पदा पर उच्चावच एवं जलवायु का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। प्राकृतिक संसाधनों की देन में मिट्‌टी मानव जीवन के लिए प्रमुख प्राकृतिक साधन है। मिट्‌टियाँ वनस्पति मानव एवं जीव जन्तु के आधार का काम करती है। मिट्‌टी का 78 प्रतिशत भाग ग्रामीणों में कृषि के लिए उपयोग किया जाता है। मिट्‌टी मनुष्य को भौतिक रासायनिक एवं जैविक रूप से भोजन एवं पानी की पूर्ति करती है। मिट्‌टी का यह कार्य उनकी प्राकृतिक दशाओं पर निर्भर करता है कि मिट्‌टी मानव की कितनी इच्छा पूर्ति करती है। मिट्‌टी उत्पादकता अनियंत्रित मिट्‌टी अपरदन एवं पानी क्षरण क्षेत्रों में शुष्क कृषि तकनीकों की पहुँच न होने एवं सिंचित कृषि के अंतर्गत बिना उचित सतही प्रवाह प्रणाली से प्रभावित होती है।

छिन्दवाड़ा जिला में मिट्‌टी की विशेषताओं में मिलने वाली विभिन्नता का सम्बन्ध चट्‌टानों की संरचना उच्चावचों के धरातलीय स्वरूप धरातल का ढाल जलवायु प्राकृतिक वनस्पति आदि से स्थापित हुआ है। छिन्दवाड़ा जिला में मिलने वाली मिट्‌टी की प्रमुख किस्में इस प्रकार है–

काली मिट्‌टी –

काली या रेगुड मिट्‌टी एक परिपक्व मिट्‌टी है। इस क्षेत्र में काली मिट्‌टी पाई जाती है जो दक्कन ट्रैप तथा गोंडवाना चट्‌टानों से संबंधित है। इस मिट्‌टी का निर्माण प्राचीन काल में लावा से निर्मित होने के कारण बहुत उपजाऊ होती है। इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा चूना की प्रधानता होती है। निम्न भाग वाली गहरी काली मिट्‌टी में गेहूँ, कपास, जवार बाजरा आदि की कृषि की जाती है। कपास की खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होने के कारण इसे कपास की काली मिट्‌टी भी कहा जाता है। यह मिट्‌टी छिन्दवाड़ा चौरई, सौंसर एवं पांदुरना तहसीलों में विस्तृत है (जिला गजेटियर 1971) इस क्षेत्र के आंतरिक भागो में काली मिट्‌टी के निम्न रूप है–

मध्य काली मिट्‌टी –

छिन्दवाड़ा जिले के अधिकांश भागों में यह मिट्‌टी पाई जाती है। यह मिट्‌टी चौरई चाँद साँवरी, मोहरखेड तथा अमरवाड़ा विकास खण्ड में अधिकांश रूप में विस्तृत है। जो गेहूँ, कपास, ज्वार, तुअर, मूँगफली आदि फसलो के लिए उपयोगी है।

छिछली काली मिट्टी –

यह मिट्टी कन्हान घाटी के उत्तरी भाग में पाई जाती है यह मिट्टी पहाड़ी एवं कटे–फटे क्षेत्र में कम गहराई तथा रेतीले होने के कारण इसमें जल धारण की क्षमता बहुत कम होती है। इसमें नाइट्रोजन की कमी के कारण उर्वरता शक्ति कम होती है।

मिश्रित लाल एवं काली मिट्टी –

गोड़वाना युगीन शैलों से विकसित इस मिट्टी का काला एवं लाल रंग का होता है। यह मिट्टी छिन्दवाड़ा पठार के कुछ हिस्सों में पाई जाती है। यह मिट्टी हल्की होती है। इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा जैविक तत्वों की कमी होती है। परन्तु सिंचाई की सुविधा होने क कारण इस मिट्टी में वर्ष दो या दो से अधिक फसलें उत्पादन किया जा सकता है।

लाल रवेदार मिट्टी –

लाल मिट्टी का निर्माण जलवायविक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप रवेदार एवं कायांतरित शैलों में विघटन एवं वियोजन से होता है। ग्रेनाइट शैलों से निर्माण के कारण इसका रंग भूरा चाकलेटी पीला अथवा काला तक पाया जाता है। इसमें छोटे एवं बड़े दोनों प्रकार के कण पाये जाते है। छोटे कण वाली मिट्टी काफी उपजाऊ होती है जबकि बड़े कणों वाली मिट्टी प्रायः उर्वरता विहिन बंजर भूमि के रूप में पायी जाती है। इसमें नाइट्रोजन फास्फोरस तथा जीवांश की कम मात्रा मिलती है जबकि लोह तत्व एल्युमिना तथा चूना पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इस मिट्टी में कपास गेहूँ, दाले एवं मोटे अनाजों की कृषि की जाती है। यह मिट्टी जिले के दक्षिणी तथा पश्चिमी भागों में पाई जाती है। बिछुआ, जन्नारदेव, तामिया हर्रई तहसीलों में इस मिट्टी का विस्तार पाया जाता है।

लेटेराइट मिट्टी –

इस मिट्टी का निर्माण मानसूनी जलवायु की आर्द्रता एवं शुष्कता के क्रमिक परिवर्तन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न विशिष्ट परिस्थितियों में होता है। इस विभिन्नता से निक्षलन की प्रक्रिया अधिक क्रियाशोल रहने के कारण शैलों में सिलिका की मात्रा कम पाई जाती है। इस मिट्टी का विस्तार सौसर नांदनबाड़ी कान्हान घाटी में पाई जाती है। यह मिट्टी कपास गेहूँ एवं संतरा की कृषि के लिए उपयोगी है। साथ ही मिट्टी मकान के खपरे बनाने में काम आती है। इस मिट्टी में सफद लेटे राइट की उर्वरता सबसे कम होती है। टोर केओलिन की अधिकता के कारण इसका रंग सफेद हो जाता है। भूमिगत जल वाली लैटेराइट मिट्टी काफी उपजाऊ होती है। सिंचाई के सुविधा के अभाव वाले क्षेत्रों में इस मिट्टी में कृषि कार्य करना संभव नहीं होता है।

मृदा अपरदन–

पृथ्वी की सतह पर प्राकृतिक कारणों जल एवं हवा द्वारा मिट्टी का कटाव एवं एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना मिट्टी अपरदन कहलाता है। यह प्रक्रिया अतिमंद गति से होती है और मिट्टी बनना प्रभावित नहीं होती। परन्तु वनस्पति नष्ट हो जाने पर मिट्टी अपरदन की क्रिया तीव्र हो जाती है। जल के द्वारा मिट्टी का कटाव होता रहता है एवं समतल भू–भाग खड़डों में एवं कटा–फटा बन जाता है। हवा के द्वारा मिट्टी की मोटी ऊपरी परत वह जाती है। जिस कारण विस्तृत भूमि कृषि योग्य नहीं रह जाती। जंगलों को काट एवं जला दिया जाता है, जिसस मृदा अपरदन की तीव्रता में वृद्धि हो रही है। मानव अपनी आवश्यकताओं के लिए वनों का दुरूपयोग कर रहा है जिससे मृदा अपरदन की तीव्रता बढ़ती जा रही है। मानव अपनी आवश्यकताओं के लिए वनों का दुरूपयोग कर रहा है जिससे मृदा अपरदन अधिक होने के कारण कृषि योग्य भ्मि कम होती जा रही है बढ़ती हुई जनसंख्या के खाद्यान्न के लिए एक बड़ी समस्या उभर कर आ रही है।

चतुर्वेदी एवं थालसन ने छिन्दवाड़ा जिले के लिए मिट्टी मानचित्र का भौगोलिक समचनाक्षेत्र के माध्यम से विश्लेषण किया है। उन्होने जिले में मिट्टी अपरदन को चार श्रेणीयों में रखा है–

1. हल्का अपरदन
2. मध्यम अपरदन
3. अधिक अपरदन
4. अत्याधिक अपरदन

जिले में मध्यम एवं अधिक अपरदन का क्षेत्र क्रमशः 36.0 एवं 37.1% है, अधिक अपरदन के अंतर्गत 57% क्षेत्र है। गम्भीर अपरदन सौंसर उच्च भूमि में सबसे अधिक विस्तृत है। जबकि दूसरी ओर अमरवाड़ा का पठार है। (जिला गजेटियर 1971)

जलवायु –

उच्चावच संबंधी विविधताएं जल एवं स्थल का असमान वितरण वनस्पति आवरण एवं स्थिति ऐसे महत्वपूर्ण कारक है, जो जलवायु को प्रभावित करके विभिन्नता उत्पन्न करते है। परिवर्तन हो जाने वाली मानसूनी हवाओं पर पड़ता है। जलवायु का सामाजिक प्रभाव आर्थिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, जिसमें भूमि पर्यावरण में जलवायु का विशिष्ट स्थान होता है, साथ ही इसका प्रभाव सामाजिक पर्यावरण पर पड़ता है।

किसी स्थान की अल्पकालीन वायुमण्डलीय दशाओं (तापमान, वर्षा, वायुदाव, पवन, आर्द्रता, दृश्यता आदि) के सम्मिलित संबंधी दशाओं का औसत जलवायु कहलाता है (सिंह सविन्द्र 2004)। इससे स्पष्ट होता है कि मौसम वायुमण्डल की क्षणिक अवस्था का बोध कराता है, जो

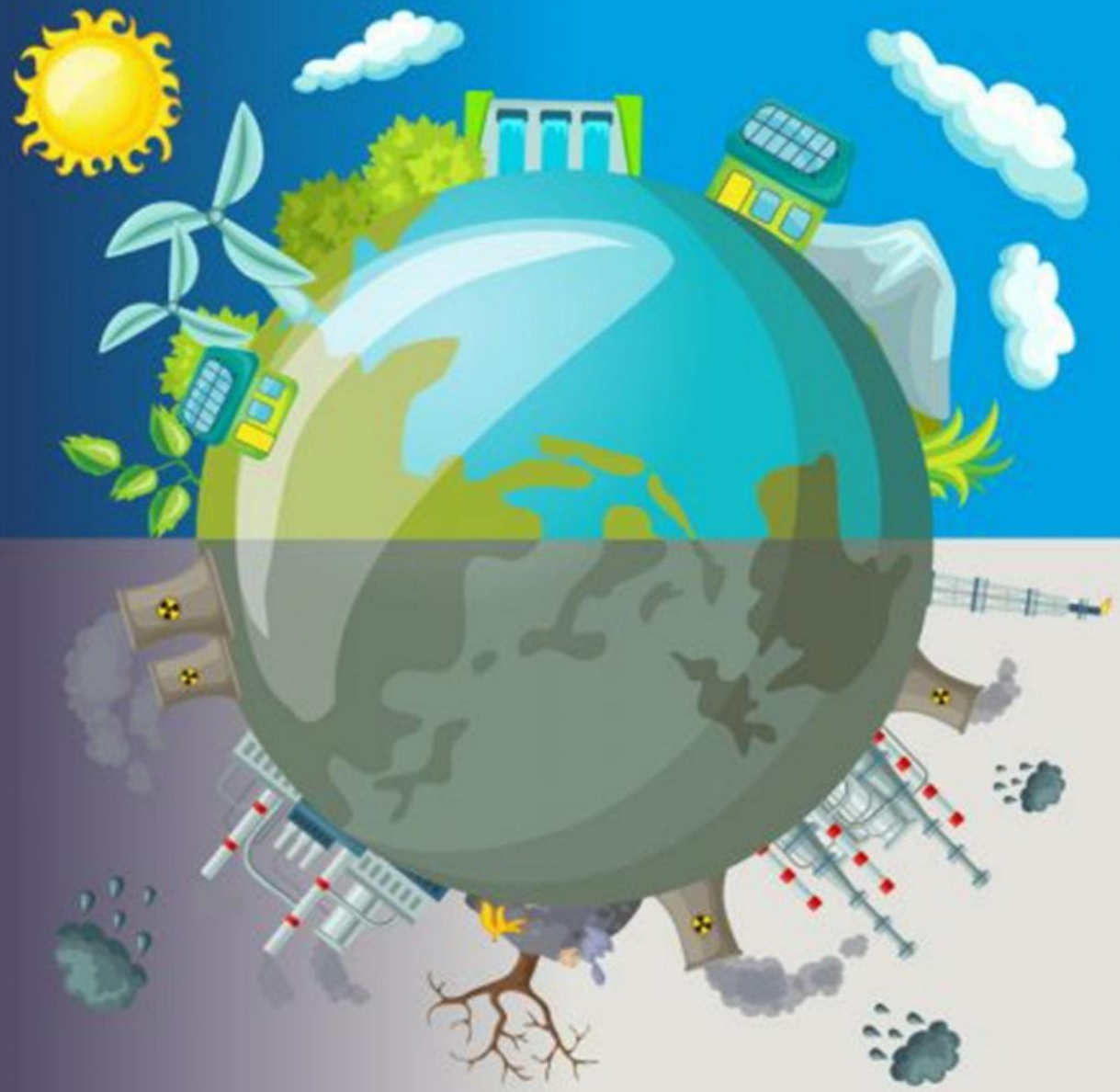
दीर्घ कालिक अवस्था का बोध है एवं इससे परिवर्तन सूक्ष्म एवं धीरे–धीरे होता है। जलवायु के स्वरूप को अक्षांशीय स्थिति ऊँचाई, पर्वतीय हवाये, समुद्री धाराएँ आदि कारक प्रभावित करते है।

छिन्दवाड़ा जिला सतपुड़ा श्रेणियों का मध्यम भाग है। इसके उत्तर से कर्क रेखा गुजरती है, जिसके परिणाम स्वरूप यहाँ स्पष्ट प्रभाव जलवायु पर दिखाई देता है। जिले की जलवायु उसके प्राकृतिक स्वरूप के अनुसार अनेक विभिन्नताओं से मिलती है। छिन्दवाड़ा जिला के दक्षिणी भाग के अंतर्गत सासर के मैदानों की जलवायु गरम है, जबकि उत्तरी क्षेत्र समशीतोषण (ठंडा) है। घने वन एवं घाटियाँ है जहाँ पचमढ़ी की पहाड़ियाँ आती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचि :

1. दुबे पुष्पा एस. (1988), जनसंख्या शिक्षण, *विवेक प्रकाशन, दिल्ली।*
2. हीरालाल (2001), जनसंख्या भूगोल, *वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।*
3. पाण्डा पी.डी. (2004), जनसंख्या भूगोल, *हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मध्य प्रदेश भोपाल*।
4. दुबे कमला कांत एवं सिंह महेन्द्र बहादुर (1994), जनसंख्या भूगोल, *रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली।*
5. Sharma S. (1999), Determinants of Literacy in Meghalaya : A correlation Analysis, Hill Geographer, *The Geographical Society of North-Eastern Region Shillong (India),* Vol. XV, (pp 69-75).
6. Samanta Gopa (June, 2003), Gender Disparity in Literacy in West Bengal, The Deccan Geographer, *Research Journal of The Deccan Geographical Society, Pune*., Vol.-24, No. 1, (pp 31-42).
7. Krishna Gopal & Shyam Madhav (March, 1977), Literacy in India, Geographical Review of India, *The geographical society of Kolkata Indias*, Vol.-39, (pp 117-122).
8. सिंह आर. पी. (दिसम्बर, 1986), अवध प्रदश में महिला साक्षरता का स्थानिक विश्लेषण, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, *उत्तर भारत भूगोल परिषद, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश (भारत),* अंक–22, (पृष्ठ संख्या 1–15)।
9. Hussain Mokamic & Taufique Mohd. (June, 2004), Pattern of Literacy in Bihar : A Geographical Analysis, Geographical Review of India*, The Geographical Society of India*, Vol-66, (pp 201-206).
10. प्रसाद रामा एवं महावर गोपीलाल (जून–दिसम्बर, 2001) राजस्थान में साक्षात्कार का भौगोलिक विश्लेषण, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, *उत्तर भारत भूगोल परिषद, गोरखपुर,* अंक–37, (पृष्ठ संख्या 9–18)।

POPULATION, DEVELOPMENT AND ENVIRONMENTAL DEGRADATION



GOVT. COLLEGE BICHHUA

District - Chhindwara (M.P.)

Email: hegcbicchh@mp.gov.in,

Website: www.mpcolleges.nic.in/gdcbichhua

ISBN -978-93-5279-261-0

ENVIRONMENTAL CHANGE AND SUSTAINABLE DEVELOPMENT



Dr. Rajendra Prasad Yadav

Proceedings of the National Research Seminar

(25-26 February 2014)

On

ENVIRONMENTAL CHANGE AND SUSTAINABLE DEVELOPMENT

Government College Bichhua

Raja Shankar Shah University Chhindwara (M.P.)

© Copyright, Author

All right reserved. No Part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted, in any form by any means, electronic, mechanical, magnetic, optical, chemical, manual, photocopying, recording or otherwise, without the prior written consent of its writer.

Dr. Rajendra Prasad Yadav

Department of Geography

Govt. College Bichhua

District- Chhindwara (M.P.)

ISBN- 978-93-5279-261-0

Month & Year of Publication- October, 2018

Preface

Environmental degradation simply means overall lowering of environmental qualities because of adverse changes brought in by human activities in the basic structure of the components of the environment to such an extent that these adverse changes adversely affect all biological communities in general and human society in particular. Environmental degradation leaves direct impact on the ecology and thus is caused ecological imbalance because of marked reduction in the ecosystem and ecological diversity. Impact, ecological imbalance is the indicator of environmental degradation because it becomes difficult to perceive environmental degradation directly in the initial stages. Adverse effects of environmental degradation are easily observable in biological communities.

Global warming has become a threat to the survival of life on the earth. Needless exploitation of resources has contributed to the buildup of green house gases in the atmosphere. As individuals we have a responsibility toward other life forms and future generations. Let us give them a better planet to live. Although global warming would continue to rise but with individual efforts we might be able to retard its steady rise. The solutions are simple what really is needed is awareness and the will to do it. This is as true for us as individuals as governments across the globe.

At one point in the Earth's history, a natural imbalance in the amount of carbon dioxide released by respiration and the amount fixed by photosynthesis had a significant effect on Earth's climate. Several hundred million years ago during the Carboniferous period, vast swamp forests of seedless vascular plants fixed huge amounts of carbon, causing atmospheric CO_2 concentrations to drop fivefold. The resulting global cooling led to an ice age. Much of this fixed carbon was buried in the swamps and gradually compressed to form coal. The point that is being made is how small changes by tiny units of life are able to

impact global environment. The coal deposits that we are able to exploit today were the compressed carbon fixed during this period.

It is worth noting that forestry and other land-use practices offset some of these greenhouse gas emissions, according to the EPA. Since trees and other plants absorb CO_2 from the atmosphere, they reduce our overall greenhouse gas emissions by roughly 14 percent. The seas also absorb carbon dioxide but absorbing atmospheric carbon makes the waters acidic posing a threat to marine life affecting the sustenance of millions of people worldwide.

With human development process, human has destroyed the environmental conditions. Human economic, industrial activities have played a vital role to change the environment. It has caused global warming situation which seems to be most dangerous for the survival of mankind.

The authors have made their best efforts to justify their views on the theme, environmental change, global warming, bio diversity conservation and sustainable development. The views of the researchers would be useful for the society.

Rajendra Prasad Yadav

Index

Sr.No.	Topic	Name	Page no.
01	पर्यावरणीय गुणवत्ता बनाम (असम्पोषित) विकास	डॉक्टर श्रीकमल षर्मा	01
02	Health Hazards caused by Arsenic Contamination A Case Study of Nadia District, West Bengal.	Arunima Bhattacharya	18
03	Ethno-Medicinal Practices in Chhindwara District A Study in Geography of Health Care	Dr. Gajendra Kumar Namdeo Dr. Rajendra Prasad Yadav	27
04	Economics Of Extraction Of Ntfps By Forest Dwellers in Bastar District Of Chhattisgarh	G. K. Acharya, S.K. Nagre	34
05	Impact of Climate Change on Human Health	Dr. Gajendra Kumar Namdeo	39
06	Arresting Global Warming: The Individual Effort	Dr. Hemant Thankappan	44
07	Environmental Affects on Children Health	J.P. Kushwah, Bijendra Singh	50
08	Sustainable Urban Development in the Indian Context	Dr. K.L. Sahu	70
09	Vulnerability of Villages Situated Near Disaster Prone Industries in District Bathinda (Punjab, India)	Komaljot Singh	77
10	Water Pollution In Mandideep Raisen District - A Critical Review	Dr. Mukesh Kumar Napit	85
11	Urban Waste Management and Environment	Dr.R.K.Jain & Mrs Sadhna Jain	91
12	Potassium Supplying Power of a Black Soil Amended with Spent Wash and Post–Methanation Effluent	Rouf ur Rafiq	96
13	The Environmental Impact of Industrialization in East Asia and Strategies toward Sustainable Development	Vicky Ratan Sharma	103
14	Health & Social Needs of Red-Pickers: A Case Study of Bilaspur City (C.G)	Dr.Vijay Kumar Tiwari Narendranath Guria	119
15	"Geographic analysis of the emerging diseases due to illicit underground water in Yavatmal district"	Dr.R.P.Yadav, Dr.Vinita J. Deshmukh	136
16	वैष्विक तपन–मानव समाज के लिए खतरे की पूर्व सूचना	डॉ. ए. के. बासल, डॉ. मनीषा बासल	143
17	जनसंख्या वृध्दि के दुष्परिणाम एवं नियंत्रण हेतु केन्द्र सरकार के प्रयास	कपिल खरे	147
18	पर्यटन का पर्यावरणीय एवं आर्थिक प्रभाव	डॉ. पी. अजवानी एवं प्रो. आर. के. चन्देल	151
19	पर्यटन उद्योग एवं पर्यावरणीय अवनयन	धनसिंह आकरे	156
20	ग्लोबल वार्मिग और जलवायु परिवर्तन	डॉ. आर. पी. यादव, डॉ0 मनीता कौर	164

21	''पर्यावरण का स्वास्थ्य पर प्रभाव : कुपोषण'' (मध्यप्रदेष के सिवनी जिले के संदर्भ में)	डॉ. षाहिदा बेगम मंसूरी	168
22	छिन्दवाड़ा जिले में खनिज संसाधन का भौगोलिक अध्ययन	रघुवीर उइके	177

पर्यावरणीय गुणवत्ता बनाम (असम्पोषित) विकास

Environmental Quality versus (Unsustainable) Development

डॉक्टर श्रीकमल शर्मा

सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष भूगोल विभाग

तथा संचालक, जनसंख्या शोध केन्द्र

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

सागर (म.प्र.) 470 003

मानव का सामाजिक–आर्थिक ढाँचा मुख्यरूप से संसाधन पर निर्भर होता है। इसका भौतिक स्वरूप जैव–भौतिक पर्यावरण का अंग है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता आया है। पहिले वह प्राकृतिक संसाधनों का संग्रहक था। जनसंख्या कम होने के कारण मांग सीमित थी और प्रकृति पर मानव की छाप भी नगण्य थी। बाद में मनुष्य ने तकनीकी का उत्तरोत्तर विकास किया, जिनकी मदद से वह प्राकृतिक संसाधनों का वृहद् पैमाने पर दोहन करने लगा जिससे उसने विध्वंसक का रूप धारण कर लिया। फलतः प्राकृतिक पर्यावरण का विशेष रूप से संसाधनों का तेजी से विरूपण होने लगा। यातायात के साधनों के विकास ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से इस विरूपण को गति दी। अवनयन के साथ ही इनसे प्रदूषण का रोग भी शुरू हुआ और इन प्राकृतिक तत्वों की वहनीयता के कारण प्रदूषण का प्रभाव–क्षेत्र बढ़ा। प्रोद्यौगिकी मानव के व्यक्तिवादी और व्यावसायिक दृष्टिकोण, संसाधनों का अविवेकपूर्ण एवं लोलपतापूर्ण दोहन ने अनेकों पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दिया है। आज विकास के चिन्तन में पर्यावरण की गुणवत्ता की अहम् स्थान मिला है तथा अब पर्यावरण संतुलन को विकास का एक अंग के रूप में स्वीकारा गया है।

विचारणीय प्रश्न

मानव सतत विकास कर रहा है। साथ ही प्राकृतिक पर्यावरण भी तीव्र गति से छिन्न–भिन्न होता जा रहा है। वास्तव में प्राकृतिक पर्यावरण में बाह्य व्यवधानों को आत्मसात करने की एक सीमा होती है। परन्तु वर्तमान मानवीय व्यवधान इस हद को पर कर गए हैं। जिसके परिणाम हैं– प्राकृतिक संसाधनों की कमी और विरूपण, बड़े पैमाने पर पर्यावरण अवनयन एवं प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन तथा अनेकों पर्यावरणीय आपदाएं। इस तरह सुपर टेक्नालाजीयुक्त मानव को पर्यावरण–विनाश के रूप में विकास की कीमत चुकानी पड़ रही है। यह सर्व विदित है

कि पर्यावरण के तत्व अन्योन्याश्रित चक्र के रूप में सक्रिय रहते हैं। उनमें किसी भी चक्र में असहनीय सीमा तक व्यवधान आने पर पूरा तंत्र प्रभावित होता है, केवल वह भाग भर ही नही।

वास्तव में पर्यावरणीय समस्याओं के लिए सार्वभौमिक कारण ढूढ़ना कठिन है तथापि मौलिक तीन कारण माने जाते हैं। इनमें जनसंख्या का घनत्व और वृद्धि मुख्य कारण माना जाता है। इसके कारण संसाधनों पर अविरल दबाव बढ़ता है। फलतः संसाधनों की समाप्ति, कमी, अत्यधिक दोहन, परिमाणतः पर्यावरण अवनयन निरंतर बढ़ता है। इसका सीधा प्रभाव सामाजिक विकास की प्रभाविता पर पड़ा है। जीवनस्तर के निरंतर उन्नयन की आकांक्षा से इनका प्रभाव तीव्रतर होता जाता है। इस कारण जनसंख्या की वृद्धि की गति कमजोर भी पड़ जाय तो भी संसाधनों के विरूपण में कमी आना संभावित नहीं है। नगरीकरणजनित समस्याएं, निर्वनीकरण, कृषीय भूमि का अवनयन, मरुस्थलीकरण इसके भयावह रूप हैं।

दूसरे, पर्यावरण पर गहरी छाप छोड़ने वाले कारकों में तकनीकी में तीव्र परिवर्तन भी काफी महत्वपूर्ण है। जीवीय ऊर्जा पर आधारित तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव बनाने वाली आधुनिक प्रौद्योगिकी के भयावह गति से उपयोग के कारण प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र पर काफी दबाव पड़ा है। इससे न केवल बड़े पैमाने पर उत्पादन एवं वितरण संभव हुआ बल्कि उसी अनुपात में संसाधनों का विदोहन, विरूपण एवं पर्यावरण का प्रदूषण भी हुआ है। वास्तव में तकनीकी के परिवर्तन के कारण आर्थिक विकास और पर्यावरणीय गुणवत्ता के बीच का संतुलन बिगड़ जाता है। फलतः पर्यावरणीय आपदाओं (hazards) की संख्या बढ़ती जा रही है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रमुख उत्पादन की तकनीकियों में बड़े पैमाने पर रूपांतरण हुआ है जिनसे पर्यावरण में संकट पैदा करने वाले पदार्थ–फोटोरसायन धुंआ, विषैले रसायन, द्रुत पादप सुपोषण (eutrophication) तथा अवशिष्ट रसायनों का भारी मात्रा में पर्यावरण में संकेद्रण– जैसी प्रक्रियाएं विकराल रूप ले सकीं। विकसित देशों में तकनीकी का पर्यावरण पर प्रभाव सर्वाधिक है, परन्तु विकासशील देशों में भी यह कम नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की संरचना इस प्रकार है कि इन देशों को व्यापारिक घाटे को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक संसाधनों का दोहन करना पड़ता है। वैसे भी अधिकतर इन देशों की स्वयं की अर्थव्यवस्था संसाधनों के दोहन पर आधारित है। फलतः संसाधनों की कमी, समाप्ति तथा उनसे संबंधित समस्याएं आम हैं। पुनः इन देशों ने विकसित देशों की तकनीकी का अनुकरण करके उनसे संबंधित समस्याओं को ओढ़ लिया है। जैसे कि पेट्रोरसायन तथा कीटनाशक रसायनों पर आधारित हरित क्रान्ति ने यहां भी जल एवं भूमि प्रदूषण को बढ़ाया है। संक्षेप में, आर्थिक विकास के स्तर तथा सहगामी पर्यावरण अवनयन की गहनता को अंको द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह उत्पादन की तकनीकी के प्रकार पर निर्भर होता है। जैसे कि बराबर बिजली उत्पन्न करने वाले एक जलविद्युत केन्द्र

तथा एक आणविक शक्ति केन्द्र में स आणविक केन्द्र का प्रभाव बहुत अधिक होता है।

उदाहरण के लिए कामनर (1972) ने संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रदूषण का विश्लेषण करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रदूषण में वृद्धि तकनीकी के कारण हुई है न कि बढ़ती जनसंख्या अथवा सम्पन्नता के कारण। यहां तक कि पिछड़े देशों में भी जनसंख्या वृद्धि की तुलना में तकनीकी वृद्धि का पर्यावरण पर प्रभाव दो गुने से अधिक है। इन देशों में बढ़ती जनसंख्या एक–चौथाई से एक–तिहाई तक प्रदूषण के लिए जिम्मेवार है। इन सबसे प्रेरित सामाजिक–आर्थिक विशेषकर औद्योगिक विकास पर्यावरण एवं पारिस्थितिक परिवर्तन का मुख्य कारण है। **तीसरे,** बड़े पैमाने के उत्पादन ने वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उपभोग सम्भव बनाया और यह उपभोग भारी मात्रा में और विविध रूपों में अपशिष्टों को जन्म देते हैं जो पर्यावरण की संरचना ही बदल रहे हैं।

वर्तमान जलवायु परिवर्तन इतना चिन्तनीय क्यों?

जलवायु–परिवर्तन, प्रदूषण, जल संकट तथा रासायनिक कचरा आधुनिक विकासजनित मुख्य पर्यावरणीय समस्याएं हैं। फिर भी वर्तमान में जलवायु–परिवर्तन को सर्वोपरि समस्या माना जा रहा है; क्योंकि यह अकेले ही भविष्य को गर्त में ले जाने में समर्थ है तथा मानव विकास में बाधा बन सकता है। इस विषय में विश्व एक मत है कि "जलवायु परिवर्तन हो रहा है तथा यह मानव विकास को पटरी से उतार सकता है। यह माना जाता है कि इससे समुद्र तल तथा मौसम की दशाएं एवं सम्भवतया मानव अधिवास और कृषीय उत्पादकता बहुत प्रभावित होंगी।"

यह जलवायु में होने वाला किसी भी तरह का परिवर्तन है, चाहे वह भौतिक कारणों से हो रहा हो अथवा मानवीय कारणों से। जलवायु परिवर्तन कोई नई घटना नही है। यह तो पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद से घटित हो रही है। इस संदर्भ में हुए शोधों से ज्ञात होता है कि भूगर्भिक काल में तापमान की प्रवृत्ति से स्पष्ट है कि सामान्यतया जलवायु गरम हो रही है, केवल पांच हिम युगों की अवधि को छोड़ कर। तथापि वर्तमान में होने वाले जलवायु के परिवर्तन को सामान्य नही माना जा सकता। अपनी व्यापकता और तीव्रता के कारण जलवायु का यह तापन (तापवद्धि) पृथ्वी के इतिहास में एक अद्‌भुत घटना है। यही भूमंडलीय तापन ही जलवायु परिवर्तन का माध्यम है। इस बात के कई संकेत हैं: भूमण्डलीय औसत तापमान में वृद्धि, बर्फ और हिम का बड़े पैमाने पर पिघलना तथा समुद्र जल तल का ऊपर उठना। वनस्पतियां एवं जीव–जन्तु भी तदनुसार अपनी आदतों एवं प्रक्रियों में परिवर्तन कर रहे हैं। इन सब का समग्र प्रभाव भौतिक पर्यावरण विशेषकर संसाधनो पर पड़ रहा है।

जलवायु परिवर्तन के परिणाम – जलवायु विभिन्न प्राकृतिक एवं मानवीय तंत्रों के

लक्षणों एवं वितरण को **प्रभावित करने** वाला मूलभूत कारक है। इन तंत्रों में हिममंडल, जल तंत्र एवं जल संसाधन, मीठे पानी तथा समुद्री जैव तंत्र, कृषि एवं वानिकी विशेष उल्लेखनीय हैं। अस्तु ताप वृद्धि से ये सभी प्रभावित हो रहे हैं। वर्तमान जलवायु परिवर्तन विशेषरूप से तापमान वृद्धि से सभी महाद्वीपों और महासागरों में भौतिक और जैविक तंत्र प्रभावित हो रहे हैं। मानवीय तंत्र पर भी इसका प्रभाव दिखाई देने लगा है। जलवायु परिवतन का हिममण्डल के विभिन्न पक्षों– हिम, बर्फ और हिमावरण, जल तंत्र, जल संसाधन, तटीय क्षेत्रों तथा महासागरों पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई दे रहा है।

जलवायु परिवर्तन के कारण

यद्यपि जलवायु परिवर्तन में भौतिक प्रक्रियाएं तथा मानवीय क्रियाएं दोनो भागीदार हैं; तथापि वर्तमान वातावरण तापन के लिए मानवीय क्रियाओं को अधिक जिम्मेवार माना जाता है। इसके लिए मानव की वे क्रियाएं अधिक जिम्मेवार हैं जिनसे कार्बन डाईआक्साइड तथा अन्य ग्रीन हाउस गैसें (Green house gases) उत्पन्न होती हैं। वातावरण में इन गैसों के निरंतर मिलने से तापमान निरंतर बढ़ता रहता है जो जलवायु परिवर्तन का सबसे चिन्तनीय विषय है। उल्लेखनीय है कि ये गैसें लम्बे समय तक वायुमंडल में उपस्थित रहती हैं तथा उसे प्रदूषित करती रहती हैं।

पर्यावरणीय सरोकार

पर्यावरण एवं विकास के अर्न्तसम्बन्ध बहुत पहिले से अध्ययन के विषय रहे हैं। इसका आरम्भ एडम स्मिथ के ग्रंथ "वेल्थ ऑफ नेशन्स" से माना जा सकता है। इसके लगभग दो सौ साल बाद क्लब ऑफ रोम ने संसाधनों की सीमितता पर सन् 1972 में अपनी रिपोट "द लिमिट्स ऑफ ग्रोथ" में प्रस्तुत कर इस विषय को ज्वलंत बनाया। पुनः चार्ल्स डार्विन से लेकर अब तक पारिस्थिती की संरचना एवं कार्य–प्रणाली तथा जैव–विविधता पर किए गए अनन्त प्रयोगों तथा अन्वेषणों ने यह सिद्ध कर दिया कि प्राकृतिक पारिस्थितिकी पृथ्वीतल पर जीवनाधार है तथा इसे कृत्रिमरूप से स्थापित नही किया जा सकता। साथ ही इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रकृति को समझने तथा उसका सम्मान करने की असफलता के कारण सभ्यताओं का पतन हुआ है (Diamond 2005) इसी परिपेक्ष्य में विकासजनित पर्यावरणीय समस्याओं पर विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण तथा विकास के पारस्परिक संबंधों को संतुलित रखने एवं विकास को पर्यावरण की क्षमता के अनुकूल बनाने के उपाय सुझाने के लिए कई संगोष्ठियाँ की जा चुकी हैं। समस्या की गंभीरता को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने तीन बहुपक्षीय सभाओं का भी गठन किया है। ये हैं: जैविक विविधता सभा (Convension of Biological Diversity, CBD)] संयुक्त राष्ट्र संघ जलवायु परिवर्तन फ्रेमवक्र संघ (United Nations Framework Convension on

Climate Change, UNFCCC) तथा संयुक्त राष्ट्र संघ मरुस्थलीकरण समाघात सभा (United Nations Convension to Combat Desertification, UNCCD)।

इन प्रयासों के बावजूद भी विकास की प्रक्रिया से विकसित और विकासशील दोनों क्षेत्रों में पर्यावरण में गंभीर असंतुलन पैदा हुआ है। इसे अम्बिराजन (1992) ने श्रीधर रामफल को उद्धृत करते हुए कहा है कि ''पर्यावरण की सभी समस्याओं के बीज तृतीय विश्व के देशों की गरीबी तथा औद्योगिक देशों के अति उपयोग में निहित है।'' इस तरह पर्यावरण अवनयन एवं लड़खड़ाते विकास का दुष्चक्र चल रहा है। हाल ही में विश्व आर्थिक फोरम ने शंका व्यक्त किया है कि "कुछ प्राकृतिक संसाधनों की बढ़ती कमी, जलवायु परिवर्तन तथा विश्व जनसंख्या का सन् 2050 में 9 अरब तक वृद्धि संयुक्तरूप से एक परिपूर्ण तूफान की स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं" (WEF, 2011)।

पूर्ववर्ती दशकों के विकासात्मक गतिविधियों का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। इनमे मुख्य हैं– वन विनाश, संसाधनों का क्षीण होना एवं कमी होना, मिट्टी का अपरदन, मरुस्थलीकरण, पर्यावरणीय प्रदूषण, भूमण्डलीय तापन तथा जलवायु परिवर्तन, ओजोन में गिरावट, पारिस्थितिकी तंत्र का अवनयन तथा कई जीवों एवं वनस्पति की प्रजातियों का लुप्त होना। विकास न पर्यावरण को काफी क्षति पहुंचाया है। ऊर्जा, जल, भूमि और वन संसाधनों का सम्पन्नों द्वारा लोलुपतापूर्ण प्रयोग तथा गरीबों द्वारा इनका अपनी जरूरतों के लिए किए गए उपयोग ने विकास तथा पर्यावरण की सामर्थ्य पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

सम्पोषक विकास की अवधारणा

पर्यावरणीय समस्याओं के न्यूनीकरण एवं भविष्य को अंधकारमय होने से बचाने के लिए चर्चित उपायों में सम्पोषित विकास एक है। यह संकल्पना काफी पुरानी है (Jacobus, 2006)। परन्तु संसाधन विकास एवं प्रबन्धन की दृष्टि से वर्ष 1970 के दशक में **क्लब ऑफ रोम के सदस्यों द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट** द लिमिट टू ग्रोथ **(The Limit to Growth)** को एक परिवर्तनकारी माना जा सकता है जिसमें चेतावनी दी गई है थी कि पृथ्वी पर प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं तथा उनके दोहन की सीमा अधिक बढ़ाना घातक हो सकता है। तभी से विकास के सन्दर्भ में पर्यावरणीय समस्याओं पर ध्यान दिया जाने लगा। **सन् 1972 में स्टाकहोम में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानव पर्यावरण पर** सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में यह स्वीकार किया गया कि विकास का सही पथ वह होगा जिसमें पर्यावरण की जीवनक्षमता (जीवनन्तता) को बिना क्षति पहुंचाए मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति और जीवन की गुणवत्ता पर जोर दिया जाय। मानव पर्यावरण का वर्तमान और भविष्य की सन्तति के लिए

सुरक्षित रखने और सम्बर्धित करने को अति आवश्यक लक्ष्य बताया। यह महसूस किया गया कि विकास संपोषक होना चाहिए और इसमें केवल आर्थिक और सामाजिक बातों भर पर नही बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग सम्बन्धी बातों पर भी ध्यान देना चाहिए। इसके बाद कई विद्वानों ने संपोषकता पर अपने विचार संगठित करने लगे। इस तरह यह सम्मेलन इस संकल्पना के विकास का पहिला पड़ाव माना जाता है।

सन् 1980 के दशक में संपोषित विकास की अवधारणा काफी प्रसिद्ध हुई। **इसके विकास का दूसरा पड़ाव** अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ की **विश्व संरक्षण रणनीति (World Conservation Strategy)** के प्रकाशन को माना जा सकता है। इसमें इस बात पर काफी बल दिया कि दीर्घकालिक विकास के लिए जीवीय संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है (IUCN, 1980)। बाद में इसी संगठन ने संरक्षण को परिभाषित किया कि मानव द्वारा जीव मंडल के उपयोग को इस तरह संचालित करना कि वर्तमान संतति को इससे सर्वाधिक संपोषित लाभ मिल सके साथ ही आने वाला संतति की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु इसकी क्षमता बनी रहे (IUCN, 1987)। अधिकांश प्रकार का विकास उन पर्यावरणीय संसाधनों का क्षरण करते हैं जिन पर वे निर्भर होते हैं। यह दशा न केवल वर्तमान आर्थिक विकास को दुर्वल बनाती है बल्कि भविष्य की सम्भावनाओं को अत्यधिक घटा देती है। फलतः पाषित विकास को पारिस्थितिकी तंत्र के स्थायित्व पर भी ध्यान देना चाहिए। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ ने संपोषित विकास को परिभाषित करते हुए कहा कि **'अवलम्बन (सहारा) देने वाले पारिस्थितिकी तंत्र की वहन–क्षमता के अर्न्तगत रहते हुए मानव–जीवन की गुणवत्ता में सुधार ही सम्पोषित विकास है।'** तबसे संपोषकता तथा संपोषित विकास को परिभाषित करने के अनेकों प्रयत्न किए गए।

संपोषक विकास की अवधारणा का **तीसरा सोपान** विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग (World Commission on Environment and Development), जिसे ब्रटलैण्ड कमीशन के नाम से भी जाना जाता है, की रिपोर्ट **अवर कॉमन फ्यूचर** (Our Common Future) है। इसमें कहा गया कि 'संपोषित विकास परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों के दोहन, निवेश की दिशा, तकनीकी विकास की अभिमुखता और संस्थागत परिवर्तन सभी में तालमेल हो तथा जो वर्तमान एवं भविष्य दोनों कालों में मानवीय आवश्यकताओं एवं अभिलाषाओं की पूर्ति की सम्भावनाएं बढ़ाती हो (WCED 1987)।' साथ ही इसे परिभाषित करते हुए कहा गया कि **'संपोषित विकास प्रगति का वह मार्ग है जो भविष्य की संततियों को आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता को बिना जोखिम में डाले हुए वर्तमान आवश्यकताएं पूरा करता है।'** इस तरह इस परिभाषा में मूलतः दो बातों पर जोर दिया गया है– एक मानव की मूल आवश्यकताओं की सन्तुष्टि, और दूसरे, पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखना। इस अवधारणा का मूल मंत्र है

संसाधनों का उनकी पुनः भरपाई की क्षमता के अनुरूप उपयोग करना जिससे उनकी सतत् आपूर्ति बनी रहे। यही भाव डेविड पियर्स के इस कथन से स्पष्ट होता है कि 'भविष्य के विरासत के रूप में यथावत अथवा सवर्धित संसाधन सम्पदा छोड़ना (अर्थात्) पर्यावरणीय सम्पत्ति सहित सभी प्रकार की सम्पत्ति का भण्डार घटना नही चाहिए' (पियर्स 1989, 17–20)।

वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए व्यक्ति पर्यावरण में दखल देता है तथा निवेशों (inputs) का उपयोग करता है। यही जैव–भौतिक (Biophysical) सम्पदा और निवेश मिल कर उस पर्यावरण की वहन क्षमता निर्धारित करते हैं। परन्तु निवेशों को आत्मसात करने की जैवभौतिक पर्यावरण की एक सीमा होती है। इस कारण पर्यावरण में हस्तक्षेप उस सीमा से अधिक नही होना चाहिए अन्यथा उसकी वहन–क्षमता प्रभावित होती है। **पृथ्वी सम्मेलन** (Earth Summit) नाम से जाना जाने वाला विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग का **रियो में सन् 1992 में आयोजित सम्मेलन चौथा सोपान** है जिसमें संविकास को विकास को मापने का मापदण्ड माना गया तथा संपोषकता को बढ़ाने के लिए कार्य–योजना तैयार की गई जिसे एजेण्डा 21 नाम दिया गया (UNCED 1992)। रियो घोषणा के दस साल बाद **सन् 2002 में जोहानेसबर्ग में संपोषक विकास** पर विश्व सम्मेलन हुआ जिसमें जिसमें गरीबी उन्मूलन और भूमि के संपोषक उपयोग को रेखांकित किया गया। यह इस संकल्पना **के विकास का पांचवा सोपान था**। वर्ष 2012 में पुनः रियो द जनेरो में संयक्त राष्ट्र संघ का संपोषित विकास पर सम्मेलन आयोजित हुआ जिसे रियो–20 सम्मेलन कहा जाता है। इसमें सरकारों की संपोषित विकास के लिए प्रतिबद्धता, इसकी प्रगति का मूल्यांकन तथा नवीन उभरती चुनौतियो पर चर्चा हुई।

सम्पोषकता को सामाजिक सन्दर्भ में भी देखना चाहिए। इस परिपेक्ष्य में सम्पोषकता का तात्पर्य उत्पादन संरचना और पारस्परिक सम्बन्धों वाली ऐसी प्रगतिशील अर्थव्यवस्था और सामाजिक तंत्र से है जो आय शक्ति और अवसरों का समान वितरण सुनिश्चित करके सामाजिक शान्ति को आधार प्रदान करता हो (कायस्थ 1993, 63)। पुनः सम्पोषकता को उन प्रदेशों के दीर्घकालिक वहन–क्षमता के अर्थ में भी उपयोग किया जाता है जहां पर्यावरण पर दुष्प्रभाव न पड़ रहा हो (Kuhnen 1992)। इस प्रकार सम्पोषकता के अन्तर्गत नैतिकता और सौन्दर्यबोध से लेकर मूलभूत आवश्यकताएं और मानव–जनसख्या की स्थिरता तक सभी पक्ष आते हैं (चट्टोपाध्याय एवं कारपेंटर 1991, 1)। वास्तव में यह जनसाधारण–उन्मुख और प्रकृति–उन्मुख विकास की अवधारणा है जिसमें सामाजिक न्याय, जनकल्याण, जीवन की गुणवत्ता तथा पर्यावरणीय संरक्षण को आर्थिक वृद्धि के समकक्ष रखा गया है। इसी परिपेक्ष्य में वर्ष 2011 के संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा तैयार की गई मानव–विकास के रिपोर्ट के पहिले अध्याय में ही संपोषकता और समानता के पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना की गई है (UNDP, 2011)। परन्तु कठिनाई यह है कि इन आदर्शी विचारों को कार्यरूप कैसे दिया जाय?

संपोषकता की अवधारणा की विवेचना से स्पष्ट होता है कि इसको वैश्विक, निरपेक्ष और समरूप मान कर परिभाषित किया जाता है। परन्तु वास्तविक जीवन में इसका उपयोग स्थानीय स्तर पर ही किया जा सकता है। स्थानीय संसाधन उपभोक्ताओं का अनुभव और विचार बहुत महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि स्थानीय तकनीकी इन्ही पर आधारित होती हैं। इन्ही को आधार मान कर ही बाहरी साझेदारों द्वारा संशोधन–परिवर्धन किया जाता है। संपोषकता को आगे बढ़ने के वांछित मार्ग के रूप में देखा जाना चाहिए न कि एक लक्ष्य के रूप में। इस कारण इसमें परिवर्तन को समझने और प्रवृत्तियों के अवलोकन तथा स्थापित करने पर जोर होना चाहिए जिससे यह देखा जा सके कि प्रबन्धन संपोषकता की ओर जा रहा है अथवा उसके विपरीत।

संपोषकता की सर्वमान्य प्रामाणिक परिभाषा नही है, क्योंकि इसमें एक साथ अनेक और कई बार परस्पर विरोधी समस्याएं सम्मिलित की जाती हैं। उदाहरण के लिए भूमि संसाधन को लें जिसमें –

- वयक्तिक अनुभूति (Individual Perception)– किसान, पशुचारक, वनवासी, मछुहारा, वैज्ञानिक, यहां तक कि एक ही परिवार के पुरुष और महिला सदस्य संपोषकता को अपनी–अपनी अनुभूति, दृष्टिकोण, एवं सामाजिक, आर्थिक एवं पारिस्थितीय निहित स्वार्थ के अनुरूप परिभाषित करते हैं।
- स्थानिक विचार (Spatial Considerations)– उदाहरण के लिए जल संसाधन उष्णकटिवन्ध के ऊँचे भागों के निवासियों के लिए संपोषक हो सकता है, परन्तु सीमान्त निम्न क्षेत्र के निवासियों के लिए असंपोषक जहाँ जल की कमी हो सकती है। अपवाह तंत्र के ऊपरी भाग में किसानों द्वारा जल के असंपोषक प्रबन्धन के कारण निचले भाग में भीषण बाढ़ आ सकती है अथवा जल की गुणवत्ता में ह्रास होता है।
- सामयिक विस्तार एवं परिपेक्ष्य (Temporal Scale and Perspectives)– आगामी सन्तति के दृष्टकोण से संपोषकता को आज नही परिभाषित किया जा सकता। परन्तु भूमि संसाधन की सम्भाव्यता को बनाए रखना संभव है जिससे आगामी सन्ततियां अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मान्यताएं, प्राथतिकताएं और संभावनाएं निर्धारित कर सकें।

स्थानीय संदर्भ मे संपोषकता में सामाजिक–आर्थिक नियमों को पर्यावरण के सरोकार से जोड़ने के लिए नीतियों (policies), तकनीक और क्रियाओं को संयुक्त (combine) किया जाता है जिससे कि:–

1. उत्पादन/सेवाएं यथावत बनी रहें अथवा उनमें वृद्धि हो सके (उत्पादकता);

2. उत्पादन के जाखिम का स्तर कम हो सके (सुरक्षा);
3. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण हो सके तथा उनका अवनयन रुक सके (संरक्षण);
4. आर्थिक दृष्टि से व्यवहार्य (viable) हो, तथा
5. सामाजिक स्वीकारता मिल सके।

ये पांच उद्देश्य संपोषकता के पांच स्तम्भ माने जाते हैं।

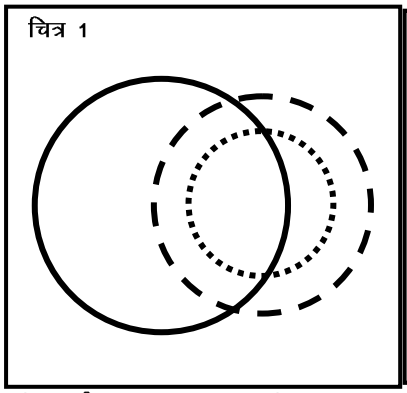
ससांधन–विकास

वास्तव में जिस ढंग से संसाधनों का दोहन किया जा रहा है उसे ही हम संसाधन विकास मान लेते हैं। मानव अपनी वस्तुओं, सेवाओं तथा सुविधाओं की पूर्ति के लिए जैव–भौतिक पर्यावरण का उपभोग करता रहा है। यही प्रक्रिया **"ससांधन–विकास"** कहलाती है। मिचेल ने इसे कहा है कि "संसाधनों का वास्तविक विदोहन अथवा मानव की आवश्यकता तथा आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए तटस्थ पदार्थों का वस्तु अथवा सेवाओं में रूपान्तण के समय संसाधनों का उपयोग संसाधन–विकास है" (मिचेल 1979, 4)।

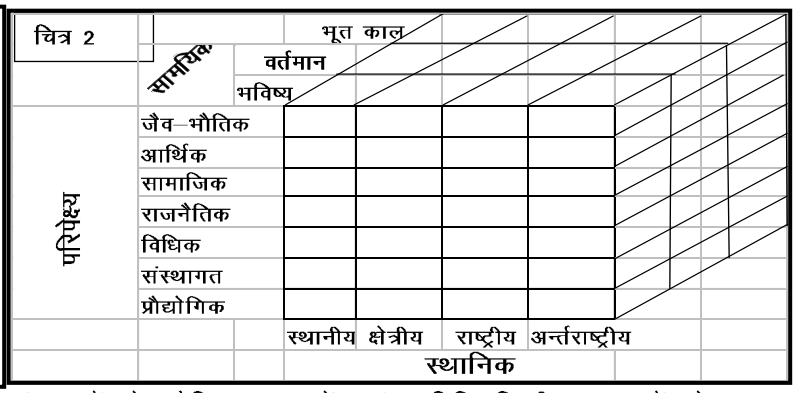
संसाधनों के विकास के परिपेक्ष्य : सैद्धांतिक विन्यास

संसाधनों के विकास के परिपेक्ष्य का उन पर तथा उनके पर्यावरण पर गहन प्रभाव पड़ता है। संसाधनों के मूल्यांकन, नियतन एवं उपयोग को कई संदर्भों में देखा जाता है जिनमें तीन **पारिस्थितिकीय, सांस्कृतिक एवं आर्थिक** परिपेक्ष्य (**चित्र 1**) महत्वपूर्ण समझे जाते हैं

चित्र 1



चित्र 2



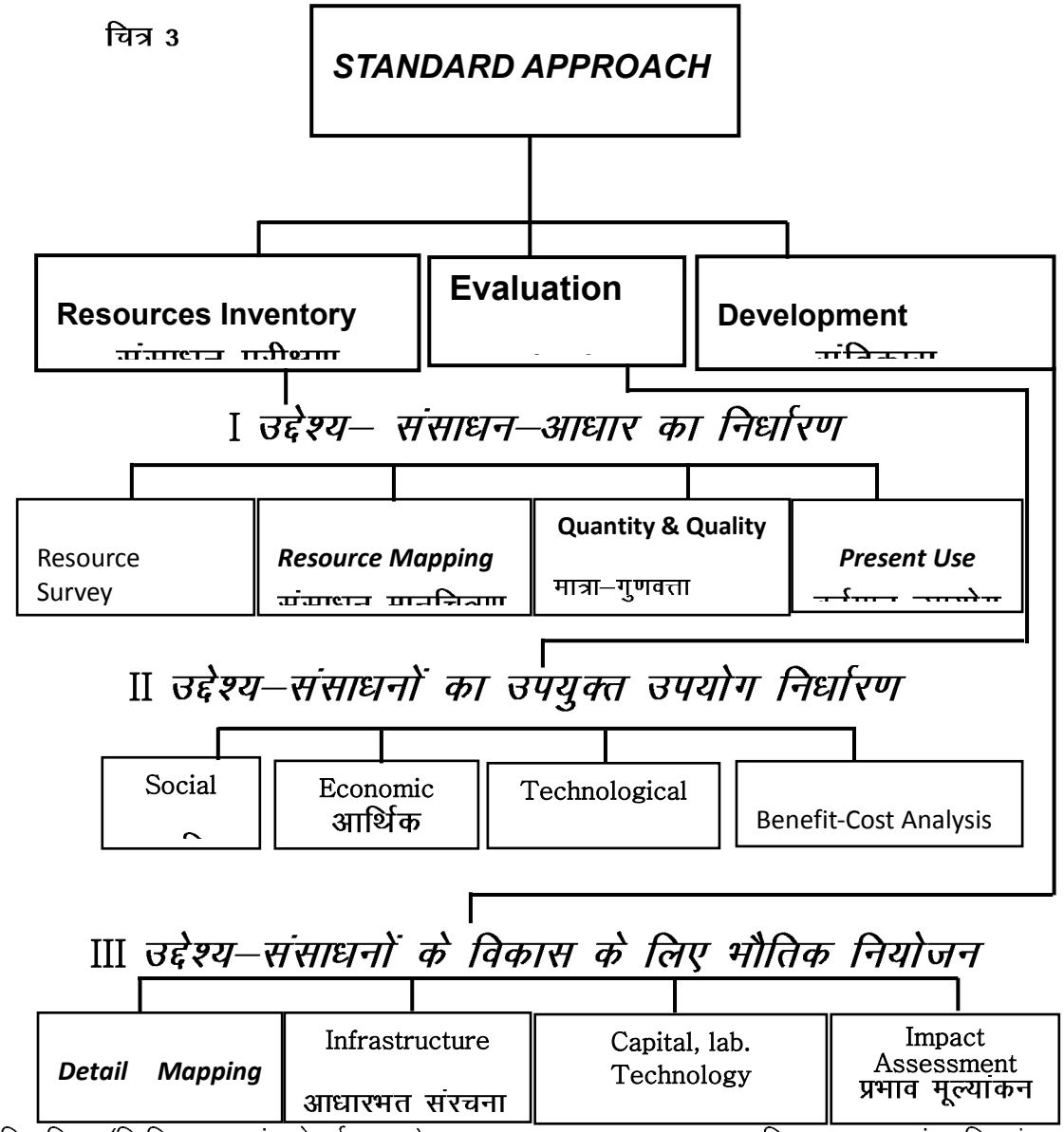
(फायरी, 1960, पृ. 20)। सकल संचय में से भौतिक कारकों एवं पारिस्थितिकीय दशाओं के कारण कुछ ही संसाधनों का उपयोग सम्भव हो सकता है। इन सम्भावित संसाधनों में से कुछ ही संसाधन सामाजिक हित एवं क्षमताओं की दृष्टि से स्वीकार्य होते हैं। पुनः इस स्वीकार्य संसाधनों में भी केवल कुछ ही संसाधनों का उपयोग आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद होता है। जिमरमन ने इनके अलावा राजनीतिक, विधिक, संस्थागत एवं तकनीकी दशाओं का संसाधन–नियतन पर निर्णायक प्रभाव माना है (**चित्र 2**)।

सैद्धांतिक धरातल पर संसाधनों का विकास इन सभी परिप्रेक्ष्यों पर एक साथ विचार करके करना चाहिए और ये भी मिलकर संसाधनों की उपयोगिता निर्धारित करते है। **इन सभी का उद्देश्य सामाजिक हितों को सर्वोपरि रखते हुए पारिस्थितिकी तंत्र को न्यूनतम नुकसान पहुँचाते हुए संसाधनों का अनुकूलतम विकास होना चाहिए।** परन्तु व्यवहार में व्यक्तिगत एवं राजनैतिक लाभ तथा राजस्व वृद्धि ही संसाधन–नियतन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को संचालित करते हैं जिससे प्राकृतिक संसाधन विशेषकर 'सार्वजनिक संसाधनों' का निजीकरण प्रधान हो जाता है। फलतः संसाधनों के उपयोग का लक्ष्य 'सामाजिक हित' नहीं रह जाता और संसाधनों के विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया व्यक्तिपरक हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि पर्यावरण एवं समाज की बिना चिन्ता किए हुए संसाधनों का अधिकतम दोहन किया जाता है। पर्यावरण अवनयन एवं प्रदूषण इसी संकुचित सोच के ही परिणाम हैं। संकुचित सोच का ही एक महत्वपूर्ण उदाहरण है संसाधनों को अलग–अलग एवं एकाकी समझना और एकाकी ही विकसित किया जाना। जबकि तथ्य यह है कि सभी संसाधन शरीर के अंगों की भॉति एक ही तंत्र के भाग हैं और एक का दोहन दूसरे को प्रभावित करता है। इस कारण इसका 'एकीकृत' रूप में विकसित किया जाना चाहिए। लेकिन होता क्या है, यह भारत विशेषकर मध्यप्रदेश के उदाहरण से समझा जा सकता है. (शर्मा, 1987, पृ. 7–10)।

संसाधनों के विकास हेतु नियोजन : मानक उपागम

संसाधन विकास की तमाम समस्याओं को उनके नियोजित विकास के माध्यम से न्यूनतम किया जा सकता है। संसाधनों के विकास के नियोजन का एक क्रम है। मानक उपागम में यह काम तीन अवस्थाओं में पूरा किया जाता है (यंग 1975,10; 1976 386) : संसाधनों का **आरंभिक परीक्षण** (resource inventory), उनका मूल्यांकन एवं विकास (**चित्र 3**)। आरंभिक निरीक्षण में संसाधनों का सर्वेक्षण, मानचित्रण, उनकी मात्रा एवं गुणों का निर्धारण आदि काम मुख्य हैं। इन सूचनाओं का प्रयोग संसाधनों की क्षमताओं एवं संभावनाओं के मूल्यांकन के लिए किया जाता है। दूसरी अवस्था को **मूल्यांकन** (evaluation) कहा जाता है। इस दूसरी अवस्था में संसाधनों के संभावित विविध उपयोगों, उनके लाभ एवं लागत आदि का मूल्यांकन सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी स्तर के अनुसार किया जाता है। संसाधनों के मूल्यांकन के आधार पर उनका अनुकूलतम उपयोग निश्चित किया जाता है। इसे **'संसाधन–नियतन' (allocation)** कहा जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों के नियतन में सामाजिक लाभ एवं सामाजिक लागत पर विशेष ध्यान दिया जाता है। **तीसरी** अवस्था **विकास** (development) की है जिसमें सम्भावनाओं को उत्पादों में बदलने सम्बन्धी क्रियाएं सम्मिलित हैं जिन्हें भौतिक नियोजन कहा जाता है। इनके साथ ही संसाधनों के नियतन का समाज एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का निर्धारण (impact assesment) भी संसाधन उपयोग के नियोजन का एक मुख्य अंग है। आस्ट्रेलिया में

चित्र 3



विकसित (क्रिश्चियन एवं स्टेवर्ट 1968) इस उपागम का मानक रूप विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन ने (एफ. ए. ओ. 1976) प्रस्तुत किया है।

भूमि संसाधन का विकास का उदाहरण – भूमि–क्षमता (Land Capability)

मानक उपागम के एक उदाहरण के रूप में भूमि–क्षमता मूल्यांकन को देखा जा सकता है। भूमि के निरंतर लम्बे समय के उपयोग के बाद यह अनुभव किया गया कि उसका उपयोग उसकी क्षमता के अनुसार ही किया जाना चाहिए। इसी उद्देश्य से ही भूमि–क्षमता की अवधारणा का विकास किया गया और इसे कृषि नियोजन का आधार बनाया गया। इस पद्धति का विकास संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। भूमि संरक्षण के दो आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार किए गये। एक, भूमि को उसकी क्षमता के अनुसार उपयोग में लिया जाये। दूसरे, आवश्यकतानुसार भूमि संरक्षण के उपाय किए जाय। इस दिशा में संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग के अन्तर्गत कार्यरत ''मिट्टी संरक्षण सेवा'' ने काम किया और एक विधि विकसित किया। यह विधि सन् 1961 में

प्रकाशित हुई (क्लिंगेबेल तथा मोटगोमेरी, 1961)। यह विधि आज भो सबसे अधिक प्रचलित है। भारत में भी राष्ट्रीय एटलस संगठन, कोलकता ने इसी पद्धति का उपयोग करके देश का मानचित्र तैयार किया है, जिसे 'कृषि–एटलस' (1980) में प्रकाशित किया गया है।

अवधारणा– वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका की इस पद्धति का प्रमुख उद्देश्य मिट्टी के गुणों के आधार पर निर्धारित सबसे छोटी इकाइयों का समूहीकरण है। मिट्टी के अलावा ढाल की मात्रा, जलवायु तथा बाढ़ आने की आवृत्ति पर विचार करके भूमि क्षमता निर्धारित की जाती है। भूमि के इस वर्गीकरण में प्रयोग की जाने वाली सबसे प्रमुख अवधारणा ''बाधाओं'' (Limitations) की है। भूमि के वे गुण जो भूमि उपयोग पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं उन्हें ही बाधाएँ कहते हैं। इन बाधाओं के दो रूप होते हैं :

1. **स्थायी बाधाएँ** – जिन्हें प्रयत्न एवं व्यय के बाद भी बदला न जा सके। जैसे, ढाल की मात्रा, मिट्टी की गहराई, जलवायु आदि।
2. **अस्थायी बाधाएँ** – वे बाधाएँ जिन्हें प्रबंध के द्वारा कम अथवा दूर किया जा सकता है, जैसे मिट्टी की उर्वराशक्ति, जल–निकास, नमी की पूर्ति आदि। इस विधि में भूमि की क्षमता मूलतः स्थायी बाधाओं के आधार पर निश्चित की जाती है। साथ ही सामान्य कृषक की भूमि–प्रबंध की क्षमता को ही ध्यान में रखकर ही यह वर्गीकरण किया जाता है।

उपर्युक्त अवधारणाओं के आधार पर भूमि की क्षमता का वर्गीकरण पदानुक्रम में तीन स्तरों में किया गया है। ये हैं :

1. **क्षमता इकाई** (Capability Unit) – मिट्टी मानचित्रण की ऐसी सबसे छोटी धरातलीय इकाई जिनकी समस्याएं एव संभावनाएँ समान हों और जिनके लिए एक ही प्रकार के प्रबंध की जरूरत हो उन्हें एक प्रकार की क्षमता इकाई कहा जाता है।

2. **क्षमता उपवर्ग** (Capability Sub-class)– एक ही प्रकार की बाधाओं वाली क्षमता इकाइयों को एक उपवर्ग में रखा जाता है। ये बाधाएँ धरातल के उच्चावच ओर अपवाह की दशाओं पर निर्भर होती हैं।

3. **क्षमता वर्ग** (Capability Class)– वे क्षमता उपवर्ग जिनमें बाधाओं एवं जोखिमों की गहनता समान हो, एक वर्ग में रखे जाते हैं। कुल आठ क्षमता–वर्ग बनाए गए हैं। इन वर्गों में भूमि के अपरदन एवं वातावरण के नष्ट होने का जोखिम की गहनता प्रथम वर्ग से आगे के वर्गों की ओर बढ़ती जाती है। पहिले चार वर्ग कृषि कार्यों के योग्य तथा शेष चार वर्ग इनके अयोग्य माने गए हैं। इन्ही क्षमताओं के अनुरूप भूमि का उपयोग करने पर उन पर पर्यावरणीय समस्याएं अल्प हो सकती हैं।

संपोषित भूमि प्रबन्धन के वैकल्पिक उपागम

संपोषित भूमि विकास गहन आर्थिक और सामाजिक विकास के परस्पर विरोधी उद्देश्यों के बीच तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करता है जिससे भूमि संसाधन का पारिस्थितिकीय और वैश्विक जीवनाधर कार्य यथावत बना रहे अथवा उसमें वृद्धि हो सके। संपोषित भूमि प्रबन्धन से ये दोनो उद्देश्य साथ–साथ प्राप्त किए जा सकते हैं। संपोषित भूमि प्रबन्धन के दो उपागम हो सकते हैं। एक, असंपोषित भूमि प्रबन्धन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं की पहचान करना और, दूसरे, उपलब्ध विकल्पों का विश्लेषण। भूमि की समस्याएं अनपयुक्त भूमि प्रबन्धन और संसाधनों के गलत दोहन से जुड़ी होती हैं, जिनके कारण अक्सर सामाजिक और राजनीतिक होते हैं। विकल्पों के विश्लेषण में विचारणीय प्रश्न हो सकते हैं – भूमि का उपभोक्ता क्यों अनुपयुक्त विधियों को अपनाता है अथवा उन्हे अधिक अच्छी विधि अपनाने में क्या बाधाएं हैं? जैसे कि किसान भूमि की गुणवत्ता में हो रही कमी को अच्छी तरह से जानता है, परन्तु कतिपय कारणों– आर्थिक दशा, असुरक्षित भूमिस्वामित्व, अनुदान आदि के दुरुपयोग – से उसके चुनाव के विकल्प सीमित हो जाते हैं।

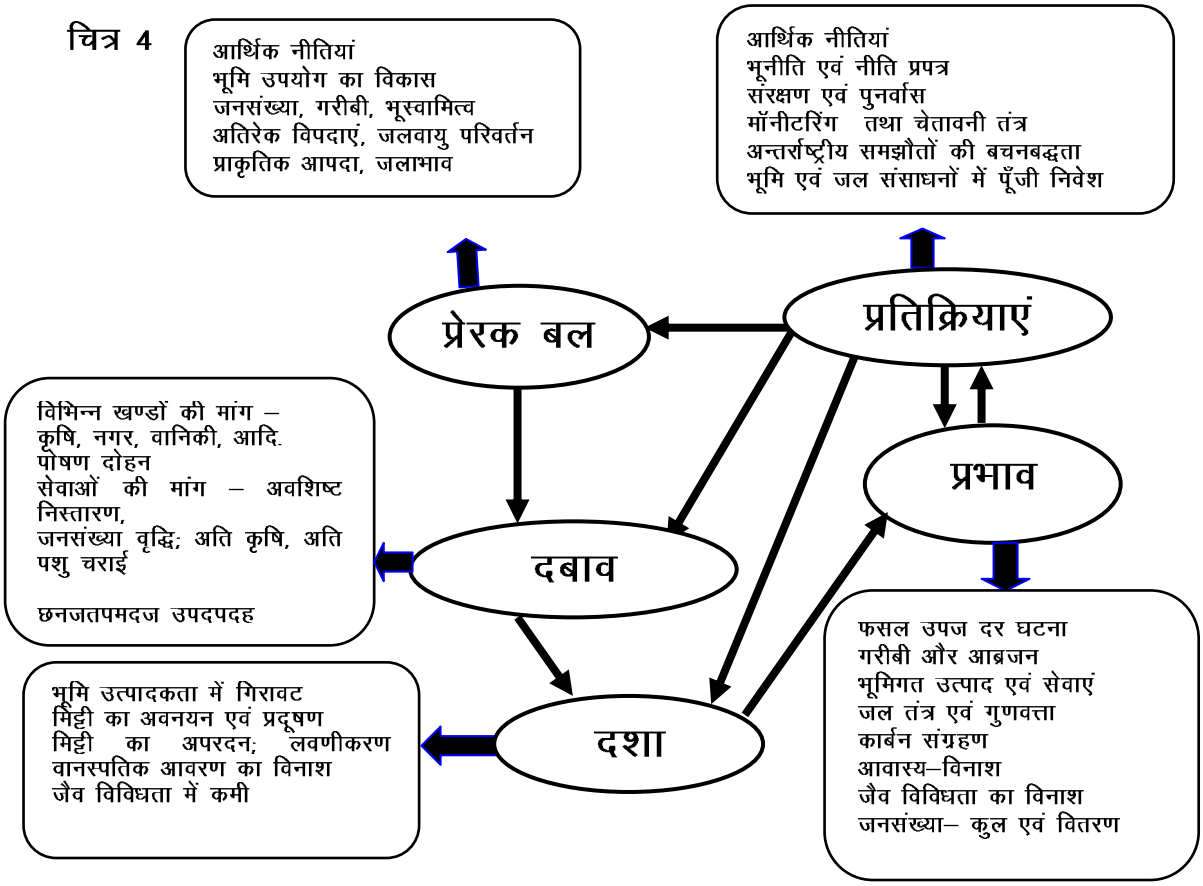
पर्यावरणीय समस्याओं के प्रबन्धन हेतु विकल्पों के निर्धारण के लिए विश्व बैंक ने एक मॉडल का उपयोग किया है जिसे "प्रेरक बल–दबाव–दशा–प्रभाव–प्रतिक्रिया" (DPSIR) माडल कहा जाता है। इस मॉडल में प्रमुख रूप से मानवजनित प्रेरक बलों तथा उनके पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों की दशा पर पड़ने वाल प्रभावों को प्रस्तुत करता है (**चित्र 4**)।

इस तरह संपोषित भूमि प्रबन्धन के लिए संसाधनों के अवनयन की प्रक्रिया और कारणों तथा संभावित हल दोनों पर विचार करता है। इसके लिए प्रत्येक– फार्म, समुदाय, क्षेत्र, राष्ट्र स्तर– पर मुख्य प्रेरक बलों (driving forces) और उनके पारस्परिक अर्न्तसम्बन्धों की व्याख्या आवश्यक है। समस्याएं एकाकी नही आतीं हैं। एक संसाधन को अवनयित करने वाली प्रक्रियाएं दूसरे संसाधनों को भी प्रभावित करती हैं। जैसे कि सूखा से वनस्पतियों की वृद्धि रुक जाती है और भूमि पर वानस्पतिक आवरण न होने के कारण मिट्टी का अपरदन बढ़ जाता है। दूसरी ओर मिट्टी के अपरदन के कारण उर्वराशक्ति घटती है और वनस्पतियों की वृद्धि बाधित होती है। इस तरह समस्यायों और विकल्पों के सम्बन्धों की विवेचन के बाद संपोषित भूमि प्रबन्धन किया जा सकता है।

भारत में स्थिति : समसामयिक लक्ष्य, दृष्टिकोण एवं व्यवस्था

देश की अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों का योगदान बहुत अधिक होने के कारण उनका उत्पादन कई गुना बढ़ा है। परन्तु इनका **लक्ष्य बहुत सीमित** रहा है। सामाजिक एवं

चित्र 4



चित्र 4 भूमि अवनयन तथा संपोषित भूमि प्रबन्धन के लिए हस्तक्षेप का बिन्दु निर्धारण हेतु डीपीएसआईआर फ्रेमवर्क

वैयक्तिक लाभों के बीच संघर्ष होता रहा है। व्यक्ति न केवल अपने अधिकार वाले संसाधना से अधिकतम व्यक्तिगत लाभ लेने में प्रयत्नरत् रहते हैं, बल्कि **सार्वजनिक संसाधनों** का भी अधिकतम दोहन करने की चेष्टा करते हैं। इससे संसाधनों की गुणवत्ता, मात्रा एवं वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। शासकीय स्तर पर संसाधनों के दोहन का चरम लक्ष्य उनसे मिलने वाले राजस्व को बढ़ाना होता है न कि निरा सामाजिक लाभों को बढ़ाना। इस हेतु संसाधनों का बेरहमी से अत्यधिक दोहन किया जाता है। इसका फल पर्यावरणीय आपदा है।

संकुचित परिपेक्ष्य के अलावा संसाधनों के विकास एवं **प्रबंधन की न्यूनतम चिन्ता** की गई है। यह बात इसी से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय स्तर पर संसाधनों का लेखा–जोखा रखने के लिए संस्थाएं स्थापित की गई हैं, परन्तु क्षेत्रीय स्तर पर ऐसी व्यवस्था का अभाव है। वे काम जिला प्रशासन को दिए गए हैं जो राजस्व एकत्रण एवं शान्ति व्यवस्था में इतनी गहराई से जुड़ा रहता है कि संसाधनों के मूल्यांकन करने, उपयुक्त प्रोग्राम एवं प्रोजेक्ट बनाने की विधि ढूढने एवं उनको लागू करने के लिए संस्थागत अधोसंरचना प्रदान करने में असफल रहता है। विशेषज्ञों का अभाव

रहता है। फलतः तदर्थ निर्णय लिये जाते हैं। ऐसी दशा में संसाधन–विकास की प्रक्रियाओं एवं विचारा के निर्वाह की कल्पना तक नहीं की जा सकती।

इतना ही नहीं प्रशासन एवं नागरिकों के अवचेतन मानस पर **औपनिवेशिक प्रभाव** अभी भी इतना गहरा पड़ा है कि सार्वजनिक संसाधनों को **'सरकारी'** माना जाता है, जैसे कि कोई विदेशी सरकार हो। उन्हें व्यक्तिगत लाभ के लिए छीनने की होड़ लगी रहती है। एक तो छोटे स्तर पर प्रबंधन का अभाव है और दूसरे संसाधनों के संरक्षक समझे जाने वाले लोग भी अपने को सरकारी कर्मचारी मानते हैं। राष्ट्रीय सम्पत्ति के संरक्षक एवं समाज के हित रक्षक नहीं। फलतः उनका व्यक्तिगत लगाव नहीं होता और बाड़ (fencing) ही फसल खाती रहती है। इसके अलावा जिला प्रशासन की विभिन्न शाखाएं अपनी–अपनी परिधि में आने वाले संसाधनों तक ही सीमित रहती हैं, एक टीम के रूप में कार्य नहीं कर पाते। विभिन्न संस्थाओं द्वारा किया जाने वाला जल प्रबन्धन इसका अच्छा उदाहरण है। परन्तु संसाधन तो अन्तर्सम्बन्धित हैं। इससे **संसाधनों के 'तंत्र' स्वरूप की अवहेलना होती है, समुदायी संसाधनों का विकास नहीं हो पाता**, संसाधन तंत्र का कुप्रबंध होता है और पर्यावरणीय अवनयन अधिकतम होता है। इसका तीसरा परिणाम यह है कि संसाधनों का विकास **स्थानीय एवं क्षेत्रीय विकास की भावना द्वारा न नियंत्रित** होकर 'बाजार के नियम एवं व्यापार' द्वारा नियंत्रित होता है। इससे विकास का लक्ष्य सामाजिक हित के स्थान पर व्यक्तिगत लाभ और पर्यावरणीय संतुलन के स्थान पर अधिकतम राजस्व हो जाता है। ऐसी योजनाओं का अभाव है जो स्थानीय लोग उनकी आवश्यकताएं, वहाँ के संसाधन एवं कार्यो को एकीकृत करें। फलतः सभी परिवहनीय संसाधनों का निर्यात होता है। समसामयिक लक्ष्य, दृष्टिकोण और व्यवस्थाएं संसाधनों के अधिकतम दोहन पर तो जोर देती है, परन्तु उनसे उत्पन्न होने वाली पर्यावरणीय समस्याओं को अनदेखा करती ह।

इन समस्याओं की जड़ में **संसाधनों के दोहन की लागत का अधूरा ज्ञान** है। वास्तव में संसाधनों के दोहन के निर्णय के समय उससे सम्भावित मूर्त एवं अमूर्त सभी प्रकार के व्यय और व्यक्तिगत एवं सामाजिक सभी प्रकार के लाभों पर विचार किया जाना चाहिए। परन्तु हमारे यहा मूल्य–निर्धारण करने की ऐसी प्रक्रिया है कि केवल दिखने वाले व्यय पर ही विचार किया जाता है तथा संसाधन–दोहन से होने वाले भौतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के नुकसान के रूप में होने वाली अदृश्य लागत का मूल्यांकन नहीं किया जाता। ऐसी दशा में संसाधनों क आबंटन के नियम एक तरफ धरे रह जाते हैं। न ही संसाधन के दोहन एवं आबंटन के प्रभावों का मूल्यांकन ही हो पाता है। नागरिक–चेतना के अभाव में उसकी कमी पूरी नहीं हो पाती।

संदर्भ

Ambirajan, S. (1992) "Partial Prescription in the World Development Report", ***Frontline***, 14.8.1992, 93-96.

Chattopadhyay, S.and R.A.Carpenter (1991) Sustainable Development: A Scientific Jargon or a Practcal Management Alternative? ***Annals NAGI,*** Vol. XI, No. 2, 1-12.

Christian, C.S and G.A. Stewart (1968) Methodology of Integrated Surveys, pp 233-280 in UNESCO, ***Aerial Surveys and Integrated Studies.*** Proceedings of the Toulouse Conference, Natural Resource VI Paris.

Commoner, Berry (1972) The Environmental Cost of Economic Growth; ***Chemistry in Britain***, Cambridge: United Kingdom, Vol. 8, No. 2, pp. 52-65.

Firey, W.I. (1960) ***Man, Mind and Land: A Theory of Resource Use.*** Glencoe: Free Press.

Food and Agriculture Organçation (1976) ***A Framework for Land Evaluation.*** Rome: Soils Bulletin 32.

IUCN (1980) ***World Conservation Strategy: Environment, Population and a Sustainable World.*** London: I.B. Tauris.

IUCN, (1987) ***Population and Sustainable Development***. Report of the IUCN Taskforce on Population and Conservation for Sustainable Development, Gland, Switzerland: The World Conservation Centre

IUCN (1991). ***Caring for the Earth – A Strategy for Sustainable Living.*** Gland, Switzerland, 227p. [Re-states thinking about conservation and development in a way that informs and encourages those who believe that people and nature are worth caring about and that their futures are intertwined]

Jacobus A. Du Pisani (2006) Sustainable Development – Historical roots of the concept, ***Environmental Sciences***, 3:2, 83-96,

Kayastha, S.L. (1993) Environment, Development and quality of life, ***Annals, NAGI***, Vol. XIII, No. 2, pp. 54-75.

Klingebiel, A. and Montgomery, P.H. (1961). ***Land Capability Classification.*** USDA Agriculture Handbook 210, Soil Conservation Service, USDA, Washington, D.C., 21p [Explains how to use the USDA land capability system].

Kunhen, F. (1992) Sustaiability, Regional Development and Marginal Development, ***Applied Geography and Development,*** Vol. 39, 101-105.

Mitchell, B. (1979) ***Geography and Resource Analysis.*** London: Longman.

Ruddle, K. & D.A. Rondinelli (1983) ***Transforming Natural Resources for Human Development.*** U.N. University, Tokyo.

Sharma, S.K. (1987) Dilemma of Resource Development and Environmental Crises in

M.P., pp. 236-254, in H.S. Sharma and M. L. Sharma, eds. ***Environmental Design and Development,*** Jodhpur: Scientific Publishers.

United Nations (1984) ***Population, Resources, Environment and Development***. Proceedings of the Expert Group. New York: Department of International Economic & Social Affairs.

United Nations Conference on Environment and Development (1992). ***The Rio Declaration on Environment and Development*****,** Rio de Janeiro, Brazil , 1992. [Comprehensive plan of action adopted by more than 178 Governments].

United Nations Development Programme (2011) ***Human Development Report 2011. Sustainability and Equity: A Better Future for All.*** New York. Website at http://hdr.undp.org

United Nations Environment Programme (2011a) ***Restoring the Natural Foundati on to Sustain a Green Economy: Policy Brief 6*** – UNEP Policy Series.

United Nations Environment Programme (2011b) ***Food and Ecological Security: Identifying Synergy and Trade-offs***. JUNE 2011.

WECD (1987) ***Our Common Future***. Oxford UK & USA: OUP.

World Commission on Environment and Development (1987). ***Our Common Future***. Oxford University Press, Oxford, UK.

World Bank (2006) ***Sustainable Land Management: Challanges, Opportunities and Trade-offs.*** Washington DC.

World Economic Forum (2011) ***Living Planet Report 2010: Biodiversity, biocapacity and development.*** WWF Report. http//wwf,panda.org/about_our_earth/all-publications/living_planet_report/2010_lpr/

Young, A. (1975) Rural Land Evaluation, pp 5-33 in J.A. Dawson & J.C. Doomkamp, eds, ***Evaluating the Human Environment.*** London: Edward Arnold.

Young, A. (1976) Land Evaluation, pp 382-423 in ***Tropical Soils and Soil Surveys.*** Cambridge University Press.

Health Hazards caused by Arsenic Contamination
A Case Study of Nadia District, West Bengal.

Arunima Bhattacharya
Vidyasagar College For Women
Department of Geography
bh.arunima@gmail.com
9830858880

Abstract

Arsenic contamination of groundwater in different parts of the world is an outcome of natural and anthropogenic sources, leading to adverse effects on human health and ecosystem. Millions of people from different countries are heavily dependent on groundwater containing elevated level of arsenic for drinking purposes. The paper highlights on the problem of arsenic contamination in the groundwater of Nadia district of West Bengal and the related health problems of the people there. Arsenic contamination of groundwater, poses a serious risk to human health. Excessive and prolonged exposure of inorganic arsenic with drinking water is causing arsenicosis, a deteriorating and disabling disease characterized by skin lesions and pigmentation of the skin, patches on palm of the hands and soles of the feet. Arsenic poisoning culminates into potentially fatal diseases like skin and internal cancers. Certain steps taken by the Central and State Government and other agencies can bring about changes in the level of arsenic contamination in Nadia district and reduce the resultant health impacts. Awareness generation and motivation of the people for testing their drinking water sources for arsenic are also important to prevent further exposure of arsenic to these people.

Keywords: arsenic contamination, human health, arsenicosis, awareness, mitigation.

Introduction

Drinking water is one of the most important pathways of exposure to arsenic in human population and groundwater as a drinking source is thought to be responsible for the majority of the world's chronic arsenic related health problems. Arsenic contamination in ground water has emerged as a major quality problem and health hazard in parts of the country. Arsenic contamination of groundwater is a form of groundwater pollution which is often due to naturally occurring high concentrations of arsenic in deeper levels of groundwater. It is a high-profile problem due to the use of deep tube wells for water supply in the Ganges Delta, causing serious arsenic

poisoning to large number of people. The main anthropogenic sources for contamination of groundwater with As are mining, burning of fossil fuels, use of arsenical fungicides, herbicides and insecticides in agriculture, and wood preservatives. Officially, arsenic poisoning in West Bengal was first diagnosed by a dermatologist K.C. Saha of School of Tropical Medicine (STM), Calcutta to an outdoor patient of village Ramnagar of Baruipur police station in the district of South 24-Parganas on 6th July, 1983. Today, in West Bengal, the arsenic contamination in ground water has been detected in 79 blocks in 9 districts of the state. Of these, the major affected districts are Malda, Murshidabad, Nadia, Burdwan and North and South 24 Parganas. It is suspected that 6 million people are exposed to arsenic contaminated ground water (>50µg/l). Large number of people in the district of Nadia are showing arsenical skin lesion. However, insufficient education, poverty, lack of awareness and ineffective health care support are major factors causing immense plight to severely arsenic affected people. Arsenic free safe water source is not available in all the arsenic affected villages of the state.

Study Area

The geographical extent of the district Nadia lies with a latitude of $22^0 41' 23'/$ N and longitude of $72^0 51' 24''$E which covers an area of about 3927 Sq. Kms. The district of Nadia is situated in the heart of the Bengal delta held within the arms of the Ganga, namely, the Bhagirathi on the West and Mathabhanga on the North. It is bounded on the north and north-west by the district of Murshidabad. On the south-east and east it is bounded by Bangladesh. In the south and south-east the district is bounded by the district of North 24-Parganas.The shape of the district is irregular, lying north to south. The district is about 46ft. above the mean sea-level.





Objective

The objective of this paper is to highlight the problem of arsenic contamination in water in the blocks of Nadia District. It also aims at revealing the various diseases that are cropping up due to indiscriminate use of arsenic affected water as it is becoming a serious health issue.

Methodology

The methodology used in preparing the article is mostly the secondary sources of information, namely, the books, journals, newspaper and the internet.

The Problem

Nadia district presents a gloomy picture of reality when it comes to arsenic contamination. Various comprehensive studies were conducted in Nadia, one of the nine arsenic (As) affected districts in West Bengal, India to determine the extent and severity of groundwater as its health effects in particular, are felt in dermatological and neurological complications. As per the BIS Standard for drinking water (BIS 1991 and subsequent modifications), the maximum permissible limit of Arsenic concentration in ground water is 0.01 mg/l. The Arsenic concentration in ground water >0.05 mg/l, as permissible limit has been taken up based on recommendation of the task force set up in West Bengal. 0.05 mg/l has been accepted as regulatory limit for the country. This was also recommended as permissible limit by earlier BIS standard. The list below gives the name of the blocks that are worst affected by arsenic contamination.

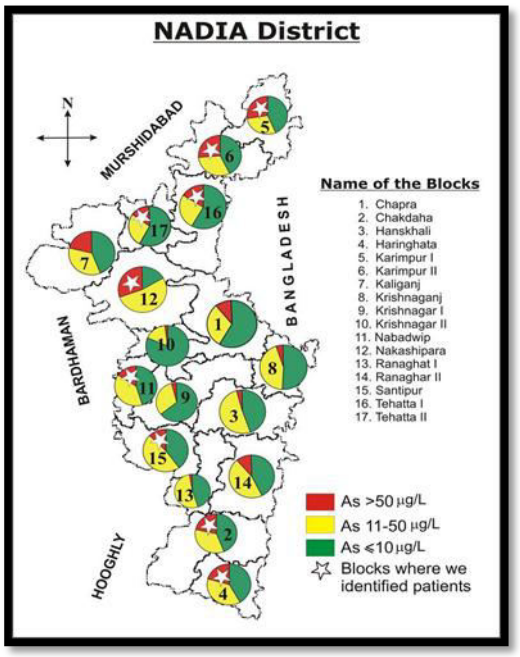
Table: Affected Blocks of High Arsenic (>0.05 mg/litre)in Ground Water

Sl No	Blocks in Nadia	Max Arsenic Content in mg/litre
1	Chakdah	0.824
2	Chapra	0.514
3	Hanskhali	0.526
4	Haringhata	0.769
5	Kaliganj	0.995
6	Karimpur I	1.08
7	Karimpur II	0.926
8	Krishnaganj	0.771
9	Krishnanagar I	0.629
10	Krishnanagar II	1.161

11	Nabadwip	0.712
12	Naksipara	0.586
13	Ranaghat I	1.072
14	Ranaghat II	0.741
15	Santipur	0.459
16	Tehatta I	0.544
17	Tehatta II	0.34

Source: Bhujal News: Journal of Central Groundwater Board

Investigations by Central Ground Water Board (CGWB) reveal that arsenic contamination (> 0.05 mg/L) is highly affecting Nadia district. The study also reveals that the top aquifer within 100mbgl is mostly arseniferous. According to the study of the Indian Journal of Community Medicine, a total number of 2297 households of 37 arsenic affected villages in all the 17 blocks were surveyed in the district. Result showed that out of 10469 participants examined, prevalence rate of arsenicosis was found to be 15.43%. Out of 0.84 million people suspected to be exposed to arsenic, 0.14 million people are estimated to be suffering from arsenicosis in the district. Highest level of arsenic in drinking water sources was found to be 1362 µg/l, and in 23% cases it was above 100 µg/l. Majority of the population living in the arsenic affected villages were of low socio-economic condition, of inadequate education and were farmers or doing physical labour.



Source: SOES , Jadavpur University

From the above analysis, it appears that the groundwater of entire 17 blocks contains arsenic above WHO guideline value of arsenic in drinking water (10 µg/L) and Indian Standard value (50 µg/L). Arsenic level above 1000µg/L was found in 13 tube wells; the maximum arsenic contamination level found in this district was 3200µg/L in the Tehatta-I block, according to SOES.

The Effects on Human Health

The incidence of this disease was found to be significantly high (57.8%) in males compared to females (42.2%). Arsenicosis causes dire consequences for the livelihood, family life, and earning capability when individuals fall victim. Deterioration in physical appearance makes women socially excluded. At larger perspectives elevated arsenic contamination of a region may result in societal stress, disability in individuals, poverty, and decreased market value of potentially contaminated agricultural products leading to low income to the affected farmers. Arsenic contamination in tube wells was studied in 9 blocks of Nadia district during a period of 1988-1994. According to the report, 8,922 people were found to be suffering from arsenicosis out of a population of 93624 suspected to be exposed to arsenic contaminated water in the district. Thus, though large number of people showed signs of arsenicosis in Nadia, most of them could be relieved of their symptom if they stop drinking arsenic contaminated water. However, in many locations, safe locations of arsenic free tube wells were not available. Other multi-systemic common features in arsenic affected blocks include burning and watering of eyes, weight loss, weakness, loss of appetite, pulmonary tuberculosis, respiratory complaints, dyspepsia, enlarged lever and collection of fluid in the abdomen.

Discussion

Since arsenicosis was found to occur mostly among poor and usually less educated people, it has had far reaching social consequences. Many public water sources including piped water supply system were found to be contaminated with arsenic in this study. Though some seriously arsenic affected people including cancer patients gave history of attending arsenic referral centers at Kolkata, they failed to get admission because of paucity of beds. Further, inability to pay cost of investigation, treatment and bed rent in those hospitals prevented admission in hospitals and caused immense suffering and death of many severely ill poor arsenicosis patients. As there is no early perceptible symptom or sign of arsenic toxicity and the people are less

educated, they are reluctant to test their water sources for arsenic and continue to drink arsenic contaminated water. Social counselling need to be given to the people in the community, to avoid social stigmatization of women and children, with arsenic-induced skin lesions. They need to be convinced that arsenical skin disease is neither infectious nor hereditary and hence need not be segregated from others. Due to a general lack of awareness, people suffer silently fearing ridicule and ostracism. Victims rarely report disease early. The impact on the livelihood of people remains underestimated. The various clinical manifestations of arsenicosis are crippling. The progress of the disease is accompanied by deteriorating health and directly affects the earning ability of adults, thus further lowering economic status of the family. At the delta head located in Murshidabad and Nadia districts, 150-250m thick granular zone containing groundwater with high concentration of arsenic under unconfined condition occurs. Nine districts (Malda, Murshidabad, Nadia, North-24-Parganas, South-24-Parganas, Bardhaman, Howrah, Hoogly and Kolkata), where more than 300 µg/L arsenic concentrations were found in tube wells are categorized as severely affected. Certain steps taken by the Central and State Government and other agencies can bring about changes in the level of arsenic contamination in Nadia district and reduce the resultant health impacts.

- Hydrogeological tests on arseniferous aquifers (within 100 mbgl) have been conducted in different arsenic infested areas to observe the Arsenic concentration in ground water consequence to pumping of Arsenic water from the tube well. The results indicate that there is not much impact on Arsenic concentration of ground water due to pumping when the drawdown created remains within 6m (A.Ray, 2009)
- The major finding of the collaborative project between CGWB and United Nations Industrial Development Organization indicates that Arsenic removal equipments are effective in bringing down the concentration of input water to less than 0.01 mg/L.
- To combat the situation Government of India set up Arsenic Task Force and Department of Drinking Water Supply. The following types of Work have so far been undertaken for arsenic mitigation. 1. New Hand Pump fitted in deeper aquifer, 2. Set up Arsenic Treated Units (ATU), 3. Ring wells at upper aquifer, 4. Piped Water Supply Schemes with pond water as resource, 5. Surface water based Piped Schemes.

- Arsenic contamination of ground water in West Bengal is largely spread over the Gangetic Alluvium of West Bengal and therefore the State Government has taken up 12 (twelve) Mega Piped Water Supply Scheme based on River Ganges. One such scheme is named as "Haringhata and Chakdah (Part)" in the Nadia District which has been declared as the first ODF district in the State, very recently.
- The State is implementing 338 Ground Water based Piped Water Supply Schemes in arsenic affected areas, wherever Surface Water based schemes are not techno-economically feasible. A number of technologies have been adopted to treat the excess amount of arsenic present in ground water.
- Arsenic removal plants, comparatively on a smaller scale, have also been installed under other programmes like Border Area Development Programme, Minority Sector Development Programme etc. These plants are generally attached to the existing hand pump tube wells, yielding arsenic beyond permissible level and generally they cater to the drinking water need of school, madrasah, health centre etc.
- The State Government has taken up a slew of measures like red marking of tube wells, extensive awareness, training, water quality monitoring involving the GPs etc. State Government officials were advised to intensify the awareness programme involving the local PRIs and grass root level ASHA and Anganwadi workers.

Conclusion

The rapid expansion of arsenic in ground water in Nadia district and the effects on the rural residents is in an alarming position. The impact of arsenic on human health is slow but dangerous; therefore it is called as slow poison. It is therefore an urgent need to make arrangement for availability of safe water source among the arsenic affected people in the district. Many of the people in the affected villages are not aware of contamination of their home tube wells with arsenic. Awareness generation and motivation of the people for testing their drinking water sources for arsenic are also important to prevent further exposure of arsenic to these people. Further, arsenic affected people with severe skin lesions and systemic manifestations like lung disease, neuropathy etc are having unbearable suffering. These people are very poor and live in distant villages where hospital facilities are not easily available. Arrangement for free

treatment of these patients in state referral hospitals and free transport facility from their villages could help a lot in alleviating the suffering of these people. Ponds, lakes, and rivers are generally low or free of arsenic and can be reintroduced in affected areas as a source of safe drinking water. Since ancient times, the rainwater harvesting (RWH) has been a widely used practice throughout the world as a potential method of utilizing rainwater for domestic water supply. The implementation of mitigation options can be facilitated by setting proper guidelines and to control implementation at appropriate intervals.

Reference

Mazumdar D, Ghosh A, Saha C, (2010) Arsenic Contamination of Ground Water and its Health Impact on Population of District of Nadia, West Bengal, India, Indian Journal Of Community Medicine, Apr; 35(2): pp 331–338.

Mohammad. M.R, Mondal D, Das B, (2014) Status of groundwater arsenic contamination in all 17 blocks of Nadia district in the state of West Bengal, India: A 23-year study report, Elsevier Journal Of Hydrology, Vol 518, Part C,10 Oct, pp 363-372.

Garelick H, Jones H,Dybowska A, (2008) Arsenic Pollution Sources, US National Library of Medicine, Environ Contam Toxicol,197, pp 17-60.

Shankar S, Shankar U, (2014), Arsenic Contamination of Groundwater: A Review of Sources, Prevalence, Health Risks, and Strategies for Mitigation, The Scientific World Journal Volume 2014 Article ID 304524, pp 1-18.

Das A, Ground Water Arsenic Contamination-(2015) A Study of Major Arsenic Affected Districts of West Bengal, International Journal of Science and Research (IJSR), Volume 4 Issue 6, June.

Groundwater arsenic contamination status of Nadia district, one of the nine arsenic affected districts of West Bengal-India, Reported work done by SOES, School of Environmental Studies & School of Water Resource Engineering, Jadavpur University, Kolkata - 700032, India.

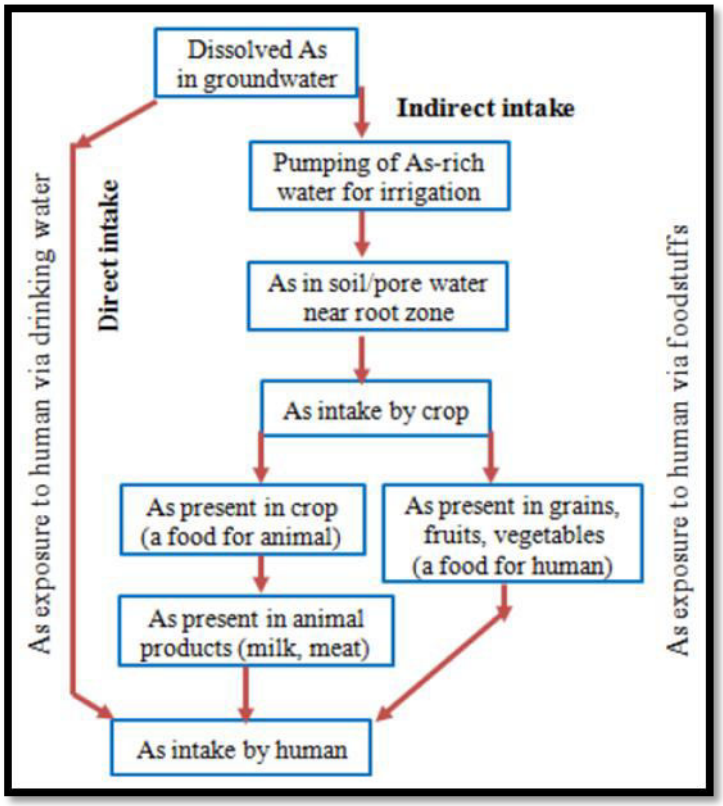
Report on Field Visit of Joint Secretary (Water) to Nadia district of West Bengal to Review Arsenic Mitigation Measures – 11th and 12th September, 2015.

Bureau of Indian Standard (BIS) (1991), Indian standard specification for drinking water, Delhi, BIS, IS 10500, pp 2-4.

Acharyya, S. K.,Chakraborty, P.,Lahiri, S.,Raymahashay, B. C., Guha, S. and Bhowmik, A.,(1999), Arsenic poisoning in the Ganges delta. Nature, 401, pp. 545–546.

Das D, Chatterjee A, Mandal BK, Samanta G, Chakraborti D, Chanda B. (1995) Arsenic in ground water in six districts of West Bengal, India: The biggest arsenic calamity in the world: Part 1: Arsenic species in drinking water and urine of affected people. Analyst. 120:643–50. [PubMed]

P. Bhattacharya, D. Chatterjee, and G. Jacks,(1997) "Occurrence of arsenic-contaminated groundwater in alluvial aquifers from delta plains, eastern India: options for safe drinking water supply," International Journal of Water Resources Development, vol. 13, no. 1, pp. 79–92.



Ethno-Medicinal Practices in Chhindwara District
A Study in Geography of Health Care

Dr. Gajendra Kumar Namdeo
Guest Lecturer in Geography
Govt. Auto. P.G. College, Chhindwara, M.P.
&
Dr. Rajendra Prasad Yadav
Professor of Geography
Govt. College, Bichhua Chhindwara, M..P

Abstract

Health care is one of the major component and basic aspect of human needs. It can be defined as the active process by which an individual achieves physical and mental well being.

Treatment with medicinal plants is an important aspect in India. It is as old as human civilization from the remote past and progressed from generation to generation. Diversity in medicinal plants vary area to area, it also depends on the climatic regions. Chhindwara district is one of the big treasures of medicinal plants. It is a well known part of Satpura range. In present study, an attempt has been made to explore the various aspects of traditional herbal medicine and treatment, to cure the diseases in tribal areas of the Chhinndwara district in Madhya Pradesh

Key words - Traditional Health Care, Medicinal Plants, Diversity.

Introduction

Treatment with medicinal plants is an important aspect in India. It is as old as human civilization from the remote past and progressed from generation to generation. Diversity in medicinal plants vary area to area, it also depends on the climatic regions. Health care is one of the major component and basic aspect of human needs. It can be defined as the active process by which an individual achieves physical and mental well being.

Medicinal system is one of the central aspects of any culture. The field of art and science of medicine is a culture an island of cognition, affect social structure and institutions, confined language; it has boundaries that include members and exclude others. As an information system, the field of medicine is a relatively closed system of knowledge; it has many vested interests in remaining that way. The traditional, indigenous or non- western forms of treatment with medicinal plants are still practiced

in many parts of the world.

According to a WHO definition "Health is a state of complete physical, mental and social well-being, and not merely the absence of disease or infirmity." "Health" in the broad sense is "quality of life" rather than only the absence of disease, it is a universal goal even if cultural variations encrust in the way it is defined and achieved.

The health situation is often reduced the extent of registered disease and available health resource. In the living context, the surrounding systems– the environment and structures and services are important. Under the environment, the following cluster of inter–related concerns have a direct bearing on level of living: physical environment, population, sanitation and shelter and social environment structures.

'Traditional Medicine' or 'Traditional System of Health care', refers to the long standing indigenous system of health care found in developing countries and among indigenous populations. These traditional medical systems view humanity as being intimately linked with the wider dimension of nature. Resource endowment of the 'environment' affects the health status of the community.

Tribal people, who are self reliant and self-sufficient, have over the centuries, developed their own medicine system based on herbs and other items collected from the nature and processed locally. They have also their own system of diagnosis and cure of diseases. They believe in taboos, spiritual powers and faith healing. There are wide variations among tribals in their health status and willingness to access and utilize health services, depending on their culture, level of contact with other cultures and degree of adaptability.

Study Area

Chhindwara district, located on a section of the Satpura Plateau extends between parallels of latitudes 21° 27' 30'' and 22° 47' 45'' North and the meridians 78° 20' 10'' and 79° 24' 34''East. The district occupies 1st rank in the state in terms of area having 11,815 square kilometres which is 3.8 percent of the total area of st ate. The district comprises of 12 tahsils, viz, Tamia, Amarwara, Harrai, Chaurai, Jamai, Parasia, Umreth, Chhindwara, Mohkhed, Sausar, Bichhua and Pandhurna.

Chhindwara district has 36.82 per cent tribal population to total population of district which is 20,90,922 person (census 2011). Tamia tehsil carried highest per cent of tribal population which is 78.32 followed by Harrai 76.37 and Bichhua 55.79 per cent.

Number of females per 1000 male of tribal population is 995 where the district sex ratio is 964. Literacy rate of the study area is 71.16 per cent but the tribals are poor in this reference in the region which is not more than 56.18 per cent.

Gond, Bharia, Pardhan, Mawasi are the predominant tribes. The forest of Satpur a range is well known for its plant biodiversity, specially Tamia, Patalkot, Sillewani vall ey, Bichhua block, Parasia block and Harrai block. These tribal communities are inhabit ant of dense undulating forest and dependent on forest for their each and every need of l ife and health care.

Objectives

The main aim of the present study is to find out the diversity of medicinal plants and various prevalent treatment practices of herbal care for different health disorders.

Methodology

The tribal communities have their own specific traditional system of health care. It is found that traditional health care practitioners hold an important status in all tribal communities. These medicine men are the chief healthcare provider in tribal areas. They often use these medicinal plants for treatment practices

In the present study, participant method of observation, simultaneously group discussion and interview methods have been adopted to collect various informations regarding tribal health, available medicinal plants (jari- booti) and their uses in health care, in tribal communities of the study area.

Traditional Herbal Treatment of Diseases in the Study Area

1. **Local name-** Khareti

   Botanical name- *Sida cordifolia*

   Part used- leaves, roots seeds

   Place of observation- Tamia, Jamai Bichhua and Parasia.

The rejuvenating action of this herb extends to the nervous, circulatory and urinary system. It has a diuretic effect and is useful in urinary problems, including cystis. Being cooling and astringent, it is used in inflammations and bleeding disorders also. It is also used in asthma and liver problems. Due to its ephedrine content, it possesses psycho-stimulant properties affecting the central nervous system.

2. **Local name-** Giloe, Gulbel

   Botanical name- *Tinospora cordifolia*

   Part used- leaves, roots seeds

Place of observation- Tamia, Patalkot.

The stem of Giloe is one of the constituents of several ayurvedic preparations used in general debility, fever and urinary disease. The stem is bitter, diuretic, burning sensation, vomiting enriches the blood and cures jaundice.

3. **Local name-** Latjira/ Apamarga

Botanical name- *Achyranthes aspera*

Part used- leaves, roots seeds

Place of observation- As a weed on wasteland.

The juice is applied to relieve toothache. The ash of the burnt plant often mixed with mustard oil and a pinch of salt is used as a tooth powder for cleaning teeth. It is believed to relieve pyorrhea. Roots of the plants used to reduce labor pain during child birth. It is also useful in Stone problem.

4. **Local name-** Kimach, kauch

Botanical name- *Mucuna prurita*

Part used- seeds

Place of observation- Tamia, Jamai Bichhua and Parasia.

It is used in fertility and sexual enhancement. Also used in urinary tract, neurological and menstruation disorders, constipation fevers, tuberculosis, ulcer, Parkinson's disease. It is commonly used in arthritis.

5. **Local name-** Baochi

Botanical name- *Psoralea croylifolia*

Part used- Fruit, root.

Place of observation- As a weed on wasteland.

It is used externally to treat various skin ailments including leprosy, leucoderma and hair loss. The root is used for treating dental caries.

6. **Local name-** Bramhi

Botanical name- *Centella asiatica*

Part used- Leaves

Place of observation-Tamia and Bichhua.

It is used to vitalize the brain and nervous system, increase attention span and concentration and combat aging. A poultice of the leaves is also used to treat open sores.

7. **Local name-** Gurmar

Botanical name- *Gymnema sylvestre*

Part used- Leaves, roots.

Place of observation-Tamia and bichhua.

It is useful in Rheumatism. Leaves are mostly used in Diabetes. Also used in liver problem and dysentery.

8. Local name- Kalmegh

Botanical name- *Andrographis peniculata*

Part used- Stem, leaves

Place of observation- Sillewani valley.

Kadha made by leaves of kalmegh is given to cure chikangunia and malaria. It is also useful in skin disease, anemia and liver disease.

9. Local name- Safed musli

Botanical name- *Chlorophytum borivilianum*

Part used- Stem

Place of observation- Patalkot

The tuberous root is used singly or with combination of other herbs to cure physical weakness.

10. Local name- Tulasi

Botanical name- *Ocimum sanctum*

Part used- leaves, roots, seeds

Place of observation- House garden plant

Aqueous decoctions of Tulasi leaves is given to patients suffering from gastric and hepatic disorders and have been recommended for the treatment of bronchitis, bronchial asthma, malaria, diarrhea, dysentery, skin disease, arthritis, painful asthma and as blood purifier, healing remedies and cosmetics.

11. Local name- Kalihari

Botanical name- *Glorisa superba*

Part used- Roots

Place of observation- Patalkot, Tamia, Harrai, Bichhua

Used in case of uterus problems among women at late ages. It can be also used in worms, leprosy and piles problem.

12. Local name- Satavar

Botanical name- *Asparagus racemosa*

Part used- Roots

Place of observation- Patalkot, Tamia, Harrai, Bichhua

The root is an alternative tonic Anemia and apatite. It is said to be good for

mental tension sex tonic and leucorrhoea.

13. Local name- Gwarpatha

Botanical name- *Aloe barbadensis*

Part used-Leaves

Place of observation- House garden plant.

It can be used in cough and cold condition. Internally used as a remedy for piles and constipation. Mostly used for prevent skin disease. The leaves are used for treating dental caries and burning sensation.

14. Local name- Arandi

Botanical name- *Ricinus communis*

Part used- Seeds oil

Place of observation- River margins or cultivated.

Oil of arandi seed is used as a purgative. It is also good for hairs and jaundice.

15. Local name- Marorphali

Botanical name- *Helicteres isora*

Part used- Fruit seed, bark, root

Place of observation- Sillewani, Tamia.

It is mostly useful in dysentery and bronchitis. It is also used in diabetic problem.

Result and Discussion

The general concept about treatment and medicine has been developed with the acceptance of the members of the society. This way, it becomes the local medical system. A great part of the task of traditional medicine is born by cultural practices. Though it is oriented to different social purposes and has important functional implications for health.

In the present paper, various traditional methods of treatment with medicinal plants for different health ailment are discussed. It is found that the use of medicinal plants for health care in the study area is a general practice, which is based on experiences and traditional knowledge of the medicine man or tribal people. People of the study area have fully faith on it. In the light of this fact, it is necessary to have scientific evaluation of effectiveness of these traditional herbal treatments and if found effective then the treatment should be encouraged, this would be helpful to fill the gap of non-availability of government health care facilities in the tribal areas of the study unit.

Acknowledgement

Authors are very much thankful to tribal and local healers of the region for providing valuable informations.

References

Census of India (2011) Madhya Pradesh, series 24, part XII B. District Census Hand Book Chhindwara.

Choubey, K., (2000): "Environmental and Health Status of Primitive Baiga Tribes of Baigachak Area, M.P." Tribal Health Bulletin, Jabalpur, M.P.

Gour, A.S.,(2001): "Indigenous Health Care Delivery Among Tribals of Betul-Chhindwara Plateau, M.P., an unpublished thesis, Dr. H.S.Gour Univ. Sagar, M.P.

Jain, S.K.,(Ed.)(1981): "Glimpses of Indian Ethnobotany," Oxford & IBH Publishing Co. New Delhi.

Namdeo, G.K.,(2003): "Indigenous Health Care Delivery Among Tribals of Upper Narmada Basin, an unpublished Ph.D. thesis, Dr. H.S. Gour univ. Sagar, M.P.

Yadav, R.P.,(2004): "Spatio-Temporal Study of Agricultural Land use and Nutrition in Chhindwara District M.P. an unpublished Ph.D. thesis, A.P.S. University, Rewa, M.P.

ECONOMICS OF EXTRACTION OF NTFPS BY FOREST DWELLERS IN BASTAR DISTRICT OF CHHATTISGARH

G. K. Acharya,
S.K. Nagre,
Rohit Dwivedi and Prashant Dewangan
Indira Gandhi Krishi Vishwavidyalaya,
Raipur- 492012 (C.G.)
gopalkrishnaachayra@rediffmail.com

Abstract

Non-Timber Forest Produce has become an alternative and vast source of income to forest dwellers in India. Economic extraction is the situation when the costs of collection outweigh benefits. The collection and sale of NTFPs is the main economic activity for the majority of the forest dwellers in Bastar district of Chhattisgarh, as it offers employment that provides up to half the income of about 25 % of the country's rural labour force. The result of the study revealed that the average labour days involved in the collection was 134.33 per annum per household and 68.23% women were involved in collection followed by men and children at 19.29% and 12.48% respectively. The average active hours of collection was reported 9.61 which yielded 26.05 Kg per household per day. The contribution of women in both collection and marketing is significant and around 62.53% were collected by them followed by men and children with 26.05% and 11.42% respectively. The average income earned by these collections is only Rs. 65-75 per household per day which is even less to the average local wages. Still there is a huge scope of improvement for positive changes in livelihoods of the poor forest dwellers by raising the prices and commercialization of NTFPs but care must be taken that it must not affect the forest biodiversity adversely.

Introduction

Forest plays an important role in the socio-economic development of a country like India where it contributes 1.7 percent to the total national GDP (Gubbi and Macmillan, 2008) and the demand for forest products and services in the country are increasing with rapid economic growth, industrialization and increase in population (Muthyalu, 2008). Forests are renewable, alternative and vast resource for economic development as they contribute between 20-40% of total annual income for the forest dwellers in the country majorly through NTFPs. NTFPs are “all biological materials,

other than timber, which are extracted from forests for human use" including both animal and plant extracts. Currently about 75% of poor people in the world depend on NTFPs for their subsistence. In many states like Chhattisgarh, Orissa, Madhya Pradesh and NTFPs contributes major proportion of the revenue to the State Forest Departments.

Chhattisgarh is third largest state of India in terms of forest cover which is 5.6 million hectares which is 46.39% of state and 8.06% of the country (Forest Census, 2011). The Forest Department, of Chhattisgarh state helps the rural people in collection, procurement, processing and export of NTFPs through Chhattisgarh Minor Forest Products Marketing Federation, with a scheme to share 80% of profit from NTFP trading to the collectors 15% for collection, Sale and warehousing and the remaining 5% for reimbursement to Societies (Johnson et al., 2013). Bastar District yields a net income of Rs. 2,00,000 through NTFPs harvested every year (Sinha 2008).

Methodology

Selection of study area and respondents:

The Study was conducted in Bastar district of Chhattisgarh which is situated between 19° 12' and 20° 34' North latitude and 81° 56' and 82° 15' East longitude. Bastar contains more than 75% forest cover which contributes about 30-40% of the total NTFPs production of the state. Six villages from three blocks of the district namely, Kolawal and Chhindgaon from Bakawand block, Puspal and Bamhni from Jagdalpur block and Kotwarpara and Koleng from Darbha block were selected for the study. 60 respondents (NTFPs collectors) were selected randomly out of which 38.33% small farmers followed by medium 23.33%, marginal 21.67% and large 16.67%.

Method of enquiry and collection of data:

The primary data for the economic year 2011-12 was collected from March to June 2013 from randomly selected respondents through personal interview method with he help of pre-tested schedule. The secondary data was collected from the forest department and Chhattisgarh Minor Forest Produce Marketing Federation (CGMFPFED), Government of Chhattisgarh.

Estimation for cost of collection:

To calculate cost involved in extraction, collection and selling of NTFPs, the primary data has been classified and tabulated and to draw meaningful inferences percentages and averages have been calculated. Further, appropriate statistical techniques also have been implied to work out cost-benefit analysis, calculate the manpower and time involved and to make the analysis understandable.

$$\text{Cost of collection} = \frac{\text{Total man days involved} \times \text{wage rate}}{\text{Total quantity sold}} \times \text{price (Rs./kg)}$$

Results And Discussion

The results revealed that the average size of per capita land holding was 0.35 hectares along with the average cropping intensity of 122.53%. The average family size was 5.70 and literacy rate was 63.08% for the selected households.

The average collection of NTFPs (including both edibles and non-edibles) was 886.07 Kg. per households per year. Out of the total collection 24.35% are edible and rest 75.65% non-edible type. The NTFP collected in largest quantity was Sal seed with 30.73% followed by Mahua flower, Tamarind, Tendu leave, Harra, Mahua seed, Aonla and Baheda with 21.83%, 19.21%, 6.80%, 4.92%, 4.78%, 3.68% and 2.39% respectively.

The average annual income per family per year for sampled household came to Rs. 71643.03 out of which Rs. 20258.59 is contributed by NTFP which is about 28.28%. Amongst NTFPs Tendu leaves contributed Rs. 6627.50 which was 32.71% of the income generated through NTFPs followed by Mahua flower, Tamarind, Sal seed and Chironjee with 16.62%, 16.61%, 9.55% and 8.33% respectively.

The average labour days involved in the collection was 134.33 per annum per household and 68.23% women were involved in collection followed by men and children at 19.29% and 12.48% respectively. The average active hours of collection was reported 9.61 which yielded 26.05 Kg per household per day. The contribution of women in both collection and marketing is significant and around 62.53% were collected by them followed by men and children with 26.05% and 11.42% respectively.

The average cost of collection for these NTFPs came out Rs. 24.95 per household per day excluding the cost of marketing. The total cost of collection and marketing was Rs. 42.76 per household per day. The average income earned by these collections is only Rs. 65-75 per household per day which is even less to the average local wages but the net income earned by them work out as an incentive for future hard

work.

Still there is a huge scope of improvement for positive changes in livelihoods of the poor forest dwellers by raising the prices and commercialization of NTFPs but care must be taken that it must not affect the forest biodiversity adversely.

Conclusion

Study suggested that NTFPs can be the alternative source of rural income and employment through effective, scientific and sustainable harvesting of NTFPs followed by effective marketing and at the same time making people come forward to protect the forest. It will be helpful in maintaining the plant population for extracting NTFPs for generations to come. The contribution of NTFP-related incomes, and the profitability of NTFP-related enterprises is no doubt helps the poor to strengthen their socio-economic status but it is quite indispensable to switch and shift them towards the sustainable extraction.

References

Appasamy, P. P., (1993), Role of Non-Timber Forest Products in a Subsistence Economy:The Case of Joint Forestry Project in India. Economic Botany, 47(3): 258-267.

Delang, D.O., (2005), The Economic Evaluation of Non-Marketed Non-Timber Forest Products: A Case Study of The Pwo Karen in Thialnd., Paper Submitted to Kyoto University, Japan.

Ghosal, S., (2011), Importance of Non-Timber Forest Products in Native Household Economy, Journal of Geography and Regional Planning, 4(3): 159-168.

Gubbi, S., D. C. Macmillan, (2008), Can Non-Timber Forest Products Solve Livelihood Problems? A Case Study from Periyar Tiger Reserve, India, Fauna and Flora International, Oryx, 42(2): 222-228.

Maraseni T. N., G. P. Shivakoti, G. Cockfield and A. Apan, (2006), Nepalese Non-timber Forest Products: An Analysis of the Equitability of Profit Distribution across a Supply Chain to India, Small-scale Forest Economics, Management and Policy, 5(2): 191-206

Maske M., A. Mungole, R. Kamble, A. Chaturvedi and A. Chaturvedi, (2011), Impact of Non-Timber Forest Produces (NTFP's) on Rural Tribes Economy in

Gondia District of Maharashtra, India, Archives of Applied Science Research, 3 (3):109-114.

Muraleedharan, P. K. and K. Sreelakshmi, (2007), Economic Aspects of Sustainable Extraction of Non-Timber Forest Products, Journal of Non-Timber Forest Products, 14(4): 249-254.

Muthyalu, M., (2008), Collection and Marketing Practices of Non-Timber Forest Produce (NTFP) - An Empirical Analysis, Blue Ocean Research Journals, 2(1): 121-130.

Johnson T. S., R. K. Agarwal and A. Agarwal, (2013), Non-Timber Forest Products as a Source of Livelihood Option for Forest Dwellers: Role of Society, Herbal Industries and Government Agencies, Current Science, 104(4), 440-443.

Sinha, G.K., (2008), An Economic Analysis of Collection and Marketing of Non-Timber Forest Products in Kanker District of Chhattisgarh. M. Sc. (Ag.) Thesis, Indira Gandhi Krishi Vishwavidyalaya, Raipur, Chhattisgarh

---

Impact of Climate Change on Human Health

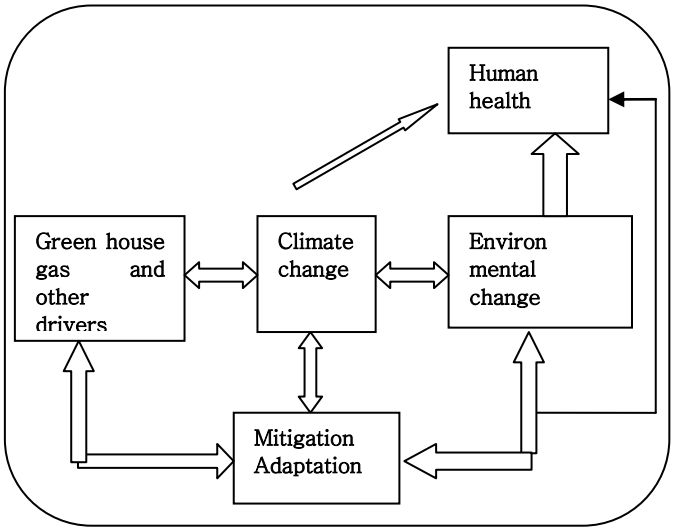
Dr. Gajendra Kumar Namdeo
Department of Geography
Govt. Autonomous P.G. College
Chhindwara MP

Climate refers to the average state of the weather over a long period, approximately more than 30 years. Over the last 50 years, human activities– particularly burning of fossil fuels- have released sufficient quantities of carbon dioxide and other greenhouse gases to trap additional heat in the lower atmosphere and affect the global climate. In the last 100 years, the world has warmed by approximately 0.75^0 C. Over the last 25 years, the rate of global warming has accelerated over 0.18^0C per decade. As the planets warms the oceans expand and the sea level rises, floods and droughts become more frequent and intense.

Health in the broad sense is quality of life rather than only the absence of disease it is a universal goal even if cultural variations encrust in the way it is defined and achieved.

A changing climate impacts our health and wellbeing. Now these days climate change is a critical public health problem. Many of the major killers such as diarrhoeal diseases, malnutrition, malaria and dengue are highly climate-sensitive and are expected to worsen as the climate changes.

The impact of climate change on health will depend on many factors. These factors include the effectiveness of a community's public health and safety systems to address or prepare for the risk and the behaviour, age, gender and economic status of individuals affected. Impacts will likely to vary by region, the sensitivity of populations, the extent and length of exposure to climate change impact and society's ability to adapt to change.



Impact of climate change on health

Heat waves

Heat waves can lead to heat stroke and dehydration and are the most common cause of weather- related deaths. Young children, older adults, people with medical conditions and the poor are more vulnerable than others to heat- related illness.

Urban areas are typically warmer than their rural surrounding climate change could lead to even warmer temperature in cities. This would increase the demand for electricity in the summer to run air conditioning which in would increase air pollution and greenhouse gas emissions from power plants.

Extreme heat

Extreme high air temperature contributes directly to deaths from cardiovascular and respiratory disease, particularly among elderly people. High temperature also raises the levels of ozone and other pollutants in the air that exacerbate cardiovascular and respiratory disease. Urban air pollution causes about 1.2 million deaths every year. Pollen and other aeroallergen levels are also higher in extreme heat. These can trigger asthma.

Impacts from Extreme Weather Events

Extreme events indirectly threaten human health in a number of ways. For example, extreme events can-

- Reduce the availability of fresh food and water.
- Interrupt communication, utility and health care services.
- Contribute to carbon monoxide poisoning from portable electric generators.
- Increase stomach and intestinal illness among evacuees.
- Contribute to mental health impacts such as depression and post-traumatic stress disorder.

Natural disaster and variable rainfall patterns

Increasingly variable rainfall patterns are likely to affect the supply of fresh water. A lack of safe water can compromise hygiene and increase the risk of diarrhoeal disease which kills 2.2 million people every year. Floods are also increasing in frequency and intensity. Floods contaminated fresh water supplies heighten the risk of water –born diseases and create breeding grounds for disease carrying insects such as mosquitoes. They also cause drowning and physical injuries, damage homes and disrupt

the supply of medical and health services.

Impact from reduced air quality

Increases in ozone

Warmer temperature from climate change will increase the frequency of days with unhealthy levels of ground-level ozone, a harmful air pollutants and a component in smog. It is especially harmful to children, older adults, outdoor workers and those with asthma and other chronic lung disease.

Climate-sensitive diseases

Changes in climate may enhance spread of some disease. Disease causing agents called pathogens can be transmitted through food, water and animals such as deer, birds, mice and insects. Climate change could affect all of these transmitters.

Food born diseases

- Higher air temperature can increase cases of salmonella and other bacteria-related food poisoning because bacteria grow more rapidly in warm environments. These diseases can cause gastrointestinal distress and in severe cases death.
- Flooding and rainfall can cause overflows from sewage treatment plants into fresh water sources. Overflows could contaminate certain food crops.

Water born diseases

- Heavy rainfall or flooding can increases water-born parasites. These parasites can cause gastrointestinal distress and in severe cases death.
- Heavy rainfall events cause stormwater runoff may contaminate water bodies used for recreation (such as lakes and beaches) with other bacteria. The most common illness contracted from contamination is gastroenteritis an inflammation of the stomach and the intestines that can cause symptoms such as vomiting, headaches and fever. Other minor illnesses include ear, eye, nose and throat infections.

Animal borne disease

- Mosquitoes favour warm, wet climates and can spread diseases.
- The geographic range of ticks that carry Lyme disease is limited by temperature. As air temperature rise, the range of these ticks is likely to

continue to expand northward. Typical symptoms of Lyme disease include fever, headache, fatigue and a characteristic skin rash.

Role of WHO

World Health Organisation has an active and long-standing programme of protecting health from climate change, guided by a World Health Assembly resolution. Through its country, regional and headquarters offices, WHO provides evidence and supports capacity building and implementation projects to strengthen the health system response to climate change.

Many policies and individual choices have the potential to reduce greenhouse gas emissions and produce major health co-benefits. For example- promoting the safe use of public transportation and active movement-such as cycling of walking as alternatives to using private vehicles- could reduce carbon dioxide emissions and health.

In 2009, the World Health Assembly endorsed a new WHO work plan on climate change and health. This includes-

- Advocacy- to raise awareness that climate change is fundamental threat to human health.
- Partnership- to coordinate with partner agencies within the UN system and ensure that health is properly represented in the climate change agenda.
- Science and evidence- to coordinate reviews of the scientific evidence on the links between climate change and health and develop a global research agenda.
- Health systems strengthen: to assist countries to assess their health vulnerabilities and built capacity to reduce health vulnerability to climate change.

Conclusion

Climate change affects the social and environmental determinations of health-clean air, safe drinking water, sufficient food and secure shelter.

Steps can be taken to lessen climate change (mitigation) and reduce its impacts on our health and the health of future generations (adaptation). Some of these steps can yield benefits for our health, environment, economy and society at the same time.

Provide research on human health impacts related to climate change and adaptation. Raise awareness and create new partnerships to advance key areas of health research and knowledge development of human health effects of climate change.

References

Adapting to the Impacts of Climate Change National Research Council.(2010) The National Academies Press, Washington, DC. USA.

Arnell, NW. (2004): "Climate Change and Global Water Resources: SRES Emission and Socio-Economic Scenarios. *Global Environmental Change-Human and Policy Dimensions.* 31-52

Choubey, K. (2002): Chikitsa/ Swasthya Bhoogol. MP Hindi Granth Academy, Bhopal MP

Global Health Risk: Mortality and Burden of Disease Attributable to Selected Major Risks.(2009) World Health Organisation, Geneva.

Sinha, S. (2007): "Encyclopaedia of Climatology". Alfa Publication, New Delhi.

Arresting Global Warming: The Individual Effort

Dr. Hemant Thankappan

Asst. Professor (English)

Govt. P.G. College,
Narsinghpur (M.P.)

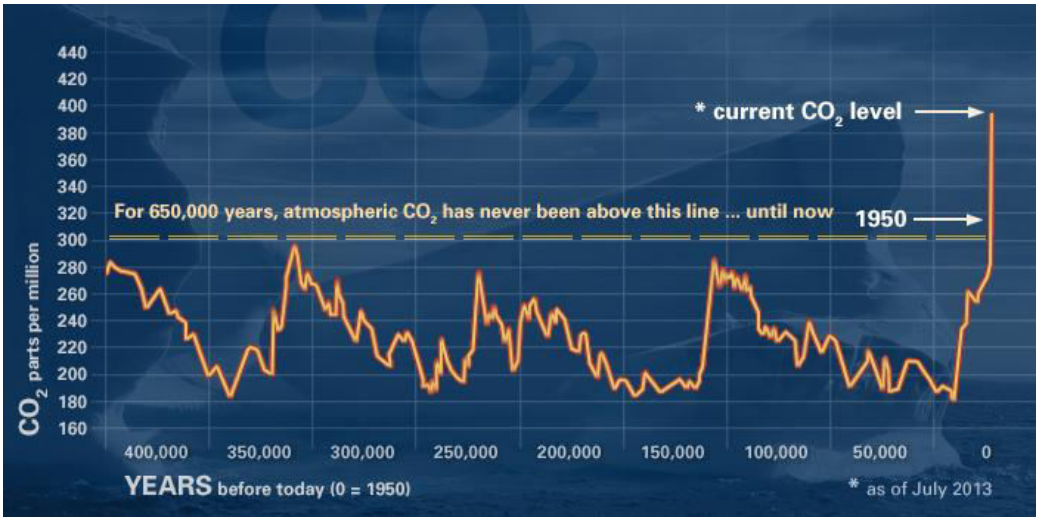
Abstract

Global warming has become a threat to the survival of life on the earth. Needless exploitation of resources has contributed to the buildup of green house gases in the atmosphere. As individuals we have a responsibility toward other life forms and future generations. Let us give them a better planet to live. Although global warming would continue to rise but with individual efforts we might be able to retard its steady rise. The solutions are simple what really is needed is awareness and the will to do it. This is as true for us as individuals as governments across the globe.

Introduction

Today every school going kid knows about global warming. What he does not know is how far individual effort can go toward minimizing the problem. To channel individual effort in the right direction it is imperative to identify the problem areas and the causes that lead to it. It has to be admitted that even miniscule variations in global health can have far reaching consequences out-spanning geography and time.

At one point in the Earth's history, a natural imbalance in the amount of carbon dioxide released by respiration and the amount fixed by photosynthesis had a significant effect on Earth's climate. Several hundred million years ago during the Carboniferous period, vast swamp forests of seedless vascular plants fixed huge amounts of carbon, causing atmospheric CO_2 concentrations to drop fivefold (Steffan). The resulting global cooling led to an ice age (Steffan reference 6). Much of this fixed carbon was buried in the swamps and gradually compressed to form coal. The point that is being made is how small changes by tiny units of life are able to impact global environment. The coal deposits that we are able to exploit today were the compressed carbon fixed during this period.



Source: http://climate.nasa.gov/evidence

The above table shows the alarming degree to which CO_2 have risen. The most significant greenhouse gases are water vapor (H_2O), carbon dioxide (CO_2), methane (CH_4) and nitrous oxide (N_2O), according to the Environmental Protection Agency (EPA). Industrial processes generate gaseous effluents like fluorinated gases, hydro fluorocarbons, per fluorocarbons and sulphur hexafluoride which are also considered greenhouse gases. Although present in very small concentrations, they trap heat much more very effectively than CO_2, making them high "global-warming potential" (GWP) gases. Chlorofluorocarbons (CFCs), once used as refrigerants and aerosol propellants have now been phased out of use. Carbon dioxide has a significant impact on global warming partly because of its abundance in the atmosphere. Moreover CO_2 stays in the atmosphere for thousands of years. On the other hand, methane is about 21 times more efficient at absorbing radiation than CO_2, giving it a high GWP rating but it stays in the atmosphere for about 10 years.

Sources of greenhouse gases: -

Some greenhouse gases, like methane, are produced through agricultural practices including livestock manure management. Others, like CO_2, are released by natural processes like respiration and from the burning of fossil fuels like coal, oil and gas. Transportation comes second contributing about 28 percent of greenhouse gas emissions. All cars, trucks, ships, trains and airplanes run on petrol or diesel fuels. Manufacturing and other industries contribute about 20 percent greenhouse gas

emissions, followed by residential and commercial sources (11 percent) and agriculture (8 percent).

It is worth noting that forestry and other land-use practices offset some of these greenhouse gas emissions, according to the EPA. Since trees and other plants absorb CO_2 from the atmosphere, they reduce our overall greenhouse gas emissions by roughly 14 percent. The seas also absorb carbon dioxide but absorbing atmospheric carbon makes the waters acidic posing a threat to marine life affecting the sustenance of millions of people worldwide.

Since the Industrial Revolution began to the year 2009, atmospheric CO_2 levels have increased almost 38 percent and methane levels have increased an astounding 148 percent (NASA) and most of this increase has been in the past 50 years. “If these trends continue, scientists, government officials and a growing number of citizens fear that the worst effects of global warming like extreme weather, rising sea levels, plant and animal extinctions, ocean acidification, major shifts in climate and unprecedented social upheaval will be inevitable” (Lallanilla).

Consequences of global warming:-

The focus is more on reducing CO_2 emissions because it is the most important and abundant green house gas that triggers other factors contributing to the greenhouse effect. CO_2 traps the sun’s heat in the atmosphere that causes more vaporization from the oceans. Water vapor is itself a GHG. The increase in global temperatures would cause polar ice caps to shed weight leading to lesser reflection of heat and rising levels of the oceans. Glacier fed river systems would dry up causing huge swaths of the population to migrate in search of food and water. The problem of drought would be frequent. Consequently, malnutrition and starvation will pose serious challenge before humanity.

Global warming is a great threat to the flora and fauna of the earth. A large number of species may become extinct. The expanse of desert would increase. Low rainfall and rising temperature could add to the intensity and frequency of tornados and cyclones. This in turn will immensely affect the quality of agricultural land, ultimately causing adverse effect on agricultural produce. It would have far-reaching socio-

economic impact. In short, global warming represents a fundamental threat to all living things on earth.

What can be done: -

Trees play a significant role in the global carbon cycle. They are the largest land-based mechanism for removing carbon dioxide from the air. "Deforestation is responsible for 25 per cent of all carbon emissions entering the atmosphere caused by the burning and cutting of 34 million acres of trees each year. Everyday over 5500 acres of rainforests are destroyed. As a consequence of massive loss of forests, global CO_2, levels rise approximately 0.4 per cent each year" (Ghate). These unprecedented levels have not been reached at any point in the earth's history. The forests absorb CO_2 hence afforestation should be undertaken on a massive scale.

On the scale of the individual we can adopt the following measures that pose no drastic change in our living style yet might go a long way in checking global warming.

a. **Reuse and recycle: -**instead of using disposables we should use products that can be reused and recycled. It has been proven that landfills used for garbage disposals generate methane and the energy spent on recycling generates CO_2. Thus roughly 2400 kgs. of CO_2 might be saved annually from being generated.

b. Use less electricity: - Air conditioners are a huge drain of electricity. It is best to avoid making them either too hot or too cold. Most of the electricity generation worldwide uses fossil fuels that contribute to CO_2 build up. Energy efficient light bulbs and turning them off when not needed can help save precious energy. Besides this appliances must be shut off rather than being kept on standby. The heat from standby buttons from billions of appliances when added is a major cause of temperature rise.

c. Drive sensibly: - Automobiles use fossil fuel and generate GHGs, one should try to drive less and sensibly. Fuel efficient and hybrid versions should be promoted. The tyres must be inflated to the proper pressure so that needless fuel consumption is avoided.

d. Plant trees: - During its lifetime an average tree absorbs and fixes one ton of CO_2.

We must plant trees and encourage others to do so. Top 10 Things You Can Do to Reduce Global Warming (West).

e. Conserve water:- Cities consume huge amounts of energy in purifying and distributing water that causes greenhouse emissions. Saving water reduces the amount of energy used. Waste water should be used for landscaping; leaky water connections must be repaired. Trees and plants that require less water should be planted more.

When household garbage ends up in a landfill, it decomposes; producing greenhouse gases including methane. Recycling reduces overall energy use to produce goods. Composting organic waste fixes GHGs not allowing them to escape into the atmosphere.

In India we need to harp less on alleviating poverty and concentrate more on generating awareness. We have no awareness of garbage disposal; the land fills are almost next to urban areas. We also tend to use air conditioning and automobiles irresponsibly taking it to be a barometer of affluence. Agriculture that supports us is fraught with wastages. Huge farmlands are set on fire (contributing to soot and smoke), to make way for the next crop cycle.

Surplus food grains are left to rot in the absence of proper storage. Improper livestock management leads to methane accumulation causing greenhouse warming. Irrigation in India also wastes precious water. Alternative irrigation methods like drip irrigation have to be encouraged. Policies should be made to address these issues and penalize the defaulters. Global temperatures are expected to continue rising, but cutting emissions now will lessen the steepness of the increase. India that is home to more than a billion people must take the lead.

Works Cited

Ghate, Vidyadhar.(2013)“Essay on Global Warming: Causes, Effects and Remedies.”www.shareyouressays.com.essay-on-global-warming.Lallanilla, Marc. “What Are Greenhouse Gases?” Live Science. Jun. 27, .

NASA. www.earthobservatory.nasa.gov//CarbonCycle/page5.

Schowalter, Ethan.(2012) “Actions You Can Take to Stop Global Warming.” Demand Media.

Steffan, Rachel. “Top Ways to stop Global Warming.” Demand Media. Oct. 18,.West, Larry. globalwarming/tp/globalwarmtips. http://environment.about.com.

Environmental Affects on Children Health

J.P. Kushwah

Research Scholar of Geography,
Maharani Laxmibai Govt. P.G. College of Excellence,
Gwalior, M.P.

Bijendra Singh

Assistant Professor,

Department of Geography,

Vijaya Raje Govt. Girls P.G. College,

Morar, Gwalior.

Introduction

Protection of human health against disease and injury caused by toxic chemicals in the environment is the ultimate goal of risk assessment and risk management. Historically, risk assessment focused on adult exposures and toxicities and gave little consideration to vulnerable life stages such as fetal development and early childhood. An emphasis on adult cancer risk and the evolution of methodologies for estimating cancer risks that are different from the methods used to assess other health effects tended to further diminish the importance for risk assessment of children's exposures and outcomes. In addition, the use of default factors based on the healthy young adult did not account adequately for the unique exposures and sensitivities of fetuses, infants, and children.

Affect on Children Health

Infants and children are not little adults. They are uniquely vulnerable to environmental toxicants. To protect infants and children against toxicants, the National Research Council in 1993 called for development of an approach to risk assessment that considers children's unique patterns of exposure and their special vulnerabilities to pesticides. Many aspects of that call were codified into federal law in the Food Quality Protection Act (FQPA) of 1996. This report highlights the central elements needed for development of a child-protective approach to risk assessment:

(a) improved quantitative assessment of children's exposures at different life stages,

from fetal life through adolescence, including acute and chronic exposures, exposures via multiple routes, and exposures to multiple agents;

(b) development of new approaches to toxicity testing of chemicals that can detect unanticipated and subtle outcomes and that evaluate experimental subjects over the entire life span from early exposure to natural death to replicate the human experience;

(c) development of new toxicodynamic and toxicokinetic models that account for the unique physiologic characteristics of infants and children;

(d) development of new approaches to assessment of outcomes, functional, organ, cellular and molecular, over the entire life span; these measures need to be incorporated into toxicity testing and into long-term prospective epidemiologic studies of children; and

(e) application of uncertainty and safety factors in risk assessment that specifically consider children's risks. Under FQPA, children are presumed more vulnerable to pesticides than adults unless evidence exists to the contrary. Uncertainty and safety factors that are protective of children must therefore be incorporated into risk assessment when data on developmental toxicity are lacking or when there is evidence of developmental toxicity. The adequate protection of children against toxic agents in the environment will require fundamental and far-reaching revisions of current approaches to toxicity testing and risk assessment.

Key words: children's environmental health, developmental toxicology, risk assessment, safety factors, toxicity testing.

Patterns of disease among children

Patterns of disease among children in industrially developed nations today are quite different from those of generations past (Haggerty and Rothman 1975). Many of the traditional infectious diseases have been controlled: smallpox is eradicated, polio is nearly gone, measles is under control, diphtheria and tetanus are rarities, and cholera has virtually disappeared. Although AIDS and tuberculosis remain very much with us, the impact of the infectious diseases upon childhood mortality is greatly diminished. The expected life span of a baby born in the United States today is more than two decades longer than that of an infant born at the beginning of the twentieth century. Similar epidemiologic transitions from infectious to noninfectious diseases are occurring at various rates today in many nations around the world as those countries strengthen

public health programs, control the classic infectious diseases, and move toward industrial development.

In other countries, sadly, the increasing incidence of HIV positivity and of AIDS threatens to undo those gains. Children today are at risk of disease caused by environmental hazards not encountered by previous generations. Over 85,000 synthetic chemical compounds, most of which have been developed since World War II. There are currently 2,800 chemicals produced in quantities of one million pounds or more per year. These high-production-volume (HPV) chemicals are those with the potential to be most widely used in foods and consumer products and to be most widely disseminated in the environment. Fewer than half of these HPV chemicals have been tested for their potential toxicity to humans, and fewer still for their toxicity to children. Thus, their potential hazards to children's health and development are mostly unknown. Diseases of great importance to children in America today that are thought, or at least suspected, to be caused or aggravated by chemicals in the environment include the following:

3.1 Asthma

A recent study by the National Center for Health Statistics that surveyed data on self-reports of asthma, physician's office visits for asthma, emergency room visits for asthma, and hospitalizations for asthma provides evidence for increases in prevalence of asthma in the United States during the past 15 years, particularly among children. Estimates of the average rates of asthma prevalence increased over time across all age groups. Asthma mortality also increased. Children experienced some of the higher rates of morbidity as measured by self-reports, office visits, emergency department visits, and hospitalizations for asthma. These increases were particularly evident in urban localities. In India and in other major cities, asthma has become the leading cause of admission of children to hospitals and the leading cause of school absenteeism. The increasing prevalence of asthma and the higher asthma morbidity among children in the United States, albeit still unexplained, suggest that, compared with adults, children are more likely to develop asthma and asthma exacerbations and/or be exposed to chemical or other factors that cause or trigger asthma episodes.

3.2 Childhood cancer

The reported incidence of childhood cancer has increased substantially in the United States in the past two decades. Although death rates are down as a consequence of early detection and vastly improved treatment, data from the National Cancer Institute show that the reported incidence of acute lymphoblastic leukemia. All

incidence has declined in boys but continues to rise in girls. From 1973 to 1994, the incidence of brain cancer increased by 39.6%, with nearly equal increases in boys and girls.

3.3 Neurodevelopmental disorders

Neurodevelopmental disorders, including learning disabilities, dyslexia, mental retardation, attention deficit disorder, and autism, are widespread and affect 5–10% of the four million babies born in the United States each year. Some clinical investigators have reported that prevalence is increasing, but existing data are not of sufficient quality to either sustain or refute that position. Causes are mostly unknown, but *in utero* and early-life exposures to lead polychlorinated, biphenyls (PCBs) (Jacobson and Jacobson , certain pesticides; and other environmental neurotoxicants are known or thought to contribute to the burden of disorders. A recent report from the NRC concluded that 3% of developmental disabilities are the direct consequence of neurotoxic environmental exposures, and that another 25% arise out of the interplay of environmental factors and individual genetic susceptibility (environment was defined broadly in this report and included diet, alcohol, tobacco and other lifestyle factors, as well as toxic chemicals.

3.4 Endocrine disruption.

Endocrine disruptors are chemicals that have the capacity to interfere with the body's hormonal signaling system (Harrison 2001; Longnecker et al. 1997). Effects of these chemicals, which have been hypothesized to include cancer (Kogevinas et al. 1997), decreased fertility (Peterson et al. 1993), birth defects of the reproductive organs (Longnecker et al. 2002; Paulozzi et al. 1997), altered sex ratios (Mocarelli et al. 2000), neurodevelopmental impairment (Jacobson and Jacobson 1996), thyroid dysfunction, and diabetes (Longnecker and Daniels 2001), have been observed *in vitro* in cell systems (Birnbaum 1994) and *in vivo* in experimental animals exposed to specific chemicals in the laboratory (Gray et al. 2000) as well as in wildlife populations in several broadly contaminated ecosystems such as the Great Lakes (Colborn et al. 1996) and in Lake Apopka in Florida (Guillette et al. 1994). On the basis of animal studies, the embryo, fetus, and neonate, and the child in the prepubertal period appear to be at particularly high risk of adverse consequences after exposure to EDs (Selevan et al. 2000). Early exposures to

these compounds have the potential to alter anatomic structures and may influence the subsequent course of endocrine functioning (Longnecker et al. 2002; Peterson et al.

1993), neurological development (Jacobson and Jacobson 1996), and sexual development over the life span (Birnbaum 1994; Blanck et al. Evidence for the effects of EDs on human health is less abundant than evidence for effects *in vitro* and in wildlife, but data on human developmental effects of EDs are accumulating. These effects involve the reproductive organs as well as the brain.

3.5 Children have disproportionately heavy exposures to many environmental agents.

Children drink more water, eat more food, and breathe more air pound-for-pound of body weight compared with adults.

children in the first 6 months of life drink seven times as much water, whereas children ages 1 through 5 years eat 3 to 4 times more food on a body-weight basis than the average adult. The air intake of a resting infant is twice that of an adult. The implication of these findings for health is that children will have substantially heavier exposures than adults to any environmental contaminants present in water, food, and air (NAS 1993). Two additional characteristics of children magnify their exposures:

their hand-to-mouth behavior and their play close to the ground.

3.6 Children's metabolic pathways, especially infetal life and in the first months after birth, are immature.

Children's ability to metabolize, detoxify, and excrete environmental agents is different from that of adults. In some instances, children are better able than adults to deal with environmental agents (NAS 1993; Spielberg 1992) because they cannot make the active metabolite required for toxicity. In other instances, children are less able to deal with toxic chemicals and thus are more vulnerable to them (NAS 1993; Spielberg 1992). Differences in metabolism exist also between prenatal and postnatal life and may vary over the course of pregnancy. An additional source of vulnerability in fetuses and young children is that the blood–brain barrier is not fully developed, and therefore xenobiotics may be more easily able to enter the central nervous system (Rodier 1995).

3.7 Developmental processes are easily disrupted during rapid growth and development before and after birth.

Rapid growth and development occur during embryonic and fetal life as well as in the first years after birth. In the brain for example, billions of cells must form, move to their assigned positions, and establish precise connections with other cells (Rodier 1995). Development of the endocrine and reproductive organs is guided by a complex and precisely timed sequence of chemical messages. If cells in an infant's brain are

destroyed by chemicals, if connections between neurons fail to form, or if false signals are sent to the developing reproductive organs by endocrine disruptors (EDs), neurological or reproductive dysfunction may result (Bellinger et al. 1987; Needleman et al. 1990; Jacobson and Jacobson 1996). Because children have more future years of life than most adults, they have more time to develop chronic diseases that may be triggered by early exposures. Many diseases caused by toxic agents in the environment require decades to develop.

3.8 Children have more years of future life and thus more time to develop diseases initiated by early exposures.

Many of those diseases, including cancer and neurodegenerative diseases, are thought to arise through a series of changes within cells that require many years to evolve from initiation to actual manifestation of illness. Exposures to environmental agents early in life, including prenatal exposures, appear more likely to produce chronic disease than similar exposures encountered later (Ekbom et al. 1997; Gray et al. 1991). Thus, there are likely to be critical windows of exposure, even for these chronic diseases, that need to be further explored.

3.9 Risks at Different Ages

Children are exposed to toxic agents through the air they breathe, the water they drink, the foods they eat, the medications they consume, and the wide variety of environments they inhabit, including their homes, day care centers, schools, and motor vehicles. Children have unique routes of exposure that have no parallel among adults, and the routes of exposure and the resulting risks to health differ in different stages of childhood. Contact with toxic agents can occur *in utero* through transplacental transfer of chemicals from mother to fetus; it can occur via breast milk in nursing infants; and it can occur in early childhood via hand-to-mouth transfer of toxic chemicals. Analysis of children's varying patterns and pathways of exposure to environmental agents and the resulting health effects at various stages of development is an essential prerequisite to formulation of a child-protective approach to risk assessment.

Vulnerability to pharmaceuticals during pregnancy

In pregnancy, especially in the first trimester, maternal use of certain medications has been linked to a number of adverse effects in humans. The first of these outcomes to be recognized were anatomical birth defects. Removal of the drug from the market led to a substantial decrease in the frequency of limb reduction defects.

• *In utero* exposure to aminopterin, an antagonist of folic acid, has been associated with

anencephaly, meningocele, hydrocephalus, and cleft lip and palate (Thiersch 1952; Warkany et al. 1959).

• *In utero* exposure to the anticonvulsant diphenylhydantoin has been associated with a broad spectrum of abnormalities, including orofacial clefts, nail and digital hypoplasia, growth abnormalities, and mental deficiency (Fedrick 1973; Monson et al. 1973).

• *In utero* exposure to valproic acid, another anticonvulsant, has been associated with neural tube defects and heart, craniofacial, and limb anomalies (Kallen et al. 1989).

• *In utero* exposure to the anticoagulant coumadin has been associated with hypoplasia of the nasal cartilage, chondrodysplasias, and atrophy of the optic nerves (Warkany 1976).

• *In utero* exposure to isotretinoin (13-*cis*retinoic acid), an analog of vitamin A used to treat cystic acne, is associated with a characteristic pattern of malformations, including abnormal ear development, a flat nasal bridge, mandibular hypoplasia, cleft palate, hydrocephalus, neural tube defects, and conotruncal heart defects (Lammer et al. 1985).

• Administration of diethylstilbestrol (DES) to pregnant women to prevent miscarriage has been shown to cause various genital abnormalities

Vulnerabilities to environmental agents: (Heavy metals)

Despite a decline in exposures over the past two decades (American Academy of Pediatrics Committee on Environmental Health 1998; Brody et al. 1994), resulting principally from removal of lead from gasoline, lead exposure continues to occur *in utero* and among children of preschool age in the United States. A national survey (conducted from October 1991 to September 1994) indicated that an estimated 940,000 preschool children had blood lead levels above the Centers for Disease Control and Prevention (CDC) intervention level of 10 µg/dL; nearly 275,000 had blood lead levels greater than 15 µg/dL, and nearly 85,000 had greater than twice the CDC intervention level (20 µg/dL) (CDC 1997). Today, lead-based paint in older homes is the most common source of lead exposure in children (CDC 1997). Exposures can occur through ingestion of paint chips or dust from deteriorating surfaces, from chewing on painted cribs, or through inhalation of lead paint dust, as can occur during home renovation. Children exposed prenatally to blood lead levels as low as 10 µg/dL, and possibly even as low as 5 µg/dL (Lanphear et al. 2000), may have delayed early mental development.

Further, chronic low-level lead exposure during childhood may result in a decreased IQ, reading and learning disabilities, attention deficits, and persistent

behavioral problems (Bellinger et al. 1987; Needleman et al. 1990, 2002). The fact that toddlers are an age group at high risk of lead poisoning is a direct consequence of their unique hand-to-mouth behavior, coupled with the fact that their brains are still undergoing growth, development, myelination, and differentiation. Prenatal exposure to methyl mercury has been shown to have adverse effects on neurodevelopment. This is an age-specific, unique risk that results from transplacental transfer of mercury from maternal blood to the fetal brain. Mercury deposited from the atmosphere into lakes, streams, and oceans can be converted into organic mercury compounds that accumulate in fish and biomagnify as they move up the food chain to reach highest levels in top predator fish species and marine mammals. These compounds are lipid soluble and are well absorbed from the gastrointestinal tract (Clarkson 1972). Methyl mercury crosses the placenta and is excreted in breast milk. Consumption of fish with high levels of methyl mercury by pregnant women in Minamata Bay, Japan, in the 1950s was associated with cerebral palsy in their offspring (Harada 1968). When people in Iraq consumed grain treated with a methyl mercury fungicide between 1959 and 1972, thousands were poisoned (Bakir et al. 1973). In both of those episodes, mothers who were asymptomatic or showed mild toxic effects gave birth to infants who appeared normal at birth, but in whom psychomotor retardation, blindness, deafness, and seizures developed over time (Amin-Zaki et al. 1979). For further assessment of the susceptibility of the fetus and infants to the neurotoxic effects of methyl mercury, three longitudinal studies are being undertaken to evaluate the long-term subclinical effects among children whose mothers' diets during pregnancy included large amounts of fish or marine mammals containing methyl mercury (Crump et al. 1998; Davidson et al. 1998; Grandjean et al. 1997). A report from the NAS based on an analysis of these three studies has concluded that lowlevel exposures to methyl mercury *in utero* can have adverse effects on neurobehavioral development (NAS 2000).

Environmental tobacco smoke

Environmental tobacco smoke (ETS) is a complex mixture of chemicals generated during the burning and smoking of tobacco products. Chemicals present in ETS include irritants and systemic toxicants such as hydrogen cyanide and sulfur dioxide (SO2), mutagens and carcinogens such as benzo[*a*]pyrene, formaldehyde, and 4 aminobiphenyl, and the reproductive toxicants nicotine, cadmium, and carbon monoxide (CO) (Jenkins et al. 1992).Of children in the United States 11 years ofage and younger, 43% live in a home with at least one person who smokes (Pirkle et al.1996). Exposures

of children to ETS produce a range of effects, some of which are unique to early life, and others that are analogous to the effects produced by ETS in adults. Prenatal exposure to ETS affects fetal growth and is associated with a 20–40% elevated risk of low birth weight or "small for gestational age" [CEPA (California Environmental Protection Agency) 1997; Eskenazi et al. 1995; Haddow et al. 1988; WHO 1999]. The primary effect observed, reduction in mean low birth weight, is small in magnitude (25–50 g). However, if the distribution of birth weight in a population of babies is shifted downward by ETS exposure, infants who are already compromised may be pushed into higher risk categories. Because low birth weight is associated with increased infant morbidity and mortality, exposure to ETS is likely to augment such burden. Exposure to ETS during infancy has been associated with an increased risk of sudden infant death independent of low birth weight or prematurity (Klonoff-Cohen et al. 1995; Taylor and Sanderson 1995). In children ETS exposure affects the upper and the lower respiratory tract. Infants and young children are at particular risk of exposure to ETS because of the small diameter of their airways and because pound-forpound they breathe more air than adults. Children whose parents smoke also are more likely to develop middle ear effusion, as measured by tympanometry (Reed and Lutz 1988; Strachan et al. 1989), and chronic respiratory problems (cough, phlegm, or wheezing) (Mannino 1996). Children exposed to ETS are at elevated risk of developing asthma, and those with asthma are more likely to experience more severe disease (Chilmonczyk et al. 1993; Martinez et al. 1992; Weitzman et al. 1990). Childhood exposure to ETS affects lung growth and development, as measured by small but significant decrements in pulmonary function tests (Cullinan and Taylor 1994; Cunningham et al. 1994; Lebowitz et al. 1992; Wang et al. 1994). Because early lung development is important in terms of future respiratory health, these results suggest that ETS may have adverse long-term effects on children's respiratory health that warrant further investigation through longitudinal studies.

Air pollutants

Various indoor air pollutants are associated with respiratory disorders in children, and hese pollutants include particles, gases, vapors, allergens, and molds (Lambert and Samet 1996; Spengler 1991; U.S. EPA 1994). In the home, common sources of air pollutants other than tobacco smoking include gas and wood stoves and furnishings and construction materials that release organic gases and vapors, some of which contain formaldehyde. Combustion of natural gas results in the emission of nitrogen dioxide (NO2) and CO. Cooking or heating with wood results in the emission of several

substances in the form of liquid (suspended droplets), solids (suspended particles), and gases such as NO2 and SO2 (Lambert and Samet 1996). The aerosol mixture of very fine solid and liquid particles or "smoke" contains particles in the inhalable range [i.e., < 10 μm in aerodynamic diameter (PM10)]. Exposure to CO disrupts oxygen transport and may result in symptoms that mimic influenza, including fatigue, headache, dizziness, nausea and vomiting, cognitive impairment, and tachycardia (Lambert and Samet 1996). Exposure to high levels of NO2 and SO2 may result in acute mucocutaneous irritation and respiratory effects, and chronic exposure to relatively lower levels has been linked to asthma and respiratory irritation (Morrow 1984; Neas et al. 1991). Exposure to particles in wood smoke may result in irritation and inflammation of the respiratory tract, manifested as rhinitis, cough, wheezing, and worsening of asthma (Morris et al. 1990; Robin et al. 1996). Whether adults exposed to similar levels of wood smoke have a different probability of severe lower respiratory illnesses is unclear. Indoor environments also contain a number of aeroallergens that trigger asthma episodes in children, including allergens of house dust mites, cats, and cockroaches (Cullinan and Taylor 1994). In urban dwellings, house dust mite and cockroach allergens are important in both onset and worsening of asthma symptoms (Cullinan and Taylor 1994). Cockroach allergens are common in the homes of inner-city children with asthma (Call et al. 1992; Rosenstreich 1997). Recent clinical and epidemiologic studies indicate that exposure to molds or dampness may increase the risk of respiratory symptoms among children (Dales et al. 1991; Delfino et al. 1997; Verhoeff et al. 1995). It is unclear whether the increasing prevalence of asthma morbidity in children in recent years is due to an increased prevalence of exposure to aeroallergens, molds, or dampness, or to a combination of those indoor factors with changing patterns of ambient air pollution. Ambient air pollution levels are also associated with asthma and other respiratory morbidity in children. Daily fluctuations in PM10 have been associated with increased emergency room visits for childhood asthma (Rennick and Jarman 1992; Schwartz et al. 1993), hospital admissions for asthma (Montealegre et al. 1993), decrements in peak flow rates in normal children (Neas et al. 1995), increased respiratory symptoms (Forsberg et al. 1993), and increased medication use in children with asthma (Pope 1991). Ozone has been of particular concern, as it provokes airway inflammation at very low levels (Aris et al. 1993). In addition, ozone increases airway reactivity (Horstman et al. 1990; Kreit et al. 1989), and there is evidence to suggest that ozone may potentiate the effects of allergens (Molfino et al. 1991). Ozone levels have

been related to increases in asthma admissions and emergency room visits among children in Atlanta, Georgia (White et al. 1994), New Jersey (Cody et al. 1992), and Mexico City (Romieu et al. 1995). A study of the effect of increases in ambient ozone levels on children and workers in summer day camp in New Jersey suggests that children may be more sensitive than adults to increases in ambient ozone levels (Cody et al. 1992). In this study, increases in ozone concentrations above 120 ppb were associated with an increase in respiratory symptoms and a decline in peak expiratory flow rate among children but with no change in respiratory symptoms or pulmonary function among camp workers. The potential impact of air pollution on childhood asthma morbidity in a community is exemplified by a report from CDC that examined hospitalizations for asthma in the Atlanta metropolitan area during the summer of 1996 in the weeks before, during, and after the summer Olympic Games. This analysis found that the rate of asthma hospitalization declined during the 2 weeks of the games, when citizens of Atlanta heeded an advisory from the mayor to improve air quality by not driving and by using public transportation instead. Emergency room visits for nonrespiratory conditions in children remained constant, indicating that diminished access to emergency rooms did not account for the decline in emergency room visits for respiratory problems. After the Games ended, motor vehicle traffic increased, air quality deteriorated, and childhood asthma hospitalization rates rebounded (Friedman et al. 2001). Finally, ambient air pollutants, especially fine particulates, CO, and diesel exhaust, have been linked in epidemiologic studies to low birth weight, prematurity, and increased risk of birth defects (Ashworth 1998; Bobak 2000; Bobak et al. 2001; Dejmek et al. 1999; Gold et al. 1999; Ha et al. 2001; Perera et al. 2003; Ritz and Yu 1999; Ritz et al. 2000, 2002; Wang et al. 1997; Wilhelm and Ritz 2003).

Critical Issues for Improved Assessment of Environmental Health Risks to Children

Protection of children's health against the adverse effects of exposures to toxic environmental agents will require an approach to risk assessment that moves beyond consideration of average levels of exposure and risk and beyond consideration of only the 60–70 kg average adult (U.S. EPA 1999, 2002b). This new approach must account for children's exposures to multiple chemicals and must be based on better developmental toxicity data than currently exist for most chemicals. To account for the unique exposures and special vulnerabilities of infants and children (NAS 1993), this new child-protective approach to risk assessment will need to include the elements

described below.

Improved exposure assessment

Additional data are needed on children's patterns and levels of exposures to chemicals in the environment. Because exposures vary by age, this information will need to be collected for different age groups, from the nursing infant through the adolescent. Accurate and frequently updated information is needed on children's diets at different ages and on the concentrations of xenobiotics in those diets. Surveys should regularly be conducted also of levels of chemical contaminants in breast milk. Better data are needed on the extent of exposure that results from children's unique mouthing behaviors. All sources of exposure need to be considered in evaluating the potential risks of environmental chemicals to infants and children (NAS 1993). Models need to be developed that can account for children's simultaneous exposures to multiple chemicals of differing potency via multiple routes of exposure. These models need to be able to assess the cumulative effects of chemicals that may have either synergistic or antagonistic actions. The U.S. EPA's recent work in assessing exposures to multiple organophosphate pesticides is a useful first step in this direction. Exposure estimates need to be constructed differently, depending on whether acute or chronic effects are of concern. The incorporation of biomarkers into data collection may be useful. Most important, it is essential to examine the full distribution of children's exposures to chemicals in the environment. Point estimates of average exposure are no longer sufficient. The actual distribution of the range of children's exposures across the population needs to be determined through field studies. Appropriate mathematical models must be constructed, such as Monte Carlo models, that can permit the combining of various data sets and thus permit examination of full exposure distributions (NAS 1992). Of special concern are children whose exposures fall into the top 10, 5, or 1% of the population.

Enhanced toxicity testing

New, more sensitive approaches to chemical toxicity testing are needed that can reliably detect the unanticipated developmental consequences of exposures during critical windows of prenatal and postnatal vulnerability (Selevan et al. 2000). These new models of developmental toxicity testing need to generate data on organ systems that have not been adequately addressed in the past, for example, the nervous, immune, respiratory reproductive, cardiovascular, and endocrine systems. A shortcoming with much current toxicity testing is that test chemicals are administered to experimental

animals in adolescence, and the animals are subsequently sacrificed at a point in life that corresponds roughly to a human age of 60–65 years (Mehlman et al. 2002). Thus, both the unique impacts of early exposures and any late effects of early exposures are not captured (U.S. EPA 2002b), including cancer, heart disease, neurological disorders, or diabetes. To improve current toxicity testing, for certain classes of chemicals investigators may need to undertake studies in which chemicals are administered to experimental animals either *in utero* or shortly after birth and the subjects then followed over their entire natural life span. For other classes of compounds, it may be necessary to expose animals throughout the life span. The approach should attempt to replicate the human experience and may enhance detection of delayed effects (NAS 1992). Too much reliance on anatomical observation of readily observed anomalies as well as insufficient testing of the functioning of organ systems have been features of much traditional toxicity testing. To improve the situation, enhanced functional tests of neurobehavioral, immune, endocrine, and reproductive toxicity will be of great importance (U.S. EPA 1986, 1991, 2002b). These functional assessments need to be applied on a more routine basis, especially when data from other studies, for example, adult target organ toxicity, or multigeneration studies, raise concerns about possible developmental effects.

New toxicodynamic and toxicokinetic models

The physiological and biochemical characteristics of children that influence metabolism and disposition of chemicals at different stages of development need to be considered in risk assessment. Physiological parameters, such as tissue growth rates, and biochemical parameters, such as enzyme induction, may differentially affect the responses of infants and children to environmental chemicals at different developmental stages (Cresteil 1998; Ginsberg et al. 2002). Physiologically based pharmacokinetic models can be used to estimate the dose of toxic metabolites reaching target tissues at different developmental stages (O'Flaherty 1997; Welsch 1995).

A mechanistically based approach to hazard assessment

The pathogenic mechanisms of environmentally induced disease in children need to be elucidated at functional, organ, cellular, and molecular levels (Birnbaum 1994; Campbell et al. 1997; Whitney et al. 1995). These assessments could be undertaken in conjunction with toxicity testing of chemicals and also in the context of epidemiologic studies. Clinical and epidemiologic studies are of proven value for studying etiologic associations between environmental exposures and pediatric disease (Bellinger et al. 1987; Jacobson and Jacobson 1996; Needleman et al. 1990). A strong

argument can be made for the need to establish a major multiyear prospective epidemiological study of children's health, the National Children's Study, as a means of identifying and characterizing the consequences of multiple, early, low-level exposures, as called for in the Children's Health Act 2000 (Berkowitz et al. 2001; The National Children's Study Interagency Coordinating Committee 2003). The advantages of such a study would be its great statistical power, coupled with the ability to examine prospectively the impact of a variety of environmental factors, their interactions, and interaction with genetic factors on children's health and development.

Application of uncertainty and safety factors that specifically consider children's risks

Children must be presumed to be more vulnerable to environmental toxic agents than adults in the absence of data to the contrary, as was specifically recommended by the NRC Committee on Pesticides in the Diets of Infants and Children (NAS 1993). That committee called for the incorporation of an additional child-protective uncertainty factor into risk assessment to account for this greater vulnerability, particularly in the absence of data, and the FQPA mandated the application of an additional margin of safety for children's risk in the case of pesticides (FQPA 1996). Traditional approaches to risk assessment are now being modified to more carefully and explicitly account for risks to children (U.S. EPA 2002a). However, a number of data gaps in exposure assessment and in developmental toxicity must be addressed through the development and implementation of additional testing guideline protocols (U.S. EPA 1999, 2002b), the acquisition of better information on children's exposure patterns and sources, and the undertaking of basic research both on mechanisms of underlying development and on chemical interactions of environmental agents with developing organ systems (NRC 2000).

Conclusion

The protection of children against toxic chemicals in the environment is a major challenge to modern society (Schaefer 1994). Children are not merely a special vulnerable group within our population but rather the current inhabitants of a developmental stage through which all future generations must pass. Protection of the health of fetuses, infants, and children is essential for sustainability of the human species. The current challenge to risk assessment stems from two facts: *a*) hundreds of

new chemicals are developed every year, released in varying quantities into the environment, and absorbed into the bodies of many American children (CDC 2003); and *b*) the majority of these chemicals are not adequately evaluated prior to commercial introduction for their potential toxicity, their potential effects on development, or their possible interactive effects with other chemicals (Goldman 2000; Landrigan and Goldman 2003; NAS 1984). The need, in this context, is to design approaches to risk assessment that account for the unique exposures and sensitivities of children and that also will stimulate enhanced research in developmental toxicity. The ultimate goal is to formulate policies that will protect children against potential toxic agents and allow them to grow, develop, and reach maturity without incurring neurobehavioral impairment, immune dysfunction, reproductive damage, or increased risks of cancer as a consequence of environmental exposures in early life. The protection of children against toxic chemicals in the environment will require fundamental and far-reaching revisions of current approaches to surveillance, toxicity testing, and risk assessment. No guidance document on risk assessment that fails to consider the unique exposures and special susceptibilities of fetuses, infants and children can today be considered adequate to protect human health.

References

Adams J, Lammer EJ. (1993) Neurobehavioral teratology of isotretinoin. Reprod Toxicol 7:175–177.

Human isotretinoin exposure: the teratogenesis of a syndrome of cognitive deficits. Neurotoxicol Teratol 17:386.

American Academy of Pediatrics. (2001) The pediatrician's role in the diagnosis and management of autistic spectrum disorder in children. Pediatrics 107:1221–1226.

American Academy of Pediatrics Committee on Environmental Health. (1998) Screening for elevated blood lead levels. Pediatrics 101:1072–1078.

Berkowitz GS, Wolff MS, Matte T, Susser E, Landrigan PJ. (2001) The rationale for a national prospective cohort study of environmental exposure and childhood development.Environ Res 85:59–68.

Birnbaum LS. (1994) The mechanism of dioxin toxicity: relationship to risk assessment. Environ Health Perspect 102: 157–167.

Blanck HM, Marcus M, Hertzberg V, Tolbert PE, Rubin C, Henderson AK, et al. (2000) Determinants of polybrominated biphenyl serum decay among women in the Michigan PBB cohort. Environ Health Perspect 108(2):147–152.

Brody DJ, Pirkle JL, Kramer RA, Flegal KM, Matte TD, Gunter EW, et al. (1994) Blood lead levels in the US population. Phase 1 of the Third National Health and Nutrition Examination Survey (NHANES III, 1988 to 1991). JAMA 272:277–283.

Call RS, Smith TF, Morris E, Chapman MD, Platts-Mills TA. (1992) Risk factors for asthma in inner city children. J Pediatr 121:862–866.

MMWR Morb Mortal Wkly Rep 43:952–955. 1995b. Children at Risk from Ozone Air Pollution –United States, 1991–1993.

Cody RP, Weisel CP, Birnbaum G, Lioy PJ. (1992) The effect of ozone associated with summertime photochemical smog and frequency of asthma visits to hospital emergency departments. Environ Res 58:184–194.

Colborn T, Dumanoski D, Myers JP. (1996) Our Stolen Future:Are We Threatening Our Fertility, Intelligence, and Survival? A Scientific Detective Story. New York:Dutton.

http://www.oehha Consumers Union of the United States Inc.(2001) A Report Card for the EPA. Successes and Failures in Implementing the Food Quality Protection Act. Related Tables. In: A Report Card For The EPA. (Table 2.1 and Appendix 1). Available:

http://www.consumersunion.org/food/fqpa_info.htm [accessed 7 February 2003]. Cresteil T. (1998) Onset of xenobiotic metabolism in children: toxicological implications. Food Addit Contam 15(suppl): S45–S51.

Crump KS, Kjellstrom T, Shipp AM, Silvers A, Stewart A. (1998) Influence of prenatal mercury exposure upon scholastic and psychological test performance: benchmark analysis of a New Zealand cohort. Risk Anal 18:701–713.

Ekbom A, Hsieh CC, Lipworth L, Adami HQ, Trichopoulos D. (1997) Intrauterine environment and breast cancer risk in women: a population-based study. J Natl Cancer Inst 89:71–76.

Eskenazi B, Bradman A, Castorina R. (1999) Exposures of children to organophosphate pesticides and their potential adverse health effects. Environ Health Perspect 107:409–419.

Eskenazi B, Prehn AW, Christianson RE. (1995) Passive and active material smoking as measured by serum cotinine: the effect on birthweight. Am J Public Health 85:395–398.

Fedrick J. (1973) Epilepsy and pregnancy: a report from Oxford record linkage study. Br Med J 2:442–448. FQPA (Food Quality Protection Act). 1996. Food Quality Protection Act of 1996. Public Law 104–170. U.S. Environmental Protection Agency. Available: http://www.pmac.net/fqpa1.htm [accessed 7 February 2003].

Ginsberg, G. Hattis D, Sonawane B, Russ A, Banati P, Kozlak M, et al. (2002) Evaluation of child/adult pharmacokinetic differences from a database derived from the therapeutic drug literature. Toxicol Sci 66:185–200.

Grandjean P, Weihe P, White RF, Debes F, Araki S, Yokoyama K,et al. (1997) Cognitive deficit in 7-year old children with prenatal exposure to methylmercury. Neurotoxicol Teratol 19:417–428.

Gray LE Jr, Ostby J, Furr J, Price M, Veeramachaneni DN, Parks L. (2000) Perinatal exposure to the phthalates DEHP, BBP, and DINP, but not DEP, DMP, or DOTP, alters sexual differentiation of the male rat. Toxicol Sci 58:350–365.

Gray R, Peto R, Brantom P, Grasso P. (1991) Chronic nitrosamine ingestion in 1040 rodents: the effect of choice of nitrosamines, the species studied, and the age of starting exposure. Cancer Res 51(part 2):6470–6491.

Guillette LJ Jr, Gross TS, Masson GR, Matter JM, Percival HF, Woodward AR. (1994) Developmental abnormalities of the gonad and abnormal sex hormone concentrations in juvenile alligators from contaminated and control lakes in Florida. Environ Health Perspect 102:680–688.

Albalak R et al. (1999)Assessment of PM_{10} concentrations from domestic biomass fuel combustion in two rural Bolivian highland villages. *Environmental Science and Technology*, 33: 2505–2509.

Zhang J et al. (1999) Carbon monoxide from cookstoves in developing countries: 2. Potential chronic exposures. *Chemosphere-Global Change Science*, 1: 367–375.

Lioy PJ. (1990)Assessing total human exposure to contaminants: a multidisciplinary approach. *Environmental Science and Techonology*, 24 (7): 938–945.

Engel P, Hurtado E, Ruel M. (1998), Smoke exposure of women and young children in highland Guatemala: predictions and recall accuracy. *Human Organisation*, 54: 408–417.

Behera D, Dash S, Malik S. Blood carboxyhaemoglobin levels following acute exposure to smoke of biomass fuel. *Indian Journal of Medical Research*, (1988), 88: 522–542.

Kossove D. (1982), Smoke-filled rooms and lower respiratory disease in infants. *South African Medical Journal,* 61: 622–624.

Pandey M et al. Domestic smoke pollution and acute respiratory infections in a rural community of the hill region of Nepal. *Environment International,* 1989, 15: 337–340.

Campbell H, Armstrong JR, Byass P. (1989), Indoor air pollution in developing countries and acute respiratory infection in children. *Lancet*, 1: 1012.

Cerqueiro MC et al. (1990), Epidemiologic risk factors for children with acute lower respiratory tract infection in Buenos Aires, Argentina: a matched case-control study. *Review of Infectious Diseases*, 12 (Suppl. 8): S1021–S1028.

Armstrong JR, Campbell H. (1991), Indoor air pollution exposure and lower respiratory infections in young Gambian children. *International Journal of Epidemiology*, 20: 424–429.

Mtango FD et al. (1992), Risk factors for deaths in children under 5 years old in Bagamoyo district, Tanzania. *Tropical Medicine and Parasitology*, 43: 229 233.

Johnson AW, Aderele WI. (1992), The association of household pollutants and socio-economic risk factors with the short-term outcome of acute lower respiratory infections in hospitalized pre-school Nigerian children. *Annals of Tropical Paediatrics*, 12: 421–432.

O'Dempsey T et al. (1996) A study of risk factors for pneumococcal disease among children in a rural area of West Africa. *International Journal of Epidemiology*, 25 (4): 885–893.

Wesley AG, Loening WE. (1996), Assessment and 2-year follow-up of some factors associated with severity of respiratory infections in early childhood. *South African Medical Journal*, 64: 365–368.

Lopez-Bravo IM, Sepulveda H, Valdes I. (1997), Acute respiratory illness in the first 18 months of life. *Pan American Journal of Public Health*, 1: 9–17.

Morris K et al. (1990),Wood-burning stoves and lower respiratory tract infection in American Indian children. *American Journal of Diseases of Children*, 144: 105–108.

WHO/UNICEF. *Integrated management of childhood illness*. Geneva, World Health Organization, (1997) (unpublished document WHO/CHD97.3.A-G).

Smith K et al. (2000), Indoor air pollution in developing countries and acute respiratory infections in children . *Thorax*, 55: 518–532.

Bruce N et al. (1998), Indoor biomass fuel air pollution and respiratory health: the role of confounding factors among women in highland Guatemala. *International Journal of Epidemiology*, 27: 454–458.

Smith K. (1989), Dialectics of improved stoves. *Economic and Political Weekly,* 11: 517–522.

Strachan DP, Cook DG. (1998), Parental smoking, middle ear disease and adenotonsillectomy in children. *Thorax*, 53: 50–56.

Daigler GE, Markello SJ, Cummings KM. (1991), The effect of indoor air pollutants on otitis media and asthma in children. *Laryngoscope*, 101: 293–296.

Anderson HR. (1979), Chronic lung disease in the Papua New Guinea highlands. *Thorax*, 34: 647–653.

Anderson HR. (1976), Respiratory abnormalities and ventilatory capacity in a Papua New Guinea island community. *American Review of Respiratory Diseases*, 114: 537–548.

Anderson HR. (1979), Respiratory abnormalities, smoking habits and ventilatory capacity in a highland community in Papua New Guinea: prevalence and effect on mortality. *International Journal of Epidemiology*, 8: 127–135.

Padmavati S, Pathak SN. (1959), Chronic cor pulmonale in Delhi. *Circulation*, 20: 343–352.

Master KM. (1974),Air pollution in New Guinea. Cause of chronic pulmonary disease among stone-age natives in the highlands. *Journal of the American Medical Association*, 228: 1635–1635.

Anderson HR et al. (1988), Prospective study of mortality associated with chronic lung disease and smoking in Papua New Guinea. *International Journal of Epidemiology*, 17: 56–61.

Pandey MR. (1984), Prevalence of chronic bronchitis in a rural community of the Hill Region of Nepal. *Thorax*, 39: 331– 336.

Pandey MR. (1984), Domestic smoke pollution and chronic bronchitis in a rural community of the Hill Region of Nepal. *Thorax*, 39: 337–339.

Malik SK. (1985), Exposure to domestic cooking fuels and chronic bronchitis. *Indian Journal of Chest Diseases and Allied Sciences*, 27: 171–174.

Pandey MR, Basnyat B, Neupane RP.(1998) *Chronic bronchitis and cor pulmonale in Nepal: a scientific epidemiologic study*. Kathmandu, Mrigenda Medical Trust,

Behera D, Dash S, Yadav SP. (1991), Carboxyhaemoglobin in women exposed to different cooking fuels. *Thorax*, 46: 344–346.

Behera D, Jindal SK, Malhotra HS. (1994), Ventilatory function in nonsmoking rural Indian women using different cooking fuels. *Respiration*, 61: 89–92.

Qureshi K. (1994), Domestic smoke pollution and prevalence of chronic bronchitis/asthma in a rural area of Kashmir. *Indian Journal of Chest Diseases and Allied Sciences*, 36: 61–72.

Dutt D et al. (1996), Effect of indoor air pollution on the respiratory system of women using different fuels for cooking in an urban slum of Pondicherry. *National Medical Journal of India*, 9: 113–117.

Moran AO (1992)*Lung disease associated to wood smoke inhalation. A clinical radiologic, functional and pathologic description* [Thesis]. Mexico City, National Autonomous University of Mexico.

Juarez-Ceron B.(1996) *Collagenolitic activity in a model of pulmonary emphysema induced by wood smoke* [Thesis]. Mexico City, Metropolitan Autonomous University of Mexico.

Sustainable Urban Development in the Indian Context

Dr. K.L. Sahu
Professor and Head
Department of History
Govt. P.G. College, Narsinghpur (M.P.)

Abstract

Sustainable urban development specifically means achieving a balance between the development of the urban areas and protection of the environment with an eye to equity in employment, shelter, basic services, social infrastructure and transportation in the urban areas. With rapid expansion of urban population around the world there has arisen a wide awareness about minimizing the environmental costs of urbanization.

In the Indian context the resources of Indian urban areas are under tremendous pressure as more and more people move from the villages to the cities. It is incumbent upon us to protect the environment and also to ensure that natural resources of the earth are safeguarded for the benefit of present and future generations. The increasing population pressure and the diversion of resources to cater to its needs have created a disparity which needs to be tackled.

To develop an urban area into a sustainable unit we need to produce and manage basic services like water, waste, energy, and transportation in a way that it conforms to the principles of sustainable development. The urban centre should be able to produce and distribute services in an economic, environment friendly and equitable way.

Urban planning is important for sustainable urban development but equally important are the environmental friendly management of basic services like water-supply, sanitation and also of energy. One of the impediments in ensuring a congenial environment is poverty. Poverty coupled with a lack of basic means of livelihood is primarily responsible for relegating sustainable development to a tertiary position. The environment is over exploited, more so when poverty forces people to draw their

sustenance from the natural resource base of their immediate environment. Poverty and awareness are the basic requisites to ensure sustainability in the environment.

Introduction

Sustainable development refers to attaining social equity and environmental protection in urbanization while minimizing the costs of urbanization. Sustainable urban development specifically means achieving a balance between the development of the urban areas and protection of the environment with an eye to equity in employment, shelter, basic services, social infrastructure and transportation in the urban areas. With rapid expansion of urban population around the world there has arisen a wide awareness about minimizing the environmental costs of urbanization. Concerns are raised at environmental damages and depletion of nonrenewable resources and rising levels of pollution in urban areas. In recent times cities have become places of urban environmental degradation and wasteful use of resources, which is proving to be costly to generations present and future. In order to mitigate the problem we require minimizing the depletion of non-renewable resources and resort to environmentally sustainable economic development. But this has to be done in ways that are socially, economically and politically acceptable.

Sustainable Development is a clichéd term, in terms of so much being said and so little being done. The term hides a paradox-development involves the exploitation of resources, whether human or natural. If exploitation of all kinds is done away with, no society would be benefited and no development would be possible. Development comes into play as we are continually in search of making our existence on this planet more and more comfortable. But incessant and reckless development has begun taking its toll on the environment and the people.

In the Indian context more and more people are migrating to the cities. This large scale migration has adverse effects on both- rural and urban areas. Our development models are more or less based on urban areas and industrialization affording lesser opportunities to the non-urban population. The need of the hour is to provide decent means of living and employment to non-urban areas that checks the flight of people to urban areas.

With rural areas getting depleted of resident population there are fewer left to look after rural resources. Farming today is proving to be an expensive business and is moving away from the reach of the marginal farmers. The alternative is provided by mechanized farming and co-operative farming. The high cost of either is prohibitive enough so that small farmers have no choice but to abandon their lands and move to the cities to work as unskilled laborers that in turn entails exploitation of a different kind. Farm lands that could have provided sustenance are now left uncultivated and barren. Co-operative farming is exploitative in nature and because of being mechanized it depletes natural resources faster than ever. It has denuded vast tracts of prime forest to make vast agricultural fields. The fact that agriculture is getting mechanized means that fewer people in the villages get employed near their homes.

The resources of Indian urban areas are under tremendous pressure as more and more people move from the villages to the cities. India is among the top 12 mega centers of the world in terms of its bio-diversity. It has a wide range of geo-climatic conditions and a rich and varied flora and fauna, as well as a long standing tradition of environmental sensibility and concern that goes to the very roots of its millennia-old culture. Harmony with nature has been an integral part of the ethos of Indian society. It is therefore incumbent upon us to protect the environment and also to ensure that natural resources of the earth are safeguarded for the benefit of present and future generations.

Sustainable urban development means achieving a balance between the development of the urban areas and protection of the environment with an eye to equity in employment, shelter, basic services, social infrastructure and transportation in the urban areas. The increasing population pressure and the diversion of resources to cater to its needs have created a disparity which needs to be tackled.

The present standards of living in India have given rise to rapid expansion of urban population that has created a wide awareness about minimizing the environmental costs of urbanization. Today's cities have become places of urban environmental degradation and wasteful use of resources, which is proving to be costly to generations present and future. In order to mitigate the problem we require to minimizing the depletion of non-renewable resources and resort to environmentally sustainable economic development. But this has to be done in ways that are socially, economically

and politically acceptable. Sustainable urban development in the Indian context can be narrowed down to: -

- integration of the principles of sustainable development in the policies and programmes of the country.
- reversal of loss of environmental resources.
- reduction of the proportion of people without sustainable access to safe drinking water.
- improving the lives of slum dwellers. (Chattopadhyay, p3)

"Sustainable development represents a balance between the goals of environmental protection and human economic development and between the present and future needs. It implies equity in meeting the needs of people and integration of sectoral actions across space and time." (Cruz et al, 2007).

In India sustainable development increases the responsibilities of effective climate management as rapid urbanization depletes and pressurises natural resources, environment and economic development. In order to reduce the effect of climate change, we need to include climate-proofing concepts in national development initiatives. Urban areas mostly face problems of air quality pollution, green house gases, and unsustainable consumption and of inadequate sanitation and water supply. Policy initiatives should aim at energy efficiency in transport and buildings, optimal planning solutions in terms of locations, distances and spaces, which will reduce air and noise pollution. It should also aim at sustainable management of sanitation and water supply, promote equity in provision of services and also reduce deforestation.

To develop an urban area into a sustainable unit we need to produce and manage basic services like water, waste, energy, and transportation in a way that it conforms to the principles of sustainable development. The urban centre should be able to produce and distribute services in an economic, environment friendly and equitable way. Cities in the developing countries like India are deficient in the provision of basic services that pollute the environment.

Indian cities are characterized by high density of population, deficiency in services and air pollution. Management of basic services should be done keeping in

mind the deficiency in the services, the environmental impacts and the inequality in the provision of the services. In India it is not always about policy initiatives but also about awareness of people on either side of the environmental divide. The climatic conditions in India ensure water availability throughout the year. But it is regrettable that only 69% (qtd. in Chattopadhyay) of households had safe drinking water. Water consumption can be limited by using raw water, recycled water for gardening and landscaping. In India the water from Sewage Treatment Plants (STP) in factories are used for landscaping and gardening. Rainwater harvesting has possibilities for partially managing water supply. Conservation of old water bodies like lakes, ponds can be made for increased and sustainable water supply. Marshlands recharge ground water substantially; hence they should not be exploited for urban housing projects or developing farm lands.

"Waste management practices should be started from the production and distribution stages of economic activities through reuse and recycling. Reuse of things like metals, glass, paper, plastic, textiles, organic waste and water will reduce demand for energy, raw materials, fertilizers and fresh water sources" (Pinderhughes, 2008). Too much land is being used for waste matter disposal that is contaminating ground water. To offset this "best practices like vermiculture, pelletisation, aerobic composting should be followed in waste management" (GOI-MoEF).

Management of basic services in the cities should reduce inequality in services between rich and poor. The concept of commercial viability does not hold for social services always. City form should take into account social conditions also. The ability of urban poor to pay for the full cost of water supply would remain low in India. […] reduction in grant of the government and introduction of private sector in this sector is likely to make the situation worse. "It is also well known that much of the subsidized schemes in the past have gone to the middle and high-income areas" (Kundu, 2006).

One of the challenges of a sustainable urban form is to meet the economic performance objectives and environmental sustainability of a city at the same time. The idea is to create a city that performs well economically and conforms to the objectives of environmental sustainability. "In order to be economically efficient a city needs to reduce production costs. It also needs to reduce travel time between the different related companies, between the company and the workers' homes. An economically efficient city also creates economies of scale for services and housing markets" (Bertolini, 2006).

Urban planning is important for sustainable urban development but equally important are the environmental friendly management of basic services like water-supply, sanitation and also of energy. The issue of equity in delivery of services is one important requirement of sustainable urban development, which should be kept in mind while planning for them. There are three main issues here, which are meeting the deficiencies in services, how to manage the services in an environment friendly way and the need to make them more equitable.

Sustainable Development is a concept which attempts to take into account resource mobilisation and its use to protect the interests of all the stake holders and preserve the same for future generations. The said interests comprise the whole gamut of issues ranging from economic, environmental, political and social among others. The most authentic definition for sustainable development is contained in the Brundtland Report, "Sustainable development is development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs" (iisd)

One of the impediments in ensuring a congenial environment is poverty. Poverty coupled with a lack of basic means of livelihood is primarily responsible for relegating sustainable development to a tertiary position. The environment is over exploited, more so when people draw their sustenance from the natural resource base of their immediate environment. Restoring natural systems and improving natural resource management practices at the grassroots level should be central to a strategy to eliminate poverty. "The survival needs of the poor force them to continue to degrade an already degraded environment. Removal of poverty is therefore one of the prerequisites for the protection of the environment" (MoEF).

Works Cited

Bertolini, L. *(*2006) *The multi-modal urban region: A Concept to Combine Environmental and Economic Goals*. Future Forms and Design for Sustainable Development. Ed. M. Jenks and N. Dempsey. Oxford, U.K.

Chattopadhyay, Basudha. Sustainable Urban Development in India: Some Issues. pdf.

Cruz, R.V. *et al*. (2007)*Climate Change: Impacts, Adaptation and Vulnerability. Contribution of Working Group II*. The Fourth Assessment Report the

Intergovernmental Panel on Climate Change. Cambridge University Press, Cambridge, U.K.

Govt. of India, Ministry of Environment and Forests. White Paper on Pollution in Delhi. http://envfor.nic.in/

Kundu A. and S. (2006) Thakur. *Access to Drinking Water in Urban India*: Managing Water Resources: Policies, Institutions and Technologies. Ed. V. Ratna Reddy and S. Mahendra Dev. OUP, New Delhi.

Pinderhughes, R.(2008) *Alternative urban futures: Designing urban infrastructures.* Local Sustainable Urban Development in a Globalized World. Ed. Lauren C. Heberle and Susan M. Ashgate Publishing Limited, England.

www.iisd.org/sd/ (International Institute of Sustainable Development) 28-11-2012.

www.moef.nic.in/divisions/ic/consul_book/ 27-11-2012.

Vulnerability of Villages Situated Near Disaster Prone Industries in District Bathinda (Punjab, India)

Komaljot Singh
Student, Masters in Disaster Management,
Department of Geography,
Panjab University,
Chandigarh-160014,
E-mail: komaljot27@gmail.com

Abstract

The High Powered Committee on Disaster Management (2001) set up by Government of India has defined vulnerability as the extent to which a community, structure, service, or geographic area is likely to be damaged by a particular hazard, on account of their nature, construction and proximity to a disaster prone area. Aim: The objective of the present research paper is to document the vulnerability of three villages situated near big petroleum and fertilizer industries in district Bathinda (Punjab). Study Area: These villages are Phulo Khari (situated near HPCL-Mittal Energy Limited Refinery), Sivian (near National Fertilizers Ltd.) and Phoos Mandi (near Hindustan Petroleum Corporation Ltd. Plant). Methods: Data was obtained from both primary as well as secondary sources. The primary data was collected through observation method and through informal interviews with the local people and panchayat members. Secondary data was obtained from the concerned village panchayats. Findings: The residents of these villages are facing serious health and economic problems due to air and water pollution caused by these industrial units. No remedial measures are taken by concerned authorities to solve this problem.

Introduction

The concept of vulnerability originated in 1970s in the field of social science from the viewpoint of disaster risk. Vulnerability is the degree of loss to an element or set of elements from any natural or man-made phenomena. Theconcept of vulnerability has been defined by different authors like Susman (1984), Dow (1992), Blaikie (1994) andPelling (2003). Susman (1984) defines vulnerability as the degree to which different classes of society are differently at risk. Dow (1992) says vulnerability is the differential capacity of groups and individuals to deal with hazards, based on their positions within

physical and social worlds. Blaikie et al. (1994) point out that vulnerability refers to the characteristics of a person or group in terms of their capacity to anticipate, cope with, resist and recover from impacts of a hazard. On the other hand, Pelling (2003) defines it as the exposure to risk and inability to avoid or absorb potential harm. So it can be inferred that vulnerability is the community's capacity to cope up with the adverse affects of a disaster to prevent potential damage.

The High Powered Committee on Disaster Management (2001) set up by Government of India has defined vulnerability as the extent to which a community, structure, service, or geographic area is likely to be damaged by a particular hazard, on account of their nature, construction and proximity to a disaster prone area.Vulnerability differs from place to place and from hazard to hazard. It can be categorized into physical, social and economic vulnerability. Physical vulnerability includes who and what may be damaged or destroyed by any natural or manmade hazard and socio-economic vulnerability is the extent to which a population isaffected by a hazard. The socio-economic conditions of the people also determine the intensity of the impact.

The High Powered Committee (2001) has identified five major categories of disasters, viz. water and climate related disasters; geologically related disasters; chemical, industrial and nuclear related disasters; accident related disasters and biologically related disasters. Out of these, industrial disasters are of special importance because industries are the product of interface between society and technology and any industrial disaster has the potential to damage the complex system of physical and human environment. Accidental disasters in industries are caused due to negligence, incompetence or sometimes willingly. The workers of the industries and the population living in the vicinity of the industry are the most vulnerable segments of population. One can have a look on the list of past industrial disasters like Bhopal gas tragedy (1984), Jaipur oil depot fire (2009) and Vizag fire (2013) which caused huge damage to local economy and resulted in massive loss of life and property.

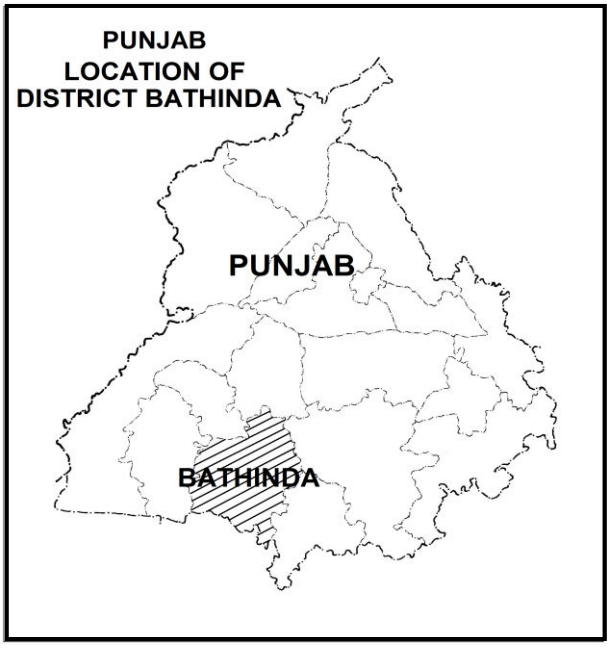
Aim and Methodology

The objective of the present research is to document the vulnerability of three villages situated near disaster prone industries in District Bathinda of Punjab (Map 1). In these areas, any explosion or serious mishap can result in intense loss of human life, livestock, physical infrastructure and environment. The paper has been written by obtaining data from both primary as well as secondary sources. The primary data was

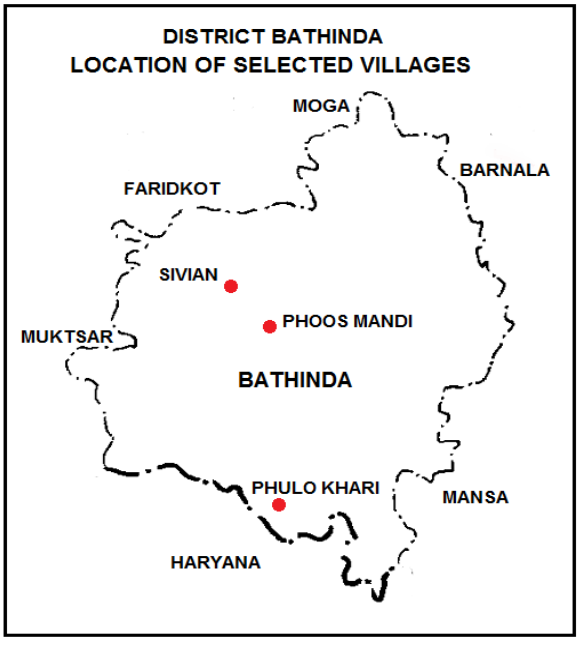
collected through observation method and through informal interviews with the concerned officials (Patwari), village sarpanch and local people. Secondary data was obtained from the concerned village panchayats.

Study Area

Three vulnerable villages (Map 2) from district Bathinda have been selected for this research work, due to their close proximity to big petroleum and fertilizer industries. Thesevillages are Phulo Khari (situated near HPCL-Mittal Energy LimitedRefinery), Sivian (near National Fertilizers Ltd.) and Phoos Mandi (near Hindustan Petroleum Corporation Ltd. Plant). Phulo Khari is a village in Talwandi Sabo Tehsil ofthe district. It is located 35 km south of district headquarter Bathinda and 11 km from Talwandi Sabo. Kalanwali, Maur Mandi, Dabwali and Bathinda are thenearest cities to Phulo Khari. The village Sivian is located at a distance of approximately 15 km from Bathinda city. Its surrounding villages are Bhokhra, Joga Nand and Nehian Wala. Phoos Mandi is situated in the eastern part of Bathindadistrict. The distance of this village from Bathinda city is 7 km. Bathinda, Rampura Phul, Maur and Giddarbaha are the surrounding cities of Phoos Mandi. The total population of Phulo Khari, Sivian and Phoos Mandi is 1912, 4200 and 1667 persons respectively. Agriculture is the main occupation of the residents of all the three villages.



Map 1: Punjab: Location of District Bathinda



Map 2: District Bathinda: Location of Selected Villages

Vulnerability of Villages to Industrial Disasters

A. Physical Vulnerability

1. Dangerous locations of villages near industries

All the three villages are situated in close proximity to big industrial units. Village Phulo Khari and Phoos Mandi, which are situated near oil refinery and depot, face the serious threat of an impending disaster, if any mishap takes place in these industrial units. Disasters like fire outbreak or explosion can cause massive destruction in the surrounding areas. Both the HMEL refinery and HPCL oil depot are interconnected through an approximately 35 km long pipeline, which supplies oil from the refinery to the depot. If by some chance this pipeline link is damaged due to some unforeseen circumstances like blast, terrorist attack, arson or sabotage the results can prove immensely disastrous for both the industrial units as well as the nearby villages. Moreover the HPCL oil depot situated near Phoos Mandi is connected to other parts of India through a special railway link route. The trains transport petroleum in large oil tankers. There is a lot of oil spillage during the filling and emptying of these tankers. In addition to this there is also alleged theft of oil from these oil tankers, which also result in serious incidents of oil spills. Even if any small accidental fire takes place at this location, there are full chances that the fire can spread rapidly in the surrounding areas of village Phoos Mandi, which can result in massive disaster. The village Sivian is situated close to National Fertilizers Limited (NFL) plant. This industrial unit is causing serious problem of air and water pollution in the village and other surrounding areas. The village is facing a huge problem in managing the waste water released by the industry. To make the situation worse the winds blowing in the direction of the village bring in concentrated draughts of air pollutants, which make breathing difficult for the village residents.

Unsafe infrastructure in villages

The public infrastructure in these villages is quite unsafe in terms of their physical strength. For instance, the play-way centre (anganwadi) in village Phulo Khari is housed in a fragile building. The roof of the building is unstable and has several cracks in it. In case of any explosion or blast in the nearby HMEL refinery, the building can easily collapse which may result in serious casualties. Similarly the roads in Sivian village are unmetalled and the drains are unlined. There is serious problem of water logging in the village caused due to the inefficiency of the drainage system to properly dispose off the waste water generated by the village households. The problem is

aggravated when the waste water released by the fertilizer plant reaches the village. The waste water ponds in all the three villages are running out of capacity and the water treatment system installed at these sites by the public authorities are unable to manage the scenario.

B. Economic Vulnerability

1. Employment sectors at risk

The mainstay of economy in the three selected villages is agriculture. A major chunk of population of these villages is employed in agricultural sector. In the village Phulo Khari the farmers use untreated waste water released by the oil refinery for irrigating their fields, but this water is not good for the crops. Other sources of irrigation are tube wells and canals. The yield of crops is quite low. The farmers are unable to fulfill even their own domestic food requirements. Only 2% of the people are working in other occupations. Similarly in village Sivian the crop fields are adversely affected by high level of air pollution caused by the fertilizer plant. This shows that agriculture, which is a major source of occupation for these villages, is at risk due to the problems created by the nearby industrial units. The people of these villages are less educated and thus have limited options of employment in other sectors of economy. Therefore the proximity of these villages to the industrial units is proving a bane for the local economy.

2. Low income level

The level of income of the residents of these villages is quite low. For example in the selected village Sivian the economic condition of the villagers is not very good. There are 35 BPL card holders and 150 blue card holders. 200 families are working in the MGNREGA scheme. The remunerations derived from agriculture are insufficient for the residents because agriculture is increasingly becoming an unviable means of livelihood. The people are unable to enjoy a good quality of life due to their low financial status, thus increasing their vulnerability to any kind of disaster.

C. Social Vulnerability

1. The problem of low education

The residents of these villages are not highly educated. In village Phulo Khari 25% of the residents are totally illiterate. There is only one elementary school in the village and even the school building is not in good condition. There is no English medium school in the nearby areas. The students have to travel long distances for their

higher education. This is a major discouraging factor, which has resulted in low level of education among the residents. As a result the people are mostly engaged in primary occupations, which do not require any special skills or technical training. The low level of education reflects that the people of this area are less empowered and hence more vulnerable to any sort of disaster.

2. Poor health conditions

The people of Phulo Khari village are facing many problems due to the nearby situated oil refinery. The foul smell emitting from the refinery has given rise to respiratory diseases among the villagers. Many persons have developed asthma and skin problems. The HMEL plant is increasing the problems of water, air and soil pollution. Not only human beings, but the livestock is also getting affected. Many deaths have been reported in the village due to respiratory problems. Over the past few years several infants have died due to skin diseases and allergies. Till date the government or the HMEL plant authorities have provided no compensation to the concerned families. In village Sivian the water-logged drains and streets as well as the huge ponds of untreated waste water act as breeding grounds for various types of vectors (like mosquitoes and house flies), creating favorable conditions for occasional outburst of vector-borne diseases like malaria during the rainy season. There is no facility of pure drinking water in the village. The air pollution caused by the nearby fertilizer plant has also given rise to breathing problems to the villagers.

3. Lack of public amenities

The village of Phulo Khari is not having any health centre. The nearby hospital is at Rama Mandi, which is about 5 km away. There are nearly 10 cancer patients in the village. Government has not organized any medical camps for the people of villages. There is only one RO water purifying system but it is not working and the villagers use well water or private tank for drinking purposes. Private tank is very costly and it is not possible for everybody to arrange a private tank of clean water to fulfill the drinking needs of their family. There is also lack of good educational institutions in all the three villages. The streets and lanes are unmetalled. The drains are not brick-lined and are uncovered. There is also serious deficiency of proper means of public transport. In village Phulo Khari there is only one daily private bus service, which again has irregular timings. There is only one ration depot in the village. But the depot has received no

supply of ration for the last two months. The houses in the village are attached to one another, with no open spaces in-between. There is no sewerage system. There are four waste water ponds in the village and all of them are in unhygienic condition.

D. Lack of disaster preparedness

The people of the three selected villages are aware of all the problems arising out of these industrial units, however they are not at all prepared to face any sort of impending industrial disaster. It is their low level of education and poor economic status, which is the prime reason of their low level of preparedness. Moreover, the local government has taken no measures to increase the level of preparedness of the concerned population in order to mitigate the effects of any disaster occurring in the nearby-situated industries.

Conclusion

The residents of these villages are facing serious health and economic problems due to their close proximity to these industrial units. No remedial measures are taken by the concerned authorities to solve this problem. The root causes that make the people of these villages vulnerable are faulty management practices of industries, regulatory gaps and deficiencies on part of the government and exclusion of locals in decision-making. The low income and low literacy rate of the residents of these villages make them more vulnerable. The local government should provide them proper medical services too. The vulnerable people of these villages must be trained through campaigns and mock-drills to prepare them to face any kind of disaster and to reduce their vulnerability to industrial hazards.

References

Blaikie, P., Cannon, T., Davis, I, and Wisner, B. (1994) At Risk: Natural Hazards, People's Vulnerability and Disasters. London: Routledge.

Dow, K. (1992) Exploring Differences in Our Common Future(s): The Meaning of Vulnerability to Global Environment Change. Geoforum 23, 417-436.

High Powered Committee on Disaster Management. (2001) Report. Ministry of Agriculture; Government of India.

Pelling, M. (2003) The Vulnerability of Cities: Natural Disasters and Social Resilience.

Earthscan Publications, London.

Susman, P., O'Keefe, P. and Wisner, B. (1984) Global Disasters: A Radiical Interpretation. In Hewitt, K., editor, Interpretations of Calamity, Boston MA: Allen & Unwin, 264-283.

Water Pollution In Mandideep Raisen District - A Critical Review

Dr. Mukesh Kumar Napit
Department of Zoology\
Swami Vivekanand Govt. College
Berasia, Bhopal Madhya Pradesh, India
Email: napit.mukeshkumar7@gmail.com

Abstract

Mandideep is a industrial city. High values of TDS, TH, chloride, alkalinity, calcium and magnesium were found in most of the groundwater samples of surrounding areas and effluent out -let samples of E-waste effluent treatment plant due to E-waste industries of Mandideep and improper treatment of E-waste effluent treatment plants. Though the CETPs are treating the effluent, the surrounding ground water quality gets deteriorated.This review critically analyses water pollution problems in Mandideep, Raisen District Madhya Pradesh, India

Key words: Water pollution, Mandideep, CETP,TDS

Introduction

Water sources available for drinking and other domestic purposes must possess high degree of purity, free from chemical contamination and microorganisms. The rapid growth of urban areas has further affected the groundwater quality due to over exploitation of resources and improper waste disposal practices . Also, the effluent from the cement industry are characteristics of waste water released from sizing, desizing, kiering, bleaching, mercerizing,E-waste house and dusting sections of composite materials of industrial effluent . The wastewater is highly viscous with high suspended solids and total dissolved solids.

Mandideep town, the head quarter of Raisen district, Madhya Pradesh, India is situated on the bank of Betwa and Narmada rivers. It is located at 10.95oN, 78.08oE and 50 km from Raisen on southwest direction. Betwa river is a tributary of Narmada. It confluence with river Betwa at about 12 km downstream of Mandideep. During the last three decades the town emerged as a major E-waste centre.

Review of Literatures

This review has evaluated the various water parameters like Chloride, alkalinity, COD, BOD, hardness, EC and potassium etc., excess in most of the study areas of the following in accordance with the drinking water quality standards suggested by the World Health Organization. Viyas V. has been made to evaluate the current status of physico-chemical contaminants and their sources in surface and groundwater of Betwa river basin. 33 water samples including 11 surface water samples and 22 groundwater samples were collected from different location of Betwa river basin during November 2012.The physico- chemical parameters such as pH, EC, TDS, TH, TA, NO3, SO4, PO4, Na, K, Ca, Mg, Cl and F have been analyzed. The results were compared with water quality standard prescribed by ISI/ICMR/WHO and an attempt has been made to find whether the quality of groundwater suitable for drinking purposes or not Viyas et. focused on groundwater quality assessment of some parts of Than Mandideep and Silwani block in Raisen District,M.P. Groundwater quality of the study area was evaluated for its suitability for drinking purposes by collecting ten samples during pre-monsoon season August 2013) by adopting standard analytical techniques of APHA (2005). The water samples collected in the stations were analyzed for electrical connductivity (EC), pH, Total Dissolved Solids (TDS), Total Hardness (TH), major cations like calcium, magnesium, and anions like bicarbonate, chloride, nitrate, fluoride and sulphate. The study revealed that some water sources in the region are not suitable for drinking with respect to total hardness, calcium and magnesium content. Proper maintenance and treatment of water can improve the quality of drinking water and thereby a safer life. Various samples of ground water, were collected from different areas in and around the Mandideep village of Raisen District, India and analyzed for their physicochemical characteristics. The results of this analysis were compared with the water quality standards of WHO and CPHEEO. In this analysis the various physicochemical parameters such as pH, electrical conductivity, turbidity, total dissolved solids, Cl-, F-, SO42-, NO3 -, Na+, K+, Fe, Cr, calcium and magnesium etc., were determined using standard procedures. The quality of groundwater samples were discussed with respect to these parameters and thus an attempt were made to ascertain the quality of ground water used for drinking and cooking purposes in the sampling areas.

Physico – Chemical Characteristic of the ground water quality at Mandideep in Raisen City, M.P., India was carried out during September to November 2012. Two water samples from cement effluent industry and Eight Bore well water samples

representing study area were collected and almost of all the samples values were within the permissible limit of World Health Organization (WHO) and Bureau of Indian Standards (BIS) prescribed for drinking water standards (pH 7.40 to 9.0 , total dissolved solids (TDS) – 300 to 6000 mg/L , Electrical conductivity (EC) – 320 to 8000 micro mho /cm, phenolphthalein alkalinity (PA) range 20 to 120 mg/L, Total alkalinity (TA) 120 to 630 mg/L, Total hardness (TH) 110 to 920 mg/L , chloride 30 to 3275 mg/L, Ca – 25 to 109 mg/L, Mg 11 - 140 mg/L, Na 330 to 840 mg/L, K 18.4 to 30.1 mg /L, Iron 0.11 to 2.20 mg/L, free ammonia 0.45 – 0.57 mg/L, Nitrite 0.01 – 0.54 mg /L, Nitrate 1 – 10 mg /L, Sulphate 10- 230 mg /L, Fluoride 0.0 - 2.0 mg/L, Phosphate 0.02 to 0.10 mg /L, Tidy's test (as O mg/l) 0.4 – 68 mg /L, dissolved oxygen (DO) – 2.8 to 4.1 mg / L, biological oxygen demand (BOD) 80 to 224 mg / L, chemical oxygen demand (COD) 210 to 600 mg / L. However further it will need proper monitoring of the ground water quality in the study area.

It is known that the groundwater quality is important as it is the main factor determining its suitability for drinking, domestic, agricultural and industrial purposes. In order to assess the groundwater quality, 16 ground water samples have been collected from different places in cultivated Pugalur and uncultivated Pugalur during January 2012. The water samples collected in the stations were analyzed for Electrical Conductivity (EC), pH, Total Dissolved Solids(TDS), Total Hardness(TH), Total Alkalinity (TA), major cation like calcium, magnesium, sodium, potassium and anions like chloride, nitrate and sulphate in the laboratory using the standard methods given by the American Public Health Association (APHA, 2005). Water quality indices are generally used as a tool to convert a large data set into a much reduced and informative form. Water quality index (WQI) by weighing arithmetic index method is used to assess the suitability for drinking and irrigation purpose. The results were evaluated in accordance with the drinking water quality standards suggested by the World Health Organization and are presented. Chloride, alkalinity, hardness, EC and potassium were found excess in most of the samples. The results are analyzed in the light of USSL diagram and Piper trilinear plot using quachem software. The Piper diagram showed that the groundwater was of mixed Ca-Mg-Cl type followed by Na-Cl and Ca-Cl type. Cement is one of the major industrial activities in Mandideep Town, M.P., India. The waste water let out from this industry is a major environmental concern. Out of 10 units, 05 units are member in common effluent treatment plant (CETP). 02 CETPs are in operation. The remaining 04 units have provided individual effluent treatment plant

(IETP). After treatment the effluent is let into Betwa river a tributary of river Narmada. The quality of effluent discharge from CETPs was monitored for a period one year. The report of analysis reveals that the total dissolved solids, chlorides, bio chemical oxygen demand, and chemical oxygen demand are exceeding the permissible inland surface water discharge standards. The discharge of partially treated effluent has adversely affected the river water quality as well as the groundwater quality. In order to protect the river and the groundwater, Madhya Pradesh Pollution Control Board (MPPCB) have directed all the cement units to provide Reverse Osmosis (RO) plant with Reject Management System (RMS) and recycle the entire treated effluent so as to achieve Zero Liquid Discharge (ZLD).

The effluent samples from 2 different cement industries E(1), E(2) and E(3), were characterized for their pollution potential. The concentration of total dissolved solids (TDS) were found to be 2785, 3500 and 3210 mg/L for the industries1, 2 and 3 respectively. The BOD's and COD's were 242.8 and 542.4 mg/L for E(1), 123.2 and 324.6 mg/L for E(2) and 356 and 738.4 mg/L for E(3). The pH of the effluents were 7.36, 7.8and 7.6 for E(1), E(2) and E(3) respectively. This implies that the effluents were not in acidic region. The nitrate, nitrite and phosphate concentrations were 21, 37 and 30 mg/L, 0.5, 0.8 and 0.8 mg/L and 25, 36 and 20 mg/L fir E(1), E(2) and E(3). The levels of copper (Cu), zinc (Zn), iron (Fe), manganese (Mn), lead (Pb) and chromium (Cr) were higher than the World Health Organization (WHO) standards for effluent discharge. This shows that the textile effluents have severe pollution potentials since the parameters measured have values above the tolerable limits compared to the world health organization (WHO) standards even if the industries promise their treatment. The results also showed that the ratio of COD:BOD were 1.87, 1.90 and 1.84 for E(1), E(2) and E(3) respectively, indicating that the effluents may not be able undergo up to 50 % sub state biodegradation, thus biological processes may not be feasible for the treatment of these effluents.

The high values obtained for the parameters assessed, by those of the concentrations of the solid and of the oxygen demands, call for a pretreatment of the effluent before its discharge into water body. Also, the high conductivity observed shows that sufficient ions are present in the effluents, thus suggesting that the chemical method of coagulation and flocculation may be an ideal treatment method. Effluents discharged by several industries, particularly the cement industry, have led to severe pollution of surface and groundwater sources and soils, which have ultimately affected

the livelihood of the poor. Environmental problems in the agricultural sector caused by cement industrial pollution in Mandideep,Raisen district have been discussed in this study. Averting Expenditure Approach and Contingent Valuation technique have been employed for this purpose. The farm income and distance between farm and polluted river have been found significant in deciding the value of polluted lands. The pollution averting expenditure incurred by the farmers increases with increase in the intensity of pollution. It is mainly the farm income that determines the pollution averting expenditure. The farmers in the study area are well aware about the detrimental effects of pollution and they have expressed their willingness to pay for internalizing the pollution effects even though it is mainly the duty of the polluter.

Ground water analysis of 14 locations in Mandideep was carried out during 2010 to 2011 to evaluate the physicochemical characteristics of water. Water sampling was made on four seasons In the Above mentioned year and analysis of water samples done by using standard methods. The result and thrust problem of high TDS results In this study shows that chloride concentration ranged from 35 to 1525 mg/L and sodium 20 to 800 mg/L .high sodium and chloride concentration makes the ground water unsuitable for drinking purpose. Permissible limit of chloride concentrations in excess of about 240 mg/L can give rise to detectable taste in water, but the threshold depends upon the associated cations. Consumers can however, become accustomed to concentrations of 240 mg/L. Until no major health based guide line value (Indian Standard) is proposed for chloride and sodium In drinking water but prolong consumption to be sensitive issue in the environment.

The above critical studies on water pollution can force us the following conclusion to be strictly implemented

Conclusion

In order to find a solution for the above ground water pollution, MPPCB is now insisting all the E-waste units to provide Reverse Osmosis (RO) plant with complete reject management system and reuse the treated effluent for the process and ensure for Zero Liquid discharge (ZLD)

Acknowledgement

The authors thank MPPCB- Bhopal and management for having completed this work.

References

APHA (2005) Standard methods for examination of water and wastewater American Public Health Association Washington D.C. New York.

Viyas V. (2012) Fishes of Mandideep Raisen District water bodies of Madhya Pradesh, *Research link Journal.* Vol. 38, (17) pp 59-68.

Urban Waste Management and Environment

Dr. R. K. Jain

Mrs Sadhna Jain

Department of Chemistry

Govt. P.G. College, Chhindwara

Like most developing economies, India is starting to generate increasing quantities of Municipal Solid Waste (MSW). The rate of generation of MSW is particularly high in its urban areas. The city of Mumbai generates about 7,500 tons of MSW/day. Most of the MSW generated, is usually disposed off in open dumps and landfills, due to lack of space for landfill and overload of the municipal corporations. In addition to serious air pollution, it also contaminates ground water with increased concentrations of heavy metals and toxic elements. Huge generation rate of MSW, very slow rate of decomposition in landfills, land scarcity, social and environmental problems associated with waste managed create an urgent need for treatment processes that can treat the waste quickly and in an economically feasible and environmentally and socially sustainable manner. In India, the urban population is increasing at a rate of approximately 40% [1], and the urban population in 2010 produced 56 million tonnes of waste. This growth and inadequate waste management facilities add to concerns about emissions such as those of methane from waste, which contribute approximately 3 % of the total anthropogenic GHG emissions [2].

Various biochemical and thermal processes are used for the treatment of the MSW such as landfill, incineration, plasma gasification. Many studies on thermodynamic assessment of MSW conversion technologies have claimed that thermal processes like incineration and plasma gasification are thermodynamically efficient. Thermodynamic efficiency of conversion for these processes is a function of composition of MSW, temperature (process and environment), moisture content, etc. For every society the composition of MSW varies with change in lifestyle and segregation practices.

Landfill In India, most of the MSW generated remains unattended and is simply dumped and exposed to the environment. About 50-90 % of the MSW generated in megacities in India is collected and disposed of unscientifically without segregation

in open dumps and landfills [3]. Land filling is very slow process in which organic fraction decomposition takes varying period from one day to thousand years for a variety of waste constituents. CH4 and CO2 are the major constituents of the Land Fill Gas (LFG). The volumetric/mass flow rate of all the constituents of the LFG are determined using the Landfill Air Emissions Estimation model Developed by USEPA [4]. The Landfill Air Emissions Estimation model equation developed by USEPA is given as follows:

$Q_{CH4} = L_0R(e^{-kc} - e^{-kt})$

QCH4 = Methane generation rate at time t, m3 /yr;

Lo = Methane generation potential = 10 m3 of CH4/Mg refuse; [10]

R = Average annual refuse acceptance rate in Mumbai during active life = 2737500 Mg/yr;

e = Base log, unit less; (e=2.718)

k = Methane generation rate constant = 0.04yr-1; [10]

c = Time since landfill closure, yrs (c = 0 for active landfills); and

t = Time since the initial refuse placement = 5yrs.

Incineration

Incineration is a thermal process in which the MSW is oxidized (combusted) in presence of sufficient (excess) quantity of oxygen. Incineration is carried out at approximately 850 °C. In incineration MSW gets converted into CO2, H2O, Nitrogen oxide, Sulphor dioxide, HCl, along with bottom ash. The composition of the different elements in the feed MSW is as shown in Table.

Composition	**Wt%**
C	48.7
H	5.7
O	29.52
N	1.28
Cl	1.09
S	0.56
Ash	13.15
Total	100

It was reported that if 214,000 tonnes of solid waste a year converted into 69,000 tonnes by sifting out inorganic matter, and drying and palletising the rest to increase its fuel value and byburning this garbage, it was estimated, would produce six megawatts of power per hour, or 5.5 billion units of electricity a year.

It was recently announced that in delhi two more incineration plants are being set up to incinerate another 4,300 tonnes a day. these plants will generate 50 MW of power every hour of the day

Incinerating garbage in Delhi will cost an estimated 200,000 ragpickers their jobs. Throughout the world, moreover, countries are closing incineration plants owing to the hazard they pose to human health. The threats come from particulate emissions that greatly exacerbate lung diseases from bronchitis and asthma to emphysema and lung cancer, and from dioxins and furans in addition to the usual nitrogen and sulphur oxide gases in the flue gas.

The dioxin threat

To residents of Indian cities who have become inured to dust, smoke, diesel fumes, as well as lead and nitrous oxide poisoning, this may sound like just one more addition to the long list of risks they face in their daily lives. But dioxins belong to another level of threat altogether. The word is a generic term for more than a hundred long lasting chemicals that are produced by burning municipal and medical waste and by a few industrial processes. Dioxins are insoluble in water and when they settle on land and water bodies, they are absorbed in their entirety by terrestrial and aquatic vegetation. They travel up the food chain into animals and fish that feed on plants and thence into humans. Since living organisms cannot metabolise them, they are found in very high concentrations in meat, fish, milk and eggs. In human beings, a prolonged exposure to dioxins — through a ‘rich diet’ — impairs the functioning of the liver and the immune and reproductive systems, and raises the incidence of cancer. In sum, dioxins shorten our lifespan. Men have no way of expelling them. Women can, but only by passing them to foetuses in their wombs or breast-feeding their babies. Not surprisingly, the U.S. Environmental Protection Agency, which put together the first comprehensive report on dioxins in 1994, described them as “the most poisonous substances known to man.” In Finland, the government has ordered shut an incineration plant built with the most elaborate safeguards when it found, after two years of its operation, that dioxin levels in the surrounding vegetation had risen by 15 to 25 per cent within a distance of 4 km from the plant.

Independent air samples taken by the Central Pollution Control Board and the Chennai-based non-profit Global Alliance for Incinerator Alternatives (GAIA) in and around India's celebrated incinerator in Okhla, New Delhi, have revealed life threatening levels of particulates and toxic chemicals including dioxins, which was 30-40 times above permissible limits.When it comes to generating energy, incinerators are very expensive and inefficient. Their financial viability relies heavily on various fiscal and financial incentives from government such as capital subsidies, concessional customs duties on the import of machinery and components, excise duty exemptions, relief of taxes, etc. According to the U.S. Energy Information Administration's Annual Energy Outlook 2010, the projected capital cost of new waste incinerator facilities is $8,232 per kilowatt hour. It is twice the cost of coal-fired power and 60 per cent more than advanced nuclear energya

There is a third way of disposing garbage that not only eliminates all pollutants, but turns garbage into gold. This is to gasify garbage. Gasification is an incomplete combustion of organic matter that replaces a large part of the carbon dioxide we get from combustion with carbon monoxide and hydrogen. These two gases are, and have been for a hundred years, the basic building blocks of the world's petrochemicals industry. They are also ideal for driving gas turbines to generate power. From India's perspective, their best feature is the ease with which they can be synthesised into any transport fuel one desires, and into Di Methyl Ether, a condensate gas that is a superior diesel substitute and a complete substitute for Liquefied Petroleum Gas (LPG). Gasification also eliminates the threat from dioxins. When gasification is carried out with oxygen, it produces only seven per cent of the flue gas obtained from combustion. The reaction takes place, moreover, at such high temperatures —1000 to 3,000 degrees Celsius — that dioxins and furans get broken down into their basic elements, losing their toxicity. The release of dioxins from a 24 tonne-per-day plasma gasification plant that has been running for more than a decade in Yoshii, Japan, has been found to be less than one per cent of that released by corresponding incineration plants. Consequently, city and municipal corporations around the world have begun to switch to gasification.
India already has employed plasma gasification technology — for the past four years, two 68 tonnes-a-day commercial plants employing this technology have been disposing of medical and other hazardous wastes in Pune and Nagpur. Since Indian states do not share information, however, these have remained isolated ventures. At present, most

MSW gasification plants abroad produce electricity. But this is giving way to the production of transport fuels.

In 10 years from now, 600 million Indians will be living in cities with more than a million inhabitants who generate at least 600,000 tonnes of garbage a day. Incinerating this garbage will endanger the lives of future generations. Alternatively, this is sufficient to produce more than 35 million tonnes of transport fuel a year and meet half of India's current consumption of the same.

References

Ravindranath N. H and Somashekar H. I. and Nagaraja M. S. and Sudha P. (2005) Assessment of sustainable non-plantation biomass resources potential for energy in India. Biomass and Bioenergy, Vol. 29, Issue 3: pp 178–190

Kerr T. (2008) Turning a Liability into an Asset : Landfill Methane Utilisation Potential in India, International Energy Agency. URL (http://www.indiaenvironmentportal.org.in/files/India_methane.pdf)

Sharholy M. and Ahmad K. (2008) Municipal solid waste management in Indian cities – A review. *Waste Management*, vol. 28: pp. 459–467.

USEPA. (1995) Solid Waste Disposal. URL (http://www.epa.gov/ttn/chief/ap42/ch02/draft/d02s04.pdf)

Potassium Supplying Power of a Black Soil Amended with Spent Wash and Post –Methanation Effluent

Rouf ur Rafiq
Research Scholar
School of studies in Environment Management
Vikram University Ujjain, M.P. 456010

Abstract

A study was conducted to assess the Potassium supplying power of a black soil amended with spent wash (SW) and Post Methanation effluent (PME) at Indian Institute of Soil Science, Bhopal. The water-soluble K content ranged from 0.17 to 3.95 cmolkg^{-1} , Exchangeable K content, ranged from 0.68 to 8.56 cmolkg^{-1} ,non Exchangeable ranged from 0.68 to 8.56 cmolkg^{-1} and mineral-K varied between 29.3 and 33.64 cmolkg^{-1} soil. As compared to other forms of K in soil, mineral-K was more or less stable and was not affected by various treatments. Total K content of soil varied 32.13 to 51.37 cmolkg^{-1} increased tremendously with the application of PME and SW. Step-K, was maximum in the first extraction and varied from 0.7 to 2.1 cmolkg^{-1}.Consant rate K(CR-K) varied from 0.01 to 0.03 cmolkg^{-1} .Total extractable K and step K had positive correlation with each other. This indicated that the more the amount of step K the more will be the plant utilizable non-exchangeable K from micaceous minerals. The study suggests that both the distillery effluents Post Methanation effluent (PME) and Spent Wash (SW),had great potential of supplying K and other plant nutrients to the soil and might be treated as a substitute to chemical fertilizers, if applied up to a safe prescription limit.

Keywords: Forms of Potassium, mineral K, step and constant K, SW and PME.

Introduction

Potassium being one of the most dynamic nutrient , its availability in different forms and combinations depends upon the equilibrium and kinetics reaction between forms of soil K, soil moisture contents, temperature and the concentrations of bivalent cations in solution and on the exchanger phase (Sparks and Huang 1985) and the various intrinsic and extrinsic components of soils such as mineralogy, texture, cation

exchange capacity(CEC),clay content, organic matter etc.Various attempts has been made to assess the status of potassium (Pati-Ram and Prasad 1984, Bhaskar *et al.* 2001, Singh and Datta 1986, Singh *et al*. 1999 , Basumertary and Borodoloi 1992) and its availability in different forms in the soils. The capacity of soils to supply potassium from exchangeable and non-exchangeable from is not easy determined because of the reversible transformation from one form to the other form that is assumed to occur in the soil. Owing to the complexity that existed in the soil system, none of the methods are universally applicable for all the soil. Haylock (1956) introduced the step-K and contest rate—K (CR-K) as a measure plant utilizable non-exchangeable—K reserves in soil. Several workers (Patra and Khera, 1982; Subba Rao et.al. 1983) have adopted step—K as a measure of K supplying capacity of soil. With these backgrounds information, the present investigation was taken up to study the K supplying power of black soil ẍ method with spent wash and post-methanation effluent.

Materials and Methods

Surface (0-15 cm) soil sample were collected from a field experiment with soybean—wheat system, which received continuous application of different dosages of spent wash (SW) and post-methanation effluent (PME) for five cropping cycles from Indian Institute of Soil Science, Bhopal. The following treatments were selected for the study:- Control, NPK+FYM, 2.5 cm PME, 5.0 cm, PME, 10 cm, 15cm PME 2.5 cm SW and 5.0 cm SW.

Different extracting forms of K, viz, water-soluble and exchangeable K (Shaking and centrifugation method—Knudsen et.al. 1982) Non-exchangeable K was estimated by boiling the soil with 1N HNO_3. Total K was determined by digesting the soil sample with H_2O_2, 40% HF, H_2SO_4, HNO_3, 60% $HCLO_4$. After evaporating to dryness the contents were added 10 ml 1N HCL & kept at 70^0C for 1 hour. The K-release characteristics, step K and constant rate K (CR-K) were determined by repeated boiling with 1N HNO_3 for ten times at 1:10 soil solution ratio at ever tem minutes interval (Haylock 1956 as modified by Maclean 1961). The amount of K supply gradually attained a content value termed as ẍ constant rate K (CR-K). Step K in each extraction was computed from difference between the K extracted in the particular extraction and CR-K. the sum of the step-K in all the extraction was termed as total step K where as the total amount of K released at the end of ten extractions was termed as

total extractable K.

Results and Discussion

Soil texture varied from sandy loam to sandy clay with organic carbon content 4.1 gkg^{-1} Calcium Carbonate content 21.3 gkg^{-1}. The soil is alkaline with pH 7.9.

Water soluble Potassium (WS-K)

Water soluble K content ranged from 0.17 to 3.95 cmol kg^{-1} in the surface layer (-0-15) of soil (Table 1.). The higher the level of PME or SW addition, the higher was the water soluble K content, the highest being 3.95 cmol kg^{-1} amended with 15cm post Methanation effluent. The lower value of water soluble K content was found 0.17 cmol kg^{-1} in control. Both PME and SW are rich in K and hence application of both results in ẍ higer level of K enrichment in soil.

Exchangeable-Potassium (EX-K)

Exchangeable K content, in the present investigation ranged from 0.86 to 8.56 cmol kg^{-1} in the surface layer (0-15Cm) (Table 1), being lowest in control and highest at 15 cm PME application, like water soluble K exchangeable K content increased with the level of PME and SW addition. Among various forms, the highest improvement took place in exchangeable K due to continuous application of PME and SW over five years.

Non-Exchangeable Potassium (NEX-K)

Added K through PME and SW also contributes significantly in increasing the non-exchangeable K pool of the soil indicated by boiling 1 N HNO_3 extractable K. Non-exchangeable K increased from 1.95 cmol kg^{-1} in control to 5.32 cmol kg^{-1} in plots receiving 15 cm PME, and to 2.83 cmol kg^{-1} in plots receiving 5cm (Table 1).

Mineral Potassium (M-K)

Mineral K as estimated different between total K and water-soluble plus exchangeable plus non-exchangeable K varied between 29.3 and 33.6 cmol kg^{-1} soil (Table 1). As compared to other forms of K in soil, mineral-K was more or less stable and was not affected by various treatments. This clearly indicated that mineral-K content of soil was not much influence by application K-bearing distillery effluents.

Total Potassium (T-K)

A perusal of data in (Table -1) clearly indicates that total L contents of soil increased tremendously with the application of PME and SW, and the increase was higher with high level of application. Total K increased from 32.13 cmol kg^{-1} in control 51.37 cmol kg^{-1} in 15 cm PME treatment and 42.19 cmol kg^{-1} 15 cm PME treatment and

to 42.19 cmol kg^{-1} in 5 cm SW treatment. Very high content of K in both PME and SW might have resulted such as enrichment of total K and other forms of K in soil. Because of K enrichment in soil due to application of Pme and Sw, fertilizer K application to any crop may be avoided.

Table-1 ***Different forms of K in soil as influenced by PME and SW addition (cmolkg^{-1}***

Treatment	Water soluble	Exchangeable	Non-Exchangeable	Mineral	Total
Control	0.17	0.73	1.95	29.28	32.13
NPK + FYM	0.25	0.68	1.16	29.9	32.99
2.5 CM PME	0.63	2.65	2.93	32.59	38.8
5 cm PME	0.93	3.64	3.07	32.64	40.28
10 cm PME	2.02	6.64	4.19	33.64	46.49
15 cm PME	3.95	8.56	5.32	33.54	51.37
2.5 cm PME	1.02	2.68	2.14	31.05	36.89
5 cm PME	2.01	6.93	2.83	30.42	42.19

Step K and constant rate K

Step K provides estimation of mineral K that is potentially available in due course of time under long term cropping, where as constant rate K indicates inter layer K release from clay structure (Haylock 1956). Step K was maximimum in the first extraction and varied from 0.72 to 2.1 cmol kg^{-1} in control and in 10 cm PME treatment. The maximum value of step K was 4. 15 cmol kg^{-1} in 5.0 cm SW. NPK+FYM, it 1.87 cmol kg^{-1}. The respective values of step K plus 0.1 M HNO_3 extracted K were 9.73, 2.7 and 2.81 cmol kg^{-1} in 10 cm PME, control and NPK+FYM (Table 2 and 3). The values

of constant rate K (CR-K) varied 0.01 to 0.03 cmol kg^{-1}. Maximum value of Cr-K was found 0.03 cmol kg^{-1} in both 2,5 cm PME and 10 cm PME treatment. Minimum value of CR-K were found 0.01 cmol kg^{-1} in 2,5 cm SW and 5.0 cm PME treatments. In PMK+FMY it was found 0.02 cmol kg^{-1} (Table 3). It indicates that with the application of PME and SW the potential of soil to release K increased tremendously.

Table - 2: ***Release of K at different extractions by boiling 1N HNO_3.***

Treatment	*1N HNO_3*	Ist	2nd	3rd	4th	5th	6th	7th	8th	9th	10th
Control	0.85	0.7	0.69	2.0	0.07	0.05	0.03	0.02	0.02	0.02	0.02
NPK + FYM	0.94	0.8	0.37	0.33	0.11	0.1	0.05	003	0.02	0.02	0.02
2.5 cm PME	2.47	1.4	1.01	0.62	0.23	0.12	0.14	0.07	0.03	0.03	0.03
5.0 cm PME	22.9	0.8	0.74	0.47	0.15	0.12	0.05	0.03	0.01	0.01	0.01
10 cm PME	558	2.1	1.07	0.37	0.17	0.16	0.12	0.05	0.03	0.03	0.03
15 cm PME	6	1.76	0.74	0.46	0.32	0.08	0.07	0.03	0.02	0.02	0.02
2.5 cm PME	2.19	1.1	0.5	0.38	0.16	0.14	0.03	0.01	0.01	0.01	0.01
5.0 cm PME	4.24	0.8	0.33	0.19	0.07	0.06	0.03	0.02	0.01	0.01	0.01

Table – ***3: Non- exchangeable soil K removed in successive extraction of soil sample with 1N HNO_3***

Treatment	0.1N HNO_3	CR-K Constant Rate	Total extractable K	0.1NHNO_3 +Total extractable K
Control	0.85	0.02	1.85	2.7
NPK + FYM	0.94	0.02	1.87	2.81

2.5 cm PME	**2.47**	**0.03**	**3.65**	**6.21**
5.0 cm PME	**2.29**	**0.01**	**2.38**	**4.67**
10 cm PME	**5.58**	**0.03**	**4.15**	**9.73**
15 cm PME	**6**	**0.02**	**3.52**	**9.52**
2.5 cm PME	**2.19**	**0.01**	**2.35**	**4.54**
5.0 cm PME	**4.24**	**0.01**	**1.51**	**5.75**

Conclusion

The study clearly indicates that due to application of Post Methanation effluent (PME) and Spent Wash (SW), potassium content of soil in all forms except mineral form got enriched. Due to this enrichment, the potassium supplying power of the soil was improved and hence application of potassic fertilizers in such fields may not be required. The study suggests that both the distillery effluents Post Methanation effluent (PME) and Spent Wash (SW),had great potential of supplying K and other plant nutrients to the soil and might be treated as a substitute to chemical fertilizers, if applied up to a safe prescription limit.

References

Deshmukh, V.N. and Rangacharya, R.P. (1992) Potassium supplying power of soils of Western Vidarbha. *Journal of Potassium Research,* **8,** 26-30.

Dhillon, S.K. and Dhillion, K.S., (1994) Forms of potassium ion some bendimark soils of india. *Journal of Potassium Research,* **10**(1), 1-11.

Dhillon, S.K., Sidhu, P.S., Dhillon, K.S. and Sharma, A.P. (1985) Distribution of various potassium forms in some benchmark soils of north–west India. *Journal of Potassium Research,* **12,** 154-165.

Haylock, O.F. (1956) A method for estimating the availability of non – exchangeable

potassium. *Proceedings of 6th International Congress of Soil Science* **8,** 402-408.

Jackson, M.L. (1973) *Soil chemical analysis,* prentice Hall of India pvt. Ltd., New Delhi.

Maclean, A.A., Doyle, J.J. and Hamlyn, F.G. (1957) Soil potassium supply as shown by green house and chemical tests. *Canadian Journal of Soil Science* **37.**

Maclean , A.J. (1961) Potassium supplying power of some Canadian soils. *Canadian Journal of Soil Science* **41,** 201 – 206.

Mathews, B.C. and Smith, J.A. (1957) A percolation method for measuring potassium supplying power of soils. *Canadian Journal of Soil Science,* **37.**

Pal, A.K. Patnaik, M.R., Santra, G.H. and Swain, N. (2001) Studies on potassium releasing power of laterite soils of cuttack dist. *Journal of the Indian Society of Soil Science* **49,** 70 – 74.

Pal, S.K. Tarafdar, P.K., Mukhapadhyay, A.K. (1997) Potassium supplying power of some soil series of West Bengal. *Journal of the Indian Society of Soil Science* **45**(1), 38 – 43.

Singh, Kaptan. Malik, R.V.S and Singh. Vinay (2001) Distribution of forms of potassium in Alluvial soils. *Journal of Potassium Research,* **17,** 116-118.

Singh, O.P. and Datta, B. (1986) Forms of Potassium in some soils of Mizoram. *Journal of the Indian Society of Soil Science* **34,** 187 – 190.

Srinivasa Rao, Ch., Bhanu Prasad V., Prasad, P.R.K., Bansal, S.K., Subba rao, A. and Takkar, P.N. (1997) An assessment of potassium reserves and K desorption in micaceous Alfisols and Inceptisols unig conventional estimates and electroultra filtration. *Journal of the Indian Society of Soil Science* **45,** 44 – 47.

Srinivasarao, Ch., Vittal, K.P.R., Tiwari, K.N., Gajbhiye, P.N., Kundu, Sumanta., Pharnde, A.L., Yellamanda, Reddy, T. and Shanker, M.A. (2006) Potassium supplying characteristics of twenty – one soil profiles under diverse rainfed production systems. *Journal of the Indian Society of Soil Science* **55,** 14– 22.

Zende, G.K. (1978) Potassium dynamics in black soils. In: Proceedings *of Symposium On Potassium In Soils And Crops* (G.S. Sekhon ed.) Potash Research Institute of India, Gurgaon, 51-68.

The Environmental Impact of Industrialization in East Asia and Strategies toward Sustainable Development

Vicky Ratan Sharma
(Student of M.A.Economics)
Govt. Pench Valley P.G. College, Parasia
E-mail: vrsharma10@gmail.com

Abstract

The East Asian economy has been growing fast in recent years and environmental stresses are building up rapidly. Transboundary air pollution, water shortages, drinking water contamination, freshwater and marine pollution, deforestation, climatic disasters, and other environmental problems are becoming serious threats to the well-being of people in this densely populated region. The ESI (Environmental Sustainability Index) reported by the World Economic Forum in 2005 is a good indicator of the environmental status of the region; most East Asian countries ranked at the bottom. East Asia is not moving toward a sustainable society and the environment will not sustain the current rate of economic development for long. The traditional culture of East Asia used to be sustainable, so we can learn much from our traditions. Land use should be planned from an ecological point of view so as to best preserve the land's productivity and stability. There should be definite goals as to where and how much to preserve the three important ecological bases: forests, coastal wetlands and agricultural farms. The forest is the base for the terrestrial ecosystem, including flood control, water resources, and climate; the coastal wetland is the base for the marine ecosystem; and farmland is the base for producing food. Within these defined goals, limits should be set on how much land can be utilized for activities like urban development, manufacturing, and recreation. Limits on the pollution load resulting from such activities should be set so as not to irreversibly damage the environment. Economic development should be planned to allow the use of energy and resources only after satisfying these constraints.

Keywords: sustainability, sustainable community, sustainable energy policy, ecological land use, industrialization and environment, East Asian environment.

I. Traditional Environmental Policy in East Asia

Traditionally, East Asians used to revere nature and observe strict environmental ethics. They did not regard nature as a resource for human use but viewed human beings as part of nature, and sought a life in harmony with it. They regarded such acts as destroying or polluting nature or the wasteful use of resources as crimes that would incur divine wrath. Such traditions were well preserved in Korea until the late 19th century. During the Chosun Dynasty (1392-1897), environmental crimes were punished under the constitution. Illegal logging of trees, destruction of forests, dumping wastes such as ash and manure, and polluting rivers were all acts subject to severe punishment. According to the constitution, for example, the penalty for illegal logging in Forbidden Mountains (so designated to protect green areas, equivalent to Green Belts in South Korea and England today) was ninety lashes plus restoration of the damaged trees. However, the actual penalties enforced by ordinances were harsher: the penalty for illegal logging of a pine tree was one hundred lashes, that for two trees or more was one hundred lashes plus lifetime military service, and that for ten trees or more was one hundred lashes plus deportation to Manchuria (Ministry of Interior, ROK 1978). Dumping of ash or manure was punished with thirty to eighty lashes, and damaging forests by letting cattle loose, with one hundred lashes (Ministry of Environment, ROK 1990).

Houses and towns were built so as to minimize damage to the environment and the use of energy and resources. Houses were usually built facing south with mountains to the north to fence off cold winds and maximize the use of sunlight. The Korean *ondol* is a good example of thrifty use of energy: it is a heating system which warms up a house using exhaust-gas channels built under the earthen floor, connected to the cooking fireplace in the kitchen. Just cooking twice a day was enough to warm up the house all day long. It is one of the most efficient heating systems in the world.

Villages and cities were carefully sited to minimize their environmental impact, especially water pollution. Villages were usually built on the foothills of mountains below thick forests such as bamboo forest, which protected the villages from soil erosion and water pollution. Agricultural fields were located downhill from the villages

so that human wastes could be used as fertilizer. Rice paddies, an efficient wetland to remove nutrients, were located at the lowest places. Runoff waters were further filtered by vegetation strips before entering the water channels, so that most of the surface water was drinkable. The Han River, which flows through Seoul, used to be drinkable throughout the Chosun Dynasty, and even as recently as 1960.

Cities and towns were not built on fertile plains, which were saved for farming. The urban population was controlled: the population of Seoul reached 200,000 in 1660 and remained the same until the end of the 19th century (Seoul Metropolitan Government 1988). This was probably regarded as the maximum allowable population that could sustain the forest around Seoul, utilize wastes as fertilizer on nearby farms and conserve the water quality. This population size now is widely accepted as the ideal population for ecological cities throughout the world.

People were frugal in their use of resources and avoided pollution to the maximum extent possible. All resources were recycled and there were no wastes to be disposed of. Vegetable gardens and domestic animals were for recycling food wastes. Night soil and ashes were used for compost. Dishwashing water was used to boil straw for cattle fodder. Even pouring hot water on soil was regarded as sinful because people thought it would kill the soil. Villagers used to establish financing clubs to plant trees in the mountains.

The top priority policy for government throughout Korean history was “the management of mountains and waters.” This may be the reason why Korea used to be known as “the land with rich forests and without flood or famine” or “the land with clean water and fertile soil.” Such environmental ethics were once the norm throughout East Asia before the modern age of industrialization.

II. The Environmental Impact of Industrialization in East Asia

The traditional Asian values regarding nature began to disappear with the Westernization of the region in the late 19th century. Japan took the initiative in East Asia when the Meiji government was established in 1868. The first priority of the Meiji government was to strengthen its military forces and industrialize in the footsteps of the European countries. The industrialized powers began to exploit the East Asian region backed by military force, and the powerless governments of the region lost control of their territories.

The first resources to be exploited were timber and minerals, which resulted in deforestation and environmental devastation in the mining areas. For example, Korea lost 70% of its forest resources during the Japanese colonial period between 1910 and 1945 and many mountains became barren (Kim 1988). The Ashio copper mine in Tochigi prefecture, Japan, offers a good example of mine pollution during this period. A copper smelter built there in 1887 was closed in 1972. But the entire village of Yanaka had to be demolished due to heavy metal pollution and the mountain around the smelter still remains barren (Shoji and Sugai 1992). Environmental disasters from industrial pollution such as Minamata disease, itai-itai disease and Yokkaichi asthma also erupted in Japan.

As the East Asian economy has been growing very fast in recent years, environmental stresses are building up rapidly. Transboundary air pollution, water shortages, drinking water contamination, freshwater and marine pollution, deforestation, climatic disasters, and other environmental problems are becoming serious threats to the well-being of people in this densely populated region. The environmental status of the region is well indicated by the ESI (Environmental Sustainability Index) reported by the World Economic Forum in 2005. Most East Asian countries ranked at the bottom: North Korea was 146th among 146 countries evaluated, Taiwan 145th, China 133rd, South Korea 122nd, and India 101st (Yale Center for Environmental Law and Policy et al. 2005). This means that East Asia is not moving toward a sustainable society and that the environment will not sustain the current rate of economic development for very long. Some of the prominent environmental impacts of industrialization observed in this region are as follows.

Transboundary Air Pollution

The most noteworthy transboundary air pollution problems observed in this region are the “yellow dust” storms in Northeast Asia and Indonesian forest fire smoke in Southeast Asia.

Yellow dust from the deserts of China and Mongolia is observed in most East Asian countries, but due to the westerly winds prevailing in the region, areas to the east of those deserts -- eastern China, South and North Korea, and Japan -- are the most affected. The rapid desertification of northern China, mainly due to overgrazing in recent years, is aggravating the problem: the frequency and intensity of the dust storms

are getting worse each year. The PM-10 level in South Korea reached 2770 μg/m^3 due to dust storms in 2002 and again in 2006 compared with the 24-hr average standard of 150μg/m^3. An environmental emergency was declared and schools were closed on those occasions. Such storms are a life or death struggle to people living in areas near their sources.

As China develops into the world's manufacturing center, air quality in this region is also deteriorating rapidly. The amount of air pollutants generated in the region is the world's largest. The burning of low-quality coal that contains high levels of fluorides and heavy metals is the main source of air pollution in China. Such coal is widely burned to dry agricultural products, which absorb the fluorides and other pollutants emitted. A study reported that the IQs of children aged 8-13 in villages with high occurrences of fluorosis from burning this coal were about ten points lower than those in other areas (Li et al. 1995). It is reported that more than 40 million Chinese people suffer from symptoms of fluorosis caused by burning coal, making it the most widespread epidemic in China (Lee 2005). As the air pollution becomes regionalized, the soils and waters of the entire Northeast Asian region will also be affected (Kim 1993). Japan even claims that more than half of the acid deposits in Japan come from China.

Since 1977, Indonesian forest fire smoke has become a regular environmental event in Southeast Asian countries like Indonesia, Malaysia, Singapore, Brunei and Thailand. In recent years Malaysia has declared a state of emergency in coastal areas heavily affected by this smoke. Public facilities like airports and schools have been closed. The main cause of the forest fires is the commercial burning of forests to expand palm oil plantations or plantation forests in Kalimantan and Sumatra (Japan Environmental Council 2005).[1)] Burning is the cheapest way to create new farms. Since many of the companies involved are multinational, tensions have risen between Asian neighbors over the question of which countries and which companies are responsible for the fires (International Herald Tribune 2004). The smoke gets worse in dry weather, especially when coupled with the El Nino phenomenon.

1) Formerly, indigenous farmers who practice shifting agriculture used to be falsely blamed for these fires. These farmers depend on the forest for a living themselves, and are not about to destroy their source of livelihood. They require only small patches of farmland and know exactly when and how to burn vegetation for their farming needs.

Air pollution in the major cities of East Asia ranks among the worst in the world and is claimed to be responsible for the deaths of about 500,000 people each year, according to WHO (Mason 2005).

Deforestation

The tropical forests of Southeast Asia are disappearing rapidly. During the ten-year period from 1990 to 2000, Indonesia's forest decreased by 1.2% (from 118.1 million to 105 million ha), Malaysia's by 1.2% (from 21.7 to 19.3 million ha), Myanmar's by 1.5% (from 39.6 to 34.4 million ha), the Philippines' by 1.5% (from 6.7 to 5.8 million ha) and Thailand's by 0.7% (from 15.9 to 14.8 million ha), which are losses much higher than the world average of 0.2% during the same period (Japan Environmental Council 2005). The Philippines and Thailand, once timber exporters, now have become importers. The main causes are the development of commercial plantations for oil farms and coffee, forest fires associated with this development, commercial logging, both legal and illegal, and urban development.

Deforestation is advancing rapidly in Northeast Asia as well. The deforestation in northern China and Mongolia is mainly due to overgrazing, which is aggravating the yellow dust storm phenomenon, while deforestation in Siberia is due to commercial logging.

Destruction of Marine Environment

The Yellow Sea, surrounded by China and the Korean Peninsula, is highly vulnerable to pollution. It is shallow, only 44 meters deep, semi-closed, and relatively stagnant, so that its carrying capacity for pollution is very limited. The major sources of pollution of the Yellow Sea are the Han River carrying wastes from Seoul City, the Yellow River and Yangtze River carrying enormous amounts of suspended solids and other pollutants, coastal cities like Tianjin, Dalian, and Chengdu, and oil spills from oil exploration operations and shipwrecks. Both South Korea and China are busy reclaiming tidal flats, which had provided excellent habitats for marine life, to develop coastal areas of the Yellow Sea. Removing the tidal flats also reduces the pollution assimilation capacity of the sea. The tidal flats are known as an excellent natural waste treatment plant. When freshwater is discharged into the coastal water, the pollutants readily settle down into sediments by the mechanism of coagulation. Organic sediments are readily assimilated by tidal organisms. Inorganic and toxic pollutants such as heavy

metals settle as inorganic complexes which are relatively less toxic than in freshwater and are embedded under the sediments.

If China's per-capita discharge reaches the level of Korea, the Yellow Sea will be just like sewage.[2)] The accumulation of non-degradable pollutants such as heavy metals and toxic organic chemicals will be a serious threat. The Bohai Bay, which receives wastes from Beijing, Tianjin, and Dalian, already is heavily polluted and its color has turned black.

The coastal marine environment in the Southeast Asian region stretching from India to the Philippines is being disturbed by the development of fish farms, especially shrimp and eel farms, a large portion of which are built on mangrove forests. Asia produces about 80% of the world's farmed shrimp and 90% of the eel (Japan Environmental Council 2005). The coastal wetlands, especially the mangroves, are the spawning and nursery ground for marine organisms and hence a very important base for the marine ecosystem. The over-supply of nutrients and chemicals such as antibiotics is a threat to the coastal ecosystem. It also makes the coastal areas vulnerable to tsunami, as evidenced by the South Asian tsunami disaster in 2004. All heavily developed areas such as beach resorts and fish farms were hard hit by the tsunami, while well-preserved areas such as the Maldives, only 60 cm above sea level, were hardly affected. Bangladesh was also not hit hard by the tsunami because of its well-preserved mangroves.

Destruction of coastal wetlands throughout East Asia is also jeopardizing the migratory shorebirds. Their flyways stretch from Australia to Siberia (University of East Anglia and Kyunghee University 1988). Inter-tidal organisms in the tidal flats are their main food source during migration; in the spring and fall, the birds stop at these wetlands and acquire the energy for further migration. The removal of tidal wetlands is a serious threat to these birds.

Water Shortages and Drinking Water Contamination

Recent studies show that more than 100 million people in Bangladesh, West Bengal (India), Vietnam, China and other South Asian countries drink and cook with

2) At present, South Korea is discharging about 460,000 tons of BOD per year into the Yellow Sea. If we assume that China will discharge 30 times more BOD into the sea in the future based on the fact of its population being 30 times that of South Korea, then the total BOD discharge would amount to 14 million tons per year. This is equivalent to 800 grams of BOD loaded to 1 m^3 sea water in a year, which is an enormous pollution load. The Shihwa Lake was seriously polluted with a load of 50 g BOD/m^3-yr.

arsenic-contaminated water, which can cause skin lesions, internal cancers, respiratory illnesses, cardiovascular diseases, and neurological problems (Cheng 2005). In Bangladesh, about one third of the wells among nearly five million tested are considered unsafe (van Geen 2005). This is due to the excessive use of tube wells as safe surface waters become scarce. When the tube wells pump ground water through geological layers rich with arsenic, the toxic metal is leached and accumulates in the wells, especially when the infiltrated waters become polluted. These contaminated wells should be shut down immediately and safer wells should be provided. It is known that the quality of well water differs from spot to spot even within a single village, so that relatively safer wells can be found near the contaminated wells (Cheng 2005). Technologies should also be provided to the villagers to filter out the pollutants.

With rapid economic development, water use increases rapidly and many countries are facing water shortages. For example, water demand in northern China is very rapidly outpacing the supply (World Resources Institute 1992). The groundwater table in Beijing is sinking at the alarming rate of 1 meter each year. More than 50% of the river waters in northern China, including the Yellow River, are already so heavily exploited that it is almost impossible to draw more water from them. The Chinese government has therefore developed a very ambitious plan to divert water from the south to the north, which will have a tremendous environmental impact on the sea as well as on terrestrial ecosystems throughout the territory of China (Yu 2005).

Accumulating Pollutive Industries

During the process of industrialization, the import of technology and capital from industrialized countries is inevitable. Newly developing countries are apt to accumulate more pollutive industries because of loose environmental standards. In this respect many countries in the East Asian region are very likely to accumulate pollutive industries as rich countries filter out such industries and transfer them to newly developing countries (Kim 1990).

Lawrence Summers, former U.S. Secretary of the Treasury, once circulated a memorandum to his colleagues while he was a chief economist at the World Bank. He insisted that pollution should be exported to developing countries, and listed three reasons. First, the cost of health-impairing pollution is lower because labor costs are cheaper in developing countries. Second, the impacts of pollution are less pronounced in

developing countries because they are under-polluted. And third, the demand for a clean environment is lower, because life expectancy is shorter in developing countries and pollution-related diseases like cancers are therefore less likely to occur in people before they die of other causes (Foster 1993).

Such an approach is clearly reflected in the following example. A rayon (a synthetic fabric) plant infamous for a toxic gas called CS_2 used to operate in the United States, injuring many employees. When the compensation for these injuries became expensive, the plant was exported to Japan. The plant was later exported to Korea and finally to China, leaving behind serious health damage, including mortality, to employees and neighbors of the plants in each of these countries.

Without strict environmental control, it is very likely that East Asia will accumulate the worst pollution in the world.

III. Policy Recommendations for Sustainability

East Asia is emerging as the most environmentally vulnerable region in the world, a trend that seriously jeopardizes the well-being of people in this populous region. But the imminent environmental threat is not limited to East Asia alone; it is a global issue. As the global economy continues its rapid growth, it is becoming evident that the earth cannot sustain such economic growth for very long. The world economy grew 50-fold during the last century (World Commission on Environment and Development 1987). Industrialization has been advancing especially fast since World War II: in just a half century the global economy grew 15-fold (World Bank 1993), fossil fuel use 25-fold (Brown et al. 1994), and industrial production 40-fold (Curran 2000). It is obvious that the earth does not have the resources to support such growth for long. Petroleum production is estimated to peak sometime around 2010 and be depleted by the 2050s, and coal by the 2100s (Kim et al. 1997). The known reserves of mineral resources are just as limited. Global warming, stratospheric ozone depletion, desertification, destruction of habitats, extinction of species and accumulation of pollution are all warning signs about the current pace of economic development. The global economy cannot grow forever when the planet itself is not growing. The only thing that grows incessantly in this world is cancer, and the result of cancer is death.

Principles of Sustainable Development

Since the fundamental causes of environmental threats are clearly understood, the necessity of sustainable development is equally manifest. The principles of sustainable development may be summarized as follows.

First, what is the solution if energy resources such as oil, coal and uranium are so limited? The solution is in renewable energy. Second, other resources are also extremely limited. Even water, which used to be regarded as unlimited, is becoming scarce. What is the solution? Limited resources should be recycled. Third, this planet cannot carry the present environmental burden indefinitely. What is the solution? Environmental pressure must be contained within the planet's carrying capacity.

Since present-day development policies, which demand a continuous supply of resources and the sacrifice of the environment, are destined to fail, we must look for new ways of development. The traditional culture of East Asia used to be sustainable, so we can learn much from our traditions. This does not mean that we must go back to our past, but that we can learn from the philosophy of our traditions and formulate new ideas for sustainable development.

Strategies toward Sustainable Development

The unbridled land development that has accompanied rapid industrialization in East Asia may cause irreversible damage to the environment, jeopardizing the subsistence of people in the region. Land use should be planned from an ecological point of view so as to best preserve the land's productivity and stability. In that sense, there should be definite goals as to where and how much to preserve the three important ecological bases, namely, forests, coastal wetlands and agricultural farms.

The forest is the base for the terrestrial ecosystem, including flood control, water resources, and climate. Many natural disasters observed in East Asia, including the ever-worsening yellow dust storms, shrinking lakes and rivers, floods, draughts, and avalanches, have resulted from uncontrolled deforestation.

The coastal wetland is the base for the marine ecosystem. Marine productivity is decreasing rapidly in East Asia, due mainly to the removal of coastal wetlands. Japan has already removed over 80% of its coastal wetlands and South Korea over 50%. In order to maintain marine productivity, it is essential to preserve these wetlands.

Food production should never be neglected for the sake of industrialization. Preserving farmlands is essential to feed the enormous population of East Asia. However, the globalized economy is ruining the agricultural industries of this region. In some countries like Japan and Korea, the food self-sufficiency rate has fallen below 30%. In such circumstances, an economic crisis can seriously jeopardize the survival of people in this region, as evidenced by North Korea's situation in recent years. North Koreans are starving to death as a result of the country's economic failure following the collapse of the communist bloc, including the former Soviet Union. Securing farmlands sufficient to feed its population is essential if a country is to survive in times of economic failure or oil crisis.

Within the established goals, limits should be set on how much land can be utilized for such activities as urban development, manufacturing, and recreation. Moreover, limits on the pollution load resulting from such activities should be set so as not to irreversibly damage the environment. Economic development should be planned to allow the minimum use of energy and resources only after satisfying these constraints.

Local communities should be developed in conformity with ecological principles. Cities like Los Angeles used to be viewed as ideal models to follow. Spider web-like networks of highways and roads are built in such cities to facilitate the flow of people, energy and resources throughout the area, which eventually encourages the wasteful use of energy and resources and the dumping of wastes on poorer neighbors. Local communities should be built so as to minimize the use of energy and resources and to maximize the recycling of materials, as in natural ecosystems, which will naturally lead to minimizing the impact on the environment. Ecological land-use planning is far more efficient than the technological control of pollution in improving the environment. Each local community should be conceived as an efficient ecological unit.

The centralized energy systems adopted by most East Asian countries are inefficient. The energy efficiency of large power plants located in remote areas can reach only a bit over 30% because the heat they generate cannot be utilized. If loss during distribution is included, the energy efficiency of such plants falls far below 30%. If the electricity is used for heating, overall efficiency is below 15%. If small-scale energy plants are located near demand sites (as in a distributed energy system), efficiency can be elevated to over 80% (Lovins 2005). Moreover, in order to achieve

energy security, we need to depend less on oil and nuclear power, which are governed by the superpowers of the world. Global political instability seriously jeopardizes energy security. This is another reason why renewable energy should be promoted.

Automobile-oriented transportation systems cannot solve the traffic problems of East Asian metropolises like Bangkok and Seoul. Trains should be the primary means of intercity transportation as well as of intracity mass transit. Parking spaces in city centers need to be reduced and parking fees raised to solve the problem of heavy urban traffic.

Until the end of the 19th century in East Asia, each local community is believed to have functioned as a sustainable ecological unit: energy was supplied from nearby forests without creating irreversible damage, and wastes from urban areas were returned to farms without polluting the water systems. In a healthy ecosystem, renewable energy is used to make the system function, and materials are completely recycled. Human settlements should be restructured so as to maximize their efficiency of energy and material use, and to minimize their environmental impact.

The industrial structure should be reformed so as to be environmentally friendly. Those countries in East Asia that have undergone rapid economic growth in recent years have generally developed energy-intensive and polluting industries that developed countries now shun. Greater efforts should be made to minimize energy use and pollution, as there are in fact many energy-efficient, environmentally friendly technologies available for those industries.

A case study of South Korea shows that improving energy efficiency in the industrial, transportation, residential, commercial and electricity generating sectors using technologies currently available on the world market could reduce energy use by 32.5% and greenhouse gas by 37.4% by 2020, and still meet the economic growth targets set by the government (Kim JW 2003). Only economically feasible technologies, with payback periods of less than five years and energy savings greater than capital costs, were considered in the study. The efficiency measures used in the analysis were based on the U.S. Department of Energy's technology assessments (U.S. Energy Information Administration 1998). If we factor in future technology innovations and system approaches, including improvements in land use, urban structure, transportation systems and energy systems, the potential for energy savings and pollution reduction will be even higher. Western European countries such as Great Britain, Germany and

Denmark plan to reduce their energy use by more than half by the mid-21st century. The same targets are applicable to East Asian countries.

Substances never disappear but only change their form and move from one environmental medium to another. Therefore, environmental problems should be solved using a "holistic" approach. Damage to the ecosystem, air pollution, water pollution, solid wastes, soil pollution and other environmental problems should not be seen as independent issues. They are all interrelated. Every human activity involves certain environmental disturbances, but precautions should be taken so as to confine the problems to as minimal a time span and space as possible. Priorities should be set among sectors of the environment. High priority should be given to protecting environmental systems that are impossible or difficult to restore. In that sense, the first priority should be protection of the terrestrial and marine ecosystems because they are so difficult and take so long to restore. The next priority should be protection of the atmosphere because it is impossible to treat once pollutants are emitted into it, although the disruption does not last long. Soil and water environments should be given the next priority because disruptions are confined to a much smaller space. Solid wastes are the most condensed form of waste. If incinerated, such materials are often transformed into more activated forms, emitted into the atmosphere and eventually dispersed throughout the environment so that it becomes impossible to collect and treat them anymore. And all environmental policies should be in conformity with regional or national environmental planning to protect the fragile ecosystem.

Japan mostly burns its solid wastes and thus has become the largest dioxin emitter in the world. Once dispersed, these dioxins are untreatable. Such practices result from the neglect of environmental priorities in regional or national policymaking. Some Asian countries are eager to develop nuclear energy as a clean, economical energy source, but its wastes must be managed for almost a million years.[3)] An environmental threat that requires such long-term management cannot be regarded as sustainable.

Conclusion

The East Asian economy is growing fast and promises to become the world's greatest economic center in the near future. Because of the rapid economic development

3) The half-life of plutonium-239, one of the major radioactive wastes of nuclear fission, is 24,400 years. A period of ten times their half-life is usually required to isolate nuclear wastes for safety. Thus nuclear waste sites must be managed for 244,000 years.

and high economic density of East Asia, environmental stresses have built up quickly in recent years, threatening the well-being of people in this densely populated region. East Asia has not been moving toward a sustainable society. For decades, it has indulged in developing a growth- and supply-oriented economy while paying little attention to the environment. Such development will work for a time, but it is not economically efficient in the end and, rather, poses a dangerous threat to the land and people. According to statistics, each year 60 million people die from drinking polluted water or from malnutrition, and 500 thousand from breathing polluted air (World Commission on Environment and Development 1987). If we continue to indulge in reckless development that ignores the environment, we may face far worse environmental disasters. The ultimate goal of development should be sustainability, in which respect our ancestors set a good example. Economic activities should not exceed the earth's carrying capacity.

References

Brown L et al. (1994) State of the world 1994, a Worldwatch Institute report on progress toward a sustainable society. Norton, New York

Byrne J et al. (2004) Energy revolution: 21st century energy and environmental strategy.Maeil Gyeongje Shinmun Sa, Seoul

Cheng Z et al. (2005) Limited temporal variability of arsenic concentrations in 20 wells monitored for 3 years in Araihazar, Bangladesh. Environmental Science Technology 39(13), 4759-4766

Curran TP (2000) Sustainable development: new ideas for a new century. Seminar at the Graduate School of Environmental Studies, Seoul National University, Seoul

Foster JB (1993) Let them eat pollution: capitalism and the world environment. Monthly Review, January 1993, 10-20

International Herald Tribune (2004) Forest fires place strain on Asian neighborliness. October 6, 1

Japan Environmental Council (2005) The state of the environment in Asia 2005/2006. Springer-Verlag, Tokyo, p 3

Kim ES (1988) Korea's forest policy and conservation. M.A. thesis. Kyung Hee University, Seoul, pp 30-31

Kim JW (1990) Environmental aspects of transnational corporation activities in pollution-intensive industries in the Republic of Korea: a case study of the Ulsan/Onsan industrial complexes. In: Environmental aspects of transnational corporation activities in selected Asian and Pacific developing countries. ESCAP/UNCTC Publication Series B, No. 15. United Nations, NY, pp 276-319

Kim JW (2003) Greenhouse gas reduction potential for South Korea. J. Environ. Studies 41, 99-120

Kim TY (1993) A study on the effects of air pollution in China on the Korean peninsula. Masters Thesis. Graduate School of Environmental Studies, Seoul National University, Seoul

Kim YK et al. (1997) Natural science. Saengneung, Seoul, pp 484-503

Lee SS (2005) One out of thirty Chinese poisoned by fluoride. http://www.hani.co.kr/kisa/section-004005000/2005/08/p004005000

Li XS, Zhi JL, Gao RO (1995) Effect of fluoride exposure on intelligence in children. Fluoride 28(4), 89-192

Lovins A (2005) More profit with less carbon. Scientific American. 293(3), 52-61

Mason M (2005) World Health Organization says dirty air a regular killer in Asia. http://www.enn.com/today.html?id=8579

Ministry of Environment, ROK (1990) The road to environmental conservation. Ministry of Environment, Seoul, p 13

Ministry of Interior, ROK (1978) Nature protection. Ministry of Interior, Seoul

Seoul Metropolitan Government (1988) Seoul metropolitan administration, pp 2-4

Shoji K, Sugai M (1992) The Ashio copper mine pollution case: the origins of environmental destruction. In: Ui J (ed) Industrial pollution in Japan. United Nations University, Japan, pp 18-63

University of East Anglia and Kyunghee University (1988) A survey of coastal wetlands and shorebirds in South Korea, Spring 1988. Asian Wetland Bureau, Kuala Lumpur

U.S. Energy Information Administration (1998) National energy modeling system (NEMS) data base. U.S. Department of Energy, Washington, DC

van Geen A et al. (2005) Reliability of a commercial kit to test groundwater for arsenic in Bangladesh. Environmental Science Technology 39(1), 299-303

World Bank (1993) Development and the environment. Oxford University Press, Oxford

World Commission on Environment and Development (1987) Our common future. Oxford University Press, Oxford, p 4

World Resources Institute (1992) World resources 1992-93. Oxford University Press, Oxford, pp 159-174

Yale Center for Environmental Law and Policy, Yale University, and Center for International Earth Science Information Network, Columbia University (2005) Environmental sustainability index. World Economic Forum, Geneva

Yu XL (2005) Water resource and water environment management in China. Paper presented at Environmental Management Seminar. Graduate School of Environmental Studies, Seoul National University, Seoul

---

Health & Social Needs of Red-Pickers: A Case Study of Bilaspur City (C.G)

Dr.Vijay Kumar Tiwari
Head, Deptt. of Geograph
C.M Dubey P.G College, Bilaspur (C.G)

Narendranath Guria
Research Scholar.
Deptt. of Geography,
C.M Dubey P.G College, Bilaspur (C.G)

Abstract

In response to the municipal solid waste management system in Bilaspur city that does exist, poor labourers have found a niche of removing recyclable waste materials from the municipal waste stream and selling the materials for economic gain. The danger to red picker's health could be reduced if public health workers had a better understanding of what the major health problems affecting waste pickers were. Unfortunately much of the study into the activities of waste pickers has avoided public health issues. Poor healthcare waste management is widespread in low income countries; many people come into direct contact with the waste and are thereby exposed to health risks. Important contributory factors include a lack of awareness of the potential health risks, a consequent lack of motivation to improve the situation and inadequate resources with which to improve practices.

Keywords: Picking and Health, Health Awareness and Needs, Occupational Health Risks

Introduction

In response to the municipal solid waste management system that does exist, poor labourers have found a niche of removing recyclable waste materials from the municipal waste stream and selling the materials for economic gain. Unfortunately much of the study into the activities of waste pickers has avoided public health issues. The correlation between social status and health is only one leading example of a much

larger class of observations of large differences in health status not just among individuals, but among well defined groups: populations and subpopulations (Evans, 1994). Waste pickers make a living by selling materials they collect from dumpsites, bins and roadsides. Typically, this waste comes from domestic, industrial and commercial sources. The impact of waste recovery on the health and social needs of waste pickers is often overlooked and replaced instead by concerns about the environmental and economic aspects of waste management in Chhattisgarh State.

The present limited sanitation facilities have an adverse impact on the health of the community and correspondingly could adversely affect visitors to Bilaspur. Householders typically discard solid waste onto the streets. This waste is swept into heaps and then shovelled into handcarts by sanitation workers for disposal.

Source of the Data

The study is based on Primary and Secondary data.

a) Master plan for the waste picking in Bilaspur city by Municipal Corporation, Bilaspur

b) The population data have been taken from Census of India.

c) The field survey data collected for some sample unites.

d) Information about Red Pickers is collecting by field survey.

e) Ward wise field survey data for Health of Red Pickers.

(i) Hospital/Nurshinghome for Health Treatment.

Methodology

An estimated 327 waste pickers congregate at the landfill every night. The study sample consisted of both males and females in all age ranges who worked as waste pickers at the Landfill at the time of the study. The study was conducted as part of the Bilaspur city on waste management called directed by the working environment was observed directly to obtain information on the occupational health issues, such as occupational safety hazards, and on-site

resources, such as water supply. Subjective data was collected in the form of a survey which was reviewed by the survey collected descriptive information about waste picker demographics, personal opinions and perceived health status. The survey, which was translated into Bilaspur city, was administered orally by Bilaspur city-speaking interviewers. In total, 141 waste pickers were approached and interviewed. The participating waste pickers were compensated.

I. To satisfy the main objective of the study, the data related to solid waste have been procured from the environmental control board Office, Health Department Bilaspur city and field survey.

II. Population data have been obtained from the publication of the vital statistical division of Municipal Corporation Bilaspur city.

III. Field study has been useful to corroborate the results obtained in the analysis. Here field investigation is concerned with some sample units with the help of ward boundary map of municipal corporation Bilaspur, location found survey of India to toposheets.

IV. A set of questionnaires designed for the residential, commercial, Industrials and their working staff were use to obtain information about the solid waste management system in Bilaspur city.

Object of the Study

1. Identify and understand the measure health problems facing waste pickers
2. To establish goals, set priorities and develop strategies to address health problem amongst waste pickers
3. To evaluate the Socio-Economic status of the garbage pickers
4. Identify the spatial pattern of waste pickers growth in Bilaspur city.
5. To find out the cause, health and malnutrition of environment degradation caused by solid waste
6. To established relationship between waste pickers and social needs
7. To find out the ability to manage social needs for waste pickers
8. Safeguard waste pickers health by preventing spread of disease
9. Economically viable and encourage public private partnership
10. The study will help to find out the waste pickers health risk for future generation caused by the wastes
11. Find out the spatial pattern of waste pickers economic and life style.

Study Area

Bilaspur City is the districts headquarter of Bilaspur District, situated in the Eastern part of Chhattisgarh State. The Bilaspur city is approximately 400 years old and the name "Bilaspur" has been originated from the Fisher Woman named "BILASA". The city is located at a distance of 120 Km. away from the capital city Raipur on the North and is the second biggest city of the Chhattisgarh State. The city administration is through Bilaspur city Municipality. In the year 1867 the Bilaspur Municipality was established and later upgraded to the Bilaspur Municipal Corporation (BMC).

Bilaspur city is set up at the southern part of Bilaspur District and located at 22005' N latitude and 82013' E longitude. The city is on the bank of Arpa River which flows from North – West to South – East directions, thus dividing the city in two lands mass. Total geographical area of Bilaspur city is about 46.12 Sq.Km. and it extends 8 Km. from North-West to South-East on the both side bank of Arpa River. The city is 262 meters above the mean sea level. According to census of India 2011 total population of city is 3,35,293.

Boundaries

During the last 50 years and many village located on the fringe, now form a part of the urban agglomeration. Other villages situated in close vicinity of Bilaspur are also gaining urban character. Boundaries of Bilaspur city :

1. North: Khamtarai, Birkona, Koni, Mangla and uptol the northern limit of village Uslapur.
2. West: Ameri, Tifra, Sirgitti and up to the Western limit of village Fadhakhar.
3. South: Mahmand, Dheka, Domuhani, Deorikhurd, Lingiyadih and upto Souther limit of village Mopka.
4. East :Mopka, Bhatarai and upto Eastern limit of village Khamtarai.

Picking and Health

In many cases, despite efforts at primary prevention, a health condition occurs. Secondary prevention involves early detection and successful management or treatment of the health condition so as to avoid damage to the person's health. Finally, if primary prevention and secondary prevention have both failed or are not possible, and a person's health has already been compromised, tertiary prevention seeks to limit impairment, increase quality of life, and/or prolong life. Generally speaking, in order to achieve its

goals, modern public health efforts tend to focus on primary prevention, and to a lesser extent, on secondary or tertiary prevention approaches (Datta, M., 1997).

Table No. 1 Bilaspur City: Frequency of Individual Exposure to Disease

Subtance	Frequency			
	3/Day	1/Day	Weekly	Monthly
Blood	1	1	1	2
Air born dust				
run-off	2	2	4	20
Stray Animals			2	10
Mosquito	1			4
Sharp Metal edges	1	4	8	40
Broken glass	2	5	25	41
Needles	1	4	7	14

Source: Based on field survey, 2012

Table No.2 Bilaspur City: Count of Symptoms Experienced by Individuals

Syptoms	Yes	No	Missing
Joint pain	45	32	23
Back pain	68	14	18
Rash	10	62	28
Hot irrilated skin	35	47	18
Scabies	10	20	70
cut	47	10	43
cough	32	47	21
Shortness of breath	45	41	14
Stomach	58	30	12
Diarrhoea	62	20	18
Vision	12	63	25

Source: Based on field survey, 2012

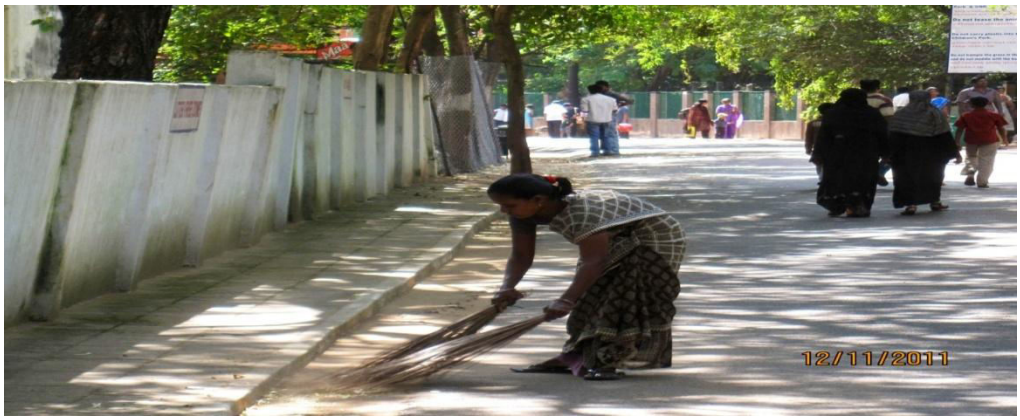
Public Health in Practice

The specific domain of public health is at the community, national or global level. It realies on measures that deal with small to large groups of people, rather than dealing with each individual. Public health is concerned with collective action and the health of populations and sub populations (Evans, R.G. and Stoddart, G.L.,1990).

Public Health & Human Behaviour

While the history of public health was closely related to the control of infectious diseases, modern public health is challenged mainly by problems resulting from human behaviour. Since efforts to change human behaviour are complex and difficult, many prefer to seek an environmental, technical, or engineering solution to public health.

In low-income city, however, spending a few dollars per capita per annum for health, the appropriate technologies must of course be very different to those in rich city spending thousands of dollars per capita per annum on health care. Assessments of medical technologies must thus be both scientifically based as regards health effects and country specific as regards cost norms.





Daily Sweepers & road side waste pickers

Waste Management in Bilaspur city

Existing facilities in Bilaspur city comprise a drainage system, a solid waste system, and a limited wastewater collection and treatment system. Although there is need for study into all three waste systems, this discussion will be limited to solid waste. The solid waste system has limited vehicles and related collection capacity, and the disposal site has insufficient capacity for the studyed growth of Bilaspur city.

Table No. 3

Bilaspur City: Changes in Health Status Overtime of Red Pickers

	Health Rating Compare t o one year ago					
Health Sta tus	Much Bette r	Some what e better	About th e Some	some whate worse	much wors e	Total
Fair %	28.46	32.52	8.13	9.76	21.13	100
Count	35	40	10	12	26	123
Poor %	22.1	25.44	33.34	14.71	4.41	100
Count	45	52	68	30	9	204
Total	80	92	78	42	35	327

Source: Based on field survey, 2012

General Findings

A total of 140 waste pickers were included in this study. The entire population comprises, by best estimate, approximately 180 waste pickers. The maximum number of variables in the analysis never exceeds 10, meaning that there are sufficient degrees of freedom to have statistical confidence in the results.

All 140 individuals were asked a series of questions and the results were recorded in English. Four individuals who met the inclusion criteria were dropped from the analysis because they did not constitute a large enough group to have statistical significance, and their inclusion complicated the regression analysis without contributing any additional information. The sample comprised 29 men and 107 women. Amongst men, the distribution of ages was approximately normal, but skewed slightly to the right. The mean age was 26.00 and the standard deviation was 9.98. Male waste pickers ranged in age from 14 to 51.

Waste picking is often a last resort. People who are involved in waste picking

have chosen their career because they face extremely limited options. One advantage to waste picking, which was listed by many people, was that after a day of picking the individual could return home with cash in hand. In general waste pickers work long hours and long weeks.

65.4 per cent of waste pickers work seven days a week. An additional 17.6 per cent work six days, and 11.8 per cent work five days. Less than 5 per cent work less than five days per week. The distribution of hours worked per day is approximately normal with a mean of 12.00 and standard deviation of 3.56 among males, and mean of 10.8 and standard deviation of 2.39 among females.

Analysis of Change in Health Status

Thus far in the analysis, the discussion has revolved around the health status of waste pickers in the study. However, according to the pickers themselves, there has been a net movement toward poorer health status over time. (Ahsan, N., 1999) Of all the symptoms described by pickers, it is perhaps this information that is most interesting, and which raises the question of how strongly picking contributes to the net shift.

There are several possible explanations of this change in health status. Of the 25 people in poor health who claim to be much worse off than one year ago, there are two plausible explanations.

To further this point, it is well accepted that self-definition of health is very difficult to calibrate. If the explanation does not come from psychological mis-statement, then this situation becomes very interesting from a physical health perspective.

Waste picking as a Health and Critical Social Issue

In Bilaspur, it is estimated that there are over 500waste pickers who collect recyclables as a regular means of subsistence. Hence, waste picking is a survival strategy, needed in order to meet basic needs for shelter, food and employment. A recent study conducted among waste pickers in Bilaspur city, found that most began working as children, acting as assistants for their parents, who were also waste pickers (Sharholy, M., Ahmad, K., Vaishya, R.C., Gupta, R.D., 2007)

The nature of this informal work has been noted to pose significant health risks and contribute to on-going forms of social exclusion, marginalization, discrimination and other social dilemmas.

Table No. 4

Bilaspur City: Health Status Cross Tabulation With Age in RedPickers

Health Status	**0-20**	**21-30**	**31-40**	**41-50**	**50+**	**Total**
Fair %	29.09	37.27	23.64	5.45	4.55	
Count	32	41	26	6	5	110
Poor %	23.96	34.1	21.19	14.75	6	100
Count	52	74	46	32	13	217
Total	84	115	72	38	18	327

Source: Based on field survey, 2012

Health & Social Needs

Bilaspur city, the second large city of Chhattisgarh State, is characterized by extensive waste recovery and recycling. The primary work in waste recovery and recycling is done by underprivileged individuals on streets and at garbage dumps. Hopefully, the overview provided by this study will be of use to city planners, community organizations, and social study. Ideally, this study will prompt discussion that will improve the health and welfare of waste pickers through effective and humane coordination of city ordinances, basic health services, community development, welfare programs and public policy.

Table No. 5

Bilaspur City: Area Wise Total Red Pickers, 2012

Zone	location	No. of. Red P ickers	Male	Female
I	Ward No. 10	2	1	1
	Ward No. 11	1		1
	Talapara ward 12	1	1	
	Gorpara kitab garbe side	1	1	
	Jatia Talab	1	1	
	Kududanda chandni chowk	1	1	
	Mini basti Jaravata	4	3	1
	Ameri	1	1	
	Teta Dabri	1	1	

	Imlipara	1	1	
II	Ward No.17	23	12	11
	Ward No. 18	1	1	
	Ward No. 22	2	2	
	Ward No. 23	46	39	7
	Sanichari Bazar	1	1	
	Sanichari Rapta pool	1	1	
	Chantidihia kobotra moholla	1	1	
	Katiya para	10	5	5
	Ward No. 24	6	5	1
III	Siv Chowk katiyapara	6	6	
	Katiapara	1		1
	Ahirbat moholla, Ravidas Nagar	2		2
	Kumarpara Karbala talap	2		2
	Ravidas chowk	1		1
	kumarpara Karbala	2	1	1
	karbala	3	1	2
	Munna bhai chowk, Satyam chowk	9	4	5
	Ward No. 27	1		1
	Ward No. 31 Indra Nagar	43	34	9
	Ward No. 33 M.M pump house	1		1
	Ward No. 33 ,Kanschowk	37	5	32
	Ward No. 25, Kumarpara	1	1	
	Ward No. 31, Indra Nagar Dipupara	4	2	2
IV	Chinrajpara School Chowk	2	2	
	Provat Chowk	1	1	
	Ward No. 37, Sankar Nagar Keot para	12	9	3
	Ward No. 37 Kashim para	16	15	1
	Ward No. 37, Gurunanak chowk	3	3	
	Ward No. 38	2	1	1

	Ward no. 39	10	8	2
	Irani chowk	1	1	
	Ward No. 43	1		1
	Ashok nagar khubri basti	4	2	2
	Ward No. 44	12	1	11
	Ward No. 45	21	14	7
	Ward no. 48, Purana sarkhanda	23	10	13
	Chantidihia	2		2

Source: Based on field survey, 2012

Garbage Picking

Recycling is more than anything else a question of economics. If an article of the required standard can be provided by recuperating it from waste materials at a cheaper price than by using new raw materials, then there would be a market for waste material. Hence, where raw materials are expensive and in short supply, the incentive would be to use recuperated 11 materials. Cardboard, plastic, scrap metal and bottles even textile off-cuts are the popular recyclable items.

Wastes and Household Needs

The use of wastes by poor households to meet basic needs is observed in Bilaspur city, although there is not even in a single case-study to provide a sense of how important wastes can be in household management. The use of wastes for fuel, particularly animal dung and agricultural residues, including urban vegetable wastes, such as husk, has been estimated in a number of areas. Waste burning especially of cattle dung, is a routine matter for poor families of squatters and pavement dwellers in city.

Health Awareness and Treatment Seeking Behaviours

Diseases related to the unsanitary living environment, lack of water, and inadequate nutrition formed the majority of reported illnesses both by the health workers and mothers. Child health problems such as diarrhea and vomiting, typhoid, malaria, worm infestation, pneumonia, skin problems (scabies, ringworms), and common colds/coughs were frequently cited as important health concerns by mothers. Study findings indicate that the level of awareness about illness and treatment was relatively high. Mothers correctly perceived childhood pneumonia, diarrhea, malaria

and measles as serious health problems with fatal outcomes, especially when accompanied by vomiting and fever. However, lack of financial resources largely prevented mothers from seeking health care. They often wait for days using home-made remedies for childhood illness until situations become worse. Whenever they obtain the required finances, their first line service providers as reported from the study are chemists and drug stores that easily sell those drugs off the counter

Modern Health Facilities

A total of 3 modern health facilities were identified in the four slum communities including: three 'hospitals'; ten health centers; four dispensaries; 92 clinics; 14 drug stores/pharmacies; one nursing home and one facility engaged in door-to-door service. Of these facilities, only four (3.2%) are owned by the NCC. 84.8% are private profit-making; 6.4% are managed by religious groups; 4.0% belong to community based organizations; and 1.6% are local and international NGO facilities. Although nearly all (87.2%) of these facilities claim to operate with a formal license, very few obtained licenses from the authorized license issuing bodies. Eighty-nine health facilities (71.8%) did not have any working guideline or standard protocols for their services. Private profit-making facilities accounted for more than 75% of these. Half of the private profit-making facilities have never been supervised by any agency

Table No. 6 Bilaspur City: Sex Group Wise Health Status Compare to One Year ago

Sex	Health Rating Compare to one year ago					
	Much Better	Some whate better	About the Some	some whate worse	much worse	Total
Male%	12.83	21.39	21.92	26.74	17.12	100
Count	24	40	41	50	32	187
Female%	10	27.14	25	23.57	14.29	100
Count	14	38	35	33	20	140
Total	38	78	76	83	52	327

Source: Based on field survey, 2012

Table No. 7

Bilaspur City: Health Status Cross Tabulation with Income in Red Pickers, 2012

Health Status	Income Category					
	500-1,000	1,000-1,500	1,500-2,000	2,000-2,500	2,500-3,000	Total
Fair %	35.71	14.29	28.57	14.29	7.14	100
Count 70	25	10	20	10	5	70
Poor%	21.4	22.57	25.29	14.79	15.95	100
Count 257	55	58	65	38	41	257
Total	80	68	85	48	46	327

Source: Based on field survey, 2012

All activities in solid waste management involve risk, either to the worker directly involved, or to the nearby resident. Risks occur at every step in the process, from the point where residents handle wastes in the home for collection or recycling, (Ahmad K. Sharholy M. Mahmood G. Trivedi R.C.,2008) to the point of ultimate disposal. Health risks from waste are caused by many factors, including:

• The nature of raw waste, its composition (e.g., toxic, allergenic and infectious substances), and its components (e.g., gases, dusts, leachates, sharps);

• The nature of waste as it decomposes (e.g., gases, dusts, leachates, particle sizes) and their change in ability to cause a toxic, allergenic or infectious health response;

• The handling of waste (e.g., working in traffic, shoveling, lifting, equipment vibrations, accidents);

• The processing of wastes (e.g., odor, noise, vibration, accidents, air and water emissions, residuals, explosions, fires);

• The disposal of wastes (e.g., odor, noise, vibration, stability of waste piles, air and water emissions, explosions, fires).

Occupational Health Risks

Workers and waste pickers handling solid waste throughout the world are exposed to occupational health and accident risks related to the content of the materials they are handling, emissions from those materials, and the equipment being used. For purposes of this report, the term "**relative risk**" is used to denote a large-scale study with a viable, appropriate control group, conducted by an appropriate reputable organization.

Environmental Health Risks

People living and working in the vicinity of solid waste processing and disposal facilities also are exposed to environmental health and accident risks. These risks relate to the emissions from the solid wastes, the pollution control measures used to manage these emissions, and the overall safety of the facility. As with occupational risks, these risks are being substantially managed in high-income city, but are still largely unmanaged in most Bilaspur city.

Table No. 8 Bilaspur City: Trend of Red Pickers

Years	Waste Pickers	No. Of Household
2001	76	52
2002	125	82
2003	136	114
2004	142	132
2005	165	140
2006	173	147
2007	215	182
2008	247	198
2009	268	210
2010	298	224
2011	305	256
2012	327	270

Source: Municipal Corporation, Bilaspur(C.G)

Occupational and Environmental Health Issues

Human focal matter is common in solid waste. In high-income City, human waste generated in cities is primarily handled in separate sewerage systems and only a limited portion gets into solid waste, largely through disposable babies' diapers (nappies). However, in Bilaspur city, a significant portion of the human waste generated in a city ultimately reaches the solid waste system because of inadequate sanitation systems.

Table No. 9 Bilaspur City: Result Regarding Health from Questionnaires

Parameters	Dump sid	Dump si	street	Municipal	Control-I

	e Red Pic kers	de reside nce	pickers	garbage workers	
Vaccine against tetanus	12	20	32	32	96
Choronic backacehe	5	5	14	25	49
General weakness	16	14	20	21	71
Cough, Respiratory dise ases	18	19	20	20	77
Chest pain	22	21	15	20	78
Pain Abdomen	6	20	14	20	60
Jaundice	8	14	17	21	60
Dog and Rat bites	14	6	16	27	63
Diarrhoea	13	9	16	26	64
Cuts injuries	10	11	14	19	54
Eye injuries, other eye problems	10	16	15	18	59
Skin dieases	11	17	10	22	60
Ulcers	9	24	21	25	79
Angular Stomatities	21	26	8	31	86
Enlarged liver	4	27	9	31	71
Join problem	24	27	31	30	30
Bronechial Asthma	24	30	21	30	105

Source: Based on field survey, 2012

Safety Planning Workshop

Template agenda for a national one-day planning workshop on a national policy for the safe and appropriate use of injections

(i) Review the results of the national injection practices assessment;

(ii) Review the draft outline of a national strategy for the safe and appropriate use of injections;

(iii) Establish a national injection safety committee;

(iv) Obtain consensus on the key elements of the national strategy for the safe and appropriate use of injections;

(v) Identify next action points towards a national strategy for the safe and appropriate use of injections.

Conclusion

This paper discusses both occupational health risks to workers and environmental health risks to residents and workers. Because worker exposure times are shorter than resident exposure times, some risks may be less for workers than for residents. On the other hand, contaminant levels to which workers are exposed can be significantly higher than those that reach residents, thus leading to increased risks for workers over residents. In Bilaspur city, a significant portion of the waste pickers found at open dumps are children and pregnant women. Confounding this image is the reality that residents around solid waste disposal sites include infants, young children, women of child-bearing age, and seniors.

It is essential to develop an overall strategy for healthcare waste management that takes full account of these three approaches and reviews how the different actions described above can best be implemented. (Hunt, C.,1996) Frequently, the importance of effective final treatment and disposal is over-emphasised at the expense of more basic measures such as improved education, awareness raising and segregation of hazardous waste from non-hazardous waste. The important point is to consider appropriate actions at all stages in the healthcare waste stream, from generation at source to final disposal**.**

Reference

Ahmad K. Sharholy M. Mahmood G. Trivedi R.C. (2008) Municipal solid waste management in Indian cities–A review Journal of Science Direct, Elsevier Waste Management 28, 459-467.

Ahsan, N., (1999) Solid waste management plan for Indian megacities, Indian Journal of Environmental Protection 19(2), 90-95

Datta, M., (1997) Waste Disposal in Engineered Landfills. Narosa publishing house, New Delhi, India.

Evans, R.G. and Stoddart, G.L. (1990) Producing Health, Consuming Health Care, Social Sciences and Medicine 31(12):1347-1363.

Hunt, C. (1996) Child Waste Pickers In India: The Occupational And Its Health Risks, Environment and Urbanization 8(2): 111-118.

Sharholy, M., Ahmad, K., Vaishya, R.C., Gupta, R.D., (2007). Municipal Solid Waste Characteristics and Management in Allahabad, India. Journal of Waste Management 27(4), 490-496.

"Geographic analysis of the emerging diseases due to illicit underground water in Yavatmal district"

Dr. R. P. Tiwari
Govt. P. G. College Tikamgarh

Dr.R.P.Yadav,
Professor of Geography,
Govt .College.Bichhua,
District Chhindawa MP

Dr.Vinita J. Deshmukh
Regional Geography Department
Pramkhu Dhanvate National college
Nagpur

Introduction

The water here is the nectar of the earth. We can not imagine the existence of living creatures without water, and that is why 71 percent of the water in the world is flooded, and recently we have forgotten the importance of water. Because, you freely use/use the thing which is excessive. The result is visible in front of us today. The downstream rainwater is flooded and we are walking around the parasitic water, but we do not appreciate the water available on the planet.

Water is the basis of human life. Generally, an average of 135 liters of water per day is consumed daily. Use to meet basic needs such as drinking, cleaning the bath, and cleaning, Recently, the water required for irrigation, industry, tourism, building, gardening, transport, equipment etc. is included in the daily requirement.

Ground water is ground water, its appearance is dependent on the amount of water available in those days. It also depends on the type of rock, type, structure, and tide. The ground water level in these areas is high, in which the ground water level is high. Therefore, the growth, of the well, bore is evolved in the contamination. In areas where tap water supple is not available, the use of groundwater for dinking water is available for daily use and for day-to-day use. Apart form that, the number of raths in India is 2 crores 60 lakhs today. Nearly 60 percent of the population is covered by flood water. India uses various means of drinking water. The number of raths in India today is 2 crores 60 lakhs. People use different means for drinking water. 35.5% population and hand pump, 36.7% people use other traditional instruments like tap, lakes, streams, etc.

Water conservation in India

In India, 839 blocks out of 5723 are located in the dark zone. The water is completely drained. The worst is Rajasthan. Due to the low rainfall, the river water flow is reduced by 20 percent. 16% of the world's population is in India and water availability is 4%. 18 percent of the water is used in the rainwater, and the remaining 82 percent of the water gets released through the rivers.

In India, demand for water in various in various areas is increasing due to economic development. Central Ministry of Water Resources: there is a demand for 50 per cent Arab Cubic meter water the Nasur
industry, and this water is being processed through septic water resources. In the last 3 years, the population of India has doubled and 30 per cent of the population lives in the city.

Water usage is increasing in the life of changing life patterns. The status of water resources in India is critical to the dayendavas. Water also needs to be touched in the monsoon. The situation of the population between the population and the availability of the water and the need for water in diffrendra areas is different.

The population of Yavatmal distinct in 1991, population of 2077144 and 2011 is 2772348 with and increase of 695204 people. They are less dependent on water supply. For this the use of ground water schemes and schemes based on it. But this water in not safe to consume the natural water, the harmful elements appear to the patient. Besides man-made causes of groundwater contamination affect it . Different types of minerals are chemicals available in available water sources. Such as arsenic and chemicals are essential for health whereas some are very dangerous.

The majority of the district is filled with Deccan Basalt rocks. Likewise Alaiyavim, Lemeta, Kamathi Sandspen, Barakar Sandstone, Chunkhadk and Granite are found in some parts of this district Bamdeine 1991.

It is seen that the time of transition of sickness is the change in the seasons. According to the seasons, the illness is also very different. Increasing microbial virus, bacteria, the cause the formation of the disease. The effect of human digestibility, premature immersion and various bone diseases, their impact on the teeth, mostly depends on their drinking water. The main source of water in India depends in ground water. Groundwater Chemical factors are dependent on the rainfall, geological rocks and fragments of this system. Global warming and unrealistic use of water are creating drought in these days. As a result, the use of groundwater is increasing. However, this does not happen in the form of the groundwater to be repaired. The amount of water furrow is negligible in the amount of groundwater used. The available ground water is becoming more contaminated Its disadvantage is being done on human consciousness. In today's world the consequences of contaminated water clogging in other countries that are highly populated can be seen.

- Industrialization – Increasing demand of water and increasing industry is crucial to water conservation lack of awareness – water use and wastage, water pollution etc. People are not literate.
- Green Revolution -70% of the water used in irrigation is used for irrigation, and 5% of the water is saved and agricultural crops can be increased.

- Continuous growing population – 2011 population was more than 125 crores.
- Liquid life style –Extra use of water for growing water conservation systems, such as washing machine toilets flush etc. Urbanization-Increasing population in the city will increase the water crisis in the city.

Objectives of study

1. Study the composition of the Yavatmal district and the structure of rocks.
2. To study the types of rocks as well as various minerals and constituents of the rock.
3. To study underground water resources in the district.
4. Prohibit the causes of ground water pollution.
5. To look into the problems of contaminated underground water.
6. Determination of contaminated ground water (lease) in Yavatmal district.
7. Examine the health benefits of various factors of ground water by examining ground water.
8. Understanding geographical factors and human factors affection ground water pollution.
9. Examining the differences between ground and earth monsoon and after the monsoon.
10. Study the Aaragya centers and community planning programs.

The importance of the study topic

Because the Yavatmal district is a part of the Deccan's drive, the basal rock ridge is much higher. Some representations of the granite and good rocks are found. the geological analysis of the underground water and its contamination in Yavatmal district and the disease causing the disease are very much needed.

It in not that the underground water is completely pure. It contains many alkalis, minerals, dissolving. Some of them are essential for alkalis, minerals and various constituents. It they are more than standard, they are harmful to human beings. This topic has been selected for the study of Bhuj related to **Yavatmal district.**

It is necessary to study the schemes which have implemented the rituals to make sure that there has been genuine pubic awareness through the Yavatmal District and the consequences of spreading the disease and its effects and preventive measures. Awareness about the use of ground water, its limited availability, its limited availability should create awareness among the masses. It is because of the that the limited storage capacity will save the growing population.

Geography of the study area

Yavatmal district is located in northern latitude, from 19026 to 20042, and the former reservoir is between 77018 years and 79098 AD.Yavatmal district is full of area and area of Yavatmal district is bigger in all districts of Amarvati division due to the area. Is it Natural boundaries have been achieved in the east and south. Washim and Amarvati are two districts, Parbhims in the west, chandrapur and wardha on the east,

Nanded in the south and Adilabad district of Andhra Pradesh. North Purwala is the natural border of the wardha river and is wardha and Chandrapur district. Nanded after the boundary of Penganga to the south District and Telangana are the northern parts of the state. Akhola and akshola districts are adjacent to the west.

Because of the contamination of contaminated ground water, it has been tested underground and monsoon since the end of the year. Agents will be identified with hazardous substances. For this purpose, the water is inspected by submersion and water testing and water is taken from the underground part of the district. And the refinement was done on the basis of primary and second nature. In addition to the talukaniyahi explanation of the district of Aheyavatal, the area is affected by the effect of contaminated water area of the district has been used. It is better to use tables for schematic method has been adopted and the coordination of the coordination will be done through a simple sample survey. It has also been analyzed and analyzed by the District Statistics Commentary. District Gazetter, Census, District water Supply Department , and taking the secondary figures into the same collection. Conversion, presentation and presentation.

Due to the effects of contaminated underground water the water accumulation and analyzing the diseases that occur, the graphs, diagrams, diagrams and saturation techniques etc. geographic devices have been used.

Many geographical factors are influenced by the human arsenal. The water content of this region has more impact on weather conditions. However, it is necessary to scrutinize the subject's background in order to have more clarity in it. For this, using the help of the Department of Atomic Sciences, the correct conclusions have been drawn from the assumption of hypothesis.

After completing inspection work. After taking personal interviews with the persons residing in the village, inspecting the person in the study area filled the questionnaire. Collected information based on the title. Secondary and secondary level scores from the carious administrative offices received from the study By compiling the alpha and combining the different numbers together, it creates well-arranged tables, figures and shapes.

The main purpose of the research work is to study the maladaptive effects of fluoride and nitrate, and for the effective reasons, as well as the treatment of maladaptation on the rural areas. In this context, the distribution of taluka-wise population for study. Study of density and literacy of rural and rural and urban population by studying fluoride and nitrate, by studying the illness caused by fluid and nitrate such as fluid and nitrate. And the problems arising out and its seriousness and extensive study this is done. To make life more prosperous, humans make the most of the available resources.

Water is not about the existence of human beings but also in its entirety. If the water supply form the rivers is done through rivers, ponds, lakes, then underground water is available

through wells, streams, bore wells. But day-to-day water is being corrupted by this resource. It is also contaminated with groundwater as well as ground water. As a result, different diseases arise due to this. The topic of geological analysis of the diseases of the addicted areas in Yavatmal district has been studied here.

In essence, in the study, a collection of essays on collection, survey, examination, analysis, explanation, reason and conclusions, measures and measures etc. have been presented.

Conclusion

Some findings are explained by the deliberation of "Geographical analysis fo diseases arising from unhygienic water in Yavatmal district".

Yavatmal is a district- wide area and the area of Yavatmal district is large in all district of Amarvati and 6th compared to Maharashtra. Washim and Amravati are two districts, Parbhish in the west, Chandrapur and Wardha on the east and Nanded in the south and Adilabad district of Telangana. District's area is 13584 sq. km According to 2011 census. The population in 27,75,457, which is 2,47 percent of Maharashtra's population. 78.41 percent people live in rural areas and 21.59 percent live in urban areas.

Seeing the natural landscape of the district, the east and south natural borders have been received. Ajitha is the son of Duggar from East Uttar Pradesh. the east of the district is Wardha river and on the south by the penggun river. There are utensils Ghats in the middle section.

Penganga and Wardha are the major rivers in Yavatmal district. Wardha is the only river which divides this district into two parts.

In the present district. In the summer even if there is a rare occurrence of 470 during the summer, the average annual rainfall in the winter range is between 70 to 950 to 1150m. me so much so

The part of this district is basal rock. Brown and vlack soil were developed on this rock. The ability to hold water in this soil is high.

While studying the changes in the population of Yavatmal district, there has been an attempt to study the changes in the rural and urban population from the period 20 years 1991 to 2011. In Yavatmal district, there is more population in Yavatmal taluka.

When studying the water resources in Yavatmal district, study the talukas of the district, irrigation wells, hand pumps, tube plants. Looking at the water resources figures from 1991 to 2011, the total number of irrigation wells in 1991 was 26178, while in 2001 the number increased to 35404 and in 2011 ot was 41470 on 1991, the total number of handpums was 4960 while the number of handpums in 2001 was 5290 and the number of deaths in 2011 was 7084.

On the basis of pipelines, the plan is dependent on wells and handpaums. Has ogt the benefit. In the rural areas, the plumbing velocity is dependent on the water supply. Because of

the financial condition of these schemes, the benefits of these schemes are available only to the affluent and the polulation, so the majority population is deprived of this facility.

Deccan basalt rocks are found in 16 talukas in Yavatmal district, covering 80 to 85 percent of the land area. Availability of ground water depends on the number disturbances. Tornadoes, joints and tissues found in this area. And also ground water level dependency in the proportion of rainfall. The amount of water that can be obtained from the rain also depends on the amount of amount of water that can be uses to freshen up the soil. Thus, the amount of rain fall in the rain water depends on the number of ground water reservoirs.

The total source of water in the district is bore well and the well is water 96.31 percent of the population depends on ground water. When using this ground water, only chlorine or bleaching powder is used for its use. It is not done regularly. No water purification system or modern filter plant us used. Water does not show the accuracy of water on the taste of water.

The quantity of fluoride and nitrate is used by the chemical fertilizers and insecticides to grow in the water. 98.58 percent of the fields use chemical fertilizers and insecticides.

The public awareness about the disease is 94.03 percent. People responded to the spread of diseases related to the disease, but this is done at the normal level, it is much higher than TV ads. Lt also has awareness of waterborne illness. The very awareness is like washing your hands before. eating. There is no awareness or action done by the Gandhia who are concerned about fluoride and nitrate at the level of the administration. The administration is extremely depressed. It is harmful to the life-threatening depression of the procession.

The geographical situation causes illness like fluoride and nitrate at the level of the administration the administration is extremely depressed. It is harmful to the life-threatening depression of the procession.

Due to excessive water consumption, water is contaminated due to water pollution. The use of chemical fertilizers and pesticides in the field, as well as the risk of mixing contaminated water in the reservoir, is found in most of the cities, Factories, Prisons, Land, Mines, Urban, Colonies etc. The polluted water from the underground water is making the plant unusable, without watering the water , it is mixed. The adverse effects of it are on people's health. The measures and the laws should be made strictly for the purpose.

To highlight the importance of discussing the issue of prevention of ground water in villages and to implement villagers for implementation of the problem of misuse, and to take action in the matter of prevention ground water pollution social services organization and to create awareness for villagers at the village level.

******

Bibliography

- Adhikari P.P Chandrashekhar H. and others (2010)" Assessment of Ground water pollution in west Delhi, India using geostatistical approach" Environmental monitoring and Assessment Voll. 167 Issue-1-4.
- Bagavan S.V.B.K and V.Raghu (2005) Utility of check Dams in Dilution of Fluoride Conventration in ground water and the resultant analysis of of blood serum and urine of villagers, Anandpur District, Andhra Pradesh, India Environment Geochemical and health.(p.p97-108)
- Brinda, K: Rajesh, R: Murugan R; Elango, L. (2010) Fluoride Contamination in ground water in parts of Nalgonda. Dist. Andhra Pradesh, India (Research paper)
- Briney Amanda (2010) "medical Geography AHistory and over view of medical geography"

******

वैश्विक तपन–मानव समाज के लिए खतरे की पूर्व सूचना

डॉ. ए.के.बासल

भूगोल विभाग

डॉ. मनीषा बासल

अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग

हवाबाग महिला महाविद्यालय, जबलपुर

कु. सेम्पुल नियतिवाद की समर्थक थी। उनके अनुसार ''मानव पृथ्वी कमी उपज है।'' ''मानव पृथ्वी का दास है।'' ब्लाश सम्भवाद के महत्वपूर्ण समर्थक थे, उनकी मान्यता थी कि ''मानव को अपने वातावरण में रहकर कार्य करना पड़ता है, परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं कि वह वातावरण का दास है'' वह सामान्य नियम से नहीं बच सकता है तथा उसके कार्य पृथ्वी के अन्य कार्यों में सम्मिलित है। मानव एक क्रियाशील प्राणी है जिसे वातावरण में परिवर्तन लाने की असीम शक्ति प्राप्त है ।

ग्रिफिथ टेलर निश्चयवाद में ने संशोधन करके नया निश्चयवाद को प्रस्तुत किया। ''रूको और जाओ'' को नव निश्चयवाद'' (Stop and Go Determinism) की संज्ञा दी है। उनके अनुसार मनुष्य न तो प्रकृति का दास है और न ही उसका स्वामी और न ही मानव में कार्य करने की असीमित क्षमता है। आस्ट्रेलियाई विद्वानों ने प्रसम्भवाद के अन्तर्गत ''प्रकृति एवम् मानव दोनों में से किसी एक को बहुत अधिक भाक्ति ाली नहीं माना है अपितु बीच का रास्ता अपनाया गया है। स्पेट की मान्यता है कि ''वातावरण मानव के लिए अनेक सम्भावानाएँ रखता है तथा मानव इन सम्भावनाओं का चयन कर उपयोग में लाता है ।

इन महारथियों में से किसकी विचारधारा पर्यावरण और मानव सम्बन्ध के लिए श्रेष्ठ है। यह एक विचारणीय प्रश्न है ।

वैश्विक तपन और उसके प्रभाव भौतिक पर्यावरण के तत्वों और सांस्कृतिक पर्यावरण के तत्वा को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। मानव निरन्तर पर्यावरण से खिलवाड़ करता जा रहा है। जिसके परिणाम समस्त पृथ्वी के लिये घातक होंगे ।

पृथ्वी की उत्पत्ति के पश्चात धरातल ने ठोस रूप प्राप्त कर लिया है। पृथ्वी पर जलमण्डल का विस्तार 71.1 प्रतिशत और थलमण्डल का भाग 28.9 प्रतिशत है। पृथ्वी के पर्यावरण में जलमण्डल, थलमण्डल, वायुमण्डल और जैव मण्डल इसकी विशेषता है। पृथ्वी जब समस्त संसाधनों से पूर्ण हुई तो परमसत्ता को अपनी अपूर्णता का बोध होने लगा। पृथ्वी के आकूत संसाधनों के भण्डारों के लिए उपभोक्ता का होना आवश्यक है । इन सबके उपयोग के लिए ईश्वर ने अपनी अनुपम कलाकृति के रूप में मानव जाति को पृथ्वी पर अवतरित किया, जो एक

अद्वितीय धरना है सम्पूर्ण ब्राम्हण्ड में मात्र पृथ्वी पर ही जीवन संभव है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पर्यावरणीय तत्वों के द्वारा आज तक करता चला आ रहा है जिसके कारण भौतिक पर्यावरण क्रमशः विनाश की ओर आगे बढ़ रहा है। इनमें से वैश्विक तपन एक प्रमुख समस्या है। जिसके प्रभाव इस पृथ्वी और समस्त मानव, प्राणी और वनस्पति जगत के लिए खतरनाक है।

सन् 1860 की औद्योगिक क्रान्ति में जेम्सवाट के वाष्प चलित इंजिन के विकास के फलस्वरूप मानव और पशु शक्ति पर निर्भरता कम होन लगी तथा निरंतर यन्त्रों के अविष्कार ने मानव उपयोग के लिए अनेक प्रकार के उत्पाद पस्तुत कर दिए।

आज 21वीं शताब्दी के द्वितीय दशक के प्रवेश द्वार की दहलीज को पार करता हुआ यह मानव समाज आर्थिक विकास की चकाचौंध के कारण आर्थिक भूलभुलइयॉ में उलझा हुआ है । उसने अथाह धनोपार्जन के लिए पृथ्वी के संसाधनों का दोहन बेरहमी से करना प्रारभ कर दिया जिसके कारण आज वैश्विक तपन की समस्या ने गम्भीर रूप ले लिया है ।

पृथ्वी का ताप बजट प्रकाश–

पृथ्वी के धरातल को सौर्य प्रकाश का 51 प्रतिशत भाग और वायु मण्डल को 48 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है को 48 प्रतिशत भाग प्राप्त वायुमण्डल में ओजोन परत सूर्य की पराबैगनी किरणों के लिए एक फिल्टर का कार्य करती है। ये किरणे अत्यन्त ऊर्जावान होती है परन्तु ओजोन परत के कारण इनका केवल 2 प्रतिशत से 3 प्रतिशत भाग पृथ्वी को प्राप्त होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार ओजोन परत के क्षरण के कारण पराबैगनी किरणों की मात्रा में निरंतर वृद्धि के कारण कार्बन डाई ऑक्साईड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन, हैलन, मीथेन आदि हरित गैसे है।

हरित गृह प्रभाव–

मानव के विकासशील आर्थिक क्रियाकलापों के कारण अनेक प्रकार के उद्योगों की भी चिमनियों से विषैला धुऑ निकलता है। जिसको डॉ. सविन्द्र सिंह ने ''मानव ज्वालामुखी की संज्ञा दी ही है''[1] परिवहन के साधनों, थल परिवहन, रेल परिवहन, जल परिवहन और वायु परिवहन और अणु चलित पनडुब्बी का उपयोग निरंतर बढता जा रहा है। विद्युत शक्ति अणु विद्यत शक्ति का उपयोग भी अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। इनसे विभिन्न गैसों और ताप का उत्सर्जन होता है । जिसके कारण ओजोन की परत का क्षय हो रहा है और उत्तरी ध्रुव के ऊपर ब्लेक होल बन गया है, जिसका निरंतर विकास हो रहा है।

नगरीयकरण–

नगरों के विकास के कारण प्राकृतिक भू–दृश्य विलोपित हो रहे हैं और उनके स्थान पर सांस्कृतिक भू–दृश्यों का विकास उत्तरोत्तर हो रहा है। महानगर नगर आज कांक्रीट का जंगल बन गये हैं। नगरों का विकास क्षेत्रिज (Horizontal) न होकर लम्बवत (Vertical) हो रहा है। आज नगरीय भू–भाग अधिक ऊष्मा ग्रहण करते हैं जिसके कारण ''नगर ऊष्माद्वीप बनते जा रहे हैं। नगरों में ऊष्मावृद्धि के कारण ऊष्माद्वीप बनते हैं और जो प्रदूषण गुम्बद[2] के निर्माण और

विकास में योगदान देते हैं।

वैश्विक तपन को बढ़ाने में मानव जनित कारण –

1. जनसंख्या वृद्धि 2. नगरीयकरण 3. औद्योगिकरण
4. वन विनास 5. कृषि का विस्तार 6. यातायात के साधन
7. मरूस्थलीकरण 8. अम्ल वर्षा 9. परमाणु चरित्र पनडुब्बी
10. जैविक रासायनिक हथियारों का प्रयोग 11. परमाणु संयत्र
12. परमाणुबम का प्रयोग और परीक्षण 13. जैट वायुयान का उपयोग
14. ताप और अणु विद्यतग्रह 15. अग्निशामक यंत्रों का उपयोग
16. घरों में उपयोग होने वाले विद्यत और इलेक्ट्रानिक उपकरणों का उपयोग

भूमण्डलीय तपन के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली विपदायें –

1. हिम का पिघलना– हिमचादरें जो ग्रीनलैन्ड उत्तरो ध्व और दक्षिणी ध्रुव प्रदेशों में आच्छादित है वे वैश्विक तापन के कारण पिघल जावेगी। जिसके कारण समुद्र जल स्तर ऊँचा हो जावेगा और महासागरों के कई द्वीप और महाद्वीप के किनारे स्थित गॉव नगर और महानगर जलमग्न हो जावेगे। पिघलने के कारण समुद्रीतल ऊपर उठ जायेगा एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष दक्षिण ध्रुव की 152 क्यूबिक बर्फ पिघल रही है वैज्ञानिकों के अनुसार पिछले 100 वर्षों में सागर सतह में 0.10 से 0.15 से.मी. तक तापमान की वृद्धि भी है। अनुमान के अनुसार वर्तमान तापवृद्धि दर के आधार पर यह कहा जा सकता है सन 2100 में वायुमण्डलीय तापमान 1 डिग्री सेंटीग्रेड से 3.5 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ने की संभावना है।

वैश्विक तपन 2011 में 3 प्रतिात बढने की संभावना थी और 2012 में 2.6 डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ने की संभावना थी। सन 2012 संयुक्त राज्य अमेरिका का सबसे गर्म वर्ष था। अंर्तराष्ट्रीय रेडक्रास की 1999 की रिपोर्ट के अनुसार 1998 सबसे अधिक गर्म वर्ष रहा है इसी प्रकार सन 1994–95 और 97 भी गर्म रहे हैं जिससे धरातलीय तापमान में वृद्धि हुई। विगत 100 वर्षों में 1998,2002, 2003,2004 एवं 2005 गर्म वर्ष रहे रेडक्रास ने यह भी चेतावनी दी है कि अगला दशक महाविपदा का दशक होगा। तापमान की वृद्धि जलवायु पर विपरीत असर डालेगी।

1. महासागरीय जलस्तर वृद्धि की चेतावनी मानते हुये मालदोव में मंत्रिमंडल की बैठक जल के अंदर की गई तो नेपाल मंत्रिमण्डल की बैठक हिमालय में की गई।
2. हिममंडित पर्वतो से हिम के पिघलन से उनसे निकलने वाली नदियों का जल स्तर बढ़ने से बाढ़ आ जावेगी। नदियॉ के तटीय निचले भाग जलमग्न हो जायेंगे।
3. हिमानियों का संकुचन हो रहा है और उनका हिम पीछे की ओर खिसक रहा है।

अम्ल वर्षा– पर्यावरणविद अम्ल वर्षा को एक गंभीर समस्या मान रहे है। यह खतरनाक पर्यावरण संकट है जो सम्पूर्ण विश्व को अपनी चपेट में ल लेगा। वर्षा, हिमपात, तुसारापात, कोहरा आदि जिनमें अम्ल की मात्रा अधिक होती है तो उसे अम्ल वर्षा कहा जाता है।

अम्ल वर्षा के प्रभाव–

(अ) मानव पर प्रभाव

(ब) वन सम्पदा तथा फसलों पर प्रभाव

(स) जलीय जीवन जन्तुओं पर प्रभाव

(द) भौतिक पदार्थो पर प्रभाव

वैश्विक तपन को कम करने के लिए मानव के द्वारा किये जाने वाले प्रयास–

(1) ओजोन परत की सुरक्षा।

(2) जनसंख्या वृद्धि को कम करने के प्रयास।

(3) औद्योगों से कम से कम धुआ और गैसों के उत्सर्जन के प्रयास।

(4) नगरों का नियोजित विकास।

(5) वन विनास और दावानल को कम करने के प्रयास।

(6) परमाणु बम का प्रयोग और परीक्षणों को रोकने के प्रयास किये जायें।

(7) परमाणु चलित पनडुब्बी और परमाणु हथियारों पर रोक लगाना।

(8) ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोंतो का विकास किया जाये।

(9) गैर परम्परागत ऊर्जा का अधिकाधिक प्रयोग।

(9) यातायात के साधनों से कम से कम प्रदूषण।

(10) कृषि में कम से कम घातक रासायनिक खाद्यों तथा दवाईयों का प्रयोग सीमित किया जाये।

(11) मरूस्थलीकरण को आगे बढने से रोकना।

(12) जैट वायुयानों के द्वारा कम से कम ऊष्मा का उत्सर्जन करने के प्रयास।

(13) घरों में विघुत और इलेक्ट्रानिक उपकरणों का प्रयोग कम किया जाये।

ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के प्रयास –

वैश्विक तपन किसी एक राष्ट्र की समस्या नहीं है अपितु सम्पूर्ण विश्व की समस्या है इस दिशा में किये गये वैश्विक प्रयास – इस दिशा में पहल सन् 1973 में जलवायु जैविक संपदा पर्यावरण संरक्षण, पृथ्वी संरक्षण के विनाश पर प्रयास आरम्भ हुये। 1979 में पहला जलवायु सम्मेलन आयोंजित हुआ। यह सम्मेलन क्रमशः 1973, 1979, 1988, 1989, 1990, 1992, 1995, 1997, 2002, 2008, 2009, 2010,2011, 2012 और 2013 में वारसा (पौलैण्ड) में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राज्य संघ का सम्मेलन संपन्न हुआ ।

इन सभी बैठको में ग्रीन हाऊस गैसो के उत्सर्जन को कम करने के लिये प्रस्ताव पारित किये गये परंतु सयक्त राष्ट अमेरिका निर्णय को नहीं मानता। जिसके कारण ये सम्मेलन सफल नहीं हो पा रहे है ।

---

1. डॉ. सवेन्द्र सिंह, पर्यावरण भूगोल, 1997,पृश्ठ 284
2. डॉ. राजेश नोटियाल, पर्यावरण भूगोल, 2012, पृश्ठ 221 व 222

जनसंख्या वृध्दि के दुष्परिणाम एवं नियंत्रण हेतु केन्द्र सरकार के प्रयास

कपिल खरे
राजनीति विज्ञान विभाग
शासकीय महाविद्यालय
बिछुआ, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

जनसंख्या किसी भी राष्ट्र के लिए अमूल्य पूंजी मानी जाती हैं, उसे देश के साधन एवं साध्य के रुप मे भी मान्य किया गया हैं परन्तु वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि एक अभिशाप के रूप मे देश के समक्ष खडी़ हो गई है। स्वतंत्रता के 70 वर्ष के पश्चात् भी जनसंख्या वृद्धि के कारण देश का परिदृश्य उत्तम नहीं बन पा रहा हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी 1,210,193,422 है इन आंकडो के अनुसार भारत सर्वाधिक जनसंख्या वाले राष्ट्रों की सूची मे द्वितीय स्थान पर है तथा विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि सन् 2025 तक भारत इस सूची मे प्रथम स्थान पर होगा, वह भी इस तथ्य के पश्चात् कि यहॉ सरकार द्वारा जनसंख्या नीतियॉ, परिवार नियोजन एवं कल्याण कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं।

अत्यधिक जनसंख्या के दुष्परिणामों के कारण अब रोजगार की समुचित व्यवस्था कर पाना भी कठिन कार्य हो गया हैं, जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी दर में तीव्र गति से वृध्दि दर्ज की गई है। बेरोजगारी की बढ़ती हुई संख्या के कारण आर्थिक मंदी, व्यापार विकास एवं विस्तार की गतिविधियॉ भी धीमी होती जा रही है। दुर्भाग्यवश बुनियादी ढॉचें का विकास जनसंख्या वृध्दि की तुलना में पिछे रह गया है, अतः स्वास्थ सेवा, सचांर ,परिवहन, आवास, शिक्षा इत्यादि की कमी सर्वसम्मुख है। जनसंख्या में वृध्दि के कारण जंगल, जल संसाधन एवं भूमि क्षेत्र का अत्याधिक तेजी से शोषण किया जा रहा है, जिसके चलते संसाधनो में कमी भी आई है। अगर खाद्य उत्पादन एव विवरण की बात की जाए तो वह भी बढती हुई आबादी से बराबरी मे सक्षम नजर नहीं आती है, इसी कारण उत्पादन की लागत में वृध्दि हुई है अतः निसंकोच कहा जा सकता है कि देश मे मंहगाई बढने के प्रमुख कारणों में से एक जनसंख्या वृध्दि है।

इसके अतिरिक्त प्रदूषण में बढोत्तरी, ग्लोबलवार्मिग, जलवायु परिवर्तन जैसी प्रमुख समस्याऍ भी हमारे सम्मुख उठ खडी हुई है जिसके गंभीर परिणाम आना प्रारंभ हो गये है, जो जनसंख्या वृध्दि की ही देन हैं

जनसंख्या नियंत्रण के लिए भारत सरकार द्वारा वर्ष 1952 से ही प्रयास प्रारंभ कर दिए गए है। परिवार नियोजन कार्यक्रम लागू करने वाला भारत पहला देश है। सरकार द्वारा सन् 1966 में स्वास्थ्य, परिवार नियोजन तथा शहरी विकास मंत्रालय में पूर्ण विकसित परिवार नियोजन विभाग की स्थापना की गई है। साथ ही परिवारों को परिवार नियोजन अपनाये जाने के लिए व्यापक

जनजागरण कार्यक्रम को भी अपनाया गया है। वर्ष 1966–69 की अवधि के मध्य परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिए स्पष्ट लक्ष्य भी निधारित किया गऐ।

भारत में संचलित की जा रही पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत चौथी पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकताएँ भी प्रदान की गई। पॉचवी पंचवर्षीय योजना में विशष रूप से परिवार नियोजन कार्यक्रम को उत्कृष्ट रूप में आगे बढाया गया। सन् 1976 की जनसंख्या नीति की घोषणा तक परिवार नियोजन कार्यक्रम पूर्णरूप से स्वैच्छिक रहा तत्पश्चात् सरकार द्वारा सन 1971 में विवाह क लिए वैधानिक न्यूतम आयु पुरूषों के लिए 21 वर्ष और स्त्रियों के लिए 18 वर्ष निधारिंत कर दी गई। सरकार द्वारा परिवार नियोजन कार्यक्रम में जिला परिषदों, पंचायत समितियों, सहकारी संगठनों, श्रमिक संघो, अध्यापकों आदि का भी सहयोग प्राप्त किया गया ।

छठवीं पंचवर्षीय योजना में जनसंख्या नियंत्रण को विशिष्ट रूप मे योजना का उद्देश्य उल्लिखित कर बीस – सूत्रीय कार्यक्रम में समन्वित कर दिया गया। सन् 1980 में योजना आयोग ने जनसंख्या नीति पर एक कार्यदल का गठन किया जिसने जनसंख्या एवं विकास मापको के मध्य सामंजस्य बैठाने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया ।

आठवी पंचवर्षीय योजनान्तर्गत जनसंख्या नियंत्रण को एक अभिमान्यता के रूप मे सूचीबद्ध किया गया। इस योजना ने एक भिन्न दृष्टिकोण एवं तरीके को अपनाकर अप्रत्यक्ष उपाय किए जाने पर बल दिया।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत सन् 2012 तक कुल प्रजनन दर को 2.1 तक किया जाना निर्धारित किया गया। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति मे 2010 तक 2.1 प्रजनन दर प्राप्त कर स्थिर जनसंख्या की प्राप्ति के लिए वर्ष 2045 सुनिश्चित किया गया परन्तु बारहवी पंचवर्षीय योजना में कुल प्रजनन दर को 2.5 से घटाकर वर्ष 2017 तक 2.1 प्रतिशत किये जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया जो समानता के कुल प्रतिस्थापन स्तर को प्राप्त किए जाने एवं राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपरिहार्य माना गया है।

भारत सरकार द्वारा वर्ष 1991 मे केरल के मुख्यमंत्री श्री करूणाकरण की अध्यक्षता मे एक समिति का गठन किया गया जो विशेष रूप से जनसंख्या के विषय मे थी। इस एक समिति द्वारा सन् 1993 मे राष्ट्रीय विकास परिषद् को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसमें एक राष्ट्रीय जनसंख्या नीति बनाए जाने की सिफारिश की गई थी जिस पर अमल करते हुए केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 1993 मे ही डॉ. स्वामीनाथन की अध्ययता में एक विशेष दल का गठन कर राष्ट्रीय जनसंख्या नीति निर्धारित किऐ जाने का कार्यभार सौंपा गया। इस नीति का मसौदा मई 1994 में संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिस पर गंभीर विचार–विमर्श के पश्चात् फरवरी 2000 में केन्द्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 की घोषणा की गई। इस नीति मे 150 मुख्य तथ्यों को सम्मिलित किया गया जो जनसंख्या वृद्वि को कम किए जाने हेतु आवश्यक है।

जनसंख्या नीति के कई महत्वपूर्ण लक्ष्यों मे सकल प्रजनन दर को 2.1 प्रतिशत पर लाने के साथ ही दो बच्चों के मापदण्डा को अपनाना, जन्म से पूर्व लिंग निर्धारण तकनीक पर रोक लगाना, लड़कियों को देर से विवाह के लिये प्रोत्साहित किया जाना आदि सम्मिलित है ।

इस दिशा में आगे बढ़ते हुए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का गठन मई 2000 में किया गया है। जिसका मुख्य उद्देश्यों राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किए जाने की प्रकिया में केन्द्र व राज्य के अभिकरणों द्वारा नागरिक संस्थाओं व निजी क्षेत्रों के बीच तालमेल बैठाना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की संभावनाओं को तलाशना है। प्रारंभ में यह आयोग योजना आयोग के अधीन गठित किया गया था परन्तु मई 2005 इस आयोग को पुनर्गठित कर प्रधानमंत्री इसके अध्यक्ष बनाए गए तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री एव योजना आयोग के उपाध्यक्ष बनाये गए तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री एवं योजना आयोग के उपाध्यक्ष को इस आयोग का उपाध्यक्ष बनाया गया ।

जिसमें आठ केन्द्रीय मंत्रियों को एवं सात राज्यों के मुख्यमंत्रियों को सदस्य भी बनाया गया। अन्य सदस्यों के रूप में छः प्रमुख राजनीतिक दलों के अध्यक्षों कों भी सम्मिलित किया गया। इसके अतिरिक्त कुछ उच्च स्तरीय चिकित्सा विशषज्ञों कों भी सदस्य बनाया गया। राष्ट्रीय जनसख्या आयोग के प्रमुख उद्देश्यों में नीति के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के दृष्टिगत राष्ट्रीय जनसख्या नीति के क्रियान्वयन के लिए पुनरीक्षा, निगरानी करना और निर्देश देना, स्वास्थ्य, भौतिक, पर्यावरणीय एव विकासपरक कार्यक्रमों के मध्य समन्वय एव ऊर्जा का प्रोत्साहन किया जाना प्रमुख रूप से है जिससे यथाशीघ्र जनसंख्या स्थिरीकरण का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग के अधीन राष्ट्रीय जनसंख्या स्थिरीकरण कोष भी बनाया गया । जिसे अप्रैल 2002 मे परिवार कल्याण विभाग को स्थानांतरित किया गया तथा जून 2003 में इस कोष का नाम परिर्वतित कर जनसंख्या स्थिरता कोष रखा गया। इसे जून 2005 में पुनः पुनगठित कर स्वास्थ्य मंत्री को अध्यक्ष बनाया गया तथा स्वास्थ्य सचिव को प्रबंधक समिति का प्रमुख नियुक्त किया गया। कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति बाह्य क्षेत्र से किये जाने का प्रावधान रखा गया है जो सभी कार्यो के प्रति जवाबदेह रहेगा। जनसंख्या स्थिरता कोष के प्रमुख उद्देश्यों में जनसंख्या स्थिरीकरण के लक्ष्यों कों सन् 2045 तक प्राप्त करना सुनिश्चित किया गया है। नीति द्वारा इसके उद्देश्यों को प्राप्त किए जाने हेतु विशेष प्रोत्साहन एंव अभिप्रेरणात्मक कदम और प्रेरणाएं निर्धारित की गई है। नीति के द्वारा बाल विवाह निषेध अधिनियम को भी सख्ती से लागू किया गया हैं। इस हेतु परिवार कल्याण विभाग के अंतर्गत तकनीकी मिशन गठित किया गया हैं।

जनसंख्या नियंत्रण के लिए लोगों को शिक्षित एंव जागरूक किए जाने की दृष्टि से प्रति वर्ष 11 जुलाई को **"विश्व जनसंख्या दिवस"** संपूर्ण विश्व मे मनाया जाता है। केंद्र सरकार द्वारा जन कल्याण अभियान के अंतर्गत हम दो हमारे दो, छोटा परिवार सुखी परिवार,बच्चें दो ही अच्छे

जैसे अभियान चलन में हैं।

इन सभी प्रयासों के पश्चात् भी सन् 2017 तक केंद्र सरकार अपने लक्ष्य की प्राप्ति में अभी बहुत दूर नजर आ रही हैं। जनसंख्या नियंत्रण के लिए उठाए गए सभी कदमों को मजबूती के साथ लागू करने की आवश्यकता हैं, क्योंकि भारत जैसे विकासशील देश के लोगों द्वारा सरकार के प्रयासों पर पूर्ण रूप से अमल किये जाने मे कुछ समय और लगेगा। विशेषज्ञों के अनुसार केन्द्र सरकार द्वारा जन जागरूक बढाने और जनसंख्या नियंत्रण के कडे मापदण्ड अपनाये जाने से ही देश की जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण पाया जा सकता हैं।

संदर्भ

Ashfor, Lori S,(1995) "New Perspectives on Population: Lessons from Cairo", Population Bulletin , VOL. 50 (1).

Bose, Ashish, (1996)"India's Population Policy- Changing Paradigm" B.R. Publishing Corporation, New Delhi.

Mitra, Ashok, (2003) "Indias Population: Aspects of Quality and Control," VOL II, Abhinav Publication, New Delhi

अवस्थी, डॉ. नरेंद्र मोहन, (2005) "संसाधन और पर्यावरण", म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

बंसल, डॉ. सुरेश चंद्र, (2011) "भारत का बृहत् भूगोल", मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।

पाण्डेय, एस. एस., (1962) "समाजशास्त्र", टाटा मैक्ग्रा हिल्स एज्यूकेशन।

सिंह, जे. पी.,(2013) "समाजशास्त्रः अवधारणाएं एव सिद्धांत ", तृतीय संस्करण, पी. एच. आई. लर्निंग प्रा. लि.,नई दिल्ली

सिंह, सविन्द्र, (2012)''पर्यावरण भूगोल'', प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

————————

पर्यटन का पर्यावरणीय एवं आर्थिक प्रभाव

डॉ. पी. अजवानी
विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग
प्रो. आर. के. चन्देल
विभागाध्यक्ष वनस्वतिशास्त्र विभाग
शासकीय महाविद्यालय, जुन्नारदेव
जिला–छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

विश्व के सभी देशों में आजकल पर्यटन को एक महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया माना जा रहा है। विकासशील देशों के लिये तो यह एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा वे अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार ला सकतें है। वास्तव में पर्यटन का विकास–आर्थिक विकास का पर्याय बनता जा रहा है। **जॉन नैसविट** ने अपनी पुस्तक ''ग्लोबल पैराडाइस'' में कहा है कि ''21वी सदों में पर्यटन विश्व का सबसे बड़ा उद्योगा होगा, तथा विश्व की अर्थव्यवस्था में पर्यटन विपणन की भूमिका अति महत्वपूर्ण होगी।''

पर्यटन विपणन– पर्यटन सुविधाओं का विकास पर्यटकों के लिये आवासीय सुविधायें, यात्रा अभिकर्ताओं, परिवहन परिचालकों, स्मारकों, साज सामान, पर्यटन विवरणिका आदि क्रिया–कलापों का विनियमन प्रिण्ट, टी.वी. इंटरनेट के माध्यम से पयटकों को आकर्षित करना, मानचित्रों, पर्यटन साहित्य, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, व्यापार मेलों, पर्यटन संगोष्ठियों आदि का आयोजन पर्यटन विपणन के अर्न्तगत आता है।

विश्व में पर्यटन विपणन– पर्यटन विपणन आज विश्व में अनुमानित आज विश्व में अनुमानित 6 अरब डालर के कारोबार वाला एक महत्वपूर्ण उद्योग है, स्पेन के पर्यटन के मॉडल को भारत ने अपनाया है। वर्तमान में चीन भी इस उद्योग में तेजी से प्रगति कर रहा है। एशियाई देशों में भारत की स्थिति पर्यटन के लिये सर्वाधिक अनुकूल होती जा रही है।

विश्व के पर्यटन मानचित्रों में भारत– विश्व के पर्यटन मानचित्र में भारत की महत्वपूर्ण स्थिति बनती जा रही है, भारत की सदियों पुरानी सभ्यता वैविध्यपूर्ण प्राकृतिक छटा, पर्यटन को बढ़ावा देने में सहायक है।

विशिष्ट रूचिवाले पर्यटकों के लिये भारत में जितनी विविधता उपलब्ध है, उतनी दुनिया के बहुत कम देशों में पायी जाती है। साहसिक खेल, ऐतिहासिक स्मारक, रमणीय प्राकृतिक छटा तथा सांस्कृतिक और धार्मिक परम्परा की दृष्टि से भारत अनोखा देश है।

पर्यटन का आर्थिक प्रभाव– 20वी शतब्दी के उत्तरार्द्ध से पर्यटन को आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण उदाहरण मानते हुए विश्व के अधिकांश देशों ने अपने पर्यटन के विकास की योजनाएं बनानी शुरू कर दी है। रोजगारोन्मुखता, विदेशी मुद्रा अर्जन, आय में वृद्धि, उत्पादन में वृद्धि आदि

का आर्थिक प्रभावों के तारतम्य में सातवी पंचवर्षीय योजना (1985–90) में पर्यटन को भारत में उद्योग का दर्जा दिया गया है।

रोजगार पर प्रभाव– भारत सरकार की राष्ट्रीय पर्यटन कार्य योजना के अनुसार वर्ष 1989–90 के दौरान भारत में पर्यटन उद्योग ने प्रत्यक्षतः 55 लाख लोगों को प्रत्यक्ष और 80 लाख लोगों को अप्रत्यक्ष रोजगार उपलब्ध कराया है जो 2009–10 तक बढ़कर

1 पर्यटन एक उद्योग है, जो अर्थशास्त्र के सिद्धांतो पर आधारित है, 1959 में प्रोफेसर पाल ए. साइमलयन अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग मोखेचेलेष्ट इन्सिटिट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी ने एक गुणित सिद्धांत की खोज को थी। जिसका सूत्र निम्नलिखित है –

K= 1/C K = गुण

C = उपभोग में परिवर्तन

1 = 1/Y Y = आय में बदलाव

उपरोक्त सूत्रानुसार– पर्यटक व्यय सतत् गतिशील रहता है, यह राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में विचलन भ्रमण करता है। राष्ट्रीय आय पर इसका गुणित प्रभाव पड़ता है।

2. पर्यटन से प्राप्त समस्त आय की गणना निम्नलिखित सूत्र से की जा सकती है :–

जिसमें कुल आय = N x L x e

शुद्ध आय = N x L x(E-D-C)

N = पर्यटकों की प्रतिदिन की संख्या

L = प्रति पर्यटक ठहरने का प्रतिदिन औसत समय

e = प्रति पर्यटक प्रतिदिन का औसत खर्च

D = सामुदायिक सेवाओं पर बोझ

C = विशेष सेवाओं के उपयोग का बोझ

अनुमानित 150 लाख लोगों को प्रत्यक्ष और 240 लाख लोगों को अप्रत्यक्ष रोजगार उपलब्ध हुआ है। वर्ष 2012–13 में 200 लाख को प्रत्यक्ष एवं 300 लाख लोगो को अप्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त हुआ ह।

पर्यटन से विभिन्न व्यवसायों से जुड़े लोगों को अप्रत्यक्ष रोजगार मिलता है, होटल व्यवसाय, आवास व्यवसाय, हस्तशिल्प, हस्तकला एवं विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बनते है। इस तथ्य को रेखांकित किया जाना जरूरी है कि पर्यटन ने उन क्षेत्रों में रोजगार उत्पन्न किय है जहां रोजगार के वैकल्पिक अवसर बहुत कम मौजूद थे। उदाहरणार्थ हिल स्टेशनों पर कई परिवारों का आधार पर्यटन ही है।

आय में वृद्धि– पर्यटन से रोजगार में वृद्धि के परिणाम स्वरूप आय में वृद्धि होती है, ये सब पर्यटकों के व्यय पर निर्भर करता है। पर्यटन से कई प्रकार के उत्पादों की मांग होती है,

परिणामतः उनके उत्पादन से रोजगार सृजित होते है आवास, खाद्य और पेय, लम्बी दूरी के स्थानीय परिवहन, मनोरंजन, खरीददारी गाईड आदि पर व्यय स्थानीय लोगो की आय में वृद्धि करता है।

विदेशी मुद्रा– भारत की विदेशी मुद्रा अर्जन में पर्यटन का महत्व बहुत अधिक है वर्ष 1985 में भारत में 8.40 लाख विदेशी पर्यटक आये ये जो 2009–10 में बढ़कर अनुमानतः 2 करोड़ सत्तर लाख हो गये है। विदेशी मुद्रा अर्जन वर्ष 1985 में 1800 करोड़ रूपये 1992 में 3946 करोड़ 1997 में लगभग 6000 करोड़ 2002 मे लगभग 9000 करोड़ एवं 2007 में लगभग 13000 करोड़ रूपये है एवं वर्ष 2012–13 में अनुमानतः 20000 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई है।

भारत सरकार का पर्यटन विभाग प्रतिवर्ष विदेशी पर्यटकों की संख्या व उनके द्वारा दिये जाने वाले व्यय का आकलन करता है। भारत में यह विकास दर अन्य राष्ट्रो की तुलना में लगभग 3 प्रतिशत अधिक है।

पर्यटन का सामाजिक व सांस्कृतिक प्रभाव – पर्यटन उद्योग का स्थानीय समाज और संस्कृति पर पड़ने वाला प्रभाव आज सर्वाधिक चर्चित मुद्दा है। एक आम धारणा यह है कि पर्यटन से अन्तराष्ट्रीय समझ और सौहार्द बढ़ता है परन्तु दूसरी ओर यह देशी रीति–रिवाजों और शैली को बुरी क्षति पहुंचाता है। पर्यटक अपने भ्रमण के दौरान ''देशी संस्कृति'' की एक झलक देखना चाहता है। अधिकांश समाजों में पर्यटकों का परम्परागत रूप में स्वागत किया जाता है, उन्हे शादी और अन्य रीति–रिवाजों में शामिल होने का मौका दिया जाता है, इस परिपेक्ष्य में तीसरी दुनिया के देश अब ''सांस्कृतिक प्रदर्शन'' करने लगे है।

पर्यटकों द्वारा वैभव प्रदशन का सीधा प्रभाव स्थानीय जनता पर पड़ता है उनके मन में उन वस्तुओं को प्रापत करने की चाहत उत्पन्न होती है और इससे तनाव उत्पन्न होता है। इससे पर्यटक व मेजबान के बीच दूरी बनती जाती है। कई सामाजिक समस्याऐं निम्न रूप में उत्पन्न होती है जैसे भीख मांगने की प्रवृत्ति में वृद्धि वैश्यावृत्ति, ठगी, पर्यटकों से छीना–झपटी और नशाखोरी। कई बार पर्यटकों के संबंध में ऐसी धारणाएं बना ली जाती है जिनका सच्चाई से दूर–दूर तक वास्ता नही रहता है जैसे सभी पर्यटक नशा करते है, जुआ खेलते है, वैश्यावृत्ति करते है आदि। पर्यटन में सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभावों को आसानी से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से अलग नही किया जा सकता है क्योंकि पर्यटन का समाज पर सीधा प्रभाव पड़ता है। पर्यटकों के आगमन से भौतिक यथार्थ जैसे संगीत, नृत्य, कला स्थापत्य आदि पर तो प्रभाव पड़ता है, परन्तु सबसे गहरा प्रभाव अवधारणात्मक होता है। इससे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के संबंधों, प्रकृति से संबंध, स्थान विशेष से संबंध को देखने का नजरिया बदल जाता है।

पर्यटकों पर ''स्थल–प्रभाव'' भी पड़ता है जैसे जेरूशलम में हर वर्ष 300–400 पर्यटकों को अस्पताल में दौरे पड़ने की वजह से भर्ती किया जाता है, एक मनोचिकित्सक ''यैर बारल येल'' के अनुसार ''जेरूशलम लोगों को पागल बना देता है।'' कई बार पर्यटक यहाँ अपने

को राजा डेविड, मसीहा या जान द बैपरिस्ट मानने लगता है। इसी प्रकार की स्थिति दूसरी जगहों पर भी पैदा हो जाती है– फ्लोरेंस में ''उत्तेजक चित्रकारी'' के समक्ष पर्यटक बेकाबू हो जाते है। लंदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर कई पयटक अपने परिवारों से अलग–थलग और अकेले पड़ जाते है। इसे ''एयरपोर्ट सिंड्रोम'' कहते है।

पर्यटन उद्योग के कारण थाईलैण्ड फिलिपीन्स, अफ्रीका, और केरेबियन द्वीपों में वैश्यावृत्ति संकट के स्तर तक पहुंच गयी है। तीसरी दुनिया की कुछ सरकारों के समर्थन और अन्तराष्ट्रीय अपराध जगत की सक्रियता के कारण इसने संगठित उद्योग का रूप धारण कर लिया है। 1980 के दशक से यौन–पर्यटन में तेजी से वृद्धि हुई है, जर्मनी, हॉलैण्ड और यूरोप के कई देशों में यौन सेवाऐं खुले रूप में बेची जाने लगी है। अधिकांश यौन पर्यटक पश्चिम देशो से ही आते है। दुल्हन खरीदने की प्रथा भी चल पड़ी है। यूरोप व पश्चिम देशों के अमीरजादे एशियाई देशों में इसकी खरीददारी करते है। भारत में अरब देशो के अमीरजादे इस काम को कर रहे है। कभी–कभी किसी देश का वीजा प्राप्त करने या औरत को देश में प्रवेश दिलवाने हेतु विवाह का आवरण पहनाया जाता है, शादी करके गई, और विदेशों में काम करने वाली एशियाई औरतों को शारीरिक और मानसिक यातना से गुजरना पड़ता है।

भारत में यौन पर्यटन का बहुत अधिक प्रचलन नहीं हुआ है, एड्स जैसी बीमारियों का डर यौन पर्यटन को दूर रखने में सहायक हो रहा है। फिर भी इस दिशा में जागरूकता रखना जरूरी है।

पर्यावरण पर पर्यटन का प्रभाव– पर्यटन का पर्यावरण पर प्रभाव सापेक्षित रूप से नवीन घटक है। यह तीव्र गति से बढ़ रहा है अतः नियंत्रण की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। भारत में अति उच्च स्थलों पर बढ़ता भू–स्खलन, माल्या घाटी–टिहरी क्षेत्र व चम्बा क्षेत्र आदि में हुआ है। झीलों में बढ़ती गाद (सिल्ट) कश्मीर क्षेत्र की डल झील, डूलर झील, उड़ीसा की हिन्का झील, राजस्थान की उदयपुर झील आदि में समस्या बनी है। राजस्थान में मरूस्थलीय बालू के डिब्बों का स्थायित्व समाप्त हो रहा है। गौमुख, पिण्डारी, सतोपंथ हिमनद पीछे की ओर पृष्ठगामी हो रहें है। शीतकालीन खेलों यथा स्कीइंग व अन्य की वजह से उत्तरांचल व कश्मीर में गुलमर्ग क्षेत्रों का पर्यावरण प्रभावित हुआ है। साहसिक अभियानों यथा– पर्वतारोहण, ट्रेकिंग, राफ्टिंग आदि से क्षेत्र का भौतिक पर्यावरण प्रभावित होता है।

जैविक विविधता– भी बढ़ते पर्यटन से प्रभावित होती है, अनेक दुर्लभ जड़ी बूटियां पर्यावरण के दुष्परिणाम से प्रभावित हुई है, व्यापक रूप से होटलों का निर्माण, सड़कों का निर्माण वाहनो का आवागमन से जैव विविधता प्रभावित हो रही है। रूप कुंड में पाया जाने वाला ब्रम्हकमल, फूलों की घाटी की पुष्प विविधता, कश्मीर के मर्गो, हिमाचल के धौलाधार पर्वतीय घास क्षेत्र, उत्तरांचल के बुग्यालों, अरूणाचल के चारागाह आदि में जैवविविधता पर व्यापक प्रभाव पर्यटन से परिलक्षित हा रहा है।

सांस्कृतिक पर्यावरण के क्षेत्र में देश की विरासत गौरवमयी इतिहास के अवशेष, भारतीय परम्परायें, रस्में, खान–पान, जीवन्त कलाकृतियाँ पर्यटन से प्रभावित हो रही है। भारतीय संस्कृति पर भी पर्यटन का प्रभाव पड़ा है। इससे पहनावा, गीत–संगीत व रीति–रिवाज प्रभावित हुए हैं महिला व मदिरापान आदि के स्वच्छन्द उपभोग पर्यटन का दुष्परिणाम है। शास्त्रीय संगीत के स्थान पर पॉप म्यूजिक, जीन्स, टी–शर्ट का चलन, बढ़ते तलाक के मामले, संयुक्त परिवारों में टूटन, बढ़ते मानसिक रोग, विकृत मानसिकता, वयोवृद्ध तथा महिलाओं की बढ़ती उपक्षा जैसी समस्याऐं बढ़ रही है।

भारतीय खान–पान में विदेशी खान–पान का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, फास्ट फूड, पिज्जा बर्गर का चलन बढ़ रहा है। भारतीय मेले, पर्वो व त्योहारों पर भी पर्यटन का प्रभाव पड़ता है। व्यापार मेले, क्राफ्ट मेले, विदेशों में भारतीय उत्सव क माध्यम से ग्रामीण कलाकारों का शहरीकरण किया जा रहा है, इससे भारतीय ग्रामीण क्षेत्र प्रभावित हो रहा है।

निष्कर्ष

पर्यटन के दुष्परिणामों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस क्षेत्र में सरकारी प्रबंधन व स्थानीय निवासियों में पर्याप्त ताल–मेल की नितान्त आवश्यकता परिलक्षित होती है। निरन्तर जागरूकता व सक्रिय प्रबंधन से इसके दुष्परिणाम को कम किया जा सकता है।

पर्यटन में अनुकूल प्रभावों का विश्लेषण आवश्यक है। पर्यटन से अर्थव्यवस्था में सुधार, रोजगार, पर्यटक सुविधाओं तथा साधनों का विकास जैसे राजमार्गो का निर्माण, राजस्थान में पैलेस आन व्हील्स, हेरिटेज होटलो का विकास तथा धार्मिक व आध्यात्मिक क्षेत्रों का विकास सम्पूर्ण भारत में हुआ है परन्तु भारत की क्षेत्रीय विविधता, जैविक विविधता, गौरवमयी समृद्ध ऐतिहासिक विरासत, सांस्कृतिक परमपरायें, साहसिक एवं चुनौतीपूर्ण अभियानों एवं प्राकृतिक रमणीयता के बावजूद पर्यटन क्षेत्र अपेक्षित प्रगति नही कर सका है। अधिकांश होटल, डाक बंगले एवं पर्यटक कृतियाँ बिना किसी उपयोग के निरर्थक सिद्ध हो रही है। इस संदर्भ में निजी क्षेत्रों के निवेश को बढ़ावा मिलना चाहिए। साथ ही शिक्षा सैन्य तथा अन्य विभागों का प्रबंधन निजी क्षेत्र के साथ समन्वय बनाते हए किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

संदर्भः–

Ahsan, N., (1999) Solid waste management plan for Indian megacities, Indian Journal of Environmental Protection 19(2), 90-95

Datta, M., (1997) Waste Disposal in Engineered Landfills. Narosa publishing house, New Delhi, India.

Evans, R.G. and Stoddart, G.L. (1990) Producing Health, Consuming Health Care, Social Sciences and Medicine 31(12):1347-1363.

————————

पर्यटन उद्योग एवं पर्यावरणीय अवनयन

धनसिंह आकरे
सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य)
शासकीय महाविद्यालय,
तामिया, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

वर्तमान भूमंडलीय युग में पर्यटन और पर्यावरण वैश्विक स्तर पर कहीं वरदान और कहीं अभिशाप बनकर लोगों के मनोमस्तिष्क को झकझोर रहे हैं। मनुष्य प्रकृति की अनुपम रचना है। इस पृथ्वी पर आदिमकाल से सभी जीव–जन्तु एवं मनुष्य पर्यावरण की ही देन हैं। शुद्ध एवं स्वच्छ पर्यावरण में ही सभी सजीव एवं मनुष्य स्वस्थ एवं जीवित रह सकते हैं। वर्तमान समय में भौतिकता की अंधी दौड़ में, मानव के हस्तक्षेप से पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न हो चुका है।

संपूर्ण ब्रह्मांड में सर्वत्र गति ही व्याप्त है। भारतीय ग्रंथों में कहा गया है– चरैवेति–चरैवेति अर्थात् चलते रहो–चलते रहो। सदैव चलने को ही हमारे यहाँ जीवन माना गया है। कहा जाता है,व्यक्ति यदि चले नहीं तो उसके होने या न होने की किसी भी प्रकार से कोई सार्थकता नहीं है। यहॉ चलने का अर्थ भ्रमण या यात्रा से है, ऐसी यात्रा जो हमें किसी मंजिल की ओर ले जाती है। जब भ्रमण आत्मिक शांति, जिज्ञासा शांत करने, प्राकृतिक सौंदर्य निहारने,सैर सपाटा करने एवं मनोविनोदन आदि से जुड़ जाता है तो यही भ्रमण कालांतर में पर्यटन बन जाता है। वर्तमान में वैश्विक स्तर पर पर्यटन को एक उद्योग का दर्जा प्रदान किया जा चुका है। पर्यटन बिना, चिमनी, धुएँ औरे बिन मशीन का एक ऐसा उद्योग उभर कर सामने आया है, जो लोगों को स्थान विशेष की तरफ आकर्षित करने, उन्हें वहॉ तक पहुँचाने, आवासित कराने, खान–पान एवं मनोरंजन की व्यवस्था करने और अंत में उन्हें वापस उनके घर पहुँचाने से संबंधित है। भारतीय योजना आयोग ने वर्ष 2020 तक रोजगार के जो क्षेत्र चिन्हित किए हैं, उनमें पर्यटन उद्योग का स्थान सर्वोपरि है। विश्व पर्यटन संगठन के अनुमान के मुताबिक 2025 तक पर्यटन उद्योग अंतरिक्ष में अपनी जड़ें जमा चुका होगा।

आज संपूर्ण विश्व यदि किसी समस्या को लेकर सबसे ज्यादा चिंतित है तो वह पर्यावरण प्रदूषण की समस्या है। विकास की प्रक्रिया में नित नई–नई खोज के लिए आतुर मानव ने जहाँ एक ओर अनोखी उपलब्धियाँ हासिल की हैं, वहीं दूसरी ओर उसके कृत्यों से पर्यावरण में गंभीर असंतुलन उत्पन्न हो गया है। विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य को यह भान तक नहीं हुआ, कि वह विकास नहीं विनाश की ओर तेजी से भाग रहा है और जब इस बात का अहसास हुआ, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। आज पर्यावरण असंतुलन से सारी धरती और सारा आकाश प्रभावित हो रहा है। वायुमंडल दूषित हो गया है। ओजोन की परत में दिन–प्रति दिन क्षरण होने से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। मौसम का क्रम बिगड़ रहा है, पानी के परंपरागत स्त्रोत सूखने

लगे हैं, भूमि की उर्वरा शक्ति तजी से क्षींण हो रही है, भूक्षरण, मिट्टी कटाव, बाढ़, अकाल, तेजाबी वर्षा आदि की विभीषिका बढ़ रही है, बंजर–क्षेत्र तथा रेगिस्तान फैलते जा रहे हैं, विश्व–भर में रिकार्ड तोड़ शीत का आलम देखते हुए मौसमविद् चेतावनी दे रहे हैं कि बासंती मौसम जल्द ही हिम युग में तब्दील हो जाएगा और भविष्य की सुरक्षा तथा सुख शांति पर प्रश्न चिन्ह लगने लगेगा।

पर्यावरण संरक्षण हेतु केवल एक दिन ही पर्यावरण दिवस मनाना पर्याप्त नहीं है। बल्कि इसके लिए पूरे 365 दिन चाहिए । हर रोज हर पल हमें प्रयास करने होंगे। हमारी वर्तमान एवं भावी पोढ़ियों के हक में पर्यावरण की सुरक्षा एवं अभिवृद्धि का संकल्प लेने की आज परम आवश्यकता है।

पर्यटन उद्योगः– मनुष्य जन्म् से ही जिज्ञासु प्राणी है। जिज्ञासा यात्रा को जन्म देती है और जिज्ञासापूर्ण यात्रा ही पर्यटन को जन्म् देती है। मार्कट्वेन पर्यटन को बदलाव का एक बेहतरीन साधन बताते हुये इसे मानवीय नियति से भी जोड़ते है। उनके अनुसार ''स्वर्ग भी थोड़े समय बाद उबाऊ बन जाता है। स्तरीय जिंदगी बिताने के लिए बदलाव बेहद् जरूरी है और पर्यटन इसका साधन है''। वर्तमान समय में पर्यटन एक उघोग का रूप ले चुका है। वास्तव में पर्यटन एक बहुआयामी उघोग है अर्थात् पर्यटन स्थल से जुड़े अनेक घटक मिलकर पर्यटन को उघोग का स्वरूप प्रदान करते हैं। विश्व के अधिकाधिक देश पर्यटन को उद्योग की श्रेणी में रखते जा रहे हैं। डब्ल्यू .टी.ओ. के अनुसार ''पर्यटन संसार का सबसे बड़ा निर्यात उद्योग है''। कुछ देशों के लिए पर्यटन उद्योग, उस देश की जीवन–रेखा स्वरूप है।

न्यूयार्क टाइम्स के एक लेख के अनुसार ''भारत अत्यंत प्राचीन सुंदर और रंगों से भरा देश है''। वर्ल्ड ट्रेवल एंड टूरिज्म कांउसिल के अनुसार ''2018 तक भारत दुनिया का सबसे सक्रिय टूरिस्ट स्पॉट होगा''। भारत में पयटन उद्योग आज बहुत तेजी से विकास कर रहा है और इसका भविष्य बेहद् उज्जवल है। हालांकि समग्र परिदृश्य उत्साहजनक दिखता है परंतु आज भी भारत, विश्व स्तरीय पर्यटन के परिप्रेक्ष्य में अपार संभावनाओं के उपरांत भी काफी पिछड़ा हुआ है। विश्व के सबसे बड़े उद्योग के रूप मे पर्यटन आज अपनी विशेष पहचान बना चुका है। यात्रा एवं पर्यटन उद्योग तथा यात्रा एवं पर्यटन अर्थव्यवस्था का विश्व जी.डी.पी. को क्रमशः 4.2 प्रतिशत तथा 10.7 प्रतिशत का अंशदान है। पर्यटन रोजगार सृजन में भी वैश्विक भूमिका निभा रहा है। विश्व के सकल रोजगार में पर्यटन द्वारा सृजित रोजगार का हिस्सा 0.2 प्रतिशत आंका गया है।

विश्व में पर्यटन उद्योग के तेजी से बढ़ने के साथ–साथ लोग पर्यावरण पर पर्यटन उद्योग के प्रभाव को लेकर चिंतित हैं। धीरे–धीरे यह चिंता विरोध का रूप ले रहा है और लोग अनियंत्रित पर्यटन उद्योग के खिलाफ होते जा रहे हैं। कुछ देशों द्वारा पर्यावरण संरक्षण संबंधी कानून भी बनाये गये हैं, भारत उन देशों में से एक है। औद्योगिकीकरण से सम्पन्नता आई, जिससे पर्यटन को बढ़ावा मिला और पर्यटन उद्योग की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

पर्यावरण का और भी अवनयन हुआ। यह कहना सही नही है, कि पर्यटन उद्योग के विकास ने पर्यावरण को नष्ट किया है, क्योंकि पर्यटन उद्योग आधुनिक संदर्भ में केवल 50–60 वर्ष पुराना है और पर्यावरण ह्रास का सिलसिला औद्योगिक क्रांति के युग से प्रारंभ हुआ था। जनसंख्या विस्फोट उसके लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है। बढ़ती जनसंख्या की बढ़ती मांग के कारण अधिक भोजन, अधिक आवास, अधिक उद्योग धंधे, अधिक यातायात, अधिक सड़क तथा रेल की आवश्यकता बढ़ी और जंगल कटे, पर्यावरण का अवनयन हुआ। प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक दोहन हुआ, परंतु किसी ने भी प्रकृति को अपने पूर्ण रूप में वापस लाने की कोशिश नहीं की। पृथ्वी की सतह को यूं ही जंगल विहीन, वीरान, खुदी हुई, घाव समेत छोड़ दिया, जिसके दुष्परिणाम आज हम भुगत रहे हैं। औद्योगिक प्रगति के साथ–साथ हमने हवा तथा पानी को भी प्रदूषित कर दिया है। समद्री तटों में जीवों का बचे रहना मुश्किल हो गया है।

पर्यावरण– मानव इस धरती पर जब से आया है तब से लगातार विकास ही कर रहा है। निरंतर औद्योगिक विकास के नाम पर मानव आज प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय संसाधनों का अविवेकपूर्ण एवं अदूरदर्शी विदोहन में लगा हुआ है। उपभोक्तावादी और अर्थलोलुप मानव सुख समृद्धि की पिपासा लिए हुये पारिस्थितिकीय संतुलन को बिगाड़ने व पर्यावरण को प्रदूषित करने पर तुला हुआ है। जिसके कारण विकास आज विनाश का पर्याय बन चुका है। अनंत काल से हमारे संत और महात्मा ''पृथ्वी हमारी माता है और हम इसकी संतान है''। सूत्र वाक्य प्रचारित एवं प्रसारित करते रहे हैं। पर्यावरण अर्थात् हमारे आसपास का वातावरण। यह पेड़–पौधे और सम्पूर्ण जीव जगत को जीवन देता है, साथ–साथ जीवों को जीने योग्य वातावरण की संरचना भी प्रदान करता है। पर्यावरण को हमारे यहां भगवान की संज्ञा दी गई है। भ–भूमि(पृथ्वी), ग–गगन (आकाश), व–वायु (हवा), अ–अग्नि (आग), न–नीर (जल)– 'भगवान' शब्द के प्रत्येक अक्षर को देखें तो ये सभी मिलकर पर्यावरण को ही इंगित करते हैं। भारतीय दर्शन में मानव जीवन के निर्माण में जल, वायु, भूमि, अग्नि तथा आकाश पंच तत्वों का योग बतलाया गया है।

पर्यावरण में जल, वायु, वन, जैवकीय तथा अन्य प्राकृतिक संसाधन शामिल हैं। प्राकृतिक संसाधन भोजन, आजीविका और पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत अपरिहार्य हैं। इनके संरक्षण और निरंतर उपयोग की चुनौतियां बडी गंभीर हैं। भारत में पर्यावरण को हमेशा मानव जीवन का एक प्रमुख अंग माना गया है। पर्यावरण रक्षण की बातें हमारे प्राचीन ग्रंथों में, वेदों और पुराणों में भी कही गई हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि ''मैं जो कुछ प्रकृति से लेता हूं वो शीघ्र ही भर जाये। हे देवता, हमें तुम्हारी सृष्टि को बिगाड़ना नही है''। महात्मा गांधी ने कहा था ''प्रकृति के पास सभी जीवों को पालने लायक सभी संसाधन हैं, पर मनुष्य के लालच को पूरा नही कर सकती''। प्रकृति ने सदैव मानव का साथ दिया लेकिन मानव की घोर भौतिकवादी प्रवृत्ति, तीव्र औद्योगिकीकरण, प्राकृतिक संसाधनों के क्रूरतापूर्ण दोहन ने प्रकृति की मूल संरचना और व्यवस्था में भारी असंतुलन पैदा कर दिया है, जिसके दुष्परिणाम हमें बाढ़, भूस्खलन, भूकम्प,

सूखा, पृथ्वी का गरम होना, ओजोन परत में छिद्र होना, अम्लीय वर्षा, तथा विभिन्न मानवीय रोगों के रूप में दिखाई दे रहे हैं। भौतिक सुख सुविधाओं की लालसा के प्रतिफल में मानव ने न केवल मानव जाति बल्कि समूचे प्राणी एवं जीव जगत को भी गहन संकट में डाल दिया है।

पर्यावरण प्रदूषण– पर्यावरण और पारिस्थितिकीय तंत्र से मानव द्वारा छेडछाड़ किये जाने के कारण पारिस्थितिकी असंतुलन पैदा होता है तथा पारिस्थितिकीय तंत्र में आने वाला असंतुलन समस्त जीवमंडल को प्रदूषित कर देता है। जीव–मंडलीय प्रदूषण ही पर्यावरण प्रदूषण के रूप में हमारे सामने आता है। पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख रूप, ये हैं –

वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, तापीय प्रदूषण, अम्लीय वर्षा, ओजोन परत में छिद्र, रेडियोधर्मी प्रदूषण।

पर्यटन उद्योग तथा पर्यावरणीय अवनयन– स्वस्थ पर्यावरण, चाहे वह प्राकृतिक हो या मानवकृत, पर्यटन के लिए आधारभूत संरचना है, परंतु उन स्थलों पर पर्यटन प्रारंभ होते ही वे बिगड़ने लगते हैं, क्योंकि वहां पर्यटकों की सुविधा को ही प्राथमिकता दी जाती है। इसके कुछ उदाहरण है– जंगलों में वन्य प्राणियों का ह्रास, जल का प्रदूषित होना, समुद्रतटीय पर्यटन स्थलों में प्रदूषण तथा पर्वतीय पर्यटन स्थलों पर भूमि का कटाव एवं प्रदूषण के बढ़ते कदम। अत्यधिक पर्यटन से सुंदर एवं रमणीय स्थलों में परिवर्तन आ जाता है। पर्यटकों के लिए, होटल, रेस्टारेंट या विश्राम स्थल, क्रीड़ा स्थल बनाने पर भू–आकृति में परिवर्तन आ जाता है। भूमि के उपयोग बदल जाते हैं। सुंदर प्राकृतिक स्थल कुरूप दिखने लगते हैं।

तीव्र तकनीकी और औद्योगिक विकास ने मानव को सर्वसुविधायुक्त जीवन तो प्रदान कर दिया है परंतु अति विकास होने से पर्यावरण में अवनयन आया है। बड़ी संख्या में पर्यटकों के आगमन के कारण अधिक से अधिक यातायात साधनों की व्यवस्था करनी पड़ती है। फलस्वरूप सड़क, रेल एवं हवाई यातायात में ऊर्जा की अधिक खपत एवं वायु प्रदूषित होती है। जहाज या नाव से फेंके गये कचरे से जल प्रदूषण होता है। नदी व समुद्री बीच पर अत्यधिक संख्या में पर्यटकों के आने से तटीय पानी गंदा हो जाता है जिससे बीमारी फैलने का डर बना रहता है। प्राकृतिक तथा मानवकृत पर्यावरण, पर्यटन का अभिन्न अंग है। अगर हमें पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देना है तो पर्यावरण में कुछ बदलाव तो जरूरी हैं, पर वे बदलाव विध्वंसात्मक न होकर रूचिकर, कलात्मक हों।

पर्यटन उद्योग के विकास होने पर किसी भी पर्यटन स्थल पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। वह प्रभाव सकारात्मक या नकारात्मक दोनों ही हो सकते हैं। पर्यटन उद्योग का पर्यावरण पर भी प्रभाव पड़ता है और ज्यादातर नकारात्मक प्रभाव ही पड़ता है परंतु सही योजना के द्वारा उस दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है तथा सकारात्मक बदलाव को प्रमुखता दी जा सकती है।

पर्यटन उद्योग और पर्यावरणीय विकास– जब किसी स्थान पर औद्योगिक अवस्था विकसित

होती है तो उससे आर्थिक विकास को तो बल प्राप्त होता है, किन्तु उस स्थान पर अनेक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय समस्याएं तेजी से जन्म् लेने लगती हैं। किन्तु पर्यटन ही एक मात्र ऐसा उद्योग है, जो आर्थिक विकास को आगे बढाता है तो सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक विकास को भी प्रोत्साहित करता है, महिलाओं के विकास के लिए नये आयाम प्रस्तुत करता है और पर्यावरणीय रक्षण मार्ग को भो प्रशस्त करता है। चूंकि पर्यटन उद्योग समन्वित विकास और संतुलित विकास का प्रभावशाली माध्यम है। अतः यह स्वाभाविक रूप से सतत् विकास का भी कारक बन जाता है विशेषकर ईको–टूरिज्म सतत् विकास और पर्यावरण संरक्षण का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा भी नहीं है कि पर्यटन उद्योग का क्षेत्र पूर्णतया त्रटिरहित या दोषमुक्त हो और सतत् विकास में इसकी भूमिका शत्–प्रतिशत सहचरी हो। चूंकि पर्यटन उद्योग, एक नवीन उद्योग है जो पूर्णतः मानव द्वारा संचालित होने वाली प्रक्रिया है। अतः इसके कुछ कार्य समग्र विकास मे कहीं न कहीं बाधा अवश्य पहुंचाते है। सामाजिक, सांस्कृतिक समस्याएं, पर्यावरणीय बाधाएं, राष्ट्रीय सुरक्षा की समस्या, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर दुष्प्रभाव आदि कार्य समग्र विकास में पर्यटन उद्योग की सीमाओं के रूप में स्वीकार किये जाने चाहिए।

इको–पर्यटन और पर्यावरणीय संरक्षण– आज विश्व में पर्यटन सबसे तेज गति से बढ़ने वाला उद्योग है। यह उद्योग 23 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से आगे बढ़ रहा है। शुभ संकेतों के बावजूद वर्तमान समय में दुनिया के तमाम दश पर्यटन के पारंपरिक स्वरूपों (यथा प्राकृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक,सांस्कृतिक पर्यटन) के कारण उत्पन्न अनेक दुष्प्रभावों का सामना कर रहे हैं। पर्यटन के ये स्वरूप अनेक समस्याओं को जन्म् दे रहे हैं। जैसे–यौन समस्याएं, अपराधों में वृद्धि, पर्यटन स्थलों की संवहन क्षमता पर अतिक्रमण, सामाजिक प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण, पर्यावरणीय प्रदूषण, पारिस्थितिकी तंत्र पर दुष्प्रभाव आदि। ऐसी स्थिति म ईको पर्यटन का महत्व काफी बढ़ जाता है, क्योंकि ईको पर्यटन पर्यावरणीय संरक्षण और पारिस्थितिकी तंत्रीय विकास को प्रोत्साहित करता है।

वर्तमान परिपेक्ष्य में दो बातें महत्वपूर्ण हैं, जो हमारे सामने आती हैं–एक पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण अपरिहार्य है और दूसरे ईको पर्यटन द्वारा इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। ईको पर्यटन, पर्यटन का नवीन स्वरूप है। इंटरनेशनल ईको टूरिज्म सोसायटी 1991 के अनुसार ''ईको पर्यटन, प्राकृतिक क्षेत्रों की वह उत्तरदायी यात्रा है, जिसमें न केवल पर्यावरण संरक्षण को बल मिलता है, अपितु स्थानीय लोगों के कल्याण को सतत्ता भी प्राप्त होती है''।

ईको टूरिज्म का मुख्य उद्देश्य जन साधारण में प्रकृति के प्रति लगाव उत्पन्न करना, विशेषकर उन्हें वन्य प्राणियों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर संरक्षित क्षेत्रों के संरक्षण के प्रति जागरूक करना है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, पर्यावरण सुरक्षा एवं सामाजिक अनुकूलता के साथ–साथ स्थानीय समुदायों व वनाश्रित समुदायों को पर्यटन से होने वाले लाभों में सहभागी

बनाकर आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक लाभ पहुंचाना भी है।

ईको पर्यटन सतत् विकास का एवं पर्यावरण संरक्षण का अचूक अस्त्र है क्योंकि ईको पर्यटन –

1. पारिस्थितिकी तंत्र के असंतुलन को दूर करने का प्रयास करता है।
2. पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण स्थापित करता है।
3. जैव विविधता संरक्षण का पक्षधर है।
4. प्राकृतिक क्षेत्रों के संरक्षण की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।
5. स्थानीय लोगों के रोजगार की व्यवस्था करता है।

पर्यटन के पारंपरिक स्वरूप, पर्यटकों को मात्र एक भ्रमणकर्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो आते हैं और चले जाते हैं। किन्तु ईको पर्यटन, ईको पर्यटकों के रूप में मित्र उत्पन्न करता है, जो उन्नति में सहायक बनते हैं। अन्य शब्दा में ईको पर्यटन, पर्यटन स्थल और पर्यटकों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने का पक्षधर है।

मध्यप्रदेश में ईको पर्यटनः– मध्यप्रदेश अतुल्य भारत का हृदय है। हृदय को स्वस्थ रखने से पूरा शरीर स्वस्थ रहता है। अतः हृदय प्रदेश, मध्यप्रदेश के 31 प्रतिशत भू–भाग म स्थित वनों को ईको पर्यटन के माध्यम से सुरक्षित एवं संरक्षित रखने के संकल्प और प्रदेश में ईको पर्यटन की असीम संभावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए म.प्र. में देश का प्रथम ईको पर्यटन बोर्ड 12.07.05 को गठित किया गया। म.प्र. ईको पर्यटन बोर्ड द्वारा अपने 25 विकसित हो चुके गंतव्य स्थलों के अतिरिक्त छिन्दवाड़ा सहित 75 अन्य स्थानों पर ईको पर्यटन केन्द्र विकसित किए जा रहे हैं। ईको बोर्ड द्वारा अल्प समय में ही प्रदेश को राष्ट्रीय स्तर के पर्यटन स्थलों के साथ जोड़कर, इसे ईको पर्यटन क्षेत्र घोषित किया गया, यह कार्य निश्चित ही सराहनीय है।

छिन्दवाड़ा जिले में ईको पर्यटन– मध्यप्रदेश के 11 जिलों में ईको पर्यटन स्थलों का चयन किया गया है। इनमें ग्रीनलैंड छिन्दवाड़ा, सिवनी और होशंगाबाद जिलों में ईको पर्यटन को बढ़ावा देने की व्यापक संभावनाएं हैं। छिन्दवाड़ा जिले के ऐसे स्थान जो प्राकृतिक रूप से खास पहचान रखते हैं जैसे– वनक्षेत्र, जलस्त्रोत (नदी, झरने, प्रपात, तालाब, झीलें आदि) भू–दृश्य, ऐतिहासिक, पुरातात्विक, धार्मिक, सांस्कृतिक महत्ता वाले स्थान, ज्यादा वन्य प्राणियों वाले क्षेत्रों के महत्वपूर्ण स्थलों को ईको पर्यटन के तहत् विकसित कर पर्यटकों के देखने, समझने तथा भ्रमण लायक बनाया जा सकता है।

सतपुड़ा पर्वत श्रृंखलाओं की गोद में बसे छिन्दवाड़ा जिले को प्रकृति ने अपने मुक्त हाथों से अनमोल मोती (दर्शनीय स्थल) उपहार स्वरूप प्रदान किए हैं। भरपूर नैसर्गिक संपदा, अनेक ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों की मौजूदगी के बावजूद भी छिन्दवाड़ा जिला पर्यटन नक्शे पर अपना स्थान नहीं बना पाया है। जिले में पर्यटन विकास की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं, जिले में कई स्थल ऐसे हैं, जो काफी खूबसूरत और दर्शनीय हैं। यदि प्रशासन इन स्थलों के विकास

पर पर्याप्त ध्यान दे और समुचित साधन सुविधाएं उपलब्ध करवाए तो साधारण दिखने वाले स्थल भी प्रसिद्ध पर्यटन स्थल बनाए जा सकते हैं।

छिन्दवाड़ा जिले में प्रकृति ने तामिया–पातालकोट जैसे अद्वितीय नैसर्गिक स्थल प्रदाय किए है, पेंच–कन्हान जैसी सदानीरा नदियों की भेंट दी है, कुकडोखापा, घोघरा, लिलाही जैसे मन मोहक झरने तथा पपात उपहार स्वरूप दिए हैं। अमोनी–समोनी जैसे गर्म जलकुंड, सतधारा–पंचधारा जैसी जलधाराएं वरदान में दी हैं। वहीं जिले में पहली पायरी जुन्नारदेव, चौड़ागढ़–महादेव, अर्ध्दज्योतिलिंग–मोहगांव हवेली, कोसमी हनुमान, जाम सांवली हनुमान, पातालेश्वर धाम–छिन्दवाड़ा, राधादेवी गुफा–बिछुआ, हिंगलाजदेवी मंदिर–अंबाड़ा, दादा दरबार–आंचलकुंड जैसे असीम धार्मिक आस्था–विश्वास के केन्द्र मौजूद हैं। जिले में नैसर्गिक बाहुल्य से ईको पर्यटन, धार्मिक स्थलों से धार्मिक पर्यटन और ऐतिहासिक स्थलों से ऐतिहासिक पर्यटन की प्रबल संभावनाएं हैं।

छिन्दवाड़ा जिला पेंच और सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान से घिरा हुआ है। इसके अलावा पचमढ़ी जैसा प्रसिद्ध पर्यटन स्थल जिले की सीमा से लगा हुआ है। तामिया–पातालकोट जैसे अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य स्थल मौजूद हैं। जिल का अधिकांश भू–भाग वनों से आच्छादित और सुंदर पहाड़ियों से सुशोभित है। ऐसी स्थिति में यहां ईको पर्यटन विकास की भरपूर संभावनाएं मौजूद हैं और यह ईको टूरिज्म, पर्यावरण संरक्षण तथा जिले की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

सारांश –

औद्योगिकीकरण से निश्चित ही सम्पन्नता आई है जिसने पर्यटन एवं पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहित किया एवं खूब बढ़ावा दिया। आज पर्यटन दुनिया के सबसे अग्रणी उद्योग के रूप में उभरकर हमारे सामने आया है। तीव्र औद्योगिकीकरण से पर्यावरण को जो नुकसान हुआ है, वह हमारे अनुमान, हमारी समझ और ज्ञान तथा लेखन से परे है। यदि समय रहते पर्यावरण प्रदूषण समस्या का हल न ढूंढा गया तो मानव के साथ–साथ पशु–पक्षियों, जीव–जंतुओं सहित संपूर्ण जीव जगत और ब्रह्मांड का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा । निरंतर आर्थिक विकास, अधिकाधिक संपन्नता और सुख सुविधा प्राप्त करने के कुत्सित प्रयास में विश्व समुदाय ने अपनी पारिस्थितिकी और पर्यावरण को विनाश के कगार पर पहुंचा दिया है अगर हम अपने देश की बात करें तो बेशक पर्यावरण हमारी चर्चाओं में है, भाषणों में है, लेखों में है, लेकिन पर्यावरण रक्षण संबंधी सारी बातें व्यवहार से नदारद् है। लगता है जैसे हमें आने वाले खतरों की सुध ही नही है।

हमने बेतहाशा तरक्की तो कर ली है, अपनी जेबें और घर तो भर लिए हैं परंतु आगामी पीढ़ियों को स्वस्थ रखने एवं जीवन प्रदान करने के सभी मार्ग अवरूध्द कर दिए हैं। इसीलिए इस बात पर विश्व समुदाय द्वारा गंभीर चिंतन–मनन और विचार मंथन करना चाहिए कि किस प्रकार हम अपनी पारिस्थितिकी और पर्यावरण को सुरक्षित और संरक्षित रखते हुए सतत् विकास प्राप्त

कर सकते हैं। इसका एक मात्र उपाय है–''बिना विनाश किए विकास करना'' अर्थात् इस प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया जाये तथा ऐसी गतिविधियों को अपनाया जाये जो पर्यावरण संरक्षण को ज्यादा से ज्यादा प्रोत्साहित कर सकें।

पर्यटन उद्योग के निरंतर बढते चरण तथा पर्यावरणीय ह्रास से बचने के लिए ईको पर्यटन को बढावा दिया जा सकता है। विश्व में पर्यावरण प्रदूषण को लेकर जो चिंतन–मनन किया जा रहा और जो शोध अध्ययन एवं अनुसंधान किए जा रहे हैं, ईको पर्यटन इसी श्रखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है जिसे पर्यावरण संरक्षण के लिए एक अचूक अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता ह। ईको पर्यटन से न केवल हमारी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति होती है बल्कि संरक्षित पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र हमारी भावी पीढ़ियों की जरूरतों की समुचित व्यवस्था भी करता है। ईको पर्यटन से नकारात्मक प्रभाव कम और सकारात्मक प्रभाव ज्यादा दृष्टिगोचर होते ह और संपन्नता भी आती है। यही हमारी सतत् विकास की संकल्पना भी है। समग्र रूप में देखा जाये तो पर्यटन उद्योग अपने आप में पर्यावरण पर ही आधारित एक बृहद् उद्योग है और ईको पर्यटन इसके आखिरी अध्याय के रूप में चिह्नित हुआ है, जिसमें पारिस्थितिकी संतुलन और पर्यावरण संरक्षण को सर्वोपरि रखा जाता है और इनकी ही वकालत भी की जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

''पर्यावरण संचेतना'' (2010) इन्वायरमेंटल केयर एंड सस्टेनेबल डेवलपमेंट सोसायटी, जबलपुर,म.प्र.

''ईको पर्यटन एक परिचय'' म.प्र.ईको पर्यटन विकास बोर्ड, भोपाल (फोल्डर)

''ईको पर्यटन मार्गदर्शिका'' ईको पर्यटन विकास बोर्ड, भोपाल (पत्रिका) (2012)

''म.प्र.में ईको पर्यटन विकास'' अवधारण दस्तावेज म.प्र.ईको पर्यटन विकास बोर्ड, भोपाल, (2013)

''डिस्ट्रिक्ट गजेटियर'', छिन्दवाड़ा, संस्कृति संचालनालय भोपाल, (1995)

ओक्टे मारूतीराव, (1993) ''छिन्दवाड़ा क्षितिज'', हिन्दी प्रचारिणी समिति, छिन्दवाड़ा।

तिवारी, कपिलदेव, (2009)''छिन्दवाड़ा दर्पण'', अरूणोदय प्रकाशन, नई दिल्ली।

शर्मा, राजीव एवं द्विवेदी धनंजय, (2007)''पर्यावरण अध्ययन'', देवी अहिल्या प्रकाशन, इन्दौर म.प्र.

सक्सेना, एस.एम.एवं माहन, सीमा (2010)''पर्यावरण अध्ययन'' कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।

कुमार राजीव (2009) ''औद्योगिक पर्यावरण'' अर्जुन पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।

खरे एवं सिन्हा (2004)''औद्योगिक समाज विज्ञान'' नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।

दीक्षित एवं गुप्ता (2009) ''पर्यटन के विविध आयाम'' तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

व्यास,राजेश कुमार (2007) ''भारत में पर्यटन'' विद्या विहार, नई दिल्ली।

जोशी,कुमार एवं महिमा जोशी (2010) ''भारत में आधुनिक पर्यटन'' रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली

दासगुप्ता, पापिया (2004) ''पर्यटन एक अध्ययन'' म.प्र.हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

————————

''ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन'' : एक अध्ययन

डॉ. आर. पी. यादव,
विभागाध्यक्ष भूगोल
शासकीय महाविद्यालय बिछुआ
डॉ0 मनीता कौर
अतिथि विद्वान

शोध सारांश :–

ग्लोबल वार्मिंग 21वीं सदी का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है,जो हमारे वैश्विक समाज की संरचना को चुनौति देता है। ग्लोबल वार्मिंग,वातावरण में ग्रीन हाउस गैसो की भारी वृद्धि के कारण होता है। बिजली उत्पादन में जीवाश्म ईंधन का लगातार उपयोग किया जा रहा है। इन ईंधनों के जलने से कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस आक्साइड जैसी गैसे निकलती है जिससे ग्लोबल वार्मिंग का खतरा लगातार पृथ्वी के पर्यावरण को बड़ा नुकसान पहुंचा रहा है। उर्जा के नवीनकरणीय स्त्रोतों को खोजना और उनका उपयोग करना आवश्यक हो गया है। इन्ही समस्याओं के समाधान खोजने का एक छोटा सा प्रयत्न इस शाध पत्र में किया गया, कैसे और क्यों परिवर्तन हो रहे है। जलवायु परिवर्तन के पूर्वानुमानित प्रभाव को देखना, खोज करना, प्रस्तावित समाधानों की व्याख्या करना।

परिभाषिक शब्दावली :– कार्बन डाइऑक्साइड, ग्लोबल वार्मिंग, तापमान, जलवायु परिवर्तन।

प्रस्तावना :– ग्लोबल वार्मिंग या वैश्विक तापमान बढ़ने का मतलब है कि पृथ्वी लगातार गर्म होती जा रही है। वैज्ञानिको का कहना है कि आने वाले दिनों में सूखा की समस्या बढेगी, बाढ़ की घटनायें बढेगी और मौसम का मिजाज पूरी तरह बदला हुआ दिखेगा। ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन औसत वैश्विक तापमान में वृद्धि को संदर्भित करते है। माना जाता है कि प्राकृतिक घटनाओं और मानवीय गतिविधियों को औसत वैश्विक तापमान में इस तरह की वृद्धि का मुख्य कारण माना जाता है। जलवायु परिवर्तन, वाहनों, कारखानों और बिजली स्टेशनों से कार्बन डायआक्॔साइड के बढ़ते उत्सर्जन के कारण, न केवल वायु मंडल और समुद्र को प्रभावित करेगा, बल्कि पृथ्वी के भूविज्ञान को भी बदल देगा। जीवाश्म उर्जा के हमारे उपयोग के कारण कार्बन डायआक्॔साइड के उर्त्सजन से जलवायु बदलाव होगा। आईपीसीसी की भविष्यवाणी के अनुसार हमारे मौजुदा औसत तापमान में 1.7 डिग्री सेल्सियस की जबरदस्त वृद्धि है। इससे हमारी सभ्यता में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के बदलाव हो सकते है, लेकिन वर्तमान में हमारे समाज पर कुल प्रभाव बहुत अनिश्चित है। ग्रीन हाउस गैसों के कारण ''उबलते और मंथन'' प्रभाव के कारण हमारा वातावरण गर्म, अधिक अशांत और अधिक अप्रत्याशित हो रहा है। ग्लोबल वार्मिंग

21 वी सदी का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है, जो हमारे वैश्विक समाज की संरचना को चुनौति देता है। पृथ्वी के तापमान में हो रही वृद्धि (जिसे 100 सालों के औसत तापमान पर 01 डिग्री फारेनहाइट आंका गया है, के परिणाम स्वरूप बारिश के तरिकों में बदलाव, हिमखंडों और ग्लेशियरों के पिघलने, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि और वनस्पति तथा जंतु जगत पर प्रभावों के रूप में सामने आ सकते है।)

अध्ययन क्षेत्र :– प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र ग्लोबल वार्मिंग के प्रभावों पर केंद्रित है।

अध्ययन के उद्देश्य –

- लोगों को जागरूक करना।
- उन माध्यमों का पता लगाना जिससे पृथ्वी को गर्म होने से बचाया जा सके।
- प्रकृति को बचाने के लिए प्रयास करना।
- जलवायु परिवर्तन के कारण स्थानीय पादप और जीव जंतुओं की प्रजातियों को समाप्त होने से रोकना।

आंकड़ो का संकलन – द्वितीयक संमको का संकलन, विषय से संबंधित पूर्व में किए गए प्रकाशित शोध

ग्रंथों, पत्र–पत्रिकाओं तथा इंटरनेट आदि के माध्यमों से तथ्य संकलित किये गये।

प्रविधि – प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रंथालय अध्ययन पद्धति के साथ विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया।

विश्लेषण :– ग्रीन हाउस गैसें वह गैस होती है जो पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश कर यहां का तापमान बढ़ाने में कारण बनती है। वैज्ञानिको के अनुसार इन गैसों का उत्सर्जन यदि इसी प्रकार चलता रहा तो 21 वीं शताब्दी में पृथ्वी का तापमान 3 डिग्री से 8 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है। अगर ऐसा हुआ तो इसके परिणाम घातक होंगे। दुनिया के कई हिस्सों में बिछी बर्फ की चादरें पिघल जाएगी। समुद्र का जल स्तर कई फीट उपर तक बढ़ जाएगा। इससे दुनिया के कई हिस्से जलमग्न हो जाएगें, भारी तबाही होगी। यह तबाही किसी विश्वयुद्ध या किसी 'ऐस्टेराइॅड' के पृथ्वी से टकराने के बाद होने वाली तबाही से भी बढ़कर होगी। हमारे ग्रह पृथ्वी के लिए भी यह स्थिति बहुत हानिकारक होगीं। ग्रीन हाउस गैसो के उत्सर्जन से उष्ण कटिबंधीय रेगिस्तानों में नमी बढ़ेगी। मैदानी इलाकों में भी इतनी गर्मी पड़ेगी जिनती कभी इतिहास में नहीं पडी। इसी वजह से विभिन्न प्रकार की जानलेवा बीमारियां पैदा होगी। वर्तमान में विश्व ग्लोबल वार्मिंग के बढ़ते सवालों से जूझ रहा है। इस सवाल का जवाब जानने के लिए विश्व के अनेक देशों में वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोग आर खोजें हुई है। उनके अनुसार अगर प्रदूषण फैलने की रफ्तार इसी तरह बढ़ती रही तो अगले दो दशकों में धरती का औसत तापमान 0.3 डिग्री सेल्सियस प्रति दशक के दर से बढेगा, जो चिंताजनक हैं। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों ने 2015 तक नई जलवायु

संधि कराने के लिए पहला कदम उठाया था, और इस बात पर बातचीत शुरू की है कि वे किस तरह इस लक्ष्य को पूरा करेगें। यह संधि विकसित और विकासशील देशों पर लागू होगी। जिसे 2020 तक लागू कर दिया जायेगा।

वैज्ञानिको और पर्यावरणविदों का कहना है कि ग्लोबल वार्मिंग में कमी के लिए मुख्य रूप से सी. एफ.सी गैसों का उत्सर्जन रोकना होगा और इसके लिए फ्रिज, एयर कंडीशनर और दूसरे कूलिंग मशीनों का इस्तेमाल कम करना होगा या ऐसी मशीनों का उपयोग करना होगा जिससे सी.एफ.सी गैसें 3

कम निकलती है। अक्षय उर्जा के उपायों पर ध्यान देना होगा। यानि अगर कोयले से बनने वाली बिजली के बदले पवन उर्जा, सौर उर्जा, और पनबिजली पर ध्यान दिया जाए तो वातावरण को गर्म करने वाली गैसों पर नियंत्रण पाया जा सकता है तथा साथ ही जंगलों में आग लगने पर रोक लगानी होगी। इंटरगवर्नमेंट पैनल ऑन क्लाइमेंट चेंज (IPCC,2007) के अनुसार "20 वीं सदी के मध्य के बाद से जलवायु प्रणाली के उर्जा संतुलन में परिवर्तन को दर्शाता है, अर्थात् आने वाले सौर विकिरण और पृथ्वी से निवर्तमान अवरक्त विकिरण के बीच सापेक्ष संतुलन में परिवर्तन को दर्शाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार 28 जुलाई 2010 को राष्ट्रीय महासागरीय और वायुमंडलीय प्रशासन (एन.ओ.एए) की बैठक के दौरान सबसे गर्म समय दर्ज किया गया था। 1992 में रिया अर्थ समिट में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेशन के हस्ताक्षर और 2005 में क्योटो प्रोटोकॉल में भी चर्चा की गई। प्राकृतिक वातावरण के साथ–साथ मानव समाजों और हमारी अर्थव्यवस्थाओं पर पडने वाले महत्वपूर्ण और व्यापक प्रभावों को इंगित करता है। ग्लोबल वार्मिंग के परिणामस्वरूप जलवायु घटनाएं–तूफान, बाढ़, सूखा आदि बढ़ेगा। उच्च दर, सुनामी और अन्य प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि के कारण, मरने वालों की संख्या बढ़ जाएगी। वैश्विक बदलाव से कई पौघों और जीव–जनतुओं के आवासों का नुकसान होगा है। इस मामले में जीव–जंनतुओं को अपने प्राकृतिक आवास से पलायन करने की आवश्यकता होती है और उनमें से कई विलुप्त हो जाते है। यह जैव विविधता पर ग्लोबल वार्मिंग का बडा प्रभाव है, जंगल की आग बडी मात्रा में कार्बन युक्त धुएं का उत्सर्जन करती है। इन गैसों को वायुमंडल में छोडा जाता है, और पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप ग्लोबल वार्मिंग बढती जाती है। वाहन जीवाश्म ईंधन जलाते है जा कार्बन डॉइआक्सॉइड और अन्य विषाक्त पदार्थो की एक बडी मात्रा को वातावरण में उत्सर्जित करते है जिसके परिणामस्वरूप तापमान में वृद्धि होती है। कारखानों से निकलने वाला हानिकारक उत्सर्जन पृथ्वी के बढ़ते तापमान को बढ़ाता है। ज्वालामुखी ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे बडे प्राकृतिक कारक है। ज्वालामुखी विस्फोट के दौरान उत्सर्जित राख और धुंआ वायुमंडल में चला जाता है, और जलवायु को प्रभावित करता है। पिछले 100 वर्षो में औसत वैश्विक तापमान में 0.740 ब की वृद्धि, 40 मिमि से अधिक के समुद्र स्तर में

वृद्धि, मौसम में महत्वपूण बदलाव आर्कटिक समुद्री बर्फ का पीछे हटना और लगभग सभी महाद्वीपीय शामिल है।

निष्कर्ष – ग्लोबल वार्मिंग एक बड़ा खतरा है और इनसे निपटने के लिए उचित उपाय किए जाने चाहिए। यह समस्या केवल मनुष्यों की ही नहीं बल्कि जीव–जन्तुओं के लिए भी है। ध्रुवीय आइस लैंड़ के पिघलने से बाढ़ आ जाएगी तो हर जगह तबाही का कारण बन सकता है। समुद्र का बढता जल स्तर कृषि और मछली पकड़ने की गतिविधियों को नष्ट कर देगा। यह पारिस्थितिक तंत्र को गंभीर रूप से प्रभावित करेगा और पर्यावरण संतुलन को बिगाड देगा। ग्लोबल वार्मिंग से जलवायु परिस्थितियों में बदलाव आया है। कुछ स्थानों पर बाढ़ है तो कुछ स्थानों पर सूखा है। ग्लोबल वार्मिंग से ताप और आर्द्रता के पैटर्न में बदलाव आता है। अतः उपर्युक्त घटनाओं से निपटने के लिए लोागों में जागरूकता एक महत्वपूर्ण 4
कदम साबित हो सकता है। हमें अपनी पृथ्वी को सही मायनों में ''ग्रीन'' बनाना होगा। अपने 'कार्बन फुटप्रिंटस ;प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन को मापने का पैमानाद्ध को कम करना होगा।

सुझाव –

- वन संपदा की अंधाधुध कटाई को रूकवाना होगा,जिससे पर्यावरण संरक्षित रहे।
- ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमो लाना होगा।
- समुद्र के बढ़ते जल स्तर को रोकना।
- अम्लीय वर्षा के बढ़ते प्रभाव को रोकना
- बाढ़ –सूखा जैसी आपदाओं को रोकना।
- जलवायु परिवर्तन से बढ़तें मरूभूमि क्षेत्रों की वृद्धि को निंयत्रित करना।
- आस–पास के वातावरण को प्रदूषण से जितना मुक्त रखेगें, इस पृथ्वी को बचाने में उतनी बड़ी भूमिका निभाएंगें।
- वृहद विकास योजनाओं को शुरू किया जाना चाहिए ताकि बडे पैमाने पर विकास हो सके।

–: संदर्भ :–

- मणि दिनेश ''ग्लोबल वार्मिंग'' सत्साहित्य प्रकाशन, 2015 नई दिल्ली
- शर्मा श्याम सुन्दर '' ग्लोबल वार्मिंग कारण और निराकरण'' पब्लिशर्स शिलालेख 2013
- मेहता डॉ रमा ''जल चेतना'' तकनीकी पत्रिका'' जनवरी 2014
- www.intechopen.com
- www.bigmelt.com
- www.epa.gov

''पर्यावरण का स्वास्थ्य पर प्रभाव : कुपोषण''
(मध्यप्रदेश के सिवनी जिले के संदभ में)

डॉ. शाहिदा बेगम मंसूरी

भूगोल विभाग, शासकीय आदर्श महाविद्यालय, शहपुरा, डिण्डौरी

Abstract

मानव का स्वास्थ्य उसके आस–पास के पर्यारण से संयोजित होता है। शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिये संतुलित आहार, स्वच्छ जल, नियमित सफाई, व्यायाम, विश्राम एवं स्वच्छ वायु अति आवश्यक है। संतुलित आहार में पोषक तत्व (प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाड्रेट, खनिज लवण) उचित अनुपात में होते हैं, जितनी की शरीर को आवश्यकता होती है। संतुलित आहार के कारण ही शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है तथा शारीरिक वृद्धि होती है। भोजन में पोषक तत्वों की कमी से शरीर में विकृति उत्पन्न होती है। संतुलित आहार न मिलने के कारण शरीर कुपोषित हो जाता है। कुपोषण की समस्या बच्चों में अधिक पाई जाती है।

सिवनी जिले का भौगोलिक विस्तार 21°36′ से 22° 57′ उत्तरी अक्षांश तथा 79°19′ से 80° 17′ पूर्वी देशान्तर है। जिले का आकार बहुत विषमता लिए हुए है। दक्षिण की ओर संकरा तथा उत्तर की ओर अपेक्षाकृत चौड़ा है। जिले की लंबाई उत्तर से दक्षिण तक 153 किलोमीटर है, तथा चौड़ाई 69 किलोमीटर है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8758 वर्ग किलोमीटर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से सिवनी जिला प्रदेश में 24वें स्थान पर है। जिले की समुद्र तल से ऊँचाई 619 मीटर है।

प्रस्तुत शोधपत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का समावेश किया गया है। आंकड़ों के प्रस्तुतीकरण के लिये पूर्ण शोत्रपत्र में सारणी एवं आरेख का प्रयोग किया गया है।

***

प्रस्तावना

मानव का स्वास्थ्य उसके आस–पास के पर्यारण से संयोजित होता है। पर्यावरण और मानव एक दूसरे से घनिष्ठ संबंधित होते हैं। स्वास्थ्य का पर्यावरण के साथ बहुत गहरा संबन्ध होता है। पर्यावरण यदि प्रदूषित होगा तो मानव प्रभावित होगा तथा उसके स्वास्थ्य पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा। पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण स्वास्थ्य संबंधी कई प्रकार की समस्याएं जन्म लेती हैं जैसे कैंसर, उच्च रक्तचाप, अस्थमा, मलेरिया आदि। मध्यप्रदेश में छिंदवाड़ा, बैतूल, सिवनी जिले में मलेरिया का प्रभाव सर्वाधिक पाया जाता है, सिवनी जिले का घंसौर विकासखंड मलेरिया से अधिक प्रभावित है।

स्वस्थ्य व्यक्ति पूर्ण तरीके से शारीरिक एवं मानसिक रूप से किसी भी प्रकार की विकृति से रहित होता है। अतः स्वास्थ्य शरीर में किसी भी प्रकार की कोई संरचनात्मक एवं कार्यात्मक अनियमितता नहीं होती है। स्वास्थ्य का संबन्ध केवल शारीरिक स्वास्थ्य से नहीं है, बल्कि मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य से है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य पर सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक, पर्यावरण का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण स्वास्थ्य के साथ–साथ समाज में परिवर्तन होता है। शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिये संतुलित आहार, स्वच्छ जल, नियमित सफाई, व्यायाम, विश्राम एवं स्वच्छ वायु अति आवश्यक है। स्वस्थ्य शरीर के लिये संतुलित आहार अति आवश्यक होता है। संतुलित आहार में पोषक तत्व (प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाड्रेट, खनिज लवण) उचित अनुपात में होते हैं, जितनी की शरीरक को आवश्यकता होती है। संतुलित आहार के कारण ही शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है तथा शारीरिक वृद्धि होती है। भोजन में पोषक तत्वों की कमी या अधिकता से शरीर में विकृति उत्पन्न होती है।

विधि तंत्र

प्रस्तुत शोधपत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का समावेश किया गया है। प्राथमिक आंकडों के संकलन के लिये शोधार्थियों द्वारा मध्यप्रदेश के सिवनी जिले के समस्त विकासखंडों से आंकड़ों का संकलन प्रश्नावली एवं अनुसूची के द्वारा किया गया है। तदानुसार अध्ययन के उद्दश्यों हेतु निष्कर्ष एवं परिणाम आंकलित किये गये हैं। आंकड़ों के प्रस्तुतीकरण के लिये शोत्रपत्र में सारणी एवं आरेखों तथा मानचित्रों का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य (Objctives of the study)

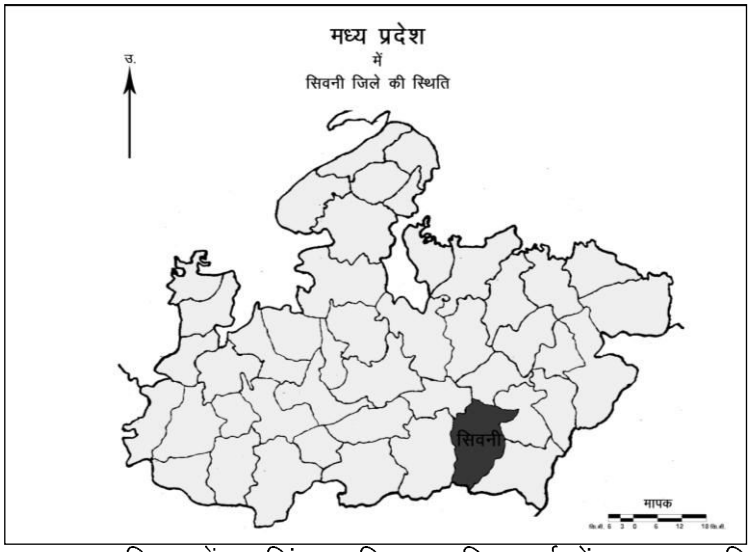
प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन के उद्देश्य के अन्तर्गत मुख्यतः निम्नलिखित उद्देश्यों को लेकर प्रस्तुतीकरण किया गया है –

1. सिवनी जिले के पर्यावरण का समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
2. बच्चों में कुपोषण का अध्ययन करना तथा बालमृत्युदर का अध्ययन करना।
3. बालस्वास्थ्य संरक्षण एवं पोषण के लिये चलाये जा रहे कार्यक्रमों का अध्ययन करना।

अध्ययन क्षेत्र

जिला सिवनी मध्यप्रदश के दक्षिण पश्चिम में सतपुड़ा अंचल में स्थित है। जिले का भौगोलिक विस्तार 21°36′ से 22° 57′ उत्तरी अक्षांश तथा 79°19′ से 80° 17′ पूर्वी देशान्तर है। जिले का आकार बहुत विषमता लिए हुए है। दक्षिण की ओर संकरा तथा उत्तर की ओर अपेक्षाकृत चौड़ा है।

जिले की लंबाई उत्तर से दक्षिण तक 153 किलोमीटर है, तथा चौड़ाई 69 किलोमीटर है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8758 वर्ग किलोमीटर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से सिवनी जिला प्रदेश में 24वें स्थान पर है। जिले की समुद्र तल से ऊँचाई 619 मीटर है। सिवनी जिला जबलपुर संभाग में स्थित है। यह जिला पाँच जिलों से घिरा हुआ है। इसके उत्तर में जबलपुर जिला स्थित है,



उत्तर–पूर्व में मंडला जिला, उत्तर पश्चिम में नरसिंहपुर जिला, दक्षिण पूर्व में बालाघाट जिला तथा दक्षिण पश्चिम में छिंदवाड़ा जिला स्थित है। जिले के दक्षिण में महाराष्ट्र राज्य के दो जिले नागपुर एवं भण्डारा स्थित हैं। जिले में 6 तहसील (सिवनी, कुरई, लखनादौन, घंसौर, केवलारी एवं बरघाट) तथा 8 विकासखण्ड (सिवनी, कुरई, लखनादौन, घंसौर, छपारा, केवलारी, धनोरा एवं बरघाट) जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार जिले में कुल 1612 ग्राम ह, जिसमें 1585 आबाद ग्राम हैं तथा 27 वीरान ग्राम हैं। जिले में कुल ग्रामों में 36 वन ग्राम हैं। सिवनी जिले में तीन नगरपालिका (सिवनी, लखनादौन तथा बरघाट) 8 जनपद पंचायत एवं 645 ग्राम पंचायत हैं।

विश्लेषण एवं व्याख्या

पोषण

"पोषण उन प्रकियाओं का संयोजन है, जिनके द्वारा जीवित प्राणी अपनी क्रियाशीलता बनाए रखने का उपयोग करते हैं।" पोषण एक गतिशील प्रक्रिया है जिसके द्वारा भोज्य पदार्थों का उपयोग शरीर की पोषकता के लिए किया जाता है। अच्छा पोषण स्वास्थ्य की मूलभूत आव यकता है। यह सामान्य वृद्धि एवं विकास के लिए तथा जीवन की विशिष्टता के लिए आव यक है। पोषक आहार व्यक्ति को केवल रोगों से नहीं बचाता बल्कि रोगों से लड़ने की भाक्ति भी प्रदान करता है। अतः भोजन में पर्याप्त मात्राा में पोषक तत्व जैसे– प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन युक्त आहार लिया जाना चाहिए।

बाल स्वास्थ्य

जन्म से एक वर्ष की उम्र के बच्चे को "शिशु" कहा जाता है। शिशु अपनी पूर्ण वृद्धि एवं विकास के लिये माता पर निर्भर होता है। शिशु की मूलभूत आवश्यक्ताएँ अच्छा पोषण एवं उचित देखभाल है। बच्चे किसी भी देश की अमूल्य निधि होते हैं। बच्चों के स्वास्थ्य पर देश का स्वास्थ्य निर्भर होता है। अतः किसी भी देश के बच्चे उस देश का भविष्य होते हैं यही कारण है कि बच्चों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है। जन्म के तुरंत बाद ही शिशु को माता का "कोलोस्ट्रम" युक्त गाढ़ा पीला दूध पिलाया जाना चाहिये। यह दूध उसके जीवन के लिये अमृत के समान कार्य करता है, उसे संक्रामक रोगों से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है। जन्म से 6 माह तक शिशु को केवल माता का दूध ही दिया जाना चाहिये, यही उसका पौष्टिक–आहार होता है। 6 माह के बाद शिशु को माता के दूध के अतिरिक्त कुछ पोषण आहार जैसे–दाल का पानी, फलों का रस आदि दिया जाना चाहिये। अतः माता को चाहिये कि वह अपने बच्चे का अधिक से अधिक ध्यान रखे। बच्चे का स्वास्थ्य बनाये रखने में माता का सर्वाधिक योगदान होता है। बच्चों की देखभाल में थोड़ी सी भी असावधानी उन्हें मौत के मुँह में पहुँचा सकती है। उन्हें उचित आहार एवं पोषण न मिलने पर वह कुपोषित हो जाते हैं और जीवन भर के लिये रोगों का शिकार हो जाते हैं। बालकों के कुपोषित होने का सबसे अधिक संभावित समय 6 माह से 1 वर्ष की उम्र के बीच का होता है। बाल स्वास्थ्य का प्रथम अंगरक्षक पोषण है, जिससे बच्चे की वृद्धि एवं विकास होता है, द्वितीय अंगरक्षक स्वच्छता है तथा तृतीय महत्वपूर्ण अंगरक्षक प्रतिरक्षण अर्थात् टीकाकरण है।

कुपोषण

शरीर को संतुलित आहार न मिलने से हीनता जन्य रोग या कुपोषण की स्थिति उत्पन्न होती है। बच्चों में कपोषण अधिक पाया जाता है। निर्धन एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के बच्चों में कुपोषण की समस्या अधिक पाई जाती है। यही कारण है कि भारत एवं मध्यप्रदेश में कुपोषण के कारण बाल मृत्युदर अधिक है। निम्न सारणी में खनिज तत्वों की कमी से होने वाले रोग उनके लक्षण एवं खनिज तत्वों के स्त्रोतों को बताया गया है–

सारणी क्र. 1

खनिज तत्वों की कमी से होने वाले रोग एवं लक्षण

क्र.	रोगों के नाम	खनिज के नाम	रोगों के लक्षण	स्त्रोत
1	घेंघा	आयुडीन की कमी से	थायरॉयड ग्रंथि का बढ जाना	समुद्री खाद्य वस्तुएँ, आयोडीन युक्त नमक
2	रतौंधी	विटामिन ए. की कमी से		मछली, गाजर आदि
3	बेरी–बेरी	विटामिन बी. 1 की कमी से	हाथ पैरों में लकवा लगना	सोयाबीन, साबुत अनाज, हरी सब्जी आदि
4	डर्मेटोसिस	विटामिन बी. 2 की कमी से	त्वचा का फटना	दूध, अंडा, गेहूँ, दाल, सब्जियां
5	पेलैग्रा	विटामिन बी. 5 की कमी से	त्वचा का सूखना, मस्तिष्क व पाचनतंत्र का ठीक तरह से कार्य न करना	मासं, यकृत, दूध आदि
6	रक्ताल्पाता	विटामिन बी. 6 की कमी से	रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी	अण्डा, दूध, मांस व यीस्ट
7	रक्ताल्पाता	विटामिन बी. 12 की कमी से	रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी	दूध, अंडा, मछली, यकृत
8	रक्ताल्पाता	फोलिक एसिड	रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी	दूध, केला, मांस आदि
9	स्कर्वी	विटामिन सी. की कमी से	मसूड़ों में सूजन तथा दर्द	आंवला, नींबू, संतरा, टमाटर आदि
10	रिकेट्स	विटामिन डी. की कमी से	हड्डियां कमजोर	दूध, मछली, सूर्य प्रकाश
11	इम्पोटैन्सी (नपुंसकता)	विटामिन ई. की कमी से	प्रजनन क्षमता का नष्ट होना	अंकुरित बीज, दूध, अंडा, मांस
12	रक्त का थक्का देर से बनना	विटामिन के. की कमी से	रक्त का थक्का देर से बनना	हरी सब्जी, आलू, दूध आदि

भारत की जनसख्या वृद्धि 181 मिलियन है जिसमें 5.05 मिलियन 6 माह से कम उम्र के बच्चे हैं। कुल जनसंख्या का 2.8 प्रतिशत 6 माह से कम उम्र के बच्चे हैं। देश में पोषण का स्तर निम्न होने के कारण माता तथा शिशु की मृत्यु दर अधिक पाई जाती है। देश में प्रतिवर्ष नजात शिशु मृत्यु दर 25 प्रतिहजार है तथा मध्यप्रदेश में 35 प्रतिहजार है।

सिवनी जिले में कुपोषण

सिवनी जिले के बच्चों में कुपोषण के पक्ष को प्राथमिक आंकड़ों के माध्यम से एवं आरेख द्वारा प्रदर्शित किया जा रहा है –

सारणी क्र. 2

सिवनी जिले के बच्चों में कुपोषण

क्र	आयु	कुपोषित बच्चे (%)
1	6 माह से कम	2.8
2	6 माह से 2 वर्ष	72.8
3	2 से 5 वर्ष	24.3

सारणी क्रमांक 2 में सिवनी जिले के बच्चों में कुपोषण के प्रतिशत को दर्शाया गया है। सारणी को देखने से ज्ञात होता है कि जिले में 6 माह से कम आयु के 2.8% बच्चे कुपोषित हैं, 6 माह से 2 वर्ष की आयु के 72.8 बच्चों में कुपोषण पाया गया है तथा 2 से 5 वर्ष की आयु के 24. 3 बच्चे कुपोषण से ग्रसित हैं।

सिवनी जिले के बच्चों में कुपोषण का अध्ययन करने से यह तथ्य सामने आये हैं कि जिले में सर्वाधिक कुपोषण 6 माह से 2 वर्ष की आयु के बच्चों में पाया गया है तथा सबसे कम 6 माह से कम आयु के बच्चे कुपोषित हैं।

बाल मृत्यु दर

भारत में लगभग 50 प्रतिशत मृत्यु 5 वर्ष से कम उम्र के बालका की होती है। जो बालक माता के गर्भ से ही कुपोषित होते हैं वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। एस. आर. एस. बुलेटिन की रिपोर्ट (2010–11) के अनुसार भारत में बाल मृत्यु दर 57 प्रतिहजार है जबकि मध्यप्रदेश में 69.5 प्रतिहजार है। 5 वर्ष के भीतर मृत्यु को प्राप्त करने वाले बच्चों की संख्या अधिक पाई जाती है भारत में यह 74.5 प्रतिहजार है तथा मध्यप्रदेश में 94.2 प्रतिहजार है। बच्चों में रक्ताल्पता की समस्या भी पाई जाती है अतः मध्यप्रदेश में 73 प्रतिशत बच्चों में रक्ताल्पता जैसी समस्या पाई जाती है। मध्यप्रदेश में 20 प्रतिशत बच्चों की मृत्यु डारिया के कारण होती है। प्रदेश में बाल मृत्यु दर म जिले का स्थान 8वां है जबकि प्रथम स्थान पर पन्ना जिला है।

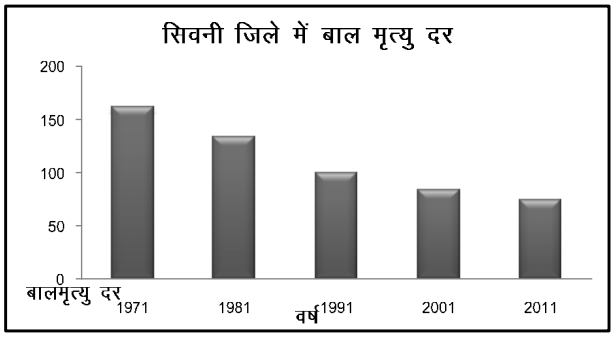
सिवनी जिले में बाल मृत्यु दर

निम्न सारणी में सिवनी जिले की बालमृत्यु दर दर्शाई गई है जिसमें वर्ष 1971 से 2011 तक आंकड़ों को लिया गया है।

सारणी क्र. 3

सिवनी जिले में बाल मृत्यु दर

क्र	वर्ष	बाल मृत्यु दर
1	1971	161
2	1981	133
3	1991	98
4	2001	82
5	2011	73



आंकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि वर्ष 1971 में जिले में बाल मृत्यु दर 161 प्रतिहजार थी जो वर्ष 1981 तक घटकर 133 प्रतिहजार हो गई। वर्ष 1991, 2001 तथा 2011 में क्रमशः बाल मृत्यु दर 98, 82 तथा 73 प्रतिहजार रही। निष्कर्षतः जिले में बालमृत्यु दर में निरंतर कमी आई है।

टीकाकरण

बच्चों में होने वाली जानलेवा बीमारियों (तपेदिक, पोलियो, डिप्थिरिया, काली खांसी, टेटनस, खसरा, हेपेटाइटिस–बी. तथा जापानी एन्सीफैलाइटिस) से रोकथाम के लिये तथा शिशु एवं बालमृत्यु दर को कम करने के लिये सरकार द्वारा वर्ष 1985 से पुरे भारत में व्यापक रोग प्रतिरक्षण/टीकाकरण कार्यक्रम (यू. आई. पी.) प्रारंभ हुआ, जिसकेअंतर्गत टीके एवं आयरन की गोलियां, सीरप तथा टीके आदि लगाये जाते हैं। 6 माह से 35 माह के बच्चों में मध्यप्रदेश में विटामिन । तथा ष्ट। (आयरन फोलिक एसिड) गोलियां/सीरप प्राप्त करने वाले बच्चों का प्रतिशत निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है–

सारणी क्र. 5

टीकाकरण प्राप्त करने वाले बच्चे (12 से 23 माह के)

क्र	टीकाकरण	(%)
1	पूर्ण टीकाकरण	34.1
2	बी.सी.जी.	95.7
3	तीन खुराक पोलियो	65.0
4	तीन खुराक डी.पी.टी.	50.5

5	मीजल्स	76.8
6	विटामिन ए. की खुराक	59.0

सारणी एवं आरेख को देखने से ज्ञात होता है कि जिले में पूर्ण टीकाकरण प्राप्त करने वाले बच्चों का प्रतिशत 34.1 है तथा बी सी जी. 95.7 प्रतिशत तथा पोलियो की तीन खुराक तथा डी.पी.टी. की तीन खुराक प्राप्त करने वाले क्रमशः 65 प्रतिशत तथा 50.5 प्रतिशत है। मीजल्स प्राप्त करने वाले बच्चे 76.8 प्रतिशत तथा विटामिन ए. की खुराक 59 प्रतिशत हैं। निष्कर्षतः जिले में टीकाकरण के प्रति काफी जागरूकता पाई जाती है।

योजनाएं

बालस्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए बालस्वास्थ्य संरक्षण से संबंधित कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जैसे– आर. सी. एच., एन. आर. एच. एम. आदि। इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त मध्यप्रदेश सरकार ने बच्चों को स्वास्थ्य एवं पूर्ण पोषण प्राप्ति के लिए महिला–बालविकास योजना के अन्तर्गत शहरी पोषण कार्यक्रम, मध्यान्ह् भोजन कार्यक्रम तथा बालशक्ति योजना आदि प्रारंभ की हैं, जिसके सफल परिणाम दिखाई दे रहे हैं।

भारत एवं मध्यप्रदेश में महिलाओं एवं बच्चों की सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य तथा पोषण स्थिति में सधार लाने हेतु के उद्देश्य से महिला एवं बाल विकास के अंतर्गत कई प्रकार की योजनाएं चलाई जा रही हैं जैसे वित्तपोषित समेकित बाल विकास योजनाएं, समेकित बाल विकास योजना (आई.सी.डी.एस.), ड्वाकारा योजना (ग्रामीण महिलाओं एवं बच्चों के लिये), किशोरी बालिका योजना, मातृत्व सहायता योजना, वात्सल्य योजना, शहरी पोषण कार्यक्रम, मध्याह्न भोजन कार्यक्रम, बालशक्ति योजना आदि विभिन्न प्रकार की योजनाएं सम्मिलित हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं कि सिवनी जिले में नवजात शिशु मृत्यु दर 50 प्रतिहजार है, जबकि भारत में नजात शिशु मृत्यु दर 25 प्रतिहजार है तथा मध्यप्रदेश में 40 प्रतिहजार है। भारत एवं मध्यप्रदेश की तुलना में जिले में नवजात शिशु मृत्यु दर अधिक है।

सिवनी जिले में कुपोषण के प्रतिशत को देखा जाये तो यहां 30.42 बच्चे कुपोषित हैं, जबकि मध्यप्रदेश में 26.3 प्रतिशत तथा भारत में कुपोषण 23.7 प्रतिशत पाया गया है। अतः स्पष्ट होता है कि सिवनी जिले में भारत एवं मध्यप्रदेश की तुलना में कुपोषण का प्रतिशत अधिक है, जो एक चिंतनीय विषय है। जिले में पोषण का स्तर निम्न है।

जिले की बाल मृत्यु दर का अध्ययन करने से ज्ञात हुआ है कि यहां बाल मृत्यु दर वर्ष 1971 में 161 प्रतिहजार थी, जबकि भारत एवं मध्यप्रदेश में इस वर्ष बाल मृत्यु दर 145 प्रतिहजार एवं 157 प्रतिहजार थी। वर्ष 2011 तक भारत की बाल मृत्यु दर घटकर 58 प्रतिहजार तथा मध्यप्रदेश की 67 प्रतिहजार हो गयी, जबकि सिवनी जिले में बाल मृत्यु दर 73 प्रतिहजार है। अतः अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जिले की बाल मृत्यु दर भारत एवं मध्यप्रदेश की तुलना में अधिक है।

बच्चों के स्वास्थ्य रक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत टीकारकरण अभियान पूरे देश में चलाया जा रहा है। भारत में टीकाकरण प्राप्त करने वाले बच्चों का प्रतिशत 79 है, जबकि मध्यप्रदेश में 86 प्रतिशत बच्चे टीकाकरण प्राप्त कर रहे हैं। सिवनी जिले में टीकाकरण प्राप्त करने वाले बच्चों का प्रतिशत 78 है, जो कि भारत एवं मध्यप्रदेश की तुलना में कम है।

निष्कर्षतः सिवनी जिले में भारत एवं मध्यप्रदेश की अपेक्षा नवजात शिशु मृत्यु दर, बाल मृत्यु दर एवं कुपोषण अधिक पाया गया है, तथा टीकाकरण का प्रतिशत देश एवं राज्य की तुलना में कम है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिले में स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएं पूर्ण रूप से बच्चों को उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं।

सरकार द्वारा चलाई जा रही बालस्वास्थ्य योजनाएं एवं पोषण कार्यक्रमों के प्रारंभ होने से बच्चों की स्वास्थ्य एवं पोषण स्थिति में काफी हद तक सुधार हुआ है तथा नवजात शिशु–मृत्युदर एवं बाल–मृत्युदर में कमी आई है। 5 वर्ष के बच्चों की मृत्यु दर में कमी आई है। ग्रामीण क्षेत्रों में बाल स्वास्थ्य मेलो का आयोजन किया जाना चाहिये, जिसमें जनसामान्य को संतुलित आहार के स्त्रोतों की जानकारी दी जानी चाहिये। माताओं को बाल स्वास्थ्य संरक्षण से संबंधित शिक्षा प्रदान की जानी चाहिये। दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में जहां आवागमन के साधन नहीं हैं, जहां पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का अभाव है उन क्षेत्रों में भी सरकार को सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिये जिससे कि वह इनका लाभ प्राप्त कर सकें।

संदर्भ ग्रंथ (Reference)

- कुमार डॉ. आर. (1988) "चाइल्ड डेवलपमेन्ट इन इंडिया" पंजाब यूनिवर्सिटी चण्डीगढ़।
- केतकर, डॉ. मुकुन्द एवं डॉ. शोभा (2010) ''कम्यूनिटी हेल्थ'' एन. आर. ब्रदर्स, इन्दौर।
- महिला एवं बाल विकास रिपोर्ट।

छिन्दवाड़ा जिले में खनिज संसाधन का भौगोलिक अध्ययन

रघुवीर उइके
अतिथि विद्वान–भूगोल
शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ

प्रस्तावना

खनिज संसाधन मानव सभ्यता के विकास के आधार है। औद्योगिक क्रांति एवं उसके बाद का संपूर्ण विकसित औद्योगिक पर्यावरण खनिज संसाधनों के विकास की कहानी है। खनिज संसाधनों की खोज, उत्खनन तथा संबंधित कार्य बडे पैमाने पर पर्यावरणीय दशाओं को विकृत कर देते है। खनन क्रिया जहां एक ओर विकास की गति को तीव्रता प्रदान करती है वही दूसरी ओर अनियोजित खनन प्रक्रिया व्यापक पैमाने पर पर्यावरणीय तत्वों को छिन्न भिन्न भी कर देती है। सामान्यतः खनन क्रिया दो रूपों में खुली खनन एवं भूमिगत खनन विधि से संपादित होती है। खुली खनन विधि से पर्यावरणीय तत्वों पर नकारात्मक प्रभाव अधिक पड़ता है।

ब्रह्माण्ड के निर्माण ही परिर्वतन की प्रक्रिया से प्रारंभ होता है। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। मनुष्य की अनुपस्थिति में भी पर्यावरण में निरन्तर परिवर्तन होते ह। मनष्य की उपस्थिति पर्यावरण परिवर्तन की गति को तीव्र कर देती है। औद्योगिक सभ्यता के विकास के पश्चात् पर्यावरण परिवर्तन की गति ज्यादा तीव्र हुई है। निरन्तर बढ़तो जनसंख्या एवं उसकी विविध आवश्यकताओं ने पर्यावरण परिवर्तन की गति को तीव्रतम बना दिया है। मानव के आग के अविष्कार से उत्पन्न पर्यावरण परिवर्तन की कहानी अब अपने उच्चतम स्तर पर पहुॅच गई है। आज पर्यावरणीय तत्वों की गुणवत्ता एवं मात्रात्मकता दोनों में गिरावट आ रही है। खनन कार्य एवं उसकी सहायक क्रियाओं ने इस गति को तीव्रतर कर दिया है।

अध्ययन क्षेत्र

छिंदवाड़ा जिला मध्य प्रदेश के प्राकृतिक संसाधनों से युक्त संपूर्ण क्षेत्र है। यहॉ पाये जाने वाले प्राकृतिक संसाधनां का न केवल क्षेत्र अपितु राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। 21^0 28′ से 22^0 49′ उत्तरी अक्षांश एवं 78^0 10′ से 79^0 24′ पूर्वी देशांतर के मध्य लगभग 11815 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर विस्तारित यह क्षेत्र प्रदेश का प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक संसाधनों को समेटे हुए है। इन संसाधनों के दोहन से (विशेषकर कोयला खनिज) जहॉ अध्ययन क्षेत्र के विकास प्रक्रिया में सर्वोच्चता प्राप्त की है, वही दूसरी ओर लगभग 90 वर्षो से कोयला, मगनीज जैसे प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन से पर्यावरणीय तत्वों की गुणवत्ता पर भी विपरित प्रभाव पड़ रहे है। वर्तमान समय में अध्ययन क्षेत्र में लगभग 80 कोयला खदान क्रियाशील है। इन खदानों मं 33 खदान खुली खनन विधि एवं 42 खदानें भूमिगत खनन विधि से कोयले का उत्खनन हो रहा है।

अध्ययन क्षेत्र में कोयला खनन का कार्य दो क्षेत्रों कन्हान नदी घाटी एवं पेंच नदी घाटी के लगभग 14195.552 हेक्टेयर क्षेत्र में किया जा रहा है। कुल खनन क्षेत्र के लगभग आधे खनन क्षेत्र पर खनन क्रिया प्रारम्भ है शेष आधि भूमि को खनन के बाद खूली छोड़ दिया गया है। उक्त छोड़ी गई खनन भूमि पर पर्यावरण सुधार के मानव स्तर पर कार्य नही किये गये है। परिणाम स्वरुप अध्ययन क्षेत्र में खनन प्रक्रिया के कारण स्थानीय पर्यावरणीय दशाओं पर तीव्र विपरित प्रभाव परिलक्षित हो रहे है। विगत लगभग 90 वर्षो से अनियोजित खनन एवं सहायक क्रियाओं के कारण अध्ययन क्षेत्र का न केवल प्राकृतिक पर्यावरण विकृत हुआ है अपितु सांस्कृतिक पर्यावरण (जनसंख्या संरचना, लिगांनुपात, मानव का स्वास्थ्य) भी विकृत हो रहा है। प्रस्तावित अध्ययन में पर्यावरणीय दशाओं के विकृत होते स्वरुप का समग्र अध्ययन का प्रयास किया जावेगा।

अध्ययन की ईकाई

राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक विकास में कोयला आज भी ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण संसाधन बना हुआ है। मानव सभ्यता और आर्थिक विकास के प्रथम चरण से लेकर आज तक कोयला ईंधन के रूप में सम्राट माना जाता रहा है। औद्योगिक क्रान्ति में शक्ति देने का कार्य कोयला द्वारा ही किया जा रहा है। कोयला का उपयोग भाक्ति उत्पन्न करने , ईंधन के रूप में, रासायनिक पदार्थ, बिजली के सामान और कोलतार इत्यादि बनाने में किया जाता है। चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद भारत दुनिया का तीसरा सबसे बडा कोयला उत्पादक देश है।[1] कोयले के महत्व को देखते हुए इसे 'काला सोना' या 'काला हीरा' कहा जाता है।

भारत में सर्वप्रथम 1774 में दो अंग्रेज समर और हिटले द्वारा कोयला निकालने का प्रयास किया गया। लेकिन भारत में कोयले उत्पादन का विधिवत् प्रादुर्भाव 1814 म हुआ जबकि रानीगंज पश्चिम बंगाल में 'रूपर्ट जोन्स' की रिपोर्ट के आधार पर कोयले की खुदाई आरंभ की गयी। भारतीय भू–गर्भ सर्वेक्षण के अनुसार, 'भारत में 1 जनवरी 2006 तक (1200 मीटर की गहराई तक) सुरक्षित कोयला के भण्डार 253300 मिलियन टन कोयला भण्डार है। अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 1925 से कोयला खनन का कार्य प्रारम्भ किया गया है।

भारत में कोयले का उत्पादन झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश आंध्रप्रदेश, असम, तमिलनाडु, कच्छ, राजस्थान, मेघालय आदि राज्यों में होता है। कोयला उत्पादन की दष्टि से मध्यप्रदेश का देश में पॉचवा स्थान है।' भारत में गोंडवाना क्षेत्र से एन्थ्रेसाइट तथा बिटुमिनस श्रेणी का और टरशीयरी क्षेत्र से लिग्नाइट किस्म का भूरा कोयला उत्पादित किया जाता है। कोल इंडिया लिमिटेड एक सूत्रधार कम्पनी है जिसकी आठ सहायक कम्पनियॉ हैः भारत कोकिंग कोल लिमिटेड (BCCl), ईस्टर्न कोलफिल्ड लिमिटेड (ECL), सेंट्रल कोलफिल्ड लिमिटेड (CCL), वेस्टर्न कोलफिल्ड लिमिटेड (WCL), साउथ ईस्टर्न कोलफिल्ड लिमिटेड (SECL),सिंगरोली कोलफिल्ड लिमिटेड तथा केन्द्रीय खान एवं डिजाइन

संस्थान लिमिटेड।

उद्देश्यः–

प्रस्तावित अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र में खनन क्रिया का पर्यावरण के विभिन्न तत्वों पर पड़ रहे प्रभावों का विस्तृत विशलेषण करना है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तावित अध्ययन के उद्देश्यों को निम्न भागों में विभक्त किया गया है।

1. छिन्दवाड़ा जिलें में कोयला खनन क्रिया के विकास का अध्ययन करना।
2. छिन्दवाड़ा जिलें में कोयला खनन क्रिया का विकास प्रक्रिया पर प्रभाव का अध्ययन करन।
3. खनन प्रक्रिया के कारण प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों पर पड़ रहे विपरित प्रभावों का अध्ययन करना।
4. खनन प्रक्रिया का सांस्कृतिक पर्यावरण (विशेषकर जनसंख्या संरचना, जनसंख्या घनत्व, लिगानुपात एवं स्वास्थ्य) के तत्वों पर पड़ रहे प्रभावों का अध्ययन करना।
5. खनन प्रक्रिया से उत्पन्न पर्यावरणी प्रदूषण एवं अवनयन की प्रक्रिया को कम करने के लिए स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

कोयला उत्खनन का पूर्व एवं वर्तमान में उत्खनन पद्धति पर पर्यावरण का प्रभाव, जलवायु पर प्रभाव, जल पर प्रभाव, मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव, मिट्टी पर प्रभाव, कोयला उत्खनन के लाभ, कोयले के प्रकार, कोयला का उपयोग, कोयले का दोहन, कोयला उत्खनन का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, पर्यावरण प्रदूषण को कम करने हेतु सुझाव, आधुनिक समय में पर्यावरण प्रदूषण रोकने के उपाय, कोयला उत्खनन में पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव को कम करने के लिए किये जा रहे शासकीय प्रयासो का अध्ययन करना। पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव को रोकना आदि के अध्ययन करने का प्रयास किया जाएगा।

कोयला उत्खनन से आर्थिक लाभ हो रहा है लेकिन पर्यावरण पर भी उसके दुष्प्रभाव पड रहे है, इसमें कोयला उत्खनन से कितना लाभ हुआ है और पर्यावरण पर इसके कितने दुष्प्रभाव पड़ रहे है का अध्ययन करने का प्रयास किया जाएगा।

उपकल्पना

प्रस्तुत शोध में शोध की प्रमुख विधियों को अपनाते हुए शोधकार्य किया जाएगा। शोध में वैज्ञानिक विधि एवं वस्तुनिष्ठता के गुणों को समाहित किया जाएगा। ग्रंथालय से प्रमुख पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओं तथा शोध प्रबंध का अध्ययन किया जाएगा। इस शोध की प्रमुख उपकल्पनाएँ निम्न हैं–

1. कोयला उत्खनन के कारण पर्यावरण प्रदूषण बढ़ रहा है।
2. कोयला उत्खनन के कारण कृषि जोत का आकार कम हो रहा है।

3. कोयला उत्खनन से पर्यावरण प्रभावित हो रहा है
4. कोयला उत्खनन के कारण रोजगार की संभावनाएं बढ़ रही है।
5. कोयला उत्खनन का भौतिक पर्यावरण को अधिक प्रभावित कर रहा है।
6. कोयला उत्खनन क्षेत्र में निवास करने वाले जीव–जन्तु एवं मानव विभिन्न प्रकार के रोगो से ग्रसित हो रहे है।

अध्ययन विषय में आवश्यक आँकड़ों को निम्न विधि से एकत्रित किया जाएगा।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में कोयला उत्खनन का पर्यावरण पर विषम प्रभाव पड़ रहा है साथ ही कोयला का दोहन भी हो रहा है। अधिकतम लाभ कमाने के कारण कोयला का अत्याधिक मात्रा में दोहन किया जा रहा है जिससे पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, एवं मानव स्वास्थ्य में गिरावट आ रही है। कोयला उत्खनन के कारण सबसे अधिक वायु प्रदूषण बढ़ रहा है साथ ही पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव दिखाई दे रहा है। मृदा, जलवायु एवं मानव जीवन पर दुष्प्रभाव पड़ रहे है। कोयला उत्खनन को रोका तो नही जा सकता परन्तु कोयला उत्खनन की ऐसी पद्यती अपनाई जाए जिससे लाभ होने के साथ ही पर्यावरण प्रदूषित न हो, कोयले की बंद खदानो को अपनाया जा सकता है। जिससे पर्यावरण को कम किया जा सकता है। शोधकार्य में कोयला उत्खनन से पर्यावरण पर प्रभाव संबंधी सभी वर्तमान समस्याएँ प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा। तथा निष्कर्ष निकाला जाएगा। और इस विषय की समस्याओं का सुझाव भी प्रस्तुत किया जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- संजय (2005), इंदौर नगर में औद्योगीकरण का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के रूपान्तरण पर अभिप्रभाव(एक भौगोलिक अध्ययन), पी–एच.डी. उपाधी हेतु अप्रकाशित शोध प्रबंध, भूगोल विभाग, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर, निर्देशक ड़ॉ. श्रीमति जूलियट ओंकार।
- टेंभरे भुनेश्वर (2002), ''Dimension Of Environmental Degenretion : A Case Study Of Balaghat विद्याल Region (M.P.)'' अप्रकाशित शोध प्रबंध, भूगोल विभाग, ड़ॉ. हरीसिह गौर विश्वविद्यालय सागर, निर्देशक ड़ॉ. संतोष शुक्ला।
- मलिक तनवीर अहमद (2013)–''A Geographical Study Of Changing Urban Environment : A Case Study Of Srinagar City'' अप्रकाशित शोध प्रबंध, आर्थिक विकास एवं क्षेत्रीय नियोजन विभाग, बरकातुल्लाह विश्व विद्यालय भोपाल निर्देशक प्रो. आर. डी. सिंह।
- कोष्टा श्रीमती शैलप्रभा (1994), ''मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण एवं आर्थिक विकास'' पी–एच.डी उपाधी हेतु अप्रकाशित शोध प्रबंध अर्थशास्त्र विभाग, निर्देशक डॉ. शिवकुमार तिवारी सह निर्देशक डॉ शेलेश चौबे रा.दु.वि.वि.जबलपुर।

- उइके रघुवीर (2009) –''सौंसर तहसील (जिला छिन्दवाड़ा) में साक्षारता का स्थानिक प्रतिरूप'' एम. फिल. उपाधी हेतु अप्रकाशित शोध प्रबंध, भूगोल विभाग, निर्देशक : आर. पी. मिश्रा, ड़ॉ. हरीसिह गौर विश्वविद्यालय, सागर।
- चौबे रश्मि (1999), ''पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं का योगदान'' पीएचडी उपाधी हेतु अप्रकाशित शोध प्रबंध, अर्थशास्त्र विभाग, रा.दु.वि.वि. जबलपुर, निर्देशक डॉ अरूण कुमारी सिंह।
- मिश्र श्रोमती ज्योति (1998), "कटनी नगर के चूना भट्टो के श्रमिकों पर पर्यावरणीय कारकों का प्रभाव'' पी–एच.डी उपाधी हेतु अप्रकाशित शोध प्रबंध, अर्थशास्त्र विभाग, निर्देशक डॉ. सी.एस.एस.ठाकुर रा.दु.वि.वि. जबलपुर।
- गौतम राकेश एवं भदौरिया जितेन्द्र सिंह (2011), ''मध्यप्रदेश एक परिचय'' टाटा एम सी. ग्रा हिल एजुकेशन प्रायवेट लिमिटेड।
- हुसैन माजिद, (2010), ''भारत का भूगोल'' टाटा एम. सी. ग्रा हिल एजूकेशन प्रायवेट लिमिटेड।
- कोष्टा श्रीमती शैलप्रभा (1994), ''मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण एवं आर्थिक विकास'' पीएचडी उपाधी हेतु अप्रकाशित शोध प्रबंध, अर्थशास्त्र विभाग, रा.दु.वि.वि. जबलपुर, निर्देशक डॉ शैलेष चौबे।
- खुल्लर डी. आर. (2008), ''भूगोल सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा, टाटा एम. सी. ग्रा हिल एजुकेशन प्रायवेट लिमिटेड।''
- कुमार प्रमीला एवं शर्मा श्रीकमल, (1997), ''औद्यागिक भूगोल'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल।
- कुमार प्रमीला एवं शर्मा श्रीकमल, (2000), ''कृषि भूगोल'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल।
- मिश्र श्रीकान्त, (1976), ''भारतीय अर्थव्यवस्था और उसका विकास'' मैकमिलन प्रकाशन नई दिल्ली पेज.न. 07।
- माहेशवरी दीपक (2007), ''विश्व एवं भारत का भूगोल'' प्रति योगिता साहित्य।
- मिश्रा दिनेश कुमार, (2011), ''जनजातीय कृषि व्यवस्था का पर्यावरण पर प्रभाव, डिन्डोरी जिले के संबध में'' पीएचडी उपाधी हेतु अप्रकाशित शोध प्रबंध, भूगोल विभाग, रा.दु.वि.वि. जबलपुर, निर्देशक डॉ लोकेश श्रीवास्तव।
- शुक्ला श्रीमती बिन्दु, (2002), ''म.प्र. के कृषि विकास में भूमि विकास बैंकों के क्रियाकलापों का समीक्षात्मक अध्ययन – छिन्दवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में'' पीएचडी उपधी हेतु अप्रकाशित शोध प्रबंध, वाणिज्य विभाग, रा.दु.वि.वि. जबलपुर, निर्देशक डॉ यूसी जैन, सह निर्देशकं एससी जैन।
- तिवारी संजय (2006), ''बाजार संवर्धन नीतियां और भारतीय अर्थव्यवस्था'' ओमेगा पब्लिकेशन्स अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली।
- उपाध्याय श्रीमती एकता, (2005) ''मध्यप्रदेश में कागज उद्योग का पर्यावरण पर प्रभावः अमलाई ओरिएन्ट कागज मिल के विशेष संदर्भ में पी.एच.डी. उपाधी हेतु अप्रकाशित शोध प्रबंध, अर्थशास्त्र विभाग, रा.दु.वि.वि. जबलपुर, निर्देशक डॉ गीता श्रीवास्तव।
- चटर्जी अनुप एवं सहाय,(1981)"साख्यिकीय विधियां" साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा।
- सिन्हा व्ही.पी.,(1999)"औद्योगिक अर्थशास्त्र" विवके प्रकाशन दिल्ली।

- टोंग्या व्ही.पी. एवं पाटिल आशोक,(2005)"सामाजिक अनुसंधान के मूल तत्व" हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।
- सिंह सविन्द्र,(2005)"पर्यावरण भूगोल" वसुंधरा प्रकाशन आगरा।
- जिला सांख्यिकीय पुस्तिका छिन्दवाड़ा 2011–12।
- जिला गजेटियर "छिन्दवाड़ा जिला" भोपाल प्रकाशन।

———



ENVIRONMENTAL CHANGE AND SUSTAINABLE DEVELOPMENT

GOVT. COLLEGE BICHHUA

District - Chhindwara (M.P.)

Email: hegcbicchh@mp.gov.in,

Website: www.mpcolleges.nic.in/gdcbichhua



आधुनिक भारतीय समाज में वृद्धजनों की दशा और दिशा

संपादक

लक्ष्मीकान्त चंदेला

टीकमणि पटवारी

सागर भनोत्रा

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स, दिल्ली

वैधानिक चेतावनी

पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन- फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक/ संपादक/ प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित शोध-पत्रों में निहित विचार तथा संदर्भों का संपूर्ण दायित्व स्वयं लेखकों का है। संपादक/ प्रकाशक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है।

आधुनिक भारतीय समाज में वृद्धजनों की दशा और दिशा

संपादक
लक्ष्मीकान्त चंदेला
टीकमणि पटवारी
सागर भनोत्रा

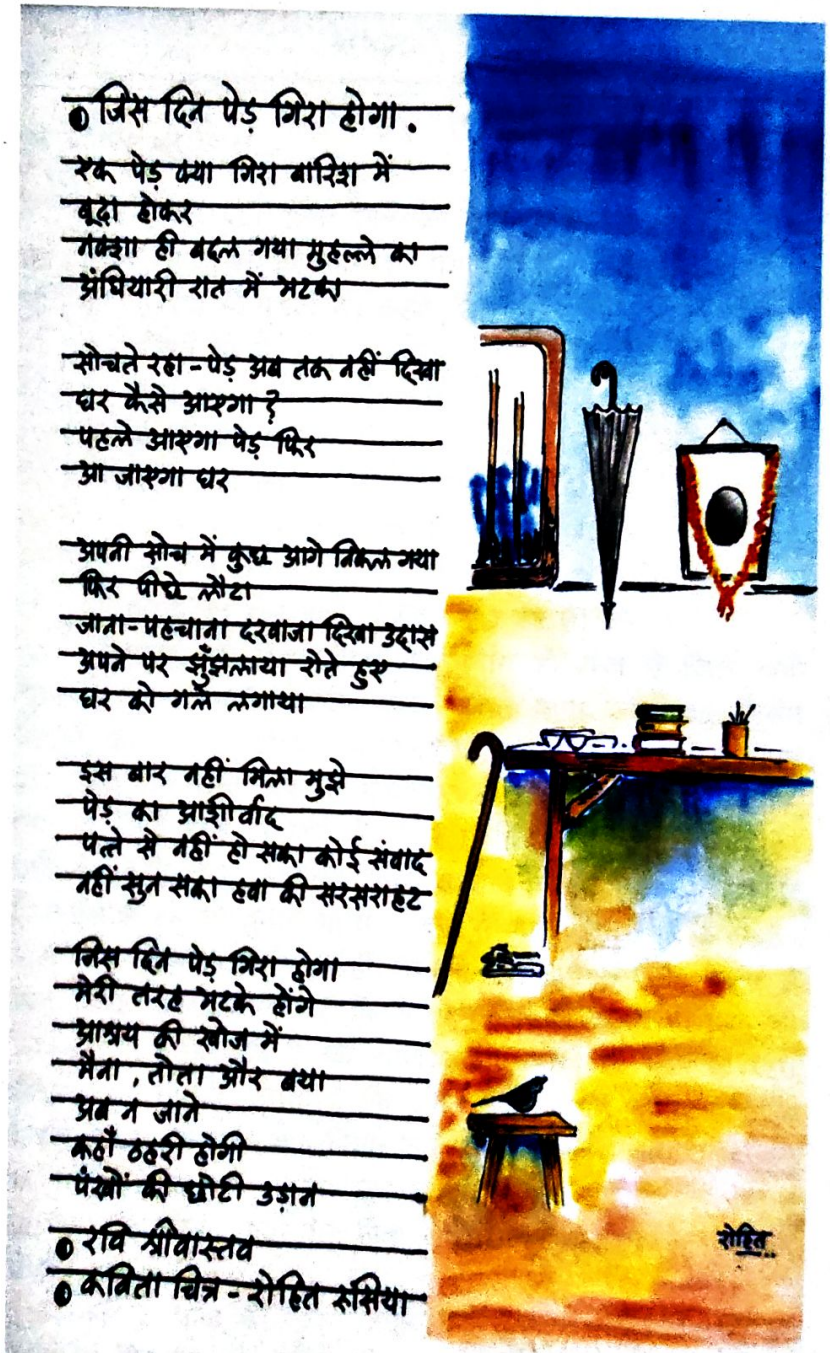
© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : २०१६
ISBN 978-93-88522-41-0

प्रकाशक
जे०टी०एस० पब्लिकेशन्स
वी-५०८, गली नं०१७, विजय पार्क, दिल्ली-११००५३
दूरभाष : ०८५२७ ४६०२५२, ०११-२२६११२२३
E-Mail : jtspublications@gmail.com

मूल्य : ५००.०० रूपये

आवरण : प्रतिभा शर्मा, दिल्ली
मुद्रक : तरूण ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली



जिस दिन पेड़ गिरा होगा
रवि श्रीवास्तव
कविता चित्र - रोहित रूसिया

30

एक आयु के गौरव का अन्त

डॉ. मनीषा आमटे
अतिथि विद्वान समाजशास्त्र
श्री श्री लक्ष्मीनारायण शास. पेंचव्हेली
स्नातकोत्तर महाविद्यालय परासिया
जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

समस्यारहित जीवन अकल्पनीय है, इसी कारण कहा गया है कि संघर्ष ही जीवन है। बचपन की अपनी समस्याएं होती है, किन्तु उनको सुलझाने वाले हाथों का साया अक्सर हर माथे पर होता ही है। यौवनकाल में बाहों में बल होता है और होता है समस्याओं से दो–दो हाथ कर लेने का साहस और उल्लास, वृद्धावस्था की समस्याएं सबसे भयावह होती है जो उस समय आघात करती है जब अक्सर आदमी असहायता और बेचारगी की गिरफ्त में पहुंच चुका होता है।

आज हमारे वृद्धजन एक विकट सामाजिक समस्या के रूप में चिंतनीय हो गए है, इससे बड़ी बिडम्बना क्या हो सकती है कि जिस देश की संस्कृति में 'पितृ देवो भव' और माता को स्वर्ग से अधिक गरिमा प्राप्त थी, जननी और जनक के प्रति संतान के कुछ अनिवार्य कर्त्तव्य थे जिन्हें पितृऋण एवं मातृऋण माना जाता था और इन ऋणों को चुकाएं बगैर मनुष्य का निस्तार नहीं था, वही माता–पिता आज अपने ही बच्चों के लिए उलझन बनकर रह गये है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में समय का यह अवांछनीय पैबंद घोर लज्जाजनक है किन्तु यह है कटु सत्य जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।[1]

वृद्धावस्था मानव जीवन का उत्तरार्द्ध है। इसमें घोर कठिनाईयों एवं बेबसी भुगतने का भय सदा से रहा है। हमारे मनीषियों ने इस स्थिति को समझा और माता–पिता को देवत्व प्रदान किया। साथ ही ऐसे अनेक नियमों की स्थापना की जिनका उल्लंघन निषिद्ध था। ये ही वे नियम थे जिनके चलते कुछ समय पूर्व तक घर के वृद्धों

की अवहेलना करने का साहस नई पीढ़ी में नहीं था। तब किसी वृद्ध को 'वृद्धाश्रम' की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु समय परिवर्तनशील है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति एवं विचारधारा के प्रभाव और उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते कठिन होती जा रही स्थितियों के कारण भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों व मान्यताओं में अप्रत्याशित रूप में परिवर्तन आया है। आयु का एक गौरव लुप्त हो गया।[2] अर्थ प्रधान दृष्टिकोण से युक्त युवा पीढ़ि वृद्धो को लाभ–हानि के पैमाने पर परखने लगी। वृद्ध परिवार के लिए लाभ प्रद है तो मान–सम्मान के पात्र है अन्यथा उन्हें बोझ समझने में देर नहीं लगती। बड़े बुजुर्गों के आशीर्वाद, लाड़–प्यार और बहुमूल्य अनुभवों की पूंजी हमारे हाथों से रेत की तरह फिसलती जा रही है।

आखिर आज यह तिरस्कार, अपमान, अवहेलना और घोर अकेलापन वृद्धों के ही हिस्से में क्यों आने लगा है ? आज घर इतने छोटे कैसे हो गये कि दो के अतिरिक्त उसमें किसी और को स्थान ही नहीं मिल पाता। लाचार, बीमार माता–पिता यहाँ तक कि अपाहिज वृद्ध माता–पिता को भी घर से बाहर करने में किसी को झिझक नहीं होती। विधवा या विधुर माता–पिता भी बोझ बन जाते हैं।[3]

चिंतन करने पर इस असहज स्थिति हेतु उत्तरदायी अनेक कारण प्राप्त होते हैं। इसमें सर्वप्रमुख है भौतिकवादी विचारधारा। मूलतः पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित और उत्प्रेरित इस विचारधारा में भावनात्मक संबंधों को बेहद सीमित लगभग नकारात्मक स्तर तक सीमित स्थान ही मिलता है। उसके अनुरूप ही आज के युवा वर्ग की मान्यता है– बच्चों का जन्म तथा पालन–पोषण। घटनावश माँ–बाप बन जाने वाले व्यक्तियों के कर्त्तव्य का अंग है और इसी कर्त्तव्य को वह अपने बच्चों के प्रति निभाएँगे तो सहज ही इस पितृऋण से मुक्त हो जाएंगे। इसमें कही भी आत्मीयता का कोई स्थान नहीं।

मात्र पाश्चात्य विचारधारा ही नहीं, बुजुर्गों की इस अवस्था के लिए एक अन्य कारण भी प्रमुख है –पीढ़ियों का अंतराल।[4] समय ने जिस तेजी से नई पीढ़ी की मान्यताओं को बदला है, उसी गति से वह माता–पिता की मान्यताओं को बदल नहीं सका। नतीजतन दोनों पीढ़ियों की आस्था और जीवन मूल्यों के बीच गहरा अंतराल पैदा हो गया, जो किसी भी स्तर पर परस्पर तालमेल नहीं बैठा पाता।

माता–पिता चाहते हैं उनका पुत्र राम और श्रवण कुमार की तरह पितृभक्त हो किन्तु वैश्वीकरण के कठिन प्रतिस्पर्धी युग में पुत्र की संपूर्ण ऊर्जा अपने कैरियर को बनाने और टिकाए रखने में चूक जाती है। इसके पश्चात् पत्नी और बच्चों के भविष्य की चिन्ता, माता–पिता के लिए उसके पास समय ही नहीं बचता। ऐसे में अपने बेटे से माता–पिता की अत्यधिक प्रत्याशा ऐसे मनोवैज्ञानिक कारणों को जन्म देती है कि वे सत्य को स्वीकार कर ही नहीं पाते। फलस्वरूप अपने सपनों के साथ स्वयं वृद्ध भी टूटने लगते है। परिणामतः सामने आता है ऐसा विघटन जिसका स्पष्ट कारण उनकी समझ में नहीं आता। अतः घोर निराशा उनको व्यापक जीवन के प्रवाह से परे धकेलती जाती है। वे दिनोदिन हठधर्मिता और जिद के शिकार होते जाते हैं। परिणामतः बात–बात पर कलह दैनिक जीवन का अंग बन जाती है। इसकी परिणति माता–पिता हेतु वृद्धाश्रम या बेसहारा होने में होती है।

यह अत्यन्त चिन्तनीय और दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि वृद्धों की दारूण स्थिति व वृद्धाश्रम की परम्परा और इसकी समूची खेदजनक प्रक्रिया के लिए आज की युवा पीढ़ी और स्वयं वृद्ध जितने जिम्मेदार होते हैं, उससे कही बड़ी जिम्मेदारी आज की गृहिणियों की देखी जाती है। मात्र माता–पिता ही नहीं, परिवार के किसी भी रिश्ते के प्रति जितनी भी कटुता, तिरस्कार या अवहेलना होती है, वह प्रायः गृहिणी की संकुचित विचारधारा और उसकी स्वार्थी मनोवृत्ति तथा असहिष्णुता के कारण ही आरंभ होती है और उसकी हठधर्मिता के कारण शांत नहीं हो पाती। गृहिणी की भू–भंगिमा का अनुयायी पुरूष उसकी इच्छानुसार घर की परिस्थितियाँ बनाने में उसका सहयोग करता है। पुत्र यह देखता और समझता है कि वृद्ध माता–पिता की जिम्मेदारिया पत्नी पर भारी पड़ने लगी है तो जन्मदाता उसके लिए भी बोझ बन जाते हैं और माता–पिता के लिए मृत्युपर्यंत यातनाओं का एक अन्तहीन सिलसिला प्रारंभ हो जाता है।

यह सच है कि भौतिकतावाद ने आज संपूर्ण सामाजिक ढाँचे को तीव्र गति से बदला है किन्तु नवीन युवा पीढ़ी इसके दुष्प्रभाव से प्रभावित हो ऐसा भी नहीं हैं। आज भी संयुक्त परिवार अपने पारम्परिक एवं पूर्ण आत्मीयता और संवेदनाओं के साथ जीवित है किन्तु विडम्बना यह है कि अनुभवी वृद्धों के मन में भविष्य की अनिश्चितता एवं बच्चों के प्रति अविश्वास के चलते स्वयं ऐसा व्यवहार करने लगते है कि हतप्रभ नई पीढ़ी की सोच क्रमशः बदलने लग जाती है। अकारण अपने

माता–पिता का क्षोभजनक, अवहेलना भरा व्यवहार उनको पीड़ित करता है।

पुत्र के विवाह के पश्चात् माता–पिता विशेषकर माता पुत्र के प्रति अपने प्यार और अधिकार पर बहू के साथ साझेदारी बर्दाश्त नहीं कर पाती। परिवार में उसे अपनी सत्ता छिनते प्रतीत होती है। उसे अपना बेटा हाथ से निकलता प्रतीत होता है। इस कृत्य की दोषी बहू ही सिद्ध की जाती है। ऐसी स्थिति में बहु को हर बात के लिए दोष देना, उस पर रोष उतारना, टोका–टोकी करना, बेटे से शिकायत करना। इस स्थिति से हतप्रभ बहू के मन में अपने बुजुगों के मन में आदर–सम्मान के स्थान पर नफरत जगह बनाने लगती है। एक समय पश्चात् वह चाहकर भी उनकी सेवा स्वस्थ मन से नहीं कर पाती। घर का परिवेश ऐसे तनाव में दिनोदिन दोनों ही पक्षों के लिए असहनीय स्थिति पैदा कर देता है। एक ऐसा पल आता है, जब इस समस्या से किसी भी मूल्य पर छुटकारा पाने की कोशिश अनिवार्य हो जाती है। यदि घर माता–पिता के नाम पर है तो पुत्र को अलग होना निश्चित है। अन्यथा इसका अंतिम पढाव प्रायः वृद्धाश्रम ही होता है। नित नई समस्या को बढ़ावा देने की आदत के कारण इस संदर्भ में सारी जिम्मेदारी स्वयं वृद्धजनों पर आती है। उनकी असहनशीलता, अहं और दंभी स्वभाव के के कारण वे परिवार में अशांति के कारण बनते है।

वृद्ध होना नियति है। आज वृद्धजन के साथ समाज का जो बर्ताव है, वह कल हमारे साथ भी हो सकता है। वृद्धजन सम्मान, संरक्षण, प्रेम, सेवा–सुश्रषा आदि चाहते हैं। वे परिवार में अपनी सक्रिय उपस्थिति और भागीदारी चाहते है।[5] नई पीढ़ी को इस मनोवृत्ति को समझते हुए वृद्धों के प्रति सहनशील व्यवहार धारण करना चाहिए। साथ ही, इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि जिस प्रकार वे अपने बच्चों से अपेक्षाएँ रखते हैं, वैसी ही अपेक्षाएं आपके माता–पिता ने भी उनसे रखी हैं। वृद्धों को भी चाहिए कि वे वर्तमान समय के अनुकूल बनकर अपनी प्रत्याक्षाओं को सहज शोभनीय स्तर पर ले आएं। सुख के तमाम कारणों की अवहेलना कर नकारात्मक दृष्टिकोण से बहु–बेटे के अवगुणों को देखने की बजाय सकारात्मकता से उनके गुणों और वैश्वीकरण के इस कठिन दौर में उनके जीवन को सरल करने का प्रयास करें।

यदि इन कुछ आधारभूत तथ्यों को अपनाकर दोनों पीढ़ियां धैर्य और नैतिकता को संबल बनाकर जीवन–मूल्यों को विकृत होने से बचाए रखे तो आज की सी गर्हित स्थितियाँ जन्म हीं नहीं लेंगी। नई पीढ़ी जो स्वयं कल वृद्धावस्था के शिकार होंगे, लेकिन अपने व्यवहार से वह चाहे तो आज बनाए रखने का उपाय कर सकते है और नई पीढ़ी को प्रफुल्लता के साथ जीवन के प्रति उसकी मान्यताओं और जीवन मूल्यों को भी दिशा दे सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लाल विमला : 'वृद्धावस्था का सच'; कल्याणी शिक्षा परिषद नई दिल्ली, पेज नं 19।
2. लाल विमला : 'वृद्धावस्था का सच'; कल्याणी शिक्षा परिषद नई दिल्ली, पेज नं 68।
3. लाल विमला : 'वृद्धावस्था का सच'; कल्याणी शिक्षा परिषद नई दिल्ली, पेज नं 23।
4. शर्मा, डॉ. प्रभुदत्त : 'वरिष्ठजन के मानवाधिकार' ; कॉलेज बुक डिपो जयपरु, पेज नं 3।
5. शर्मा, डॉ. रतन : 'वरिष्ठजन का समाजशास्त्र' ; कॉलेज बुक डिपो जयपुर, पेज नं 8।

****